श्री अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर

स्थानकवासी जैन कांफ्रेस

स्थापना
वीर नि स २४३२
ई सन् १९०६

अमृत महोत्सव
वीर नि स २५१४
ई सन् १९८८

अमृत-महोत्सव गौरव ग्रंथ

प्रकाशक

अ भा श्वे जैन कान्फ्रेंस, नई दिल्ली
२२-२३, अक्टूबर, १९८८

प्रकाशकीय

यह बड़े हर्ष और गर्व का विषय है कि अ भा श्वे स्था जैन कांफ्रेस ने अपने यशस्वी जीवन के ८२ वर्ष पूरे करने पर अमृत महोत्सव मनाया है। किसी सस्था का इतने दीर्घकाल तक अस्तित्व बने रहना ही उसके महत्व और सार्थकता का द्योतक है। कांफ्रेस की बहुमुखी प्रगति और इसकी बहुआयामी प्रवृत्तियो की सफलता समाज के लिए एक गौरव का विषय है। यूँ तो स्थानकवासी जैन समाज मे अखिल भारतीय नाम से और भी सस्थाएँ हो सकती हैं परतु सदस्यता तथा कार्यक्षेत्र के विस्तार की दृष्टि से केवल काफ्रेस ही समग्र स्थानकवासी समाज की राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधि सस्था कहलाने की अधिकारी है।

सन् १९५६ मे काफ्रेस का १३ वाँ अधिवेशन स्वर्ण जयती अधिवेशन के रूप मे भीनासर (बीकानेर) मे मनाया गया था। इस अवसर पर एक सदर्भ ग्रथ 'स्वर्ण-जयती ग्रथ' के नाम से प्रकाशित किया गया था जो आज भी जैन धर्म, परपरा, साहित्य व इतिहास एव काफ्रेस और श्रमण सघ सबधी विषयो पर अमूल्य सामग्री कहा जा सकता है। समय मर्यादा और पर्याप्त सदर्भ सामग्री के अभाव मे प्रस्तुत ग्रथ एक समृद्ध ग्रथ नही बन सका है परतु आशा है कि जो भी सामग्री इसमे प्रकाशित की गई है वह भी काफी सूचनात्मक सिद्ध होगी। उपरोक्त सदर्भ सामग्री की कमी को शीघ्र पूरा करना आवश्यक है। यह भी जरूरी है कि भविष्य के लिए काफ्रेस की जीवन-यात्रा का एक दैनदिनी (रोजनामचा क्रौनिक्लर) व्यवस्थित रूप से रखा जाए जिसमे राष्ट्रीय सामाजिक धार्मिक परिस्थितियो के अतिरिक्त काफ्रेस के कार्यक्रमो, योजनाओ, कार्यसिद्धियो और उपलब्धियो का विवरण लिखा जाए ताकि काफ्रेस की जन्म-शती के अवसर पर जो १७ वर्ष उपरात मनाई जाएगी, शताब्दी ग्रथ के लिए इन दो ग्रथो के अतिरिक्त काफ्रेस सबधी विषयो पर और भी सामग्री उपलब्ध हो।

काफ्रेस के मुखपत्र 'जैन प्रकाश' का जो आज भी सुव्यवस्थित ढग से एक पाक्षिक रूप मे प्रकाशित हो रहा है सन् १९१३ मे जन्म हुआ था। इस प्रकार यह जैन प्रकाश का हीरक जयती जयती वर्ष है और इस अवसर पर हम उन सभी मूर्धन्य विद्वानो को स्मरण करते है जिन्होंने समय-समय पर इसका सपादन किया है।

प्रस्तुत ग्रथ को निम्नलिखित चार परिच्छेदो मे विभाजित किया गया है —

परिच्छेद १ व २ का सकलन एव सपादन श्री जे डी जैन (ग्रीन पार्क, नई दिल्ली) ने किया है। परिच्छेद -१ मे सतों के आशीर्वचन, नेताओं के शुभ सदेश, कांफ्रेंस अध्यक्ष तथा अन्य शुभ चिंतको के अमृत-महोत्सव विषयक लेख, इंदौर में २३ अक्टूबर सन १९८८ को सपन्न हुए अमृत-महोत्सव पर एक रिपोर्ट और महोत्सव मे 'समाज रत्न', 'समाज-भूषण' और 'समाज गौरव' उपाधियों से सम्मानित नेताओं व कार्यकर्ताओ के सक्षिप्त सचित्र जीवन परिचय प्रकाशित किए गए है।

परिच्छेद-२ में कांफ्रेंस के ८२ वर्षों के सक्षिप्त इतिहास के अतिरिक्त कांफ्रेंस की विशिष्ट प्रवृत्तियों व उपलब्धियाँ, ८२ वर्षों में कांफ्रेंस के अध्यक्षों, महामत्रियों एव विश्वस्तों की तालिकाएँ, ग्राफ के रूप मे सदस्यता वृद्धि व वित्तीय प्रगति तथा कांफ्रेंस का संविधान भी प्रकाशित किए गए हैं। प्रथम अर्द्धशताब्दी का सक्षिप्त इतिहास तो स्वर्ण जयती ग्रथ पर ही आधारित है और पिछले ३२ वर्षों के इतिहास की सामग्री उपलब्ध 'जैन प्रकाश' के अकों से एकत्रित की गई हैं। इस परिच्छेद मे पूना श्रमण सघीय मुनि सम्मेलन और कांफ्रेंस के १६ वें अधिवेशन (इदौर २२ अक्टूबर १९८८) का भी विस्तृत विवरण दिया गया है। इस

परिच्छेद के आरम्भ में धर्मवीर स्व. श्री दुर्लभ भाई जवेरी का कांफ्रेंस की स्थापना सबधी पोरबदर (सौराष्ट्र) मे दिया गया एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भाषण उद्धृत किया गया है जो आशा है पाठकों को रुचिकर सिद्ध होगा।

परिच्छेद ३ व ४ की कुछ सामग्री का चयन श्री शांतिलाल जी वनमाली सेठ तथा शेष का सकलन एव सपादन उपाचार्य प्रवर श्री देवेन्द्र मुनिजी म के परामर्श से श्री फकीरचद जी मेहता ने किया है। इन परिच्छेदों में पाठकों को अनेक मार्मिक लेख पढ़ने को मिलेंगे, विशेषत (१) उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी लिखित 'जैन सस्कृति, श्रमण सस्कृति, श्रावकाचार एव जैन परंपरा पर लेख, (२) स्व प सुखलाल जी सघवी तथा डॉ नेमीचद जैन द्वारा लिखित जैन सस्कृति पर लेख, (३) स्व आचार्य सम्राट श्री आत्मराम जी म और डॉ दौलतसिंह कोठारी द्वारा लिखित अहिंसा विषयक लेख तथा (४) आचार्य सम्राट श्री आनन्दऋषि जी, स्व युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी, उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी, श्री दलसुखभाई मालवणिया व श्री सौभाग्यमल जी जैन द्वारा लिखित जैन दर्शन और तत्वज्ञान पर लेख।

सौभाग्य से कांफ्रेंस के अमृत महोत्सव के अवसर पर उपाचार्य श्री का चातुर्मास इदौर नगर मे था। इसलिए इस ग्रथ के लिए लेखन सामग्री का सपादन उनके निर्देशानुसार हो पाया है। इस महती कृपा के लिए मैं उपाचार्य श्री के प्रति नतमस्तक आभार प्रकट करता हूँ। लेखन, सपादन, सशोधन और प्रकाशनादि कार्यों मे सक्रिय सहकार प्रदान करने के लिए मैं श्री फकीरचद जी मेहता, श्री शातिलाल जी वनमाली सेठ तथा श्री जे डी जैन का हृदय से आभारी हूँ। उन्हीं सब के सद्प्रयत्नों से इस ग्रथ का प्रकाशन सभव हो सका है। विशेषत मै श्री जे डी जैन का हृदय से आभार प्रकट करना चाहूँगा जिन्होंने मेरे निजी आग्रह पर कई महीनो से परिच्छेद १ व २ के लिए सामग्री जुटाने और ग्रथ की प्रकाशन योजना का प्रारूप तैयार करने मे अपना समय और शक्ति लगाई है।

ग्रथ के मुद्रण कार्य को नईदुनिया प्रेस इदौर द्वारा दक्षतापूर्ण और लगन से पूर्ण करने के लिए हम प्रेस के प्रबधकों के बहुत आभारी है।

नई दिल्ली
१ सितबर १९८९

अजितराज सुराणा
मत्री

अ.भा.श्वे. स्थानकवासी जैन कांफ्रेस

अमृत-महोत्सव गौरव ग्रंथ

अनुक्रमणिका

परिच्छेद -३ जैन सस्कृति

परिच्छेद -४ जैन धर्म, दर्शन, इतिहास

आशीर्वचन

विराट् विश्व मे मानव ही सर्वाधिक विकसित प्राणी है। उसने समाज, सस्कृति और सभ्यता का विकास किया। आदिम युग का मानव जगलो मे रहता था, पर आधुनिक युग का मानव गगनचुम्बी उच्च अट्टालिकाओ मे रहने लगा है। विज्ञान जो नित नई प्रगति कर रहा है, वह उसके उर्वर मस्तिष्क का ही परिणाम है। जहाँ भौतिक दृष्टि से मानव ने विकास किया, वहाँ आध्यात्मिक दृष्टि से भी उसने अपूर्व प्रगति की। धर्म का जो विकसित रूप हमे दिखलाई देता है, वह मानव की देन है। तीर्थंकर, अवतारी जितने भी महापुरुष हुए है, वे सभी मानव थे और मानव-जीवन के आध्यात्मिक उत्कर्ष हेतु उन्होने उपदेश दिए। वही उपदेश वेद, उपनिषद्, त्रिपीटक और आगम के रूप मे विश्रुत है।

जैन धर्म और सस्कृति के सस्थापक तीर्थंकर रहे है। भगवान ऋषभदेव, प्रागैतिहासिक काल मे हुए और २४वे तीर्थंकर महावीर ऐतिहासिक काल मे हुए। आज से २५०० वर्ष पूर्व उस महागुरु ने तीर्थ की सस्थापना की और वह सस्थापना ही आज जैन धर्म के रूप मे जानी और पहजानी जाती है। महावीर के पश्चात् दुष्कालो के कारण जैन सघ विभिन्न रूप मे विभक्त हुआ और कुछ ऐसे ज्योतिर्धर नक्षत्र आए, जिन्होने क्रियोद्धार कर जैन शासन की गरिमा मे चार चाँद लगाए।

स्थानकवासी जैन धर्म एक विशुद्ध आध्यात्मिक और क्रातिकारी धर्म रहा। किन्ही-किन्ही कारणो से जब यह धर्म अनेक सम्प्रदायो मे विभक्त हो गया, तब चिन्तको ने सोचा कि यदि हम अनेक भागो मे विभक्त रहेगे तो हमारी शक्ति शनै शनै कम हो जाएगी। पर प्रश्न था कि सभी सम्प्रदायो को एक करने के लिए कौन पहले करे? स्थानकवासी जैनकान्फ्रेन्स के श्रद्धालु श्रावको ने यह भगीरथ कार्य करने का बीडा उठाया। पजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र- जहाँ पर सन्त भगवत विराज रहे थे, वहाँ पर वे अनेक बार पहुँचे। अनेक कडुवे-मीठे अनुभव भी हुए, किन्तु वे हताश और निराश नही हुए, निरतर अपने लक्ष्य की ओर बढते रहे। परिणामस्वरूप स्थानकवासी समाज के सभी प्रमुख आचार्य, प्रवर्त्तक आदि महामुनिगण, अजरामरपुरि अजमेर मे स १९८९ मे एकत्र हुए। सभी ने गहराई से चिन्तन किया और जो प्रमुख समस्याएँ थी, उन पर चिन्तन कर समाधान करने का प्रबल प्रयास किया। किन्ही कारणो से उस समय एक आचार्य और एक सघ की परिकल्पना मूर्त रूप न ले सकी। पर जो भी वहाँ कार्य हुआ, वह भी कम महत्वपूर्ण नही था। यदि कान्फ्रेन्स के कर्मठ कार्यकर्तागण उस समय प्रयास न करते तो अजमेर का

सम्मेलन सभव नही था। उन्होंने जो कार्य किया, वह आज भी मेरे स्मृत्याकाश मे चमक रहा है।

कान्फ्रेन्स के मूर्धन्य मनीषीगण सदा आशावादी रहे। वे अजमेर सम्मेलन के पश्चात् भी निरन्तर प्रयत्न करते रहे। उनके प्रयत्न से सन्तो के मानस मे भी एकता की भव्य भावना मूर्त रूप ले रही थी। सर्वप्रथम पाँच सम्प्रदायो का एक सगठन हुआ और उस सगठन का मुझे आचार्य बनाया गया। मेरा अन्तर्मानस चाहता था कि सम्पूर्ण स्थानकवासी एक बने। कान्फ्रेन्स के कार्यकर्ता भी इसी प्रयास मे लगे हुए थे। सन् १९५२ मे सादडी मारवाड मे बृहद् साधु सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन मे कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष कुन्दनमलजी फिरोदिया ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। धीरजभाई तुरखिया ने नीव की ईंट के रूप मे रहकर जो कार्य किया, वह भुलाया नही जा सकता। परिणामस्वरूप जितने भी सन्त, भगवत और आचार्य आदि वहाँ पर पधारे थे, वे सभी एक बन गए, एक आचार्य और एक समाचारी का निर्माण हुआ। आचार्य आत्मारामजी म श्रमण सघ के प्रथम आचार्य बने। श्री गणेशीलालजी म उपाचार्य बने और मुझे प्रधानमत्री का कार्य सुपुर्द किया। इस सम्मेलन मे स्थानकवासी सम्प्रदायो की २२ सम्प्रदाएँ सम्मिलित हुईं, जिसमे ३४१ मुनि और ७६८ साध्वियाँ थी। श्रमण सघ के निर्माण मे कान्फ्रेस का जो योगदान रहा, वह बहुत ही अपूर्व है।

कान्फ्रेन्स स्थानकवासी समाज की एकमात्र मातृ सस्था है। आज भी इस सस्था के मूर्धन्य अधिकारीगण स्थानकवासी समाज की प्रगति हो, इसके लिए अहर्निश प्रयास कर रहे है। जब भी साधु-सम्मेलन हुए, उस समय कान्फ्रेन्स ने जो प्रयास किए है, वे किसी से छिपे हुए नही है। इन वर्षो मे कान्फ्रेन्स के सामने अनेक विकट समस्याएँ भी आई, किन्तु उन विकट समस्याओ को सहज रूप से सुलझाकर वह अपने लक्ष्य की ओर कदम बढा रही है। मुझे आशा है, वह कान्फ्रेन्स के अमृत महोत्सव पर अपनी शक्ति को अधिक से अधिक अर्जित कर निरन्तर बढती रहेगी। यही मगलमय मनीषा।

राष्ट्र सत आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषिजी म.

राष्ट्रपति
भारत गणतंत्र
PRESIDENT
REPUBLIC OF INDIA

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस का अमृत महोत्सव 23 अक्तूबर 1988 को इंदौर में सम्पन्न हो रहा है तथा इस शुभ अवसर पर " अमृत महोत्सव ग्रन्थ" भी निकाला जा रहा है ।

मुझे आशा है कि ये आयोजन मानव जाति में जीव दया, अहिंसा, सत्य, परोपकार जैसे सद्गुणों की अभिवृद्धि करने में सहायक होंगे ।

मैं आयोजनों की सफलता की कामना करता हूँ ।

आर वेंकटरामण

आर वेंकटरामन

नई दिल्ली,
15 अक्तूबर, 1988
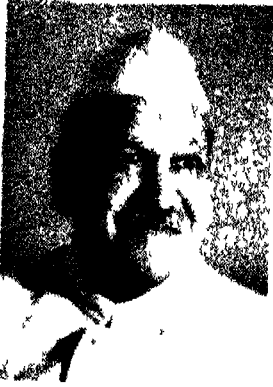
उप-राष्ट्रपति, भारत
नई दिल्ली

VICE-PRESIDENT
INDIA
NEW DELHI

दिनांक 9 अक्तूबर, 1988
17 आश्विन, 1910 (शक)

सदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स का अमृत महोत्सव एव अधिवेशन 22-23 अक्तूबर 1988 को इन्दौर में सम्पन्न हो रहा है ।

सम्पूर्ण भारत के स्थानकवासी जैन समाज की प्रतिनिधि सस्था ने अपने सक्रिय जीवन के 82 वर्ष पूरे कर लिए हैं । मानवीय गुणों की अभिवृद्धि की जरूरत सब समय की जाती रही है । प न्तु आज इसकी जरूरत कहीं ज्यादा है । जैन साधुगण एव साध्वियों के सतत प्रयासों से इन गुणों की वृद्धि के लिए प्रयत्न हो रहे हैं । इन प्रयत्नों को अधिक प्रभावी बनाने में अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स सफल हो, यही कामन है ।

शंकर दयाल शर्मा
(शंकर दयाल शर्मा)

प्रधान मत्री

सन्देश

जैन आचार्यों द्वारा भारत की प्राचीन कला, साहित्य, सस्कृति, दर्शन, भाषा में अभिवृद्धि हुई है । इस सम्प्रदाय ने सदैव दया, सत्य, अहिसा आदि मानवीय गुणों पर जोर दिया है । यह सम्प्रदाय अपने समाजसेवी कार्यों के लिए भी प्रसिद्ध रहा है ।

यह खुशी की बात है कि अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस इन्दौर में 22-23 अक्तूबर, 1988 को अमृतमहोत्सव एव अधिवेशन का आयोजन कर रही है । इस अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभकामनायें भेजता हूँ ।

राजीव गांधी

नई दिल्ली

27 सितम्बर, 1988

अमृत-महोत्सव

भारतीय सस्कृति का जब हम गहराई से अनुशीलन करते है, तो वह दो धाराओ मे विभक्त है। एक धारा ब्राह्मण-सस्कृति है, तो दूसरी धारा श्रमण-सस्कृति की है। ब्राह्मण-सस्कृति मे सन्यासी एकाकी साधना के पक्षधर रहे, उन्होने वैयक्तिक साधना को अधिक महत्व दिया, एकात, शात, वनो मे आश्रम मे रहते थे, उन आश्रमो मे अनेक ऋषिगण भी रहते थे, पर सभी की वैयक्तिक साधना ही चलती थी। जैन धर्म ने अनेकान्त दृष्टि से इस सबध मे चिन्तन प्रस्तुत किया, जो जिनकल्पीश्रमण थे, वे वैयक्तिक साधना करते थे, उन्हे समाज से कुछ भी लेना-देना नही था। वे उग्रतपस्वी थे, मौन रहकर प्राय जगलो मे, वृक्षो के नीचे खडे होकर साधना करते थे।

स्थविर कल्पी श्रमणो के लिए सघीय साधना को अत्यधिक महत्व दिया। जो साधक सघ से बहिष्कृत रहा। उसे जैन धर्म मे न आदर प्राप्त हुआ, और न प्रतिष्ठा ही प्राप्त हुई। देववाचक एक महामनीषी आचार्य थे, उन्होने नदीसूत्र जैसी महनीय कृति की रचना की। प्रस्तुत सूत्र मे श्रमण भगवान महावीर के पश्चात् उन्होने विस्तार के साथ सघ की स्तुति की है। सघ को नगर, चक्र, रथ पद्म, चद्र, सूर्य, समुद्र, महामन्दर, प्रभृति विभिन्न गुणो से युक्त बताया है। उसमे यह भी कहा गया है— जैसे परकोटे से सुरक्षित नगर निवासियो को सुरक्षा प्रदान करता है वैसे ही सघरूपी नगर अपने साधको को चारित्रिक-स्खलनाओ से सुरक्षित रखता है। जैसे चक्र शत्रु का उच्छेद करता है, वैसे ही सघ चक्र साधना मे जो दुर्गुण बाधक है, उन दुर्गुणो का उच्छेदन करता है और साधक के जीवन मे सद्गुणो का वास लहलहाने लगता है। सघरूपी रथ है, इस पर शीलरूपी पताकाएँ फहरा रही है, जिसमे सयम और तप के अश्व लगे हुए है। स्वाध्याय का मधुर आघोष जन-जीवन को आह्लादित कर रहा है, ऐसा सघरूपी रथ कल्याणप्रद है। पद्म, कमल, सदा अलिप्त रहता है, जल मे रहने पर भी जल से निर्लिप्त रहता है, वैसे ही सघरूपी पद्म विषय-वासना से अलिप्त रहता है। यह सघस्थ साधको को दुर्गुणो से बचाता है, सघ चद्र के समान सौम्य है, शान्ति प्रदाता है, तो सूर्य के समान पाप-ताप को नष्ट करने वाला भी है। इस तरह विस्तार से सघ की महिमा और गरिमा का उत्कीर्तन हुआ है।[1]

भगवती आराधना मे आचार्य ने सघ की परिभाषा करते हुए लिखा है—जो गुणो का समूह है, वह सघ है। कर्मों के विमोचक को सघ कहा गया है, सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मे जो सघात को प्राप्त है, उसे सघ कहते है। सर्वार्थ सिद्धि मे और तत्वार्थ

राजवर्तिक में सघ की परिभाषा इस प्रकार है—सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान और सम्यक्-चारित्र से युक्त श्रमणो का समुदाय सघ के अभिधा से अभिहित है।

भगवती आराधना की विजयोदया टीका मे सघ को प्रवचन शब्द से सबोधित किया है। जिसमे रत्नत्रय का प्रवचन, उपदेश किया जाता है। श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका के समूह का नाम सघ है।[६] ये श्रमण सघ के चार अग हैं। इन्हे ही चतुर्विध की सज्ञा प्रदान की गई है। जो तप व श्रम करते है, वे श्रमण है। ऐसे श्रमणो के समुदाय को श्रमण सघ के रूप मे जन-मानस जानता है,[७] पहचानता है, इस प्रकार का श्रमण सघ, जिसमे गुणो का प्राधान्य है, समस्त प्राणियो के लिए सुख प्रदान करने वाला है, निकट भव्य-जीवो के लिए आधार-रूप है, और माता-पिता के समान क्षमा प्रदान करने वाला है।[८]

यह सत्य है कि सघ, शब्द अपने आप मे एकता, सुव्यवस्था, सुसगठन और शक्ति का प्रतीक है। एकाकी जीवन मे अकुश नही रहता, इसलिए उसमे स्वच्छन्दता स्वअनाचार की प्रवृत्ति बढ सकती है। जो साधक अपने जीवन को आचार के आलोक से चमकाना चाहते है, विचारो के विमल प्रकाश मे अपना जीवन व्यतीत करना चाहते है, उन साधको की साधना सघ मे रहकर ही निर्विघ्न रूप से सपन्न हो सकती है। यही कारण है कि श्रमणो के लिए एकाकी रहने का निषेध किया गया है। सघदास गणि ने बृहत् कल्पभाष्य मे सघ स्थित श्रमण को ही ज्ञान का अधिकारी बताया है। वही श्रमण दर्शन और चारित्र मे विशेष रूप से अवस्थित हो सकता है, सामान्य जीवन का सार उपशम है, यदि श्रमण जीवन मे कषायो की प्राधान्यता रही, तो साधक के व्रत और नियम नही रह पाएँगे। एतदर्थ ही उन महान् आचार्यों ने साधको को यह पवित्र प्रेरणा प्रदान की कि सघ मे रहकर ज्ञान, ध्यान की साधना के द्वारा आत्म-कल्याण के महा पथ पर अग्रसर होना चाहिए।

श्रमण भगवान महावीर के पश्चात् दुष्काल की काली छाया ने सघ को विभिन्न भागो मे विभक्त कर दिया, जो सघ आचार की दृष्टि से उत्कृष्ट था, परिस्थिति के कारण उसमे धीरे-धीरे शिथिलाचार ने प्रवेश किया, चैत्यवास उस शिथिलाचार का ही रूप था, जिसका आचार्य हरिभद्र ने सबोध प्रकरण ग्रथ मे विस्तार से उल्लेख किया, समय-समय पर आचार शैथिल्य को नष्ट करने के लिए क्रियोद्धार हुए, उन क्रियोद्धार मे ही स्थानकवासी सघ का जन्म हुआ, जिसने विशुद्ध आचार और विचार को महत्व दिया, स्थानकवासी समुदाय के मुख्य ५ क्रियोद्धारक हुए, और उसके पश्चात् २२ सम्प्रदायो मे स्थानकवासी समाज विभक्त हो गया, वह विभाग धीरे-धीरे बढते-बढते जब ३२ सम्प्रदायो मे पहुँच गया, तब समाज के मूर्धन्य मनीषियो के अन्तर्मानस मे ये विचार समुत्पन्न हुए कि इस प्रकार यह विभिन्न धाराएँ, सघ समुत्कर्ष हेतु हितावह नही हैं, उसी भावना के फलस्वरूप श्रावको का एक सगठन हुआ सन् १९०६ मे। और वह श्रावक सगठन कान्फ्रेन्स के नाम से विश्रुत हुआ। कान्फ्रेन्स ने समाज का नेतृत्व करने का बीडा अपने हाथ मे लिया, वे जानते थे कि जैन सघ का मूल आधार श्रमण-समुदाय है, जब तक श्रमण-समुदाय मे एकता नही होगी, तब

तक स्थानकवासी समाज का विकास नही होगा। उन कर्मठ कार्यकर्ताओ के प्रबल प्रयास से अजमेर में वृहत् साधु सम्मेलन हुआ, और उस सम्मेलन के पूर्व प्रान्तीय सम्मेलन भी हुए। अजमेर सम्मेलन मे उन विभिन्न प्रश्नो पर चिन्तन हुआ, सवत्सरी जैसे उलझे हुए प्रश्न का वहाँ समाधान करने का प्रयास किया गया। जो एकता का स्वप्न देख रहे थे, वह भले ही अजमेर मे साकार रूप न ले सका, पर नीव की ईंट के रूप मे जो कार्य हुआ, वह बहुत ही प्रशसनीय रहा।

उसके पश्चात् सन् १९५२ मे सादडी मे वृहत् साधु सम्मेलन हुआ। यह सम्मेलन अपनी शानी का निराला था। जितने भी सत और आचार्य, वहाँ पधारे, उन्होने अपनी सम्प्रदायो का, पदवियो का त्याग कर श्रमण सघ का निर्माण किया, जैन इतिहास मे १५०० वर्ष के पश्चात् ऐसी अद्भुत क्राति हुई। जिसकी मुक्त कण्ठ से सभी ने प्रशसा की। सादडी के पश्चात् सोजत मे मन्त्रिमडल की बैठक हुई, जोधपुर मे सयुक्त वर्षावास हुआ, भीनासर मे वृहत्त साधु सम्मेलन हुआ और अजमेर मे पुन शिखर सम्मेलन हुआ। साडेराव मे राजस्थान प्रान्तीय सम्मेलन हुआ और उसके पश्चात् सन् १९८७ मे महामहिम राष्ट्रसत पूज्य आचार्य सम्राट श्री आनद ऋषिजी म के नेतृत्व मे पूना मे वृहत् साधु सम्मेलन हुआ। इस साधु सम्मेलन की महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि सभी प्रस्ताव जो पारित हुए, वे सर्वानुमति से हुए। वर्षों से जो समस्याएँ उलझी हुई थी, उन समस्याओ का भी वहाँ पर स्नेह और सौहार्द्र के साथ समाधान हुआ।

जितने भी सम्मेलन हुए। उन सभी सम्मेलनो मे कान्फ्रेन्स के अधिकारीगण दत्त-चित्त से सम्मेलन को सफल बनाने के लिए अहर्निश प्रयास करते रहे। पूना सत-सम्मेलन मे भी पूना तथा कान्फ्रेन्स का अपूर्व योगदान रहा, जिसके फलस्वरूप ही सम्मेलन पूर्ण सफल हुआ।

कान्फ्रेन्स का यह अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है, जिसने वर्षों तक सघ की सेवा की तथा समय-समय पर सघ के विकास के लिए विविध प्रकार की योजनाओ को मूर्त रूप दिया, उसी की फलश्रुति यह अमृत महोत्सव है।

मेरी हार्दिक मगल कामना है कि कान्फ्रेन्स के कर्मठ कार्यकर्तागण एक बनकर समाजोत्थान की दिशा मे निरतर आगे बढते रहे, वे समाज मे ऐसा सुमधुर वातावरण निर्मित करे, जिससे जन-जन के मन मे कान्फ्रेन्स के प्रति निष्ठा जागृत हो।

उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म.

सन्दर्भ-स्थल

१ नन्दी सूत्र
२ भगवती आराधना ७१४
३ सर्वार्थसिद्धि ६।१३। पृ ३३१
४ तत्वार्थवार्तिक ६।१३।३, प ५२३
५ भगवती आराधान विजयोदया टीका गाथा ४९३, पृ ७१६
६ (क) प्रवचन सार तात्पर्यवृत्ति २४९
(ख) भावपाहुड टीका ७८
७ भगवती आराधना विजयोदया टीका ५१०, पृ ७३०
८ वही ७१३

शुभेच्छा

मुझे यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि स्थानकवासी कान्फ्रेन्स अपने ८२ यशस्वी वसन्त पारकर ८३ वे वसन्त मे प्रवेश करने के सुनहरे अवसर पर अमृत महोत्सव का आयोजन किया जा रहा है। कान्फ्रेन्स ने समाजोत्थान के अत्यधिक कार्य किए है और भविष्य मे वह रचनात्मक कार्य की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त हो, यही मेरी हार्दिक मगल कामना है।

युवाचार्य श्री शिवमुनिजी म

मंगल कामना

स्थानकवासी जैन समाज एक महान् क्रातिकारी समाज रहा है। इस समाज के आद्य नायको का जीवन्त उत्कृष्ट आचार से मडित रहा। आगम साहित्य का गभीर मथन कर उन्होने आचार सहिता का निर्माण किया और आचार की पवित्रता पर ही उनके विमल विचारो का महल आधृत था, यही कारण है कि उन आद्य प्रवृर्तको को क्रियोद्धारक की अभिधा प्रदान की गई।

सूर्य के प्रकाश की तरह यह स्पष्ट है कि जैन धर्म अनादि है। जहाँ आधुनिक इतिहासवेत्ताओ की पहुँच नही है, उस प्रागैतिहासिक काल मे तीर्थंकर ऋषभदेव हुए, जिनकी महिमा और गरिमा जैन, बौद्ध और वैदिक मनीषियो ने एक स्वर से गाई है। वे ही जैन धर्म के प्रस्तुत अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर थे। उनके पश्चात् अजित,सभव आदि २३ तीर्थंकर हुए। श्रमण भगवान् महावीर २४वे तीर्थंकर थे। उनके तप पूत जीवन के सबध मे त्रिपीटक साहित्य मे भी यत्र-तत्र उल्लेख है। भगवान् महावीर ने साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका-इन चार तीर्थो की स्थापना की। एक सुव्यवस्थित आचार सहिता का भी निर्माण किया। जैन मुनियो की उत्कृष्ट आचार सहिता को निहारकर पाश्चात्य मनीषी भी दातो तले अँगुली दबाने लगे, जैन शासन महावीर युग मे खूब फलता रहा, फूलता रहा, उसके पश्चात् किन्ही कारणो से सघ मे भेद हुआ और सघ श्वेताम्बरो और दिगम्बरो के रूप मे विभक्त हो गया। दुष्काल की काली छाया ने उनमे भी अनेक भेद-अभेद कर दिए। जब आचार शैथिल्य धीरे-धीरे पनपने लगा, तब क्रातिकारी महापुरुषो ने क्राति कर समाज को एक नई दिशा प्रदान की। इससे यह स्पष्ट है कि स्थानकवासी जैनधर्म नया धर्म नही है, अपितु तीर्थंकरो के द्वारा स्थापित धर्म ही है। जो धर्मरूपी तालाब मे आचार शैथिल्य की काई आई थी उसे अलग करने का कार्य क्रियोद्धारक महापुरुषो ने किया।

स्थानकवासी समाज के प्रमुख चार क्रियोद्धारक हुए—जीवराजजी महाराज, लवजी ऋषिजी म, धर्मसिहजी म और धर्मदासजी म। इन्ही चार महापुरुषो से ३३ विभिन्न सम्प्रदाय हो गए। काल-दोष से ३३ सम्प्रदायो मे भी जिस प्रकार स्नेह और सौहार्द्र चाहिए था, वह जब नही रहा, तब स्थानकवासी समाज के परम हितैषी, श्रद्धालु, श्रावको के मन मे एक विचार समुत्पन्न हुआ कि यदि यही स्थिति रही तो हमारा भविष्य अन्धकारमय हो जाएगा। हमे समय के पूर्व जागृत होकर एक होना चाहिए, तभी हमारी गरिमा अक्षुण्ण रह सकेगी। उन हित चिन्तको ने सभी सम्प्रदायो के आचार्य और प्रमुख मुनिवरो को नम्र निवेदन किया कि आप पहले प्रातीय सम्मेलन करे और उस सम्मेलन मे भविष्य के सबध मे

चिन्तन करे कि हमारा विकास कैसे हो सकेगा? और फिर स्थानकवासी जैन समाज का वृहद् साधु सम्मेलन हो। उस सम्मेलन मे सम्पूर्ण समाज एक बनकर जिन शासन की विजय वैजयन्ती फहरावे। यह बात कुछ चिन्तक श्रमणो के मन मे भी उद्‌बुद्ध हो रही थी, परन्तु उस अनुभूति को अभिव्यक्ति देने का श्रेय स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स को है। कान्फ्रेन्स के कर्मठ कार्यकर्ता धुन के धनी थे। मानापमान की चिन्ता किए बिना वे एकजुट होकर इस भगीरथ कार्य मे लग गए। जब निर्मल भावना के साथ कार्य किया जाता है तो सफलतादेवी अवश्य ही चरण चूमती है। कान्फ्रेन्स के प्रयत्न से मरूधर मुनियो का प्रान्तीय सम्मेलन सर्वप्रथम पाली मे प्रागण मे हुआ, जिसमे अनेक सम्प्रदाय के प्रमुख मुनि एकत्र हुए। मैने भी स्वयसेवक बनकर उस सम्मेलन मे कार्य किया। उसके पश्चात् अजमेर मे वृहद् साधु-सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन मे स्थानकवासी समाज का सम्पूर्ण नवनीत एकत्र हुआ। ओजस्वी, तेजस्वी, तपस्वी और वर्चस्वी महापुरुषो के दर्शन कर उनकी विचार चर्चा को सुनकर मै मत्र-मुग्ध हो गया। वे बडी अनूठी और अद्‌भुत शक्तियाँ थी। इस सम्मेलन को सफल बनाने के लिए दुर्लभजी भाई जौहरी जैसी समर्पित आत्माएँ थी। कान्फ्रेन्स का अथक प्रयास नही होता तो यह सम्मेलन कदापि नही हो सकता था। इस सम्मेलन की अपनी महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। अनेक गुरु गभीर समस्याओ का सही समाधान इस सम्मेलन मे हुआ, पर जो स्वप्न कान्फ्रेन्स के अधिकारियो ने सजोया था, वह नही हो सका।

कान्फ्रेन्स के अधिकारीगण निराशावादी नही थे। उनका अथक प्रयत्न उस सम्मेलन के पश्चात् भी निरन्तर चलता रहा। परिणामस्वरूप सादडी मे वृहद् साधु सम्मेलन हुआ। सादडी मे जितने भी सम्प्रदायो के प्रतिनिधि पहुँचे। उन सभी ने अपनी-अपनी सम्प्रदायो का विलीनीकरण कर श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ की सस्थापना की और इस सघ के प्रथम आचार्य आत्मारामजी म बने।

श्रमण सघ ने समय-समय पर सोजत, भीनासर और पुन अजमेर मे सम्मेलन किए। इन सम्मेलनो मे भी कान्फ्रेन्स के अधिकारियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अजमेर शिखर सम्मेलन मे द्वितीय आचार्य आनन्द ऋषिजी म बने और उसके पश्चात् पुण्य भूमि पूना मे सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन मे आचार्य सम्राट ने अपना उत्तराधिकारी देवेन्द्र मुनि को चुना और उन्हे उपाचार्य पद दिया गया और डॉ शिवमुनिजी को युवाचार्य पद प्रदान किया। पूना सन्त सम्मेलन को करवाने के लिए कान्फ्रेन्स के कर्मठ कार्यकर्तागण दीर्घकाल तक प्रयत्न करते रहे और पूना के श्रद्धालु अधिकारीगण भी पीछे नही रहे।

मुझे यह लिखते हुए हर्ष है कि कान्फ्रेन्स स्थानकवासी जैन समाज की एक जीवित सस्था है। यह सस्था स्थानकवासी समाज की एकता के लिए सदा प्रयत्नशील रही है। आज भी उसके कार्यकर्ता एव अधिकारीगण यह आशा लगाए हुए है कि स्थानकवासी ममाज की पूर्ण एकता हो। श्रमण सघ के अतिरिक्त जो विभिन्न गच्छ है, वे भी 'एक बनकर नेक बनकर' एक आचार्य के नेतृत्व मे अनुशासित रहकर अपना आध्यात्मिक समुत्कर्ष करे।

जो आलोचक यह प्रचार कर रहे हैं कि कान्फ्रेन्स निष्क्रिय सस्था है, उस सस्था मे अब प्राण नही है। इस प्रकार निराशावाद फैलाकर जनमानस को गुमराह करने का जो प्रयास हो रहा है, उसके पीछे विशुद्ध भावना न होकर रागद्वेष से सनी हुई विकृत भावना है, वह उचित नही। कान्फ्रेन्स किसी व्यक्ति विशेष का नाम नही है। यह तो स्थानकवासी समाज का नेतृत्व करने वाले विशुद्ध सगठन का नाम है, जबकि व्यक्ति कदाचित् बुरा हो सकता है, उसमे कमियाँ हो सकती है, किन्तु सस्था का स्थान तो सर्वोपरि है। उसकी महिमा और गरिमा को अक्षुण्ण रखने के लिए सभी चिन्तको का सहयोग अपेक्षित होता है।

मैं अमृत-महोत्सव के सुनहरे अवसर पर यह मगल कामना करता हूँ कि सघ के प्रति पूर्ण समर्पित होकर चतुर्विध सघ का आध्यात्मिक, धार्मिक और सामाजिक सतत् समुत्थान होता रहे, ज्ञान-ध्यान की निर्मल ज्योति सदा जगमगाती रहे। ऐसा प्रतिपल, प्रतिक्षण प्रयास होना चाहिए।

उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी म.

शुभेच्छा

अखिल भारतीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेन्स स्थानकवासी समाज की एक ऐसी गौरवशाली सस्था रही है, जिसके इतिहास को स्था जैन समाज के इतिहास से अलग नही किया जा सकता। कान्फ्रेन्स ने पिछले पचास वर्षों मे सघ ऐक्य के जो श्रम किए, उनकी दमकती श्वेद कणियाँ माँ जैन भारती के अलकरण मे एक अलग ही दिव्यता के साथ शोभित है। जैन कान्फ्रेन्स ने समाज मे अनेक रचनात्मक कार्यक्रमो का सूत्रपात किया है, श्रमण वर्ग का एकीकरण भी उसकी विभिन्न प्रवृत्तियो के मध्य एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। आज जो श्रमण सघ उपलब्ध है, यह कान्फ्रेन्स की प्रवृत्ति का ही एक साकार रूप है। समग्र जैन समाज की एकता स्वधर्मी सेवा सत् साहित्य आदि प्रवृत्तियो के द्वारा स्था जैन कान्फ्रेन्स ने जैन समाज मे अपना एक गौरवशाली अध्याय जोडा है, जो सदा सर्वदा अविभाज्य रहेगा। स्था जैन कान्फ्रेन्स ने समाज को समय-समय पर कुछ ऐसे अखिल भारतीय श्रावक व्यक्तित्व प्रदान किए, जिन्होने समाज का समय-समय पर न केवल सफल नेतृत्व किया, अपितु उसे सफलता की तरफ बढाने मे भी अप्रतिम योगदान दिया। कान्फ्रेन्स श्रमण सस्कृति की एक परिचायक सस्था रही है। विश्व मे श्रमण सस्कृति एक ऐसी सस्कृति रही है,जो अहिसा की आधारभूत सस्कृति के रूप मे विश्व भर मे पहचानी जाती है। आज ऐसे समय मे, जब कि महाकाल (सामूहिक महाविनाश) के महान भय से सतप्त विश्व मे अपने आपको जीवित रखने के लिए अहिसा के महत्व को स्वीकारा है, ऐसे मे जैन कान्फ्रेन्स जैसी प्रतिनिधि सस्थाओ का यह दायित्व हो जाता है कि विश्व के बदलते परिवेश मे अहिंसा की पुन सस्थापना के लिए तत्परता के साथ सक्रिय हो और एक बार फिर विश्व को श्रमण सस्कृति का अमृतमय अहिंसा आसव पिलाकर उसे असीम जीवन्तता से ओत-प्रोत कर दे। कान्फ्रेन्स के ध्येय, लक्ष्य एव सयोजन महान है, वे सक्रिय, सफल एव सार्थक हो।

अमृत महोत्सव के अवसर पर निर्दोष साफल्य के लिए हार्दिक शुभेच्छा।

प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री अम्बालालजी म

अमृत महोत्सव पर

१ धर्म अहिंसा सयम तप के, अभ्यासी स्थानकवासी।
कान्फ्रेन्स शुभ कार्य करे स्थिर प्रेम एकता की प्यासी॥
२ बृहद् साधु सम्मेलन सुख से, किए समायोजित कई बार।
पावन एक समाचारी के—लिए प्रेम से खोले द्वार॥
३ अमृत महोत्सव लगे मनाने, दया धर्म मे फूँके प्राण।
ज्ञान ध्यान सम्मान गुणो का, जीव मात्र का हो कल्याण॥
४ मानवीय सस्था के प्रति हो, व्यक्ति-व्यक्ति मे श्रद्धाभाव।
शक्ति-सगठन मे होती है, होता सीमित व्यक्ति-प्रभाव॥
५ हम सब एक, हमारी सस्था, इसे न होने दे कमजोर।
प्राणो से जो सभाले हो—उसके हाथो इसकी डोर॥
६ इसका सुयश, सुयश हम सबका, वफादार हो हम सारे।
आगे आएँ इसे बढाएँ, रहे नही इससे न्यारे॥
७ श्रावक और श्राविकाएँ मुनि-सतियो से अनुरोध करे।
जो भी टुकडे करे उसी का, डटकर खुला विरोध करे॥
८ दुर्बलताएँ दूर करे हम, जागरुक बनकर जिएँ।
कही मिले विष पीने को भी, उसे प्रेमपूर्वक पिएँ॥
९ परम्पराएँ बदले लेकिन, बदले अपना धर्म नही।
किसी समय मे समाचर्य हो—सकता हमे अधर्म नही॥
१० बदलो, युग के साथ चलो पर, फटो न फिर दो फाँटो मे।
अपने अहकार के कारण, उलझ पडो मत काँटो मे॥
११ त्यागो पद-मद, हद मे रहकर, बनो विशद बेहद सुविनीत।
अमृत महोत्सव के अवसर पर, समझो निज कर्तव्य पुनीत॥
१२ "चन्दन मुनि" पजाबी के है, शब्द - सिधु मे बिन्दु समान।
ध्वनित समुदगारो पर केन्द्रित, करे आप हम अपना ध्यान॥

उपप्रवर्तक चन्दन मुनि (पजाबी)

शुभ-संदेश

जैन कान्फ्रेन्स के अमृत महोत्सव के प्रसग पर ग्रथ प्रकाशन की सूचना पाकर हर्ष हुआ।

श्रमण सघ के सगठन एव उसके सफल आयोजनो मे कान्फ्रेन्स का भागीरथ प्रयत्न रहा है। अत कान्फ्रेन्स को शक्तिशाली देखने की कामना रहना स्वाभाविक है।

श्रमण सघ की सदाचार के अनुसार श्रमण-श्रमणियो को रहने की ससूचना एव सविधान को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास आचार्य श्रीजी एव उपाचार्य श्रीजी के निर्देशानुसार कान्फ्रेन्स द्वारा ही हो सकता है।

कान्फ्रेन्स की सफलता की कामना सर्वहित मे है। इसकी सफलता एव मजबूती की कामना व्यक्त करता हूँ।

श्री रतनमुनिजी म

शुभ-कामना

विदित हुआ कि जैन समाज की मातृ सस्था जैन कान्फ्रेन्स अपना अमृत महोत्सव मना रही है तथा इस स्मृति को चिर स्थाई बनाने के हित मे एक स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है।

जैन कान्फ्रेन्स ने समाज के रचनात्मक सुधार एव गतिशील विकास के लिए समय-समय पर सम्मेलनो आदि के माध्यम से प्रशसनीय योगदान दिया है तथा वर्तमान मे भी यह मातृ सस्था समाज मे गुणात्मक सुधारो एव विकारो के उन्मूलन के साथ-साथ समाज एव धर्म के विकास हेतु सतत् प्रयत्नशील है, यह तथ्य सर्व विदित है।

जैन कान्फ्रेन्स समाज मे बिखराव एव टकराहट पैदा करने वाले तत्वो का साहस से सामना करते हुए निरन्तर अपने सुदायित्व का निर्वाह करती रहे, सतत् प्रगति एव दृढता को प्राप्त करती रहे-इस सुअवसर पर यही हार्दिक कामना है।

उदय मुनि 'जैन सिद्धांताचार्य"

जैन धर्म में संघीय साधना का सर्वोपरि महत्व

इस पृथ्वी पर मानव एक सर्वाधिक विकसित प्राणी है। वह चिन्तनशील है। चिन्तन के महासागर मे गहराई से डुबकी लगाकर जो उसने विचारो के मणिमुक्ता प्रदान किए है, वह अपूर्व है। उसने परिवार, समाज, राष्ट्र, धर्म, सस्कृति और सम्यता का विकास किया है। मानव विकास की लम्बी कहानी है। वह चाहे तो आत्मा से परमात्मा बन सकता है। नर से नारायण बन सकता है।

जैन धर्म मे जहाँ व्यक्तिगत साधना को महत्व दिया है, वहाँ सामूहिक साधना का महत्व उससे भी अधिक है। अहिसा-सत्य आदि व्रतो की साधना वैयक्तिक रूप से की जा सकती है, पर सघीय रूप मे सामूहिक साधना का अत्यधिक महत्व रहा है। अपरिग्रह, दया, करूणा-मैत्रीय आदि की साधना सघीय धरातल पर जितनी पल्लवित और पुष्पित होती है, उतनी वैयक्तिक नही? यही कारण है कि जैन परम्परा मे सघीय साधना का जितना विकास हुआ, उतना व्यक्तिगत साधना का नही हो सका। प्राचीन ग्रथ इस बात के साक्ष्य है कि जिनकल्पी मुनि व्यक्तिगत हित को ही सर्वोपरि मानता था, पर अन्त मे जिनकल्पी मुनि भी सघीय साधना को स्वीकार कर अपने साधना का चरमोत्कर्ष करता था। सघीय साधना मे अपना हित और अपने स्वार्थ को त्याग कर सामूहिक हित और साधना को महत्व देता है। वह परस्पर एक दूसरे के कार्य मे सहयोगी बनता है। एक दूसरे की पीडा मे सहयोगी बनकर उसके प्रतिकार के लिए प्रयास करता है। कभी जीवन मे अन्तर्द्वन्द्व हो जाए और स्वय उसका समाधान न कर सके, ऐसी स्थिति मे परस्पर का सहयोग ही सम्बल का कार्य करता है और अधेरे मे उसे प्रकाश मिलता है। पराभव के कठिन क्षणो मे वह विजय-वैजयन्ती फहराने के लिए वह अपने मुस्तैदी कदम आगे बढाता है। मामूहिक साधना की यह अपूर्व उपलब्धि है। दूसरो के सुख और हित के लिए अपने हित और सुख का उत्सर्ग करना सामूहिक साधना का सलक्ष्य है।

जीवन को उन्नत और समुन्नत बनाने के लिए सघ का विशिष्ट महत्व रहा है। जिसमे परस्पर स्नेह-सद्भावना-सहयोग-सेवा और समर्पण आदि सद्गुण विकसित होते है और सामाजिक भाव का उदय होता है। एक-दूसरे के अवलम्बन और प्रेरणा से सघीय साधना विकसित होती है। व्यक्ति महान् है पर सघ उससे भी महान् है। व्यक्ति से समाज बडा है। जैसे समाज और राजनीति मे समूह का महत्व है, तो अध्यात्म मे भी समूह के महत्व को कम स्थान नही है। यदि सघ और समाज नही है तो ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धि का महत्व भी नही है। जैन साहित्य के प्राचीन पन्ने इस बात की गवाही देते है कि तीर्थंकर भी जब

समवशरण मे विराजते हैं, तब वे 'नमोतित्थस्स' कहकर तीर्थ को नमस्कार करते है। चाहे हम तीर्थ कहे, चाहे हम सघ कहे एक ही बात है। जो तीर्थंकर हैं, जिन्होने साधना के सर्वोच्च शिखर का सस्पर्श कर लिया है, वे भी सघ को कितना महत्व देते हैं। आचार्य देववाचक ने नन्दीसूत्र मे प्रारभ मे तीन गाथाओ के द्वारा श्रमण भगवान महावीर की वन्दना की और चौदह गाथाओ के द्वारा सघ की वन्दना की है। अनेक रूपको के द्वारा सघ को अभिनन्दित किया है। सघ साधक का बहुत बडा आलम्बन है, इसीलिए आचार्य के हृततन्त्री के तार झकृत हुए हैं—"कल्याण हो सघ का, नमस्कार हो सघ को, यह एक सुन्दर रथ है, जिस पर शील की पताका लहलहा रही है। जिस रथ मे दो घोडे जुते हुए हैं-एक तपस्या का और एक नियम का। इन्द्रिय सयम, मन सयम यही नियम है। नन्दी घोष हो रहा है-आनन्द और मगल प्रदान करने वाले वाद्य बजा रहे हैं।"

अपने आप मे सघ गौरवशाली है। जब तक मछली पानी मे रहती है, उसे कोई खतरा नही होता। पानी से बाहर निकलने पर वह छटपटाकर मर जाती है। मछली बिना पानी के जी नही सकती। पावर हाऊस से कटकर कोई भी बल्ब प्रकाश नही कर सकता। शरीर से पृथक् होकर अवयव अपनी कार्यक्षमता नही रख पाता। सघ से ही शक्ति का सचार होता है। सघ का सदस्य अपनी क्षमता के अनुसार सघ से शक्ति प्राप्त करता है।

कुछ व्यक्तियो का एक साथ रहना सघ नही है, सघ की अपनी एक निश्चित आचार-सहिता होती है। आज सभी व्यक्ति उस आचार-सहिता के प्रति समर्पित होते है। तप, सयम और नियम से आबद्ध होकर सघ विकास की ओर बढता है। स्थानकवासी समाज मे जब विभिन्न सम्प्रदाएँ थी, सभी सम्प्रदाएँ अपनी-अपनी राग अलाप रही थी, तब कान्फ्रेन्स के प्रमुख कार्यकर्ताओ ने जी-जान से यह प्रयास किया कि स्थानकवासी समाज एक बने। उनके प्रबल प्रयास से ही समय-समय पर सम्मेलन हुए और श्रमण सघ उनके प्रयास का ही सुफल है। इसीलिए कान्फ्रेन्स को मातृ सस्था कहा गया है। उसका अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है और उस उपलक्ष्य मे ग्रथ प्रकाशित हो रहा है, यह आल्हाद का विषय है।

महासती पुष्पवती गजेन्द्रगढ (कर्नाटक)

कान्फ्रेन्स रचनात्मक कार्य करे

व्यक्ति और समाज मे परस्पर अन्योन्याश्रित सबध है। वे एक दूसरे के पूरक है। व्यक्ति की सर्वतन्त्र स्वतत्र महत्ता है, तो समाज की महत्ता उससे भी अधिक है, क्योकि व्यक्तियो का समूह ही समाज के रूप मे विश्रुत है।

स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स स्थानकवासी समाज की एक प्रतिनिधि सस्था है, जिस सस्था ने स्थानकवासी समाज के समुत्कर्ष हेतु समय-समय पर प्रबल प्रयास किए है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि कान्फ्रेन्स अपने जीवन के ८२ वसन्त पार कर ८३वे वसन्त मे प्रवेश कर रही है। उस मगल बेला मे अहिल्यादेवी की नगरी इदौर मे अधिवेशन और अमृत महोत्सव होने जा रहा है। यह अधिवेशन समाज और सघ मे अभिनव जागृति जाएगा। मेरी यह मगल मशा है कि धर्म ध्यान की अधिकाधिक अभिवृद्धि हो, सामाजिक कार्यक्रमो के साथ धार्मिक साधनामय जीवन की दिशा मे कान्फ्रेन्स रचनात्मक कार्य की ऐसी योजना प्रस्तुत करे, जिससे समाज को नई दिशा मिले।

इस सस्था को महामहिम राष्ट्र सन्त आचार्य सम्राट का मगलमय आशीर्वाद प्राप्त है और मेरी सद्गुरुणी श्री वल्लभ कुँवरजी म ने भी इस सस्था को मातृ सस्था कहा। मै यही शुभभावना करती हूँ कि यह अमृत-वर्ष सभी के लिए स्नेह, सद्भावना का अमृत प्रदान करे।

महासती कीर्ति सुधाजी

गौरवमयी कान्फ्रेन्स

सचालाल बाफना, अध्यक्ष, कान्फ्रेन्स

माँ के समान इस ससार मे कोई पवित्र नही है। माँ सबसे अधिक पूजनीय है, क्योकि वह सन्तान का पालन-पोषण करती है। उसका सवर्धन करती है। स्वय कष्ट सहन कर एक उज्ज्वल-समुज्ज्वल आदर्श उपस्थित करती है, इसलिए माँ की महिमा मे भारतीय चिन्तको की स्वर लहरियाँ झकृत हुई है। कान्फ्रेन्स स्थानकवासी समाज की माँ है। इस माता ने समाज के सवर्धन हेतु सदा प्रयत्न किया है। इस माँ ने समाज को ममता, स्नेह और सद्‌भावना प्रदान की है।

स्थानकवासी कान्फ्रेन्स का जन्म ऐसे युग मे हुआ था, जब देश परतन्त्रता की बेडियो से मुक्त होने के लिए कटिबद्ध था। विदेशी शासको ने सन् १९०५ मे बगाल को विभाजित कर भारत की राष्ट्रीय भावना को कुचलने का प्रयास किया। सम्पूर्ण देशवासी इस अन्याय को नष्ट करने के लिए एक मत से जूझने को तैयार हो गए। उनके अहिंसक आन्दोलन ने बग-भग करने की योजना को स्थगित करने को मजबूर कर दिया, तब समाज के हितैषी मनीषियो के मन मे भी ये विचार लहरियाँ उद्‌बुद्ध हुई कि आन्दोलन मे अपूर्व शक्ति है, जिससे हिंसक सरकार भी नत हो गई है तो हमारे समाज के कर्णधार सन्त-रत्न और श्रावक-समाज क्यो नही एक बनकर कार्य कर सकते है। सघ-सगठन मे अपूर्व शक्ति रही है। हमे उस शक्ति को एकत्र कर निर्माण की दिशा मे आगे बढना है। फलस्वरूप १९०६ मे सौराष्ट्र के मौरवी नगर मे कान्फ्रेन्स का प्रथम अधिवेशन हुआ।

स्थानकवासी समाज का इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि इस समाज के कर्णधार सन्त सदा क्रान्तिकारी रहे है। जब समाज मे आचार शैथिल्य चरम सीमा पर पहुँच गया था, तब वीर लोकाशाह ने क्रान्ति का बिगुल बजाया था। लोकाशाह पहले गृहस्थ ही थे। उन्होने गृहस्थाश्रम मे ही विचारो की क्रान्ति से समाज को झकझोर दिया था। वैसे ही आज से ८२ वर्ष पूर्व कान्फ्रेन्स के अधिकारियो ने समाज की प्रगति हेतु उस अधिवेशन मे चिन्तन की सामग्री प्रस्तुत की। मौरवी के पश्चात् प्रति वर्ष १९१३ तक अधिवेशन होते रहे। उन अधिवेशनो मे समाज हित के सम्बन्ध मे खुलकर विचार-चर्चाएँ होती रही। सन् १९१४ से १९२४ तक कोई अधिवेशन नही हुआ। यह समय विचारो के पाचन का समय रहा। जैसे गाय खाने के पश्चात् जुगाली करती है, वैसे ही कर्णधार पूर्व अधिवेशनो मे स्वीकृति निर्णयो पर गहराई से चिन्तन-मनन करते रहे। यह वह समय था, जब प्रथम विश्व युद्ध हुआ था, जिसके प्रबल प्रभाव से सर्वत्र चिन्तनीय और गभीर स्थिति रही थी।

सन् १९२५ मे मलकापुर मे पुन अधिवेशन हुआ और सन् १९२६ मे बम्बई में अधिवेशन हुआ और सन् १९२७ मे बीकानेर मे अधिवेशन हुआ। उस अधिवेशन की अध्यक्षता महान् क्रान्तिकारी विचारो के धनी श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह ने की थी। श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह महान् क्रान्तिकारी व्यक्ति थे। वे आमूल-चूल क्रान्ति के पक्षधर थे। उन्होने सम्प्रदायवाद को समाप्त कर सभी स्थानकवासी मुनि एक बने, यह स्वर बुलन्द किया। परिणामस्वरूप कान्फ्रेन्स के अधिकारियो के अथक प्रयास से १९३३ मे कान्फ्रेन्स के अधिवेशन के साथ ही स्थानकवासी समाज के मुनियो का सम्मेलन भी अजमेर मे आयोजित हुआ। यह सम्मेलन निर्माण की दिशा मे नीव की ईंट के रूप मे कहा जा सकता है। जितने भी सामाजिक प्रश्न थे, उन प्रश्नो के समाधान का प्रयास कान्फ्रेन्स का रहा। सन् १९४१ से १९४९ तक विविध प्रयास हुए और सन् १९५२ मे सादडी सन्त सम्मेलन का भव्य आयोजन हुआ। कान्फ्रेन्स के प्रबल प्रयास से श्रमण सघ का निर्माण हुआ। श्री वाडीलाल भाई ने जो कल्पना सन् १९२७ मे रखी थी, उस कल्पना को मूर्त्त रूप सादडी सन्त सम्मेलन मे मिला। कान्फ्रेन्स की तो यह भावना थी कि सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज के सन्त एकत्र हो, पर सादडी मे महागुजरात के सन्तगण नही पधारे, शेष सभी सन्तो के प्रतिनिधि पधारे और उन्होने एक सगठन कर सभी जैन समाज के सामने एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया। सभी ने श्रमण सघ की मुक्त कठ से प्रशसा की।

सन् १९५६ मे भीनासर मे सन्त-सम्मेलन के साथ ही कान्फ्रेन्स का अधिवेशन हुआ। उस अधिवेशन मे श्रमण और श्रमणियो के सम्बन्ध मे गहराई से चिन्तन हुआ और समाज की प्रगति हो सके, इस पर भी चिन्तन हुआ। कान्फ्रेन्स समाज की प्रगति के लिए सतत् प्रयास कर रही थी। यह सत्य है कि प्रगति की गति धीमी थी, पर धीमी गति पर भी सभी को सन्तोष इसलिए था कि सभी को यह लग रहा था कि हमने कुछ पाया है।

सन् १९५९ मे श्रमण सघ के स्व आचार्य श्री आत्मारामजी म और स्व उपाचार्य गणेशीलाल जी म मे मतभेद की स्थिति उत्पन्न हुई और गणेशीलाल जी म श्रमणसघ से पृथक् हो गए। गणेशीलाल म के शिष्य पूज्य नानालाजी म ने पूर्व सम्प्रदाय को पुनर्जीवित किया और वे उस सम्प्रदाय के आचार्य बन गए। उसके पश्चात् आचार्य हस्तीमलजी म और प्रवर्त्तक श्री पन्नालालजी म श्रमण सघ से अलग होकर अपनी पूर्व सम्प्रदाय मे चले गए। कान्फ्रेन्स ने अत्यधिक प्रयत्न किया कि पूर्व सम्प्रदायो को पुनर्जीवित न करे तथा श्रावक श्राविकाओ का पृथक सगठन न करे, पर प्रयत्न करने पर भी यह सब कुछ हुआ है यह कटु सत्य है। कान्फ्रेन्स महागुजरात मे विचरने वाले साधु-सतियो को श्रमण सघ मे मिलाना चाहती थी, पर कुछ मतभेदो के कारण जब ये सन्त सघ से पृथक् होकर अपनी सम्प्रदाय को पुनर्जीवित कर ली तो एक कठिन समस्या समुपस्थित हो गई।

कान्फ्रेन्स सदा सगठन की पक्षधर रही, उसे विघटन प्रिय नही। इसलिए विघटनकारी शक्तियो को पुन श्रमण सघ मे मिलाने के लिए अथक प्रयास किया। जो सन्त सघ से पृथक्

होकर वे भी यदि एक बनकर कार्य करते तो श्रेयस्कर था, पर सभी ने सम्प्रदायों को पुनर्जीवित कर प्रगति मे बाधा उपस्थित की और उसका असर कान्फ्रेन्स पर भी गिरा। कान्फ्रेन्स के जो पुराने कार्यकर्ता थे, वे भी अपने सद्गुरुओ के साथ अपनी सम्प्रदाय के सगठन को सुदृढ करने मे लग गए, जबकि मातृ-सस्था को और सगठन को मजबूत बनाने मे उन्हे योगदान देना था।

कान्फ्रेन्स का मुख्य केन्द्र भारत की राजधानी देहली मे पहुँच गया, तब बम्बई शाखा के हमारे मित्र भी केन्द्र को जिस प्रकार सहयोग देना चाहिए नही दे पाए। बम्बई शाखा का अपने आप मे बहुत बडा महत्व है, किन्तु उन मित्रो की उदासीनता ने भी कान्फ्रेन्स के विकास मे सहयोग प्रदान नही किया। उदासीनता के सम्बन्ध मे यहाँ विश्लेषण नही करना चाहता, पर यह सत्य है कि पृथकतावादी वृत्ति के कारण विकास मे बाधा अवश्य उत्पन्न हुई। यदि एक स्थान पर बैठकर उस सम्बन्ध मे प्रयास होता तो अधिक लाभप्रद था। साथ ही ऐसे कुछ कारण उपस्थित हुए, जिससे लम्बे समय तक कान्फ्रेन्स के प्रति जन-मानस मे उदासीनता उत्पन्न हुई, पर कान्फ्रेन्स के कर्मठ कार्यकर्ताओ के अथक प्रयास से पुन नवजीवन का सचार हुआ। यह आह्लाद का विषय है।

कान्फ्रेन्स हमारी मातृ-सस्था है। मैं स्थानकवासी समाज के प्रबुद्ध कार्यकर्ताओ से यह निवेदन करना चाहूँगा कि कान्फ्रेन्स को अधिक से अधिक मजबूत बनावे। कान्फ्रेन्स की प्रतिष्ठा आपकी प्रतिष्ठा है। आप कान्फ्रेन्स को अपना और अपने को कान्फ्रेन्स का प्रतिनिधि माने तो मुझे पूर्ण आत्मविश्वास है कि श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ तथा श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ एक अखड और अक्षुण्ण होकर रहेगा। कान्फ्रेन्स समाज की रीढ है। उसने ८२ वर्ष मे अनेक प्रकार की सेवा की है, चतुर्विध सघ को सुदृढ और समृद्ध बनाने का प्रबल प्रयास किया है। जो महानुभाव यह समझते है कि कान्फ्रेन्स ने कुछ भी कार्य नही किया यह मुर्दा सस्था है, ऐसा सोचना ही उनके मतिभ्रम का परिचायक है। कान्फ्रेन्स ने सन् १९१३ मे जैन प्रकाश' को प्रकाशित करने का कार्य हाथ मे लिया। तब से वह निरन्तर प्रकाशित हो रहा है। रतलाम मे श्रीमान वर्धमानजी पीतलिया के नेतृत्व मे जैन ट्रेनिंग कॉलेज की स्थापना हुई, जैन विद्यार्थी गृह की स्थापना श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह के नेतृत्व मे हुई, जैन ज्ञानोदय एन्ड एज्यूकेशनल सोसायटी की स्थापना राजकोट मे हुई, पूना मे कॉलेज छात्रो के लिए जैन बोर्डिंग की स्थापना हुई, महावीर एज्यूकेशनल सोसायटी बम्बई मे श्री चिमनलाल चक्कूभाई शाह के नेतृत्व मे हुई, रत्न चिन्तामणि जैन पाठशाला, घाटकोपर बम्बई मे स्थापित हुई तथा श्राविकाश्रम भी। बीकानेर मे जैन ट्रेनिंग कॉलेज तथा जैन पारमार्थिक सस्था का निर्माण भी किया गया। कई उद्योग शालाएँ तथा जैन गुरुकुल, ब्यावर और बगडी मे स्थापित किये। शतावधानी श्री रत्नचन्दजी म द्वारा अर्धमागधी कोश, जो सात भागो मे है, उनमे से ५ भाग कान्फ्रेन्स ने प्रकाशित किए। जैन पाठावली का प्रकाशन किया। भगवान महावीर का अन्तिम उपदेश, उत्तराध्ययन सूत्र,

दशवैकालिक सूत्रकृताग, आचाराग के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किए, जैन धर्म वर्धमान महावीर डेमोक्रोसीन एन्ड जैनइज्म आदि ग्रन्थो का प्रकाशन भी किया। सामाजिक क्षेत्र मे स्त्री-सहायता फड, विधवा फड, स्वधर्मी सहायता फड स्कालरशिप आदि प्रदान की जाती रही है। समय-समय पर जैन धर्म पर जो आक्षेप आये गए, उनके निवारण हेतु भी उसका प्रयास प्रशसनीय रहा। वीर बाल प्रवृत्ति, सराग जाति, मीना जाति, हरिजनोद्धार आदि के कार्य भी किए गए। पाकिस्तान बनने पर हजारो जैन परिवारो को सुरक्षित स्थानो पर लाने का भगीरथ कार्य भी किया। गौ-सेवा, अकाल एवं बाढ पीडितो को सहयोग किया।

श्रमण सगठन के निर्माण मे और उसके विकास मे कान्फ्रेन्स ने जी-जान से प्रयत्न किया है। जितने भी सन्त सम्मेलन हुए, उन सारे सम्मेलनो को सफल बनाने मे कान्फ्रेन्स का अपूर्व योगदान रहा है। इसके अधिकारीगण पूर्ण समर्पित होकर सघ समुत्कर्ष हेतु सदा प्रयत्न करते रहे है। आज कान्फ्रेन्स के आजीवन सदस्य तीन हजार से भी अधिक है। हमारा यही प्रयास है कि अधिक से अधिक व्यक्ति इसके सदस्य बनकर अपनी निष्ठा व्यक्त करे।

अमृत महोत्सव के पावन प्रसग पर मै उन सभी अतीत के कार्यकर्ताओ के प्रति अपनी सद्‌भावनाएँ व्यक्त कर रहा हूँ, जिनके कठोर परिश्रम के कारण यह सस्था आज अपना अमृत महोत्सव मनाने के लिए प्रस्तुत है। हमारे आदरणीय पूज्य मुनिराजो का आशीर्वाद भी हमे सदा मिलता रहा है और भविष्य मे भी मिलता रहेगा। हम यह विश्वास दिलाते हैं कि इस सस्था को हम ऐसा रूप देना चाहते है कि जिससे समाज का विकास हो। हम एक बनकर आदर्श उपस्थित करे और जैन धर्म की विजय-पताका विश्व मे फहराए।

कान्फ्रेन्स का अमृत महोत्सव क्यों?

श्री फकीरचन्द मेहता, उपाध्यक्ष

जैन धर्म भारत का एक महान् धर्म है। जैन धर्म मे श्रमण और श्रमणियो का गौरवपूर्ण स्थान है। श्रावक वर्ग की उन पर अपार निष्ठा है। वह श्रद्धा के साथ श्रमणो के द्वारा प्रदत प्रवचन को श्रवण करता है और यथाशक्ति उस पर आचरण भी करता है। इसलिए वह श्रावक कहलाता है। श्रावक के लिए दूसरा शब्द "श्रमणोपासक" है। श्रमणो की उपासना करने वाला व्यक्ति श्रमणोपासक कहलाता है। श्रमण मे सद्‌गुणो का प्राधान्य होता है। सद्‌गुणो की प्रधानता के कारण ही श्रमण का पर्यायवाची शब्द साधु भी है। श्रमणो के सद्‌गुणो को ग्रहण कर अपने जीवन को सद्‌गुणो की ओर अग्रसर करने के कारण श्रावक श्रमणोपासक है। वह मन, वचन और काया से श्रमणो की मर्यादा के अनुसार सेवा-सुश्रुषा करता है। वह प्रतिपल प्रतिक्षण यह ध्यान रखता है कि श्रमण का आचार पूर्ण विशुद्ध रहे, इसलिये भगवान महावीर ने श्रावक के लिये 'श्रमणो के माता और पिता" यह विशेषण प्रदान किया है।

स्थानकवासी समाज मे श्रमणो का गौरव सदा से रहा है। श्रमणो का गौरव अक्षुण्ण बना रहे, उनकी महिमा और गरिमा दिन प्रतिदिन बढ़ती रहे, इस उदात्त भावना को लेकर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स का निर्माण हुआ। जब हम कान्फ्रेन्स के वरिष्ठ श्रावको का परिचय पढ़ते हैं तो हमारा सिर सहज ही उन्नत हो जाता है। क्या ये वे श्रावक,जिन्होंने अपने जीवन को समाजोत्थान के लिये खपाया, जिन्होने किंचित् भी मानापमान की परवाह किये बिना जी-जान से सच्चे माता-पिता बनकर समाज को एक बनाने के लिये प्रबल पुरुषार्थ किया। वामोशाह जैसे प्रबुद्ध चिन्तक ने समाज को आगाह किया कि हमे एकजुट होकर समाज मे पनप रही अनेकता को दूर करना है। फूट अच्छा होता है, वह शक्ति प्रदान करता है। पर फूट समाज को जर्जरित बनाता है, इसलिए फूट, लूट और माथाकूट से बचकर हमे प्रगति करनी है। यह मैं साधिकार कह सकता हूँ कि कान्फ्रेन्स के वरिष्ठ नेताओ ने समाज की प्रगति के लिये क्या नही किया है? समय-समय पर जो साधु सम्मेलन हुये, क्या कान्फ्रेन्स के वरिष्ठ अधिकारियो के प्रयास का ही सुफल नही है?

मैं जीवन के ऊषा काल से ही स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के प्रति निष्ठावान रहा हूँ और वर्षों से सक्रिय कार्यकर्ता भी हूँ। कान्फ्रेन्स का सदा विश्वास अपने आराध्य देव श्रमणो पर रहा है। इसलिये वह सदा प्रयत्नशील रही है कि हमारा श्रमण-वर्ग मर्यादाओ का दृढ़ता से पालन करता हुआ, अपने लक्ष्य की ओर बढ़े। आज सुधारवाद और प्रगतिवाद के नाम पर प्रचार को सलक्ष्य मे रखकर श्रमण और श्रमणियाँ भौतिकवाद के प्रभाव मे प्रवाहित हो रहे हैं। उनमे आचार शैथिल्य चरमोत्कर्ष तक पहुँच चुका है। मेरा कान्फ्रेन्स के एक अधिकारी होने के नाते यह सनम्र निवेदन है कि मर्यादा का अतिक्रमण न करे। जो अतिक्रमण कर रहे हैं, यदि वे आज नही सभले तो बाद मे उन्हे अत्यधिक पश्चाताप करना होगा। तर्क एक दुधारी तलवार है जो काटना जानती है, जोड़ना नही। धर्म मे बुद्धि की ही प्रधानता नही, अपितु हृदय की भी प्रधानता होती है। पण्णा समिक्खए धम्म की दुहाई देकर समाज को गुमराह करना बिल्कुल अनुचित है। हम उन प्रतिभा-पुरुषो से सनम्र प्रार्थना करते हैं कि आप अपनी बुद्धि का उपयोग समाज निर्माण के लिये करे।

मैं समाज के उन धनी-मानी, उत्साही महानुभवो से भी यह नम्र निवेदन करूँगा कि आप जोश मे होश को न भूले। आप मे शक्ति है, सामर्थ्य है, और आप समाज के लिये कुछ करने की भावना रखते हैं तो कान्फ्रेन्स के सहयोगी बनकर समाज-निर्माण के कार्य मे सहभागी बने। कान्फ्रेन्स आपकी अपनी मातृ-सस्था को सुदृढ़ बनाने का उत्तरदायित्व सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज के कार्यकर्ताओ पर है। आप समाज के अग हैं। दूर बैठकर और गलत लिखकर व बोलकर जनता-जनार्दन को भ्रमित करने का कार्य न करे। आपका कार्य निर्वाण की दिशा मे न हो, किन्तु निर्माण की दिशा मे हो। आलोचना करना बहुत ही सरल है, किन्तु कार्य

करना उतना ही कठिन है। आप आलोचना न कर कार्य करें, यह अपेक्षित है। आप आलोचना भी करें तो वास्तविक, सत्य-तथ्य पर आश्रित हो, राग-द्वेष से ग्रसित घटिया स्तर की आलोचना आलोचना ही है—उसमे वास्तविकता का अभाव होता है। कान्फ्रेन्स निष्क्रिय और मुर्दा सस्था नही है, उसमे आज भी कार्य करने की अद्भुत क्षमता है। इसलिये प्रस्तुत सस्था का अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है। इस महोत्सव का उद्देश्य है कि हमे अपने उज्ज्वल अतीत का अवलोकन कर वर्तमान को तेजस्वी बनाना है, जिससे कि हमारा भविष्य उज्ज्वल और समुज्ज्वल बने।

कान्फ्रेन्स की देन

श्री पुखराजमल लुकड, मत्री

मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज के साथ उसका गहरा सम्बन्ध है। पशुओ का समुदाय समज कहलाता है तो मानवो का समुदाय समाज कहलाता है। समज मे चिन्तन नही होता, क्योकि पशुओ मे मानवो की तरह बुद्धि का अभाव है, पर मानव बुद्धि की तीक्ष्णता के कारण प्रत्येक प्रश्न पर चिन्तन करता है और उसके तल तक पहुँचकर उसका समाधान भी करता है। मानव ने समाज का निर्माण कर परस्परोपग्रहो की भावना को मूर्त रूप दिया है।

जीवन के उष काल से ही मानव ने समाज का निर्माण किया और उसके विकास के लिए अहर्निश प्रयास भी किया। स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स का निर्माण भी उसी वृत्ति का परिचायक है। जब स्थानकवासी समाज के मूर्धन्य मनीषियो ने देखा कि समाज एकता के अभाव मे सही प्रगति नही कर रहा है, तब उन्होंने कान्फ्रेन्स की सस्थापना की। समय-समय पर अनेक विचारको ने यह चिन्तन किया कि किस प्रकार समाज का उत्थान हो सकता है। उन सब कारणो पर चिन्तन कर उन्होने सर्वप्रथम श्रमण समुदाय की एकता का प्रयास किया। अजमेर का वृहत साधु सम्मेलन उसकी प्रथम उपलब्धि थी जो एकता का बीज वहाँ वपन किया गया, उसका फल सादडी सन्त सम्मेलन मे श्रमण सघ के रूप मे प्राप्त हुआ।

कान्फ्रेन्स का यह प्रयास रहा है कि सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज एक आचार्य के नेतृत्व मे रहे, एक सदाचारी का पालन करे जिससे कि आने वाली पीढी पर गहरा असर हो। वे अपने आराध्य देवो को एक माला मे पिरोये हुए मोती के रूप मे देखेगे तो उनका श्रद्धा से सहज हृदय मे सिर नत हो जायगा। प्रयास करने पर भी अभी तक पूर्ण सफलता प्राप्त नही हुई है, पर हम आशावादी है, हमे पूर्ण विश्वास है कि श्रद्धा, भक्ति, स्नेह और सद्भावना के साथ किए गए प्रयास मे आज नही तो कल अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी। कान्फ्रेन्स के कार्यकर्ताओ के चिन्तन के कोश मे असम्भव शब्द नही है। हमे पूर्ण आत्म-विश्वास है कि एक दिन ऐसा अवश्य आवेगा जब कि सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज एक आचार्य के नेतृत्व मे अपनी प्रगति करेगा।

समाज के विकाम के लिए कान्फ्रेन्स सतत् प्रयास करती रही है। उसने बालको के विकास के लिए छात्रावास, विद्यालय, ट्रेनिंग कॉलिज आदि की स्थापना की। युवको के विकास के लिए छात्रवृत्ति, औद्योगिक केन्द्र, सस्थापित किए। समय-समय पर अकाल एव बाढ पीडितो को अधिक अनुदान प्रदान किया, साथ गौ-रक्षा का भगीरथ कार्य भी किया। निर्माण शताब्दी पर २५०० गाँवो को अभयदान प्रदान किया और ऐसे कार्य किए जिससे जैन धर्म की प्रबल प्रभावना हुई है।

आज भी कान्फ्रेन्स सामाजिक चेतना की दिशा मे कार्य कर रहा है, व समाज मे फैली हुई कुरीतियो को नष्ट करना चाहता है और चाहता है कि युवको मे धार्मिक जागृति पैदा हो। महिलाओ मे आत्म-विश्वास की भावना समुत्पन्न हो, उसका अपमान, अवमानना और तिरस्कार न हो, वे सद्गुणो के द्वारा मानव समाज को अभिनव दिशा प्रदान करे। प्रौढ व्यक्तियो मे भी धार्मिक चेतना जागृत हो। स्वाध्याय, ध्यान आदि जीवन निर्माणकारी प्रवृत्तियो का विकास हो।

यह सत्य है कि निर्माण के कार्य की गति धीमी अवश्य है, लेकिन पाँव रुके नही हैं, उस दिशा मे सदा अग्रसर बढने का प्रयास रहा है और वर्तमान मे भी वह प्रयास प्रारम्भ है। अमृत महोत्सव के पावन प्रसग पर मैं कान्फ्रेन्स के विनम्र सेवक होने के नाते

यह अपील करता हूँ कि आपकी यह मातृ संस्था है। इस संस्था के अधिक से अधिक सदस्य बनकर अपने विमल विचारो से सभी को लाभान्वित करे। गगा बह रही है, गगा का पानी ठडा है या मीठा है, इसकी दूर रहकर चर्चा करने से कोई लाभ नही। एक चुल्लूभर यदि पानी पी लिया जाय तो भी प्यास शान्त हो जायगी। समाजोत्थान का कार्य एक व्यक्ति विशेष का कार्य नहीं है। यह तो जगन्नाथ का रथ है जिसे खींचने के लिये हजारो हाथो की आवश्यकता होती है। आप सभी के मधुर सहयोग से ही कान्फ्रेन्स अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगी।

कान्फ्रेन्स सभी की

श्री अजितराज सुराना, मंत्री

अ भा श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस स्थानकवासी जैनो की एकमात्र प्रतिनिधि सस्था है। इस सस्था को स्थापित हुए ८२ वर्ष का दीर्घकाल हो चुका है। इस दीर्घकाल मे इस सस्था के द्वारा स्थानकवासी जैन समाज से सबधित अनेक धार्मिक, सामाजिक, समुत्कर्ष की प्रवृत्तियाँ प्रारभ की गई। इस सस्था ने श्रमण समशदाय, श्रावक सघ और सपूर्ण भारत मे फैले हुए स्थानकवासी जैनो को एक सूत्र मे आबद्ध करने का प्रबल पुरुषार्थ किया है, जिससे अनेक बातो मे एकरूपता दृष्टिगोचर होती है।

यह सत्य तथ्य है कि कितने ही प्रश्नो के सम्बन्ध मे विचार विभिन्नता दिखलाई देती है, तथापि यह सत्य है कि मौलिक सिद्धातो के सम्बन्ध मे किंचित मात्र भी विभिन्नता नही है। जब भी कान्फ्रेन्स ने किसी विषय पर जन-मानस का ध्यान केन्द्रित किया, तब उत्साह के साथ समाज का अपूर्व योगदान उसे प्राप्त हुआ।

जिनके अन्तर्मानस मे समाजहित की भव्य भावना लहलहा रही है, उन समाज हितैषियो ने कान्फ्रेन्स की आलोचना भी की है, पर कान्फ्रेन्स के कर्मठ कार्यकर्ताओ ने उनकी आलोचनाओ को ध्यान से सुना है। सभी की यही भावना है कि कान्फ्रेन्स अधिक जागरूक व सतेज बनकर कार्य करे। समाज हित की दृष्टि से जो आलोचना की जाती है, उसका हम हृदय से अभिनदन करते रहे हैं, पर जो आलोचना समाज हित की दृष्टि से नही की जाती, केवल विरोध करने की दृष्टि से ही की जाती है, उससे समाज का हित नही होता है।सभी को यह स्मरण रखना होगा कि कान्फ्रेन्स ही ऐसी सक्षम सस्था है, जो समाज का प्रतिनिधित्व करती है। यदि इस सस्था को कमजोर बनाने का प्रयास किया जायेगा तो समाज की बहुत बडी क्षति होगी। इसलिए सभी सहयोगी बनकर कार्य करे,जिससे सस्था अधिक प्राणवान और सबल हो सके।

कान्फ्रेन्स ने चिरकाल के प्रबल प्रयास के फलस्वरूप श्रमण सघ का निर्माण किया। इस निर्माण मे हमारे आदरणीय पूज्य मुनिवरो ने उपाधियो का परित्याग कर और सम्प्रदायो का विलीनीकरण कर एक श्रमण सघ बनाया। ५०० वर्ष के इतिहास मे ऐसा अपूर्व उदाहरण देखने को नही मिलता। कान्फ्रेन्स का सतत् यही प्रयास रहा कि श्रमण सघ अधिकाधिक सुदृढ बने। एक आचार्य के नेतृत्व मे ही शिष्य परम्परा हो। सभी आने वाले सन्त एक आचार्य के ही शिष्य हो, एक ही सदाचारी का सभी सन्त-सतीवृन्द पालन करे।श्रमण सघ के समुत्कर्ष हेतु समय-समय पर सम्मेलन हुए, उन सम्मेलनो मे कान्फ्रेन्स के कार्यकर्ताओ ने भाग लेकर एकता की भूमिका सुदृढ बनाने का सदा प्रयास किया है। श्रमण सघ को अधिकाधिक सदृढ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि श्रावक वर्ग को भी एक बनना होगा और भू पू सम्प्रदायवाद को प्रश्रयन देना होगा। जब तक भू पू सम्प्रदायवाद पूर्ण रूप से नष्ट नही होगा, तब तक हमारी कल्पना को मूर्त रूप नही मिल सकेगा।

मैं समाज के मूर्धन्य चिन्तको से यह नम्र निवेदन करना चाहूँगा कि वे कान्फ्रेन्स के प्रति अधिकाधिक निष्ठा जागृत करे और साथ ही कान्फ्रेन्स को जो-जो निर्माणकारी कार्य करने हैं,उनके लिए सही मार्ग दर्शन भी दे। कान्फ्रेन्स के कार्यकर्ता स्वय चाहते हैं कि समोजोत्थान के मगलमय कार्य आप सभी के मधुर सहयोग से सम्पन्न हो।

कान्फ्रेन्स व हमारा कर्तव्य

श्री शिरोमणिचन्द्र जैन

श्री अ भा श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स, दिल्ली अपने गौरवपूर्ण ८२ वर्ष पूर्ण कर अपना अमृत महोत्सव इदौर मे आगामी २३ अक्टूबर १९८८ को मना रहा है। यह परम् सौभाग्य का विषय है कि इदौर मे इस समय प्रात स्मरणीय उपाध्याय श्रीपुष्करमुनिजी महाराज, धर्मधुरधर उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि महाराज , वर्षावास हेतु विराज रहे है अत अमृत महोत्सव मे इनका सानिध्य होने से चार चाद लग जावेगे।

कान्फ्रेन्स का इतिहास बहुत पुराना है इसकी स्थापना व आगे की अब तक की प्रगति मे स्व श्रीआनन्दराजजी सुराना, दिल्ली व श्रीअचलसिंहजी जैन सदस्य विधानसभा का आगरा का बहुत बडा सक्रिय एव महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज जो कान्फ्रेन्स का स्वरूप है, इसका श्रेय इन दो व्यक्तियो को विशेष जाता है।

कान्फ्रेन्स ने सामाजिक व धार्मिक उत्थान मे कई समाज एव साधु सम्मेलन कराये हैं। जिससे समय-समय पर आने वाली चतुर्विध सघ की कठिनाईयाँ हल हुई हैं। कान्फ्रेन्स के पदाधिकारियो ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य हाथ मे लेकर उन्हे सफलता पूर्वक सपन्न किये और कर रहे है। किन्तु जो कुछ अब तक कार्य सम्पन्न हुए है उससे ही देश के समस्त भिन्न-भिन्न स्थानकवासी सम्प्रदाय मे स्थानकवासी समाज के चतुर्विध सघ की समस्या पूर्ण नही हो जाती। इनके उत्थान मे, समाज सुधार मे, उन्नति के अनेक मार्ग है और उनको सुलझाना, सुधारना बाकी है। यह कार्य निरतर अथक प्रयासो से हो सकेगा जिसमे कान्फ्रेन्स व प्रत्येक समाज के व्यक्ति को अपना योगदान देना पडेगा।

हमारी यह मनोवृत्ति रही है कि हम काम दूसरो पर छोड देना चाहते हैं और उनसे अपेक्षा करते हैं कि वे इस कार्य को करे और उनका ही यह कार्य सपादन करने का कर्तव्य है। हमारा कर्तव्य नही है। यदि वे सम्पन्न नही करते है तो उनकी निंदा आलोचना जो सबसे आसान कार्य है, हम करने लगते हैं, इस आदत को बदलना होगा, नही-नही समूल नष्ट करना होगा। हमने कान्फ्रेन्स मे पदाधिकारि चुने हैं वे जो अच्छा समझते है कर रहे हैं और जो तरीके उचित समझते हैं उनको अपनाते हैं। हम उसकी समीक्षा करते है—टीका-टिप्पणी भी करते है। हमारा इतना सा कर्तव्य नही है।

हम भी समाज के ही अग हैं। प्रत्येक व्यक्ति यदि कान्फ्रेन्स के भरोसे ही बैठा रहे व इसे कोसता रहे यह हमारी बडी भूल है। हमे भी क्रियात्मक सहयोग देना चाहिए। हमारी यह समस्या है कि कान्फ्रेन्स उन सबको, अकेली सम्हाल ही नही सकती, सबके ऊपर ध्यान पहुँचकर उन्हे सम्पन्न नही कर सकती। यहाँ हमारी बारी है, जो समस्याएँ हमे नजर आवे हम व्यक्तिगत या सामुहिक रूप से नम्र भाव से करे-उसमे कूद पडे। कान्फ्रेन्स को बतलावे—हम क्या कर रहे हैं—उनका सहयोग चाहिए तो उनसे माँगे।परिस्थितिवश सहयोग न मिले तो बगैर आलोचना निंदा किये हम हमारे बल पर कार्य करे, सम्पन्न करे और इस तरह हम भी सहयोग दे।

हमारा स्थानकवासी समाज किसी भी दृष्टि से कमजोर नही है। भारत मे एक सम्पन्न, धनवान, शिक्षित, बुद्धिमान समाज है। जिनके पास बडे-बडे व्यवसाय, कल-कारखाने और व्यापार है और सरकारी कामकाजो, केन्द्र के भिन्न-भिन्न राज्यो मे बडे-बडे पदो पर आसीन हैं। सबकी यह भावना है कि हमारा दायित्व क्या है? हमे क्या करना है किसी अशदान मे उसे पूरा करे तो समाज की कुरीतियाँ, दहेज युवको की बेरोजगारी, शिक्षा का कार्य, ग्रामो मे रहने वाले बालको की उच्च शिक्षा स्वास्थ, विधवाओ की सहायता बडे शहरो मे जैन बालको के लिए बोर्डिग, विद्यालय, विश्वविद्यालय महिलाओ के लिये काम, सब पूरे

हो सकते हैं। विदेशो मे बालक प्रारम्भ मे शिक्षा के ७-८ वर्ष मे ही दूसरे दस्तकारी सुतारी, बिजली मशीनो का काम साथ-साथ सीखकर पढाई के सपूर्ण होते ही कमाने भी लग जाते हैं। सरकार के भरोसे न रहकर ऐसी शिक्षा की व्यवस्था भी होना चाहिये—ये सारे काम कान्फ्रेन्स के भरोसे छोडना उचित नही होगा। हममे जिनको उत्साह, उमग है, जो निस्वार्थ भावना से काम करना चाहे, ऐसे सुयोग्य व्यक्ति जिनकी समाज मे कमी नहीं है, वे आगे आए और अपने बलबूते पर कार्य करे।

मेरा नम्र निवेदन है कि कान्फ्रेन्स को मजबूत बनाएँ सक्रिय सहयोग दे व सगठित करे। प्रत्येक व्यक्ति अपने को कान्फ्रेन्स का एक मेबर (सदस्य) समझे और निस्वार्थ भावना से अपनी-अपनी लगन के अनुसार किसी भी सुधार या उन्नति के मार्ग को अपनाए। अपने स्वय के बलबूते पर चलाये। काम की प्रगति को देखकर उनमे सेवा-भावी लोग पुरुष, महिलाएँ, युवक आपके साथ हो जावेगे।

हम कान्फ्रेन्स के है कान्फ्रेन्स हमारी है, यह भावना जागृत होना चाहिए। इसकी निताात आवश्यकता है।

चतुर्विध सघ मे साधु-साध्वी भी है, उनकी भी कई समस्याएँ हैं उसमे हमे जो साधु-साध्वी आचार्य आदेश दे उनका पालन करना हमारा कर्तव्य होगा। हमे जोडने का काम करना है—तोडने का नही हम विनम्रतापूर्वक उनसे निवेदन कर सकते हैं और उनका सद्परामर्श एव सहयोग लेना हमारे लिए निताात आवश्यक है एव महत्वपूर्ण है। वे हमारे गुरु है उनकी सेवा व भलाई मे हमारी भलाई है, यह नही भूले। समय-समय पर कान्फ्रेन्स के उद्देश्य व कार्यों को उनको जानकारी देना व उनसे विचार जानकर समय-काल-भाव के अनुसार उनके सद्परामर्श का लाभ लेना, हमारा परम् कर्तव्य होना चाहिये।

कान्फ्रेन्स के सामने अनेको जटिल प्रश्न हल करने के भी है। हमारी भी अनेको समस्याएँ है। इनको हल करने के लिए इतना लिखना काफी होगा कि इन सब भिन्न-भिन्न स्थानकवासी सम्प्रदाय मे सगठन होकर भेदभाव, मनमुटाव भुलाकर हमारी व हमारी सस्था की सर्वांग उन्नति मे जुट जावे व मिशनरी स्पिरिट से काम करे। इसी मे सबका भला होगा।

जिन और वीर

सचमुच भ महावीर का जीवन अनन्त शक्ति से ओतप्रोत है। उसका प्रयोग उन्होंने स्वय अपने पर किया और फिर सभी क्षेत्रो मे अनन्त शक्ति के द्वारा सत्य और अहिंसा के शाश्वत धर्म को सफल बनाया, जो काल को भी चुनौती देता है। इसलिए भ महावीर को 'जिन' और 'वीर' कहना सार्थक है। आज के लोक को उनके आदर्श की आवश्यकता है।।

डॉ फर्नेण्डो बेलिनी फिलीप्पी, इटली

निर्भयता की सीख

जैन धर्म मनुष्य को निर्भय होना सिखाता है और ऐसा कोई उदाहरण नही है कि किसी जैन ने युद्ध से पराङमुख होकर युद्ध-क्षेत्र छोडा हो या शत्रु के सामने पीठ फेरी हो।

—एलिजाबेथ फ्रेशर, सम हिस्टॉरिकल जैन किंग्स एण्ड हीरोज, प्रस्तावना

रचनात्मक जीवन मे क्रान्ति

महावीर स्वामी ने शब्दो मे ही नही, वरन् रचनात्मक जीवन मे एक महान आदोलन किया। वह आदोलन जो नवीन एव सम्पूर्ण जीवन मे सुख पाने के लिए नव आशा का स्रोत था, जिसे कि यह यहाँ धर्म कह रहे हैं।

—श्रीमती आइस डेविड्स, एम ए डी लिट्,

इन्दौर में कान्फ्रेन्स के अमृत महोत्सव के अवसर पर मुख्य अतिथि माननीय श्री अर्जुनसिंह जी, मुख्यमंत्री मध्य प्रदेश का अभिनन्दन करते हुए कान्फ्रेन्स अध्यक्ष श्री मन्नालाल जी बाफना। बाईं ओर सम्मान प्रतीक लिए खडे है श्री हीरालाल जी जैन कान्फ्रेन्स के महामंत्री
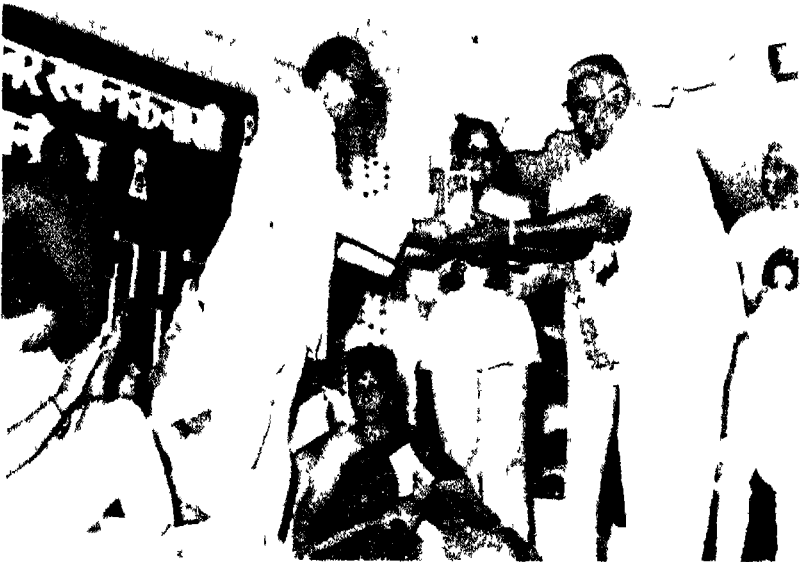
मुख्य अतिथि से सम्मान चिह्न ग्रहण करते हुए श्री नेमनाथ जी जैन, स्वागताध्यक्ष, अमृत महोत्सव

अमृत महोत्सव

इन्दौर २३ अक्टूबर १९८८

अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स सम्पूर्ण भारत के स्थानकवासी जैन समाज की प्रतिनिधि सस्था है, जो राष्ट्रीय स्तर पर समाज की धार्मिक एव सास्कृतिक गतिविधियो को चलाती है। अपने लम्बे कार्यकाल मे कान्फ्रेन्स ने समाज को सुदृढ बनाने और बिखरी हुई श्रमण शक्ति को एकत्रित करने के अतिरिक्त देश मे प्राकृतिक सकटो का मुकाबला करने के लिए जैन समाज की ओर से आर्थिक सहयोग देने जैसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम हाथ मे लिये हैं।

कान्फ्रेन्स अपने यशस्वी कार्यकाल के ८२ वर्ष पूरे कर चुकी है। किसी सस्था का इतने दीर्घकाल तक चलते रहना ही उसकी लोकप्रियता सिद्ध करता है। अमृत महोत्सव मनाने का विचार तो सन् १९८१ मे ही चल रहा था, जब अपने जीवन के ७५ वर्ष पूर्ण करने पर इसकी हीरक जयती भी मनायी जानी थी, परतु अनुकूल परिस्थितियो के अभाव मे यह सभव नही हो सका। अन्तत अप्रैल १९८८ मे सम्पन्न हुई साधारण सभा की बैठक मे निर्णय किया गया कि कान्फ्रेन्स का अमृत महोत्सव और १६ वाँ अधिवेशन तथा युवा व महिला सम्मेलन अक्टूबर १९८८ मे आयोजित किये जाएँ। इन्दौर श्रीसघ के आग्रह पर ये सभी समारोह इन्दौर मे रखने का निर्णय लिया गया।

कान्फ्रेन्स का अमृत महोत्सव रविवार दिनाक २३ अक्टूबर १९८८ को वैष्णव हायर सेकण्डरी स्कूल, राजमोहल्ला, इन्दौर मे बडी धूमधाम से मनाया गया। महोत्सव का उद्‌घाटन तथा अध्यक्षता मध्य प्रदेश के मुख्यमत्री माननीय श्री अर्जुनसिंह जी ने की। उत्सव मे श्रमण सघ के उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज तथा उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी महाराज अपनी शिष्यमडली के साथ और इन्दौर मे चातुर्मास हेतु उपस्थित साध्वीगण पधारे थे। माननीय अतिथिगण मे श्री अर्जुनसिंह, श्री राजेन्द्र शुक्ल (अध्यक्ष मध्य प्रदेश विधान सभा), सुश्री सरोज खापर्डे (स्वास्थ्य व कल्याण राज्यमत्री, भारत सरकार), श्री जवाहरलाल जी दरडा (स्वास्थ्य मत्री, महाराष्ट्र), एयर मार्शल पी के जैन श्री कन्हैयालाल यादव (डिप्टी स्पीकर, मध्य प्रदेश विधान सभा) के नाम उल्लेखनीय है। मच का सचालन श्री हस्तीमल जी झेलावत ने किया।

उत्सव का शुभारभ उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म द्वारा णमोकार मन्त्रोच्चारण और प्रवचन से हुआ। महाराज श्री जी ने इस अवसर पर सारे समाज को साधुवाद व आशीर्वाद देते हुए और कान्फ्रेन्स के अतीत के इतिहास को दोहराते हुए उसके योगदान की सराहना की और कहा कि कान्फ्रेन्स के माध्यम से अखिल भारतवर्षीय श्रमण सघ का निर्माण कश्मीर से कन्याकुमारी तक श्री वर्धमान श्रावक सघो की स्थापना, जैन कल्याणहित सस्थाओ की स्थापना स्वाध्याय एव भावी पीढी की उत्थान की दृष्टि से गुरुकुल आदि अनेक सराहनीय कार्य हुए है। उन्होने कान्फ्रेन्स को श्रमण सघ की जननी बताते हुए इसके प्रति पूर्ण निष्ठा और विश्वास व्यक्त किया और कहा कि इस कान्फ्रेन्स के माध्यम से समाज का भविष्य अति उज्ज्वल हुआ है और होगा, ऐसा मुझे विश्वास है। और सघ को प्रेरणा देते हुए शाकाहार का प्रचार-प्रसार, आचरण को बढावा देने के लिए आग्रह किया।

आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी म , उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म , युवाचार्य डॉ शिवमुनि जी म द्वारा भेजे गये आशीर्वाद और महामहिम राष्ट्रपति श्री आर वेकटरामन जी, उपराष्ट्रपति डॉ शकरदयाल जी शर्मा व माननीय प्रधानमत्री श्री राजीव गाँधी जी के शुभ सदेश पढ कर सुनाए गए।

मुख्यमत्री महोदय का उत्साहपूर्ण स्वागत किया गया। सर्वप्रथम महोत्सव के स्वागताध्यक्ष श्री नेमनाथ जैन ने स्वागत भाषण दिया। उन्होने माननीय अतिथियो का हार्दिक स्वागत करते हुए इदौर की ऐतिहासिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला।(श्री नेमनाथ जैन का भाषण आगे दिया जा रहा है।)तत्पश्चात् माननीय श्री अर्जुनसिंहजी ने महोत्सव का उद्‌घाटन

किया। अपने भाषण मे श्री अर्जुनसिंह ने धर्माचार्यो से अनुरोध किया कि वे धर्म के सही व पवित्र स्वरूप, उसकी विशालता और सर्वग्राह्यता को सामने लाएँ ताकि लोग उसकी भावना के अनुरूप आचरण व कार्य कर विश्व बधुत्व, मानव कल्याण एव शाति की दिशा मे अग्रसर हो सके। (मुख्यमत्रीजी का भाषण आगे दिया गया है)।

काफ्रेस के महामत्री श्री हीरालाल जी जैन ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उन्होने जैन सस्कृति की ऐतिहासिक महत्ता दिखाते हुए काफ्रेस द्वारा किए गए कार्यो मे साधु सम्मेलन पूना तथा समाज को सुदृढ और प्रगतिशील बनाने मे सहयोगी विचार प्रस्तुत किए। श्री हीरालाल जैन ने मुख्यमत्री एव केद्रीय सरकार से अनुरोध किया कि दूरदर्शन पर अडे, मछली के प्रयोग सबधी विज्ञापन रोके जाएँ।

काफ्रेस के अध्यक्ष श्री सचालाल जी बाफना ने अपने भाषण म काफ्रेस की गतिविधियो का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। (श्री सचालाल बाफना का भाषण आगे दिया गया है)।

श्रीयुत अर्जुनसिहजी ने निम्नलिखित ग्रथो का विमोचन किया —

(क) काफ्रेस द्वारा प्रकाशित "अमृत महोत्सव गौरव ग्रथ"
(ख) उपाचार्य श्री देवेद्र मुनिजी द्वारा रचित "जैन नीतिशास्त्र एक परिशीलन"
(ग) युवाचार्य डॉ शिवमुनि जी द्वारा रचित "भारतीय धर्मो मे मुक्ति विचार"
(घ) इदौर जैन युवक सघ द्वारा प्रकाशित "अमृत पुज।"

जिन महानुभावो ने काफ्रेस को सुदृढ बनाने और समाजोत्थान मे सक्रिय सहयोग दिया है उनकी सेवाएँ सदैव स्मरणीय रहेगी। उनके प्रति श्रद्धा व सम्मान व्यक्त करने के लिए उनको "समाज रत्न" की उपाधि से अलकृत किया गया।

इनमे नाम इस प्रकार है —

१ स्व श्री कुदनमल जी फिरोदिया (अहमदनगर)
२ स्व श्री विनयचद भाई जौहरी (जयपुर)
३ स्व पद्मश्री सेठ मोहनमल जी चोरडिया (मद्रास)
४ पद्मविभूषण डॉ दौलतसिह कोठारी, चासलर, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (नई दिल्ली)
५ स्व सेठ श्री अचलसिहजी (आगरा)
६ स्व प्राणिमित्र पद्मश्री सेठ आनदराज जी सुराणा (दिल्ली)
७ स्व सेठ सुगनमल जी भडारी (इदौर)
८ स्व श्री गोकुलचद जी नाहर (दिल्ली)
९ स्व लाला बनारसीदास जी ओसवाल (दिल्ली)
१० स्व श्री रामलाल जी जैन सर्राफ (दिल्ली)
११ स्व श्री शादीलाल जी जैन (बबई)
१२ स्व श्री चद्रभानजी डाकलिया (श्रीरामपुर, महाराष्ट्र)

इसी प्रकार काफ्रेस की कार्यकारिणी समिति के पदाधिकारियो को "समाज भूषण" और कार्यकारिणी के अन्य सभी सदस्यो को "समाज गौरव" की उपाधियाँ प्रदान की गई और इन्हे एक मोमेटो भी भेट किया गया। इन सभी महानुभावो के सचित्र जीवन परिचय आगे दिए गए हैं।

अमृत महोत्सव के अवसर पर
स्वागताध्यक्ष श्री नेमनाथ जी जैन का स्वागत भाषण

पूज्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी, उपाचार्य शास्त्री श्री देवेंद्र मुनि जी, विराजित साधु-साध्वी वृंद, समारोह अध्यक्ष मध्यप्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंहजी, विशेष अतिथि मध्यप्रदेश विधानसभा अध्यक्ष श्री राजेंद्र प्रसाद जी शुक्ल, महाराष्ट्र के स्वास्थ्य मंत्री श्री जवाहरलाल जी दरडा, सम्माननीय अतिथियो एव देश भर मे पधारे हुए प्रतिनिधि एव कान्फ्रेंस के अध्यक्ष एव पदाधिकारीगण, भाईयो एव बहिनो!

भारत का हृदय मध्यप्रदेश जहाँ नर्मदा और शिप्रा जैसी पुनीत नदियाँ प्रदेश को सिंचित करती है। जहाँ विक्रमादित्य जैसे प्रतापी एव न्यायी राजा हुए है। इस प्रदेश मे अहिल्या की नगरी इदौर। सरस्वती एव लक्ष्मी का सगम सास्कृतिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्र मे इसका योग सुविख्यात है। इस नगरी ने स्वतत्रता आदोलन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उस इदौर नगर मे अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस, दिल्ली के अमृत महोत्सव पर आप सबका, इदौर के जैन समाज की ओर से स्वागत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। कान्फ्रेस के अधिवेशन मे पधारे हुए सभी विशिष्ट अतिथियो, प्रतिनिधियो और समाज के भाई-बहनो का हम हार्दिक अभिनदन करते हैं।

जैन समाज शिक्षित, सस्कारी, अहिंसा मे निष्ठा रखने वाला, देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ बनाने वाला उदार समाज है जो सदा सेवा के क्षेत्र मे अग्रणी रहा है। अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस का अपना एक गौरवपूर्ण ८२ वर्षों का इतिहास है। इस सस्था ने धर्म एव समाज के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर पर सेवा का कार्य भी किया है। जैन कान्फ्रेस का यह अमृत महोत्सव अभूतपूर्व एव ऐतिहासिक है। बडी सख्या मे यहाँ जैन समाज के लोग निवास करते है और जैनो की यह विशेषता है कि वे जहाँ रहते हैं उस क्षेत्र के सुख-दुख के भागीदार बन जाते है और वहाँ विकास कार्य करते हैं।

यहाँ अमृत महोत्सव व अधिवेशन की यह विशेषता है कि श्रमण सघ के सिरमौर आचार्य सम्राट श्री आनद ऋषिजी की कृपा से उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी एव उपाचार्य श्री देवेंद्र मुनिजी का आध्यात्मिक मार्गदर्शन मिल रहा है। समाजिक क्षेत्र मे माननीय श्री अर्जुनसिंहजी जैसे राष्ट्रीय नेताओ से राष्ट्रीय दृष्टि प्राप्त होगी और समाज के देश भर से पधारे नेताओ से हमे सामाजिक विकास का मार्गदर्शन प्राप्त होगा। इस अवसर पर समाज के उन सेवाभावी विशिष्ट महानुभावो को अलकृत किया जा रहा है जिन्होने तन-मन-धन से कान्फ्रेस एव समाज के विकास मे योगदान किया है।

हम अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस के अध्यक्ष श्री सचालालजी बाफना, महामत्री श्री हीरालाल जी जैन, अन्य पदाधिकारीगण एव केंद्रीय कार्यकारिणी के सदस्यो के आभारी है कि उन्होने अमृत महोत्सव का आयोजन इदौर मे करने का निर्णय लेकर हमे आतिथ्य का सौभाग्य प्रदान किया। स्वागत समिति के मेरे सभी साथियो के परिश्रम से इस विशाल अधिवेशन की व्यवस्था हुई है। इसकी सफलता का सारा श्रेय मेरे साथियो को है, त्रुटियो के लिए मै जिम्मेवार हूँ।

हमारे आमत्रण को स्वीकार कर दूर-दूर से पधारे प्रत्येक भाई-बहनो का और विशिष्ट अतिथियो का मैं स्वागत समिति की ओर से पुन हार्दिक अभिनदन और स्वागत करता हूँ। पूज्य चारित्रात्माओ के श्री चरणो मे सादर वदन! जय जिनेंद्र।

अमृत महोत्सव के अवसर पर

मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह का अध्यक्षीय भाषण

अखिल भारतवर्षीय श्वेतांबर स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस के इस अमृत महोत्सव मे आज यहाँ सम्मानित जैन मुनियो, दार्शनिको और विद्वानो के बीच आकर और उनका सान्निध्य पाकर मुझे अत्यत गौरव अनुभव हो रहा है। मैं यहाँ पर धर्माचारियो क बीच कोई आख्यान नही करने आया हूँ, वरन् उनके सान्निध्य से अपनी कुछ जिज्ञासाओ के समाधान का अभिलाषी हूँ।

धर्म मनुष्य को मनुष्य से जोडने वाली एक अद्‌भुत शक्ति है। आज यहाँ इस धार्मिक उत्सव मे इतना बडा जन समागम इसी बात का प्रमाण है। किंतु यह एक विडबना ही है कि इस जोडने वाली शक्ति के नाम पर विवाद और टकराव की स्थिति उत्पन्न करने का दुराग्रह किया जाता है। धर्म के नाम पर जो अशांति, टकराव और अत्याचार होता है, उसका धर्म से दूर-दूर तक नाता-रिश्ता नही है। इस टकराव और अशांति के पीछे है मनुष्य का अहकार और इस अहकार से जनित धर्म की पवित्रता पर चढाया गया आडबर का आवरण।

आज सबसे बडा सवाल हमारे सामने यह है कि जब धर्म के पवित्र सिद्धात प्रेम, दया, करुणा, सद्‌भाव, भाईचारा और शांति, मानव कल्याण के लिए मनुष्य से जोडने के लिए है, फिर क्या कारण है कि घृणा, विद्वेष और टकराव का वातावरण उत्पन्न कर धर्म की पवित्रता को कलकित करने का प्रयास किया जाता है। स्पष्ट है कि आज धर्म के साथ निजी स्वार्थ जुड गए हैं। इन स्वार्थों और उनकी पूर्ति के लिए धर्म के नाम पर होने वाले आडबर ने धर्म को सप्रदाय का रूप दे दिया है। साम्प्रदायिकता की इसी सकीर्ण भावना के कारण न केवल एक धर्म की दूसरे धर्म मे टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई है, वरन् एक ही धर्म को मानने वाले लोग अलग-अलग टुकडो मे बँट गए हैं। हममे से प्रत्येक को इस विरोधाभास के सदर्भ मे व्यक्तिगत पहल करनी पडेगी। यह जिम्मेदारी हम केवल दूसरो पर नही डाल सकते।

धर्म और सप्रदाय मे एक ही सबसे बडा अतर है कि जहाँ धर्म जोडने वाली पवित्र शक्ति है वही सप्रदाय अलगाववादी प्रतिगामी शक्ति है। हम उस शक्ति की उपासना करते है जो हमें सत्कार्यों की ओर प्रेरित करे समाज को सद्‌चार और सद्‌भाव के द्वारा मानव कल्याण की दिशा मे उन्मुख करे। हम उस प्रतिगामी शक्ति की उपासना तो नही कर सकते जो हमे आपस मे लडाकर विनाश की ओर ले जाए। इसलिए आज सबसे बडा सवाल हमारे सामने है कि हम ऐसी जनचेतना जाग्रत करें जिससे लोग धर्म के सही और पवित्र स्वरूप के दर्शन कर उसकी पवित्र भावना के अनुरूप आचरण और कार्य कर विश्व बधुत्व, मानव कल्याण और शांति की दिशा मे अग्रसर हो सके। जैसाकि मै पहले कह चुका हूँ, धर्म इसान को इसान से जोडने वाली एक अद्‌भुत शक्ति है, सभी धर्मों क मूल सिद्धात, सत्य, दया, प्रेम, करुणा और मानव कल्याण से अनुप्राणित है, उनमे आपस मे कोई टकराव नही है कोई ठहराव नही है। इसलिए इनके मूल सिद्धातो को आत्मसात कर हमे धार्मिक सहिष्णुता का परिचय देते हुए विश्वशांति और मानव कल्याण की दिशा मे अग्रसर होना है। मुझे आशा है कि श्वेतांबर अमृत महोत्सव के आयोजन से सामाजिक सद्‌भाव और विश्व बधुत्व को बढाने के लिए कार्य सचालित किया जाएगा।

धर्मचक्र धर्म क प्रसार का प्रतीक तो है ही किंतु वह इसके साथ प्रगति का प्रतीक भी है। आज ससार मे जितनी भी भौतिक प्रगति विज्ञान के द्वारा हुई है उससे समाज के साथ-साथ धर्म और अध्यात्म भी अछूता नही रहा है। विज्ञान मानव कल्याण की अपेक्षा सहार के रास्ते पर तेजी से बढ रहा है। उस पर धर्म तथा अध्यात्म के अकुश की जरूरत है। किंतु यह अकुश लगेगा कैसे? आज धर्म पर सप्रदाय के आवरण के कारण उसके पवित्र स्वरूप के दर्शन नही हो पा रहे हैं, वरन् सकीर्णता की भावना के कारण एक ही धर्म टुकडो मे बँट गया है, तो जनमानस को प्रभावित कैसे कर पाएगा। इसलिए आज हमने धर्माचार्यों के सामने

सबसे बडी चुनौती यह है कि धर्म के पवित्र स्वरूप, उसकी विशालता और सर्वग्राह्यता को सामने लाएँ और उनके मानव कल्याणकारी तथा विश्वशांति और कल्याण के लिए उन्मुख स्वरूप से जनमानस को अवगत कराएँ।

मुझे आशा ही नही विश्वास है कि जैन समाज और उसके धर्माचार्य इस दिशा मे सार्थक पहल कर सकते हैं क्योंकि जैन धर्म के सरल और सर्वग्राह्य सिद्धातो मे जनमानस को प्रभावित करने की पूरी क्षमता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इन सिद्धातो के अनुरूप कार्य कर जैन समाज मानव कल्याण के कार्यों मे अपरिग्रह की भावना के अनुरूप सक्रिय और सार्थक रूप से योगदान करे।

अमृत महोत्सव के अवसर पर
अध्यक्ष श्री सचालाल जी बाफना का भाषण

पूज्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी, उपाचार्य श्री देवेंद्र मुनि जी शास्त्री व विराजित सत-सतियो एव चरित्रात्माओ को सादर वदना। मध्यप्रदेश के सम्मानीय मुख्यमत्री श्री अर्जुनसिंह जी, महाराष्ट्र के स्वास्थ्य मत्री श्री जवाहलाल जी दरडा, सुश्री सरोज खापर्डे, अन्य मत्रीगण, सम्मानीय अतिथियो, इदौर श्री सघ के अध्यक्ष तथा देश भर से पधारे प्रतिनिधिगण, भाइयो एव बहिनो!

अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन काफ्रेस के गौरवमय अमृत-महोत्सव के अवसर पर आप सबको सबोधित करते हुए मुझे अत्यत गौरव और प्रसन्नता हो रही है। किसी सस्था का निरतर ८२ वर्ष तक चलना उसकी लोकप्रियता सिद्ध करता है। काफ्रेस समग्र स्थानकवासी जैन समाज की ऐसी अखिल भारतीय सस्था है जिसने धार्मिक, शैक्षणिक और राष्ट्रीय दृष्टि से व्यापक और उदार दृष्टिकोण से कार्य किया है। इसके उद्देश्यो मे मुख्य रूप से सभी वर्गों को साथ लेकर सहयोगानुसार राष्ट्रीय परिस्थितियो के अनुसार समाज को सही दिशा मे प्रेरित करना रहा है।

मुझे यह बताने मे गौरव महसूस होता है कि इस काफ्रेस के माध्यम से सन् १९५२ई मे सादडी सम्मेलन हुआ और श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ के नाम से स्थानकवासी जैन समाज को एक सूत्र मे पिरोया गया। श्रमण सघ की गौरवपूर्ण उपलब्धियाँ काफ्रेस की ही देन है। इस काफ्रेस के अध्यक्षो मे स्वर्गीय श्री कुदनमल जी फिरोदिया, स्व विनयचद भाई जौहरी स्व सेठ अचलसिह जी, स्व पद्मश्री मोहनमल जी चोरडिया एव नेहरू यूनिवर्सिटी के चासलर विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक पद्म विभूषण डॉ दौलतसिह जी कोठारी जैसे महान व्यक्ति रहे है। प्राणीमित्र पद्मश्री स्व श्री आनदराज जी सुराणा जैसे महान व्यक्ति ने लगातार २५ वर्षों तक काफ्रेस के महामत्री के रूप मे निस्वार्थ सेवाएँ देकर एक स्वर्णिम इतिहास बनाया है। इसी प्रकार इदौर के स्व सेठ सुगनमल जी भडारी एव उनके परिवार का योगदान उल्लेखनीय है। स्व गोकुलचद जी नाहर, स्व ला बनारसीदास जी ओसवाल, स्व रामलाल जी आदि अनेक व्यक्तियो ने काफ्रेस के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इसी तरह अनेक अन्य व्यक्तियो ने तन-मन-धन से काफ्रेस के वट वृक्ष को सीचा है। अत अमृत महोत्सव के पावन प्रसग पर हम उनका गौरवमय उल्लेख करते हुए उन्हे समाज रत्न, समाज भूषण, समाज गौरव आदि अलकारो से अलकृत कर रहे है।

काफ्रेस को जन-जन तक पहुँचाने के लिए समय-समय पर विभिन्न राज्यो मे अधिवेशन हुए, प्रातीय एव नगर शाखाएँ बनाई गई और सदस्यता अभियान चलाया गया। मेरे साथियो के परिश्रम से इस कार्य मे हमे अच्छी सफलता मिली है और हजारो आजीवन सदस्य बने। कार्य-कारिणी मे सभी क्षेत्रो का प्रतिनिधित्व रहे, युवा और महिला वर्ग सक्रिय बने, यह भी विशेष ध्यान रखा गया जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, कल हुए युवा और महिला सम्मेलन के कार्यक्रम हमारे समाज का युवा वर्ग एव महिला वर्ग सक्रिय हो उठा है और मुझे आशा है कि काफ्रेस को वे अधिक गतिशील बनाएँगे।

धार्मिक शिक्षण का व्यवस्थित पाठ्यक्रम पाथर्डी बोर्ड द्वारा महाराष्ट्र से जो सचालित हो रहा है उसका दायित्व काफ्रेस ने ही उन्हे सौंपा है। धार्मिक, शैक्षणिक,सामाजिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रो मे काफ्रेस राष्ट्रीय स्तर पर अपने पाक्षिक पत्र "जैन प्रकाश" के माध्यम से अच्छा वातावरण बना रही है। भरपूर चेतना काफ्रेस मे आई है, समाज जागृत हुआ है किंतु हमे इससे सतोष नही मानना है। अभी हमारी मजिल बहुत दूर है और समाज हमसे अनेक आशाएँ एव अपेक्षाएँ रखे हुए है।

सपन्न समझे जाने वाले हमारे समाज मे आज भी अनेक भाई-बहनो को शिक्षा, चिकित्सा, रोजगार आदि उपलब्ध नही है। हमारी विधवा और निराश्रित बहिनो को स्वावलबी बनाना है। रुढिवाद, अधविश्वास, पर्दा, दहेज, शादी-विवाहो मे प्रदर्शन और सडको पर नाचने जैसी सामाजिक बुराइयो से हमे लडना है। व्यसन मुक्ति, खानपान मे शुद्धि और सस्कारो के लिए हमे वातावरण बनाना है।

इन सब कार्यों की मुख्य प्रेरणा हमार पूज्य साधु-साध्वी वृन्द है। उनके द्वारा पाद-विहार ग्राम-ग्राम और जन-जन मे उनकी पवित्र वाणी मे बहुत बडा कार्य हो सकता है। इसके साथ ही कान्फ्रेन्स और उसके युवा तथा महिला विभागो की ओर से भी कार्य तेजी से करना होगा। हमारे समाज के विद्वान वर्ग का उल्लेख नही करूँगा तो बात अधूरी रहेगी। हमे गौरव है कि अर्थ की इस भाग-दौड के युग मे भी हमारे समाज मे अनेक ऐसे विद्वान हैं जो जैन धर्म एव दर्शन मे समर्पित रूप से कार्य कर रहे है। मेरा आह्वान है कि वे भी कान्फ्रेस के साथ सक्रिय रूप से जुडे और मार्ग दर्शन दे।

देवियो और सज्जनो!

किसी भी सस्था का मूल आधार कार्यकर्ता है। निस्वार्थ सेवाभावी, उत्साही कार्यकर्ता जिस समाज मे या सस्था मे होगे वह समाज उतना ही अधिक गति से विकास करेगा। हमारे समाज मे कार्यकर्ताओ का हमे निर्माण करना है। मेरा सौभाग्य है कि मुझे बहुत अच्छे कार्यकर्ता साथी, कार्यकारिणी के सदस्य मिले जिनके सहयोग से कान्फ्रेन्स का थोडा बहुत कार्य आगे बढा, उसमे चेतना आई।

इदौर माँ अहिल्या की नगरी है। सस्कृति, सरस्वती और लक्ष्मी का यहाँ अनुपम सगम है। ऐसी नगरी मे अमृत-महोत्सव का आयोजन और यहाँ के भाई-बहिनो के प्यार परिश्रम से मन गदगद हो उठता है। स्वागताध्यक्ष उद्योगपति भाईश्री नेमनाथ जैन, स्वागतमत्री श्री फकीरचद जी मेहता तथा उनके सभी साथियो का मै धन्यवाद नही बल्कि अभिनदन और बधाई देता हूँ। जिस कुशलता से जिस कर्मठता और व्यापक दृष्टि से सारा आयोजन हुआ है वह कान्फ्रेस के गौरव के अनुकूल है।

माननीय अतिथियो एव प्रतिनिधियो!

आपके पधारने से हमे प्रोत्साहन मिला मार्गदर्शन मिला और काम करने की नई उमग पैदा हुई। आपका इसी तरह मार्गदर्शन सक्रिय सहयोग कान्फ्रेस रूपी वट वृक्ष को मिलता रहे ताकि इसकी शीतल छाया मे साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाएँ चारो तीर्थ अपने मगलमय कल्याणमय भविष्य की ओर बढते रहे।

इन्ही मगल भावनाओ के साथ मै अपना वक्तव्य सपन्न करता हूँ। जय महावीर!

जीवन परिचय

स्थानकवासी जैन समाज के उन्नायक विद्वान व समाजसेवी जिन्हे अमृत-महोत्सव के अवसर पर **"समाज रत्न"**, **"समाज भूषण"** और **"समाज गौरव"** की उपाधियो से सम्मानित किया गया।

"समाज रत्न"

स्व. श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया

श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया का जन्म अहमदनगर मे हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री शोभाचन्दजी था। आप सन् १९०७ मे पूना के फर्ग्युसन कालेज से ग्रेजुएट हुए थे। कालेज के दिनो मे ही आप लोकमान्य तिलक के अनुयायी थे और कट्टर राष्ट्रवादी थे। आगे चलकर आपने एल.एल.बी. परीक्षा पास की और वही अपने शहर मे वकालत आरभ कर दी। अपने इस धन्धे मे भी उन्होने प्रामाणिकता से काम किया और काफी यश तथा धन कमाया। आप कान्फ्रेन्स के मूक सेवक थे। अहमदनगर जिले मे आपका सम्मान प्रथम पक्ति के राष्ट्र सेवक के रूप मे है। सन् १९३६ मे आप अपने प्रात की तरफ से एम.एल.ए. चुने गए थे। इतना ही नही आप बम्बई धारा सभा के स्पीकर भी निर्वाचित हुए। इस पद पर आपने कई वर्षों तक जिस योग्यता से कार्य किया, उसकी प्रशसा सभी पार्टियो के नेताओ ने की है। स्पीकर का कार्य बहुत टेढा होता है लेकिन आपने उसे बडी योग्यता से सभाला। अहमदनगर की म्युनिसिपैलिटी के वर्षो तक आप प्रमुख रहे। कान्फ्रेन्स के आप वर्षो तक अध्यक्ष रहे। मद्रास मे सम्पन्न ग्यारहवे अधिवेशन के आप ही प्रमुख निर्वाचित हुए थे। यह अधिवेशन कान्फ्रेन्स का बहुत महत्वपूर्ण अधिवेशन था जिसमे अनेक जटिल प्रश्न उपस्थित हुए थे, जिनका निराकरण करना आप जैसे सुयोग्य प्रमुख का ही काम था।

आपने अपनी ६३ वर्ष की जन्मगाँठ पर ६३ हजार रु दान देकर एक ट्रस्ट कायम किया था।

आपके प्रमुख पद पर रहते हुए कान्फ्रेन्स ने भी कई उल्लेखनीय कार्य किये। सघ ऐक्य योजना की शुरूआत हुई और उसे सफलता के साथ आपने ही पूरी की।

स्व श्री विनयचद्र भाई दुर्लभ जी जौहरी

अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस के आद्य सस्थापको मे प्रमुख सेठ श्री दुर्लभ जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री विनयचद्र भाई का जन्म २५ फरवरी १९०० को हुआ था। आपका परिवार मूलत मोरवी का रहने वाला था, परतु व्यापार व्यवसाय के कारण आप राजस्थान की वैभव नगरी जयपुर मे आ बसे थे।

जैन समाज की निष्ठामयी एकता और निर्धारित लक्ष्य की ओर अपेक्षित गति देने हेतु श्री विनयचद्र भाई ने अनथक प्रयत्न किए। इस सिलसिले मे श्री विनयचद्र भाई ने भारत के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक यात्राएँ की और श्रमण सघ की मान्यता स्थापित करने तथा जैन समाज की एकता को सुदृढ करने के लिए कार्य किया। उनकी इस यात्रा मे उनके अभिन्न साथी श्री आनन्दराज जी सुराणा भी रहे। वैसे तो विनयचद्र भाई और श्री सुराणा जी समाज की एकता के लिए तथा स्थानकवासी समाज की प्रगति के लिए सामान्य याचक की तरह हर स्थान पर झोली पसारने भी जाते थे। फिर भी समाज ने इन्हे सिर आँखो पर रखा और जहाँ भी ये गए इनका अपूर्व स्वागत हुआ। इनके श्रम का पुण्य फल आज जैन भवन के रूप मे विद्यमान है।

श्री विनयचद्र भाई की अध्यक्षता के दौरान एव उनके अनथक परिश्रम और साधनो से यह भव्य भवन नई दिल्ली मे निर्मित हुआ।

जौहरी के व्यवसाय मे ख्याति अर्जित करने वाले श्री विनयचद्र भाई देश के बाहर भी कई बार गए। आपने अपने सुयोग्य नेतृत्व से समाज के सामने जो आदर्श रखा वह अनुकरणीय है। श्री विनयचद्र भाई को बहुत थोडे समय का जीवन मिला फिर भी उन्होने इस जीवन मे जयपुर चैम्बर्स ऑफ कामर्स, गुजराती समाज, जैन इटर कॉलेज, जयपुर और ब्यावर गुरुकुल जैसी सस्थाओ की अध्यक्षता की। उच्च शिक्षा के प्रति उनके लगाव का प्रमाण था काफ्रेस के माध्यम से छात्रवृत्ति के रूप मे एक बडी राशि का दिया जाना।

स्व. सेठ श्री अचलसिह

सेठ श्री अचलसिह जी का जन्म ५ मई सन् १८९५ को आगरा नगर के एक समृद्ध एव प्रतिष्ठित जैन ओसवाल परिवार मे हुआ। आगरा मे मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आपने नैनी एव कानपुर के कृषि विद्यालयो मे अध्ययन किया।

१९१६ मे प्रथम बार अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के लखनऊ अधिवेशन मे सम्मिलित हुए और उसी समय से देश सेवा तथा जन सेवा के कार्य मे जीवन अर्पण कर दिया। सन् १९१७ मे श्रीमती ऐनी बीसेंट द्वारा सचालित 'होमरूल' आदोलन मे भाग लिया। सन् १९१८ मे 'रोलेट एक्ट' का बहिष्कार किया और इस प्रकार सार्वजनिक जीवन का समारम्भ हुआ।

सन् १९२८ मे 'अचल ग्राम सेवा सघ' नामक सस्था की स्थापना कर ग्रामो मे शिक्षा व स्वास्थ्य के लिए कार्य प्रारभ किया तथा सन् १९३२ तक ३०० रुपए प्रति माह इस कार्य के लिए व्यय किया।

सन् १९३० मे 'नमक सत्याग्रह' मे पहली बार ६ माह के लिए जेल गए। इसके पश्चात् सन् १९३२ के सत्याग्रह आदोलन मे अठारह माह, सन् १९४० मे व्यक्तिगत सत्याग्रह आदोलन मे एक वर्ष एव सन् १९४२ मे 'भारत छाडो आदोलन मे ढाई वर्ष के लिए जेल यात्रा की।

सन् १९३४ मे आप बिहार की केद्रीय भूकप सहायता समिति के सदस्य चुने गए। इसी वर्ष आप लखनऊ मे भारत जैन महामडल तथा अजमेर मे होन वाले अ भा श्वे स्था जैन नवयुवक सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गए। अजमेर मे ही होने वाले अ भा ओसवाल महा सम्मेलन क अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इसी बीच १९३५ मे एक लाख रुपए दान मे अचल ट्रस्ट की स्थापना की। सप्रति इस सस्था से सबद्ध अचल भवन मे पुस्तकालय एव वाचनालय चल रहे है। सन १९५३ मे आगरा मे होने वाली अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के अधिवेशन के आप स्वागताध्यक्ष चुने गए थे।

सन १९५२ मे आप प्रथम बार लोकसभा के सदस्य चुने गए।

सन् १९५३ मे आप दिल्ली के अखिल भारतवर्षीय महावीर जयती कमेटी के अध्यक्ष बने। सन १९५७ मे दिल्ली मे होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन के आप प्रधानमत्री चुने गए। सन् १९५८ से १९६६, १९७० व १९७४ से १९७७ तक आप काफ्रेस के अध्यक्ष रहे।

नारी शिक्षा के कार्य को आगे बढाने के लिए सेठजी ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती भगवती देवी जैन को प्रोत्साहित किया। श्रीमती भगवती देवी जी ने अपनी समस्त चल अचल सपत्ति दान कर कन्या विद्यालय की स्थापना की। सेठ जी इस सस्था के अध्यक्ष रहे। आजकल इस शिक्षा सस्था के चार स्तर है—महाविद्यालय, हाईस्कूल, प्राइमरी स्कूल एव बाल मदिर।

सेठ जी एक लोकप्रिय, जन सेवी नेता थे। उन्होने अपना सारा जीवन लोक सेवा का जीवन बना दिया था। उनका द्वार सबके लिए खुला था। वे सबके थे, धैर्य से जनता के दुख को सुनना और उसे दूर करने को प्रस्तुत रहना उनकी विशेषता थी।

पद्म विभूषण डॉ. दौलत सिंह कोठारी

डॉ दौलत सिह कोठारी का जन्म ६ जुलाई, १९०६ को उदयपुर (राजस्थान) मे हुआ था। आपका प्राथमिक शिक्षण जयपुर और इदौर मे हुआ। वहाँ शिक्षण पूर्ण कर आप प्रयाग विश्वविद्यालय मे प्रविष्ठ हुए। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्व डॉ मेघनाथ साहा के आप विद्यार्थी रहे है। वहाँ से १९२८ मे प्रथम श्रेणी मे एम एस सी परीक्षा उत्तीर्ण करन के पश्चात आपने केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी मे प्रसिद्धतम वैज्ञानिको के सरक्षण मे रिसर्च कर सन् १९३३ मे पी एच डी की उपाधि प्राप्त की। अध्ययनकाल मे आप अत्यत कुशाग्र बुद्धि के विद्यार्थी रहे हैं।

प्रयाग विश्वविद्यालय मे आप १९२८ से १९३४ तक भौतिकी विज्ञान के प्राध्यापक रहे तथा दिल्ली विश्वविद्यालय मे १९३४ से १९६१ तक भौतिकी विभाग के प्राध्यापक तथा अध्यक्ष रहे। सन् १९४८ से १९६१ तक आप रक्षा मत्रालय, भारत सरकार के वैज्ञानिक परामर्शदाता रहे।

डॉ साहब ने भौतिकी विज्ञान पर आश्चर्यजनक अनुसधान करके और कई प्रसिद्ध निबध लिखकर ससार के वैज्ञानिको को चकित कर दिया है। आपने सिद्ध किया कि परमाणु का विस्फोट केवल उस पर दबाव के द्वारा ही हो सकता है। इस विषय पर तथा परमाणु विस्फोट के प्रभावो पर आपने भाषण भी दिए है। सन् १९४८ मे आयोजित अखिल भारतीय वैज्ञानिक काग्रेस के आप स्वागताध्यक्ष थे तथा १९६३ मे इसके जुबली सेशन के जनरल प्रेसीडेट रहे। भारत सरकार द्वारा नियुक्त भारतीय शिक्षा आयोग के आप अध्यक्ष थे। इस आयोग की जिसे कोठारी कमीशन भी कहा जाता है, सिफारिशे बहुआयामी और महत्वपूर्ण हैं।

आपके द्वारा लिखित निबध देश एव विदेशो की प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए है। आप भारत के प्रमुख और प्रतिष्ठित वैज्ञानिक है। आपका विशेष व्यक्तित्व और शिक्षा के क्षेत्र मे महान योगदान होने के कारण मार्च १९६१ से जनवरी १९७३ तक आप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष रहे। आप देश की प्रसिद्ध वैज्ञानिक समितियो तथा सस्थानो से प्रमुख रूप से सबद्ध है। आप वैज्ञानिको तथा औद्योगिक अनुसधान परिषद् की प्रबधकारिणी के सदस्य एव इसकी एयरोनाटिकल रिसर्च कमेटी के अध्यक्ष रहे है।

आपने भारतीय वैज्ञानिक मडलो के सदस्य के रूप मे तथा वरिष्ठ वैज्ञानिक एव अधिकारी के रूप मे कई बार विदेशो की यात्रा की है तथा वहाँ के वैज्ञानिको को अपनी आश्चर्यजनक प्रतिभा से प्रभावित कर समाज एव देश का गौरव बढाया है।

भारत सरकार मे अति उच्च पद पर आसीन होने एव देश व विदेशो मे बहुत ख्याति प्राप्त होने पर भी डॉ कोठारी का जीवन अनुकरणीय रूप से सरल है। आपका स्वभाव अत्यत मृदुल है तथा जीवन धर्म भावना, कर्त्तव्यनिष्ठा एव सरलता से ओत-प्रोत है। अत्यत व्यस्त जीवन होने पर भी सामाजिक कार्यों से आप सबद्ध रहते है। आप १९६९-७० और १९७३-७४ मे अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेस के अध्यक्ष रहे है। आप अहिंसा इटरनेशनल के सरक्षक है।

डॉ कोठारी को सन् १९६२ मे राष्ट्रपति द्वारा पद्मभूषण और सन् १९७३ मे पदम् विभूषण की उपाधियो से सम्मानित किया गया है।

आप जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के चासलर हैं।

स्व. पद्मश्री सेठ मोहनमल जी चौरडिया

सेवा, साधना और समर्पण की मूर्ति पद्मश्री मोहनमल जी चौरडिया स्थानकवासी जैन समाज के अनमोल रत्न थे। शिक्षा, धर्म और समाज की सेवा के साथ-साथ व्यक्ति-निष्ठता और सिद्धान्त-प्रियता चौरडिया जी के महनीय गुण थे। अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के उपाध्यक्ष एव अध्यक्ष पद पर रहते हुए आपने स्थानकवासी समाज के लिए अनेकानेक कार्य किये। आपके सद्प्रयास से कई संस्थाओ को जन्म, पोषण एव अभिवृद्धि प्राप्त हुई।

श्री मोहनमल चौरडिया का जन्म २८ अगस्त सन् १९०२ को जोधपुर जिले के नोखा नामक ग्राम के निवासी श्री सीरमल चौरडिया के घर मे हुआ था। सन् १९१७ मे हरसोलाव ग्राम के निवासी श्री बालचन्द शाह की सुपुत्री नेनीकर बाई से उनका विवाह हुआ। विवाह के तुरन्त पश्चात वे मद्रास आ गये। उनकी सदाचारी तथा धार्मिक भावना को लक्ष्य करते हुए सन् १९१८ मे स्व श्री मोहनलाल चौरडिया ने उन्हे गोद ले लिया और इस प्रकार वे एक धनी परिवार मे आ गए।

श्री चौरडिया जी ने सन् १९२६ मे श्री स्थानकवासी जैन पाठशाला को जन्म दिया, जिसमे कालान्तर मे श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन एज्यूकेशन सोसायटी (जिला मद्रास) की नीव पडी। आप वर्षो तक इस सस्था के अध्यक्ष रहे। आपने एस एस जैन बोर्डिंग हाउस मद्रास तथा ए जी जैन हाई स्कूल मद्रास की भी स्थापना की।

सन् १९४७ मे श्री चौरडिया जी ने "श्री अमरचद मानमल सटेनरी ट्रस्ट" बनाया और सन् १९५२ मे उन्होने अगरचद मानमल जैन कालेज की स्थापना की, जो आज मद्रास के चोटी के कालेजो मे गिना जाता है।

राजस्थान के कुचेरा नामक ग्राम से चौरडिया जी को सदा विशेष प्रेम रहा। वहाँ उन्होने सन् १९२७ मे एक नि शुल्क आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना की। उन्ही दिनो अपनी जन्मभूमि नोखा मे भी उन्होने एक आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना की, जो कालान्तर मे सरकारी अस्पताल बन गया और आज 'सेठ श्री सोहनलाल चौरडिया सरकारी अस्पताल' के नाम से प्रसिद्ध है।

सन् १९५० मे अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के मद्रास अधिवेशन के अवसर पर श्री मोहनमल चौरडिया जी स्वागताध्यक्ष रहे। सन १९७१ और पुन सन् १९८१ से १९८४ तक चौरडिया जी कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष पद पर रहे। जैन भवन नई दिल्ली मे उन्होने चौरडिया ब्लाक बनवाया जो सदा उनकी यादगार रहेगा।

श्री चौरडिया जी की सामाजिक, सास्कृतिक एव धार्मिक सेवाओ तथा भारतीय उद्योग मे उनके द्वारा एक कीर्तिमान स्थापित करने के कारण भारत के राष्ट्रपति ने उन्हे २६ जनवरी १९७२ को 'पदमश्री' के अलकरण से सम्मानित किया। ५ फरवरी सन १९८४ को चौरडिया जी का देहावसान हो गया।

स्व.प्राणिमित्र पद्मश्री सेठ आनन्दराज सुराणा

अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के आधार स्तभो मे प्रमुख श्री आनन्दराज जी सुराणा का जन्म १५ सितबर १८९१ को जोधपुर के एक सम्भ्रान्त परिवार मे हुआ। इनके पिता श्री सेठ चादमल जी सुराणा जीवदया की भावना से ओत-प्रोत क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के धनी थे। पिता के क्रान्तिकारी विचारो का श्री आनदराज जी सुराणा के जीवन पर गहरा प्रभाव पडा। यद्यपि उनका व्यवसायी जीवन बीकानेर मे रेल विभाग की एक सामान्य नौकरी से आरभ हुआ परतु जीवन के अतिम वर्षो मे वे एक उल्लेखनीय और सपन्न व्यवसाय के धनी के रूप मे सम्मानित हुए।

वैसे तो सुराणा जी ने अपने आरंभिक जीवन मे ही देश की स्वतन्त्रता हेतु कार्य करना आरंभ कर दिया था परतु "भारत - छोडो आन्दोलन" के उपरात उनकी गतिविधिया बहुत प्रखर हो गई। उन्हे प्रमुख स्वाधीनता सेनानी श्री जयनारायण व्यास, श्री हीरालाल शास्त्री, श्री हरि भाऊ उपाध्याय, श्री माणिकलाल वर्मा, श्री लीलाधर जोशी, श्री मिश्रीलाल गगवाल जैसे नेताओ का सहयोग मिला।

स्वाधीनता के उपरात श्री सुराणा जी ने सामाजिक एकता एव नैतिक मूल्यो की महानता स्थापित करने के लिए कार्य किया। उनकी सूझबूझ ने स्थानकवासी समाज की गतिविधियो को एक नया आयाम दिया। नई दिल्ली म भगतसिह मार्ग पर विशाल जैन भवन की इमारत इनकी सूझबूझ की प्रतीक है। भगवान महावीर स्वामी की २५००वी जयती पर आयोजित कार्यक्रमो मे सक्रिय योगदान दिया। इसी सदर्भ मे आप ने २५०० गायो को अभय दान देन की योजना का कार्यान्वित किया।

देश के बटवारे के समय उन्होने पाकिस्तान से आए बेघर भाई-बहनो के पुनर्वास मे उल्लेखनीय सहयोग दिया। उनका यह कार्य चिरस्मरणीय रहेगा।

जैन कान्फ्रेस के अलावा श्री आनन्दराज जी सुराणा अनेक समाजसेवी सस्थाओ से सबधित रहे जिनमे बबई की ह्यूमेनेटेरियन लीग, बापू आदर्श सस्था, गीता शिशु विहार, भारतीय शाकाहार कान्फ्रेस भारत गोसेवक, विश्व अहिसा सघ और सुराणा विश्व बधु ट्रस्ट प्रमुख है। २३ सितबर १९८० का श्री सुराणा जी का स्वर्गवास हो गया।

स्व श्री गोकुलचन्द जी नाहर

श्री गोकुलचन्दजी नाहर दिल्ली स्थानकवासी जैन समाज के लब्धप्रतिष्ठ नेता थे। चादनी चौक, दिल्ली मे जैन स्थानक (बारादरी भवन) बनवाने का श्रेय उन्ही को है। सन् १९३३ मे कान्फ्रेन्स के नवम् अधिवेशन के अवसर पर अजमेर मे वृहद साधु सम्मेलन के लिए समस्त भारतवर्ष के सतो को एकत्रित करने मे उनका बहुत बडा योगदान था।

स्व श्री चन्द्रभान जी डाकलिया

श्री चन्द्रभान जी डाकलिया का जन्म श्रीरामपुर (महाराष्ट्र) मे हुआ था। आप जैन समाज की अनेक धार्मिक सस्थाओ के अध्यक्ष रहे। आपका सारा जीवन साधु सन्तो की सेवा मे व्यतीत हुआ।

स्व. श्री शादीलाल जैन

श्री शादीलाल जैन का जन्म ७ मार्च १९०७ को अमृतसर (पजाब) मे हुआ था। उन्होने १९२६ स १९३७ तक अमृतसर मे सर्राफ का काम किया और सोना-चादी के बहुत बडे व्यापारी माने जाते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध आरभ होने पर सन् १९३९ मे वे कलकत्ता चले गए और वहा कमीशन एजेंट का व्यवसाय किया। सन् १९४२ मे उन्होने दिल्ली आकर मैसर्स रतनचद हरजसराय नाम की सुविख्यात फर्म स्थापित की। दिसम्बर १९४६ मे वे बम्बई चले गए और मे आर सी एच बरार एड कपनी की नीव डाली। सन् १९५१ मे उन्होने मशहूर लायन पेंसिल बनाने की फैक्ट्री स्थापित की। इस प्रकार श्री शादीलाल जी उद्योग के क्षेत्र मे कितनी ही फर्मो से सम्बद्ध रहे।

४ दिसम्बर १९७० को आप महाराष्ट्र सरकार द्वारा बम्बई महानगर के शैरिफ नियुक्त किये गये, आपका शैरिफ का कार्यकाल बहुत ही सफल रहा।

समाज सेवा तो उन्हे अपने पूज्य पिताजी श्री रतनचद जैन से विरासत मे मिली थी। श्री रतनचद जी अमृतसर की जैन बिरादरी के प्रमुख नेता माने जाते थे। उन्होने ही श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान, बनारस की स्थापना की थी जिसके कालान्तर मे श्री शादीलाल जी ने मत्री के रूप मे काम किया।

सामाजिक क्षेत्र मे श्री जैन भारत जैन महामण्डल व श्री पजाब जैन भ्रातृ सभा, बम्बई और अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन युवक परिषद् के अध्यक्ष रहे। श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति तथा अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के भी आप उपाध्यक्ष रहे।आप अहिंसा इन्टरनेशनल के आजीवन सदस्य थे।

आप भगवान महावीर २५वी निर्वाण शताब्दी समारोह सबधी केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकार तथा जैन समाज की अनेक समितियो के सदस्य थे। वे बबई एव देश की जनकल्याण व धार्मिक, सामाजिक, सास्कृतिक तथा शैक्षणिक सस्थाओ से सम्बद्ध रहे।

स्व. श्री रामलालजी जैन सर्राफ

श्री रामलाल जी सर्राफ का जन्म स्यालकोट (पजाब) मे हुआ था। दिल्ली मे आप सोने चादी के बहुत प्रसिद्ध व्यापारी थे। आप धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे और अनेक सामाजिक एव धार्मिक सस्थाओ को आप तन, मन, धन से सहयोग देते थे। कान्फ्रेन्स के आप कई वर्षो तक लगातार उपाध्यक्ष और ट्रस्टी रहे।

स्व. श्री बनारसीदास जी ओसवाल

लाला बनारसीदास ओसवाल स्थानकवासी जैन समाज के ही नही, अपितु सपूर्ण जैन समाज के उन चन्द व्यक्तियो मे से थे, जिन्हे समाज का स्तम्भ कहा जा सकता है। आपका सारा जीवन धार्मिक, सामाजिक एव व्यापारिक क्षेत्र मे किय गये सराहनीय कार्यो से भरा हुआ था। आपके अन्दर सरलता, विनम्रता और सहजता कूट-कूट कर भरी हुई थी।

श्री बनारसीदास जी का जन्म ४ सितबर, १९०४ को होशियार पुर (पजाब) मे हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री मिलखीराम जी था। आपका विवाह श्रीमती नत्थो देवी के साथ हुआ, आपकी धर्मपत्नी भी धर्मपरायण महिला थी, उनके जीवन मे भी सेवाभाव अतिथि सत्कार आदि गुणो के कारण आपको सदैव उनसे सद्कार्यो की प्रेरणा मिलती रहती थी। १५ साल की अल्प आयु मे ही आपने अपना व्यवसाय दिल्ली मे आकर शुरू किया।

सन् १९२१ मे आपने गाँधीजी के सपर्क मे रह कर "सेवा ही धर्म" का मार्ग अपनाया। अतिम अवस्था तक आपने यह सेवा कार्य जारी रखा। आप प्रतिदिन अपने निवास पर सुबह-शाम एक घटा मरीजो की देखभाल करते थे। और उनके रोगो का नि शुल्क उपचार करते थे।

सन् १९२४ मे दिल्ली मे भयकर बाढ आने के बाद प्लेग की महामारी फैली। कोई घर ऐसा न था जिसका दरवाजा मौत न खटखटा रही हो। लोग दिल्ली को छोडकर बाहर भाग रहे थे। उस समय समस्या थी मरने वालो की लाशो को कौन उठाये। उस समय लालाजी ने कुछ साहसी नौजवानो को इकट्ठा करके एक टीम बनाई और मरने वालो को श्मशान पहुँचाने और उनकी अन्त्येष्टि का प्रबध किया।

आप अपने धर्म के प्रति पूर्ण निष्ठावान थे। आप बचपन स ही सतो और साध्वियो की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते थे। "नमोकार मत्र" के प्रति आपको अपार श्रद्धा थी।

साधु एव समाज संगठन आपका एक मधुर सपना रहा। आप १२ वर्ष तक अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के उपाध्यक्ष रहे। दिल्ली मे जब आचार्य श्री आनद ऋषिजी महाराज का आगमन हुआ, तो उनके आदेश से दिल्ली जैन महासघ की स्थापना हुई। उसका प्रथम अध्यक्ष पद पाने का गौरव आपको प्राप्त हुआ। भारत जैन महामडल के भी आप कई वर्षों तक उपाध्यक्ष रहे। एस एस जैन सभा, कोल्हापुर रोड के भी आप उपाध्यक्ष थे।

१ जनवरी, १९८० की शाम को नमोकार महामत्र जपते हुए आपका स्वर्गवास हुआ। श्री ओसवाल जी के तीनो पुत्र श्री प्रेमचद, श्री धर्मचद और श्री सुभाषचद समाज-सेवा मे रत हैं।

स्व सेठ श्री सुगनमल जी भडारी

श्री सुगनमल जी भडारी का जन्म रामपुरा (मध्यप्रदेश) मे हुआ था। आप इदौर के प्रसिद्ध उद्योगपति और समाजसेवी थे। आप कान्फ्रेन्स के उपाध्यक्ष और इदौर श्रावक सघ के अध्यक्ष रहे। फरवरी १९७८ मे कान्फ्रेन्स के इदौर अधिवेशन के आप स्वागताध्यक्ष थे।

"समाज भूषण"

श्री सचालाल छगनमल बाफना

सुविख्यात व्यवसायी तथा उद्योगपति और कर्मठ कार्यकता श्री सचालाल बाफना का जन्म २० जुलाई सन् १९१९ को ग्राम फागना, जिला-धुलिया (महा) मे हुआ था। आपके पूर्वज मूलत राजस्थान मे गोठन जिलान्तर्गत हरसाल के निवासी थे। जहाँ स वे काफी समय पहले महाराष्ट्र मे आकर बस गए थे। शिक्षा के उपरात १९ वर्ष की आयु मे ही आपने फागना ग्राम पचायत म भाग लेना आरम्भ कर दिया था और सन् १९६२ तक आपका कार्यक्षेत्र धुलिया ही रहा। आपने धुलिया नगरपालिका मे विभिन्न पदो को सुशोभित किया जैसे अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, चेयरमैन-स्टेंडिग कमेटी, अध्यक्ष-बिल्डिग कमेटी सदस्य-स्कूल बोर्ड आदि। शिक्षा सबधी अन्य सस्थाओ मे आप सदस्य-स्कूल बिल्डिग धुलिया डिस्ट्रिक्ट, अध्यक्ष एम एस पी हाई स्कूल, धुलिया, उपाध्यक्ष-गरूड पुस्तकालय धुलिया सदस्य-शिवाजी विद्या प्रसारक सोसायटी, मत्री-पोलीटेकनीक धुलिया, अध्यक्ष फतेहचद एजूकेशन सोसायटी चिचवड, पुणे, अध्यक्ष-नेमीनाथ ट्रस्ट आश्रम, चादवड (जि नासिक) अध्यक्ष-जैन ओसवाल बोर्डिग धुलिया आदि भी रहे है। धुलिया मे श्री बाफना रेडक्रास सोसायटी के अध्यक्ष, मर्चेन्टस सहकारी बैक के सस्थापक अध्यक्ष उद्योग नगर सहकारी सोसायटी के सस्थापक-अध्यक्ष आफ्टर केयर एसोसिएशन के कोषाध्यक्ष अध्यक्ष-लायस क्लब तथा धुलिया नगर काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष और काग्रेस कमेटी के कोषाध्यक्ष भी रहे।

आरम्भ म श्री सचालाल बाफना ने सन् १९३८ मे अपने पिताजी की फर्म मैसर्स छगनलाल साहेबराव बाफना मे ही काम करना शुरू किया जो रूई और मूगफली का व्यापार करते थे। १९४६ से १९५२ तक आप ईस्ट इडिया कॉटन एसोसिएशन, बबई के प्रतिनिधि रहे जो पूर्वी क्षेत्र मे रूई की छाट करते थे।

सन् १९६३ म श्री बाफना औरगाबाद आ गए जहाँ उन्हे हिन्दुस्तान मोटर्स लि कलकत्ता और महिद्रा एड महिद्रा लि की डीलरशिप मिल गई। आप मेसर्स 'कैलाश मोटर्स, औरगाबाद और सदीप एजेसीज के मेनेजिग पार्टनर है। आप गुजरात ट्रेक्टर कॉर्पोरेशन बडौदा के हिन्दुस्तान टेक्टर और महिद्रा ओवेन लि के ट्रेलरो के विक्रता भी है।

सन् १९७२ मे श्री सचालाल बाफना ने औरगाबाद मे अपने स्वय के उद्योग स्थापित किए जिनमे सदीप मेटल वर्क्स, मराठवाडा स्पन पाइप्स, बी एस पावर केबल्स और बाफना रोलिग मिल्स शामिल है। आप औरगाबाद इवेस्टमेन्ट प्रा लि और सरवी टाइम इडस्ट्रीज प्रा लि के चेयरमैन भी है। श्री बाफना खेतिहर भी है। ग्राम फागना (जि धुलिया) मे उनकी ९६ एकड भूमि है, जिसमे वे गेहूँ ज्वार और बाजरा की काश्त करते है।

श्वेताबर स्थानकवासी जैन समाज मे श्री सचालाल बाफना की गणना अग्रगण्य सुश्रावको मे होती है। आप अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेस, नई दिल्ली के मत्री, महामत्री एव उपाध्यक्ष के पदो पर काम करते रहे है और अब सन्

१९८४ मे काफ्रेस के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे है। यह उन्ही की लगन और कार्यकुशलता का फल है कि अक्टूबर १९८८ मे काफ्रेस का अमृत महोत्सव और अधिवेशन आयोजित किया जा रहा है। उन्होने काफ्रेम की प्रतिष्ठा और श्रमण सघ की सुदृढता मे अपने आपको आत्मसात कर दिया है और स्वास्थ्य प्रतिकूल होते हुए भी अपने ध्येय के लिए दिनरात एक किए हुए है।

काफ्रेस के अतिरिक्त जैन समाज की अन्य सस्थाओ मे भी आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आप आनन्द प्रतिष्ठान, पूना के अध्यक्ष ओसवाल मित्रमडल, धुलिया के सभापति और भारत जैन महामडल के मत्री व उपाध्यक्ष रहे है। आप भगवान महावीर २५वी निर्वाण शताब्दी महोत्सव केद्रीय समिति के सदस्य भी थे।

श्री बाफना महाराष्ट्र सरकार द्वारा आनररी मजिस्ट्रेट के रूप मे सम्मानित किए गए है। आप जिन अन्य सस्थाओ मे सबद्ध रहे हैं, उनमे से कुछ प्रमुख ये है—वेस्टर्न महाराष्ट्र डेवलपमेट कॉर्पोरेशन, स्माल स्केल इडस्ट्रीज एडवाइजरी काउसिल, एक्सपोर्ट प्रोमोटर काउसिल आफ महाराष्ट्र, प्लानिग कमेटी आदि।

श्री बाफना जी की धर्मपत्नी स्व श्रीमती तारामती एस बाफना एक धार्मिक वृति की सुश्राविका थी।

पता मेसर्स कैलाश मोटर्स
पोस्ट बाक्स न ७
जालना रोड, औरगाबाद-४३१००१

श्री एस हस्तीमल मुणोत

श्री एस हस्तीमल जी मुणोत का जन्म सन् १९२५ म राजस्थान के पाली जिले म नीमली ग्राम मे हुआ। आपके पिता श्री हीराचद जी मुणोत बडी धार्मिक प्रकृति के थे। आपकी धर्मपत्नी सायर बाई एक आदर्श जीवन सगिनी है। आपन साहस एव प्रतिभा के बल पर व्यापार व्यवसाय के क्षेत्र म प्रवेश किया। व्यापार के हर क्षेत्र मे आपको सफलता मिलती गई। व्यावसायिक साख बढती गई। धीरे-धीरे आपने व्यापार के क्षेत्र मे सुदृढ एव गहरी नीव जमा ली। आज भी परोपकार हतु आपके द्वारा सक्रिय व्यापार मे अवकाश लेने के उपरात भी व्यापार सफलतापूर्वक चल रहा है। आपके दो पुत्र श्री भवरलाल जैन एव श्री मोहनलाल जैन बडी बुद्धिमत्ता एव व्यवहार कुशलता से आपकी प्रतिष्ठा को आग बढा रह है।

श्री हस्तीमाल जी व्यापार एव व्यवसाय मे आगे रहने के साथ ही युवावस्था से अनेक शैक्षणिक, सास्कृतिक एव धार्मिक सस्थानो से भी सबधित है। आप करीब पद्रह वर्षो तक एस एम जैन विद्यालय सिकदराबाद कमेटी के सचिव रहे। सन् १९८३ मे इस स्कूल की प्रबध व्यवस्था आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री भवरलाल जैन देख रहे है।
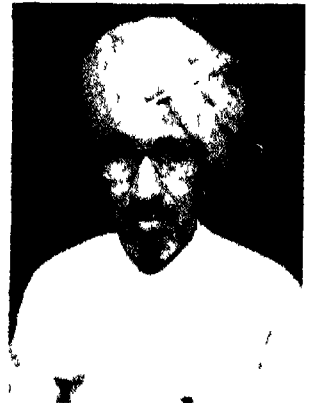
धार्मिक शिक्षा के प्रचार एव प्रसार मे भी श्री हस्तीमल जी का अपना योगदान है। आपने श्री आनद जैन आध्यात्मिक शिक्षा सघ की स्थापना की और युवक-युवतियो मे धार्मिक चेतना जागृत की। राणावास मे छात्रावास के निर्माण मे आपका योगदान रहा है। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र मे आपने एक बालिका छात्रावास एव विद्यालय के निर्माण मे सहयोग दिया।

साहित्य के क्षेत्र मे गत दस वर्षो मे आप ज्ञानोपयोगी जैन साहित्य का बिना मूल्य वितरण कर रहे है। श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन सघ हेतु आपने एक विशाल भवन का निर्माण करवाया जो कि वर्तमान मे सिकदराबाद मे जैन समाज की समस्त गतिविधियो का प्रमुख केद्र है। इस सघ के आप उपाध्यक्ष, अध्यक्ष एव सभापति रह चुके हैं। वर्तमान मे आप अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस के कार्याध्यक्ष है। विशाल साधु सम्मेलन के प्रवर्तक व सफल क्रियान्वयक भी है।

श्री हस्तीमल जी एव अन्य व्यक्तियो के अथक प्रयत्नो से निर्मित श्री महावीर हास्पिटल वर्तमान मे सिकदराबाद एव हैदराबाद का सबसे बडा प्रतिष्ठित चिकित्सालय है।

वर्तमान मे श्री हस्तीमल जी तपस्या के पथ पर अग्रसर हैं। विगत १८ वर्षो से आप निर्विघ्न रूप से 'एकातर वर्षी तप कर रहे है। आपका जीवन सरल, सात्विक एव अनुकरणीय है। आप खद्दर का उपयोग करते है और नग्न पाँव चलते है। सत एव सतियो की सेवा मे आपकी पूर्ण निष्ठा है। सन् १९८१ मे व्यापार व्यवसाय से अवकाश लेकर आप समाज सेवा के पुनीत कार्य मे रत है।

वर्तमान मे श्री हस्तीमल जी अपनी पूरी शक्ति सपूर्ण जैन समाज के एकीकरण मे लगा रहे है।

पता ७-२-८३२ पौट मार्केट सिकन्द्राबाद-५०००३ (आध्रप्रदेश)

डॉ रामानद जैन

डॉ रामानद जैन का जन्म ६ जनवरी, १९२१ को हरियाणा राज्य के जिला भिवानी के प्रमुख नगर चर्खी दादरी मे हुआ था। आपके पिता दानवीर सेठ श्री उद्दम सिह जी व माता श्रीमती जानकी देवी से सदैव आपको जो शिक्षा और प्रेरणा मिली वह आपके जीवन मे झलकती है। आपने चर्खी दादरी मे श्री उद्दम सिह जैन धर्मार्थ अस्पताल की स्थापना की है।

धार्मिक क्षेत्र मे भी आपका बडा सहयोग है। आप अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस के उपाध्यक्ष है। श्री श्वेताबर स्थानकवासी जैन सभा, स्थानक भवन, कोल्हापुर मार्ग, सब्जी मडी, दिल्ली के आप सभापति है। आपके द्वारा श्री उद्दम सिह जैन सभा मडप के निर्माण से इस स्थानक भवन को भव्य रूप मिल गया है। अन्य कई धार्मिक सस्थानो मे भी आपका सक्रिय योग है।

शिक्षा के क्षेत्र मे आप इन्द्रप्रस्थ गर्ल्स हाई स्कूल, जामा मस्जिद, दिल्ली के प्रधान है और इन्द्रप्रस्थ महिला कॉलेज, दिल्ली की मैनेजिग कमेटी के

सदस्य हैं। श्री त्रिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, अहमदनगर के आप सचालक प्रमुखो मे है। इस सस्था का धार्मिक परीक्षा केन्द्र के रूप मे बडा महत्व है। आप भगवान महावीर मैमोरियल समिति के प्रमुख हैं।

इसी प्रकार जैन अनाथ आश्रम व जैन कन्या आश्रम मे भी वहां के विद्यार्थियो के उत्थान म आपकी बडी लगन है और सदैव आपसे पूरा सहयोग इन सस्थाओ को मिलता है।

मृदुभाषी, शांत स्वभावी व्यक्तित्व के कारण डॉ रामानद जैन बडी से बडी समस्या का समाधान कर पाते हैं। व्यापारिक व औद्योगिक क्षेत्र मे भी थोड़े समय मे ही आपकी योग्यता व कार्यकुशलता के कारण व्यवसायो को उन्नति मिली है। उसी के कारण देश के उद्योगपतियो मे आप उच्च स्थान पाये हुए हैं।

डॉ जैन ने सन् १९४५ मे जैन ब्रदर्स के नाम से दिल्ली व कलकत्ता मे व्यापारिक सस्थान जैन स्टील ट्यूब कपनी के नाम से स्थापित किया। देश मे उस समय स्टील पाइप विदेशो से काफी मात्रा मे आयात होता था। जैन स्टील ट्यूब कपनी की स्थापना से औद्योगिक क्षेत्र मे स्टील पाइप का बहुत बडा व्यापार आप सचालन कर रहे हैं।

व्यापारिक उद्योगो मे आयात व निर्यात के क्षेत्र मे आपका क्षेत्र विस्तृत रूप मे फैला हुआ है।
पता जैन ट्यूब कपनी लिमिटेड, डी-२०, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली–११० ००१

श्री पारसमल चोरड़िया

एक कर्मठ समाज सेवक व धर्मपरायण व्यक्तित्व के धनी, जिन्हे उक्त कार्य अपने पूज्यपिता स्व पद्मश्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया से विरासत मे मिले, एक लम्बे समय से कान्फ्रेस के साथ सबधित है। आप कान्फ्रेस के उपाध्यक्ष एव विश्वस्तमडल मे ट्रस्टी है। मद्रास महासघ के अध्यक्ष है और अनेक सामाजिक व धार्मिक सस्थाओ से जुडे है।
पता १६३ मिट स्ट्रीट, साउकारपेठ मद्रास-६०००७९

श्री मोहनलाल पन्नालाल लुकड़

श्री मोहनलाल पन्नालाल लुकड का जन्म अहमदनगर जिले के आवकुटी नामक ग्राम मे हुआ। बचपन मे शिक्षा प्रबध न होने से आप पूना जिले के चाकण नामक ग्राम मे कुछ व्यवसाय करने की दृष्टि से आये और छोटी सी किराने की दुकान शुरु की। उसके पश्चात् आपने वहाँ छोटी सी एक आयल मिल प्रस्थापित की।

सामाजिक कार्य मे पहले से ही रत होने के कारण आपने चाकण मे ही यथाशक्ति कार्य शुरू किया और चाकण के आसपास प्राथमिक शिक्षण केन्द्र प्रस्थापित करने मे रुचि ली। चाकण कृषि उत्पन्न बाजार समिति प्रस्थापित करने मे आप अग्रसर रहे। अनेक शिक्षण सस्थाओ को मदद देकर और मार्गदर्शन करके सस्था का नाम और कार्य उज्ज्वल करने मे अग्रसर रहे। जैन विद्या प्रसारक मडल, चिंचवड आज भी शिक्षण क्षेत्र मे पूणे जिले मे अग्रसर है। इस सस्था के आप पिछले २० साल से कार्याध्यक्ष है।

चाकण से पूना जैसे विस्तृत क्षेत्र मे आकर आपने व्यावसायिक और सामाजिक कार्य मे महत्वपूर्ण प्रगति की। व्यावसायियक क्षेत्र मे दुनिया के प्रमुख देशो मे भी चाकण का नाम उज्जवल किया। पूना आने पर झोपडपट्टी में बच्चो के लिए सस्कार केन्द्र प्रस्थापित करके बच्चो को सुसस्कृत करने का काम हाथ मे लिया। पूना की ऐसी गदी बस्ती मे झोपडपट्टी मे आज २० सस्कार केद्र चालू हैं। प्रौढ साक्षरता वर्ग भी चालू कर दिए गए हैं।

निम्न सस्थाओ को आपका मार्गदर्शन प्राप्त है –

(१) आनन्द प्रतिष्ठान, पूणे।
(२) नेमीनाथ जैन ब्रह्मचर्याश्रम, चादवड।
(३) पूना हास्पिटल और रिसर्च सटर।
(४) जनता शिक्षण सस्था, पूणे।
(५) पुणे पिंजरापोल।
(६) श्रीमती पतासीबाई लूकड आधाराश्रम और अधशाला।

जैन समाज के होनहार गरीब विद्यार्थियो के लिए वस्तीगृह स्थापित करने मे और सुचारू रूप से चलाने मे आपका बहुत बडा हाथ है। आप अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के उपाध्यक्ष और समाज के मेधावी कार्यकर्ता है।

पता नव महाराष्ट्र चाकण आयल मिल्स
४२/४३, शकर सेठ रोड, पूणे-४११ ०३७ (महा)

श्री फकीरचद मेहता

धर्म और समाजसेवा के क्षेत्र मे पूर्णत समर्पित श्री फकीरचद जी मेहता का जन्म जलगाव मे वरणगाव नामक कस्बे मे २१ अगस्त १९२१को हुआ था। आपके पिता श्री नन्दलाल जी मेहता महाराष्ट्र के 'काटन किंग' के रूप मे मान जाने वाले एक प्रसिद्ध उद्योगपति थे। आपकी माता रतनबाई के धार्मिक सस्कारो का आप पर बचपन से ही प्रभाव पडा है।

आप सन् १९३९ मे भुसावल मे काटन प्रेस फैक्टरी की स्थापना कर उद्योग व व्यापार के क्षेत्र मे आगे बढे। उद्योग के साथ ही आपकी रुचि समाज और राष्ट्र की सेवा के कार्यो मे बढने लगी। आपने वरणगाव मे मराठी हाई स्कूल नसीराबाद मे हाई स्कूल भवन एव बोदवाड व एदलाबाद मे प्राथमिक विद्यालयो की स्थापना करवा कर शैक्षणिक विकास मे योगदान दिया।

सन् १९४० मे आपका विवाह उज्जैन निवासी श्री उदयचन्द जी देवडा की ज्येष्ठ पुत्री पारसरानी के साथ हुआ। आपकी धर्मपत्नी एक प्रसिद्ध समाज सेविका के रूप मे जानी जाती है।

सन् १९५० मे आपने राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु बबई राज्य मे हिन्दी सेवा मडल नामक नाम एक सस्था की स्थापना की। वर्तमान मे इस सस्था मे लगभग ३५०० छात्र- छात्राए अध्ययनरत है। आपने इस सस्था के परिसर मे रतनबाई नन्दलाल जी हिन्दी भवन का निर्माण करवाया। हिन्दी सेवा मडल के माध्यम से आपका सपर्क देश के अनेक नेताओ और सत महापुरुषो से हुआ। वर्तमान मे आप इस सस्था के कार्याध्यक्ष है।

समाज सेवा के क्षेत्र मे निरतर गतिमान श्री मेहता भारत जैन महामडल के साथ विगत ३९ वर्षो से सम्बद्ध है। इसमे सस्था के प्रबध मत्री, प्रधान मत्री एव प्रचार मत्री के रूप मे आपने देश के विभिन्न भागो मे भ्रमण कर जैन एकता और समन्वय की दिशा मे व्यापक कार्य किया।

खानदेश ओसवाल शिक्षण सस्था भुसावल एव जामनेर के महत्वपूर्ण पदो पर रहते हुए देश व देशातर मे उच्च अध्ययनरत छात्र-छात्राओ को छात्रवृत्ति प्रदान करने मे अति महत्वपूर्ण योगदान दिया।

आपके कुशल नेतृत्व मे कई सामाजिक, धार्मिक व व्यावसायिक सस्थाओ की स्थापना और उनका विकास हुआ। अपने औद्योगिक विकास एव सेवा के व्यापक क्षेत्र की दृष्टि से फकीरचद मेहता ने महाराष्ट्र के साथ मध्यप्रदेश मे इदौर नगर को भी अपनी कर्मस्थली बनाया।इदौर मे आने के बाद आपकी सेवा का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो गया। अनेक अखिल भारतीय स्तर की सस्थाओ मे आपको महत्वपूर्ण पदो पर रह कर सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। अखिल भारतीय जैन दिवाकर सगठन समिति श्री चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम, चित्तोडगढ, जैन दिवाकर छात्रावास नीमच, गोदावन जैन गुरुकुल छोटी सादडी के ट्रस्टी, जवाहर जैन विद्यापीठ कानोड, उपाध्याय प्यारचद जी महाराज सिद्धातशाला, जैन दिवाकर फाउडेशन, जैन दिवाकर विद्या निकेतन ट्रस्ट आदि धार्मिक क्षेत्र की सस्थाओ के माध्यम से धार्मिक शिक्षण के प्रचार-प्रसार की दिशा मे सक्रिय कार्य कर रहे है।

अनेक लोकोपकारी ट्रस्टो व सामाजिक सगठनो के माध्यम से आपके द्वारा जन सेवा के कई महत्वपूर्ण कार्य सपन्न हो रहे हैं। श्री सौभाग्यमल जैन पारमार्थिक ट्रस्ट, आनद प्रतिष्ठान पूना, राजमल नन्दलाल मेहता चेरिटेबल ट्रस्ट, महावीर स्वास्थ्य केद्र इदौर, अखिल राजस्थान अहिसा प्रचारक जैन सघ अखिल भारतीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स, श्री वर्धमान श्वेताबर स्थानकवासी जैन श्रावक सघ चातुर्मास समिति, अखिल भारतीय जैन विद्वत परिषद् आदि सस्थाएँ आपकी सेवाओ का प्रतिबिब रूप है।

आपने उद्योग के क्षेत्र मे भी काफी सम्मान अर्जित किया है। आप नन्दलाल भडारी मिल्स लि के डायरेक्टर और म प्र कॉटन एसोसिएशन के उपाध्यक्ष रहे। वर्तमान मे कॉटन एसोसिएशन इदौर के उपाध्यक्ष पद पर अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे है।

जैन समाज के एक महान सेवा भावी व्यक्तित्व के रूप मे उभरे श्री फकीरचद मेहता स्वभाव से अत्यत सरल, मृदुभाषी एव मिलनसारिता के गुणो से ओतप्रोत है। सत सभाओ के माध्यम से जन-जीवन म नैतिक उत्थान की दिशा मे आप हमेशा तत्पर रहत है। महापुरुषो की जयतिया, तपोत्सव समारोह, व्याख्यानमाला, दीक्षा महोत्सव आदि अनेक आयोजनो मे आप हमेशा आगे रहते है। समाज मे सबको साथ लेकर चलना आपके जीवन का मूलमत्र है। कदाचित इसलिए सभी कार्यकर्तागण आपके साथ सेवा कार्य करने हेतु सदैव तत्पर रहते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नही होगी कि समाज सेवा मे श्री फकीरचद मेहता ने अपने आप को समर्पित कर दिया है।

पता 'पारस' ६-डॉ भण्डारी मार्ग इदौर- ४५२००२

श्री नृपराज शादीलाल जैन

श्री नृपराज जैन का जन्म १० जनवरी सन् १९२८ को अमृतसर (पजाब) मे हुआ। आप स्व श्री शादीलाल जी जैन के ज्येष्ठ पुत्र है जो बबई के एक बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे बबई के शेरिफ रह चुके थे और अनेक जैन सस्थाओ के पदाधिकारी थे।

श्री नृपराज जैन अल्पावस्था मे ही अपने पैतृक व्यवसाय मे शामिल हो गए थे। श्री जैन लायन पेसिल्स प्रा लि के चेयरमेन और मे डायरेक्टर है। आप कश्मीर मेडार वुड जम्मू कश्मीर, रतनचद हरजसराय (एम) प्रा लि फरीदाबाद आदि कपनियो के भी चेयरमैन/डायरेक्टर है।

धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र मे श्री नृपराज एक उत्साही कार्यकर्ता है। आप भारत जैन महामडल,कैसाबलाका, सहकारी सोसाइटी, बबई,श्री पजाब जैन भ्रातृ सभा, बबई के अध्यक्ष हैं। श्री जैन श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति के भी अध्यक्ष हैं जो श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान वाराणसी का सचालन करती है। इनके अतिरिक्त कई धर्मार्थ ट्रस्टो की भी आप देखभाल कर रहे हैं।

पता १७१/१७२ कैसाबलाका, १७ वी मजिल, कफ परेड बबई-४०० ००५

श्री रतनचद रांका

सरल स्वभावी युवा उद्योगपति श्री रतनचद राका का जन्म १५ सितबर सन् १९३२ को सिवाना, जिला बाडमेर (राजस्थान) मे हुआ था। उनके पिता का नाम श्री जसराज जी माता का नाम श्रीमती वरजू देवी और पत्नी श्रीमती सुखी देवी है। व्यापार और उद्योग के क्षेत्र मे आप बहुत अग्रसर हैं और आप (१) राका केबल्स प्रा लि कडपा तथा सिकदराबाद, के मैनेजिग डायरेक्टर तथा (२) राका मेटल्स, बबई (३) राका टैक्सटाइल्स, अहमदाबाद और कमलेश इडस्ट्रीज, जोधपुर के मालिक हैं।

श्री रतनचद राका अस्पताल सेवा और शैक्षणिक क्षेत्र मे मुक्त हस्त से दान देते है। उन्होने (१) भगवान महावीर के नाम पर कडपा जिला टी बी केन्द्र मे एक तपेदिक का अस्पताल बनवाया है। (२) सुमेरपुर मे एक जनरल अस्पताल और अनुसधान केद्र का निर्माण करवा रहे हैं और, (३) कैसर सनीटोरियम, जोधपुर (४) भगवान महावीर अस्पताल व अनुसधान केद्र, हैदराबाद, जिसके आप उप-प्रधान है (५) पुनर्निर्माण केद्र बनावटी अग जयपुर, (६) राजस्थान के अनुसूचित जाति क्षेत्र मे महावीर अस्पताल तथा मरीजो के हितार्थ अन्य चिकित्सा व शैक्षणिक सस्थाओ को आपने मुक्त हस्त से दान दिए है। इसके अतिरिक्त आपने ग्रामीण और अनुसूचित जाति क्षेत्र मे कई नेत्र चिकित्सा शिविर लगवाए है तथा सिवाना ग्राम (राजस्थान) मे चिकित्सालय निर्माण के लिए रोटरी धर्मार्थ ट्रस्ट पाली की स्थापना की है और अपने जन्म स्थान रावी (जिला-बाडमेर) मे एक अस्पताल खोला है।

शिक्षा के क्षेत्र मे श्री राका ने (१) कडपा मे भगवान महावीर के नाम पर एक स्नातकोत्तर केद्र स्थापित किया है। (२) नन्दाल्लुर मे जूनियर कॉलेज (३) विवेकानद एजुकेशनल सोसाइटी, मद्रास और (४) सी यू शाह भवन, मद्रास के लिए दान दिया है। रावी मे लडके और लडकियो के लिए एक माध्यमिक स्कूल की स्थापना की है। आप जसराज राका धार्मिक ट्रस्ट के सस्थापक और मैनेजिग ट्रस्टी भी है।

श्री राका की सेवाओ और प्रतिष्ठा को सम्मानित करने हेतु भारत सरकार ने उन्हे १९८९ मे 'उद्योग पत्र अवार्ड' दिया था। जैन समाज ने उन्हे 'समाज रत्न' की उपाधि प्रदान की है। ट्रासवर्ल्ड ट्रेड फेयर मे उन्हे स्वर्ण पदक और १९८३ मे प्रोडक्टिविटी (उत्पादन) इनाम मिला था।

पता राका केबल्स प्रा लि
३१५-३१७, चिनोय ट्रेडिंग सेटर, पार्क लेन सिकदराबाद- ५०० ००३

श्री जे. डी. जैन

सुप्रसिद्ध उद्योगपति, समाजसेवी तथा धर्मपरायण श्री जे डी जैन का जन्म हरियाणा प्रांत के सोनीपत जिले के अतर्गत रमडा नामक ग्राम मे हुआ। आपके पिता श्री मनोहरलाल जी जैन उदार, धर्मनिष्ठ, परिश्रमी एव लगनशील सद्गृहस्थ थे, जिनके पावन सस्कारो ने श्री जे डी जैन के लिए बहुआयामी जीवन का निर्माण किया। अपनी आरभिक शिक्षा दिल्ली मे प्राप्त करने के बाद श्री जैन ने सिविल इजीनियरी की उपाधि प्राप्त की। महत्वाकाक्षी युवक श्री जे डी जैन ने २३ वर्ष की आयु मे इस्पात उद्योग मे प्रवेश किया और अल्पकाल मे ही अपनी कार्यकुशलता, श्रम एव मिलनसारी के कारण इस उद्योग व्यापार की प्रथम कोटि मे स्थापित हो गए।

जैन रोलिंग मिल्स, मुकन्द नगर, गाजियाबाद जैसे उच्च कोटि के व्यापारिक सस्थान की स्थापना के साथ ही कृषि एव चीनी उद्योग के कई प्राविधिक उपकरणो के उत्पादन का कार्य भी आपने प्रारभ किया।

उद्योग व्यवसाय की सफलता के साथ समाज सेवा मे भी श्री जैन की प्रगाढ रुचि है। आपकी दक्षता का सबसे बडा प्रमाण यह है कि आज आप देश की बहुसख्यक सस्थाओ के सस्थापक, सरक्षक, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा मानद सदस्य है। कई बार देश के नेताओ द्वारा आपको उल्लेखनीय योगदान के लिए सम्मानित किया गया।

व्यवसाय और समाज सेवा के साथ ही धर्माराधन एव सत्सग श्री जैन के जीवन के अभिन्न अग है। नित्य दिन सामायिक व्रतोपवास, साधु-सती दर्शन, स्वाध्याय और अतिथि सेवा आपकी दिनचर्या की विशेषताएँ है। अपने व्यस्ततम समय मे से अधिकाश समय वे रोगियो की सेवा सुश्रुषा मे लगाते है और इस सेवा हेतु उन्होने कई अस्पतालो, औषधालयो तथा सहायता कोषो का प्रवर्तन किया है। श्री जैन को इन सदवृत्तियो मे आचार्य सम्राट पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज, राष्ट्र सत प्रवर्तक भडारी श्री पदमचद जी महाराज आदि आध्यात्मिक विभूतियो का आशीर्वाद प्राप्त है।

वर्तमान मे श्री जैन निम्नलिखित सस्थाओ से सबद्ध है –

सरक्षक गाजियाबाद लोहा विक्रेता मडल, गाजियाबाद। स्टील रिरोलिंग मिल्स एसोसिएशन आफ वेस्टर्न, यू पी, गाजियाबाद। जैन मिलन, गाजियाबाद। श्री वर्धमान श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन महासघ, दिल्ली।

अध्यक्ष भारतीय जैन मिलन, जो कि चारो सप्रदायो की एकमात्र सस्था है और जिसकी २३१ शाखाएँ एव ११,००० सदस्य है। उत्तर प्रदेश श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन महासघ, जिसमे सारे प्रान्त की ७२ जैन स्थानक हैं। श्री एस एस जैन सघ, गाजियाबाद। श्री एस एस जैन सभा, मोतियाखान, नई दिल्ली। लाला मनोहरलाल जैन चैरिटेबल ट्रस्ट, गाजियाबाद। श्री वर्धमान जैन गोसदन, पट्टी कल्याणा, हरियाणा। जैन मुनि श्री भागमल महाराज स्मारक अस्पताल, पुरखास, सोनीपत, हरियाणा। जैन साध्वी पदमा विद्या निकेतन, शास्त्री नगर, शक्तिनगर एक्सटेशन, दिल्ली।

उपाध्यक्ष आल इडिया स्टील रिरोलर्स एसोसिएशन, नई दिल्ली। अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स, नई दिल्ली। इजीनियरिंग एसोसिएशन आफ नार्दन इडिया, कानपुर।

पता के बी-४५, कवि नगर, गाजियाबाद-२०१००३ (उ प्र)

श्री हीरालाल जैन

सामाजिक और शिक्षा के क्षेत्र मे आपका अद्वितीय योगदान रहा है। आपने लुधियाना मे होम्योपैथिक कॉलेज एव अस्पताल की स्थापना की है और पजाब सरकार की सहायता से लार्ड महावीर फाउडेशन की नीव डाली है।

आप आत्म पब्लिक स्कूल, लुधियाना के अध्यक्ष तथा जैनेन्द्र गुरुकुल पचकूला और जनता कॉलेज, जगराव के सदस्य रहे हैं। पजाब सरकार द्वारा आप गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर की सिनेट के सदस्य नामजद किये गये थे।
पता आत्म भवन, ३८ आत्म नगर, लुधियाना-१४१००३ (पजाब)

श्री अजितराज सुराणा

श्री अजितराज सुराणा का जन्म २१ सितबर सन् १९३१ को जोधपुर मे हुआ। आप के पिता श्री बच्छराज जी सुराणा स्वर्गीय प्राणिमित्र, पद्मश्री सेठ आनद राज जी सुराणा के भाई थे। सेठ आनद राज जी सुराणा के पश्चात् अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेन्स मे उनके उत्तराधिकारी के रूप मे श्री अजितराज सुराणा स्वर्गीय सेठजी की ही तरह तन-मन-धन मे अपनी सेवाएँ अर्पित कर रहे है।

श्री सुराणा छापेखाने की मशीनो के सुप्रसिद्ध व्यापारी है और मे इडो-युरोपियन मशीनरी कपनी के डायरेक्टर है जिसकी शाखाएँ बबई कलकत्ता बेगलोर और मद्रास मे भी है।

स्वभाव से निष्कपट निराभिमानी, गभीर, शात, सरल एव उदार श्री अजितराज सुराणा पिछले ८ वर्षो से जैन कान्फ्रेन्स के दिल्ली कार्यालय का कार्य बडी कुशलता दक्षता, उत्साह एव आत्मीयता से देख रहे है। आपने अनेक नगरो तथा विदेशो तक फैले हुए व्यापार मे व्यस्त रहते हुए भी सुराणा जी कान्फ्रेस के कार्यालय मे पर्याप्त समय देते है। इनकी सेवाएँ केवल कान्फ्रेन्स तक ही सीमित नही है। दिल्ली की स्थानीय सस्थाओ मे धन एव समय दोनो ही दृष्टियो से श्री सुराणा का उल्लेखनीय योगदान रहता है।

श्री सुराणाजी सभी से समायोजन तथा सामजस्य रखकर चलने वाले है। 'जैन प्रकाश' के सपादक के रूप मे उन्होने बडे ही विवेक एव धैर्य से काम लिया है। पत्र मे कभी भी विरोधात्मक तथा दूसरो को अपमानित करने वाली सामग्री को स्थान नही दिया है। वे चाहते है कि सस्था का पत्र सस्था की आवाज तथा सदेशो को शत-प्रतिशत सही ढग से पाठको तक पहुँचाए।

वे एक निस्वार्थ सेवी है। उन्हे यश, पद, प्रतिष्ठा आदि किसी भी प्रकार का लालच नही है। आप मूक एव ठोस कार्यकर्ता है। सामाजिक क्षेत्र मे श्री अजितराज सुराणा राजस्थान मित्र परिषद् के अध्यक्ष और सुराणा विश्व बधुत्व ट्रस्ट एव श्रीमती मोहन देवी सुराणा चेरीटबल ट्रस्ट के मैनेजिग ट्रस्टी है। आप अ भा श्वे स्था कान्फ्रेन्स के मत्री और ट्रस्टी है।
पता ए-१/२९०, सफदरजग इन्क्लेव, नई दिल्ली ११० ०२९

श्री पुखराजमल एस.लुकड़

उद्योग एव समाजसेवा मे सुप्रसिद्ध श्री पुखराजमल एस लुकड मूलत राजस्थानी ओसवाल है, किंतु सैकडो वर्षों पूर्व महाराष्ट्र के जलगाव मे इनके पूर्वज आकर बस गए थे और गत पैतीस वर्षों मे बबई मे स्थायी निवास कर रहे है। आपका जन्म जलगाव (महाराष्ट्र) मे दिनाक ६ जनवरी १९२१ को हुआ। व्यवसाय एव उद्योग के क्षेत्र मे सफल श्री लुकड फिल्म एक्सपोर्ट मे फिल्म प्रोसेसिंग तथा प्रोजेक्टर निर्माण आदि काम कर रहे है। वर्तमान मे आप निम्नलिखित कपनियो के डायरेक्टर है —

(१) मे पी एस लुकड एड सस प्रा लि
(२) मे पी डी आर विडियोट्रोनिक्स इडिया प्रा लि
(३) परमाफिल्म ऑफ इडिया प्रा लि
(४) परमाफिल्म ऑफ मद्रास प्रा लि
(५) सिने सुपर प्रा लि
(६) कल्पना ट्रेडर्स प्रा लि
(७) ऑटोरामा प्रा लि

आप उद्योग व्यापार के साथ-साथ धार्मिक, सामाजिक शैक्षणिक कार्यो मे भी तन-मन-धन से सहयोग देते रहे है। उदार हृदय श्री लुकड निम्नलिखित सस्थाओ मे सक्रिय रूप से सम्बद्ध है —

(१) भारत जैन महामडल, बबई- प्रधानमत्री
(२) श्री ओसवाल मित्र मडल, बबई- उपाध्यक्ष
(३) श्री महावीर फाउडेशन बबई- मैनेजिग ट्रस्टी
(४) श्री अरिहत सेवा ट्रस्ट, बबई- मैनेजिग ट्रस्टी
(५) पी एस लुकड एड सस चेरिटेबल ट्रस्ट बबई- मैनेजिग ट्रस्टी
(६) श्री जवाहर जैन विद्यापीठ, कानोड (राज) - उपाध्यक्ष
(७) श्री तिलोकरत्न स्थानकवसी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड अहमदनगर
(८) आनन्द प्रतिष्ठान, पूना
(९) आप अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स, नई दिल्ली के मत्री है।

इसके अतिरिक्त देश भर की अनेक सभा, सस्थाओ के आप सरक्षक, आजीवन सदस्य है। लुकड बधुओ की ओर से जलगाव मे सागर भवन, सागर हाई स्कूल, सागर आयुर्वेदिक औषधालय सागर टावर, सागर व्यायामशाला आदि सस्थाए सचालित हैं।

अत्यत सरल, सेवाभावी, पद एव प्रतिष्ठा की लालसा मे मुक्त श्री पुखराज लुकड अधिकाश समय सेवा कार्यो मे लगाते है। आपके दोनो पुत्र श्री देव कुमार एव राजेन्द्र उद्योग व्यापार सभालते हुए सेवा करने का आपको अवसर देते है और धर्मपत्नी श्रीमती सुलोचना देवी इनके धार्मिक, सामाजिक कार्यो मे सहभागी रहती है।

पता ७१ गगा विहार, रफी अहमद किदवई मार्ग, किग्स सर्कल, बबई- ४०० ०१९

श्री के. उत्तमचंद रूणवाल

श्री उत्तमचद रूणवाल का जन्म सन् १९४० मे हुआ था। आप श्री कन्हैयालालजी रूणवाल के पुत्र हैं। अपने व्यापार के साथ-साथ आप गत २७ वर्षों से सामाजिक व धार्मिक गतिविधियो मे सक्रिय रहे हैं।

आप अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के मत्री हैं और कान्फ्रेन्स के सशोधित विधान की रूपरेखा बनाने मे आपने महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। १९८७ मे पूना मे वृहत् साधु-सम्मेलन के आयोजनार्थ गठित कान्फ्रेन्स की समिति के आप मत्री रह चुके है। श्री रूणवाल (१) राजस्थान समाज, बगलौर (२) हिन्दी शिक्षण सघ, बगलौर (३) कर्नाटक पान ब्रोकर्स एसोसिएशन तथा (४) श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन सघ, शिवाजी नगर, बगलौर की कार्यकारिणी समितियो के सदस्य हैं।

आप श्री जैन शिक्षा समिति, अशोक नगर बगलौर के सस्थापक एव मत्री है, जिसके तत्वावधान मे निम्नलिखित सस्थाएँ सचालित है —

(१) श्री हजारीमल मुल्तानमल जैन छात्रालय
(२) श्री मुआबाई जैन धर्म प्रचारक प्रशिक्षण केन्द्र,
(३) श्री सन्मति स्वाध्याय पीठ
(४) श्री मुथा जैन ग्रथालय।
(५) आप श्री रूणवाल बगलौर गोरक्षणी शाला के मत्री भी है।

पता १७२ शिवाजी रोड शिवाजी नगर, बगलौर—५६० ०५१

श्री शातिलाल इन्द्रचन्द दुगड

उत्साही और लगनशील कार्यकर्ता श्री शातिलाल दुगड का जन्म नासिक मे हुआ था। आप सिविल इजीनियर है। साधु सतो की सेवा मे विशेष रुचि रखने वाले श्री शातिलाल अनेक सामाजिक व धार्मिक सस्थाओं से सबद्ध है। कुछ सस्थाएँ निम्नलिखित है —

(१) जैन ओसवाल बोर्डिंग, नासिक-अध्यक्ष
(२) आदर्श ज्योति शिक्षण फड, सगमनेर-उपाध्यक्ष
(३) श्रावक सघ, नासिक-मन्त्री
(४) अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेन्स, नई दिल्ली-मन्त्री
(५) धार्मिक परीक्षा बोर्ड, अहमदनगर तथा वर्धमान महावीर सेवा केन्द्र, देवलाली नासिक-ट्रस्टी

पता २०३, मुदडा बिल्डिंग, महात्मा गाधी रोड, नासिक-४२२ ००१
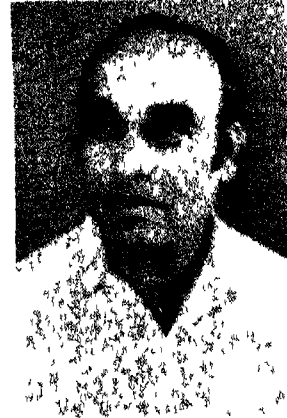
श्री बंकटलाल मोतीलाल कोठारी

श्री मोतीलालजी कोठारी के सुपुत्र श्री बकटमलजी कोठारी एक महान व्यक्तित्व के धनी है। आपकी समाज सेवा व धर्मपरायणता की पूना जैन समाज ही नही बल्कि सर्व श्रमण सघीये समाज पर छाप है। आप मई १९८८ मे श्रमण सघीय साधु सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का पद सुशोभित किया। आप कान्फ्रेन्स के साथ लम्बे समय से जुडे हुए हैं अभी आप मत्री पद पर हैं। पता मोतीबाग ६९२/१/६ सतारा रोड, पुणे ४११०३९

श्री मेहताब चन्द जैन

आप दिल्ली जैन समाज के कर्मठ कार्यकर्ता है। आप दिल्ली मैट्रोपोलियन कौसिल के सदस्य हैं।
पता २००१ नौघरा, किनारी, बाजार दिल्ली-११०००६

श्री निर्मल कुमारजी जैन

श्री निर्मल कुमार जैन का जन्म सन् १९४२ मे हुआ। उनके पिताश्री का नाम श्री किशनचद जैन है।

श्री निर्मल कुमार चार्टर्ड अकाउटेट है और मे निर्मल जैन एड कपनी के पार्टनर है। आप इस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड अकाउटेट्स ऑफ इडिया के उत्साही सदस्य और कार्यकर्ता रहे हैं। इस सस्था की उत्तर भारतीय तथा मध्य भारतीय परिषदो के सदस्य रहे है और कई गोष्ठियो और सम्मेलनो म आपने इस सस्था का प्रतिनिधित्व किया है।

धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्र मे श्री जैन बडी रुचि और लगन से काम करने वाले युवा नेता है। दिल्ली की अनेक धार्मिक सस्थाओ मे आप कार्यरत है। आप श्री पार्श्वनाथ सार्वजनिक पुस्तकालय एव वाचनालय के अध्यक्ष, तथा विद्या सस्थान के मन्त्री तथा जैन समाज दिल्ली, भारत जैन महामडल की दिल्ली शाखा एव श्री एस एस जैन बिरादरी ट्रस्ट के कोषाध्यक्ष है। श्री निर्मल कुमार अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन काफ्रेस के प्रथम कोषाध्यक्ष हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र मे भी श्री निर्मल कुमार जैन कितनी ही सस्थाओ को पूरा योगदान दे रहे है। इस क्षेत्र म आप लायस क्लब, लोक कल्याण समिति, सेट स्टीफेम अस्पताल और भगवान महावीर अस्पताल मे सक्रिय रूप से सम्बद्ध है।

पता ६५ ई, कमला नगर दिल्ली-११० ००७

श्री सुभाष ओसवाल

विनयशील तथा मृदुभाषी ३६ वर्षीय श्री सुभाष ओसवाल सुप्रसिद्ध समाजसेवी सेठ बनारसीदास जी ओसवाल के सुपुत्र है। अपने पिताश्री से मिले सुसंस्कारो के कारण इस अल्पायु मे ही आपने अपना समाजसेवा क्षेत्र इतना व्यापक बना लिया है कि जैन व जैनेत्तर संस्थाओ मे आपका लुभावना व्यक्तित्व एक नव आकर्षण पैदा कर देता है। एक तरफ आप भारत जैन महामंडल, अखिल भारतवर्षीय श्वेतांबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स, अहिंसा विहार, भगवान महावीर हॉस्पिटल, महासती मोहनदेवी शिक्षण समिति, श्री त्रिलोक रत्न धार्मिक परीक्षा बोर्ड आदि अनेक धार्मिक संस्थाओ के पदाधिकारी है तो दूसरी ओर लायन्स क्लब, महावीर सीनियर मॉडल स्कूल आदि संस्थाओ से भी संबद्ध है। आपके व्यक्तित्व और काम से समाज के नवयुवको को एक नई दिशा व प्रेरणा मिल रही है। समाज सेवा के यज्ञ मे निरतर लगे रहने के कारण कई संस्थाओ द्वारा आपका अभिनदन भी किया गया है। माननीय तिवारी जी द्वारा प्रोग्रेसिव जैन इन इण्डिया, दिल्ली समाज द्वारा महामना मदन मोहन मालवीय पुरस्कार, कोटा समाज की ओर से 'युवा रत्न' आदि से आपको सम्मानित किया गया है। आप अखिल भारतवर्षीय श्वेतांबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस, नई दिल्ली की युवा शाखा के वर्तमान अध्यक्ष है।

पता ९३० पजाबी मोहल्ला
घटाघर, सब्जी मडी, दिल्ली-११० ००७

श्रीमती सुलोचनादेवी पी लुकड

इन्दौर के भंडारी परिवार मे जन्मी एव सुसंस्कारो मे विकसित हुई श्रीमती सुलोचना देवी लुकड परिवार की कुलवधू है। अपने पति श्री पुखराजमल एस लुकड की सच्ची अर्धांगिनी के रूप मे वे धार्मिक सामाजिक, शैक्षणिक तथा सेवाकार्यो मे उदारता से सहयोग देती है। दृढ धार्मिक संस्कार, जीवन मे धार्मिक क्रियाएँ और व्यवहार मे निपुण श्रीमती सुलोचना देवी अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स नई दिल्ली की महिला विभाग की वर्तमान अध्यक्षा है।

सौम्य मुस्कराहट, ममता एवम् वात्सल्य भरा हृदय श्रीमती सुलोचना देवी की विशेषताएँ है। अन्नपूर्णा की भाति अतिथि सत्कार एवम् दूसरो के सुख-दुख मे सहभागी आप एक सरल मिलनसार एव सबको साथ लेकर चलने वाली महिला है।

पता ७१, गंगा विहार रफी अहमद किदवई मार्ग, किंग्स सर्कल बंबई- ४०० ०१९

" समाज गौरव "

श्री अच्छरू राम जैन

अखिल भारतवर्षीय श्वेतांबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स, नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य, श्री अच्छरू राम जैन श्री अनन्तराम जैन के सुपुत्र हैं। आप एस एस जैन बिरादरी, लुधियाना (पजाब) के महामत्री हैं।

श्री अच्छरू राम जी का लुधियाना मे सिथेटिक यार्न का व्यापार है।

पता मेसर्स अनन्तराम अच्छरूराम (रजि)
कटरा-नौहरिया लुधियाना-१४१ ००८

श्री अभय कुमार जैन

श्री अभय कुमार जैन बरनाला (पजाब) निवासी श्री नुरातारा‍य जैन के सुपुत्र है। आपके पिताश्री की धर्म मे अटूट श्रद्धा थी और धार्मिक प्रवृत्तियो मे बडी रुचि रखते थे। बरनाला मे जैन स्थानक बनवाने के लिए जमीन उन्होने ही दी थी। आपकी पत्नी श्रीमती अजना जैन भी धार्मिक और सामाजिक कार्यों मे भाग लेती है।

श्री अभय कुमार एक जिंदादिल युवक है। सामाजिक कार्यों मे वे आगे रहते है। आप एस एस जैन सभा, चडीगढ के अध्यक्ष हैं। श्री जिनेन्द्र गुरुकुल पचकूला मे स्कूल के मैनेजर है। अहिंसा इन्टरनेशनल चडीगढ के सस्थापक मत्री है

श्री अभय कुमार जैन मे फीजेर लि चडीगढ मे असिसटेट मैनेजर हैं। आप अखिल भारतवर्षीय श्वेतांबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स, नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य है।

पता १५८, सेक्टर स १८-ए चडीगढ-१६० ०१८

श्री कचरदास मोहनलाल लोढ़ा

श्री कचरदास लोढा का जन्म शक १९३७ मे महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले मे हिंगनगाव नामक गाँव मे हुआ। आपके माता-पिता के सस्कारी होने के कारण आपके बचपन से ही व्यावसायिक और धार्मिक सस्कार है। आप लगभग ५० साल मे भी पहले अहमदनगर मे व्यवसाय हेतु आकर बसे। आपने पू गणेशलालजी महाराज का शाति सप्ताह उस समय अपने गाँव मे किया और पू आचार्य श्री जी का पाँच महीने का चातुर्मास का बोझ आपने श्रीसघ की अनुमति से स्वय ही उठाया। आपने अभी पू मती अर्चना जी का चातुर्मास का बोझ भी उठाया। आपको साधु सतो की सेवा की बहुत लगन है। आपने कई गाँवो मे जाकर अन्नदान एव वस्त्रदान जैन, अजैन को मानवता धर्म के नाते दिया है। आप अहमदनगर श्री सघ के सघपति के पद पर रह चुके है। आप इडियन ऑयल कार्पोरेशन के अहमदनगर और बीड जिले के डीलर है।

पता मे कचरदास मोहनलाल लोढा, डिस्ट्रिब्यूटर, इडियन ऑयल कार्पोरेशन लि
२२७४, आडते बाजार, अहमदनगर-४१४ ००१

स्व. श्री कंवरलाल बेताला
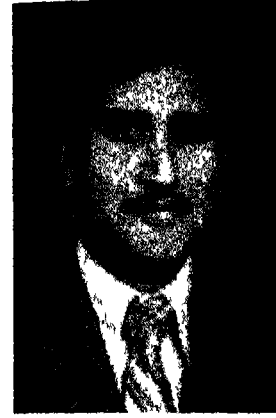
श्री कवरलाल बेताला जिनका दुखद निधन कुछ समय पहले हो गया है, गुवाहाटी जैन समाज के सच्चे आभूषण थे। जब भी धार्मिक, सामाजिक, सद्कार्यों का अवसर आया, आप अग्रणी रहे। आपने अर्जन एव विसर्जन शब्दो को यथार्थ रूप मे कार्य परिणत किया था। गौहाटी का नवनिर्मित जैन भवन इसका साक्षात् प्रमाण है। शिक्षा, साहित्य एव स्थानको के निर्माण मे भी आपने मुक्त हस्त से दान दिया।

आप स्था जैन सघ पूर्वांचल, श्री वर्द्धमान स्था जैन भवन गोहाटी, श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर, श्री मुनि हजारीमल प्रकाशन समिति ब्यावर एव गौहाटी सघ के अध्यक्ष थे। अ भा चातुर्मास सूची प्रकाशन बबई के उपाध्यक्ष थे। इसी प्रकार अखिल राजस्थान अहिंसा प्रचार सघ चित्तोडगढ, श्री महावीर स्वास्थ्य केन्द्र इन्दौर, श्री नेमनाथ ब्रह्मचर्याश्रम चाँदवड, भारत जैन महामडल बबई, श्री प्राणी रक्षा समिति इदौर के सरक्षक थे। पूर्वोत्तर मारवाडी सम्मेलन महिला कोष गोहाटी, वर्द्धमान महावीर बाल निकेतन माउट आबू, श्री अनाथ गोरक्षा समिति डेह (नागौर) तथा जयमल जैन छात्रावास मेडता के ट्रस्टी थे एव श्री अ भा श्वे स्था जैन कान्फेन्स दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य थे। आपकी कर्मठता, कर्तव्यनिष्ठा, कार्यकुशलता, व्यापारिक दक्षता, सत सतियो के प्रति अगाध भक्ति समाज के लिए अनुकरणीय है। बडे दुख का विषय है कि २९ सितम्बर १९८८ को हृदयगति रुक जाने मे सुप्रसिद्ध समाजसेवी श्री कवरलाल बेताला का निधन हो गया।

पता मेसर्स ज्ञानचद धरमचद बेताला ए टी रोड, गुवाहाटी-७८१ ००१

कान्तिलाल जी जैन

पता ६-ए/४५, माल रोड,
रावेरा कम्पाउड,
दिल्ली-११० ००६

श्री कीमतीलाल जैन

सफल और उत्साही युवा व्यवसायी एव उद्योगपति श्री कीमतीलाल स्वर्गीय श्री खैरातीलाल जैन (सरक्षक, एस एस जैन सभा, मेरठ) के सुपुत्र हैं। आपका जन्म १९४० मे हुआ। आप निम्नलिखित व्यवसायो के मालिक हैं और अपने उद्योग दक्षतापूर्ण चला रहे है —

(१) सियालकोट इडस्ट्रियल कार्पोरेशन , मेरठ
(२) एक्मे सर्जिकल एड ड्रेसिंग्स, मेरठ
(३) भारत सर्जिकल कार्पोरेशन , मेरठ
(४) आत्म एटरप्राइजेस, मेरठ
(५) कुतुब बिल्डर्स, नई दिल्ली

अपने व्यवसाय के साथ-साथ श्री कीमतीलाल जैन सामाजिक, शैक्षणिक और सार्वजनिक कार्यों मे पूरी रुचि लेते है। आप श्री एस एस जैन सभा, मेरठ श्री महावीर शिक्षा सदन इन्टर कॉलेज मेरठ और अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेस, नई दिल्ली की कार्यकारिणी समितियो के सदस्य है। श्री जैन पश्चिम उत्तरप्रदेश चेम्बर ऑफ कामर्स ए ड इडस्ट्रीज मेरठ, ऑल इडिया हैडलूम मेन्युफेक्चरर्स एसोसिएशन मेरठ और लायन्स क्लब मेरठ के भी कार्यसमिति के सदस्य हैं।

पता बी-६५, जैन नगर, मेरठ (उत्तरप्रदेश)

श्री केवलचन्द बरमेचा

श्री केवलचन्दजी बरमेचा का जन्म आज से ६९ वर्ष पूर्व अटपडा ग्राम निवासी स्व उदारमना श्री धनराज जी सा के परिवार मे हुआ। बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री बरमेचा का जीवन मानवीय गुणो से अलकृत है। आपने मानव सेवा, जीवदया एव जनकल्याण के अनेक कार्य किए है। जैन धर्म की प्रभावना, साधु-सतो की सेवा की दिशा मे आप सदा प्रयत्नशील है। दक्षिण भारत की मायानगरी मद्रास मे आपका अपना वस्त्र व्यवसाय का फलता-फूलता व्यापार है।
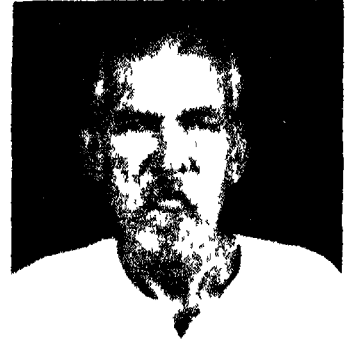
आपका जीवन सरल एव सादगी पूर्ण है। दिखावे से दूर और मौन सेवक की तरह रहकर सघ, समाज म भरपूर योग देने मे आप सलग्न है। आप एक कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ता है। धार्मिक प्रवृत्तियो मे लीन रहने वाले श्री बरमेचा चौविहार कच्चे पानी का त्याग व ब्रह्मचर्य के स्कन्ध लिए हुए है। आपने १२ वर्ष तक प्रतिदिन एकासना किए है। जिस दिन ६ ३० से ७ ३० तक सामायिक नही हो पाई हो तो उस दिन आपका उपवास रहता है। पर्व पर्युषण मे स्वाध्याय के रूप मे बाहर भी धर्म ध्यान करवाने हेतु पधारते है।

आप दक्षिण भारत जैन स्वाध्याय सघ के पहले चार वर्ष तक मत्री पद पर थे। आपका परिवार कई परोपकारी ट्रस्टो का सचालन कर रहा है, जैसे —

(१) श्री धर्मराज जुगराज बरमेचा चैरिटेबल ट्रस्ट
(२) श्री के बी जैन ट्रस्ट
(३) श्री जुगराज खीवराज केवलचद बरमेचा ट्रस्ट

आपने अपने परिवार के सहयोग से शा धनराज जुगराज बरमेचा राजकीय औषधालय तथा प्याऊ आदि का अपने ग्राम मे निर्माण कराया है। भगवान महावीर अहिंसा प्रचार सघ के आप उपाध्यक्ष है और ५१,००० रुपए की राशि का सहयोग देकर आपने श्री धनराज जुगराज बरमेचा विकलाग केद्र बनाया है। आप आचार्य रघुनाथजी परमार्थिक समिति के अध्यक्ष है। मेडिकल रिलीफ सोसायटी के उपाध्यक्ष थे। एस एस जैन सघ की कार्यसमिति के आप सदस्य है। मद्रास की सभी सस्थाओ मे आपका पूर्ण

सहयोग रहता है। जैन भवन बनाने मे आपका बहुत योगदान रहा है। वर्तमान मे आप सभी सस्थाओ मे किसी न किसी पद पर कार्यरत है। अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फेन्स, नई दिल्ली की कार्यसमिति के आप सदस्य हैं। अखिल भारतीय वर्द्धमान परमार्थिक ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं।

आप स्वभाव से सरल, हसमुख, मिलनसार, धार्मिक विचार वाले अनुशासन प्रिय वयोवृद्ध सज्जन हैं।

पता मे जैन टैक्सटाइल्स
३५, गोडाउन स्ट्रीट,
मद्रास-६०० ००१

श्री केसरीचन्द पालावत

मधुरभाषी, मिलनसार और अथक कार्यकर्ता श्री केसरीचन्द पालावत दिल्ली स्थानकवासी जैन समाज के प्रमुख व्यक्तियो मे से हैं। आप एस एस जैन महावीर भवन बारादरी ट्रस्ट, चाँदनी चौक, दिल्ली के अध्यक्ष हैं और अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेन्स की कार्यकारिणी के सदस्य हैं। आपका व्यवसाय मे के के ज्वेलर्स के नाम से है, जिसकी फर्मे किनारी बाजार, दिल्ली और न्यू देहली साऊथ एक्सटेशन व हायात रिजेमी होटल, नई दिल्ली मे है।

पता सताइस घरा २९२१, किनारी बाजार, दिल्ली-११० ००६
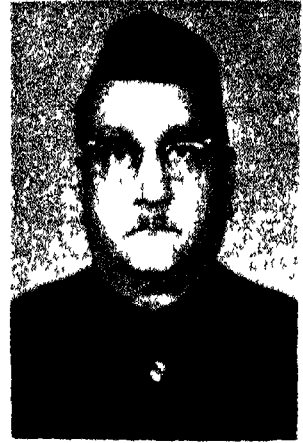
श्री खेलशकर दुर्लभ जी भाई जवेरी

श्री खेलशकर दुर्लभ जी भाई का जन्म सन् १९१२ मे मोरवी (गुजरात) मे हुआ। श्री खेलशकर भाई एक सुविख्यात गुजराती परिवार से हैं। जो पिछले ८५ वर्षो से जयपुर मे आकर स्थापित हो गया है।

लखनऊ विश्वविद्यालय से सन् १९३१ मे स्नातक की डिग्री लेने के पश्चात श्री खेलशकर भाई अपने ज्वेलरी के पैत्रिक व्यवसाय मे शामिल हो गए। सन् १९३६ मे आपने पेरिस मे जाकर यही व्यापार आरभ किया, जहाँ से द्वितीय युद्ध शुरू होने तक रहे।

जवाहरात के व्यवसाय मे श्री खेलशकर भाई देश के अग्रणी व्यापारियो मे गिने जाते हैं। सन् १९६६ मे आप भारत सरकार द्वारा निर्मित ऑल इडिया जेम एड ज्वेलरी एक्सपोर्ट प्रोमोशन काउसिल के प्रथम अध्यक्ष नियुक्त किए गए। आपकी सूझबूझ से प्रथम वर्ष मे ही जवरो और जवाहरात का निर्यात १० करोड रु से बढकर २३ करोड रुपए हो गया।

सामाजिक क्षेत्र मे आपने जयपुर मे 'गुजराती समाज' की स्थापना की है और एक आधुनिक अतिथि गृह बनवाया है। आप अनेक सरकारी और सार्वजनिक सस्थाओ से सबद्ध है जैसे —

जयपुर चैम्बर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री, राजस्थान चैम्बर ऑफ कामर्स एंड इंडस्ट्री, सुबोध डिग्री कॉलेज, सतोकबा दुर्लभ जी ट्रस्ट, अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेंस

आपने जयपुर मे सन्तोकबा दुर्लभ जी मेमोरियल अस्पताल बनवाया है, जिसकी देखरेख मे वे निजी रुचि रखते है।
सन् १९७१ के गणतत्र दिवस के अवसर पर राष्ट्रपति ने श्री खेलशकर भाई को पद्मश्री की उपाधि प्रदान की थी।
पता जोहरी बाजार, जयपुर (राजस्थान)

श्री गीजुभाई यू. मेहता

सुप्रसिद्ध औषध व्यवसाय मे बॉम्बे ड्रग हाउस एव बॉम्बे ड्रग डिस्ट्रीब्यूटर्स के सस्थापक और सचालक युवा उद्योगपति श्री गीजुभाई मेहता का जन्म मोरवी मे हुआ था। आपने बी ए , एल एल बी की शिक्षा प्राप्त की।

आप गत ४० वर्षो से औषध उद्योग मे लगे है जिसमे उन्होने महती प्रगति की है। अभी पाँच वर्ष पहले उन्होने दो नई फर्मे स्थापित की है, जिनके नाम है 'स्टार फार्मास्यूटिकल्स' और 'स्टार लेबोरेटरीज', जो जीवन जरूरी दवाइयाँ बनाने मे लगी हैं। इनकी दवाइयो का नाम सारे भारतवर्ष मे प्रसिद्ध है और अतर्राष्ट्रीय बाजार मे भी ये प्रवेश कर रही है।

आप मोरवी अरुणोदय मिल्स, मे अल्ट्रामरीन एड पिगमेंट्स, मद्रास और थीरुमलाई केमिकल्स, मद्रास के भी सस्थापक-डायरेक्टर है।

सामाजिक क्षेत्र मे भी श्री गीजु भाई मोरवी की यश और कीर्ति प्राप्त सफल सस्था 'सर्वोदय एज्यूकेशन सोसाइटी' के ट्रस्टी तथा मानद मत्री है,

जिसके तत्वावधान म साइस आर्ट्स, कॉमर्स, लॉ की कक्षाएँ, कन्या विद्यालय बॉयस हाईस्कूल हुनर उद्योग स्कूल, सार्वजनिक वाचनालय आदि अनेक सस्थाएँ चल रही है।

आप बृहत् बबई वर्द्धमान स्थानकवासी जैन महासघ के ट्रस्टी व अध्यक्ष है। भारतीय स्था जैन कान्फ्रेन्स, वेस्टर्न रिजन के भी आप अध्यक्ष है। इसी प्रकार श्री मेहता सुविख्यात जैन एज्यूकेशन सोसायटी, बबई के ट्रस्टी और मत्री है और श्री वर्द्धमान स्था जैन श्रावक सघ, दादर और माटुगा के ट्रस्टी है।

विविध सामाजिक और सार्वजनिक क्षेत्रो मे आपकी सेवाओ और योगदान को दृष्टि मे रखते हुए महाराष्ट्र सरकार ने आपको जे पी की मानद पदवी प्रदान की है।

पता बाम्बे ड्रग डिस्ट्रिब्यूटर्स ५४-बी प्रोक्टर रोड, बबई ४००००७

श्री घेवरचद बाबूलाल खिवसरा

महाराष्ट्र के धुलिया निवासी श्री घेवरचद बाबूलाल खिवसरा एक प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता एव व्यवसायी है। आपने अपने पुरुषार्थ एव सूझ-बूझ से व्यापार एव व्यवसाय मे अच्छी सफलता प्राप्त की है।

श्री घेवरचद का जन्म २० सितबर, १९४० को हुआ। आपने जे आर सिटी हाईस्कूल, धुलिया मे शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा काल मे ही आपने पुस्तक क्रय-विक्रय का व्यवसाय आरभ कर दिया था और अपनी लगन तथा परिश्रम से इस क्षेत्र मे काफी प्रगति और सफलता प्राप्त की। आज निम्नलिखित व्यवसायिक फर्मे आपके द्वारा धुलिया मे सचालित है —

(१) खिवसरा प्लास्टिक इडस्ट्री
(२) खिवसरा बुक मैन्युफेक्चरिंग कपनी
(३) खिवसरा बुक स्टाल
(४) सतीश प्रिंटर्स
(५) सुगम प्रकाशन
(६) मीना स्टोर्स

अनेक धार्मिक एव सामाजिक सस्थाओ से सबद्ध श्री खिवसरा श्रमिक उत्कर्ष सस्था धुलिया एव नीलकमल हाउसिग सोसाइटी धुलिया के चेयरमैन है। अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य है। धुलिया मे अनेक सस्थाओ के सहयोगी, कार्यकर्ता एव मार्गदर्शक है। सामूहिक विवाह समिति धुलिया के आप कार्यवाहक है। आपके कुशल नेतृत्व एव प्रतिभा से प्रभावित होकर आपको स्पेशल एक्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट के रूप मे भी नियुक्त किया गया है। श्री घेवरचद खिवसरा की विभिन्न क्षेत्रो मे सेवाएँ अनुकरणीय एव आदर्श रूप रहेगी।

पता खिवसरा बुक स्टाल
१२९४/२ कस्तूरबा गाँधी मार्ग
धुलिया-४२४ ००१

श्री चपालाल सकलेचा

श्री चपालाल सकलेचा का जन्म राजस्थान के पाली जिलान्तर्गत बलूबा ग्राम मे हुआ था। जन्मस्थान से ही व्यापार का शुभारभ किया पश्चात् जालना मे सोने-चाँदी का व्यापार शुरू किया। इसके साथ ही कुछ समय बाद रूई अनाज, शुगर, फर्टिलाइजर तथा ट्रासपोर्ट का भी धधा शुरू किया। इनकी सारे जिले मे शाखाएँ खोली। १९७५ मे बगलौर मे ग्वालियर सूटिंग्स के थोक वितरण का कार्य भी प्रारभ कराया। १९७६ मे फरीदाबाद मे सुदेश स्टील इडस्ट्रीज प्रा लि के नाम से स्टेनलेस स्टील शीट्स एव बर्तन आदि का उत्पादन शुरू किया। बाद मे आपने यह उद्योग जालना स्थानातर कर दिया।

समाज सेवा की शुरुआत आपने जालना से की। श्री वर्द्धमान स्था जैन श्रावक सघ ट्रस्ट, जालना के आप अध्यक्ष हैं। सामाजिक गतिविधियो मे जालना क्षेत्र के प्रतिनिधि कार्यकर्ताओ मे से एक आप भी हैं।

'जैन ज्योति' (पाक्षिक, अजमेर) के सस्थापक के नाते कान्फेन्स के नेतृत्व परिवर्तन का जो अभियान आपने शुरू कराया था और उत्तरदायित्वो को वहन करने की दिशा मे जिस उत्साह का प्रदर्शन किया था, उसी उत्साह से कान्फेन्स की इदौर १९७८ की बैठक मे आपने प्रथम बार भाग लिया और मत्री के रूप मे आपने उत्तरदायित्व स्वीकार किया। वर्तमान मे आप कान्फ्रेन्स की कार्यकारिणी के सदस्य है।

पता गणेश भवन, जालना (महाराष्ट्र)

श्री सी एल. मेहता

श्री सी एल मेहता का जन्म ९ नवबर, १९२७ को हुआ। आपका केमिकल इडस्ट्री का मुख्य व्यवसाय है। आप जिन फर्मो मे सबद्ध है उनमे श्री मीनाक्षी एजेसीज, चदन फार्मास्युटिकल कार्पोरेशन , सी एल मेहता एड सस आदि सम्मिलित है।

व्यापारिक क्षेत्र मे श्री मेहता तमिल चेम्बर आफ कामर्स तमिलनाडु केमिस्टस एड ड्रगिस्ट एसोसिएशन नेशनल चेम्बर आफ कॉमर्स आदि अनेक सस्थाओ के अध्यक्ष मत्री, ट्रस्टी आदि के रूप मे काम कर रहे है।

सामाजिक कार्यो मे श्री मेहता सदा आगे रहते है। आप श्री राजस्थानी जैन समाज मद्रास के अध्यक्ष अतर्राष्ट्रीय महावीर जैन मिशन के क्षेत्रीय मत्री आदि कितनी ही सस्थाओ के पदाधिकारी है।

इसी प्रकार आपका शैक्षणिक क्षेत्र मे भी महत्वपूर्ण योगदान है। आप निम्नलिखित सस्थाओ मे उच्च पदो पर काम कर रहे है

(१) विजयराज सजनराज मूथा कन्या उच्चतर माध्यमिक स्कूल मद्रास
(२) धनराज बैद जैन कॉलेज, मद्रास
(३) धनराज बैद जैन इस्टीट्यूट आफ मैनेजमट
(४) सी एल बैद मूथा कॉलेज आफ फार्मेसी
(५) मिसरीमल नवजी मुनोथ जैन पॉलीटैक्नीक

आप स्काउट आदोलन मे महती रुचि रखते है और कितनी ही सार्वजनिक तथा सेवा सस्थाओ मे तन, मन धन से कार्य कर रहे है। उनकी सेवाओ और क्षमताओ को ध्यान मे रखते हुए सरकार ने इन्हे सेल्स टैक्स, स्टेट इडस्ट्रीज, आयात व निर्यात, केन्द्रीय एक्साइज की सलाहकार समितियो की सदस्यता प्रदान की है।

पता ज्योति निवास, ६२, वर्कट रोड, टी नगर, मद्रास

श्री चन्दूलाल मोतीलाल लालेडा

पता 'मोती सागर',
५, न्यू बोट क्लब रोड
पुणे-४११ ००७

श्री चेतन प्रकाश डूगरवाल

श्री चेतनप्रकाश डूगरवाल का जन्म २५ मार्च सन् १९४४ को बगलौर मे हुआ। आपका बैंकिग एव शानब्रोकर का व्यवसाय है। धार्मिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक क्षेत्र मे आप सदा सक्रिय रहे है। आप एस एस जैन सघ बगलौर और कर्नाटक जैन स्वाध्याय सघ बगलौर के ट्रस्टी है। हिन्दी शिक्षण सघ बगलौर के सदस्य है और अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य है।

पता ६१, नगरथ पेट
बगलौर-५६० ००२

श्री जुगमन्दिर दास जैन

श्री जुगमन्दिर दास जैन का जन्म ७ सितबर, १९१३ को ग्राम नोशाम (हरियाणा) मे सुविख्यात कानूनगो परिवार मे हुआ था। आपकी शिक्षा दिल्ली मे हुई और १९३५ मे सेट स्टीफन कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय से उन्होने बी एस-सी की डिग्री प्राप्त की। पढाई समाप्त करने के बाद शीघ्र ही आप भारत सरकार की सेवा मे प्रविष्ट हुए और एक लबे समय की सर्विस के बाद सितबर १९७१ मे डायरेक्टर आफ कम्प्लेट्स एड पब्लिक रिलेशन्स, डी जी एस एड डी के पद से सेवा-निवृत्त हुए।

पिछले ५० वर्षो मे आप लगातार सामाजिक कार्यो मे सक्रिय भाग लेते रहे है। आप जैन यगमेन्स एसोसिएशन शिमला नई दिल्ली, जैन सभा नई दिल्ली, जैन हैप्पी स्कूल जैन मैत्री सघ ग्रीन पार्क नई दिल्ली जैन धर्मार्थ होमियो क्लिनिक सजग (स्वाध्याय गोष्ठी) व सजग सगीत मडल ग्रीन पार्क के फाउडर सदस्य है। अभी भी होमियो क्लिनिक के प्रबधक बोर्ड के आप अध्यक्ष है।

श्री जे डी जैन अखिल भारतवर्षीय श्वेताबर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस की कार्यकारिणी समिति एव प्रबध समिति के सदस्य है।

पता एस-४ ग्रीन पार्क
नई दिल्ली-११० ०१६

श्री जवरीलाल सी भण्डारी

श्री जवरीलाल भण्डारी का जन्म नासिक मे सन् १९५५ मे हुआ। आपने बी एस सी तक शिक्षा प्राप्त की है और फारेस्ट ट्रासपोर्ट काट्रेक्टर एव बिल्डिग मटेरियल सप्लायर्स का व्यवसाय कर रहे हैं।

सामाजिक और धार्मिक कार्यो मे आपकी विशेष लगन है। आप श्री वर्द्धमान स्था जैन श्रावक सघ, नासिक के मत्री हैं और श्री वीतराग सेवा सघ, नासिक के सयोजक है। श्री जवरीलाल अखिल भारतवर्षीय श्वे स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स, नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य है।

पता ६७७, गट्टे लेन, रविवार पेठ,
नासिक-४२२ ००१
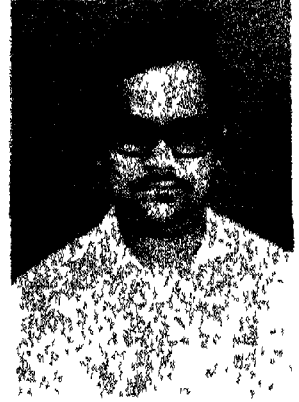
श्री जिनदास जैन

अम्बाला शहर के निवासी श्री जिनदास जैन श्री खैरातीराम जी जैन क सुपुत्र है। आपका व्यवसाय और उद्योग हवाई चप्पल मेन्युफेक्चर तथा एजेन्सी बिजनेस है।

श्री जिनदास जैन एस एस जैन सभा अबाला सिटी के प्रधान है। श्री जैनेन्द्र गुरुकुल प्रबधक कमेटी के सदस्य है और रोटरी क्लब अबाला के प्रधान है। श्री जैन अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेन्स, नई दिल्ली की कार्यकारिणी समिति के सदस्य है।

पता जैनेन्द्र भवन
शुक्ल कुड रोड, अबाला सिटी (हरियाणा)

स्व श्री जय कुमार लिग्गा

श्री जय कुमार लिग्गा का जन्म २३ सितबर, १९२५ को गाँव नोरोवाल (जिला-सियालकोट) मे हुआ था। आपने देश के बँटवारे के पश्चात उज्जैन (मध्यप्रदेश) मे आकर व्यवसाय आरभ कर दिया और अब यही आपकी रोलिंग मिल्स और किराना का व्यापार है।

सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र मे आप (१) श्री वर्द्धमान स्थानकवासी युवक सघ, उज्जैन के अध्यक्ष (२) श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ, उज्जैन के सभापति (३) एस एस जैन कान्फ्रेन्स, मध्यप्रदेश के प्रान्तीय अध्यक्ष और कार्याध्यक्ष रहे थे।

श्री लिग्गा अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स नई दिल्ली की कार्यकारिणी समिति के सदस्य थे। दुर्भाग्य से ५ जुलाई, १९८८ को अचानक श्री लिग्गा का निधन हो गया, जिससे कान्फ्रेन्स परिवार को बड़ी क्षति और वेदना हुई।

पता कुमार रोलिंग मिल्स, के बी बिल्डिंग, दौलतगंज उज्जैन।

श्रीमती जिनेन्द्र जैन

पता आत्म भवन ३८ आत्म नगर लुधियाना

श्री जीतमल चोपड़ा

पता ६५/२२५ रामनगर अजमेर (राजस्थान)

श्री तनसुखलाल माणकचन्द झाबड

श्री तनसुख माणकचंद झाबड औरंगाबाद (महाराष्ट्र) के एक युवा सामाजिक कार्यकर्ता एवं जैन जगत के उदीयमान नेता हैं। आपका जन्म ८ जुलाई सन् १९५२ को हुआ। आप अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य हैं। औरंगाबाद की अनेक संस्थाओं के कोषाध्यक्ष सदस्य आदि के रूप में कार्यरत श्री झाबड इलेक्ट्रिक मर्चेन्टस एसोसिएशन एवं श्री श्वेताम्बर जैन युवक संघ के अध्यक्ष हैं।

आप पाइप्स स्विचगियर मोटर्स के वितरक हैं और बिल्डिंग प्रमोटर्स तथा बिल्डर्स हैं। एक व्यवसायी के रूप में सफल श्री झाबड गत वर्ष इंग्लैंड, फ्रांस इटली प जर्मनी, बेल्जियम स्विटजरलैंड आदि देशों का भ्रमण कर चुके हैं। संत सेवा हेतु आप सदैव तत्पर रहते हैं। युवा जगत के लिए आप प्रेरणा स्रोत हैं।

पता झाबड निवास गुलमंडी औरंगाबाद ४३१००१

श्री तेलूराम जैन

श्री तेलूराम जैन पंजाब में स्थानकवासी जैन समाज के अग्रणी सुश्रावक हैं। आप एस.एस. जैन महासभा पंजाब (उत्तर भारत) के अध्यक्ष हैं। आप आचार्य आत्माराम जैन अस्पताल लुधियाना उपाध्याय श्री फूलचंद जैन पब्लिक स्कूल लुधियाना तथा अमर जैन होस्टल, चंडीगढ़ के भी अध्यक्ष हैं। साधु-संतों की सेवा में गहरी रुचि रखने वाले श्री जैन श्रमण संघ संपर्क के क्षेत्र में अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स को पूर्ण सहयोग देते रहे हैं। आप वर्तमान में कान्फ्रेन्स की कार्यकारिणी के सदस्य हैं। आपका होजरी का व्यवसाय है।

पता मेसर्स सी.एल. जैन होजरी बी.वी.-२१३ वेट गंज लुधियाना-१४१००८
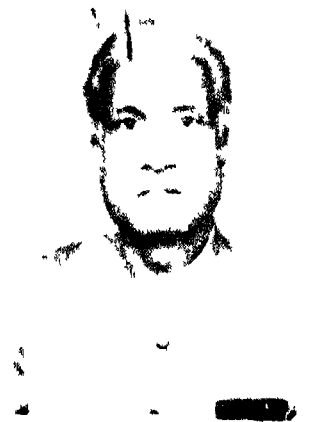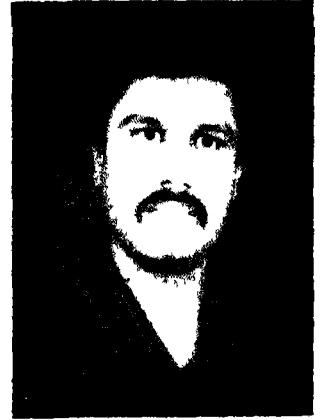
श्री दर्शन कुमार जैन

श्री दर्शन कुमार जैन अपने व्यवसाय और सामाजिक व धार्मिक कार्यो मे जम्मू के प्रमुख व्यक्तियो में गिने जाते है। आप जे एन्ड के अल्यूमिनियम यूटेंसिल मैन्युफेक्चरर्स एसोसिएशन, मे जैन स्टील, मे किगमित्र डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा लि, मे किमसे और फेडरेशन ऑफ इडस्ट्रीयल एड कॉमर्स, जम्मू के अध्यक्ष, मेनेजिग पार्टनर आदि के रूप मे सबद्ध है।

श्री दर्शन कुमार श्री महावीर जैन सोसायटी, जम्मू के अध्यक्ष है। अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स, नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य है।

पता ३ ए/सी, गाँधी नगर जम्मू।

श्री दानमल कचरदास नाहर

श्री दानमल नाहर का जन्म अहमदनगर मे २३ फरवरी सन् १९३३ का हुआ था। अपन व्यवसाय के साथ-साथ धार्मिक तथा सामाजिक कार्यो मे आपका योगदान महत्वपूर्ण रहा है। आप गत दस वर्षो म आनन्द प्रतिष्ठान पुणे की साधारण सभा के सदस्य है तथा नेमीनाथ जैन ब्रह्मचर्याश्रम नमीनगर के कोषाध्यक्ष है। आप श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड अहमदनगर क ट्रस्टी है और अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य है।

पता प्रेमदान होटेल्स प्रा लि, नगर मनमाड रोड, अहमदनगर-४१४००१
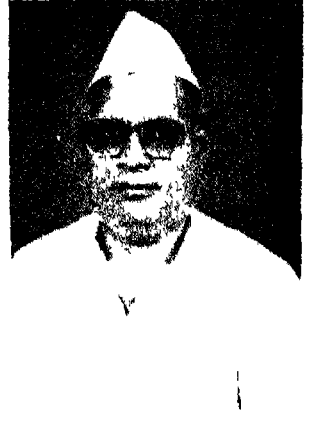
श्री दुलीचद पूनमचद जैन

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ खडवा क अध्यक्ष श्री दुलीचद जैन ने अपनी धार्मिक उपलब्धियो मे सन १९८५ मे जैन स्थानक का निर्माण करवाया है, जिसमे एक धार्मिक पाठशाला और वाचनालय भी चल रह है। आपने एक महावीर कीर्ति-स्तम्भ का भी निर्माण कराया है, जिस पर भगवान के उपदेशो का उल्लेख है।

सार्वजनिक हित के कार्य मे आपने अपन पूज्य पिताजी की याद मे एक प्याऊ का निर्माण कराया है। गरीबो को मुफ्त भोजन दने का भी आयाजन है।

पता रामकृष्ण गज, खडवा (म प्र)
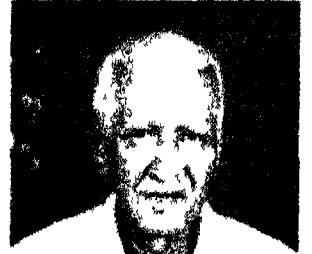
श्री सी. धर्मीचन्द जैन

श्री धर्मीचन्द जैन का जन्म सन् १९३३ मे झूठा गाँव, जिला-पाली मारवाड (राजस्थान) मे हुआ। अत्यन मिलनसार और मितभाषी श्री धर्मीचन्द जैन पिछले २० वर्षो से अनेको उद्योगो का सचालन तथा विभिन्न कपनियो का प्रवर्तन कर रहे है। आप धार्मिक कार्यक्रमो के सचालन मे सक्रिय सहयोग देते है। हिमगिरि कल्याण आश्रम के सरक्षक के रूप मे पहाडी जन जीवन के विकास मे आप सक्रिय रुचि रखते है। आप राजस्थान परिषद, चडीगढ और वनवासी कल्याण आश्रम क सस्थापक सदस्य है। श्री धर्मीचन्द पिछले १५ वर्षो से ग्राम सरपच झूठा एव छ वर्षो मे जिला प्रमुख पाली के रूप मे जन समस्याओ का समाधान तथा विभिन्न विकास कार्यो की योजना तथा क्रियान्वयन की महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। आपने अकाल के समय मे गायो व पशुओ हतु सस्ता चारा उपलब्ध करवाने हेतु पशु शिविरो का इतजाम करवाया था। व्यवसायिक एव सार्वजनिक क्षेत्र मे आप हिमाचल प्रदेश स्माल स्केल इडस्ट्रीज के अध्यक्ष है। अपने औद्योगिक क्षेत्र मे आप हिमाचल प्रदेश केबल एड कडक्टर एसोसिएशन के सदस्य है। निम्नलिखित फर्मो के आप मैनेजिग डायरेक्टर, चेयरमेन डायरेक्टर है
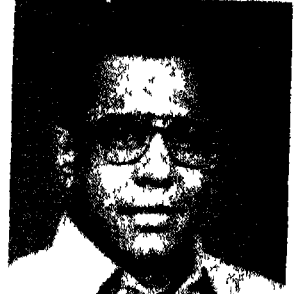
१ हिमाचल कडक्टर्स लिमिटेड
२ हिमाचल प्रदेश ट्यूब्स एण्ड वायर लिमिटड
३ हिमालय प्रदश एलूमोनिया लिमिटड

पता हिमाचल कडक्टर्स प्रा लि सपरून जिला-सोलन हिमाचल प्रदश

श्रीमती नन्दा सुमति प्रसाद बाफना

पता २२ गोविन्द महल ८६-बी, मरीन ड्राइव बम्बई-४०० ००२

श्री निहालसिह जैन

श्री निहालसिह जैन का जन्म आगरा मे ९ जुलाई १९३९ को हुआ था। आपके पिता श्री फतहसिह जी वोहरा नगर के एक समृद्ध एव सुसस्कार सपन्न व्यक्ति थे। आप अतिथि सत्कार के लिए विशेष स्मरण किए जाते है। आपकी माताजी एक धर्मपरायण, गुरुभक्त,स्वभाव स मृदु स्नेहशील एव सुगृहिणी है। आपका विवाह नीलम देवी के साथ हुआ।

आपने आगरा के सेट जान्स कॉलेज आगरा कालेज, दयाल बाग इजीनियरिग कॉलेज तथा वाराणसी के एनीबीसेट कॉलेज मे शिक्षा प्राप्त कर इजीनियरिग म स्नातक की उपाधि प्राप्त की है।
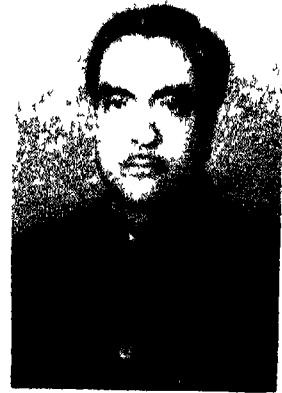
आपके पितामह स्व सेठ अचलसिह जी ने लोकसभा मे आगरा का लगभग २५ वर्षों तक प्रतिनिधित्व किया। आप पर आपके पितामह के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट झलकती है। आप नगर के प्राय सभी धार्मिक एव सामाजिक समारोहो मे उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। राजनैतिक क्षेत्र मे आप प्रारभ से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से सबद्ध रहे है। शहर कांग्रेस कमेटी के महामत्री, प्रदेश कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी के सदस्य रहकर वर्तमान मे आप आगरा शहर कांग्रेस (इ) कमेटी के अध्यक्ष है। नगर की सामाजिक एव शैक्षणिक सस्थाओ मे आपका सदैव योगदान रहता है। नैतिक, नागरिक सघ के सस्थापक सदस्य, भगवतीदेवी जैन कन्या महाविद्यालय की प्रबध समिति के सदस्य, आगरा कॉलेज, अचल ट्रस्ट तथा बी आर ट्रस्ट के ट्रस्टी के रूप मे आप आज भी सेवारत है। सन् १९८० मे आप लोक सभा के सदस्य चुने गए। सन् १९८५ मे पुन निर्वाचित होकर आप वर्तमान लोकसभा मे आगरा का प्रतिनिधित्व कर रहे है। अखिल भा श्वे स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस के आप सम्मानित सदस्य है।

श्रीमती नीलम ओसवाल

भारतीय सस्कृति मे नारी समाज का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। समय-समय पर अपने कार्य द्वारा देश, समाज, धर्म के क्षेत्र मे नारी ने अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया है। उसी लडी की कडी मे श्रीमती नीलम ओसवाल का भी अपना महत्व है। श्री सुभाष ओसवाल की धर्मपत्नी होने क कारण आपके जीवन मे भी धर्म समाज व देश सेवा के सस्कार रहे है। इसी कारण जहाँ एक ओर आप सद्गृहणी के रूप मे रही है, वही दूसरी ओर एक युवा उत्साही कार्यकर्त्री के रूप मे समाज सेवा हतु सदा तत्पर है। इस अल्पायु मे आपने जो सेवा दी है वह अतीव प्रशसनीय है। आप अखिल भारतवर्षीय श्व स्था जैन कान्फ्रेस, जैन वीर युवती क्लब जैन महिला सघ दिल्ली आदि अनेक सस्थाओ म अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर रही है।

पता ५९० गली बजाजान सदर बाजार दिल्ली ११०००६

श्री नेमीचद चोपडा

श्री नेमीचद चोपडा का जन्म १५ अगस्त सन् १९४८ को ग्राम पालासनी जिला जोधपुर (राज) मे सुश्रावक श्री रावतमल जी चोपडा के यहाँ हुआ। नौ वर्ष की अवस्था मे आप ग्राम धुधाडा जिला जोधपुर (राज) के स्व श्री खीवराज जी चोपडा के यहाँ गोद चले गये। तकनीकी मे डिप्लोमा प्राप्त श्री चोपडा बचपन से ही बडी कुशाग्रबुद्धि एव वाक् कला मे कुशल थे। सन् १९७३ मे आपने पाली मे अपना व्यवसाय प्रारभ किया। अपनी व्यवहार कुशलता, एव लगन, कठिन परिश्रम के फलस्वरूप आपने उद्योग के क्षेत्र मे अच्छी सफलता अर्जित की। आपने सभी वर्गो और व्यवसायियो के साथ टेक्सटाइल उद्योग मे भारत सरकार से फैल्ट प्रोसेस को कर मुक्त करवा कर अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया। आप किसी वर्ग विशेष या समाज तक ही सीमित नही हैं अपितु विविध धर्मों वर्गों, सस्थाओ एव समाज से

सबद्ध है। आप अखिल भारतवर्षीय श्वे.स्था. जैन कान्फ्रेस नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य हैं। वर्तमान मे आप भारत जैन महामडल शाखा, पाली श्री वर्द्ध.स्था. जैन नवयुवक सघ, पाली दी फैल्ट एड केलेडरिंग एसोसिएशन,पाली एव ग्रीन पार्क विकास समिति पाली के अध्यक्ष पद का सुशोभित कर रहे है। श्री चोपडा ने ग्राम धुन्धाडा मे जैन मदिर प्रतिष्ठा महोत्सव समारोह मे एव पाली मे आचार्य रघुनाथ स्मृति भवन निर्माण मे जो उल्लेखनीय योगदान दिया है, उसे विस्मृत नही किया जा सकेगा।

पता १० ग्रीन पार्क वीर दुर्गादास नगर पाली मारवाड

श्री नेमीचद फूलचद कर्नावट

श्री नमीचद कर्नावट का जन्म १८ दिसबर सन् १९४१ का हुआ। आप पूना मे चार्टर्ड अकाउन्टन्सी की प्रेक्टिस कर रह है और माडर्न कालेज पूना मे (पार्ट टाइम) लक्चरार भी है। शिक्षा क समय आप सदा सर्वप्रथम स्थान लेत रह है। धार्मिक एव सामाजिक क्षत्र म श्री कर्नावट विभिन्न सस्थाओ म सबद्ध है जैस

१ प्रधानमत्री-आनद प्रतिष्ठान पूना
२ मानद मत्री-मई १९८७ म अखिल भारतवर्षीय श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ सम्मलन समिति पूना
३ कार्यकारिणी सदस्य श्री वर्धमान श्व स्था श्रावक सघ साधना सदन पूना
४ कार्यकारिणी सदस्य-अखिल भा श्व स्था जैन कान्फ्रस नई दिल्ली

पता चार्टर्ड अकाउटट जुम्मारवार दत्ता मदिर बिल्डिग ५९६, सदाशिव पठ लक्ष्मी रोड पूना-४११०३०

श्री पदमचन्द पालावत

पता १/११ साहित्य कज आगरा २८२००१ (उ प्र)

श्री प्रकाशचद रुणवाल

श्री एम प्रकाशचद रुणवाल आप श्री मांगीलाल रुणवाल क सुपुत्र है। आप कान्फ्रस की कार्यकारिणी के सक्रिय सदस्य है। आपका मैसूर मे पान ब्रोकर और ज्यूलरी का व्यवसाय है।
पता १२० दानुमैया चौक मैसूर-५७०००४
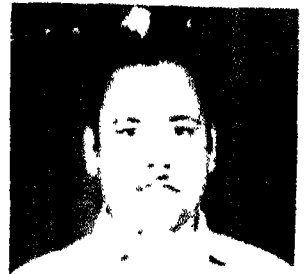
श्री प्रकाश बी. कर्नावट

अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेन्स की कार्यकारिणी के सदस्य एव युवा कार्यकर्ता श्री प्रकाश कर्नावट का सहकारी बैंकिग के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आप महाराष्ट्र स्टेट को-ऑप बैंक्स एसोसिएशन लि बबई के दो बार अध्यक्ष चुने गये। इसी प्रकार अब आप राज्य अर्बन को-ऑप बैंक्स बोर्ड के एक्जीक्यूटिव सचालक भी हैं। आप धुलिया पीपल्स बैंक के तीन वर्ष तक अध्यक्ष रहे है।

पाँच वर्ष पूर्व अकाल मे श्री प्रकाशजी ने स्वय के ट्रेक्टर-ट्रेलर द्वारा धुलिया मे भिन्न-भिन्न जगह पानी देन की व्यवस्था की। सहकारी बैंकिग क्षेत्र मे योगदान एव निर्धन मध्मवर्गीय लोगो को सहायता देन को ध्यान मे रखते हुए तत्कालीन महाराष्ट्र के मुख्यमत्री ने श्री प्रकाश जी का सम्मान पत्र दिया था। श्री कर्नावट जैन समाज के उत्साही युवा नता है। आप समाज की विभिन्न सस्थाओ म कार्य कर रहे है, जैसे
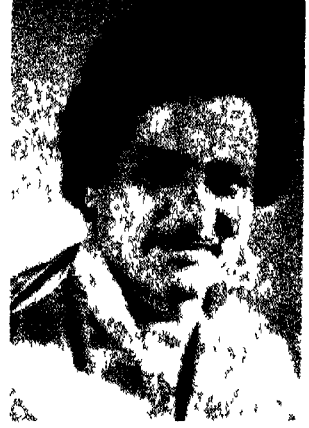
१ मुनि श्री हजारीमल सेवा सस्था, ब्यावर।
२ युवक बिरादरी क दो वर्ष अध्यक्ष रह।
३ जैन बोर्डिग धुलिया क सक्रेटरी ये।
४ लायन्स क्लब के सक्रेटरी थ।
५ धुलिया जिला सास्कृतिक मडल के सस्थापक सदस्य।
६ रेडक्रास के सदस्य।
७ श्री शिव छत्रपति स्मारक समिति के सदस्य।
८ इडो अमेरिकन सोसायटी द्वारा लाइट ऑफ धुलिया सिटी ' सह-सम्मान प्राप्त।

व्यवसायिक क्षेत्र मे श्री प्रकाश कर्नावट किर्लोस्कर ट्रेक्टर्स पुरस्कार प्राप्त है और हिन्दुस्तान ट्रेक्टर्स व बिरला उद्योग समूह निर्मित ओरिएट टले मोटर्स के अखिल भारतीय विक्रेताओ म प्रथम क्रमाक के विक्रेता है।

पता मे कर्नावट आटोमोबाइल्स वीर सावरकर रोड धुलिया

श्री प्रमोदचद जैन

एक उत्साही युवा कार्यकर्ता है जा कांग्रेस की दिल्ली युवा शाखा क अध्यक्ष व कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य है दिल्ली चाँदनी चौक क्षत्र क महावीर भवन ट्रस्ट के ट्रस्ट व मत्री पद पर कार्य कर रह है। अनेक सस्थाओ मे, स्वाध्याय सघ व युवा सघ आदि म विभिन्न पदो पर कार्य कर रह है।

बैंक आफ इडिया क नौएडा ब्राच म मैनजर है।

पता १८११-चीरा खाना मालीवाडा दिल्ली-११०००६
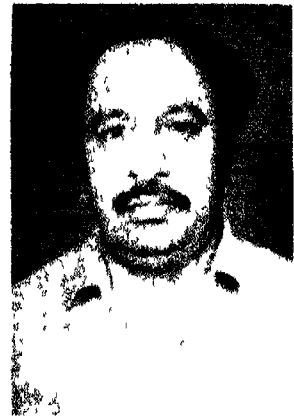
श्रीमती प्रेमलता जैन

बयालीस वर्षीय श्रीमती प्रेमलता सब्जी मडी नई दिल्ली की जैन समाज की एक उत्साही और लगनशील महिला कार्यकर्ता है। श्रीमती जैन अ भा श्वे स्था जैन कान्फेन्स के कोषाध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जैन की धर्मपत्नी है और अपने इलाके मे स्थित काल्हापुर मार्ग जैन स्थानक के सभी कार्यक्रमो मे पूर्ण सहयोग देती है। इस स्थानक मे पधारे सतो के चातुर्मास के समय आप जैन साधु एव साध्वियो की सेवा मे रत रहती है और स्थानक की व्यवस्था तथा दर्शनार्थियो की सुविधा का विशेष ध्यान रखती है। आप वीर युवक सघ कोल्हापुर मार्ग की अध्यक्षा भी रह चुकी है।

पता ६५, ई कमला नगर दिल्ली-११० ००७

श्रीमती पारसरानी मेहता

आप सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता श्री फकीरचद जी मेहता की सहधर्मिणी है। आप स्वय भी कई धार्मिक, सामाजिक एव शैक्षणिक सस्थाओ मे पदाधिकारी व कार्यरत है। साथ ही अपनी लेखनी व वक्तव्य द्वारा हमेशा समाज को प्रेरणा देती रही है। कई सभाओ को सबोधित कर अपनी छाप छोडी है। अ भा श्व स्था जैन कान्फ्रेन्स के महिला विभाग की पूर्व अध्यक्षा है। भीनासर महिला सम्मेलन की भी अध्यक्षता की। जैन समाज की महिलाओ मे नव जागरण आए, इस हेतु सदैव तत्पर है।

मिलनसार मृदुभाषी सुलेखिका सहज वक्ता पारसरानी मेहता ने भुसावल मे प्रथम राजस्थानी महिला आनरेरी मजिस्ट्रेट व समाज कल्याण योजना की चेयरमेन के पदो पर वर्षो तक कार्य किया है। १६ अप्रैल, १९२६ कोआपका जन्म औरगाबाद के देवडा परिवार मे हुआ। अपनी सतान को सस्कारित करना माता का प्रथम कर्तव्य है। इस उक्ति को आपने जीवन मे साकार किया है। फलस्वरूप पुत्र-पुत्री पुत्र वधुएँ आदर्श परिवार की मिसाल हैं।

पता 'पारस' ६-डॉ भडारी मार्ग इन्दौर (मध्यप्रदेश)

श्री फूलचद जैन

श्री फूलचद जैन स्थानीय जैन समाज के प्रतिष्ठित वयोवृद्ध नेता हैं, जिनके अनुशासन और नेतृत्व पर पूरा भरोसा किया जा सकता है। साधु-सतो की सेवा मे रत ८२ वर्षीय लाला फूलचद (भाईजी) कोल्हापुर रोड, सब्जी मडी, दिल्ली के जैन स्थानक की सुव्यवस्था और अपनी शक्ति के अनुसार अन्य धार्मिक व सामाजिक कार्यो मे पूरा योगदान देते हैं।
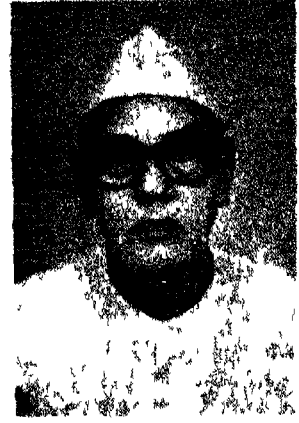
अनुशासन प्रिय तथा साफगो (सत्य वक्ता) श्री फूलचन्द भारत के स्वतत्रता आदोलन के सेनानी है और आजकल सन् १९०५ से सन् १९४७ तक के ४० वर्ष के स्वतत्रता आदोलन के इतिहास पर शोध कार्य कर रहे है। आप कई वर्षों से अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य है और आवश्यकतानुसार अपना सहयोग देने को तैयार रहते है। सन् १९७८-७९ मे जब जैन भवन सबधी कलह और मुकदमे चल रहे थे, तब श्री फूलचद जैन न्यायिक तथ्य सकलन विभाग के सयोजक थे। कान्फ्रेस द्वारा प्रकाशित 'जैन स्थानक निर्देशिका' का सकलन और सपादन आपने ही किया था, जिसमे सारे देश के चार हजार जैन स्थानको का पूरा ब्यौरा दिया गया है।

पता १०/यू ए जवाहर नगर दिल्ली-११०००७

श्री बालचद देवीचद जी सचेती

श्री बालचद सचेती का जन्म १४ जून १९३० को पूना मे हुआ। आप एक सफल और प्रगतिशील व्यवसायी है। अपनी सभी सबधित फर्मों के आप प्रमुख है जैसे देवीचद उत्तमचद सचेती सचेती एड कपनी, सचेती फार्म (रूई) आदि। व्यापार के क्षेत्र मे पुणे होलसेल ग्रेन एड ग्रोसरी मर्चेंटस एसोसिएशन पूना मर्चेंट चेम्बर्स के अध्यक्ष उपाध्यक्ष रहे है।

विभिन्न उद्देश्यो वाली सार्वजनिक सस्थाओ मे आप सक्रिय है। जैसे

(१) कैम्प एज्युकेशन सोसाइटी।
(२) मोघाडी कामगार बोर्ड।
(३) महाराष्ट्र चैम्बर ऑफ कॉमर्स बबई।
(४) आगरकर हाईस्कूल।
(५) फतेहचद हाईस्कूल पुणे।
(६) आनद प्रतिष्ठान।

सार्वजनिक क्षेत्र मे सेवा के उपलक्ष्य मे आपको कई बार सम्मानित किया गया है।

पता "मनिषा" १६३, मुकुद नगर, पुणे-४११०३७

श्री भवरलालजी गोटावत

आप एक कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ता है। धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं व कांग्रेस के कार्य में आपका भारी योगदान रहा है। आप कार्यकारिणी के सदस्य हैं एवं बैंगलौर श्रीसंघ के अध्यक्ष है।

पता न-३४, राजा मार्केट बैंगलौर-५६०००२

श्री भँवरलालजी मुणोत

श्री भंवरलाल जैन ने बारह वर्ष की उम्र में 'श्री महावीर मित्र मंडल' नामक संस्था स्थापित की। उस समय हैदराबाद एवं सिकंदराबाद में केवल यही एक पंजीकृत जैन संस्था थी। वे इस संस्था के दस वर्षों तक संचालक एवं अध्यक्ष रहे। इन्होंने 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ' की सभी गतिविधियों में पूर्ण सक्रियता से भाग लिया।

सन् १९७१ में लियो क्लब के सदस्य बने तदुपरांत इस क्लब की आधारभूत क्रियाओं का संचालन करते हुए अध्यक्ष बने। इन के अध्यक्षकाल में लियो क्लब ने उल्लेखनीय प्रगति की।

वयस्क होने के बाद 'लायंस क्लब ऑफ सिकंदराबाद ट्विन सिटीज' नामक नए क्लब की स्थापना में योगदान दिया। इसके बाद इस क्लब के चार्टर सचिव, उपाध्यक्ष एवं क्रमश: वर्ष ८३-८४ में अध्यक्ष बने। वर्ष ८४-८५ में जिला सत्राकोष के जिलाध्यक्ष बने और जिला निर्देशिका विज्ञापन समिति के अध्यक्ष बने।

सन ८५-८६ में लायंस क्लब के क्षेत्रीय अध्यक्ष बने। उस समय इनको सर्वोच्च क्षेत्राध्यक्ष घोषित किया गया। इन्होंने वर्ष ८६-८७ में उपजिलाध्यक्ष लायंस क्लब का पद संभाला।

इन्हें लायंस क्लब अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठान की गौरवशाली सूची में नामांकित किया गया। इन्होंने सुदूर पूर्व देशों एवं जापान की यात्राएँ की। जापान की राजधानी टोकियो में आयोजित अंतरराष्ट्रीय वार्ता में भाग लिया।

उपरोक्त संगठनों के अतिरिक्त ये जैन यूथ क्लब, नगर सुधार न्यास (समिति) सिकंदराबाद क्लॉथ एसोसिएशन व्यापारिक संगठन और अनेक सामाजिक सांस्कृतिक एवं व्यापारिक संगठनों में सक्रिय रूप से जुड़े हैं। आप अखिल भारतवर्षीय श्वे. स्था. जैन कांफ्रेंस, नई दिल्ली की कार्यकारिणी समिति के सदस्य है।

पता : मे. जैन एजेंसीज
७-२-७६५/६६ पॉट मार्केट
सिकंदराबाद ५००००३

श्री भँवरलाल जी गोठी

मद्रास शहर के कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ता श्री भँवरलाल गोठी स्थानकवासी जैन जगत के जाने-माने नेताओ मे है। आप वर्षो तक अखिल भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेस, नई दिल्ली के मत्रीपद पर रहे है। मद्रास के श्री वर्धमान श्वे स्थानकवासी जैन महासघ के आप महामत्री और भगवान महावीर अहिंसा प्रचार सघ के उपाध्यक्ष है। आप तमिलनाडु की प्रत्येक जैन धार्मिक और सामाजिक सस्था से किसी न किसी रूप मे सबद्ध है।

शैक्षणिक व सार्वजनिक क्षेत्र मे भी आप सदा सक्रिय है। श्री तेजराज सुराणा जैन विद्यालय के आप अध्यक्ष है और जैन एजूकेशन सोसाइटी एव जैन महिला विद्या सघ की कार्यकारिणी समितियो के सदस्य है। श्री जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी के भी आप अध्यक्ष है।

पता १६१, मिंट स्ट्रीट
(प्रथम मजिल) मद्रास-६०० ०७९

श्री भाईलाल भाईजी तुरखिया

श्री भाईलाल भाई तुरखिया का जन्म कराची मे एक सपन्न परिवार मे दिनाक २५ अक्टूबर १९२२ को हुआ। आपके पिताश्री छगनलाल जी लालचद जी स्थानकवासी जैन समाज के अध्यक्ष थे।

आप पर जैन धर्म की शिक्षाओ का बचपन से ही काफी प्रभाव रहा। सामायिक एव प्रतिक्रमण आपको अर्थ सहित कठस्थ था। आपके जीवन पर पूज्य फूलचदजी महाराज, पूज्य घासीलालजी महाराज व पूज्य जवाहिराचार्य का बडा प्रभाव पडा।

सन् १९४७ मे भारत विभाजन के समय आपने बडी हिम्मत एव उदारता से काम करके अनेक जैन एव अजैन परिवारो को सहायता दे कर भारत सुरक्षित रवाना किया। आप अपनी सपूर्ण चल एव अचल सपत्ति लेकर इदौर आकर बस गए। आपका विवाह जयपुर निवासी श्री विनयचद जी जौहरी की भतीजी सुशीला देवी के साथ हुआ।

आपने प्रथम बार 'अखिल भारतीय तुरखिया बधु मडल' की स्थापना कर लगभग ७०० तुरखिया परिवारो को प्रेम एव एकता के सूत्र मे बाधा एव प्रमुख सस्थापक के रूप मे कार्यभार सभाला। इसके पश्चात् गुजराती स्थानकवासी जैन मडल के अध्यक्ष पद पर रहे। आपने भारत जैन महामडल के मध्यप्रदेश के महामत्री एव खजाची का कार्यभार भलीभाति सभाला। भगवान महावीर के पच्चीस सौ वे निर्वाण महोत्सव के अवसर पर जैन धर्म के सर्वेक्षण हेतु विदेश गए एव जैन धर्म विषयक सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार किया।
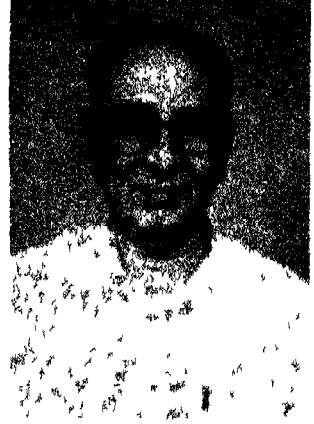
आप अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेंस के मद्रास सम्मेलन सन् १९४७ मे सम्मिलित हुए एव तभी से कार्यकारिणी सदस्य के रूप मे कान्फ्रेंस की सेवा कर रहे हैं। श्री तुरखिया वर्धमान स्था जैन सघ, इदौर के ट्रस्टी, अखिल भारतीय जैन विद्या परिषद् के सक्रिय मेबर रोटरी क्लब के उपाध्यक्ष है एव अन्य सामाजिक प्रवृत्तियो मे सेवा देना आपकी विशेषता है। अपनी सहधर्मिणी सौ सुशीला देवी के सोलह उपवास की स्मृति मे निर्मित 'गुजराती जैन भवन' इदौर मे आपकी अपूर्व दानशीलता का द्योतक है। मशीनरी एव केमिकल के व्यवसाय मे व्यापारी जगत मे अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर सामाजिक समता एव कर्मवाद निभा रहे है। सामाजिक प्रवृत्तियो की ओर रुचि आपकी विशेषता है। अतर एव बाह्य से आपका जीवन सादगीपूर्ण, सरल एव सात्विक है।

पता तुरखिया हाउस, १६, पार्क रोड इदौर

श्रीमती भुवनेश्वरी जी भडारी

आपका जन्म अजमेर के सुप्रसिद्ध मेहता परिवार मे हुआ। सरल स्वभावी एव धार्मिकता से ओत-प्रोत सेठ अभयकरणजी मेहता की आप सुपुत्री है।

सन् १९५१ मे इदौर के सुप्रसिद्ध उद्योगपति सेठ श्रीमान सुगनमल जी भडारी के जेष्ठ पुत्र श्री गजेद्र सिह जी भडारी के साथ आपका विवाह हुआ। २८ सितबर १९७१ को इस परिवार पर एक असहनीय वज्रपात हुआ। श्रीमान गजेद्र सिह जी साहब का दिल का दौरा पड़ने से देहावसान हो गया। जिससे कारोबार मे एव परिवार मे बड़ा आघात लगा।

आपने केवल जैन सस्थाओ मे नही बल्कि अजैन सस्थाओ मे भी उच्च पद प्राप्त करके उनमे रचनात्मक कार्य किए है। जैसे सन् १९६२ मे जब पर्दा प्रथा प्रचलित थी तब आपने नगर की प्रतिष्ठित बहनो को एकत्रित करके मिलन लेडिज क्लब की स्थापना लेडिज क्लब की स्थापना की। आप अनेको जैन अजैन सस्थाओ से सबद्ध है जैसे श्री जैन दिवाकर विद्या निकेतन ट्रस्ट महावीर स्वास्थ्य केंद्र, चदनबाला महिला सघ गीता भवन ट्रस्ट अ भा गजेद्र जैन स्वाध्यायध्यान पीठ इनर व्हील क्लब, म प्र जैन स्वाध्याय सघ स्वाध्याय मडल जैन सेवा सदन, सत्य साई सगठन, सजीवनी सेवा सगठन, श्री अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेंस, नई दिल्ली, जैन सेवा सघ आदि। वीरवाल भाई बहनों की सेवा के लिए आपकी भावना बहुत प्रबल है। उनके लिए आपने इसी वर्ष पाँच पाठशालाएँ खुलवाई है तथा पाँच पाठशालाएँ और खोलने की योजना है।

श्री जैन दिवाकर विद्या निकेतन ट्रस्ट द्वारा आपकी अध्यक्षता मे करीब १५ लाख रुपए का कार्य पूर्ण हो चुका है। भविष्य मे ५० लाख की योजना है। इस स्कूल मे वर्तमान मे १ वर्ष से ५ वर्ष तक के शिशु अध्ययनरत है। आधुनिक साधनो द्वारा बाल शिशुओ का मानसिक विकास किया जाता है। सजीवनी सेवा सगठन के अतर्गत विकलाग सेवा केंद्र चलाया जाता है। जिसमे विकलागो को अनेको प्रकार के कार्य सिखाए जाते है, जैसे हेन्डलूम चलाना, कुर्सी, टेबल बनाना आदि।

सत्साहित्य प्रकाशित करवाने मे भी आप उदार मन से आर्थिक सहायता करती है। आचार्य प्रवर १००८ श्री हस्तीमलजी म सा के प्रवचनो का सग्रह आपने 'गजेद्र व्याख्यान माला' नामक पुस्तक मे बहुत ही सुदर ढग से किया है। आपके द्वारा छपाई

गई पुस्तक अतर्दृष्टि मे चिन्तनशील कवि मधुर वक्ता मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी 'कमल'के प्रवचनो का सग्रह भी बहुत ही सुदर ढग से किया गया है।

आपके द्वारा चिकित्सा के क्षेत्र मे भी बहुत मदद की जाती है। हृदय रोग एव अन्य बडी-बडी बीमारियो के निवारण हेतु आपकी स्वय की ट्रस्टो द्वारा बडी मात्रा म आर्थिक मदद की जाती है। आपके ट्रस्टो से गरीब छात्रो को उच्च अध्ययन हेतु फीस एव पुस्तको के लिए भी आर्थिक मदद की जाती है। होनहार छात्र एव छात्राओ को आप रोजगार दिलाने मे पूर्ण सहयोग करती हैं।

पता नन्दन वन १, महात्मा गाँधी रोड, इदौर-४५२ ००१।

श्री जे . माणकचद कोठारी

श्री जे माणकचद कोठारी बगलौर के एक अग्रणी सामाजिक कार्यकर्ता है। आप कर्नाटक के पान ब्रोकर्स एसोसिएशन के सचिव हैं। आपके कार्यकाल मे उक्त सस्था ने अपूर्व प्रगति की है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी शिक्षण सघ के अतर्गत चलाई गई निम्न लिखित आठ सस्थाओ मे आप महामत्री के पद को सुशोभित कर रहे है।

(१) जुगराज कोठारी हिन्दी बाल मदिर।
(२) धनराज फूलचद हिन्दी हाईस्कूल।
(३) कला व वाणिज्य हिन्दी महाविद्यालय।
(४) कुन्दनमल साकला पुस्तकालय।
(५) अमोलकचद चोपडा हिन्दी बालक वस्ती।
(६) हुकमीचद सीचा हिन्दी बाल निकेतन।
(७) पनामी बाई लूणिया कन्या हाईस्कूल।
(८) मागीलाल गोटावत हिन्दी जूनियर कॉलेज।

पता न १३, किंग स्ट्रीट, रिचमड टाउन अशोक नगर, बगलौर-५६० ०२५

श्री माणिकचद जैन (बरमेचा)

श्री माणिकचद जी का जन्म ३१ जनवरी १९२९ को ओसवाल जैन बरमेचा गोत्र के सपन्न परिवार मे हैदराबाद मे हुआ। पिताश्री का नाम श्री पन्नालाल जी बरमेचा एव मातुश्री का नाम श्रीमती केसर बाई था। प्रारभिक शिक्षा हैदराबाद मे तेलगु, हिन्दी एव उर्दू भाषा मे ली। आप जैनेन्द्र गुरुकुल पचकूला एव जैन गुरुकुल ब्यावर के विद्यार्थी भी रहे, जहाँ आपने जैन धर्म, सस्कृत एव प्राकृत का अध्ययन किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय मे जैन न्याय, बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय मे सस्कृत व हिंदी की परीक्षाएँ पास की। उस्मानिया विश्व विद्यालय से वाणिज्य शास्त्र (बी कॉम) एव कानून की डिग्रियाँ प्राप्त की। दो वर्ष तक फर्स्ट क्लास आनरेरी मजिस्ट्रेट के पद पर रहे।

कुछ वर्षों तक कर की वकालत की। आपका स्टील फर्नीचर उत्पादन का व्यवसाय है। सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र मे आपने कई धार्मिक शैक्षणिक व सामाजिक सस्थाओ की स्थापना की है जिनमे विशेष उल्लेखनीय श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ हैदराबाद, जैन सेवा सघ जिसके आप सस्थापक सदस्य, मत्री व अध्यक्ष रहे। शातिनाथ जैन पाठशाला के सस्थापक एव अध्यक्ष रहे और महावीर जैन छात्रावास के मत्री रहे।

गत ३५ वर्षों से आप काग्रेस (आई) मे सक्रिय भाग ले रहे है।

पता १६-७-३९३ पन्ना केसर, आजमपुरा, हैदराबाद-५०० ०२४

श्री मानकचद मारू

श्री मानकचद जी मारू का जन्म रामपुरा, जिला मदसौर, मध्यप्रदेश मे दिसबर, सन् १९२० को हुआ। आपके पिता रामपुरा के प्रतिष्ठित परिवार के प्रमुख कपडा व्यवसायी श्री तेजमल जी मारू थे। घर के सुसस्कारो एव धार्मिक वातावरण मे शिक्षा-दीक्षा मिलने से बचपन से ही सामाजिक एव धार्मिक कार्यों मे भाग लेने की रुचि जागृत हुई।

आपने रामपुरा मे हाईस्कूल परीक्षा पास कर इदौर मे उच्च शिक्षा प्राप्त की एव सन् १९४५ मे एम ए की डिग्री तथा सन् १९४७ मे एल एल बी की डिग्री आगरा युनिवर्सिटी से प्राप्त की।

श्री मारू ने इदौर मे रहते हुए सामाजिक गतिविधियो मे भाग लेना प्रारभ किया और सर्वप्रथम स्थानकवासी जैन नवयुवक मित्र मडल के सदस्य बने। भारत जैन महामडल की सदस्यता ग्रहण की और उसके माध्यम से समाज की गतिविधियो मे भाग लिया। सामाजिक एव धार्मिक विशिष्ठ सेवाओ मे काम करने के लिए आपको भारत जैन महामडल द्वारा भगवान महावीर के २५०० वे निर्वाण दिवस के अवसर पर समाज बधु की उपाधि से सम्मानित किया गया।

सन् १९५१ से रतलाम नगर का स्थायी निवासी हो जाने से आप यहा की सामाजिक एव धार्मिक सस्थाओ से जुडे हुए है। यहा आप स्थानकवासी जैन श्रावक सघ की कार्य समिति के सदस्य बने। रतलाम मे महिला सिलाई केद्र की स्थापना हुई जिसके प्रथम सलाहकार बोर्ड के आप अध्यक्ष निर्वाचित हुए। यह सस्था आज प्रगति के उच्च शिखर पर है। सस्था का अपना निजी भवन है और डिप्लोमा कोर्स तक का शिक्षण दिया जाता है। रतलाम नगर मे श्री धर्मदास धुलचद धार्मिक ट्रस्ट के आप ३० वर्ष से अध्यक्ष है। इस ट्रस्ट के माध्यम से प्रति वर्ष हजारो रुपए की समाज की असहाय महिलाओ को सहायता दी जाती है। सगठन और एकता मे विश्वास रखने वाले और ऐसी प्रवृत्तियो मे ही कार्यरत श्री मारू अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेस की कार्यकारिणी तथा भारत जैन महामडल की प्रातीय शाखा की कार्यसमिति के सदस्य होकर सक्रियता से समाज मे कार्य कर रहे है। श्री मारू पिछले ३५ वर्षों से रतलाम मे वकालत कर रहे है।

पता १०९, न्यू रोड रतलाम-४५७००१ (मध्यप्रदेश)

श्री मानचद सिसोदिया

श्री मानचद सिसोदिया कामारेड्डी क्षेत्र मे जैन समाज के सक्रिय उत्कट कार्यकर्ता हैं। हर सामाजिक समारोह एव कार्य पर आपका प्रेरणास्पद एव उत्कर्ष भरा मार्गदर्शन कामारेड्डी के जैन समाज सघ को प्राप्त होता है। अपने जीवन मे आपने लघु स्तरीय अनेक धर्म एव सामाजिक सेवाओ मे जीवन समर्पित किया है।

आप अखिल भारतवर्षीय श्वे स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस की कार्यकारिणी समिति के सक्रिय सदस्य है। कामारेड्डी जैन श्रीसघ के उपाध्यक्ष और कान्फ्रेस की आध्र प्रदेश शाखा के सदस्य है।

कामारेड्डी मे शैक्षणिक जागृति हेतु आपने 'कामारेड्डी आर्ट्स एड साइस कॉलेज के निर्माणार्थ आर्थिक सहयोग दिया है। आप कालेज के तथा जी वि एस कॉलेज कामारेड्डी के प्रबध मडलो के सदस्य है।

समाज सेवक के रूप मे जैन समाज, कामारेड्डी को आपका सराहनीय सहयोग प्राप्त हुआ है।

पता मे लादुराम मानचद सिसोदिया जनरल मर्चेट एव कमीशन एजेट सिलसिला रोड कामारेड्डी निजामाबाद-५०३ १११ (आध्र प्रदेश)

श्री मानकचन्द कर्णावट

पता मे चन्द्ररूप क्लॉथ स्टोर लक्ष्मी रोड कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

श्री जी मागीलाल सुराणा

श्री मागीलाल सुराणा का जन्म ८ नवबर १९३० को ग्राम कुचेरा जिला-नागौर राजस्थान मे हुआ। आपने बी कॉम एल एल बी तक शिक्षा प्राप्त की।

आप सन् १९५९ से इडियन नैशनल काग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता रहे है। सन् १९७५ मे आप काग्रेस की केद्रीय कैम्पन कमटी के औद्योगिक फोरम के सदस्य थे। सन् १९८२ मे आध्र प्रदेश काग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य भी रहे। युनाइटड हिन्दु-मुस्लिम फ्रट द्वारा १९७५ मे आपको यूनिटी सम्मान प्रदान किया गया।

व्यवसायिक क्षेत्र मे अखिल भारतीय आर्गनाइजेशन ऑफ एम्पलोयर्स के कार्यकारिणी समिति के सदस्य इडियन ओवरसीज बैक के डायरेक्टर तथा फेडरेशन ऑफ आध्र प्रदेश चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स एड इडस्ट्रीज के अध्यक्ष रहे है।
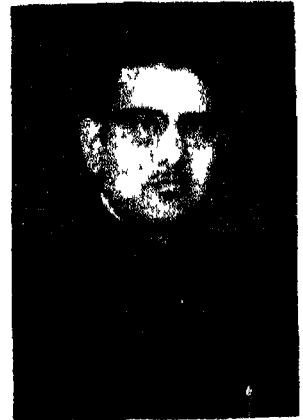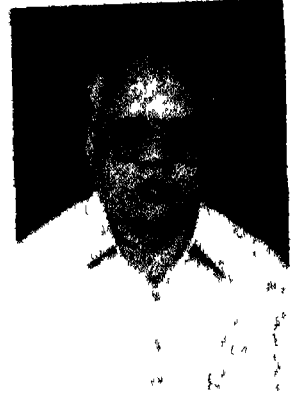
श्री सुराणा अनेक सरकारी सलाहकार समितियो के सदस्य रहे हैं तथा आध्र प्रदेश स्टेट ट्रेडिंग कोरपोरेशन के डायरेक्टर भी रहे है।

शैक्षणिक क्षेत्र मे आपने कुचेरा जैन बोर्डिंग और जैन कन्या उच्च माध्यमिक स्कूल की आर्थिक सहायता की है। आप गॉंधी नेचर क्योर कॉलिज के अध्यक्ष भी रहे है।

विविध सार्वजनिक प्रवृत्तियो मे भाग लेते हुए श्री सुराणा साधना मदिर हाईस्कूल, बोलारम और हैदराबाद के फैडस अमेचर आर्टिस्ट्स एसोसिएशन क अध्यक्ष और स्काउट्स एव रोटरी आदोलन से सबद्ध रहे है।

श्री सुराणा अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेस की कार्यकारिणी के सक्रिय सदस्य है।

पता मे सुराणा उद्योग, सूर्य टॉवर, एम पी रोड, सिकदराबाद-५०० ००३

श्री मिश्रीलाल छगनमल बाफना

श्री मिश्रीलाल बाफना का जन्म १५ अक्तूबर सन् १९२६ को फागना जिला धुले (महाराष्ट्र) मे हुआ। आपकी शिक्षा केवल मैट्रिक तक रही परतु आप अँगरेजी, हिंदी, गुजराती, मराठी, पजाबी आदि अनेक भाषाओ मे दक्ष है।

आपका मुख्य व्यवसाय टाटा डीजल वाहन, बजाज टेम्पो और मारुती कारो का वितरण है। इसके अतिरिक्त आप खाद्यानो का व्यापार और ट्रक और ट्रेक्टरो के लिए धन भी उपलब्ध करवाते है।

आपने धुले पीपल्स को आपरेटिव बैक की स्थापना की जिसके ८ वर्ष तक अध्यक्ष भी रहे। इसी प्रकार आप मर्चेंट को बैक धुले मे भी २० वर्ष मे सबद्ध है। धुले मे महाराष्ट्र के को बैको के मेनजरो का जो सम्मेलन हुआ था उसके स्वागताध्यक्ष श्री बाफना जी ही थे।

श्री मिश्रीलाल बाफना धुले की रेडक्रास सोसायटी और लायस क्लब के अध्यक्ष पद पर रहे हैं। सन् १९७२ मे महाराष्ट्र मे अकाल के अवसर पर आपने धुले, नादेड, अकोला तथा औरगाबाद जिले मे पीने का पानी उपलब्ध कराने के लिए पाँच टैकर नि शुल्क दिए थे।

शिक्षा के क्षेत्र मे श्री बाफना ने ग्रामीण इलाके मे दो स्कूल स्थापित किए हैं और धुले मे विधा वर्धिनी कॉलिज खोला है जो आज प्रशसनीय ढग से चल रहे हैं।

पता बाफना मोटर्स (प्रा) लि पोस्ट बॉक्स न -५९,
बबई-आगरा रोड, धुले-४२४ ००३

श्री मोहनलाल चोपड़ा

निम्नलिखित धार्मिक व सामाजिक सस्थाओ मे श्री मोहनलाल चोपडा का महत्वपूर्ण योगदान है –

(१) नासिक रोड जैन श्वेताम्बर स्था श्रावक सघ के ट्रस्टी एव मत्री।

(२) श्री तिलोक रत्न धार्मिक परीक्षा बोर्ड (पाथर्डी) अहमदनगर के बाध काम समिति के चेयरमैन।

(३) श्री वर्धमान फाउडेशन, नासिक रोड के ट्रस्टी व चेयरमैन।

(४) सौभाग्य पैथोलॉजिकल लेबोटरी के प्रायोजक एव कार्यवाहक।

अपने व्यवसाय क्षेत्र मे भी आप अग्रणी हैं और दि नासिक रोड देवलाली व्यापारी सहकारी बैक लि के चेयरमैन व मैनेजिग डायरेक्टर रह है।

पता सौभाग्य चैम्बर्स,
नासिक रोड-४२२ १०१ (महा)

श्री रणजीतसिंह सोजत्या (भडारी)

श्री रणजीतसिंह सोजत्या (भडारी) उदयपुर (राज) के एक कर्मनिष्ठ एव प्रसिद्ध समाजसेवी है। आप पिछले छ वर्षो मे अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स राजस्थान शाखा उदयपुर के मत्री पद पर कार्यरत है। श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ उदयपुर को पिछले बीस वर्षो से सेवाएँ प्रदान कर रहे है। शिक्षा के क्षेत्र मे भी श्री सोजत्या की सेवाएँ महत्वपूर्ण है। आपने अनेक प्रतिभावान छात्र-छात्राओ को छात्रवृत्ति दिलवाकर एव उचित मार्गदर्शन प्रदान कर उनका भावी जीवन उज्ज्वल बनाया। अनेक सत एव सतियो को आप सत्साहित्य उपलब्ध कराने मे विशेष सहयोग दे रहे है। आपने अभी तक पाँच सत एव सतियो को पी एच डी की उपाधि दिलवाने मे सर्वथा प्रशसनीय कार्य किया है। आप चातुर्मास आदि के सयोजन एव उसके सफलतापूर्वक समापन मे पिछले पद्रह वर्षो से सहयोग देते आ रहे हैं। शिक्षा एव समाज सेवा के क्षेत्र मे ऐसे समर्पित व्यक्तित्व को पाकर जैन जगत गौरव का अनुभव कर रहा है।

पता ४७, सोजत्या भवन,
सिघरवाडियो की सहेरी, उदयपुर-३१३००१
(राजस्थान)
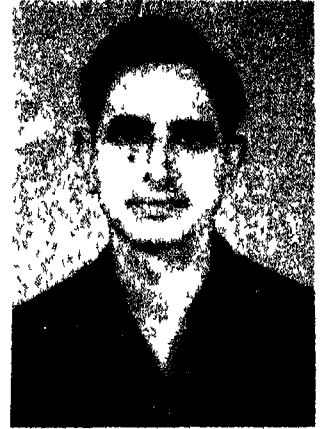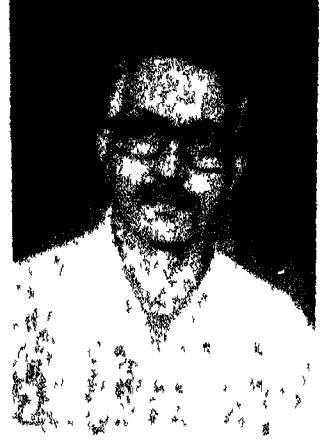
श्री रतनचन्द जी बोहरा

सन् १९२९ मे जन्मे श्री रतनचद जी बोहरा स्थानकवामी जैन समाज के उत्साही युवक कार्यकर्ताओ मे अग्रणी माने जाते है। श्री बोहरा मूलत राजस्थान (कुचेरा) के निवासी है और वर्तमान मे मद्रास मे रह रहे है। मद्रास के प्रवासी राजस्थानी समाज मे आपके आपनी सेवाभावना के द्वारा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया हुआ है। परिणामस्वरूप अनेक सस्थाओ से आपका सबध बना हुआ है। भ म २५०० वे निर्वाणोत्सव के उपलक्ष्य मे स्थापित राजस्थानी श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन एसोसिएशन की 'मानव राहत' योजना के महामत्री श्री मोहनमल जी चोरडिया के नेतृत्व मे २० लाख की लागत से निर्मित जैन भवन (मद्रास) के मत्री तथा सस्थापको मे रहे है। अपग मानवो की सहायतार्थ स्थापित 'दया सदन' के १० वर्षों से मत्री रहे है। श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन एजूकेशनल सोसायटी के स्कूलो तथा चिकित्सालयो आदि अनेक सस्थाओ मे भी मत्री के रूप मे सेवाएँ देते रहे है। इन समाज सेवाओ को दृष्टिगत करते हुए मद्रास सरकार 'आनरेरी प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट' तथा 'जस्टिस ऑफ पीस' का सम्मान भी आपको मिला।

अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेन्स के ब्यावर अधिवेशन (१९७१) मे आपने श्रावक सघ की अध्यक्षता की और तब से अब तक लगातार कान्फ्रेन्स की कार्यकारिणी के सदस्य रहे है।

पता १० जनरल मूथिया मुदाली स्ट्रीट मद्रास-६००००१

श्री रिखबराज कर्नावट

विगत तीन दशाब्दियो से अधिक समय से अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेन्स की कार्यकारिणी के सदस्य एव कान्फ्रेन्स की प्रातीय शाखा के निर्माण से अभी तक अध्यक्ष का पद सभालने वाले श्री कर्नावट का जन्म भोपालगढ मे २५ जून १९१९ को हुआ। आपने नागपुर से एल एल बी की परीक्षा उत्तीर्ण कर जोधपुर मे सन् १९४५ मे वकालत प्रारम्भ की।

श्री कर्नावट का बचपन से समाज सेवा की लगन थी। भोपालगढ मे वे नवयुवक मडल के सस्थापक अध्यक्ष,श्री जैन कन्या पाठशाला के सस्थापक मत्री व अपनी शिक्षा-दात्री स्कूल श्री जैन रत्न विद्यालय के मत्री व बाद मे उपाध्यक्ष, कार्याध्यक्ष व अध्यक्ष रहे व अभी भी मुख्य परामर्शदाता है।

जोधपुर मे वे महावीर कन्या पाठशाला के मानद अधीक्षक, सरदार उच्च विद्यालय के मत्री महेश बी एड कालेज की कार्यकारिणी के सदस्य व सोमानी कालेज मे विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि सदस्य रहे। जोधपुर विश्वविद्यालय के सिडीकेट, फाइनेंस कमेटी कमेटी, आर्फिलिएशन कमेटी बिल्डिंग कमेटी, फिक्सेशन कमेटी व सदाचार कमेटी आदि अनेक कमेटियो के सदस्य एव सयोजक तथा सीनेट के दस वर्ष सदस्य रहे। श्री ओसवाल सिंह सभा के लगभग दस वर्ष तक उपाध्यक्ष रहे। जोधपुर के बाहर काठा महिला शिक्षण सघ, राणावास, श्री वर्द्धमान उच्च माध्यमिक विद्यालय ओसिया के उपाध्यक्ष व परामर्शदाता रहे। राजनीति मे प्रारभ मे जिला कांग्रेस कमेटी व राजस्थान प्रातीय कांग्रेस के सदस्य रहे। ओसिया रचनात्मक कामो मे अधिक रहा।आप अनेक खादी और ग्रामोद्योगी सस्थाओ के मत्री तथा अध्यक्ष रहे। जोधपुर जिला नशाबदी परिषद् के तथा राजस्थान टेम्परेंस सोसायटी के अध्यक्ष रहे। रेडक्रास सोसायटी जोधपुर शाखा का प्रतिनिधत्व दिल्ली मे किया। जोधपुर की प्रसिद्ध साहित्यिक सस्था अन्तर प्रातीय कुमार साहित्य परिषद एव गाँधी शाति प्रतिष्ठान के सलाहकार समिति के सदस्य अनेक वर्षों से है। सनातन गौशाला मडोर जोधपुर के पूर्व अध्यक्ष पद्मश्री आनन्द राज जी सुराणा के स्वर्गवास के बाद से अध्यक्ष हैं।

सर्व धर्म समन्वय मे कर्नावट जी का अटूट विश्वास रहा है। भारत जैन महामडल के प्रचार मत्री सगठन मत्री व उपाध्यक्ष रह चुके है व कार्यकारिणी के अनेक वर्षो से सदस्य रहे है।

श्री कर्नावट जी ने जोधपुर की मण्डोर डिस्टीलरी पर सरकारी वकील होते हुए भी डिस्टीलरी बद करवाने हेतु भारत प्रसिद्ध सत्याग्रह का सयोजन किया व तीन माह के प्रचड सत्याग्रह पर डिस्टीलरी बद करवाने मे सफलता प्राप्त की, जिसकी भूरि-भूरि प्रशसा तत्कालीन उप-प्रधानमत्री श्री मोरारजी देसाई व अनेक केन्द्रीय नेताओ ने सत्याग्रह स्थल पर आकर की।

धर्म प्रचार व स्वाध्याय के कार्यों मे भी कर्नावट जी की रुचि रही। आपने सैकडो लेख लिखे, जो राष्ट्रीय व जैन पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए। पर्यूषण के दिनो मे स्वाध्याय व धर्म प्रचारार्थ गत तीस वर्षो से ये भिन्न-भिन्न स्थानो पर जाकर भगवान की वाणी का प्रचार करते रहे। बहुविध सेवाओ मे लगनपूर्वक काम करने के उपलक्ष्य मे आपको समय-समय पर समाजसेवी, समाज बधु, समाज सेवा रत्न समाज गौरव, समाज प्रेम पद्माकर कार्यकर्ता शिरोमणि, वरिष्ठ स्वाध्यायी आदि अलकरण प्रदान किये गये तथा अनेको स्थानो पर आपका अभिनदन हुआ। सादे जीवन ऊँचे विचार के धनी कर्नावट जी इस उम्र मे भी युवक की भाति समाज सेवा मे पूर्ण रूप मे लगे हुए है।

पता ४४८, रोड १-सी, सरदारपुरा, जोधपुर

श्री रामनारायण जैन

ला रामनारायण दिल्ली जैन समाज के एक लब्ध प्रतिष्ठ व ठोस कार्यकर्ता है। आप अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेस के मत्री पद पर रह चुके है और वर्तमान मे कार्यकारिणी के सदस्य है। आप विश्व अहिसा सघ नई दिल्ली के मत्री और श्री वर्धमान श्रावक सघ, चाँदनी चौक, दिल्ली के अध्यक्ष रहे है। वर्तमान मे एस एस जैन सभा, गुजरात, बिहार, दिल्ली के कोषाध्यक्ष है।

शिक्षा के क्षेत्र मे आप श्री जैन श्रमणोपासक सीनियर सकेड्री स्कूल के मत्री रह चुके है और आजकल श्री महावीर जैन सीनियर सकेडी स्कूल के उपाध्यक्ष पद पर कार्य कर रहे है।

सार्वजनिक क्षेत्र मे आपकी नेत्र चिकित्सा कार्य मे सदा रुचि रही है। और आप उत्तरप्रदेश, बिहार राजस्थान मध्यप्रदेश, हरियाणा, पजाब व दिल्ली मे समय-समय पर नि शुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर लगाते रहे है। आप सत परमानद ब्लाइड रिलिफ मिशन के सयुक्त मत्री है।

श्री रामनारायण जैन अपने व्यवसाय के क्षेत्र मे अग्रणी नेता रहे है। आप फेडरेशन ऑफ ऑल इडिया फूडग्रेन डीलर्स एसोसिएशन के महामत्री और बिक्री कर सलाहकार बार्ड के सदस्य रहे है। आजकल आपका कागज का व्यापार है।

पता २१-बी स्वास्थ्य विहार, विकास मार्ग दिल्ली-९२

श्री लक्ष्मीचद तालेडा

श्री लक्ष्मीचद जी तालेडा का जन्म ब्यावर मे १६ मार्च, १९३७ का हुआ। आपका केबल और कडक्टर बनाने का उद्योग है। आप केबल एड कडक्टर मैन्यूफैक्चरिंग एसोसिएशन, नई दिल्ली के उपाध्यक्ष रह चुके है।

सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र मे आप निम्न सस्थाओ से सबद्ध रहे है

१ जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय ब्यावर।
२ मगन जैन महायता समिति, ब्यावर
३ आयबिल खाता, ब्यावर
४ प्यारचद जैन छात्रावास ब्यावर
५ तालेडा पब्लिक चेरीटेबल ट्रस्ट ब्यावर

आप अखिल भारतवर्षीय श्वे स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स की कार्यकारिणी के सक्रिय सदस्य है।

पता १७ पुरोहित जी का बाग, एम आई रोड, जयपुर-३०२००१

श्री विजय कुमार जैन

जाने माने सामाजिक कार्यकर्ता श्री विजय कुमार जैन अमृतसर के एक सुविख्यात परिवार से है। आपका जन्म सन् १९२४ मे हुआ। आपके पिताश्री स्व श्री बनारसीदास जैन धार्मिक प्रवृत्ति के एक सम्मानित सज्जन थे।

श्री विजय कुमार देश के बटवारे से पहले ही १९४७ मे दिल्ली मे आकर सुस्थापित हो गए थे। आप वीर नगर जैन कालोनी की एस एम जैन सभा के मत्री रह है। वीर नगर कालोनी को सुस्थापित करने मे श्री जैन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आप जैन सार्वजनिक पुस्तकालय और महावीर जैन सघ, सदर बाजार दिल्ली के कई वर्षो तक अध्यक्ष रहे हैं। शैक्षणिक कार्यो मे भी श्री जैन बडी रुचि रखते है। आपने महावीर फाउडेशन की स्थापना की और इसके प्रधान भी रहे। सन् १९८३ मे श्री जैन ने महावीर सीनियर मौडल स्कूल जी टी करनाल रोड, दिल्ली स्थापित किया जो आज एक सुप्रसिद्ध शिक्षा सस्थान है। अन्य जैन स्कूलो की प्रगति मे भी आप सहायक रहे है। धार्मिक वृत्ति वाले श्री विजय कुमार अहिसा शोधपीठ के सस्थापक सदस्य और जैनेन्द्र गुरुकुल पचकूला की कार्यकारिणी के सदस्य रहे है। 'वीरायतन' योजना की प्रगति मे भी आपने पूर्ण अभिरुचि दिखलाई है।

श्री जैन ने सेठ सुदरलाल धर्मार्थ अस्पताल, अशोक विहार की स्थापना मे अपना पूरा योगदान और सहयोग दिया है। इसी प्रकार आप रोहिणी, नई दिल्ली मे भगवान महावीर अस्पताल को बनवाने मे पूरी लगन से काम कर रहे है।

श्री विजय कुमार जैन एक सफल व्यवसायी है। उनका शीशे के मनको का व्यापार है जिसमे उनको उल्लेखनीय अनुभव प्राप्त है।

उपरोक्त सस्थाओ के अतिरिक्त अन्य कई धार्मिक और सामाजिक सस्थाएँ है जिनमे श्री जैन सबद्ध है।

समाज और साधु सतो की सेवा मे रत श्री जैन हसमुख और मृदुभाषी सज्जन है।

पता १, वीर नगर, जैन कॉलोनी, दिल्ली ११० ००७

श्रीमती विमलाबाई मोहनलाल लुकड

पता 'पद्मा महल", १-मोती बाग, पुणे–४११०१६

श्री वीरसेन जैन

श्री वीर सेन जैन दिल्ली के एक कर्मठ और ठोस कार्यकर्ता है। दिल्ली मे सहकारी आंदोलन और ग्रुप हाउसिंग सगठन को आपकी विशेष देन है। आप मूलत एक अध्यापक है परतु अपना बाकी समय सामाजिक और धार्मिक कार्यों मे ही लगाते हैं।

श्री वीरसेन महासती मोहन देवी जैन शिक्षण समिति, कोल्हापुर रोड, दिल्ली के महासचिव होने के साथ-साथ भगवान महावीर अस्पताल, रोहिणी, दिल्ली योजना के महामत्री तथा भारत जैन महामडल और अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेन्स के कार्यकारिणी के सदस्य है।

सहकारी और गृह समूह क्षेत्र मे आप 'अहिसा सहकारी गृह समूह समिति' तथा रोशनारा सहकारी स्टोर लि के मानद सचिव है और भी अनेक सहकारी ग्रुप हाउसिंग सोसाइटियो मे आप सक्रिय है।

पता ५, म्यूनिसिपल फ्लैट्स, कमला नगर, दिल्ली-७

श्री वेद प्रकाश जैन

श्री वेद प्रकाश जैन का जन्म १९२० मे राहोन (पजाब) मे हुआ। शीघ्र ही व्यापारिक कार्यो का भार उन पर आ पडा। परतु धार्मिक और सामाजिक गतिविधियो मे उनकी अभिरुचि बराबर बनी रही। आप सन् १९७१ से श्री जैनेन्द्र गुरुकुल पचकूला (हरियाणा) मे प्रधान पद पर हैं। यह गुरुकुल उत्तरी भारत की विशाल जैन सस्था है। यहाँ आचार्य सम्राट पूज्य श्री आनद ऋषिजी महाराज के आशीर्वाद से और गुरुकुल के सस्थापक श्री चि कृष्णचद जी आचार्य के मार्गदर्शन से प्राकृत विद्यापीठ की स्थापना की गई है जिसके अतर्गत 'वन्देवीरम्'' पत्रिका प्रकाशित होती है तथा जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड धार्मिक परीक्षाएँ आयोजित होती है।

श्री वेद प्रकाश निम्नलिखित सस्थाओ से सबद्ध हैं।

१ पजाब व्यापार मण्डल
२ अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेस , नई दिल्ली
३ अमर जैन हॉस्टल, चडीगढ़
४ समाज भलाई सस्था, नवाशहर

पता १०, जैन मार्किट, रेलवे रोड, नवाशहर, दोआबा- १४४ ५१४ जालधर-पजाब
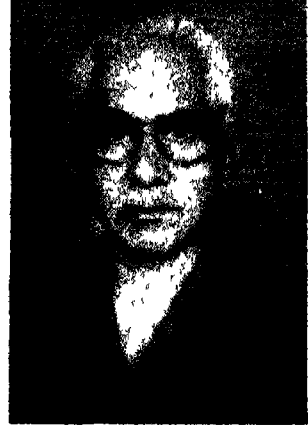
श्री शरद मेहता

श्री शरद मेहता का जन्म ३ फरवरी, १९५० को महाराष्ट्र के भुसावल नगर मे हुआ। आपने इदौर के सेक्सरिया कॉलेज मे मेकेनिकल इजीनियर की डिग्री ली। इस समय ऑइल मिल, रिफाइनरी व भूमि व्यवसाय मे लगे है।

आप १९८३ म लायस क्लब इदौर के सस्थापक अध्यक्ष थे और १९८८ मे लायस क्लब इटरनेशनल के डिप्टी डिस्ट्रीक्ट गवर्नर बने। श्री मेहता अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य है और कान्फ्रेस की युवा शाखा के उपाध्यक्ष है। आपके पिता श्री फकीरचद जी मेहता एव माता श्रीमती पारसरानी मेहता प्रसिद्ध समाजसवी है।

पता 'पारस ६-डॉ भडारी मार्ग इदौर (मध्यप्रदेश)

श्री शातिलाल भिकचद छाजेड

श्री शातिलाल छाजेड का जन्म निमगाव, जिला नासिक मे सन् १९३४ म हुआ था। १९६० म उन्होने सी ए की परीक्षा उत्तीर्ण की और १९६१ मे वे बबई म प्रैक्टिस कर रहे है।

श्री शातिलाल छाजेड अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य है। बबई के ओसवाल मित्र मडल के वे खजाची है। जोधपुर कृत्रिम पाव के कार्य को बढावा देने मे इस मडल का तथा श्री छाजेड का बहुत बडा हाथ है। पूना म आनद फाउडेशन के प्रबध समिति एव कार्यकारिणी के सदस्य है। इस फाउडेशन का मुख्य कार्य जैन छात्रो की मदद करना महिलाओ के लघु उद्योग की स्थापना मे मदद करना इत्यादि है। जोधपुर के जैन एज्यूकेशन कमीशन द्वारा जैन यूनिवर्सिटी के स्थापन कार्य से जुडे हुए है। युवा पीढी को जैन शिक्षा देना इस कमीशन का मुख्य ध्येय है। बबई के महावीर फाउडेशन के सक्रेटरी है। हाल ही म महाराष्ट्र राज्य सरकार द्वारा बृहनमुबई के लिए श्री शातिलाल की नियुक्ति स्पशल एक्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट के रूप मे हुई है। बबई म जैन शिक्षार्थियो तथा जैन समाज की सहायता के लिए वे हमेशा तत्पर रहते है। इसके अलावा आप कई जैन सस्थाओ के ट्रस्टी है। महाराष्ट्र खाडसारी (शुगर) एसोसिएशन के १९७५-७८ मे उपाध्यक्ष रह चुके है।

जैन समाज की हर प्रकार की सेवा करना व जैन धर्म का प्रचार करना आप अपना कर्तव्य समझते है।

पता ए-१०६ सिल्वर अपार्टमेट्स
शकर धानकर मार्ग प्रभादेवी
दादर बबई

श्री शांतिलाल पोखरना

श्री शांतिलाल पोखरना का जन्म सन् १९३६ मे हुआ। आपने एम काम , एल-एल बी तक शिक्षा प्राप्त की है। आप लोहा, इस्पात के थोक व्यापारी व उषा निर्मित यन्त्रो और डायानोरा आदि टी वी के अधिकृत विक्रेता है।

आप भारत जैन महामडल, राजस्थान शाखा के उपाध्यक्ष और श्री वर्धमान स्था जैन श्रावक सघ, भीलवाडा के मन्त्री हैं। श्री पोखरना श्री वर्धमान जैन विद्यालय के अध्यक्ष और अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेस की राजस्थान शाखा के उपाध्यक्ष रहे हैं। आप कांग्रेस (इ) के भी सक्रिय कार्यकर्ता है।

पता राजस्थान कमर्शियल हाउस, ७७, बालाजी मार्किट, भीलवाडा (राज)

श्री शांतिलाल वनमाली सेठ
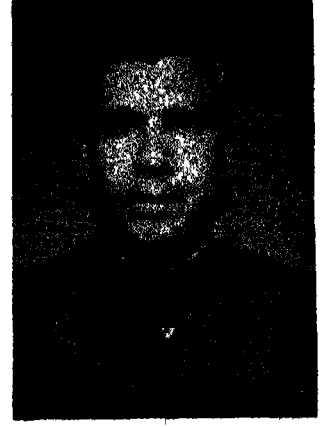
सेवा निष्ठ सौजन्यमूर्ति श्री शातिलाल सेठ का जन्म सौराष्ट्र के जेतपुर मे ता २१-५-१९११ को हुआ। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा गुजराती माध्यम से जेतपुर मे ही हुई। तदनन्तर १९२७ से १९३१ तक श्री अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेस द्वारा स्थापित जैन ट्रेनिंग कालेज मे रह और बीकानेर-जयपुर-ब्यावर म सस्कृत-प्राकृत का अध्ययन किया और कालेज की ओर से 'जैन विशारद' की उपाधि प्राप्त की और साथ ही जैन न्याय की परीक्षा 'न्यायतीर्थ' उत्तीर्ण की। जैन शास्त्री का विशेष अध्ययन करने के लिए आप अहमदाबाद मे प बेचरदास जी के पास रह और वहाँ प्रज्ञाचक्षु प सुखलाल जी तथा आचार्य मुनि श्री जिनविजयी के विशेष सपर्क मे आए। पू गाधीजी, आ काका साहेब, आ कृपलानीजी आदि राष्ट्र नेताओं के सपर्क मे आने का भी यहाँ अवसर मिला। उसके बाद १९३२ से १९३५ तक विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विश्व-भारती शाति-निकेतन मे रहकर आचार्य मुनि जिनविजय जी एव महामहोपाध्याय श्री विधुशेखर भट्टाचार्य से जैन धर्म और बौद्ध धर्म का तुलनात्मक अध्ययन किया। परिणामस्वरूप 'धम्ममुत्त' के नाम से जैन-बौद्ध सूक्तो का सकलन किया जो आगे जाकर प बेचरदास जी द्वारा सपादित होकर 'महावीर वाणी' के नाम स प्रकाशित हुआ।

आपने १९३५ से १९४४ तक विविध धार्मिक और सामाजिक सस्थाओ मे सेवारत रहकर ग्रथो का सकलन और सपादन किया। आपके साक्षात्कार जवाहर, ज्योति, धर्म और धर्मनायक, ब्रह्मचारिणी, जवाहर व्याख्यान-सग्रह, जैन प्रकाश की उत्थान-सपूर्ति, अहिसा-पथ आदि पत्रिका और ग्रन्थ प्रकाशित हुए है। १९४५ से १९५० तक आपने श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शोध सस्थान, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मे सचालक के रूप मे सेवा की और प सुखलाल जी के सपर्क मे मन मे रही हुई 'समन्वय भावना' विशेष दृढ हुई। वही रहकर जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी की स्थापना और सचालन म योगदान दिया और कई जैन सस्कृति, धर्म और दर्शन विषयक पुस्तिकाओ का सपादन किया।

श्री शातिलाल ने १९५५ से १९६५ तक श्री स्था जैन कान्फ्रेन्स के मत्री रहे और दिल्ली मे जैन प्रकाश (हिन्दी-गुजराती) का सपादन किया। इसी बीच जैन गुरुकुल, ब्यावर मे रहकर समाज सेवा की। १९५६ से १९६६ तक आ काका साहेब कालेलकर के साथ रहे और राष्ट्र सेवा और हरिजन सेवा आदि कार्यों मे रत रहे और गाधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा, मगल प्रभात, श्रम-साधना-केद्र, विश्व समन्वय केद्र तथा गाधी विचारधारा को पुष्ट करने वाली अनेक सर्वेदशी सस्थाओ मे योगदान देने का अवसर मिला।

आपने १९६१ मे मास्को मे विश्व-शाति-परिषद् मे जैन धर्म का प्रतिनिधित्व किया और समतामूलक जैन धर्म के साम्यभाव का व्याख्यान दिया। मास्को रेडियो मे भी व्याख्यान देने का अवसर मिला और रूस मे कई नगरो का पर्यटन करने का भी मौका मिला। १९७४-७५ मे भगवान महावीर २५वी निर्वाण शताब्दी महोत्सव की राष्ट्रीय समिति के एक मत्री रहे और महोत्सव की सफलता मे सक्रिय सहयोग दिया। १९८५ मे जैन मिलन इटरनेशनल दिल्ली की सस्था ने शातिभाई की सेवाओ का आदर करते हुए 'सन्निष्ठ समाज-सेवी' की उपाधि प्रदान की।

आज ७७ वर्ष की आयु मे भी निवृत्तिमय जीवन मे इनकी राष्ट्र, समाज एव धर्म की सेवा सतत् चल रही है। वर्तमान मे बगलौर मे सन्मति स्वाध्याय-पीठ स्थापित की है और उसका सचालन कर रहे है।

पता २० गुजराती विहार, विकास मार्ग दिल्ली-९२

श्री शातिलाल धाकड

श्री शातिलाल इदौर नगर के स्थानकवासी समाज के सेवाभावी प्रतिष्ठित धर्मनिष्ठ श्रावक स्व श्री भवरलाल जी धाकड के सुपुत्र है। आप श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्री सघ इदौर के सक्रिय कार्यकर्ता हैं तथा मध्यप्रदेश और राजस्थान की अनेक धार्मिक सामाजिक, शैक्षणिक एव स्वास्थ्य सबधी सस्थाओ के पदाधिकारी है। आप अखिल राजस्थान अहिंसा प्रचार जैन सघ के पूर्वाध्यक्ष और वर्तमान कार्याध्यक्ष है।

श्री शातिलाल इदौर रोटरी क्लब और फ्लाइग क्लब के सदस्य है।

पता कचन विहार ७/१ न्यू पलासिया इदौर ४५२ ००१ (म प्र)

श्री शोरीलाल जैन

श्री शोरीलाल जैन का जन्म १७ अक्टूबर १९१९ मे सियालकोट (पाकिस्तान) मे हुआ था। भारत विभाजन के पश्चात् आप लुधियाना आकर बस गए। यहाँ पर होजरी के धागे का व्यापार शुरू किया। ईमानदारी एव कडी मेहनत के परिणामस्वरूप आप प्रमुख उद्योगपतियो मे गिने जाते है।

स्वभाव से मिलनसार, मृदुभाषी एव हसमुख श्री शोरीलाल जैन सामाजिक एव धार्मिक गतिविधियो मे भी समय-समय पर हिस्सा लेते रहते है। सत-सतियो के प्रति आपके हृदय मे अगाध श्रद्धा भक्ति है। लुधियाना की

अनेक सामाजिक एव स्वास्थ्य सस्थाओ के आप अध्यक्ष हैं। आप वर्तमान मे एस एस जैन बिरादरी लुधियाना के वरिष्ठ उपप्रधान है तथा पूज्य आचार्य श्री आत्माराम जैन सहायता समिति के प्रधान हैं। आप एस एस जैन महासभा पजाब उत्तरी भारत के भी उपप्रधान हैं। इसके अतिरिक्त आप जैनेन्द्र गुरुकुल पचकूला कमेटी के स्थायी सदस्य एव आचार्य श्री आत्माराम जैन हास्पिटल कमेटी (लुधियाना) के सम्मानित सदस्य है। इन सभी सस्थाओ के प्रति आपका सदैव उदार सहयोग,व दूरदर्शी दृष्टिकोण कभी भुलाया नही जा सकेगा।

पता एस आर वुलन मिल्स, ८९२/३, स्ट्रीट न ३, गणेश नगर, लिंक रोड, लुधियाना

श्री सपतलाल प्रेमराज सुराणा

मनमाड शहर के औद्योगिक, शैक्षणिक, सास्कृतिक क्षेत्र मे श्री सपतलाल सुराणा का महत्वपूर्ण स्थान है। शैक्षणिक क्षेत्र मे आपका योगदान उल्लेखनीय है। आपने कई निर्धन विद्यार्थियो को किताबे, गणवेश आदि देकर मदद की है। मनमाड औद्योगिक विकास को गति देने के लिए आपने बेग बनाने का कारखाना शुरू किया है जिसमे सैकडो मजदूरो को काम उपलब्ध हुआ है।
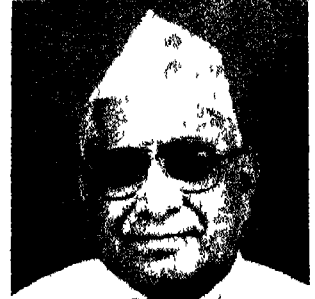
आपके षष्ठब्दीसमारोह के अवसर पर जो १४ जुलाई, १९८८ को मनाया गया था, श्री सपतलाल सुराणा को ६१ हजार रुपए की थैली प्रदान की गई। श्री सुराणा ने मनमाड शहर मे होने वाले स्थानक व मगल कार्यालय के लिए दो लाख इक्यावन हजार रुपए का दान दिया और एक लाख एक हजार रुपए को विश्वस्त निधि का गठन किया जिसके ब्याज से निर्धनो की मदद की जाएगी।

मनमाड महाविद्यालय शुरू करने मे सुराणा जी का बडा योगदान रहा। चाँदवड के नेमिनाथ जैन ब्रह्मचर्य आश्रम के वे विश्वस्त है। इसी सस्था के महाविद्यालय को इनके पिताजी श्रीमान प्रेमराज जी दलीचद सुराणा जी का नाम दिया गया है। पूना के आनद प्रतिष्ठान के कार्यकारिणी के आप सदस्य है। अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेस के कार्यकारिणी के भी सदस्य है। श्री सुधर्मा प्रचार मडल के महाराष्ट्र शाखा के आप कार्याध्यक्ष है। मनमाड के जैन ओसवाल सकल पच ट्रस्ट के विश्वस्त है। यहाँ के आनद धर्मार्थ अस्पताल को आप हमेशा ही सहयोग देते रहे है।

पता पो आप मनमाड जि नासिक (महा)

श्री सपतराज डूगरवाल

आप एक कर्मठ कार्यकर्ता है और अनेक सामाजिक व धार्मिक सस्थाओ से जुडे हुए हैं। वर्तमान मे आप कार्यकारिणी समिति के सदस्य है।

पता ६-४-३६४, न्यू भोगुडा, सिकन्द्राबाद (आध्रप्रदेश)

श्री एम सरदारमल चोरड़िया

श्री सरदारमल जी स्व पद्मश्री सेठ मोहनमल जी चोरडिया के सुपुत्र हैं। आप का लेन-देन का व्यवसाय है।

पता ३४२, मिण्ट स्ट्रीट, मद्रास- ६०० ०७९

श्री सलेकचंद जैन

श्री सलेकचन्द जैन का जन्म २८ सितबर १९३० को बडौत (उत्तरप्रदेश) मे हुआ था। आप ला उजागरमल जैन के ज्येष्ठ पुत्र है। सन् १९६० मे आपने दिल्ली मे आकर कागज का व्यापार आरम्भ किया और आज सब प्रकार के कागज और बोर्ड के दिल्ली के मुख्य व्यापारियो मे गिने जाते हैं। वे अपनी फर्म देहली पेपर कम्पनी के मैनेजिग पार्टनर हैं और मे मैगनम पेपर्स (प्रा) लि साहिबाबाद के अध्यक्ष हैं।

श्री सलेकचद धार्मिक एव सामाजिक तथा शैक्षणिक गतिविधियो मे पूरी रुचि रखते है। आप कितनी ही सामाजिक सस्थाओ के अध्यक्ष अथवा कार्यकारिणी के सदस्य हैं। आप अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानवासी जैन कान्फ्रेस की कार्यकारिणी समिति के भी कई वर्षो से सदस्य है।

पता मार्फत देहली पेपर, कम्पनी, ६८५-चितला गेट, चावडी, बाजार, दिल्ली-११० ००६
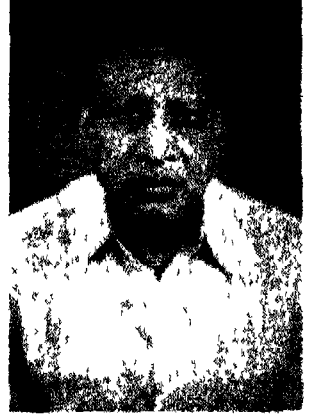
श्री जी सायरमल चोरडिया

पता न ७० एलीफेटा गेट एस्टेट, साउकारपेट, मद्रास-६०० ०७९

श्री सुखलाल पूनमचद कोठारी

पता मे नूतन फर्नीचर मार्ट, तीसरी रोड, रेल्वे स्टेशन के सामने, खार, बबई-४०० ०५२

सुमतिलाल धनराज मूथा

पता 'कुलदीप', १०७८, साठे

कॉलोनी शुक्रवार पेठ,

पुणे-४११ ००२
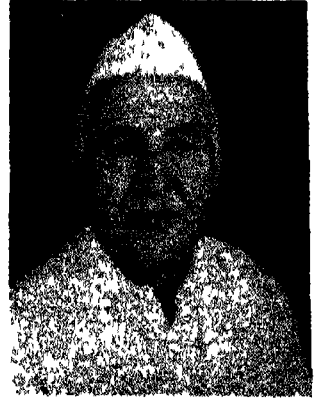
श्री सुरेन्द्र प्रकाश जैन

श्री सुरेन्द्र प्रकाश जैन का जन्म १५ मार्च, १९२६ को उत्तरप्रदेश के मेरठ जनपद के अतर्गत बडौत कस्बे मे हुआ। आपके पिता श्री उग्रसेन जैन एक कर्मठ समाजसेवी, राष्ट्रभक्त एव देश के सम्मानित व्यक्ति थे। पारिवारिक सस्कारो ने जहाँ समाज और राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना से कार्य करने के लिए प्रेरित किया, सामाजिक परिवेश ने राष्ट्र के प्रति निष्ठावान एव मानव-जाति की अहर्निश सेवा मे निरत रहने का आह्वान किया, और आप अपने यौवन काल मे ही शिक्षा, समाज-सेवा आदि के प्रचार-प्रसार मे लग गए।
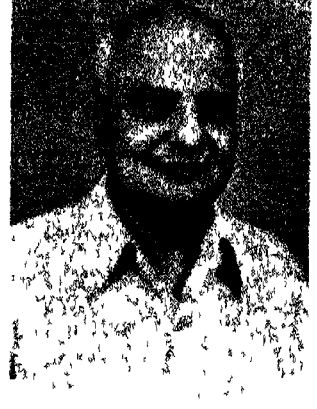
शिक्षा के क्षेत्र मे श्री जैन का सबसे बडा योगदान स्थानकवासी जैन कन्या महाविद्यालय, बडौत की स्थापना है जो स्त्री शिक्षा के क्षेत्र मे एक मानक है। बडौत नगरपालिका के आप पाच साल तक सदस्य रहे और इस अवधि मे जनता के लाभार्थ उल्लेखनीय कार्य किए। लगभग १६ वर्ष से लायस क्लब के सदस्य है और डिप्टी डिस्ट्रिक्ट गवर्नर के सम्मानित पद पर पहुँचे है।

श्री अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेंस, नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य के रूप मे २३ वर्ष तक कार्यरत रहना समाज-सेवा के क्षेत्र मे आपकी सराहनीय भूमिका का निदर्शक है। आपके अध्यवसाय एव कार्यकुशलता का दूसरा परिणाम शाहदरा जैन स्थानक का निर्माण है, जिसके अध्यक्ष के रूप मे विगत १५ वर्षो से अपनी सेवाये प्रदान करते आ रहे है। आज से लगभग २५ साल पहले आपने दोआबा जैन सघ की स्थापना की जिस के प्रथम अध्यक्ष सासद सदस्य सेठ अचलसिंह और आप महामत्री थे। इस सघ ने दोआबा क्षेत्र के असहाय, निर्धन एव साधनहीन जैन परिवारो के कल्याणार्थ प्रशसनीय कार्य किये।

श्री सुरेन्द्र प्रकाश जैन राजनीति के क्षेत्र मे कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता है। गत वर्ष शाहदरा श्रीसघ ने आपकी समाज सेवा के सम्मानार्थ चादर समारोह का आयोजन किया जिसमे आपके उज्ज्वल चरित्र, नि स्वार्थ समाज सेवा, हसमुख एव मोहक व्यक्तित्व तथा राष्ट्रीय विचारधारा की भूरि-भूरि प्रशसा की गई।

श्री जैन साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्ति है। आपकी मित्रमडली मे समाजसेवियो, राजनयिको तथा व्यापारियो के अतिरिक्त साहित्यकार, पत्रकार भी है। मुशी प्रेमचद के साहित्य काआपके जीवन पर गहरा प्रभाव है। दहेज को आप सामाजिक अपराध मानते है। आपने कई लघु कहानिया लिखी हैं जिनका सकलन प्रकाशनाधीन है। खेलो मे भी आपकी अभिरुचि है।

दिल्ली शाहदरा जैन समाज मे बढती हुई कुरीतियो एव कुण्ठाजन्य स्थितियो के समाधान हेतु प्रगतिशील विचारको द्वारा अखिल भारतीय जैन कल्याण समिति की स्थापना की गई है। इस समिति द्वारा शिक्षा, उद्योग व्यापार, स्वावलबी जीवन पद्धति आदि सामाजिक एव धर्मदर्शन, सास्कृतिक मूल्यो के सरक्षण-सवर्द्धन के लिए दिगम्बर, श्वेताम्बर स्थानकवासी अथवा तेरापन्थी आदि सप्रदाय गत मतभेदो से ऊपर उठकर सभी जैन धर्मावलबियो के कल्याण की भावना से कार्य करने का सकल्प लिया गया है। श्री सुरेन्द्र प्रकाश सन् १९८४ से इस समिति के अध्यक्ष है।

पता मे उग्रसेन एड सस, १६९, जी टी रोड, शाहदरा, दिल्ली-११० ०३२

श्री सौभाग्यमल जैन

हमारे समाज मे अनेक सेवाभावी कार्यकर्ता है, जिनका चिन्तन-मनन भूत, वर्तमान से सबद्ध होकर समाज की भविष्यत् प्रगति का प्रभावक मार्गदर्शक रहा है। श्री सौभाग्यमल जी जैन ऐसे ही प्रतिभाशाली समाज नेता है, जिनकी मानसिक स्वस्थता और विचारशैली का समाज की प्रत्येक गतिविधि मे प्रमुख स्थान है।
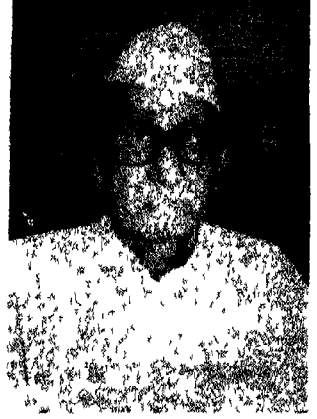
शाजापुर (म प्र) के एक सुसस्कृत सम्पन्न जैन परिवार मे आपका जन्म २४ फरवरी, सन् १९१० मे हुआ था। आपको बाल्यावस्था से ही समाज सेवा मे रुचि थी और सर्वप्रथम सन् १९२७ मे अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फेन्स के बीकानेर मे हुए अधिवेशन के अवसर पर समाज के सामने आए और उसके बाद तो समाज से आपका सपर्क प्रगाढ ही होता गया।

१९३३ के अजमेर साधु-सम्मेलन तथा सन् १९४९ मे भारत जैन महामडल के मद्रास अधिवेशन के समय दिया गया आपका सक्रिय सहयोग प्रशसकीय और उपयोगी सिद्ध हुआ है। सन् १९५२ मे हुए उज्जैन के सर्व-धर्म सम्मेलन के आप ही प्रधानमत्री थे और वर्तमान मे श्री अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन काफ्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य के रूप मे सामाजिक सेवा मे तत्पर है।

सन् १९३० से आपने देश की राजनीति मे भाग लेकर अनेक महत्वपूर्ण जन-आदोलनो का नेतृत्व किया है और तभी से आप काग्रेस के सदस्य और प्रमुख कार्यकर्ता है।

श्री जैन ससद प्रणाली के निष्णात विद्वान है। सन् १९४५ मे आप को ग्वालियर राज्य विधान सभा का सदस्य चुना गया और दल के उप-नेता निर्वाचित हुए। इसके पश्चात् असेम्बली के भी सदस्य चुने गये थे।

स्वतत्रता के पश्चात् मध्य भारत के निर्माण होने पर उसकी अतरिम विधान सभा के आप ही अध्यक्ष निर्वाचित हुए एव सन् १९५२ मे हुए आम चुनाव के पश्चात् नव-निर्वाचित मध्य भारत विधान सभा के उपाध्यक्ष बनाए गए थे किन्तु मत्रिमडल मे सम्मिलित होने के कारण आपने उक्त पद से त्यागपत्र दे दिया था।

आप सुप्रसिद्ध वकील, मानवीय भावनाओ के पारखी, साहित्य व धर्म के यथार्थ स्वरूप के उपासक और हिन्दी, अग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओ के साहित्य के मर्मज्ञ एव कलाप्रेमी हैं। धर्म, साहित्य आदि विविध शास्त्रो के महत्वपूर्ण चुने हुए ग्रथो से सुसज्जित आपका निजी विशाल पुस्तकालय आपकी सास्कृतिक रुचि का परिचायक है।

उदार दृष्टिकोण, विचार व धार्मिक सहिष्णुता, पारस्परिक समझौते और विचारो के आदान-प्रदान मे विश्वास रखने से आपका सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र मे महत्वपूर्ण स्थान है। आपके उच्च विचार, सादा रहन-सहन, सरल वेश-भूषा, प्रामाणिकता और सहिष्णुता प्रशसनीय है।

पता दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, शुजालपुर मडी (म प्र)

श्री सुबालाल छगनमल बाफना

श्री सुबालाल बाफना का जन्म २८ जनवरी सन् १९३२ को ग्राम फागना, जिला-धुले, महाराष्ट्र के एक कृषि प्रधान परिवार मे हुआ। अपने क्षेत्र मे सहकारी आंदोलन को बढ़ावा देने तथा खेतीहरो की उन्नति के लक्ष्य से उन्होने नवलनगर मे एक सजय सहकारी साखर कारखाना स्थापित किया। आपने अपने क्षेत्र के गाँवो मे कई नेत्र चिकित्सा और विकलांग बच्चो के हितार्थ शिविर लगवाये।

इनकी सेवाओ और क्षमता को देखते हुए सरकार ने इन्हे अनेक सरकारी सस्थानो और समितियो का सदस्य मनोनीत किया—जैसे हाई पावर कमेटी आफ टूरिजम, महाराष्ट्र सरकार, टेलकॉम सलाहकार समिति, इडस्ट्रियल ट्रेनिंग इस्टीट्यूट आदि।

सार्वजनिक तथा सामाजिक क्षेत्र मे श्री बाफना इडियन रेडक्रास सोसायटी अन्ध विद्यालय, धुले एजूकेशन सोसायटी जैन बोर्डिग चेम्बर ऑफ कॉमर्स, लायस क्लब, महावीर क्लब महावीर समिति आदि से सबद्ध रहे है।

धर्मार्थ प्रवृत्तियो के लिए आपने अपने पिताश्री के नाम पर एक चेरिटेबल ट्रस्ट की स्थापना की है और दो विद्यालय प्रारभ किए है।

आपका पैतृक व्यवसाय अनाज, रुई आदि की आढत है। बाद मे आपने बिल्डिग का काम और आटोमोबाइल की एजेसी का भी व्यापार शुरू कर दिया था। इन व्यवसायो के अतर्गत आप निम्न फर्मो का सचालन कर रहे हैं –

१ बाफना फूड्स प्रा लि
२ बाफना मोटर्स
३ सुन्दर ऑटोमोबाइल्स
४ बाफना फार्म्स
५ बाफना इवेस्टमेट कारपोरेशन
६ बाफना फाइनेस।

पता मेसर्स बाफना मोटर्स,
पेरोला रोड
धुलिया-४२४ ००१

स्व. श्री हरबस लाल जैन

लुधियाना (पजाब)
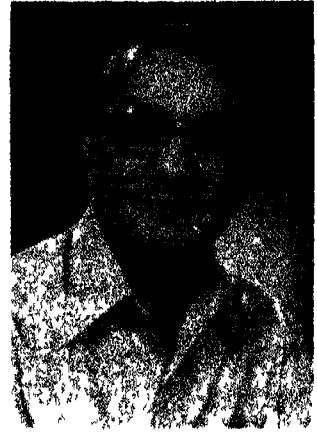
श्री हरबसलाल जैन

श्री हरबसलाल जैन का जन्म स्यालकोट मे लाला दुलीचद जी सा (बरूड) के ज्येष्ठ पुत्र के रूप मे हुआ। घर का वातावरण धार्मिक सुसस्कारो, धार्मिक निष्ठाओ मे सम्पन्न था। इन सस्कारो का आपके जीवन पर पूरा प्रभाव पडा। स्यालकोट मे ही आपने अल्प आयु मे श्री प्रेम जैन धर्मार्थ औषधालय एव जैन फिमेल हॉस्पिटल जैसी सस्थाओ के सस्थापक सदस्य के रूप मे वर्षो तक कार्य किया।

सन् १९४७ मे भारत विभाजन के समय श्री जैन को अपना पैतृक नगर छोडना पडा तथा आपने अपना कार्य क्षेत्र कोटा (राजस्थान) को बनाया। सन् १९५० मे कोटा मे जैन दिवाकर श्री चौथमल जी का चातुर्मास हुआ, जिसका प्रबध आप ही ने किया। आप वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रीसघ कोटा के महासचिव भी चुन गये। आपकी समाज एकता की प्रवृत्तियो को देखते हुए आपको जैन मडल, कोटा का महामत्री बनाया गया जो दिगबर, श्वेताम्बर स्थानकवासी एव तेरापथी समाज का एक विशाल मडल है। श्री जैन अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कान्फ्रेस नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सक्रिय सदस्य है। कोटा मे जैन समाज की गतिविधियो मे सक्रिय रहने के साथ-साथ आपने सामाजिक व्यापारिक एव राजनैतिक क्षेत्र मे उच्च स्थान बनाकर ख्याति प्राप्त की। आपको कोटा नगर परिषद का पार्षद चुना गया। सन् १९५५ मे आप कोटा व्यापार सघ के अध्यक्ष चुने गए। आप डिविजनल चेम्बर ऑफ कॉमर्स एड इन्डस्ट्रीज के उपाध्यक्ष और पश्चिम रेल्वे कोटा उपभोक्ता सलाहकार समिति के सदस्य भी रहे है।

आपने एक सफल प्रतिष्ठित व्यापारी एव उद्योगपति के रूप मे ख्याति अर्जित की है। सन् १९५३ मे आपने कोटा मे वर्धमान स्थानकवासी जैन युवक सघ की स्थापना की, जिसके वर्षो तक आप अध्यक्ष रहे। कोटा मे ही आपने पजाब से आये जैन बधुओ का एक पजाब जैन सघ का गठन किया जिसके भी वर्षो तक आप अध्यक्ष रहे।

सन १९७३ मे आपने श्री जैन दिवाकर शिक्षा समिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष पद पर आप अभी तक कार्य कर रहे है। शिक्षा समिति के अतर्गत एक जैन दिवाकर हायर सेकेन्डरी स्कूल की भी स्थापना की गई है।

पता ५, ओसवाल भवन, चवानी रोड, कोटा (राजस्थान)

श्री ज्ञानराज मेहता

श्री ज्ञानराज मेहता बी काम , एल एल बी (सी ए) बगलौर मे टैक्स कन्सलटेन्ट की प्रेक्टिस करते है। साथ-साथ धार्मिक व सामाजिक कार्यो मे रुचि लेते है।आप श्रीवर्द्धमानस्थानकवासी जैन श्रावक सघ एव आध्यात्मिक केन्द्र, बगलौर के मत्री है और कर्नाटक स्वाध्याय सघ के सयोजक हैं।

पता सी आर महता एड कपनी, ८०, एवेन्यू रोड बगलौर-५६० ००२

परिच्छेद–२

कान्फ्रेंस का संक्षिप्त इतिहास

कान्फ्रेंस की स्थापना क्यों ?

श्री अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस की प्रारभिक भूमिका

स्व श्री दुर्लभ जी भाई जौहरी का भाषण

प्रस्ताविक–

मोरवी मे कान्फ्रेस का प्रथम अधिवेशन करने का निश्चय होने पर स्व श्री दुर्लभ जी भाई ने कान्फ्रेस सबधी जानकारी देने के लिए पोरबदर (सौराष्ट्र) मे अपना प्रथम भाषण दिया। यद्यपि कान्फ्रेस के जन्मदाता श्रीयुत अम्बावीदास भाई डोसाणी थे, किन्तु कान्फ्रेस का वातावरण बनाने वाले उत्पादक और स्वप्नदृष्टा तो स्वर्गीय श्री दुर्लभजी भाई ही थे।

आज से ८४ वर्ष पूर्व कान्फ्रेस की स्थापना करने का विचार कैसे आया और उस समय उनके मानस मे समाजोत्कर्ष के लिए कितना अदम्य उत्साह था, यह भी उस भाषण से जाना जा सकता है।

यह ऐतिहासिक भाषण श्री दुर्लभजी भाई के सक्रिय सहकार से प्रकाशित होने वाले "श्रावक" मासिक पत्र के स १९६० के वैशाख ज्येष्ठ और आषाढ वर्ष प्रथम अक १-२-३ मे से उद्धृत किया गया है।

-सम्पादक

कान्फ्रेस की स्थापना क्यो?

(आज से ८४ वर्ष पूर्व धर्मवीर श्री दुर्लभ जी भाई त्रिभुवनजी जौहरी के पोरबदर मे कान्फ्रेस की स्थापना क्यो? इस सबध मे दिया गया समाजोपयागी प्रथम भाषण।)

सुज्ञ श्रावक बन्धु?

'कान्फ्रेस के नये शब्द नाम से आप चौके नही। यह शब्द यद्यपि अग्रेजी है, लेकिन इस शब्द मे प्राचीन प्रचलित विचार का गाभीर्य समाविष्ट है। कान्फ्रेस अर्थात महासभा, परिषद्, महामडल अथवा समाज है। धार्मिक या व्यावहारिक विषयो का निर्णय करने के लिए प्राचीन समय से सघ या जाति के आगेवान एक साथ मिलने की प्रथा चली आ रही है। वर्तमान समय मे ब्रिटिश साम्राज्य ने हम लोगो को नए तरीके से और नए नियमो से एकत्र किए और पारस्परिक विचार-विनिमय कर कार्य करने का शिक्षण दिया है। कान्फ्रेस को सभी सघो का सयुक्त रूप-महासघ कहे तो भी उसमे अत्युक्ति नही है। क्योकि सघ जब एकत्र होता है तब उसमे अमुक देश या प्रदेश के लोग ही एकत्र होते है, जबकि "कान्फ्रेस" जैसे महासघ मे तो भारत के समस्त प्रदेशो के अग्रगण्य जैनो को आमन्त्रित किया जाता है और सभी के विचार सुनकर सबकी सम्मति से समाजोत्कर्ष के निर्णय किए जाते है।

आजकल अग्रेज सरकार के न्यायी राज्य शासन मे स्वधर्मी लोग स्वधर्म की उन्नति के लिए प्रयत्न करते हुए दृष्टिगोचर होते है। हिन्दु या मुसलमान अपने-अपने मडल स्थापित करके धार्मिक या व्यावहारिक उन्नति के विचार करते है और अपने विचारो को क्रियान्वित भी करते है।

स्थानकवासी जैनो की भी भारतीय जनता मे अच्छी प्रतिष्ठा है और भारत के प्रत्येक हिस्से मे बसे हुए हैं। पृथक-पृथक प्रान्तो मे बिखरे हुए समुदाय के आगेवानो ने एकत्र होकर समाज की उन्नति के लिए विचार करने की आवश्यकता को दृष्टि मे रखते हुए मोरवी के जैन श्रीसघ ने समग्र स्था जैनो की एक 'महासभा' बुलाने का निश्चय किया है और विशेष हर्ष का विषय है कि कान्फ्रेस करने के सबध मे समस्त खर्च वहन करने का उत्तरदायित्व मोरवी के एक ही सदगृहस्थ सेठ श्री अम्बावीदास डोसाणी ने उठाया है और इस तरह कान्फ्रेस का शिलारोपण करने का और उसके जन्मदाता के गौरव पद धारण करने का सौभाग्य एव सम्मान प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त मोरवी के महाराजा ठाकुर साहब ने इस कान्फ्रेस के पेट्रन, "सरक्षक" बनकर कान्फ्रेस की सार्थकता एव सफलता पर चार चाँद लगा दिए है।

आजकल दैनिक एव साप्ताहिक पत्रो मे कान्फ्रेस के सबध मे लेखो द्वारा समाचार प्रकाशित होते रहते है। लेकिन हमारी समाज के अधिकाश व्यापारी वर्ग के और अशिक्षित व्यक्तियो के होने से इन समाचारो से पूरे परिचित न होने से उनके साक्षात परिचय से कान्फ्रेस का सदेश प्रत्येक सघ तक पहुँचाना आवश्यक एव उपयोगी सिद्ध होगा ऐसी आशा है।

कान्फ्रेस यह कोई दो-चार दिन मौज उडाने का, वाक्पटुता के प्रदर्शन द्वारा जन रजन करने का और जल्सा करके घर चले जाने जैसा मडल या आमोद-प्रमोद करने का कोई मेला या तमाशा नही है। किन्तु यह कान्फ्रेस हमारी और हमारे समाज की समुन्नति चाहने वाली और करने वाली माता है। यह कान्फ्रेस हमारे धर्म के प्रभाव को चारो ओर प्रसारित करने वाला दिव्य दुदुभी नाद है।

यह कान्फ्रेस हमको हानिप्रद और निदनीय रीति-रिवाजो के बधनो से मुक्ति दिलाने वाली देवी है। यह कान्फ्रेस समाज को "**मिथ्यात्व**" के भयकर रोग से मुक्त करने वाली दिव्य औषधि है। यह कान्फ्रेस स्वधर्मी बधुओ मे स्नेह और सघ की वृद्धि और दृढीभूत करने वाली एक सुवर्ण शृखला है। यह कान्फ्रेस जिनका नाम भी हमने सुना न हो और जिनके दर्शन एव परिचय भी न किया हो, ऐसे विद्वान, बुद्धिमान एव श्रीमान् स्वधर्मी बधुओ के सपर्क परिचय करने का एक समाज मे आने का यह एक प्रमुख साधन केन्द्र है। यह कान्फ्रेस विद्वान वक्ताओ के प्रेरणापूर्ण विचार और व्याख्यान श्रवण करने का स्वर्णावसर प्रदान करती है।

इस कान्फ्रेस की बैठक तीन-चार दिन तक चलती है। बैठक मे गभीर सामाजिक चर्चा और विचार-विमर्श होते है, परिणामस्वरूप जो निर्णय किए जाते है वे समाजोत्थान के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होते है। सक्षेप मे कान्फ्रेस के आयोजन द्वारा हमारी सासारिक सामाजिक राष्ट्रीय एव धार्मिक स्थिति को सुधारने की एव सामाजिक उन्नति और प्रगति साधन की हमे प्रेरणा मिलेगी ऐसी शुभाशा है।

कान्फ्रेस की आवश्यकता क्यो?

देश-प्रदेश के कोने-कोने मे श्रावको को बुलाकर धन और समय का भोग देकर ऐसी कान्फ्रेस भरने की क्या आवश्यकता है। अति आवश्यक हो तो क्या विद्वत जन अपने विद्या बल से और श्रीमान् अपने धन बल से पत्र द्वारा क्या सामाजिक और धार्मिक सुधार नही कर सकते? ऐसे प्रश्नो का यही उत्तर है कि ऐसा होना सर्वथा असभावित है, क्योकि यह तो सर्व विदित है कि हमारा समाज पीछे है और प्राचीन रूढ परपरा से चिपक कर रहने मे ही सुख की इतिश्री मानता है। हमारे पुराण पथी रूढिवादी श्रावक समाज और धर्म की उन्नति के लिए पत्र द्वारा प्रयास करने का श्रम करे,इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। वर्तमान मे हमारी सासारिक, सामाजिक एव धार्मिक स्थिति सुधारने की आवश्यकता को सभी स्वीकार करते है।

सबका उद्देश्य एक होने पर भी भिन्न-भिन्न विद्वान, श्रीमान् एव कार्यकर एक स्थान पर एकत्र होकर एक-दूसरे के विचार जान कर शकाओ का समाधान कर एक मत से कठिन कार्य भी सफल कर सकते हैं और पारस्परिक सहयोग से सामाजिक एव

धार्मिक कार्य अल्प समय मे सिद्ध कर सकते हैं। निश्चित स्थान एव समय पर कान्फ्रेस का अधिवेशन करने से भिन्न-भिन्न स्थानो पर पत्र-व्यवहार करने की मत्थापच्ची करनी नही पडती और एक ही स्थान पर गभीर विचार-विनिमय करके सर्वानुमति या बहुमति से समाजोपयोगी प्रस्ताव पास कर सकते हैं और उन प्रस्तावो को मूर्तरूप देने का ठोस कदम भी उठा सकते हैं--यही कान्फ्रेस की आवश्यकता और उपयोगिता सिद्ध करती है। ब्रिटिश सरकार ने पार्लियामेट का बधारण भी इसी आधार पर किया है। कान्फ्रेस हमारी समाज एव सघ की ऐसी ही पार्लियामेट महासभा है।

इस कान्फ्रेस मे प्रत्येक नगर के नागरिक मिलकर अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजते हैं और वे प्रतिनिधि अपने ग्राम एव नगर के सघ की समस्या प्रस्तुत करते हैं जैसे हम वकील को सभी सत्ता सौपते है वैसे ही सघ की ओर से सत्ता एव प्रतिनिधित्व प्राप्त करके कान्फ्रेस मे पधारे हुए डेलीगेट प्रतिनिधि श्रीसघ के रूप मे ही प्रस्तावित ठहराव मान्य करते हैं।

कान्फ्रेस करने की प्रक्रिया और कार्यसिद्धि--सर्वप्रथम भारत के प्रत्येक विभागो मे पत्र व्यवहार करके किस शहर मे कितनी सख्या है, यह जानकर ज्यादा सख्या वाले शहरो मे कान्फ्रेस के उद्देश्य और हेतु समझाने के लिए वक्ता एवं प्रचारक भेजे जाते है और योग्य, बुद्धिमान, विद्वान, श्रीमान् एव गुणवान की गणना मे आ सके ऐसे डेलीगेट प्रतिनिधि भेजने के लिए श्रीसघ को विनती की जाती है।

प्रत्येक शहर का श्रीसघ एकत्र होकर अपने सघ की ओर से जिन गृहस्थो को अपना प्रतिनिधि चुनकर कान्फ्रेस मे भेजते है, वे अपने सघ का प्रतिनिधित्व करते हैं और जो ठहराव कान्फ्रेस मे पारित होते है, उनको अपने श्रीसघ की ओर से मान्य रखते है और कान्फ्रेस की बैठक पूरी होने के बाद अपने प्रान्त मे जाकर पारित प्रस्तावो को श्रीसघ को समझाते है और उनका यथोचित पालन करने-कराने के लिए भरसक प्रयत्न करते है। कान्फ्रेस मे उपस्थित प्रत्येक प्रतिनिधि को कुछ बोलना ही चाहिए--ऐसा कोई नियम नही है। लेकिन जिनमे विचारो को प्रस्तुत करने की कुशलता है, उनको इस शुभ अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाना ही चाहिए। कान्फ्रेस मे भी सघ के प्रतिनिधियो के अलावा अन्य समाज सभा के आगेवानो, विद्वानो एव सामाजिक कार्यकर्ताओ को भी आमत्रण भेजे जाते है। कान्फ्रेस के अधिवेशन की सफलता का मुख्य आधार तो प्रत्येक श्रीसघ के आगेवान और प्रतिनिधियो पर ही है। यदि श्रीसघ अपने यहाँ प्रवर्तित मत भिन्नता का परित्याग कर योग्य गृहस्थो को अपना प्रतिनिधि चुनकर भेजे तो कान्फ्रेस के सघोत्थान के कार्य सरलता एव सफलतापूर्वक अल्प समय मे सिद्ध हो सकते है।

कान्फ्रेस से होने वाले लाभ

ऐसी कान्फ्रेस महासभा के करने से ऐसे सामाजिक एव धार्मिक लाभ होते है, जो कल्पनातीत हैं। कान्फ्रेस मे समाज एव धर्म की उन्नति, प्रगति के विषयो की ही चर्चा विचारण की जाए और प्रस्तावो को युक्तिपूर्वक कार्य रूप मे परिणत किया जाए तो व्यावहारिक, सामाजिक एव धार्मिक उत्थान होने की पूरी-पूरी सभावना है।

यदि कान्फ्रेस के माध्यम से हमारे श्रीसघो मे स्नेह और सघ की वृद्धि हो और पारस्परिक सहयोग से सघोत्थान के कार्य मे सब श्रीसघ जुट जाएँ तो जैन धर्म के विजय ध्वज को हम चतुर्दिक फहरा सकेगे।

काठियावाडी, कच्छी, गुजराती, मारवाडी, मेवाडी, पजाबी, दक्षिणी और बगाली, बिहारी सभी जैन कान्फ्रेस के एकछत्र के नीचे एकत्र होकर श्रीसघो मे पारस्परिक स्नेह और सघ की कैसे वृद्धि हो, इसका विचार करेगे।

कान्फ्रेस मे भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे रहने वाले स्वधर्मी बधुओ का परिचय होगा और स्वधर्मी वात्सल्य का अपूर्व लाभ प्राप्त होगा। साथ ही भिन्न-भिन्न प्रदेश के विद्वान, श्रीमान्, गुणवान बधुओ का परिचय होने से उनकी विद्वता, सहृदयता एव बधुता

का पारस्परिक लाभ होगा और उनकी छिपी हुई शक्ति प्रकाश मे आएगी और आपको अपनी शक्ति का भी परिचय देने का अवसर मिलेगा।

कान्फ्रेस मे भाग लेने से भिन्न-भिन्न प्रान्तो के रीति-रिवाजो का ज्ञान होगा, भिन्न-भिन्न भाषाओ मे व्याख्यान श्रवण करके कान पवित्र होगे। इतना ही नही, भारतवर्ष मे प्रवास करने जैसा एक ही स्थान पर अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। तदुपरात शास्त्रोद्धार साधुशाला, स्वधर्मी सहायता, ज्ञानवृद्धि निराश्रितो को आश्रय आदि शुभ कार्यों का शुभारभ होने से दूसरे अनेक सामाजिक एव धार्मिक लाभ प्राप्त होगे।

सुज्ञ श्रावको,

जो-जो समाजोपयोगी कल्याणकारी कार्य यह कान्फ्रेस करेगी उसका लाभ आपको, कुटुम्ब को, आपकी जाति और आपकी भावी पीढी उदीयमान प्रजा को भी प्राप्त होगा।

हमारे सूत्रो मे भगवान ने साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका चार तीर्थ कहे है। तीर्थस्वरूप साधु-साध्वीगण के दर्शन करने के लिए जैसे श्रीसघ एकत्रित होता है वैसे ही भिन्न-भिन्न श्रावक-श्राविकाओ के दर्शन परिचय का लाभ लेना यह भी तीर्थ रूप है। अतएव सुज्ञ बधुओ, प्रमाद त्यागकर जागृत हो, गहरी निद्रा का परित्याग करो, जो हमे कान्फ्रेस मे भाग लेने का स्वर्णावसर मिला है, उसका सदुपयोग करो और इस पवित्र सामाजिक एव धार्मिक सत्कार्य मे सक्रिय सहयोग दो, यही प्रार्थना है।

कान्फ्रेस मे क्या कार्यवाही होगी

पैसा, परिश्रम और समय का भोग देकर भिन्न-भिन्न स्थानो से पधारने वाले प्रतिनिधियो मे से जिनकी इच्छा होगी और जिन्हे सब्जेक्ट कमेटी उस काम के लिए योग्य समझकर पसद करेगी, ऐसे प्रतिनिधि समाज एव धर्म की उन्नति-प्रगति के विषय मे भाषण द्वारा अपने समाजोपयोगी विचार प्रकट करेगे। हमे व्यावहारिक, सामाजिक एव धार्मिक विषयो पर चर्चा, विचारण करने की आवश्यकता है। विद्वानो ने एकमत होकर यह निश्चय प्रकट किया है कि धार्मिक उन्नति के बिना व्यावहारिक, सामाजिक उन्नति और व्यावहारिक,सामाजिक उन्नति के बिना धार्मिक उन्नति-प्रगति होना असभव है। अत हमे समाजोन्नति के लिए व्यावहारिक और धार्मिक दोनो विषयो पर गभीर विचार करना जरूरी है। यहाँ सभी श्रीसघो और श्रावको को एक बात का निर्देश देना आवश्यक समझता हूँ। यह कान्फ्रेस की महासभा समाज एव धर्म मे उथल-पुथल करने के लिए नही, अपितु समाज और धर्म की सर्वांगीण उन्नति करने के लिए सामजस्य-सहकार और समन्वय स्थापित करने की प्रेरणा देने के लिए होने जा रही है। इन बातो को ध्यान मे रखे।

कान्फ्रेस की कार्य दिशा क्या होगी?

हमारे स्थानकवासी जैन समाज की प्रथम ही कान्फ्रेस महासभा होने जा रही है अत उसमे चर्चनीय विषयो का दीर्घ दृष्टि से चयन करना होगा। इस कान्फ्रेस के पथ मे प्रारभ मे ही साप्रदायिक ममत्व और मत-भिन्नता के गले-सडे पत्थर न डाले जाएँ, इस पर खास ध्यान और सावधान रहना होगा और इस प्रथम कान्फ्रेस मे सघोत्थान एव धर्मोत्थान के जरूरी विषयो की ही चर्चा, विचारण करने की आवश्यकता पर ही चतुर्विध श्रीसघ को सभी का ध्यान केन्द्रित करना होगा।

इस कान्फ्रेस मे हम सब चर्चा-विचारण करके क्या कार्य दिशा निश्चित करेगे —

(१) पू साधु-साध्वी मडल को सस्कृत,प्राकृत,अर्धमागधी के भाषा ज्ञान द्वारा सूत्राभ्यास की सुविधा करके योग्य क्षेत्रो मे साधु शालाएँ स्थापित करना और ज्ञानवृद्धि के लिए योग्य व्यवस्था करना।

(२) हमारे महान् पूर्वाचार्यो ने अपने अपूर्व ज्ञान से जन हितार्थ परिश्रमपूर्वक ग्रथ रचना की है। उनसे प्राप्त प्राचीन ग्रन्थो को सग्रहित करना, प्रतिलिपि कराना और उनका सशोधन कराकर पुस्तकोद्धार करना।

(३) जगह-जगह पुस्तकालय स्थापित करना, ज्ञान भडारो के पुस्तको का शोध करना, जहाँ पुस्तके न हो, वहाँ पुस्तके पहुँचाना और पूज्य-वर्णो के पठन-पाठन की योग्य व्यवस्था करना।

(४) उदीयपन जैन प्रजा के कोमल हृदय मे धर्मबीज का आरोपण करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र मे जैन शाला एव कन्या शाला स्थापित करना और जैनो के धर्मज्ञान एव तत्वज्ञान का अभ्यास करने की योग्य व्यवस्था कर देना।

(५) जैन शाला एव जैन कन्याशाला के अभ्यासक्रम मे जो तोता ज्ञान के स्थान पर शिक्षा विभाग के शिक्षण क्रमानुसार व्यवस्थित धर्म शिक्षण की व्यवस्था करना। सरल भाषा मे धर्मज्ञान के नए धर्मग्रन्थ विद्वानो द्वारा तैयार करवाना। समस्त जैन सस्थाओ मे नये पाठ्यक्रम द्वारा धर्म शिक्षण देना और धर्म परीक्षा द्वारा धर्म,ज्ञान का समुचित प्रचार करना और योग्य धर्म शिक्षक तैयार करने के लिए उपदेशक वर्ग की स्थापना करना।

(६) दुखी और निराधार जैनो की योग्य सहायता करने के लिए अनाथ बालक, गरीब विधवाएँ, अपग श्रावक और निराश्रित विद्यार्थियो को योग्य सहायता पहुँचाना और उद्योग शालाएँ स्थापित कर उन्हे काम-धन्धे पर लगाना।

(७) तदुपरात जहाँ-जहाँ जीव हिंसा होती हो,वहाँ हिंसा विरोध उपायो को कामयाब बनाना।

(८) भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो मे सामान्य वैमनस्य या विरोध द्वारा क्लेश-ककास पैदा हुई हो, उनको दूर कर पारस्परिक भ्रातृ भावना का वातावरण तैयार करना।

(९) समाज मे नुकसान पहुँचाने वाले और निन्दा फैलाने वाले सामाजिक एव धार्मिक रीति-रिवाजो को बद करने का भरसक प्रयत्न करना।

इनके अतिरिक्त दूसरे अनेक ऐसे विषय हैं जिन पर गभीरतापूर्वक चर्चा विचारण करके समाज एव धर्म के क्षेत्र मे सुधार करने की अनिवार्य आवश्यकता है। स्थानकवासी जैन समाज मे सर्वप्रथम कान्फ्रेस होने जा रही है। अत कान्फ्रेस मे विद्वानो, समाज सुधारको एव सामाजिक कार्यकर्ताओ द्वारा आज के समाजोपयोगी प्रस्ताव आएँगे। उन प्रस्तावो को समाज मे लागू करके सशोधन एव धर्मोत्थान करने मे सभी समाज हितेच्छु प्रयत्नशील बनेगे, ऐसी आशा है।

समस्त श्रीसघो को एक आवश्यक अतिम आह्वान

सुज्ञ श्रावक बधुओ!

कान्फ्रेस से समाज को होने वाले अनेकविध लाभ होने की आपको यदि दृढ धारणा हुई है और व्यावहारिक एव धार्मिक उन्नति होने की आपके समय मे आशा बधी है तो आपसे हमारा नम्र निवेदन और आश्वासन है कि —

यदि आप विद्वान हैं तो अपनी विद्या का समाजोत्कर्ष करने मे सदुपयोग करे और हमे समाजोपयोगी सुझाव देवे।

यदि आप बुद्धिमान है तो इस कान्फ्रेस द्वारा होने वाले सामाजिक कार्यों मे किसी प्रकार का दोष-दर्शन न हो, उसके लिए श्रीसघ पर अपनी बुद्धि वैभव का प्रभाव डाले।

यदि आप शिक्षित एव वक्ता हैं तो आपकी वक्तृत्व कला का स्वधर्मी बधुओ के जीवन विकास मे सदुपयोग करो और जैन धर्म का विजय ध्वज फहराओ।

यदि आप लेखक हैं तो आप अपनी कसी हुई कलम को समाजोपयोगी विषयो पर लेख लिखकर समाज और धर्म मे जागृति पैदा करने मे लगा दो।

यदि आप श्रीमान है तो ऊपर लिखे हुए सभी समाजोपयोगी कार्यो को सपन्न करने मे अपनी श्री लक्ष्मी का सदुपयोग करो।

प्रत्येक व्यक्ति को समाज एव धर्म के उत्कर्ष के लिए अपनी शक्ति का सदुपयोग करने का यह एक स्वर्णावसर प्राप्त हुआ है। स्वधर्म और स्व-समाज का प्रभाव फैलाने की यह सुभ घडी है अत कान्फ्रेस को सफल करने के लिए अधिवेशन मे उपस्थित होने का दृढ निश्चय करो और कान्फ्रेस का शुभ सदेश घर-घर पहुँचाने का सकल्प करो।

अत मे श्री शासन देव से यही विनम्र प्रार्थना है कि इस कान्फैस महासभा का महत कार्य सफल हो और ऐसे सत्कार्य के पथ पर प्रभाव करने की हमे शक्ति और सद्बुद्धि प्राप्त हो।

समाज मे व्याप्त ममत्व, कदाग्रह और कुसप समाप्त हो जाए और चारो ओर स्नेह और सप का साम्राज्य स्थापित हो और सामाजिक स्नेह की वृद्धि हो, उन्नति का बीजारोपण हो और धर्म का आम्रवृक्ष फूले-फले और उसके मधुर दिव्य फलो का रसास्वादन करने का शुभ अवसर जल्दी प्राप्त हो और हम सब की यह कान्फैस महासभा सफल हो और जैन धर्म का विजय ध्वज चहुँ दिशा मे लहरावे-मेरी शासन देव से प्रार्थना है। जैन जयति शासनम्।

'एय खु नाणिणो सार, ज न हिंसइ किचण।।
अहिंसा समय चेव, एतावत वियाणिय।।'

किसी की हिसा न करो—यही ज्ञानियो के ज्ञान का सार है। अहिसा का सिद्धान्त भी यही है और विचार भी इतना मात्र है।

—भ महावीर

अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के ८२ वर्ष

(संक्षिप्त इतिहास)

आरभ के ५० वर्ष (सन् १९०६ से १९५६ तक)

अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस की स्थापना सन् १९०६ मे मोरवी (सौराष्ट्र) मे हुई थी। कान्फ्रेस की स्थापना मे मोरवी के प्रतिष्ठित सेठ श्री अम्बावीदास जी डोसाणी और धर्मवीर श्री दुर्लभ जी भाई जौहरी का मुख्य भाग रहा। उन्ही की प्रेरणा से मोरवी मे ही कान्फ्रेस का प्रथम अधिवेशन दिनांक २६, २७, २८ फरवरी सन् १९०६ को आयोजित हुआ, जिसमे मोरवी के महाराजा सर वाघजी बहादुर भी पधारे थे और इन्होने कान्फ्रेस का पेट्रन पद स्वीकार किया था।

इससे पूर्व स्थानकवासी जैन समाज का कोई अखिल भारतीय स्तर का सगठन नही था और समस्त समाज की शक्ति बिखरी हुई थी। इसलिए जब मोरवी के कुछ उत्साही और उदारमना महानुभावो ने कान्फ्रेस की स्थापना की तो सारे समाज मे उत्साह और वात्सल्य की एक लहर दौड गई। सब की दृष्टि सगठन की ओर मुडी और स्थानकवासी समाज की ज्वलत समस्याएँ, जिनके समाधान का अब तक कोई साधन नही था, उभर कर सामने आई। समाज को एक मच मिला और अन्य प्रदेशो मे रहने वाले प्रतिष्ठित महानुभावो से सम्पर्क बनाने का माध्यम तैयार हुआ।

प्रथम अधिवेशन–मोरवी

मोरवी अधिवेशन की अध्यक्षता अजमेर के राय सेठ श्री चाँदमल जी रियावालो ने की और इसके स्वागताध्यक्ष सेठ श्री अमृतलाल वर्धमाण, मोरवी वाले थे।

मोरवी अधिवेशन मे कुल १४ प्रस्ताव पारित किए गए थे, जिनमें कुछ उल्लेखनीय निम्न आशय के थे —

(क) स्थान-स्थान पर जैन शालाओ को स्थापित करना तथा साधु-साध्वियो के लिए सिद्धातशालाओं की सुविधा उपलब्ध कराना।

(ख) विविध जैन सम्प्रदायो के भाइयो के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करना।

(ग) बाल, वृद्ध विवाह, कन्या-विक्रय, मृत्यु भोज आदि का निषेध।

अधिवेशन के पश्चात् कान्फ्रेस का कार्य चलाने के लिए बनाई गई सर्वप्रथम मैनेजिंग कमेटी मे प्रमुख के अतिरिक्त एक मत्री, तीन सयुक्त मत्री, एक मैनेजर, एक कोषाध्यक्ष, एक अकाउटेट और दो सदस्य नियुक्त किए गए जो सभी मोरवी के निवासी थे।

द्वितीय अधिवेशन–रतलाम

कान्फ्रेम का दूसरा अधिवेशन २७, २८, २९ मार्च १९०८ को रतलाम मे हुआ जिसकी अध्यक्षता सेठ श्री केवलदास त्रिभुवनदास अहमदाबाद वालो ने की और इसके स्वागताध्यक्ष सेठ श्री अमरचद जी पितलिया, रतलाम थे। इस अवसर पर रतलाम के महाराजाधिराज सज्जनसिंह जी बहादुर तथा मोरवी के महाराजा सा और शिवगढ के ठाकुर साहब भी पधारे थे। रतलाम नरेश ने कान्फ्रेस का पेटन पद भी स्वीकार किया। इस अधिवेशन मे भी जैन एकता, जीवदया प्रचार तथा धार्मिक शिक्षण व पाठयक्रम सबधी प्रस्ताव पास किए गए थे। कान्फ्रेस के पाँच जनरल सेक्रेटरी नियुक्त किए गए और आगामी एक वर्ष के लिए कान्फ्रेस का मुख्य कार्यालय अजमेर मे रखने का निर्णय लिया गया।

तृतीय अधिवेशन–अजमेर

तीसरा अधिवेशन अजमेर मे दिनाक १०, ११, १२ मार्च सन् १९०९ को हुआ जिसकी अध्यक्षता सेठ श्री बालमुकुद जी मूथा अहमदनगर वालो ने की थी। इस अधिवेशन मे मोरवी नरेश सर बाघजी बहादुर और लीम्बडी के ठाकुर साहब श्री दौलतसिंह जी भी पधारे थे। बडौदा नरेश सर सियाजीराव गायकवाड पधार नही सके थे परन्तु उन्होने अधिवेशन की सफलता के लिए शुभकामना और मार्गदर्शन का पत्र भेजा था।

इस अधिवेशन मे जो महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किए गए उनमे से कुछ निम्न विषयक थे —

(क) धार्मिक शिक्षा बढाने सबधी। जैन ट्रेनिग कॉलेज, रतलाम के लिए अनुदान।

(ख) व्यावहारिक शिक्षा बढाने सबधी। बबई मे एक बोर्डिग हाऊस खोलना।

(ग) स्वधर्मी भाइयो का नैतिक जीवन स्तर ऊँचा उठाना।

(घ) जिन मुनि महाराजो के सप्रदायो मे आचार्य नही हैं, उन मे दो वर्ष मे आचार्यों की नियुक्ति करने के लिए नम्र प्रार्थना की गई।

चतुर्थ अधिवेशन–जालधर

चौथा अधिवेशन मार्च १९१० मे जालधर (पजाब) मे हुआ जिसकी अध्यक्षता दीवान बहादुर सेठ श्री उम्मेदमल जी लोढा, अजमेर ने की। इस अधिवेशन मे मोरवी नरेश सर बाघ जी बहादुर अपने युवराज श्री लखधीर जी के साथ और चूडा के ठाकुर साहब श्री जोरावरसिंह जी भी पधारे थे। कपूरथला के महाराजा साहब की ओर से भी कान्फ्रेस को सहायता प्राप्त हुई थी। इस अधिवेशन मे पारित किए गए कुछ मुख्य प्रस्ताव निम्न विषयो पर थे —

(क) कान्फ्रेस की कार्यवाही हिन्दी भाषा और हिन्दी लिपि मे ही की जाए।

(ख) जीवदया प्रचार।

(ग) समाज के गरीब बधुओ, विधवा-बहिनो और निराश्रित बालको की सहायता करना।

पचम अधिवेशन–सिकदराबाद

कान्फ्रेस का पाँचवा अधिवेशन अप्रैल सन् १९१३ मे सिकदराबाद मे हुआ जिसकी अध्यक्षता जलगाँव निवासी सेठ श्री लछमनदास जी श्रीश्रीमाल ने की। इस अधिवेशन मे कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किए गए जिनमे से कुछ मुख्य-मुख्य निम्न विषयो पर थे —

(क) जैन शास्त्रो के प्रकाशन के लिए प्रयास करना। इस कार्य के लिए एक उप समिति की नियुक्ति की गई।

(ख) दक्षिण प्रान्त मे एक जैन बालाश्रम खोला जाए।

(ग) सवत्सरी पर्व एक ही दिन मनाया जाए।

इस प्रकार अधिवेशनो की यह श्रृखला चलती रही। परतु कान्फ्रेस का कार्य अधिवेशनो तक सीमित नही था। अधिवेशन के उपरात जो प्रबध समिति तथा प्रान्तीय समितियाँ नियुक्त की जाती थी, वे अपना कार्य करती रहती थी। कार्यकारिणी और जनरल कमेटी की बैठके होती रहती थी और उनमे पिछले अधिवेशनो मे पारित प्रस्तावो पर अमल करने और नई सामयिक समस्याओ को सुलझाने सबधी निर्णय लिए जाते थे। अधिवेशन तो वृहद समाज के समक्ष आवश्यक योजनाओ को प्रस्तुत करने और ज्वलत समस्याओ को समझने का अवसर प्रदान करते थे।

आरभ के ५० वर्षों मे अर्थात सन् १९०६ से १९५६ तक कुल १३ अधिवेशन आयोजित किए गए जिनका थोडा विस्तारपूर्वक ब्यौरा कान्फ्रेस के "स्वर्ण जयती ग्रन्थ" मे दिया गया है और इसे दुबारा "जैन प्रकाश" के १६-९-८८ और १-१०-८८ के अको मे दोहराया गया है ताकि जिन महानुभावो को "स्वर्ण जयती ग्रन्थ" उपलब्ध न हो वे "जैन प्रकाश" के उपरोक्त अको मे जानकारी प्राप्त कर सके। फिर भी इस कार्यकाल का बहुत सक्षिप्त वर्णन इस लेख मे दिया जा रहा है।

षष्ठम् अधिवेशन–मलकापुर

कान्फ्रेस का छठा अधिवेशन १२ वर्ष के पश्चात ७, ८, ९ जून सन् १९२५ को मलकापुर मे हुआ जिसकी अध्यक्षता श्रीमान सेठ मेघजी भाई थोभण, जे पी , बबई ने की। स्वागताध्यक्ष श्रीयुत् मोतीलाल जी कोटेचा मलकापुर निवासी थे। इस अधिवेशन मे पारित कुछ मुख्य प्रस्ताव निम्न विषयो पर थे —

(क) कान्फ्रेस कार्य के लिए देश को विभिन्न विभागो मे बाँटा गया और प्रत्येक विभाग के लिए पृथक-पृथक मत्री नियुक्त किए गए।

(ख) कान्फ्रेस का कार्यालय आगामी दो वर्षों तक बबई मे रहे और "जैन प्रकाश" का प्रकाशन भी वही मे हो।

(ग) कान्फ्रेस ऑफिस का सुखदेवसहाय प्रिंटिंग प्रेस को अजमेर से इन्दौर स्थानातरित कर दिया जाए और अर्धमागधी कोष के तीन भाग वही छपे।

(घ) सब स्थानकवासी जैन भाई-बहन शुद्ध खादी को उपयोग मे लाएँ।

सप्तम अधिवेशन–बबई

कान्फ्रेस का सातवाँ अधिवेशन बबई मे ३१ दिसबर, १९२६ और १-२ जनवरी, १९२७ को सेठ श्री भैरोदान जी सेठिया, बीकानेर की अध्यक्षता मे सपन्न हुआ। इस अधिवेशन के कुछ मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार थे—

(क) स्वामी श्रद्धानदजी की हत्या पर शोक प्रकट किया गया।

(ख) श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज के हित के लिए अपना जीवन समर्पण करने वाले सज्जनो का एक "वीर सघ" स्थापित किया जाए।

(ग) स्थानकवासी जैन शिक्षा प्रचार विभाग की स्थापना की योजना।

(घ) शत्रुजय तीर्थ के टैक्स का विरोध।

(ङ) भारत वर्ष के समस्त स्थानकवासी जैनो की डायरेक्ट्री बनाई जाए।

(च) तीनो जैन सप्रदायो की एक सयुक्त कान्फ्रेस बुलाई जाए।

इस अधिवेशन के साथ महिला परिषद् का भी आयोजन किया गया, जिसमे शिक्षा प्रसार, गृहोद्योग, परदा प्रथा का परित्याग तथा मृत्यु के बाद शोक रखने की प्रथा को छोडने पर बल दिया गया।

अष्टम अधिवेशन–बीकानेर

कान्फ्रेस का आठवाँ अधिवेशन बीकानेर मे अक्टूबर सन् १९२७ मे श्रीयुत वाडीलाल जी मोतीलाल जी शाह की अध्यक्षता मे सपन्न हुआ। इस अधिवेशन मे लगभग चार हजार प्रतिनिधि और प्रेक्षको की उपस्थिति थी। इस अधिवेशन की सफलता के लिए देश के गणमान्य नेताओ तथा सस्थाओ–महात्मा गाँधी, लाला लाजपतराय प अर्जुनलाल सेठी अजमेर बैरिस्टर चपतराय जैन, दिल्ली, श्री ए बी लट्ठे, सेठ बिडलाजी, बबई श्रीयुत अबालाल भाई साराभाई, अहमदाबाद श्री नानालाल भाई दलपतराय जी कवि, ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी, श्वेताम्बर मूर्तिपूजक कान्फ्रेस आदि के शुभ सदेश प्राप्त हुए थे।

इस अधिवेशन के मुख्य-मुख्य प्रस्ताव निम्न विषयो पर थे —

(क) जैन समाज की अखड एकता।

(ख) जेतपुर (काठियावाड) मे स्था जैन विद्यार्थियो के लिए छात्रावास की आवश्यकता।

(ग) गौडवाड प्रान्त के श्वे मूर्तिपूजक तथा स्था जैनो के बीच धार्मिक झगडो को सुलझाया जाए।

नवम अधिवेशन–अजमेर

कान्फ्रेस का नवाँ अधिवेशन अजमेर मे अप्रैल सन् १९३३ मे सपन्न हुआ। इसकी अध्यक्षता श्रीयुत हेमचद भाई रामजी भाई मेहता, भावनगर ने की थी। स्वागताध्यक्ष राजा बहादुर ज्वालाप्रसाद जी थे। बृहद साधु सम्मेलन के साथ-साथ यह अधिवेशन होने से इस अवसर पर ४०-४५ हजार की उपस्थिति थी। इस अधिवेशन के कुछ मुख्य प्रस्ताव इन विषयो पर थे —

(क) धार्मिक और व्यावहारिक सस्थाओ की व्यवस्था ठीक करना।

(ख) वीरसंघ की योजना के लिए उप समिति का गठन।

(ग) साधु सम्मेलन द्वारा निर्धारित नियमो के योग्य पालन पर दृष्टि रखने के लिए कान्फ्रेंस की एक स्टेंडिग कमेटी का गठन।

(घ) धार्मिक उत्सवो मे कम खर्च हो।

(ङ) साधु सम्मेलन द्वारा निर्देशित श्रावक-श्राविकाओ को अपना जीवन सुधारने का आह्वान।

(च) साहित्य निरीक्षण के लिए उप समिति का गठन।

अधिवेशन के दिनो मे श्वे स्था जैन युवक परिषद्, महिला परिषद् तथा शिक्षा परिषद् के सम्मेलन भी हुए जिन मे समयोचित प्रस्ताव पास किए गए।

दशम अधिवेशन–घाटकोपर (बबई)

कान्फ्रेंस का दसवॉ अधिवेशन ११, १२, १३ अप्रैल, १९४१ को घाटकोपर (बबई) मे श्रीमान सेठ वीरचद भाई मेघजी थोभण की अध्यक्षता मे हुआ। अधिवेशन मे पारित मुख्य प्रस्ताव निम्न दिए गए है —

(क) राष्ट्रीय महासभा के रचनात्मक कार्यक्रम जैसे खादी और स्वदेशी वस्त्रो का उपयोग, अस्पृश्यता निवारण आदि का समर्थन।

(ख) धार्मिक शिक्षण समिति का गठन।

(ग) अजमेर साधु सम्मेलन मे नियोजित मुनि समिति की बैठक बुलाने की योजना।

(घ) बनारस गवर्नमेट सस्कृत कॉलेज मे जैन दर्शन शास्त्री और जैन दर्शन आचार्य परीक्षाओ की योजना।

(ङ) स्थानकवासी जैन गृह बनाने की योजना।

(च) जैन कारोबार सूचना केन्द्र खोलने की आवश्यकता।

इस अवसर पर युवक परिषद् तथा महिला परिषद् की बैठके भी हुई।

ग्यारहवॉ अधिवेशन–मद्रास

कान्फ्रेंस का ग्यारहवॉ अधिवेशन दिसबर सन् १९४९ मे मद्रास मे हुआ। इस अधिवेशन के अध्यक्ष बबई विधानसभा के स्पीकर माननीय श्री कुदनमल जी फिरोदिया थे और स्वागताध्यक्ष सेठ मोहनमल जी चोरडिया, मद्रास थे। अधिवेशन का उद्घाटन मद्रास राज्य के मुख्यमत्री श्री कुमारस्वामी राजा ने किया था। अधिवेशन की सफलता के लिए प्राप्त होने वाले शुभ सदेशो मे उल्लेखनीय भारत के प्रथम गवर्नर जनरल माननीय श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, केन्द्रीय धारा सभा के स्पीकर माननीय श्री जी वी मावलकर, बबई प्रान्त के मुख्यमत्री श्री बी जी खेर थे।

इस अधिवेशन मे पारित १६ प्रस्तावो मे से कुछ निम्न प्रकार है —

(क) देश को स्वतत्रता मिलने पर हर्षोल्लास की भावना।

(ख) आगामी जनगणना मे जैनियो को अलग से दिखाया जाए।

(ग) सघ ऐक्य की योजना को शीघ्र पूरा किया जाए।

(घ) वृहद् साधु सम्मेलन दो वर्ष मे अवश्य बुलाया जाए। धार्मिक सस्थाओ का कान्फ्रेस से सयोजन।

(ङ) पशु वध बद हो।

(च) साहित्य सर्टिफाई समिति और तिथि निर्णायक समिति का गठन।

(छ) जिनागम सशोधन व प्रकाशन।

(ज) कान्फ्रैस का सशोधित विधान पास किया गया।

(झ) १८ वर्ष से कम के बालको को दीक्षा न दी जाए।

इस अवसर पर युवक परिषद् और महिला परिषद् के सम्मेलन भी आयोजित किए गए।

बारहवाँ अधिवेशन—सादडी

कान्फ्रेस का बारहवाँ अधिवेशन ४ ५, ६ मई सन् १९५२ को सादडी (मारवाड) मे श्रीमान सेठ चपालाल जी सा बाठिया भीनासर की अध्यक्षता मे सपन्न हुआ। स्वागताध्यक्ष सादडी निवासी श्री दानमल जी बरलोटा थे। अधिवेशन का उद्घाटन राजस्थान के मुख्यमत्री श्री टीकाराम जी पालीवाल ने किया।

वृहत्साधु सम्मेलन के अवसर पर होने के कारण यह अधिवेशन ऐतिहासिक बन गया था। इस अवसर पर लगभग ३५ हजार स्त्री-पुरुष उपस्थित हुए थे। अधिवेशन मे पारित हुए कुल १५ प्रस्तावो म मे मुख्य निम्न हैं —

(क) जैन दर्शन को सरकारी पाठ्यक्रम मे स्थान दिया जाना चाहिए।

(ख) महावीर जयती की सार्वजनिक छुट्टी की जाए।

(ग) स्वधर्मी सहायता फड का अनुदान।

(घ) गोवध और जीव हिंसा रोकने के लिए सरकार से अनुरोध।

(ङ) सादडी वृहत्साधु सम्मेलन द्वारा "श्री स्थानकवासी जैन श्रमण सघ" की स्थापना पर सब मुनिराजो के प्रति सपूर्ण श्रद्धा और आदर का प्रदर्शन। एक स्थायी समिति का गठन।

इस अवसर पर महिला परिषद् और युवक परिषद् सम्मेलन भी आयोजित किए गए थे।

कान्फ्रेंस कार्यालय दिल्ली मे

सोजत मे कान्फ्रेस की जनरल सभा (२५-१-५२) मे कान्फ्रेस का प्रधान कार्यालय दिल्ली मे रखने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया। तदनुसार फरवरी १९५३ मे कान्फ्रेस कार्यालय न १३९० चाँदनी चौक, दिल्ली मे स्थानातर कर दिया गया और सन् १९५६ मे जैन भवन खरीदने पर कार्यालय का काम जैन भवन से चालू हुआ।

तेरहवाँ अधिवेशन--भीनासर (बीकानेर)

कान्फ्रेस का तेरहवाँ अधिवेशन--स्वर्ण जयन्ती अधिवेशन--४, ५, ६ अप्रैल सन् १९५६ को भीनासर (बीकानेर) मे हुआ। द्वितीय वृहत्साधु सम्मेलन भी २९ मार्च से ६ अप्रैल तक भीनासर मे ही आयोजित होने के कारण इस अवसर पर ३५०००-४०००० की उपस्थिति रही।

अधिवेशन की अध्यक्षता श्री विनयचन्द्र भाई दुर्लभ जी भाई जौहरी ने की और स्वागताध्यक्ष श्री जयचदलाल जी रामपुरिया थे। अधिवेशन की सफलता के लिए महामहिम राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद जी, उप राष्ट्रपति डॉ राम राधाकृष्णन् और प्रधानमत्री प जवाहरलाल नेहरू ने भी शुभ सदेश भेजे थे। अधिवेशन का उद्घाटन गृहमत्री माननीय प गोविन्द बल्लभ पत ने किया। इस अवसर पर राजस्थान सरकार के मुख्यमत्री श्रीयुत मोहनलाल जी सुखाडिया, भू पू मुख्यमत्री श्री जयनारायण व्यास, श्री बलवतराय मेहता, एम पी , श्रीमती रुक्मणि अरुडेल आदि नेता भी पधारे थे। श्री पन्न जी को श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज की ओर से अभिनन्दन पत्र भेट किया गया।

अधिवेशन मे पारित प्रस्तावो मे उल्लेखनीय निम्न दिए गए है --

प्रस्ताव सख्या--२ महावीर जयती की सार्वजनिक छुट्टी के लिए सरकार से आग्रह।

प्रस्ताव सख्या--३- वीर सेवा सघ स्थापित करने की योजना।

प्रस्ताव सख्या--४- श्रमण सघ द्वारा गठित तिथि-निर्णायक समिति को सहयोग देने के लिए एक उप समिति का गठन।

प्रस्ताव सख्या--५- व्यापार विकास हेतु हिंसक प्रवृत्तियो पर खेद।

प्रस्ताव सख्या--६- जैन धर्म के विश्वव्यापी सिद्धातो का प्रचार होना चाहिए।

प्रस्ताव सख्या--९- ध्वनिवर्द्धक यत्र (लाऊड स्पीकर) के प्रयोग सबधी श्रमण सघ के प्रस्ताव पर अमल हो।

प्रस्ताव सख्या--१०--दिल्ली मे कान्फ्रेस भवन खरीदने की मजूरी।

प्रस्ताव सख्या—११—भगवान महावीर के निर्वाण स्थान पावापुरी को अभय भूमि घोषित किया जाए।

प्रस्ताव सख्या—१२—सघ-सहकार बहुत से ऐसे प्रश्न हैं जिनका सबध चतुर्विध सघ से है। अतएव यह आवश्यक है कि श्री वर्धमान श्रमण सघ की कार्यवाही कान्फ्रेस के प्रतिनिधियो के सहकार और विचार-विनिमय से हो, यह प्रार्थना है।

प्रस्ताव सख्या—१५—जिनागम प्रकाशन समिति की नियुक्ति।

अधिवेशन के दौरान "जैन युवक परिषद्" (अध्यक्ष श्री जवाहरलाल जी मुणोत) "जैन महिला परिषद्) (अध्यक्षा-श्रीमती पारस रानी जी), "जैन पत्रकार परिषद्" (अध्यक्ष श्री चुन्नीलाल वर्द्धमान शाह) के सम्मेलन भी हुए। पत्रकार परिषद् मे २६ पत्रकार व फोटोग्राफरो ने भाग लिया।

इस प्रकार कान्फ्रेस के जीवन की पहली अर्द्ध शताब्दी पूरी हुई। इन ५० वर्षों मे १३ खुले अधिवेशन विभिन्न स्थानो पर किए गए, परन्तु कान्फ्रैस का कार्य इन अधिवेशनो के सयोजन तक ही सीमित नही था। वास्तव मे अधिवेशन के अवसर पर तो समाज के सम्मुख अपने काम का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना और समाज से भावी कार्य के लिए दिशा निर्देशन लेना ही ध्येय था। अधिवेशनो मे पारित प्रस्तावो तथा समय-समय पर उठती हुई प्रवृत्तियो और समस्याओ पर अमल करने के लिए आवश्यकतानुसार कार्यकारिणी समिति व सामान्य सभा की बैठके होती रहती थी। इन ५० वर्षों मे कान्फ्रेस ने जो प्रवृत्तियाँ अपने हाथ मे ली और जो उपलब्धियाँ उसे मिली, उनमे से कुछ का ब्यौरा इस परिच्छेद के अन्त मे दिया गया है।

(अगले पेज पर जारी)
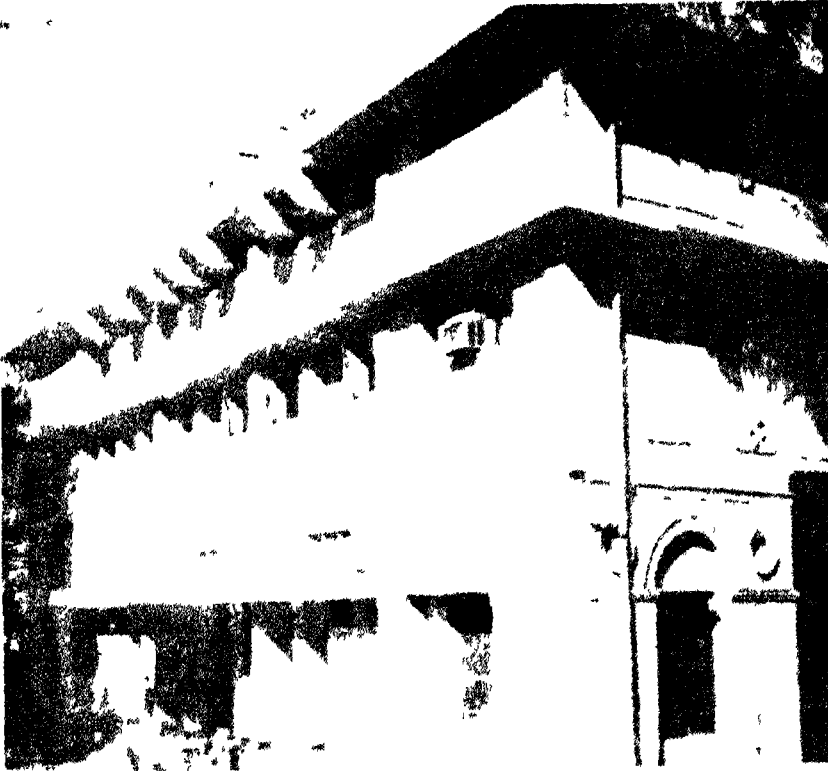
पिछले ३२ वर्ष

(सन् १९५६ से १९८८ तक)

पहला दशक (१९५६ से १९६६)

प्रबध समिति, कार्यकारिणी समिति तथा सामान्य सभा (जनरल कमेटी) की कुछ बैठके तो ऐसी भी होती थी जिनमे चालू प्रवृत्तियो का मूल्याकन और प्रशासनिक विषय सबधी विचार-विमर्श और निर्णय ही लिए जाते थे, जैसे गत वर्ष का हिसाब, चालू वर्ष का बजट, मत्रियो का प्रतिवेदन, शोक प्रस्ताव, नए सदस्यो के आवेदन पत्रो की स्वीकृति, "जैन प्रकाश" की स्थिति, जैन भवन सबधी मामले, इत्यादि। जिन बैठको मे सामाजिक विषयो पर अथवा कान्फेस सबधी महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए, उनका सक्षिप्त वर्णन निम्न दिया गया है।

पारित प्रस्ताव तो आज भी बहुत उपयोगी दिखाई देगे जिन्हे स्वीकार कर लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए ऐसे सभी प्रस्तावो का सक्षिप्त सार यहाँ दिया गया है ताकि समाज का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट हो सके।

भीनासर अधिवेशन के पश्चात्

(१) कार्यकारिणी समिति की बैठक--जैन भवन, नई दिल्ली, ६ मई, १९५६

प्रस्ताव स --२-- प्रान्तीय शाखाएँ स्थापित करने का निर्णय--प्रदेश निम्न प्रकार होगे---

प्रदेश	**स्थान**
सौराष्ट्र	राजकोट
मध्यप्रदेश	अमरावती
मद्रास	मद्रास
मैसूर	बगलौर
बिहार एव उत्तरप्रदेश	बनारस
पजाब	पटियाला अथवा लुधियाना

प्रस्ताव सं --५-- **आगमोद्धार की योजना**

(२) सामान्य सभा (जनरल कमेटी) की बैठक–दादर (बंबई), २३, २४ जून, १९५६

अध्यक्ष–सेठ श्री विनयचन्द भाई जौहरी

प्रस्ताव स –३– वीर सेवा सघ की सशोधित योजना।

प्रस्ताव स –४– जैन भवन, नई दिल्ली का विविध प्रवृत्तियों के लिए प्रयोग।

प्रस्ताव स –५– श्राविकाश्रम की व्यवस्था।

प्रस्ताव स –७– आगम प्रकाशन।

(३) कार्यकारिणी समिति की बैठक–जैन भवन, नई दिल्ली, ७ जुलाई १९५६

अध्यक्ष–श्री सेठ अचलसिह (अध्यक्ष की अनुपस्थिति मे)

प्रस्ताव–जैन ट्रेनिग कॉलेज योजना को कार्यान्वित करने के लिए एक उपसमिति का गठन।

(४) सामान्य सभा (जनरल कमेटी) की बैठक–लुधियाना, २०, २१ अक्टूबर, १९५६

अध्यक्ष–सेठ श्री विनयचन्द जी भाई जौहरी

प्रस्ताव स –६– सर्वमान्य जैन पुस्तक–अजैनो को जैन धर्म का परिचय कराने के हेतु जैन धर्म पर एक सर्वमान्य पुस्तक की रचना के लिए एक उप समिति का गठन।

" , ९ (१६)– जैन सस्कृति रक्षक अनुशासन समिति की नियुक्ति।

" " १३ (अ)– लोकसभा मे लाए गए साधु-सन्यासी रजिस्ट्रेशन बिल का विरोध।

" " १७ – आगम प्रकाशन पू आचार्य श्री ने आगम सपादन सबधी जो सुझाव दिया है उसे स्वीकार किया गया।

(५) विशेष सामान्य सभा (जनरल कमेटी) की बैठक–जयपुर, २२, २३ फरवरी, १९५७

अध्यक्ष–सेठ श्री विनयचन्द भाई दुर्लभ जी जौहरी

प्रस्ताव– साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तक "भगवान बुद्ध" मे भगवान महावीर द्वारा मासाहार किए जाने के गलत प्रसग पर दु ख और विरोध।

(६) विशेष सामान्य सभा (जनरल कमेटी) की बैठक–जयपुर २३, २४ फरवरी, १९५८

सेठ श्री अचलसिह, एम पी नए अध्यक्ष चुने गए।

प्रस्ताव स –३– निम्न महानुभाव नए ट्रस्टीज चुने गए—

श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया, अहमदनगर

सेठ श्री मोहनमल जी चोरडिया, मद्रास

सेठ श्री अचलसिह जी, आगरा

सेठ श्री खेलशकर जी दुर्लभ जी जौहरी, जयपुर

सेठ श्री मणिलाल वीरचद थोभण, बबई

प्रस्ताव स –५ आगम प्रकाशन का कार्य बबई शाखा को सुपुर्द किया गया।

(७) पूना मे जल-सकट

अगस्त १९६१ मे पानसेट और खडकवासला बाधो के टूट जाने से पूना मे जल सकट का भयानक प्रकोप उपस्थित हुआ। कान्फ्रेस ने भी बाढ पीडितो की सहायता के लिए एक ''पूना बाढ सहायक फड'' खोला और अपनी शक्ति के अनुसार पीडितो की सहायता करने मे योगदान दिया।

(८) आचार्य श्री आत्माराम जी का स्वर्गवास

आचार्य सम्राट परम पूजनीय १००८ श्री आत्माराम जी महाराज का ३० जनवरी १९६२ की रात्रि को लुधियाना मे स्वर्गवास हो गया। ३१-१-६२ को दिल्ली के समस्त जैनो ने अपने कारोबार बन्द रखे और १ फरवरी को सब बाजार बन्द रहे।

१८ नवबर १९६२ को महाराज श्री आनन्द ऋषिजी ने आचार्य पद सभाला। २३ फरवरी १९६४ को चादर समारोह मनाया गया।

(९) विशेष सामान्य सभा (जनरल कमेटी) की बैठक—अजमेर, २२, २३ फरवरी १९६४

अध्यक्षता—सेठ श्री अचलसिह एम पी ।

यह अधिवेशन श्रमण सघ के शिखर सम्मेलन के साथ हुआ इसलिए इस अवसर पर लगभग २५,००० व्यक्ति उपस्थित थे।

प्रस्ताव स –२– शिखर सम्मेलन के विषय मे कान्फ्रेस की जनरल कमेटी मे अभी तक की स्थिति का पर्यवेक्षण करके अधिकारी मुनि सम्मेलन की सेवा मे विचारार्थ निम्न सुझाव प्रस्तुत करने का निश्चय किया गया –

(१) श्रमण सघ से सबधित समस्त प्रश्नो तथा आनुषगिक प्रश्नो के सबध मे स्पष्ट निर्णय इसी सम्मेलन मे लिया जाना उचित होगा, ताकि भविष्य मे निर्णयो की अस्पष्टता अथवा भाषा की अस्पष्टता के कारण पुन नई समस्या उपस्थित न हो।

(२) जनरल कमेटी की यह मान्यता है कि मुनि-सम्मेलन द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव तथा समाज की परिस्थिति को लक्ष्य मे रखते हुए इस प्रकार के निर्णय लिए जाने अत्यत आवश्यक हैं कि जिससे सप्रदायवाद शेष न रह जाए और समाज उत्तरोत्तर प्रगति कर सके तथा यह भी आवश्यक है कि प्रस्तुत समस्याओ के सबध मे नवीन तथा प्राचीन का समन्वयकारी तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया जाए।

(३) श्रमण सघीय सगठन के सबध मे जो बधारण तैयार किया जाए उसका पूर्णरूपेण पालन हो तथा श्रमण सघ सुदृढ हो, इस प्रकार की व्यवस्था की जाए।

(४) जो साधु-साध्वी अभी तक श्रमण-सघीय सगठन मे सम्मिलित नही हुए हैं तथा जिन्होने सम्मिलित होने के पश्चात अपना सबध विच्छेद किया है, उनको श्रमण सघीय सगठन मे सम्मिलित करने के लिए प्रयत्न किया जाए।

जनरल कमेटी श्रमण सघीय अधिकारी, मुनिराजो की सेवा मे यह स्पष्ट कर देना उचित समझती है कि अधिकारी मुनि-सम्मेलन द्वारा जो बधारण अथवा नियम-उपनियम स्वीकृत किए जाएँगे, उनका अमल कराने मे कान्फ्रेस तथा प्रत्येक स्थानीय श्रावक सघ अपनी ओर मे पूर्ण प्रयत्न करेगे।

यह जनरल कमेटी श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज से साग्रह अनुरोध करती है कि श्रमण सघीय अधिकारी मुनि सम्मेलन द्वारा जो निर्णय लिए जाएँ, उनका पूर्ण रूप से पालन करे।

(१०) प्रबन्ध समिति तथा सामान्य सभा की बैठके—जयपुर, २८, २९ नवम्बर १९६४

अध्यक्ष—सेठ श्री अचलसिह, एम पी

प्रस्ताव—४— सामाजिक सगठन की रचनात्मक ११ सूत्रीय योजना।

दूसरा दशक (१९६७ से १९७७)

चौदहवाँ अधिवेशन—दिल्ली

११ वर्ष के पश्चात कान्फ्रेस का १४ वाँ अधिवेशन ७-८ मई १९६७ को दिल्ली के गाधी ग्राउड मे डॉ दौलतसिह कोठारी की अध्यक्षता मे सपन्न हुआ।

अधिवेशन का उद्घाटन केन्द्रीय उप-प्रधानमत्री श्री मोरारजी देसाई ने किया। सुप्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक श्री काका साहेब कालेलकर तथा दिल्ली के मेयर ला हसराज गुप्त ने अधिवेशन को अपने आशीर्वाद दिए। कान्फ्रेस के उपाध्यक्ष श्री चिमनलाल चक्कू भाई शाह ने मार्मिक भाषण दिया। स्वागताध्यक्ष सेठ श्री आनन्दराज जी सुराणा ने पधारे हुए अतिथियो का स्वागत किया।

अधिवेशन के मगलमय अवसर पर पजाब केसरी श्री प्रेमचद जी म सा , मुनि श्री सुशील कुमार जी म , श्री कन्हैयालाल जी म "कमल", श्री मनोहर मुनि जी म , तेरापथी मुनि श्री सुमीर मुनि जी , साध्वी श्री सरला जी म आदि सतो के प्रवचन हुए।

इस अवसर पर निम्नलिखित विषयक उल्लेखनीय प्रस्ताव पारित किए गए—

(१) **भगवान महावीर की २५ वीं निर्वाण शताब्दी**-समग्र जैन समाज के सयुक्त तत्वावधान मे मनाई जाए। इस दिशा मे भारत जैन महामडल द्वारा किए गए प्रयत्नो मे पूर्ण सहयोग दिया जाए।

(२) अखिल भारतीय जैन युवक परिषद् का पुनर्गठन किया जाए।

(३) शिक्षित व बेकार युवको को रोजगार ढूँढने मे सहायता की जाए।

(४) श्रमण सघ को सुदृढ बनाया जाए।

(५) सभी बधुओ से जिन्होने कुछ समय से कान्फ्रेस के कार्य मे सहयोग देना स्थगित कर दिया है, सक्रिय सहयोग देने का अनुरोध किया जाए।

(६) सवत्सरी पर्व एक तिथि को ही मनाया जाए।

(७) अहिसा प्रचार और हिंसा विरोध के लिए उप समिति का गठन किया गया।

(८) जैन ट्रेनिंग कॉलेज को शीघ्र चालू करने के लिए एक उप समिति का गठन किया गया और २५,००० रुपए के वार्षिक खर्च को स्वीकृति दी गई।

(९) नशाबदी की आवश्यकता।

(१०) अकाल राहत कोष बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश व गुजरात के कुछ भागो मे अकाल पीडितो की सहायता के लिए जैन समाज से अपील।

जैन एकता परिषद्—७ मई १९६७ को कान्फ्रेस के अधिवेशन के अवसर पर एक जैन एकता परिषद् का भी आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता श्री जवाहरलाल जी मुणोत ने की। परिषद् का उद्घाटन श्री रिषभदास जी राका ने किया और श्री शानिलाल सेठ ने प्रस्ताविक भाषण दिया। जैन एकता के विषय पर बोलने वालो मे श्री केशवलाल चौगले, श्री ओकारलाल बोहरा, श्री सौभाग्यमल जैन, श्री जवाहरलाल मुणोत तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र कुमार सम्मिलित थे। इस अवसर पर एक एकता सबधी प्रस्ताव भी पास किया गया।

जैन महिला सम्मेलन

एक महिला सम्मेलन भी आयोजित किया गया जिसकी अध्यक्षता श्रीमती हीरा बहन बोडिया ने की।

जैन साहित्यकार व पत्रकार परिषद्

इस अवसर पर एक जैन साहित्यकार व पत्रकार परिषद् भी आयोजित थी जिसकी अध्यक्षता श्री जैनेन्द्र कुमार ने की। भाषण देने वालो मे प शोभाचन्द भारिल्ल, प कृष्णचन्द्राचार्य, श्री लवण प्रसाद व श्री कुमार सत्यार्थी सम्मिलित है। परिषद् का कार्य आगे बढाने हेतु एक उप समिति की नियुक्ति की गई।

जैन युवक परिषद्

दिनाक ८-५-६७ को श्री शादीलाल जैन (बबई) की अध्यक्षता मे जैन युवक परिषद् का आयोजन किया गया जिसका उद्‌घाटन कान्फ्रेंस के उपाध्यक्ष श्री सौभाग्यमल जैन ने किया। बैठक मे युवक सघ का कार्यक्रम प्रारभ करने की योजना बनाई गई।

(२) सामान्य सभा (जनरल कमेटी) की बैठक—मालेरकोटला (पजाब) ६, ७ नवबर, १९६८

अध्यक्षता—सेठ श्री अचलसिंह (अध्यक्ष डा डी एस कोठारी की अनुपस्थिति मे।)

प्रस्ताव स —५— प्रान्तीय शाखाएँ एव श्रावक सघ का सगठन। सघ-सगठन उप समिति की नियुक्ति।

प्रस्ताव स —९— भगवान महावीर की २५ वी निर्वाण शताब्दी—उप समिति का गठन —

श्री दुर्लभ जी केशवजी खेताणी

श्री आनन्दराज सुराणा

श्री सौभाग्यमल जैन

श्री खीमचन्द जी मगनलाल वोरा

श्री शातिलाल वी सेठ (सयोजक)

निम्नलिखित महानुभाव नए ट्रस्टीज चुने गए —

सेठ श्री अचलसिंह जी, एम पी आगरा

सेठ श्री मोहनलाल जी चोरडिया, मद्रास

सेठ श्री मणिलाल वीरचद जी थोभण, बबई

श्री खेलशकर दुर्लभ जी जौहरी, जयपुर

श्री आनन्दराज जी सुराणा, दिल्ली

(३) वार्षिक सामान्य सभा (जनरल कमेटी) की बैठक—सब्जी मडी, दिल्ली १६ नवबर, १९६९

अध्यक्ष—डॉ दौलतसिंह कोठारी

प्रस्ताव स –५– भगवान महावीर की २५ वी निर्वाण शताब्दी को सफल बनाने के लिए एक समिति के गठन का निर्णय लिया गया जिसके १०१ जैन तथा अजैन सदस्य होगे। इस समिति के सयोजक श्री सौभाग्यमल जैन होगे। समिति के सदस्यो के नामो की घोषणा अध्यक्ष महोदय करेगे।

प्रस्ताव स –६– प्राकृत भाषा के प्रसार एवं प्रचार के लिए एक विद्यापीठ की स्थापना आवश्यक है। इसकी योजना बनाने के लिए एक उप-समिति का गठन किया गया जिससे तीन मास मे रिपोर्ट देने के लिए कहा गया—

१ डॉ ए एन उपाध्ये

२ डॉ प्रबोध पण्डित

३ डॉ मोहनलाल मेहता

४ प दलसुख मालवणिया

५ प शोभाचन्द्र भारिल्ल

६ श्री सौभाग्यमल जैन

७ श्री शातिलाल वनमाली सेठ

प्रस्ताव स –८– वीर सेवा सघ

प्रस्ताव स –९– प्रान्तीय शाखाएँ

प्रस्ताव स –१०– धार्मिक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन

प्रस्ताव स –११– श्रमण सघ की सुदृढता–सहयोग के लिए उप समिति का गठन।

(४) १५ वाँ अधिवेशन-ब्यावर राजस्थान २, ३, ४ अक्टूबर सन् १९७१

कान्फ्रेस का १५ वाँ अधिवेशन ब्यावर (राजस्थान) मे २, ३, ४ अक्टूबर १९७१ को सपन्न हुआ। अधिवेशन के अध्यक्ष सेठ श्री मोहनमल जी चोरडिया और स्वागताध्यक्ष सेठ श्री फूलचद जी लूणिया थे। अधिवेशन का उद्घाटन माननीय श्री बरकत उल्लाह, मुख्यमत्री राजस्थान ने किया था। मुख्य प्रस्ताव पूर्वी पाकिस्तान (बगलादेश) से आए हुए शरणार्थियो की सहायता के सबध मे था। इस अवसर पर महिला परिषद् और युवक परिषद् के सम्मेलन भी आयोजित किए गए थे।

(५) सामान्य सभा (जनरल कमेटी) की बैठक जैन भवन, नई दिल्ली, २५ नवबर १९७३

अध्यक्ष–सेठ श्री अचलसिंह (अध्यक्ष की अनुपस्थिति मे।)

निश्चित किया गया कि आगामी पाँच वर्षों के लिए वर्तमान ट्रस्टीज ही बोर्ड पर होगे।

१ सेठ श्री अचलसिंह–एम पी

२ सेठ श्री मोहनलाल जी चोरडिया

३ श्री खेलशकर दुर्लभ जी जौहरी

४ श्री मणिभाई वीरचद थोमण

५ सेठ श्री आनन्दराज सुराणा

प्रस्ताव न –६– विधान मशोधन समिति की नियुक्ति–सयोजक श्री सौभाग्यमल जैन

भगवान महावीर २५ वीं निर्वाण शताब्दी के संबध में—

प्रस्ताव न –८– कवि श्री अमर मुनि जी म द्वारा प्रस्तावित "वीरायतन" योजना की प्रगति से सतुष्टि।

प्रस्ताव न –९– विश्व धर्म सम्मेलन के ५ वे अधिवेशन को सहयोग।

प्रस्ताव न –१०– श्री महावीर विश्व विद्यापीठ की सफलता पर सतोष।

प्रस्ताव न –११– जैन विश्वकोष की प्रस्तावित योजना को समर्थन।

प्रस्ताव न –१२– श्री महावीर मिशन की योजना का स्वागत।

प्रस्ताव न –१४– भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव मे युवको का योगदान।

प्रस्ताव न –१५– २५०० गायो को अभयदान देने की योजना।

प्रस्ताव न –१६– भगवान महावीर की २५ वी निर्वाण शताब्दी के सबध मे सपर्क समिति का गठन।

प्रस्ताव न –१८– देश और विदेशो मे अहिंसा प्रचार की योजना।

प्रस्ताव न –१९– मासाहार-निषेध अभियान।

प्रस्ताव न –२०– सामाजिक कुरीतियो-दहेज, दिखावा, जन्म-मृत्यु आदि के अवसर पर फिजूलखर्ची आदि को रोकने के लिए व्यापक अभियान।

प्रस्ताव न –२१– धमात्सव–दीक्षा, चातुर्मास, तपोत्सव आदि पर कम-से-कम खर्च हो।

वर्ष १९७३-७४ के लिए डॉ दौलतसिह जी कोठारी को अध्यक्ष तथा सेठ श्री आनन्दराज जी सुराणा को महामत्री चुना गया। कार्यकारिणी के ५० सदस्यो को अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किया गया।

(६) सामान्य सभा (जनरल कमेटी) की बैठक–दिल्ली २, ३ नवबर १९७४

अध्यक्ष–सेठ श्री अचलसिह (२-११-७४)

डॉ दौलतसिह कोठारी (३-११-७४)

प्रस्ताव स –२– वीरायतन योजना की प्रगति पर सतोष।

प्रस्ताव स –३– सैलाना से प्रकाशित "सम्यग-दर्शन" पाक्षिक पत्रिका मे छपे लेखो की भर्त्सना।

प्रस्ताव स –४– विश्व धर्म सम्मेलन के आयोजन को सहयोग।

प्रस्ताव स –५– नशाबदी अभियान।

प्रस्ताव स –६– राजस्थान विधानसभा मे पशुबलि निरोधक कानून।

प्रस्ताव स –७– धार्मिक स्थानो के पास शराब और मास की दुकाने न खुले।

प्रस्ताव स –८– चित्तौड जिले मे जोगणिया माता व आवरा माता के पवित्र स्थानो पर पशुबलि बद होने पर सतोष।

प्रस्ताव स –१०– निर्वाण महोत्सव वर्ष मे विभिन्न कार्यक्रमो के लिए उचित मार्गदर्शन देने के लिए सपर्क समिति की नियुक्ति।

प्रस्ताव स –१२– दिल्ली मे कान्फ्रेस द्वारा एक पुस्तकालय स्थापित किया जाए जिमसे शोध कार्य मे लगे विद्यार्थियो को ग्रन्थ उपलब्ध हो सके।

(७) वार्षिक सामान्य सभा (जनरल कमेटी) की बैठक–जोधपुर ११ जनवरी १९७६

अध्यक्ष–सेठ श्री अचलसिह एम पी

प्रस्ताव न –१३– भगवान महावीर की २५ वी निर्वाण शताब्दी समारोह की केन्द्रीय महासमिति को स्था जैन समाज की ओर से रकम भेजने हेतु एक उप समिति का गठन जो इस पर विचार करके आगे कार्यवाही करेगी।

सेठ श्री अचलसिह–एम पी

सेठ श्री आनदराज सुराणा

श्री जवाहरलाल मुणोत

श्री सचालाल बाफना

श्री कल्याणमल लोढा (सयोजक)

प्रस्ताव न –१४– युवक वर्ग द्वारा समाज कल्याण कार्य करने पर जोर दिया गया और एक उप समिति का गठन किया गया।

(८) वार्षिक सामान्य सभा की बैठक–नागौर ३०, ३१ अक्टूबर १९७६

अध्यक्ष–सेठ श्री अचलसिह

प्रस्ताव न –४ प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाँधी के २० सूत्री एव श्री सजय गाँधी के पाँच सूत्री कार्यक्रम को समर्थन।

प्रस्ताव न –५– दहेज दिखावा प्रथा का बहिष्कार एव विवाह आदि अवसरो पर सादगीपूर्वक समारोह हो।

प्रस्ताव न –७– श्रमणसघ से अलग हुए सम्प्रदायो के साथ मैत्री सबध हो।

तीसरा दशक

(१९७८ से १९८८)

(१) साधारण सभा की बैठक- इदौर ५ फरवरी १९७८

अध्यक्ष सेठ श्री अचलसिह जी, भू पूर्व ससद सदस्य

साधारण सभा की बैठक जो इदौर मे ५ फरवरी १९७८ को सपन्न हुई, उसकी विशेषता यही रही कि उसमे कान्फ्रेस की बागडोर युवा ग्रुप के हाथो मे आ गई। कान्फ्रेस के २५ वर्ष से चले आ रहे महामत्री और समाज के वयोवृद्ध नेता सेठ श्री आनदराजजी सुराणा अपने स्वास्थ्य और अवस्था को देखते हुए सक्रिय उत्तरदायित्व से अवकाश लेना चाह रहे थे। इस हेतु उन्होंने इदौर मे साधारण-सभा की बैठक से पहले दिन अर्थात ४ फरवरी को कार्यकारिणी समिति की बैठक मे अपने पद से अवकाश पत्र पेश किया और उसे कार्यकारिणी द्वारा स्वीकृत करने का आग्रह किया। कार्यकारिणी ने सेठ जी की सेवाओ की प्रशसा और उनका आभार प्रकट करते हुए उनका त्यागपत्र स्वीकार किया। इसी बैठक मे श्री जवाहरलाल जी मुणोत का नाम आगामी अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तावित किया गया।

साधारण सभा की इदौर की बैठक सौहार्द और सद्भावना के वातावरण मे सपन्न हुई। इसकी अध्यक्षता सेठ श्री अचलसिह जी भू पू ससद सदस्य ने की और इसके स्वागताध्यक्ष श्री सुगनमल जी भडारी, इदौर निवासी थे। बैठक मे श्रीयुत वीरेन्द्र कुमार जी सकलेचा, मुख्यमत्री मध्यप्रदेश मुख्य अतिथि थे।

श्री वीरेन्द्र कुमार सकलेचा ने वयोवृद्ध समाज सेवी श्री भवरलाल जी धाकड का अभिनन्दन किया और उन्हे शाल भेट की। श्री सुगनमल जी भडारी ने निवर्तमान अध्यक्ष सेठ श्री अचलसिह जी एव प्राणिमित्र श्री सेठ आनन्दराज जी सुराणा का अभिनन्दन किया।

इदौर की साधारण सभा मे अन्य कोई महत्वपूर्ण निर्णय नही लिए गए। कुल ११ प्रस्ताव पारित किये गये जिनमे श्री जवाहरलाल जी मुणोत का अध्यक्ष के रूप मे चुनाव और महिला मडल के गठन विषयक प्रस्ताव ही उल्लेखनीय है। श्री मुणोत जी को कार्यकारिणी को मनोनीत करने का अधिकार दिया गया।

(२) नई कार्यकारिणी समिति की पहली बैठक, नई दिल्ली ३ मार्च १९७८

चुनावो और नई कार्यकारिणी समिति के गठन के पश्चात शीघ्र ही कार्यकारिणी की पहली बैठक जैन भवन नई दिल्ली मे आयोजित हुई। उपस्थिति तथा पारित प्रस्तावो के आधार पर कहा जा सकता है कि नए नेतृत्व मे काफी उत्साह और काम करने की भावना थी।

बैठक की अध्यक्षता नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्री जवाहरलाल मुणोत ने की। प्रशासनिक विषयो के अतिरिक्त पारित प्रस्तावो मे निम्न उल्लेखनीय हैं —

प्रस्ताव सख्या. ६ जैन प्रकाश समिति की रिपोर्ट पर विचार।

उचित व्यवस्था बनने पर जैन प्रकाश के प्रतिमास तीन साप्ताहिक और चौथा अक मासिक के रूप मे प्रकाशित हो।

प्रस्ताव सख्या १३ श्रमण सघ सपर्क समिति

श्रमण सघ की साधु-समाचारी व सगठन व्यवस्था मे सहयोग और युवाचार्य पद के निर्णय के लिए आचार्य श्री को सहयोग देने के उद्देश्य से एक श्रमण सघ सम्पर्क समिति का गठन किया गया।

प्रस्ताव सख्या १४ श्रमण वर्ग सम्पर्क समिति

आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी म के नेतृत्व वाले श्रमण सघ से बाहर के अन्य आचार्यों व श्रमण वर्ग के साथ मैत्री भावना व सावत्सरिक एकता व अन्य समस्याओ पर विचार करने के लिए एक समिति का गठन किया गया।

प्रस्ताव सख्या १७ कान्फ्रेन्स से सम्बद्धता

कान्फ्रेन्स से स्थानकवासी सस्थाओ की सम्बद्धता के लिए शुल्क निर्धारित किये गये।

प्रस्ताव सख्या २२ प्रचार-प्रसार समिति

कान्फ्रेन्स की गतिविधियो का प्रचार-प्रसार नियमित रूप से करने के लिए एक समिति का गठन किया गया।

(३) कार्यकारिणी समिति की बैठक, ब्यावर (राज) दिनांक २९, ३० अप्रैल १९७८

अध्यक्ष श्री जवाहरलाल मुणोत

इस बैठक मे कान्फ्रेन्स के सशोधित विधान का प्रारूप पारित किया गया और निम्न लिखित अन्य उल्लेखनीय निर्णय लिये गये —

प्रस्ताव सख्या ९ कान्फ्रेन्स के प्रतीक (सिम्बल) को निर्धारित करना चाहिए।

प्रस्ताव सख्या १० आचार्य सम्राट के पत्र-व्यवहार आदि के लिए श्री नानालाल मट्ठा, रतलाम की नियुक्ति की गई जिसका खर्च कान्फ्रेन्स वहन करेगी।

प्रस्ताव सख्या ११ युवा सगठन को सुदृढ बनाने के लिए श्री हीरालाल जैन को सयोजक बनाया गया।

प्रस्ताव सख्या १८ 'जैन प्रकाश'' समिति की विस्तृत रिपोर्ट पर विचार।

प्रस्ताव सख्या. २० अल्पसख्यक आयोग के प्रति जैन समाज का रवैया क्या हो- इस पर विचार करने के लिए एक उप-समिति की नियुक्ति।

विकट परिस्थिति

नई कार्यकारिणी की अभी दो बैठके हो पाई थी कि कान्फ्रेस मे अथवा यूँ कहिये कि जैन भवन, नई दिल्ली मे धीगामस्ती का वातावरण उत्पन्न हो गया। कुछ अनाधिकृत व्यक्तियो ने इदौर मे नई कार्यकारिणी के चुनाव के विरुद्ध अपने चन्द सहयोगियो का समर्थन प्राप्त कर कान्फ्रेस की एक ऐच्छिक बैठक बुलाने का ढोग रचा और कुछ व्यक्तियो के साथ २३-७-७८ (रविवार) को जैन भवन मे जनरल मीटिंग बुलाई। कान्फ्रेस द्वारा कोर्ट से इस मीटिंग के विरुद्ध निषेधाज्ञा प्राप्त की गई थी, परन्तु इस कोर्ट के आर्डर की परवाह न करते हुए जनरल मीटिंग कर ली गई और उनमे से एक व्यक्ति को महामत्री और एक उनके सहयोगी को अध्यक्ष घोषित करके मुख्य कार्यालय और जैन भवन पर कब्जा कर लिया गया। रविवार का दिन होने के कारण उस समय कार्यालय मे केवल जैन प्रकाश के सपादक ही उपस्थित थे। उन्होंने पदाधिकारियो को इस घटना से सूचित किया। अध्यक्ष महोदय तथा अन्य पदाधिकारी तुरन्त दिल्ली पहुँचे गये। नई दिल्ली मे कान्फ्रेस के अधिकारियो तथा स्थानीय कार्यकर्ताओ और दिल्ली के श्रावक सघो के पदाधिकारियो की बैठके चलती रही और १-८-१९७८ को अदालत का आर्डर कि कान्फ्रेस की वैधानिक रूप से इदौर बैठक मे निर्वाचित कार्यकारिणी के काम मे कोई बाधा न डाले प्राप्त करके ३-८-७८ को जैन भवन और केद्रीय कार्यालय पर पुन अधिकार स्थापित किया गया। परन्तु किसी प्रकार के झगडे से बचने हेतु कार्यालय का काम जैन भवन से चालू नही किया गया। काफी समय तक कार्यालय का काम कोल्हापुर रोड, सब्जीमडी के जैन स्थानक मे चला, जहाँ मे २५-३-७९ को ही पुन जैन भवन मे वापस लाया गया।

उपरोक्त घटनाओ की चहु ओर से भरपूर भर्त्सना की गयी। सेठ श्री अचलसिह, भूतपूर्व ससद सदस्य श्री चिमनलाल चक्कूभाई शाह आदि नताओ न इनकी घोर निन्दा की एव प्रान्तीय सघो और सभाओ ने निन्दात्मक प्रस्ताव पास किये और उनकी प्रतियाँ भारत के प्रधानमत्री, दिल्ली के उपराज्यपाल और पुलिस कमिश्नर को भेजी।

जैसा स्वाभाविक है अदालतो मे मुकदमे फैलते चले गये और एक मुकदम के कई केस चालू हो गये। जैन भवन के किरायेदारो और लेसीज को भी प्रोत्साहन मिला और उन्होने भी किराया देना बन्द कर दिया जिससे उनके विरुद्ध भी कोर्ट म मुकदमे डालने पडे।

यह स्थिति लगभग तीन वर्ष तक बनी रही और कान्फ्रेन्स के अधिकारियो का ध्यान समय और शक्ति इसी ओर व्यय होते रहे जिससे इन वर्षो मे कान्फ्रेन्स मे सामाजिक कार्य बहुत कम हुआ। अन्तत ३० जून १९८२ को समझौते के आधार पर मुकदमो का अन्त हुआ और पुन कान्फ्रेन्स का कार्यक्रम स्वाभाविक रूप मे चालू हुवा।

अगस्त १९७८ से दिसम्बर १९८० तक जो महत्वपूर्ण घटनाएँ घटी और कान्फ्रेन्स की बैठको मे जो उल्लेखनीय प्रस्ताव पारित किये गय व निम्न प्रकार है —

(१) कान्फ्रेन्स के विधान मे व्यापक सशोधन स्वीकृत किये गये (साधारण सभा- जालना, ५-८-७८)

(२) 'जैन भवन'' पर हुए आक्रमण के सम्बन्ध मे एक विस्तृत प्रस्ताव पास किया गया जिसमे वास्तविक तथ्यो को दोहराते हुए स्थिति का पूरे बलपूर्वक मुकाबला करने का आह्वान किया गया। (कार्यकारिणी- जालना, ६-८-७८)

(३) श्रमण-सहयोगी-केन्द्रीय-श्रावक समिति के गठन के लिए सयोजक की नियुक्ति। (कार्यकारिणी- सिकन्द्राबाद २४-७-७९)
(४) सैद्धान्तिक रूप मे निर्णय हुआ कि जैन भवन नई दिल्ली मे एक सदर्भ ग्रन्थालय स्थापित किया जाए। (कार्यकारिणी सिकन्द्राबाद, २४-७-७९)
(५) मोरवी बाढ सहायक फड मे कान्फ्रेन्स का योगदान।
(६) उपाध्याय श्री मिश्रीलाल जी 'मधुकर' महाराज युवाचार्य घोषित।
(७) सशोधित विधान की सुपुष्टि। (साधारण सभा- जोधपुर, २६-३-८०)

अन्तत कान्फ्रेस के नये अध्यक्ष और कार्यकारिणी समिति के चुनाव के लिए साधाण सभा की वार्षिक बैठक मद्रास मे ४ जनवरी १९८१ को रखी गई जिसमे श्री मोहनमल चौरडिया को नया अध्यक्ष चुना गया और उन्होने नई कार्यकारिणी को मनोनीत किया।

इस अवसर पर निम्न महानुभावो के नये ट्रस्टीज निर्वाचित किया गया —

श्री सचालाल जी बाफना, औरगाबाद
श्री जवाहरलाल जी मुणोत अमरावती
श्री मणिलाल वीरचन्द जी धोमण बम्बई
श्री पारसमल जी चौरडिया, मद्रास
श्री रामलाल जी जैन सराफ, दिल्ली

यह भी निर्णय लिया गया कि कान्फ्रेन्स का सशोधित विधान जो जालना की साधारण सभा की बैठक मे पास किया गया था, उसमे अन्य व्यापक प्रावधानो की आवश्यकता है इसलिए उसे रद्द समझा जाए।

(५) **नई कार्यकारिणी समिति की पहली बैठक जैन भवन, नई दिल्ली- २८ फरवरी १९८१**

स्वभावत नई कार्यकारिणी समिति ने जोश के साथ काम आरम्भ किया। बैठक की अध्यक्षता अध्यक्ष महोदय की अनुपस्थिति मे श्री सचालाल जी बाफना ने की। कुछ पारित प्रस्ताव इस प्रकार है —

प्रस्ताव सख्या ६,७,८- कान्फ्रेन्स के सगठन को सुदृढ बनाने के लिए

(क) देश के समस्त श्रावक सघो की एक डायरेक्ट्री तैयार की जाए।
(ख) प्रादेशिक शाखाओ के लिए सयोजको की नियुक्ति।
(ग) युवा और महिला सगठनो के लिए निम्न सयोजक नियुक्त
युवा सगठन — श्री हीरालाल जैन
महिला सगठन — श्रीमती पारसरानी मेहता

प्रस्ताव सख्या १२ (४) विधान मे व्यापक सशोधन करने के लिए निम्न उपसमिति की नियुक्ति —

(१) श्री सौभाग्यमल जैन
(२) श्री सम्पतमल लोढा
(३) श्री भाईलाल भाई तुरखिया
(४) श्री ओकारलाल बोहरा

प्रस्ताव सख्या १२ (६) सदस्यता अभियान आरम्भ किया जाए।

(६) मनमाड काण्ड

अक्षय तृतीया दिनाक ६ मई १९८१ को साय ४ बजे मनमाड (जिला नासिक महाराष्ट्र) रेलवे विद्यालय के ग्राउड मे परमपूज्य आचार्य सम्राट श्री आनन्दऋषि जी म एव अन्य सत मडल के प्रवचनो के अवसर पर अचानक सभा पडाल मे आग लग गई। जिससे सैकडो पुरुष, महिलाएँ और बच्चे घायल हो गये। कुछ असामाजिक तत्वो ने महिलाओ व पुरुषो को बुरी तरह से लूट लिया और उनके साथ अभद्र व्यवहार किया। पडाल मे भगदड मच गई जिससे लोगो की मूल्यवान वस्तुएँ लूट ली गईं। घायलो को नासिक, औरगाबाद, धूलिया अहमदनगर, बबई, मालेगाँव के अस्पतालो मे दाखिल किया गया।

कान्फ्रेन्स के मत्रीगण तथा अन्य सदस्य सर्वश्री फकीरचद जी मेहता, अजितराज सुराणा भाईलाल भाई तुरखिया, बादलचद मेहता, दिल्ली महासघ के प्रधान श्री ज्ञानचद जैन व सचिव सुरेश जैन तुरन्त मनमाड पहुँचे और स्थिति का निरीक्षण किया। ८ मई को मराठवाडा बद का आह्वान किया गया। सरकार द्वारा इस घटना की न्यायिक जाँच का आदेश दिया गया। १२ जून १९८१ को २३ सदस्यो का एक शिष्टमडल माननीय प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी से मिला और एक ज्ञापन दिया।

(७) पू युवाचार्य का स्वर्गवास

पूज्य युवाचार्य श्री मिश्रीलालजी 'मधुकर' म का १६-११-८३ को प्रात ९ ३० बजे नासिक मे हृदय गति रुकने से देहावसान हो गया।

(८) श्री मोहनलालजी चोरडिया का निधन

श्री मोहनलालजी चोरडिया का ५-२-८४ को रात्रि के ७ ३० बजे हृदय गति रुकने से मद्रास मे देहान्त हो गया।

(९) आन्ध्रप्रदेश शाखा

दिनाक २५-३-८४ को सिकन्द्राबाद मे कान्फ्रेस की आन्ध्रप्रदेश शाखा की स्थापना हुई। श्री रतनचद जी राका प्रथम अध्यक्ष चुने गये।

(१०) साधारण सभा की बैठक नई दिल्ली १० मई १९८५

अध्यक्ष श्री सचालाल जी बाफना

(क) सशोधित विधान पारित किया गया।

(ख) जैन प्रकाश' मे सुधार के लिए एक उपसमिति का गठन किया गया।

(११) साध्वी सुश्री इन्दुप्रभा का अपहरण

८ जनवरी १९८७ को प्रात सिमरौल से बडवाह (मध्यप्रदेश) विहार करते हुए स्थानकवासी जैन साध्वी इन्दुप्रभा जी का अपहरण कर लिया गया जिससे सारे जैन समाज मे क्षोभ व्याप्त हो गया। जैसे ही यह समाचार इन्दौर और आसपास के नगरो मे पहुँचा जन समुदाय सिमरौल की ओर इन्दुप्रभा की खोज मे उमड पडा एव पुलिस और पुलिस के वरिष्ठ अधिकारी भी इन्दुप्रभा की खोज मे दौड पडे। देवास, विदिशा धार बडवाह, रतलाम, नीमच आदि नगरो मे आक्रोश फैला और बद मोर्चा आदि का आयोजन हुआ।

इस घटना से समस्त जैन समाज मे क्षोभ और आक्रोश व्याप्त हो गया। स्थान-स्थान पर प्रदर्शन, हडताले और बैठके हुई और उक्त अपहरण की घोर निंदा की गयी। मध्यप्रदेश के मुख्यमत्री ने घटना की न्यायिक जाँच का आदेश दिया। कान्फेन्स का एक शिष्ट मण्डल राष्ट्रपति एव गृहमत्री महोदय से मिला और मामले की निष्पक्ष जाँच कराने की माँग की। आज तक इस मामले का निपटारा नही हो सका है। कान्फेन्स की ओर से एक उपसमिति इस केस पर नजर रखे हुए है जिसके सयोजक श्री हस्तीमल मुणोत है।

(१२) प्रबध समिति की बैठक दिल्ली, दिनाक ११ अक्टूबर १९८८

कान्फेन्स की प्रबध समिति की एक बैठक ११ अक्टूबर सन् १९८८ को श्री सचालालजीबाफना की अध्यक्षता मे जैन भवन , नई दिल्ली मे हुई। अन्य विषयो के अतिरिक्त श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ (मेवाड) बबई द्वारा भेजे गये पूज्य श्री सौभाग्य मुनि जी 'कुमुद महाराज के पत्र के सबध मे अध्यक्ष महोदय ने सुझाव दिया कि कान्फेन्स सत-सतियो, सघो एव श्रावको से और अधिक सपर्क स्थापित करने के लिए प्रादेशिक समितियाँ गठित करे जो अपने प्रदेश मे सभी सत-सतियो, सघो व श्रावको से सपर्क रखे और उनकी समस्याओ का समाधान करने मे अपना पूरा सहयोग दे। ऐसे विषय जो श्रमणो के सबध मे हो, उनकी जानकारी आचार्य श्री जी को भेजे और उनकी प्रतियाँ उपाचार्य श्री जी व युवाचार्य श्री जी व कान्फेन्स कार्यालय को भेजे, अपने प्रदेश मे स्थानको एव सस्थाओ की सूची तैयार करे। यह भी प्रयत्न करे कि ऐसे सघ, सस्थाएँ और श्रावक-श्राविकाएँ जो कान्फेन्स के सदस्य अभी तक नही है, वे भी सदस्य बन जाएँ।

यह सुझाव सर्वानुमति मे स्वीकृत किया गया और सुझाव पर अमल सुनिश्चित करने के लिए प्रादेशिक उपसमितियो की नियुक्ति की गई।

(१३) कार्यकारिणी समिति की बैठक इदौर, २१ अक्टूबर १९८८

अध्यक्ष श्री सचालालजी बाफना

बैठक मे बताया गया कि विद्युत परिषद् द्वारा 'डिप्लोमा इन जैनालोजी' के लिए सर्वमान्य पाठ्यक्रम तैयार करने की एक योजना बनाई गई है जिसका आर्थिक भार कान्फेन्स द्वारा वहन करने का प्रस्ताव परिषद् की ओर से आया है। इस योजना को सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार करते हुए इस पर विस्तृत विचार करने और क्रियान्वित करने के लिए निम्नलिखित महानुभावो की एक उपसमिति गठित की गयी।

१ श्री सचालाल बाफना
२ श्री फकीरचद मेहता (सयोजक)
३ श्री नृपराज जैन
४ श्री हीरालाल जैन
५ श्री उत्तमचद रुणवाल
६ श्री पुखराजमल लुकड
७ श्री सौभाग्यमल जैन
८ श्री शातिलाल व सेठ
९ श्री मानकचद कोठारी

यह भी निश्चय किया गया कि विद्युत परिषद् के तीन सदस्यो को कान्फेन्स-कार्यकारिणी की बैठको मे विशेषत आमत्रित किया जायेगा तथा नये चुनावो के समय कार्यकारिणी मे विद्वानो के तीन प्रतिनिधि अध्यक्ष मनोनीत करेगे।

(१४) कान्फ्रेस का १६ वाँ अधिवेशन इंदौर-२२ अक्टूबर १९८८

कान्फ्रेंस का चिरप्रतीक्षित १६ वाँ अधिवेशन १७ वर्ष के लंबे अंतराल के पश्चात् २२ अक्टूबर १९८८ को इंदौर में संयोजित हुआ। अधिवेशन की अध्यक्षता श्री सचालालजी बाफना ने की और समारोह के स्वागताध्यक्ष श्री नेमनाथ जैन इंदौर थे। **श्री बाफना जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अधिवेशन के मुख्य अतिथि श्री जवाहरलाल दरडा-स्वा मंत्री, महाराष्ट्र सरकार का स्वागत और आभार प्रकट किया। श्री दरडा जी ने निम्नलिखित उपस्थित विद्वानों का स्वागत करते हुए उन्हें शाल भेंट की।**

(१) श्री शांतिलाल वी. सेठ, बंगलौर।
(२) श्री डॉ. सागरमल, बनारस।
(३) श्री नरेन्द्र भानावत।
(४) श्री सौभाग्यमल जैन, शुजालपुर।
(५) श्री चंद्रभूषण मणि त्रिपाठी, अहमदनगर।
(६) श्री पं. कन्हैयालाल दक।
(७) श्री हीरालाल गांधी।
(८) श्री स. शान्ता भानावत।
(९) श्री चन्दनमल चांद।

अधिवेशन में निम्नलिखित उल्लेखनीय प्रस्ताव सर्वानुमति से पारित किए गए –

प्रस्ताव नं–१ जैन शब्द का प्रयोग समाज में संगठन को मजबूत करने और वात्सल्य भाव को प्रोत्साहन देने के लिए समाज के सभी भाई-बहन अपने व पिता के नाम के साथ जैन शब्द का प्रयोग करें।

प्रस्ताव नं–२, ४, ५ प्रांतीय शाखाएँ कान्फ्रेंस द्वारा स्थापित प्रांतीय शाखाओं का कार्य सराहनीय है। इसे अधिक व्यापक बनाने के लिए जिन प्रांतों में प्रांतीय शाखाएँ स्थापित नहीं हुई हैं वहाँ प्रांतीय शाखाएँ शीघ्र बनाई जाएं। प्रांतीय शाखाएँ अपनी उपशाखाएँ जिला व गाँव-गाँव तक स्थापित करें और सभी श्रीसंघों को कान्फ्रेंस के साथ जोड़ने का प्रयास करें। प्रांतीय शाखाओं का केंद्र द्वारा मार्गदर्शन किया जाए और प्रांतीय शाखाओं से उसकी गतिविधियों की मासिक रिपोर्टप्राप्त की जाए जिसकी समीक्षा केंद्र द्वारा की जाए। प्रांतीय शाखाओं के द्वारा किए गए कार्यों को जैन प्रकाश में प्रकाशित किया जाए। केंद्र द्वारा प्रांतीय शाखाओं के लिए कुछ आर्थिक व्यवस्था भी की जाए। बाकी व्यवस्था प्रांतीय शाखाएँ स्वयं करें।

प्रांतीय शाखाओं के माध्यम से सभी कर्मठ कार्यकर्ताओं, विद्वानों, लेखकों, पत्रकारों, उद्योग व व्यावसायिक क्षेत्रों में लगे महानुभावों, सरकारी कार्यालय में उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों का ब्यौरा एकत्रित किया जाए और समय-समय पर उनको सम्मानित किया जाए।

प्रांतीय शाखाओं के माध्यम से सभी वर्धमान स्थानकवासी श्रावक संघों व प्रांतों में सामाजिक कार्यों में लगी संस्थाओं का ब्यौरा एकत्रित किया जाए।

प्रस्ताव न –३ सामाजिक कार्य मे महिलाएँ महिलाओ को सामाजिक कार्य मे आगे बढाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए। महिला समाज के कल्याण हेतु विद्वत महिलाओ के लेख मँगवाकर उन्हे "जैन प्रकाश" मे प्रकाशित करवाया जाए। अच्छे लेखको को पुरस्कृत किया जाए और समय-समय पर महिलाओ के सम्मेलनो का आयोजन किया जाए।

प्रस्ताव न –६ कान्फ्रेंस की सदस्यता श्रमण सघ के निर्माण व उसको सुदृढ बनाने मे कान्फ्रेस ने सदैव अपना सहयोग दिया है। साधु व साध्वियो के चरणो मे विनती की जाए कि वे चातुर्मास व दूसरे समय में एक स्थान मे दूसरे स्थान पर विहार करते हुए श्रीसघो व सुश्रावको को कान्फ्रेस का सदस्य बनने व उससे जुडने के लिए प्रेरित करने की कृपा करे।

प्रस्ताव न –७ जैन विद्वत परिषद अखिल भारतीय जैन विद्वत परिषद द्वारा नियोजित पाठ्यक्रम को तैयार करने और उसमे परीक्षाएँ इत्यादि का प्रबध करने के लिए विद्वानो का सहयोग लिया जाए और इसे शीघ्रातिशीघ्र क्रियान्वित किय जाए।

प्रस्ताव न –८ सघों व सस्थाओं की सदस्यता श्री वर्धमान स्थानकवासी सघो व सस्थाओ के लिए सदस्यता शुल्क १५१/- रुपए करने के लिए कान्फ्रेस विचार करे ताकि अधिक से अधिक श्रीसघ व सस्थाएँ कान्फ्रेस मे जुडे।

प्रस्ताव न –९ साधु समाचारी पूना साधु सम्मेलन मे पारित समाचारी का प्रकाशन किया जाए और वह सभी स्थानको मे उपलब्ध हो। इसके पालन हेतु सभी चतुर्विध सघ मिलकर कार्य करे और जहाँ समाचारी का उल्लघन हो, उसकी सूचना आचार्य श्री जी, उपाचार्य श्री जी व युवाचार्य श्री जी को दे।

प्रस्ताव न –१० श्रमण-श्रावक सपर्क समिति केद्रीय स्तर पर श्रमण श्रावक सपर्क समिति गठित की जाए जो चतुर्विध सघ को सुदृढ व नियत्रित करने मे अपना योगदान दे।

प्रस्ताव न –११ उद्योग व व्यवसाय समाज के उद्योगपतियो व बडे व्यवसायियो से प्रार्थना की जाए कि वे पिछडे इलाके मे भी अपने उद्योग स्थापित करे और पढे-लिखे युवको व युवतियो को अपने व्यवसाय मे उचित स्थान प्रदान करे।

प्रस्ताव न –१२ "जैन प्रकाश" जैन प्रकाश को अधिक समाजोपयोगी लोकप्रिय बनाने के लिए इसमे प्रातीय शाखाओ और युवा व महिला शाखाओ की गतिविधियो को उचित स्थान दिया जाए। श्रीसघो, पुस्तकालयो आदि के लिए "जैन प्रकाश" का शुल्क कम करके उन्हे जैन प्रकाश पढने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। बडे-बडे सतो व विद्वानो के लेख मँगावकर उन्हे प्रकाशित किया जाए। समाज की गतिविधियो के सभी समाचार सक्षिप्त मे दिए जाएँ।

प्रस्ताव न –१४ टी वी और रेडियो पर आमिष भोजन का प्रचार सरकारी प्रचार माध्यमो (टी वी, रेडियो) पर आमिष भोजन के प्रसारण पर तुरत रोक लगाने हेतु भारत सरकार से अनुरोध किया जाए। इस सबध मे एक प्रतिनिधिमडल यथाशीघ्र प्रधानमत्री एव सूचना एव प्रसारण मत्री से मिले और अनुरोध करे कि सरकारी माध्यम उक्त प्रचार को बद कर दे।

जैन महिला सम्मेलन

कान्फ्रेस की महिला शाखा द्वारा २२ अक्टूबर, १९८८ को इदौर मे महिला सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन की अध्यक्षा श्रीमती सुलोचना पी लुकड, स्वागताध्यक्षा श्रीमती भुवनेश्वरी भडारी, सयोजिका श्रीमती पारसरानी मेहता, प्रमुख अतिथि सुश्री सरोज खापर्डे (स्वास्थ्य व कल्याण राज्यमत्री-भारत सरकार) एव विशेष अतिथि श्रीमती मोहिनी जैन थी।

महिला सम्मेलन मे निम्नलिखित तीन प्रस्ताव पारित किए गए

प्रस्ताव न –१ कुरीतियो को समाप्त करें यह महिला सम्मेलन समाज की बहनो मे अशिक्षा, रूढ़ियाँ, दहेज, टीका, पर्दा प्रथा, विवाह मे सडको पर नाचना, आडबर प्रदर्शन आदि बुराइयो की निंदा करते हुए बहनो से अपील करता है कि इन बुराइयो को समाप्त करने मे दृढ सकल्प एव आस्था से आगे बढे। पूज्य साधु-साध्वी वृद से भी निवेदन है कि महिलाओ को इन कुरूढियो से बचने की प्रेरणा दे क्योकि आपकी त्यागमयी वाणी का व्यापक और प्रभावशाली असर होगा।

प्रस्ताव न –२ बालको मे सुसस्कार समाज मे बालको के सस्कार सुरक्षित रखने के लिए उनके खान-पान पर आरभ से ही विशेष ध्यान दिया जाए। अडा, मास, शराब जैसी अभक्ष्य वस्तुओ के उपयोग पर मनोवैज्ञानिक तरीके से अकुश लगाया जाए। ये कार्य माताएँ जिम्मेदारीपूर्वक करे।

साथ ही उन सौंदर्य प्रसाधनो को भी नकारा जाए जिनमे प्रत्यक्ष हिंसा होती है तथा लिंग परीक्षण के पश्चात् होने वाली कन्या-भ्रूण-हत्या का घोर विरोध करते हुए समाज की बहनो से अपील है कि ऐसे कुकृत्यो मे भागीदार न बने।

प्रस्ताव न –३ टी वी पर अपराधिक प्रवृत्तियाँ श्रीमती कुसुमलता जैन ने प्रस्तावित किया कि मनोरजन के नाम पर टी वी पर ऐसे सीरियल व चलचित्र प्रसारित किए जाते है जिनमे हत्या, चोरी, लूटपाट, बलात्कार आदि घटनाएँ दिग्दर्शित की जाती है, जिनके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय चरित्र का पतन होता जा रहा है। ऐसे दृश्यो को देखकर अपराधिक प्रवृतियाँ निरतर बढ रही है। बालको के जीवन मे भी कुसस्कारो का पोषण होकर उनकी नैतिकता घट रही है। अत महिला सम्मेलन भारत सरकार से माँग करता है कि टी वी पर अपराधिक प्रवृत्तियो को बढावा मिले ऐसे प्रसारण रोके जाएँ उनके स्थान पर राष्ट्रीय एकता मानवसेवा विश्वबधुत्व और महापुरुषो के जीवन से सबधित कथानक दिए जाए ताकि व्यक्ति, परिवार समाज और देश मे चारित्रिक मूल्यो की स्थापना हो।

युवक सम्मेलन

२२ अक्टूबर, १९८८ को ही इदौर मे कान्फ्रेस की युवा शाखा द्वारा जैन युवक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन एयर मार्शल पी के जैन ने किया। सम्मेलन की अध्यक्षता शाखा के अध्यक्ष श्री सुभाष ओसवाल ने की।

श्रमण संघीय मुनि सम्मेलन-पूना

अपनी आयु और स्वास्थ्य को देखते हुए आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी महाराज ने कान्फ्रेन्स अध्यक्ष से एक वृहत साधु सम्मेलन के आयोजन का भाव प्रकट किया। उस समय साधु सम्मेलन के आयोजन के लिए पर्याप्त समय नही था, परन्तु कान्फ्रेन्स ने इस दिशा मे पूर्ण निष्ठा व सक्रियता से कार्य किया और पूना सघ से मिलकर वहाँ पर स्वागत समिति का गठन किया। कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष व अन्य पदाधिकारियो ने अनेक स्थानो पर विराजमान सत-सतियो के चरणो मे उपस्थित होकर उनसे साधु सम्मेलन मे पधारने के लिए विनती की। सम्मेलन की पूरी योजना तैयार की और इस कार्य को आगे बढाया। इसके पश्चात पूना की ओर विहार करते हुए सत-सतियो के मार्ग की उचित व्यवस्था करने मे अपना योगदान दिया।

दिनाक ५ से १२ मई १९८७ को अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन श्रमण सघ का मुनि सम्मेलन पूना (महाराष्ट्र) मे समायोजित हुआ जिसमे ३०० साधु-साध्वियो ने भाग लिया। सम्मेलन मे साधु-समाचारी व समाजोत्थान सबधी अनेक नियम उपनियम बनाए गए। अतत तारीख १२ मई को खुला अधिवेशन हुआ जिसमे लगभग एक लाख श्रावक-श्राविकाएँ उपस्थित हुए। महाराष्ट्र के राज्यपाल डॉ शकरदयाल शर्मा, जगदगुरु शकराचार्य श्री स्वरूपानन्द जी, माननीय श्री गाडगिल आदि नेतागण विशेष रूप से पधारे। इस अवसर पर आचार्य सम्राट पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी म ने श्री देवेन्द्र मुनि जी शास्त्री को सघ का उपाचार्य तथा डॉ शिवमुनि जी म को युवाचार्य पद प्रदान करने की घोषणा की।

मुनि सम्मलन मे निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये —

प्रस्ताव १—

राष्ट्रीय एकता-अखण्डता का समर्थन

जीवन विकास की सभी ऊर्ध्वतामूलक प्रवृत्तियाँ धर्म द्वारा सचालित हैं। धर्म तभी फलित और पुष्पित हो सकता है जब राष्ट्रीय स्तर पर सौहार्द्र-शाति की भावना का प्रसार हो। जैन श्रमण सम्मेलन राष्ट्रीय एकता और अखण्डता का पुरजोर समर्थन करता है क्योकि राष्ट्रीय एकता मे विश्व शाति के तत्व निहित है।

श्रमण सघ विश्व मे व्याप्त अशाति और आतक की समस्या का समाधान अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकात मे देखता है।

प्रस्ताव २—

पजाब-समस्या का समाधान-अहिंसात्मक ढग से

भारत के ही एक अग पजाब राज्य मे हिंसात्मक उपद्रव चल रहे है, यह मुनि सम्मेलन इन उपद्रवो से गहरा चिंतित है।

मुनि सम्मेलन का मानना है कि उस प्रदेश मे जो भी समस्या हो, सम्बन्धित पक्ष परस्पर बातचीत द्वारा अहिंसात्मक ढग से उस समस्या का समाधान खोजने का भगीरथ प्रयत्न करे। भारत के ही नागरिको का परस्पर खून बहाना दुर्भाग्यपूर्ण है। उपद्रवो से सत्रस्त प्रजा के प्रति यह मुनि सम्मेलन हार्दिक सवेदना प्रगट करता हुआ शाति की कामना करता है।

प्रस्ताव ३—

सामाजिक रुढियो के विरुद्ध अभियान

समाज मे दहेज, तिलक एव प्रदर्शन बहुत तेजी से बढता जा रहा है, यह मुनि सम्मेलन समाज में बढती इन कुप्रथाओ को घोर निन्दनीय समझता है और अनुयायियो से आग्रह करता है कि बुराइयो कुरुढियो का दृढतापूर्वक निषेध कर समाज को विकृतियो से बचाने मे योगदान दे।

यह सम्मेलन सत-सती वर्ग से भी आग्रह करता है कि यथाशक्य अपने प्रवचनो एव विशेष प्रयासो के द्वारा भी इन कुरुढियो के निराकरण का प्रयत्न करे।

प्रस्ताव ४—

मासाहार और मद्यपान का निषेध

मुनि सम्मेलन ने मासाहार निषेध एव मद्य-निषेध को अपने घोषित कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वीकार किया है अत सभी श्रमण सघीय सत-सतीजी जहाँ भी सम्भव हो और जितना सम्भव हो, इन बुराइयो को मिटाने का पुरजोर प्रयत्न करे।

प्रस्ताव ५—

मासाहार-अण्डाहार के दुष्प्रचार का विरोध

रेडियो टी वी, चित्रो और गद्य लेख आदि के सरकारी उपक्रम के माध्यम से अण्डो का और मासाहार का प्रचार किया जाता है, यह हमारी अहिसामूलक सस्कृति के नितान्त विरुद्ध है। अत यह मुनि सम्मेलन भारत सरकार एव राज्य सरकारो से आग्रह करता है कि यह दुष्प्रचार शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करे।

प्रस्ताव ६—

दुष्प्रवृत्तियो पर अकुश

देश मे मासाहार का विस्तार एव मद्यपान की निरकुश प्रवृति बढते रहने से देश का चरित्र एव इसका अमन खतरे मे पड गया है, यह मुनि सम्मेलन भारत सरकार से और राज्य सरकार से आग्रह करता है कि देश मे सात्विक वातावरण की अभिवृद्धि करने एव नागरिको के चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए इन दुष्प्रवृत्तियो पर अकुश लगाएँ।

प्रस्ताव ७—

कत्लखाने बन्द हो

देश मे सरकारी उपक्रम के रूप मे एव व्यक्ति उपक्रम के रूप मे न केवल पुराने कत्लखाने को विस्तृत किया जा रहा है, अपितु नये-नये कत्लखाने खोले जा रहे है। यह मुनि सम्मेलन सरकार की इस प्रवृत्ति को अनुचित मानता है और भारत सरकार से यह आग्रह करता है कि कत्लखानो की बढत को रोके अपितु खुले हुए कत्लखाने भी एक दिन समाप्त हो जाये, ऐसी नीति निर्धारित करे, जिससे राष्ट्र मे करुणा और सेवापूर्ण सात्विक वातावरण का निर्माण हो।

प्रस्ताव ८—

मुनि सम्मेलन ने गण-व्यवस्था के स्थान पर क्षेत्रीय-व्यवस्था को स्वीकार किया है। क्षेत्र विभाजन निम्नानुसार है।

प्रवर्तको का क्षेत्रीय विभाजन

तामिलनाडू, कर्नाटक, आध्र, बिहार, बगाल, उडीसा, केरल नेपाल, गोआ।

—केन्द्राधीन (आचार्य जी से आज्ञा)।

महाराष्ट्र—श्री कल्याण ऋषिजी म।
उत्तरी भारत-श्री पद्मचन्द्रजी म। (पजाब, हिमाचल, जम्मू-कश्मीर हरियाणा, दिल्ली, यू पी)
जि उदयपुर, भीलवाडा, डूंगरपुर, गुजरात श्री अम्बालालजी म।
जि सवाई माधोपुर, कोटा, बूदी, झालावाड, चित्तोड—श्री मोहन मुनिजी म।
बासवाडा, मध्यप्रदेश—श्री रमेशमुनिजी म।
पचमहाल (गुजरात)—श्री उमेशमुनिजी म 'अणु'
मारवाड, जयपुर, किशनगढ, अजमेर, अलवर, व्यावर, सिरोही एव जालोर, बीकानेर (उत्तर राजस्थान)—श्री रूपचन्दजी म (रजत)

प्रस्ताव ९—

सावत्सरिक एकता का सुझाव

श्रमण सघ मे साम्वत्सरिक ऐक्य का निर्माण हो, इस दृष्टि से अनेक प्रयत्न हुए किन्तु यथोचित सर्वतोगामी समाधान नही हो सका।

यह सम्मेलन सवत्सरी के सबध मे पक्ष-मान्यताओ के दोनो किनारो को छोडकर मध्यम मार्ग को स्वीकार करता है। इस निर्णय के अनुसार जब दो श्रावण होगे, तब भाद्रपद मे सवत्सरी पर्व को मनाया जायेगा, वैसे ही जब दो भाद्रपद होगे, उस समय प्रथम भाद्रपद मे सवत्सरी पर्व मनाया जायेगा।

यह मध्यम मार्ग आचार्य श्री एव युवाचार्य श्री के सयुक्त वर्षावास नासिक मे प्रवर्तित किए गए सावत्सरिक प्रस्ताव के अनुरूप है।

यह प्रस्ताव किसी भी आदेश अध्यादेश से बाधित नही होगा।

आचार्यश्री का विशेष निर्देश

यदि भारत जैन महामण्डल का प्रयत्न सफल होकर समग्र श्वेताम्बर जैन समाज सावत्सरिक ऐक्य पर आ जाए तो श्रमण सघ अलग नही रहेगा। इससे भिन्न स्थिति मे उपर्युक्त प्रस्ताव प्रभावक होगा।

प्रस्ताव १०—

साधु-साध्वी द्वारा वाहन-विहार का विरोध

जो साधु-साध्वीजी वाहन विहार आदि करते है, ऐसे तथाकथित साधु-साध्वी के साथ श्रमण-सघीय कोई सत-सतीजी प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई सबध नही रखेगे। यदि किसी भी तरह का सबध सिद्ध होगा तो वे साधु-साध्वीजी प्रायश्चित के भागीदार समझे जाएँगे।

साथ ही श्रमण-सघानुयायी उपासको को यह सम्मेलन सदेश देता है कि उन तथाकथित वाहन-विहारी साधु-साध्वी को कतई प्रोत्साहन न दे।

प्रस्ताव ११—

पचमी समिति मे विवेक और निर्दोष स्थिति का अनुकरण

पचमी समिति के विषय मे साधु-साध्वीजी स्व-विवेक से अधिकाधिक निर्दोष स्थिति का अनुकरण करे। अशोभन अवज्ञा का रूप भी न हो, इस विषय मे परस्पर निंदा-विकथा भी न हो।

प्रस्ताव १२—

स्थानकों मे श्रमण-श्रमणी के फोटू नहीं लगाने के विषय मे

श्री वर्धमान स्था जैन श्रावक सघ के स्थानको मे किसी श्रमण व श्रमणी का फोटू नही लगाया जाएगा। पूर्व मे जहाँ स्थापित हैं, उन्हे श्रावको को प्रेरणा करके उतरवा दिया जाए। सस्थाओ पर यह नियम लागू नही होगा।

प्रस्ताव १३—

चादर-समारोह के विषय मे

आचार्य, युवाचार्य जैसे सघ शासा के चादर समारोह आयोजित किए जा सकते है। अन्य उपाध्याय, प्रवर्तक आदि किसी भी अधिकारी मुनि के इस प्रकार के आयोजन भविष्य मे आयोजित नही होंगे।

प्रस्ताव १४—

सस्था के नामकरण के विषय मे

भविष्य मे जो भी सस्थाएँ श्रमण सघीय सत-सतीजी म की प्रेरणा से स्थापित होगी। वे श्रमण भगवान महावीर के नाम मे होगी। किसी भी सस्था या सस्था की वस्तु पर प्रेरक के रूप मे श्रमण सघीय सत-सतियो का नाम अकित नही होगा।

प्रस्ताव १५—

महासतियो के विहार मे सुरक्षा के विषय मे

यह श्रमण सम्मेलन श्रावक सघो को सकेत करता है कि महासतियो के विहार मे समुचित सुरक्षा की व्यवस्था रहे। सुरक्षा एव पहुँचाने का कार्य श्रावक सघो का है। यदि श्रावक सघ इस दायित्व का निर्वाह न करे तो उस क्षेत्र मे विचरने के लिए श्रमण सघ के सत-सतियो को सोचना पडेगा।

प्रस्ताव १६—

चातुर्मास क्षमापना आदि पत्रिका-प्रकाशन के विषय मे

चातुर्मास मे सूचनार्थ छपने वाली पत्रिकाएँ, अन्तर्देशीय पत्र, पोस्टर आदि बन्द कर दिये गए है।

इसी तरह क्षमापना पत्रिकाएँ, अन्तर्देशीय पत्र, पोस्टर भी बन्द कर दिए गए है, क्षमापना एव चातुर्मास समाचार हेतु मात्र पोस्टकार्ड उपयोग मे लिए जा सकेगे।

प्रस्ताव १७—

तपोत्सव त्याग-तप द्वारा हो

तपोत्सव मनाने हेतु पत्रिका अन्तर्देशीय पत्र, पोस्टर छपवाने पर रोक लगा दी गई है तपोत्सव त्याग-तप की अभिवृद्धि रूप मनाया जा सकेगा।

प्रस्ताव १८—

स्था जैन श्राविका-मडल की स्थापना द्वारा जिनशासन की सेवा मे योगदान

यह मुनि सम्मेलन समस्त आस्थावान् श्राविकाओ को सदेश देता है कि प्रत्येक क्षेत्र मे श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ की तरह श्री वर्धमान स्थानकवासी श्राविका मडल की स्थापना कर जिनशासन की सेवा मे अपना अमूल्य योगदान दे। महासती मडल स भी सम्मेलन का आग्रह है कि इस दिशा मे श्राविकाओ को दिशा निर्देश दे।

प्रस्ताव १९—

सन्त-सती के स्वर्गवास के बाद कोई भी रस्म के लिए बोली न हो

सत सतीजी के स्वर्गवास के बाद दाह-क्रिया और उनसे सम्बन्धित किसी भी रस्म के लिए कोई बोली नही बोली जायेगी।

प्रस्ताव २०—

बाह्य उपाधियो का परित्याग

शास्त्रीय अधिकारिक उपाधियो के अलावा सभी प्रकार की उपाधियो को यहाँ विराजित मुनिराज एव महासतियो ने पूज्य आचार्य सम्राट के चरणो मे विसर्जित कर दिया है। जो मुनिराज महासतियाजी यहाँ उपस्थित नही हैं, वे भी उनका विसर्जन कर दे, ऐसा मुनि सम्मेलन का आग्रह है। जो सत-सती अपने पदो का विसर्जन न करे, उनके पद निरस्त समझे जाएँ। शैक्षणिक उपाधियाँ निरस्त नही की गई है।

प्रस्ताव २१—

जयन्ती, स्मृति-दिवस आदि बाह्याडम्बरीय आयोजन का परित्याग

श्रमण सघीय सत सतीजी के सान्निध्य मे मनाई जाने वाली जयन्तियाँ स्मृति दिवस आदि के आडम्बरीय आयोजन समाप्त किए जाते हैं। उस अवसर पर त्याग, तप-साधना के आयोजन हो सकेगे, किसी भी तरह की पत्रिका, पोस्टर, फोटो आदि गृहस्थ न छपाएँ। त्याग-तप की सूचना पोस्टकार्ड द्वारा दी जा सकती है।

प्रस्ताव २२—

अभिनन्दन-पत्र का परित्याग

श्रमण सघीय सन्त सतीजी स्था जैन समाज या स्था जैन सस्थाओ द्वारा दिए गए अभिनन्दन-पत्र ग्रहण नही करेगे।

प्रस्ताव २३—

अनर्गल आक्षेपो का परिहार

श्रमण सघ और श्रमणसघीय मुनिराज व महासतियो पर और उनकी रीति-नीतियो पर कई बार विरोधी तत्वो द्वारा अनर्गल आक्षेप किए जाते है। यह सम्मेलन कान्फ्रेन्स को सूचित करता है कि कान्फ्रेन्स एक ऐसी आक्षेप निवारक समिति का गठन करे जो ठीक समय पर आक्षेपो का उचित समाधान कर सके।

प्रस्ताव २४—

अहिंसा-क्षेत्र के विस्तार के लिए साधुवाद

बलि-बन्दी के एव अहिंसा के क्षेत्र मे प्रवर्तक श्री रूपचन्दजी म 'रजत' एव महासती श्री जसकवरजी म तथा अनेक सन्त-साध्वी वृन्द ने श्रेष्ठ कार्य किए हैं। यह सम्मेलन उनके लिए साधुवाद धन्यवाद प्रस्ताव पारित करता है।

प्रस्ताव २५—

दीक्षार्थी की योग्यता के विषय मे

दीक्षा प्रदान करने मे मुमुक्षु (दीक्षार्थी) की योग्यता को प्रधानता दी गई है। अन्तिम निर्णायक के रूप मे पूज्य आचार्य श्रीजी होगे। मुमुक्षु पाठ्यक्रम के अनुसार अध्ययन होने पर ही दीक्षा योग्यता मानी जाएगी।

प्रस्ताव २६—

जैन विश्वविद्यालय की स्थापना के विषय मे

यह सम्मेलन भगवान महावीर क अहिंसा, अनेकात आदि सिद्धातो तथा जैन विद्या के विश्वव्यापी प्रसार-प्रचार हेतु एक जैन विश्वविद्यालय की आवश्यकता अनुभव करता है और तत्सम्बन्धित शैक्षणिक दृष्टिकोण प्राप्ति हेतु मूर्धन्य मनीषियो एव प्रवर्तक मुनिश्री रूपचन्दजी म ग्जत मे कान्फ्रेन्स या तत्सबधित समिति दिशा-निर्देश प्राप्त करे।

प्रस्ताव २७—

बेबुनियाद आक्षेपात्मक लेखो का अस्वीकार और जिनशासन की गौरव-प्रवृत्तियो का समर्थन

कतिपय पत्र-पत्रिकाओ ने जैन समाज की प्रवृत्तियो, साधुचर्याओ, भगवती दीक्षा पद्धति आदि पर घृणात्मक आक्षेप किए हैं और किए जा रहे है। ऐसे निदनीय बेबुनियाद आक्षेपो, निदा लेखो को यह श्रमण सम्मेलन अस्वीकार करता है और पवित्र जिन शासन की गौरवमय प्रवृत्तियो का दृढता के साथ समर्थन करता है।

प्रस्ताव २८—

पाठ्य-पुस्तको मे से घृणात्मक लेखो को हटाने के विषय मे

अनेक पाठ्य-पुस्तको म जैन धर्म को नास्तिक दर्शन के रूप म निरूपित किया है, आज नास्तिक शब्द दार्शनिक घृणा का रूप ले चुका है, अत यह सम्मेलन शिक्षा विभाग म आग्रह करता है कि पाठ्य-पुस्तको म ऐसे उल्लेख हटा दिए जाये।

प्रस्ताव २९—

धर्म-स्थानको का उपयोग धार्मिक क्रियाओ के लिए ही हो

यह सम्मेलन श्रावक सघो का यह सूचन देता है कि जो धर्म-ध्यानार्थ स्थानक आदि भवन है, उनका धर्म ध्यान के रूप म ही उपयोग लिया जाय।

प्रस्ताव ३०—

नवकार-मन्त्र के जाप की प्रेरणा

जैनत्व के सस्कारो के स्थायित्व के लिए प्रत्येक साधु साध्वीजी प्रत्येक स्थानकवासी जैन को प्रतिदिन स्थानक मे जाकर कम स कम पॉच नवकार मन्त्र का ध्यान करने की प्रेरणा अवश्य देवे।

प्रस्ताव ३१—

'नमो जिणाण, जियभयाण'—प्रतीक वाक्य

यह सम्मेलन सर्व सहमति स 'नमो जिणाण जियभयाण को अपने प्रतीक वाक्य के रूप मे स्वीकार करता है।

प्रस्ताव ३२—

वीरवाल प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन

पण्डित श्री समीरमुनिजी द्वारा प्रवर्तित वीरवाल प्रवृत्ति को श्रमण सघ मान्यता प्रदान करता है। सभी सन्त साध्वीजी से सम्मेलन आग्रह करता है कि इस प्रवृत्ति को अपनी मर्यादा के अनुसार बल दे।

प्रस्ताव ३३—

'जैन' शब्द का प्रयोग आवश्यक

जैन समाज म प्रत्येक व्यक्ति अपने नाम के साथ 'जैन' शब्द लगाएँ। यदि गोत्र भी लगाए तो भी जैन अवश्य लगाये।

प्रस्ताव ३४—

ध्यान-प्रणाली के प्रचलन के विषय मे समिति की नियुक्ति

समाज मे जिन शासन सम्मत ध्यान प्रणाली को समुचित विकसित करने हेतु निम्न मुनिराजो की एक समिति निर्धारित की जाती है— (१) युवाचार्य श्री शिवमुनिजी म, (२) श्री विजयमुनिजी (पजाबी), (३) श्री सुरेशमुनिजी (मालवी) (४) श्री प्रवीण ऋषिजी, (५) श्री भुवनेश मुनिजी (६) श्री राजेन्द्रमुनिजी 'रत्नेश'। साध्वी- (१) डा श्री प्रियदर्शनाजी, (२) श्री उमरावकुवरजी 'अर्चना', (४) श्री मजुश्रीजी, (५) श्री प्रभाकुवरजी।

ये मुनि एव साध्वीजी जिनशासन -सम्मत ध्यान प्रणालिका को सुनिश्चित कर आचार्य श्री की सम्मति से समाज मे प्रचारित-प्रसारित करे।

प्रस्ताव ३५—

आगम-पाठों की वृद्धि के लिए अन्वेषण-समिति

आगम के विवादास्पद पाठो के शुद्ध अर्थ ढूँढने हेतु निम्न मुनिराजो की अन्वेषण-समिति नियुक्त की जाती है— (१) उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी म, (२) युवाचार्य डॉ श्री शिवमुनिजी म, (३) प्रवर्तक श्री उमेशमुनिजी म, (४) श्री प्रवीणऋषिजी म।

साध्वीजी की भी इस हेतु एक अन्वेषण-समिति नियुक्त की जाती है—(१) साध्वी डॉ श्री मुक्ति प्रभाजी, (२) साध्वी श्री मजुश्रीजी, (३) साध्वी डॉ श्री प्रियदर्शनाजी, (४) साध्वी श्री प्रभाकुवरजी (खादी वाले) (५) साध्वी डा श्री धर्मशीलाजी (६) साध्वी श्री सन्मतिजी, (७) साध्वी श्री शान्तिसुधा।

प्रस्ताव ३६—

चातुर्मास सूची मे एकरूपता के विषय मे

यह श्रमण सम्मेलन सर्वानुमति से चातुर्मास सूची के लिए निम्न प्रस्ताव क्रम रूप म पारित करता है। एकरूपता की दृष्टि से—

चातुर्मास सूची मे सर्वप्रथम आचार्यश्रीजी का चातुर्मास, तदनन्तर प्रदेशो के क्रमश नाम आए वहाँ लिखा जाए अमुक प्रदश मे चातुर्मास। (उस प्रदश के पदाधिकारी का नाम पहले आएगा तदनन्तर अन्य चातुर्मास) सर्वप्रथम म सभी पदाधिकारियो के क्रमश चातुर्मास स्थल एव नाम दिए जाये।

प्रस्ताव ३७—

त्रिकाल सवर-साधना

प्रत्येक जैन के द्वारा करणीय एक सक्षिप्त किन्तु अति उपयोगी 'त्रिकाल सवर-साधना' को यह सम्मेलन जैन समाज के सामने प्रस्तुत करता है।

यह स्वल्प समय मे साध्य किन्तु अत्यन्त उपयोगी धर्मक्रिया है, यह प्रत्येक जैन के लिए अवश्य करणीय है।

यथासम्भव त्रिकाल सवर मे से एक सवर-क्रिया धर्म स्थानक मे साधी जाए।

सवर-क्रिया का प्रारूप

समय—प्रात , मध्याह्न, साय।
त्याज्य—सचित्त स्पर्श।
साधन—मुख पर मुख-वस्त्रिका या उत्तरासन।
स्थान—निर्वद्य स्थल।
दिशा—पूर्व या उत्तर दिशि सन्मुख।

विधि (प्रक्रिया)

१—तीन बार तिक्खुतो के पाठ से गुरु वन्दन।
२—सुखासन मे आसीन होकर एक णमुक्कार मन्त्र का उच्चारण।
३—सवर साधना पाठ बोलकर सवर प्रतिज्ञा ली जाए।

सवर प्रतिज्ञा पाठ

'करोमि भते सवर पचावाजुत्त जोग सावज्ज जोग पच्चक्खामि णमुक्कार पज्जत एगविहेण ण करेमि कायसा तस्स भते पडिक्कामि निन्दामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि।'

४—चार लोगस्स का ध्यान।
५—'नमो अरिहताण' बोल कर ध्यान पूर्ति करना।
६—एक लोगस्स प्रकट बोलना।
७—एक णमुक्कार मत्र प्रकट बोलना।

।क्रिया सम्पन्न।

प्रस्ताव ३८—

कैसेटो का प्रयोग न हो

श्रमण सघीय मुनिराज एव महासतीजी के सान्निध्य मे जो भी आयोजन होगे, उनका वी डी ओ कैसेट नही लिया जा सकेगा। सरकारी समाचार एजेसियाँ समाचार-सकलन की दृष्टि से ले तो उसकी बात अलग।

प्रस्ताव ३९—

'निर्ग्रन्थ प्रवचन परिशिष्ट युक्त'–एक प्रामाणिक प्रतिनिधि-ग्रन्थ, तत्वार्थ सूत्र, समन्वय सूत्र मुख्य आधारभूत ग्रन्थ

जैन धर्म दर्शन के परिचयार्थ एक प्रामाणिक प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप मे 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' परिशिष्ट युक्त स्वीकार किया जाता है।

निर्ग्रन्थ प्रवचन के साथ परिशिष्ट नियोजित करने का कार्य ''उपाध्याय मडल'' करेगा।

परिशिष्ट नियोजन हेतु जैनागम तत्वार्थ समन्वय सूत्र मुख्य आधारभूत ग्रन्थ रहेगा।

प्रस्ताव ४०—

ति.र.स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड का परीक्षाक्रम—विद्यार्थी और दीक्षार्थी विरक्त आत्माओ के लिए मान्यता प्राप्त

यह श्रमण सम्मेलन विद्यार्थी, सन्त-सतीजी एव विरक्त आत्माओ के अध्ययन क्रम हेतु ति र स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, अहमदनगर को परीक्षा बोर्ड के रूप मे मान्यता प्रदान करता है।

सभी ज्ञानार्थी सत-सतीजी एव मुमुक्षुओ से सम्मेलन का आग्रह एव निर्देशन है कि वे उक्त बोर्ड से परीक्षाएँ देकर अपने अध्ययन की श्रीवृद्धि करे।

सम्मेलन बोर्ड अधिकारियो से भी यह सकेत करता है कि बोर्ड के पाठ्यक्रम को सुव्यवस्थित करने का यत्न करे, साथ ही अन्यान्य औचित्य का भी विधिवत निर्माण करे।

प्रस्ताव ४१—

पर्वादिक के निर्णय के लिए 'निर्णय सागर पचाग' की मान्यता के विषय मे

श्रमण सघ ने अपने पर्वादिक का निर्णय करने की तिथि और समय का निर्धारण करने हेतु नीमच से प्रकाशित होने वाले निर्णय सागर पचाग को मान्य किया है। साथ ही प्रवर्तक श्री रूपचदजी म के सयोजकतत्व मे तिथि निर्णायक समिति का सम्मेलन ने पुनर्गठन कर लिया है, समिति के सदस्य निम्नानुसार है

उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म सा, प्रवर्तक श्री अम्बालालजी म सा, प्रवर्तक श्री रमेशमुनिजी म सा, श्रद्धेय श्री रूपेन्द्रमुनिजी म सा, उपप्रवर्तक श्री चदनमुनिजी म सा, सलाहकार श्री कुन्दन ऋषिजी म सा।

प्रस्ताव ४२—

दैनिक प्रार्थना का क्रम

श्रमण सघ सम्मेलन ने दैनिक प्रार्थना के लिए एक व्यवस्थित क्रम निश्चित किया है।
चतुर्विध सघ निम्नोक्त क्रम से प्रार्थना लाभ उठाएँ—

१—णमुक्कार महामत्र
२—जो भगवती त्रिशला
३—तुभ्य नमस्त्रिभुवनार्ति
४—शिवमस्तु
५—श्री आदि जिनन्द
६—अरिहत जप जप
७—ओम गुरु, ओम गुरु
८—श्रद्धा सुमनाजली
९—गुरुदेव तुम्हे नमस्कार
१०—मगल पाठ

नोट—उपर्युक्त क्रमानुसार प्रार्थना पाठ कुछ ही दिनो मे प्रचारित कर दिये जायेगे।

महावीर-वदना

लय—यदि भला किसी का । उठ भोर भई टुक जाग

श्रद्धा सुमनाञ्जली अर्पित हो, महावीर प्रभु के चरणो मे।
तन मन जीवन आनन्दित हो महावीर प्रभु के चरणो मे।।
हो वीतराग का भाव स्पर्श, परिवर्तित हो जीवन सारा।
कथनी करनी का साम्य योग रच पाए जीवन की धारा।
मोह मेरु दड अब खण्डित हो महावीर प्रभु के चरणो मे।।
जीवन की वीणा पर करुणा की मधुर मधुर झकार चले।
मानव मानव मे भेद नही, पग पग समता के कुसुम खिले।
जीवन सारा सत्यान्वित हो महावीर प्रभु के चरणो मे।।
अपने पर अपना अनुशासन यह सयम की सच्ची भाषा।
यह राष्ट्र विश्व मगलमय हो, सेवा की सुन्दर परिभाषा।
सयम सेवा प्रवर्तित हो, महावीर प्रभु के चरणो मे।।
जिन शासन यह मगलमय है, यह श्रमण सघ मगलमय है।
मगलमय आगम सूत्र अर्थ जिन पथ साधन मगलमय है।
अमगल सब कुछ वर्जित हो महावीर प्रभु के चरणो मे।।
आचार्य प्रवर, उपाचार्य प्रवर उवज्झाय प्रवर्तक अनुशास्ता।
शासन शास्ता के प्रति रहे दृढ प्रीतिपूर्ण सच्ची आस्था।
'मुनि कुमुद' सघ सवर्धित हो महावीर प्रभु के चरणो मे।।

ससूचन—जहाँ 'उपाचार्य प्रवर' है वहाँ दुबारा बोलते समय 'युवाचार्य प्रवर' बोला जाए। इस तरह दोनो महापुरुषो के प्रति श्रद्धार्पण हो जाएगा।

प्रस्ताव ४३—

धर्म-जागरिका

जिन आगमो मे सद् गृहस्थो के योग्य करणीय विधियो मे धर्म-जागरिका कुटुम्ब-जागरिका जैसी उदात्त विधियो के उल्लेख आये है। तत्कालीन सद् गृहस्थ उन विधियो का अनुसरण नियमित रूप से किया करते थे फलत उनका गार्हस्थ जीवन धर्म एव नैतिकता के अनुरूप प्रचलित रहता था।

यह श्रमण सम्मेलन यह अनुभव करता है कि ये विधियाँ समाज मे पुन स्थापित हो। इस हेतु धर्म-जागरिका एव कुटम्ब जागरिका का एक सक्षिप्त प्रारूप यह सम्मेलन स्वीकार करता है और समाज को प्रेरित करता है कि वह इन विधियो का अनुगमन करे। साथ ही श्रमणसघीय सत-सतीजी म इन विधियो को प्रसारित करने मे अपना योगदान दे जिससे यह कार्यक्रम श्रमण सघ के रचनात्मक अभियान के रूप मे सिद्ध हो सके।

कुटुम्ब-जागरिका

मनुष्य से हमारी जो अपेक्षाएँ है उन सब अपेक्षाओ की पूर्ति के लिए हमे प्रयास, प्रयोग और मेहनत मनुष्य पर न करके मनुष्य जहाँ से जीवनशक्ति प्राप्त करता है वहाँ करनी चाहिए। समाज, राज्य धर्म, सघ आदि से पहले सबध परिवार से आता

है। उसके जीवन का ७५% (प्रतिशत) निर्माण परिवार से होता है। परिवार से जाने-अनजाने वह सस्कारो का खाद्य प्राप्त करता है, जिसके आधार पर उसका जीवन शक्तिशाली बनता है।

परिवार मे यदि आत्मीयता एव शाति हो तो व्यक्ति के जीवन मे भी शाति सहज सभव है। आत्मीयता सहज ही बिना आयास हो सकती है। परिवार मे उसका अभाव उसके जीवन को बर्बाद करके रख देता है। अत आज की मूलभूत आवश्यकता है, कुटुम्ब-सस्था को जीवत रखने की। जिस उद्देश्य को लेकर भ ऋषभ देव ने कुटुम्ब सस्था का प्रवर्तन किया, उस उद्देश्य की पूर्ति उससे हो ऐसे प्रयास के हित ही भ ऋषभदेव ने कुटुम्ब सस्था का निर्माण किया था। व्यक्ति सुशील, सस्कारी एव निर्माता बनने का सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' को जीवन मे उसका साक्षात्कार कराया है। फिर भी उपरोक्त उद्देश्यो की पूर्ति कुटुम्ब सस्था मे नही हो रही है। फलस्वरूप दहेज, आडम्बर तथा भ्रष्टाचार जैसी मानव को दानव बनाने वाली शक्तियाँ जीवन की पवित्रता को निगल कर समाप्त कर रही हैं। कुटम्ब-सस्था के पुनर्जीवन से पवित्र जीवन जीने की व्यवस्था स्थापित की जा सकती है।

इस हेतु 'कुटुम्ब-सस्था' को सस्कारित करने हेतु 'कुटुम्ब-जागरिका' कार्यक्रम प्रस्तुत है—

सदस्यो के लिए नियम—

(१) कुटुम्ब परिवार के सभी सदस्य प्रतिदिन मिलकर कुटुम्ब-जागरिका का गान करे।
(२) कुटुम्ब जागरिका का गान करने के पूर्व छोटे सदस्य बडो को प्रणाम करे।
(३) सप्ताह मे एक दिन परिवार सम्बन्धी विषयो की चर्चा के लिए गोष्ठी का आयोजन करे।
(४) हर मास कार्यालय मे प्रसारित कुटुम्ब जागरिका पत्रक का सामूहिक वाचन करे।
(५) पारिवारिक सदस्यो का विश्वास सम्पादन कर परिवार मे ज्यादा समय तक अबोला न रखे।

प्रस्ताव ४४—

जन-कल्याण योजना

लोग-जीवन मे व्याप्त विकृतियो का विष न केवल सामान्य जनजीवन को दूषित करता है अपितु सामाजिक, राष्ट्रीय सुव्यवस्थाओ को भी भ्रष्ट और छिन्न-भिन्न करके रख देता है।

चरित्र-मूल्यो का गिरना किसी भी राष्ट्र के लिए सबसे बडा पतन है और दुख का विषय है कि भारत मे यह पतन निरन्तर घटित होता चला जा रहा है।

यह मुनि सम्मेलन राष्ट्र मे गिरते चारित्रिक मूल्यो की सुरक्षा के लिए गहरा चिंतित है।

विस्तृत चिनन-मनन के बाद यह मुनि-सम्मेलन राष्ट्र के समक्ष जन-कल्याण योजना को चारित्रिक मूल्यो की पुन स्थापना के आधार-तत्व के रूप मे प्रस्तुत करता है।

सम्प्रदाय, वर्ग, क्षेत्र आदि सभी परिधियो से परे 'मानवता' को परिभाषित करने वाली यह योजना मानव-मात्र के लिए चिंतनीय एव अनुकरणीय है। ऐसा मुनि सम्मेलन का अभिमत है।

यह मुनि सम्मेलन श्रमण सघीय समस्त सन्त-सती समुदाय मे आग्रह करता है कि वे राष्ट्र और विश्व मे नैतिक मूल्यो की पुन स्थापना के लक्ष्य को अपने सामने रखकर उस दिशा मे निरन्तर प्रयत्न करे।

यह जन-कल्याण योजना वह आधारभूत तत्व है जो विश्व जन-मगल का लक्ष्य लेकर चलने वाले परमोपकारी सज्जनो को अपनी ध्येय प्राप्ति मे सहयोग स्वरूप सिद्ध हो सकेगा।

प्रस्तुत योजना मे आठ स्वर्ण-सूत्र तथा ३१ नियम है।

स्वर्ण-सूत्र

१ करुणा-सूत्र

(१) किसी निपराध-पशु-पक्षी या मानव को पीडा नही पहुँचाना।
(२) मानवो व पशुओ पर सीमा से अधिक वजन नही लादना।
(३) किसी के भोजन मे व्यवधान नही डालना।

अपवाद—स्वास्थ्य की दृष्टि से किसी के अपथ्य भोजन को रोकना बाधित नही।

(४) शिकार, आखेट नही खेलना।
(५) जो पशु-पक्षी या मानव किसी तरह अपराधी भी हो तो उन्हे अपराध से अधिक दड नही देना। अग-भग या चर्म-भग हो ऐसा प्रहार नही करना।
(६) पीडित प्राणी की सेवा करने मे यथासभव औषध, भोजन, पानी आदि उपलब्ध करने मे अपने जीवन की कृतार्थता समझना। कम-से-कम एक माह मे एक दिन पीडितो की सेवा मे अर्पण करना या किसी हास्पिटल मे जाकर अपने खर्च मे सेवा देना।

२ सत्य-सूत्र

(१) किसी को नुकसान न पहुँचे, ऐसे झूठ से अपने को बचाना।
(२) किसी पर झूठा कलक लगाने से बचना।
(३) किसी की गुप्त और रहस्यमयी बात को प्रकट नही करना
(४) झूठी साक्षी नही देना, झूठे लेख नही लिखना, नकली बहियाँ नही बनाना।

३ अस्तेय-सूत्र

(१) किसी भी तरह की चोरी नही करना।
(२) जानबूझकर चोरी का माल नही लेना और चोरो की कोई मदद नही करना।

नोट—सरकारी टेक्स चुराना भी चोरी है।

(३) खोटे नाप-तोल नही रखना।
(४) वस्तु मे तुच्छ वस्तु की मिलावट नही करना।

४ ब्रह्मचर्य-सूत्र

(१) अपनी विवाहिता स्त्री से भिन्न अन्य स्त्रियो के प्रति माता और बहन जैसी उदात्त भावना का सर्जन करना।

५ अपरिग्रह-सूत्र

(१) अनैतिक व्यवसाय कर धन-सग्रह नही करना।
(२) अपनी आय के शुद्ध लाभाश मे से कुछ राशि राष्ट्रसेवा या पीडित मानव की सेवा मे व्यय करना।

६ सत्वशुद्धि सूत्र

(१) मद्य-मास का सेवन नही करना।
(२) भाग, गाजा, चरस, तमाल (तम्बाकू) का सेवन नही करना।
(३) जुआ, सट्टा नही खेलना

७ राष्ट्रहित सूत्र

(१) रिश्वत लेना व देना इन दोनो पापो से बचना।
(२) चुनावो मे अनैतिक हथकण्डे नही अपनाना।
(३) विभिन्न धर्म और सम्प्रदायो तथा राजनैतिक विचारधाराओ की विभिन्न पार्टियो के प्रति सहिष्णु रहना। सह-अस्तित्व के सिद्धात को व्यवहार मे लाना तथा साम्प्रदायिकता को बढावा नही देना। अन्य राष्ट्र के प्रति सहिष्णु रहना।
(४) किसी भी तरह की तोड-फोड, आगजनी, लूटपाट मे भाग नही लेना।
(५) अपनी माँग मनवाने के लिए हिंसा के मार्ग पर नही चलना।
(६) शिक्षाण,स्वास्थ्य, रक्षा, न्यायादि राष्ट्रीय विभागो मे नियमो का पालन करना तथा राष्ट्रीय अनुशासन के अतर्गत जीना।
(७) स्व-विवाह या अपनी सन्तान के विवाह के प्रसग पर तिलक, दहेज जैसी कुप्रथाओ को समाप्त करना। विवाहोपरात कन्या को उसके माता-पिता तथा स्वजनो द्वारा दिए गए उपहारो का किसी भी प्रकार का प्रदर्शन नही करना।
(८) प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए मारपीट, हिंसा और युद्ध के स्थान पर बातचीत का मार्ग स्वीकार करना।
(९) अस्पृश्यता और जातिवाद के स्थान पर मानव की गरिमा को महत्व देना।

८ आत्महित-सूत्र

(१) प्रतिदिन कम-से-कम १० मिनट किसी सत्साहित्य का 'स्वाध्याय' करना अथवा कोई प्रार्थना, भजन, स्तवन करना।
(२) प्रतिदिन कम-से-कम १० मिनट एकात मे ध्यान करना और अपने हृदय को उत्तम विचारो से परिपूर्ण बना देना तथा सम्पूर्ण विश्व के लिए मगलकामना करना।

आठ सूत्र तथा ३१ नियमो से परिपूर्ण यह 'जन-कल्याण योजना' विश्व के मानव-मात्र को समर्पित है।

विश्व के प्रत्येक प्रबुद्ध नागरिक को प्रस्तुत योजना का सुसेवी बनकर इसका घर-घर मे प्रचार करना चाहिए।

प्रस्तुत योजना का आराधक (स्वीकार करने वाला) **'गुणसेवी'** कहलायेगा। प्रत्येक गुणसेवी के लिए सभी नियमो का पालन अनिवार्य होगा। किन्तु कोई व्यक्ति इनमे से कुछ नियमो को छोडकर कुछ नियमो को स्वीकार करे तो वह कर सकेगा, किन्तु वह गुणसेवी नही कहला कर **'गुणरागी'** कहलायेगा।

कान्फ्रेस की विशिष्ट प्रवृतियाँ व उपलब्धियाँ

श्री स्थानकवासी जैन बोर्डिंग, बम्बई

व्यावहारिक शिक्षण मे विद्यार्थियो की सुविधा के लिए बबई मे एक श्री स्थानकवासी जैन बोर्डिंग' आरभ किया गया था परन्तु कुछ वर्षों के पश्चात् फड के अभाव मे इसे बद करना पडा

श्री जैन ट्रेनिंग कॉलिज, रतलाम

इस कॉलिज की स्थापना २९-८-१९०८ को की गई थी। यह सस्था ८ वर्ष तक चलती रही और इससे बहुत से सुयोग्य विद्वान तैयार होकर निकले जिन्होंने जैन धर्म और समाज की सुदर सेवा की दुर्भाग्य से सन् १९१८ मे यह सस्था बद हो गई।

श्री सुखदेव सहाय जैन प्रिंटिंग प्रेस

स्व राजा बहादुर ला सुखदेव सहाय जी ने सन् १९१३ मे पाँच हजार रुपए कान्फ्रेस को प्रेस के लिए प्रदान किए थे जिससे सन १९१४ मे एक प्रेस खरीदा गया था। यह प्रेस १९२५ तक अजमेर मे चलता रहा और कान्फ्रेस का जैन प्रकाश भी यही से प्रकाशित होता रहा। सन् १९२५ के बाद यह प्रेस इदौर स्थानातरित कर दिया गया जहाँ श्रीयुत सरदारमल जी भडारी उस की देखरेख करते रहे। अर्ध मागधी भाषा के कोष के पहले और दूसरे भाग इसी प्रेस मे छपकर तैयार हुए थे। जब कान्फ्रेस का कार्यालय बबई चला गया तो प्रेस को बबई भेजना व्ययशील होने के कारण सन् १९३० मे इसे इदौर मे ही बेच देने का निश्चय किया गया। सन् १९३६ मे एक और प्रेस भी खरीदा गया और १९४१ तक चलता रहा परन्तु आगे चलकर प्रेस मे घाटा रहने लगा और इसे बेच दिया गया।

कान्फ्रेस का सविधान

कान्फ्रेस की स्थापना तो सन् १९०६ मे हुई थी परन्तु कान्फ्रेस का विधान सर्वप्रथम सन् १९१७ मे मैनेजिग कमेटी की अहमदाबाद बैठक मे बनाया गया और उसे सन् १९२५ मे मलकापुर अधिवेशन मे सशोधित किया गया। प्रारभ मे कान्फ्रेस की मैनेजिग कमेटी ही सर्वोपरि सत्ता थी। इस विधान के पश्चात् जनरल कमेटी को सर्वोच्च सत्ता दी गई। सन् १९४१ मे कान्फ्रेस का दसवाँ अधिवेशन घाटकोपर (बबई) मे हुआ। उसमे श्री चिमनलाल चकूभाई शाह ने कान्फ्रेस का नया विधान बनाकर पेश किया जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को कान्फ्रेस का सदस्य बनने का अधिकार दिया गया था। यद्यपि उस समय जबकि यह विधान घाटकोपर अधिवेशन मे पेश किया गया था सभा मे काफी उहापोह हुआ था परन्तु अत मे यह लोकशाही विधान स्वीकृत कर लिया गया।

कान्फ्रेस का यह नया विधान स्वीकृत हो जाने पर भी समाज मे वह सफलता के साथ चल न सका। अन्तत एक लोकशाही विधान बनाने के लिए, जो कि समाज मे सफलता के साथ चल सके, एक समिति बनाई गई, जिसने सन् १९५० मे मद्रास अधिवेशन मे एक लोकशाही विधान प्रस्तुत किया जो सर्वानुमति से स्वीकार किया गया। इस अधिवेशन मे लोकशाही

विधान के लिए अनुकूल वातावरण निर्माण हो चुका था और चारो तरफ सघ ऐक्य की भावना प्रसारित हो चुकी थी अत इस नए विधान का सभी ने स्वागत किया। सन् १९५२ मे कान्फ्रेंस की जनरल कमेटी की जोधपुर बैठक में इस विधान में कुछ सशोधन किए गए।

२५ नवबर सन् १९७३ को दिल्ली मे साधारण सभा की बैठक मे फिर विधान सशोधन के लिए एक उपसमिति की नियुक्ति की गई जिसके सयोजक श्री सौभाग्यमलजी जैन थे, उपसमिति द्वारा तैयार किए गए और जनरल कमेटी द्वारा पारित सशोधन विधान को रजिस्टार ऑफ सोसाइटीज द्वारा पजीकृत करवाया गया। यही विधान कुछ सशोधनो के साथ १९८५ तक अमल मे आता रहा। सन् १९७८ मे एक बार फिर विधान का सशोधन हाथ मे लिया गया और श्री कनकमल मुणोत द्वारा तैयार किया गया प्रारूप ब्यावर की कार्यकारिणी समिति की बैठक (दिनाक २९-३० अप्रैल १९७८) मे स्वीकृत किया गया तथा जालना की साधारण सभा की बैठक (५-८-७८) मे पारित और जोधपुर की साधारण सभा की बैठक (२६-३-८०) मे सपुष्टित किया गया। परन्तु अभी भी कुछ और सशोधन आवश्यक जान पडे और उपरोक्त सशोधित विधान को मद्रास की ४ जनवरी, १९८१ की साधरण सभा की बैठक मे रद्द कर दिया गया।

कार्यकारिणी समिति की बैठक मे जो जैन भवन, नई दिल्ली मे ३-१०-८३ को हुई सविधान का सशोधित प्रारूप प्रस्तुत करने के लिए फिर एक उपसमिति की नियुक्ति की गई। इस कमेटी द्वारा तैयार किया हुआ सशोधित विधान साधारण सभा दिनाक ९/१०-५-८५ की बैठक मे विधिवत् पारित किया गया और यही विधान रजिस्टार ऑफ सोसाइटीज द्वारा पजीकृत करा लिया गया। यह विधान आगे दिया गया है।

श्री जैन ट्रेनिंग कॉलेज, बीकानेर

सन् १९२५ मे मल्कापुर अधिवेशन के समय जो कि कान्फ्रेन्स का छठा अधिवेशन था पुन जैन ट्रेनिग कॉलेज स्थापित करने का प्रस्ताव पास किया गया और कुछ फड भी एकत्रित किया गया। कान्फ्रेन्स की जनरल कमेटी ने जो कि ता ३ ४, ५ अप्रैल १९२६ को बबई मे हुई थी ट्रेनिग कालेज को तीन वर्ष के लिए बीकानेर मे चलाने का निर्णय कर उसकी सारी व्यवस्था का भार दानवीर सेठ भैरोदानजी सेठिया को सौप देने का निर्णय लिया। तदनुसार ता १९-८-१९२६ को बीकानेर मे जैन ट्रेनिग कालेज का उद्घाटन हुआ। यह उद्घाटन समारोह बीकानेर महाराजा श्री भैरोसिहजी के सी एस आई द्वारा सानद सपन्न हुआ। कॉलेज मे २० छात्र प्रविष्ट हुए, जिनमे से १२ गुजरात-काठियावाड के थे और ८ मेवाड-मालवा के।

सुपरिन्टेन्डेन्ट के रूप मे श्री धीरजभाई के तुरखिया की नियुक्ति की गई। कॉलिज की कमेटी इस प्रकार बनाई गई थी —

जौहरी सूरजमल लल्लूभाई-बबई, सेठ वीरचद मेघजी भाई थोभण-बबई, सेठ वेलजीभाई लखमशी नप्पु बबई, सेठ भैरोदानजी सेठिया-बीकानेर, सेठ वर्धमानजी पितलिया-रतलाम सेठ कनीरामजी बाठिया-भीनासर महता बुधसिहजी बद-आबू, सेठ मोतीलालजी मूथा-सतारा सेठ सरदारमलजी भडारी-इदौर सेठ आनदराजजी सुराना-जोधपुर, सेठ दुर्लभजी भाई त्रिभुवन जौहरी-जयपुर।

यह सस्था सन् १९२८ के मई मास तक बीकानेर मे रही। बाद मे कालिज कमेटी के सदस्यो के निर्णय मे यह जयपुर आई और उसका सचालन धर्मवीर श्री दुर्लभजी भाई जौहरी को सौपा। जुलाई सन् १९२८ मे विद्यार्थी जयपुर आए और कालिज का कार्य आरभ हुआ। ता १५ फरवरी सन् १९३१ तक कालिज जयपुर रहा। बाद मे अर्थाभाव की वजह से ब्यावर गुरुकुल के साथ ही मिला दिया गया। इसकी दो टर्म्स मे अच्छे २ युवक कार्यकर्ता तैयार हुए।

ट्रेनिंग कॉलिज मे विद्यार्थियो को न्यायतीर्थ तक अध्ययन करने की तथा सस्कृत, प्राकृत, अग्रेजी आदि भाषाओ की पूरी-पूरी जानकारी करने की सुव्यवस्था की गई थी। ट्रेनिंग कॉलिज को ब्यावर-गुरुकुल के साथ मिलाने से पूर्व ही ट्रेनिंग कॉलेज के छात्र अपना-अपना पाठ्यक्रम समाप्त कर चुके थे। इसके बाद जो छात्र आगे अध्ययन करना चाहते थे, उन्हे मासिक छात्रवृत्ति दी जाती थी। लेकिन ट्रेनिंग कॉलिज के रूप मे जो स्वतत्र सस्था जैन समाज मे बडे आदर के साथ चल रही थी, वह १५ फरवरी सन् १९३१ को बद कर दी गई। समाज के उत्थान मे इस कॉलेज का प्रमुख भाग रहा है क्योकि इसी से तैयार होकर कार्यकर्ता निकले है जो समाज मे आज भी अपनी सेवा दे रहे हैं। प हर्षचदजी दोशी, प खुशालचदजी, प प्रेमचदजी लोढा, प दलसुखभाई मालवणिया ,प शातिलाल व शेठ आदि इसी ट्रेनिंग कॉलेज का फल है। कॉलेज की उस समय समाज मे बहुत प्रतिष्ठा थी। प बेचरदासजी, प मुनिश्री विद्या विजयजी आदि विद्वानो ने कॉलेज का निरीक्षण कर प्रसन्नता प्रकट की थी। छात्रो को केवल शास्त्रीय और व्यावहारिक ज्ञान ही नही, किंतु भ्रमण द्वारा भी उन्हे विशेष ज्ञान कराया जाता था।

दुर्भाग्य से यदि यह सस्था बद न हुई होती तो आज समाज मे कार्यकर्ताओ की कमी न होती। सस्थाएँ तो उसके बाद कई खुली और बद हुई परतु इस जैसी सस्था का प्रादुर्भाव आज तक न हुआ। आज ऐसी सस्था की नितात आवश्यकता है।

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन विद्यालय, पूना

सन् १९२७ मे कान्फ्रेन्स का सातवाँ अधिवेशन बबई मे हुआ था। उस समय इस विद्यालय की शुरुआत हुई। शुद्ध जलवायु और उच्च शिक्षा की सुव्यवस्था होने से पूना स्थल इसके लिए पसद किया गया।

सन् १९४० तक यह विद्यालय पूना मे किराए के मकान मे चलता रहा। सन् १९४१ मे कान्फ्रेन्स के घाटकोपर अधिवेशन मे पूना विद्यालय के लिए अपना मकान बनाने का निर्णय लिया गया और इसके लिए ५० हजार रुपये का फड भी बना दिया गया, परतु विश्वयुद्ध के कारण सन् १९४६ मे ही मकान बनवाने का कार्य आरभ हो सका। श्री टी जी शाह इस कार्य के लिए बबई से पूना जाकर रहे परन्तु महँगाई के कारण ऋण लेना पडा और विद्यालय का नया मकान सन् १९४७ मे जाकर एक मजिल का ही बन पाया और उसके लिए ८५०००/- रुपये का कर्जा लेना पडा। इतनी रकम एकत्रित कर ऋण चुकाने मे कठिनाई प्रतीत हुई तो ४ अप्रैल १९४८ की कान्फ्रेन्स की साधारण सभा की बैठक मे जो बबई मे हुई थी विद्यालय को स्था जैन एज्युकेशन सोसाइटी, बबई को सौप देने का निर्णय लिया गया।

श्री श्राविकाश्रम की स्थापना

सर्वप्रथम श्राविकाश्रम की स्थापना का विचार सन् १९२६ के बबई अधिवेशन से आरभ हुआ। परन्तु फड एकत्रित करने मे काफी समय लगा। अतत दिनाक ३०-८-४९ को घाटकोपर मे स्टेशन के पास ही २५०० वर्ग गज जमीन वाला दो मजिल का बना बनाया बगला ८५ हजार रुपये मे खरीदा गया। इस बिल्डिग मे आसौज शु १० स २०१२ को श्राविकाश्रम प्रारभ किया गया। इस श्राविकाश्रम मे बहुत सी समाज की स्वधर्मी बहने लाभ ले रही है।

पजाब सिंध सहायता कार्य

देश की स्वतत्रता और विभाजन के समय जो जैन परिवार रावलपिंडी (पजाब) तथा कराची (सिंध) मे फँसे हुए थे, उनको भारत लाने का कार्य बहुत महत्वपूर्ण था। केवल रावलपिंडी मे ही १२०० भाई फँसे हुए थे। कान्फ्रेन्स ने इस कार्य मे

पहल की और दो चार्टर्ड हवाई जहाज भेजकर कुल ५२ व्यक्तियो को जोधपुर लाया गया। बाद मे हमारी राष्ट्रीय सरकार ने सभी निराश्रितो को भारत पहुँचा दिया। दिल्ली, अमृतसर, अम्बाला, लुधियाना, जालधर और होशियारपुर मे सहायता केंद्र भी खोले गए। इस कार्य मे दिल्ली केंद्र के व्यवस्थापक सेठ आनदराजजी सुराणा और अमृतसर के श्री हरजसरायजी जैन की सेवाएँ सदा याद रहेगी।

श्री आगम प्रकाशन

सन् १९३३ मे श्री हसराज भाई लक्ष्मीचद (धागीवाल) ने जिनागमो के सपादन और शिक्षण के लिए कान्फ्रेन्स को १५ हजार रुपये प्रदान किए थे। कान्फ्रेन्स ने अपने नवे अजमेर अधिवेशन मे उनकी यह योजना स्वीकार की। इस फड मे से उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, सूत्रकृताग और आचाराग सूत्रो का हिन्दी मे प्रकाशन किया गया।

दिनाक २९-१२-४६ को बबई मे मत्रिमडल की बैठक मे इस विषय पर गभीरता पूर्वक विचार-विनिमय किया गया और आगम सशोधन व प्रकाशन कार्य शीघ्र प्रारभ करने के उद्देश्य से विज्ञ मुनिराजो का एक सपादक मडल और पडित मुनिवृद एव विद्वानो का एक सहकारी मडल बनाया गया। भाई श्री धीरजलाल के तुरखिया को मन्त्री पद पर नियुक्त करके ब्यावर मे कार्यालय रखने का तय किया गया। परन्तु आरभिक कार्य पूरा होने मे ही काफी समय लग गया।

श्री अर्ध-मागधी कोष का निर्माण

जैन धर्म के साहित्य का अधिकाश भाग अर्ध मागधी भाषा मे है। जिस भाषा का प्रामाणिक कोष होता है उस भाषा के अर्थों को समझने मे कोई बाधा उपस्थित नही होती। बिना कोष के उस भाषा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना कठिन है। कोष और व्याकरण भाषा के जीवन होते है। व्याकरण की गति तो विद्वानो तक ही सीमित होती है, परन्तु कोष वह वस्तु है जिसका उपयोग विद्वान और साधारण वर्ग भी समान रूप से कर सकते है। अत कोष की महत्ता स्पष्ट है। इन्ही विचारो से प्रेरित हो सर्वप्रथम सन् १९१२ मे श्री केशरीचदजी भडारी, इदौर को अर्ध मागधी कोष बनाने का विचार आया और वे इस ओर सक्रिय रूप से जुट भी गए। उन्होने जैन सूत्रो मे से लगभग १४ हजार शब्दो का सकलन किया। उसी समय इटली के प्रसिद्ध विद्वान डॉ स्वाली ने भी श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स को इसी प्रकार का एक कोष बनाने की अपनी इच्छा व्यक्त की थी। जब यह बात श्री केशरीचदजी भडारी को ज्ञात हुई तो उन्होने अपना दिया हुआ शब्द सग्रह डाक्टर स्वाली को भेजने के लिए श्वे कान्फ्रेन्स को भेज दिया। परन्तु बीच मे ही युद्ध प्रारभ हो जाने से तथा अन्य कई कारण उपस्थित हो जाने से डॉक्टर स्वाली यह काम नही कर सके। तब उन्होने अपनी स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स से ही इस प्रकार का कोष प्रकट करने का अपना विचार प्रदर्शित किया और कान्फ्रेन्स ने भी इस उपयोगी कार्य को अपने हाथ मे लेना स्वीकार कर लिया।

कोष का कार्य कान्फ्रेन्स ने अपने व्यय से करना स्वीकार कर लिया था, पर उसके निर्माण आदि की सारी व्यवस्था कर कार्यभार कान्फ्रेन्स ने श्री भडारीजी को ही सौंप दिया था। शुरु मे विद्वानो की सहायता तथा अन्य साधनो के अभाव मे इस कार्य की सतोषप्रद प्रगति न हो सकी। सन् १९१६-१७ मे जब भडारीजी बबई गए तो वहाँ उनकी भेट शतावधानी प मुनि श्री रतनचद जी म से हो गई। मुनिश्री सस्कृत और प्राकृत भाषा के प्रकाड विद्वान थे। उनसे श्री भडारीजी ने कोष निर्माण की बात की और यह कार्य अपने हाथ मे ले लेने का अनुरोध किया। मुनिश्री ने उनकी बात को स्वीकार करते हुए कोष बनाने का आश्वासन दिया। इस अवधि मे भी दो वर्ष तो यो ही व्यतीत हो गए। मुनिश्री कारणवश कुछ न कर सके। लेकिन शेष तीन वर्षों मे आपने अनवरत श्रम करके कोष का काम पूरा कर दिया। इतनी थोडी अवधि मे इतना बडा कार्य कर देना, यह आप जैसे सामर्थ्यवान विद्वानो का ही काम था। इस कार्य मे लीबडी सम्प्रदाय के पडित मुनिश्री उत्तमचदजी म , पजाब के उपाध्याय श्री

आत्मारामजी म तथा प श्री माधव मुनिजी म और कच्छ आठ कोटि सम्प्रदाय के प मुनिश्री देवचदजी स्वामी ने भी पूर्ण सहयोग दिया है। इस कोष मे अर्ध मागधी के साथ-साथ आगमो भाष्य, चूर्णिका आदि मे आने वाले समस्त शब्दो का अर्थ दिया गया है। फिर भी यह कोष आगमो का होने मे इसका नाम अर्ध मागधी कोष ही रखा गया है।

इस कोष के ५ भाग है। चार भागो मे तो आगम साहित्य के शब्दो का सग्रह किया गया है। पाँचवे भाग मे जो शब्द छूट गए, उनका और महाराष्ट्रीय तथा देशी प्राकृत भाषा के शब्दो का भी सग्रह किया गया है जिससे यह कोष प्राकृत भाषा का पूरा कोष हो गया है।

इस कोष मे अर्ध मागधी सस्कृत, गुजराती, हिंदी और अग्रेजी इस प्रकार पाँच भाषाएँ दी गई है। अर्ध मागधी कोष, ५वे भाग के प्रकाशन मे सेठ केदारनाथजी जैन, रोहतक वाले मोरा कोठी, दिल्ली ने लगभग २५००/- की सहायता प्रदान की थी।

अर्ध-मागधी कोष का पहला भाग सन् १९२३ मे, दूसरा सन् १९२७, तीसरा सन् १९३०, चौथा सन् १९३२ और पाँचवाँ भाग सन् १९३८ मे प्रकाशित हुआ।

यह उल्लेखनीय है कि कोष के आद्य प्रेरक श्री केशरीमलजी भडारी, कोष का पहला भाग ही छपा हुआ देख सके, लेकिन उसमे भी वे मानसिक व्याधि से 'दो-शब्द न लिख सके। सन् १९२५ मे उनका स्वर्गवास हो गया। उनके बाद उनके सुपुत्र श्री सरदारमलजी भडारी ने कोष की व्यवस्था सभाली और अपने पिताश्री का मनोरथ पूर्ण किया।

प्रस्तुत कोष के निर्माण मे शतावधानी प मुनिश्री रतनचद्रजी म ने जो श्रम उठाया, वह उल्लेखनीय है। यह कोष आज अर्ध मागधी भाषा का प्रामाणिक कोष माना जाता है। इग्लैड, फ्रास, जर्मनी आदि कई पाश्चात्य देशो मे भी यह कोष भेजा गया है।

जब तक यह कोष रहेगा, तब तक शता प रत्न श्री रतनचदजी म का नाम और उनका यह काम अमर बना रहेगा।

सर्वमान्य परिचय पुस्तक· 'जैन धर्म'

कान्फ्रेन्स की साधारण सभा की बैठक मे, जो लुधियाना (पजाब) मे २०-२१ अक्टूबर सन् १९५६ को हुई थी, यह निर्णय लिया गया था कि जैन धर्म पर एक सर्वमान्य और समन्वयात्मक पुस्तक तैयार कराई जाए जो अजैनो को जैन धर्म का परिचय करा सके और जैनो को भी स्वधर्म का सरलता से सुबोध करवा सके। इस कार्य के लिए एक उपसमिति का भी गठन किया गया था।

सन् १९५८ मे ऐसी एक परिचय पुस्तक 'जैन धर्म' शीर्षक से हिन्दी भाषा मे मुनिश्री सुशील कुमार द्वारा रचित कान्फ्रेन्स ने प्रकाशित की। यह पुस्तक जैन आगमो पर आधारित है और इसमे जैन इतिहास, जैन तत्वज्ञान, जैन परपरा आदि विषयो का समन्वयात्मक विवेचन किया गया है। इस ग्रथ को श्रमण सघ के आगम रत्नाकर आचार्य श्री आत्मारामजी म ने देखकर प्रमाणित किया था।

कान्फ्रेंस के प्रकाशन

१ उत्तराध्ययन सूत्र (हिन्दी अनुवाद)
२ दशवैकालिक सूत्र (हिन्दी अनुवाद)

३ दशवैकालिक सूत्र (अवचूरि छाया सहित)
उपाध्याय प र हस्तीमलजी म कृत सौभाग्यचद भाषा टीका एव मराठी टीका सहित
४ आचाराग सूत्र (हिन्दी छायानुवाद)
५ सूत्रकृतांग सूत्र।
६ शता प मुनिश्री रतनचदजी म कृत अर्धमागधी कोष ५ भाग (केवल २, ३, ४ भाग उपलब्ध हैं)
७ विचारो के नए आयाम (श्री सौभाग्यमल जैन)
८ जैनिज्म एड डेमोक्रेसी (डॉ इदिरचद शास्त्री)
९ श्री सामायिक प्रतिक्रमण सूत्र सार्थ
१० धर्म दर्शन (दश धर्मों का विवेचन)
११ जैन धर्म (हिन्दी)(मुनिश्री सुशील कुमार)
१२ सामूहिक प्रार्थना (श्री व स्था जैन श्रमण सघ सम्मेलन समिति (पूना) द्वारा स्वीकृत)
१३ जैन स्थानक निर्देशिका (सपादक- श्री फूलचद जैन, दिल्ली)

जैन भवन, नई दिल्ली

देश के राजनैतिक, सामाजिक एव सास्कृतिक जीवन मे राजधानी दिल्ली का अपना विशेष स्थान है। आज अनेक राष्ट्र नेताओ, राजदूतो और विदेशी यात्रियो के आगमन से दिल्ली अनेक सत्प्रवृत्तियो का केद्र बनी हुई है। प्राय सभी धार्मिक, सामाजिक व सास्कृतिक समाजो एव सस्थाओ ने अपने कार्यालय और कार्यक्रमो के केद्र दिल्ली मे स्थापित किए हैं। इसी प्रकार कान्फ्रेन्स को सुदृढ बनाने और कान्फ्रेन्स की प्रवृत्तियो को आगे बढाने के उद्देश्य से सन् १९५६ मे न १२ लेडिग हार्डिग रोड (शहीद भगतसिंह मार्ग) नई दिल्ली स्थित ३५०० गज जमीन पर बनी एक कोठी खरीदी गई जो आज जैन भवन के नाम से जानी जाती है। इस कोठी को खरीदने मे स्व सेठ श्री आनदराज जी सुराणा का मुख्य हाथ था। यह उन्ही की दीर्घकाल की तपस्या का फल था कि राजधानी नई दिल्ली मे कान्फ्रेन्स का भवन खडा हो सका है।

एक मजिल की छोटी कोठी जो पहले से बनी हुई थी, उसमे कान्फ्रेन्स की बहुमुखी प्रवृत्तियो के लिए पर्याप्त स्थान नही था। इसलिए समाज के दानवीरो से धन एकत्रित करके कोठी के ऊपर अधिक मजिले बनवाई गई और जमीन के एक भाग में दो मजिला अनेक्सी बनवाई गई। मुख्य कोठी तो सतो के आवास के लिए स्थानक और कान्फ्रेन्स व जैन भवन के कार्यालय के रूप मे ही प्रयोग की जा रही है। ऊपर की मजिल मे 'दुर्लभ व्याख्यान हॉल' बनवाया गया और चोरडिया ब्लॉक तथा अनेक्सी मुख्यत अतिथि-गृह के रूप मे काम आ रहे है। आज नई दिल्ली मे आने वाले हमारे अतिथि भाई भवन का पूरा लाभ उठाते है और जैन भवन धर्म एव सस्कृति का केद्र बना हुआ है।

कान्फ्रेन्स का मुख्य कार्यालय भी जो फरवरी १९५३ से न १३९० चाँदनी चौक दिल्ली पर चल रहा था, जैन भवन खरीदने के पश्चात वहाँ स्थानातर कर दिया गया।

'जैन प्रकाश' का प्रकाशन

कान्फ्रेन्स की स्थापना सन् १९०६ मे मोरवी मे हुई थी। धीरे-धीरे जैसे-जैसे कान्फ्रेन्स के प्रति समाज का आकर्षण बढा तो यह आवश्यक समझा गया था कि कान्फ्रेन्स का एक निजी मुखपत्र होना चाहिए जिससे कि सारे समाज को कान्फ्रेन्स की गतिविधियो से अवगत कराया जा सके। अत सन् १९१३ मे 'जैन प्रकाश' का जन्म हुआ। इस तरह से यह 'जैन प्रकाश' का

हीरक जयती वर्ष है। प्रारभ मे 'जैन प्रकाश' साप्ताहिक रूप से और हिन्दी तथा गुजराती दोनो भाषाओ मे प्रकाशित होता रहा। सन् १९४१ के बाद हिन्दी और गुजराती आवृत्तियाँ अलग-अलग मे निकालने के कारण इसका रूप पाक्षिक हो गया। महीने मे दो बार हिन्दी और दो बार गुजराती 'जैन प्रकाश' निकलने लगा। यह स्थिति १९४२ से १९५४ तक रही। फिर कान्फ्रेन्स का कार्यालय बबई से दिल्ली स्थानातरित होने के पश्चात 'जैन प्रकाश' की दोनो आवृत्तियाँ (हिन्दी और गुजराती) मे पृथक-पृथक साप्ताहिक रूप से प्रकाशित होने लगी। हिन्दी 'जैन प्रकाश' अब जैन-भवन दिल्ली से पाक्षिक रूप मे निकल रहा है।

श्रमण संघ की स्थापना

कान्फ्रेन्स ने अपने जीवन की लम्बी अवधि मे यदि कोई क्रातिकारी, असाधारण, अद्वितीय कार्य किया है तो वह 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ' के गठन का है। वर्षो के सतत प्रयत्नो के फलस्वरूप मई सन् १९५२ मे सादडी (मारवाड) अधिवेशन एव वृहत साधु सम्मेलन के अवसर पर श्रमण सघ की स्थापना हुई। साम्प्रदायिक सकीर्ण भावना मे जब सारा जैन समाज त्रस्त, पीडित और किंकर्तव्यविमूढ हो गया था, तब युग क्राति का आह्वान पाकर स्थानकवासी जैन श्रमण वीरो ने साम्प्रदायिक परिधियो मे से निकलकर जैन जगत के विशाल प्रागण मे प्रवेश किया और एक श्रमण सघ, एक आचार्य और एक समाचारी बनाने का सकल्प कर महान आदर्श उपस्थित किया। विभिन्न छोटे-बडे सम्प्रदायो मे बिखरे हुए श्रमण समुदाय के ३२ सम्प्रदायो मे से २२ का एकाकीकरण हुआ। लगभग १५०० उपस्थित सत-सतियाँ अपनी-अपनी साम्प्रदायिक पद्वियाँ छोडकर श्रमण सघ मे सम्मिलित हुए। यह एक ऐतिहासिक घटना थी। यह कार्य केवल रचनात्मक ही नही वरन् क्रातिकारी और आध्यात्मिक उन्नति का पोषक भी सिद्ध हुआ है।

श्रमण सघ के नवनिर्माण और इसके बनाए रखने के लिए कान्फ्रेन्स को श्रमण सघ की माता की सज्ञा दी जाती है। अभी भी कान्फ्रेन्स की उत्कट भावना बनी रहती है कि श्रमण सघ मे दीक्षा, शिक्षा, चातुर्मास सघाडो, का निर्माण विहार की आज्ञा सभी अधिकार आचार्य मे केन्द्रित हो।

श्रमण सघ सबधी अपने उत्तरदायित्व को कान्फ्रेन्स कभी भूलती नही है, **सघैक्य** मे जहाँ भी बाधक प्रसग उपस्थित होते हैं वहाँ कान्फ्रेन्स के अधिकारी तुरन्त शाति स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं।

भगवान महावीर २५ वीं निर्वाण शताब्दी

भगवान महावीर निर्वाण के २५००वे वर्ष का महोत्सव नवबर सन् १९७४ मे सारे देश मे धूमधाम एव उत्साह के साथ मनाया गया। इस महोत्सव के अवसर पर दिगम्बर श्वेताम्बर, स्थानकवासी तथा तेरापथी सभी सम्प्रदायो ने एक मच पर आकर अपने विकास और जनहित के कार्य किए।

निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य मे कई वर्ष पहले से जैन समाज और भारत सरकार द्वारा समितियाँ गठित की गईं। सरकार द्वारा गठित श्रमण भगवान महावीर २५वी निर्वाण शताब्दी महोत्सव राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षा प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाँधी थी और इसके सरक्षक राष्ट्रपति श्री वी वी गिरी थे। चारो जैन सम्प्रदायो के वरिष्ठ प्रतिनिधि तथा साहित्यिक व शैक्षणिक क्षेत्र के कतिपय शीर्षस्थ विद्वान इस समिति के सदस्य मनोनीत किए गए थे। एक उल्लेखनीय बात है कि परामर्श व मार्गदर्शन की दृष्टि से निम्नलिखित जैनाचार्य एव विश्रुत मुनियो को इस समिति के विशिष्ट अतिथि मनोनीत किया गया था –

आचार्यश्री आनद ऋषि जी म
आचार्यश्री तुलसी जी म
आचार्यश्री देशभूषण जी म
आचार्यश्री धर्मसागरजी म
आचार्यश्री समुन्द्र विजय जी म
मुनिश्री महेन्द्र कुमारजी 'प्रथम'
मुनिश्री यशोविजय जी
मुनिश्री विद्यानद जी
मुनिश्री सुशील कुमार जी

इस कमेटी की प्रथम बैठक १२ अप्रैल १९७२ को श्रीमती इदिरा गाँधी जी की अध्यक्षता मे हुई थी।

इस पुनीत महोत्सव के लिए सरकार द्वारा ५० लाख रुपए के अनुदान की घोषणा की गई थी जिसे भ महावीर के कल्याणकारी उपदेशो व सिद्धातो के प्रचार-प्रसार और प्रकाशनादि पर खर्च किया जाएगा। नई दिल्ली मे सरदार पटेल मार्ग के निकट पहाडी पर स्मारक रूप महावीर स्थली उद्यान के लिए एक योजना भी सरकार द्वारा मजूर की गई।

जैन समाज की ओर से निर्वाण शताब्दी के अतर्गत अनेक भव्य व सुदर कार्यक्रम आयोजित किए गए। जैन धर्मचक्र का भ्रमण, सुदर धार्मिक प्रकाशन, भवनो एव स्मारको का निर्माण, पुस्तकालयो, वाचनालयो और औषधालयो की स्थापना, विद्वानो द्वारा धर्म प्रचार, जुलूस और सार्वजनिक सभाएँ सभी इन योजनाओ मे सम्मिलित थे।

मुख्य समारोह दिल्ली मे १३ से २८ नवबर १९७४ को लाल किला मैदान मे मनाया गया जिसमे विचार-गोष्ठियाँ, जुलूस, जनसभाएँ, डाक टिकट का विमोचन, आकाशवाणी से भगवान की वाणी का प्रसारण और स्थानको मे सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, तप, श्री भगवती दीक्षाओ के कार्यक्रम शामिल है।

कान्फ्रेन्स ने भी इन समारोहो मे तन, मन, धन से अपना पूरा सहयोग दिया। कान्फ्रेन्स ने वीरायतन योजना को भी अपना पूरा समर्थन प्रदान किया जिसके अतर्गत साधना केद्र, स्वास्थ्य मदिर, पुरातत्व सग्रहालय, सस्कृत प्राकृत विद्यापीठ एव पुस्तकालय, आगम मदिर, निवृत्त आश्रम, कला केद्र, उद्योग केद्र आदि अनेक योजनाएँ चलाए जाने का प्रावधान है। कान्फ्रेन्स के अपने कार्यक्रम मे २५०० गायो को अभयदान दिलाने की योजना सम्मिलित थी। यह कार्यक्रम सन् १९७६ तक चलता रहा जिसके फलस्वरूप अक्टूबर १९७६ तक ४५०० गायो को कसाइयो मे छुडवाकर उनके सरक्षण का प्रबध किया जा चुका था।

गाये छुड़वाई

भगवान महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी के पावन प्रसग पर कान्फ्रेन्स के महामत्री सेठ श्री आनदराज जी सुराणा ने २५०० गायो को अभयदान देने का सकल्प किया था। २५ जून १९७७ तक ४७३८ गायो को कसाइयो के हाथो मे जाने से बचाया जा चुका था जिनको देश मे विभिन्न स्थानो पर गोशालाओ मे रखा गया था। दो गोशाला, एक छायसा (बल्लभगढ) मे और दूसरी मसूरी (गाजियाबाद) मे जिनमे लगभग १००० गाये रखी गई थी, उनका पालन-पोषण कान्फ्रेन्स द्वारा किया गया।

• अखिल भारतवर्षीय श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस •
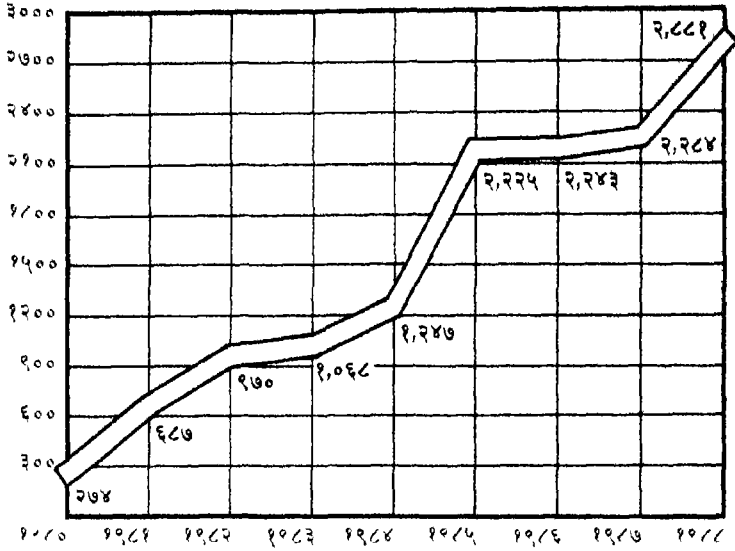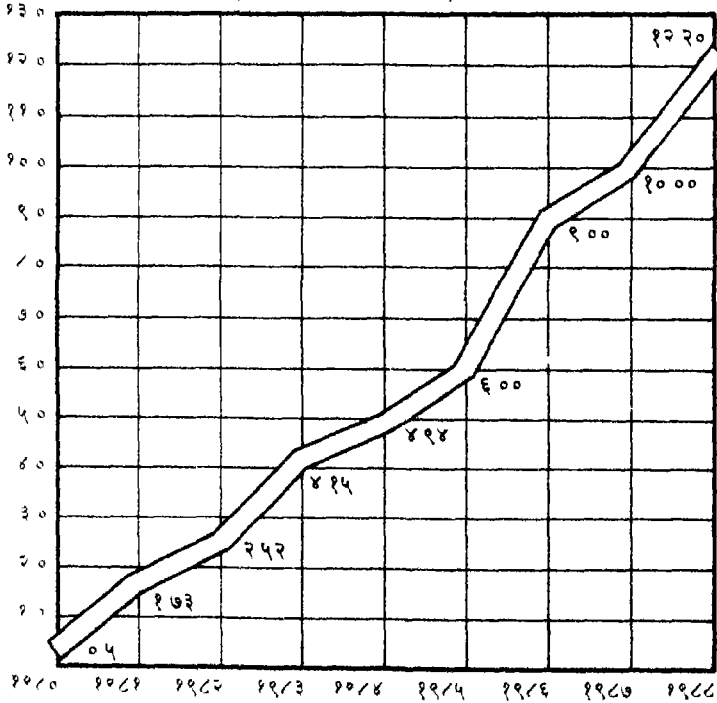
अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस [रजि०]

संविधान

उद्देश्य व कार्यक्षेत्र
एवं
नियम व उपनियम

भाग १ : उद्देश्य व कार्यक्षेत्र
(Memorandum of Association)

1. संस्था का नाम श्री अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस है।

2. संस्था का पंजीकृत कार्यालय संघीय प्रदेश दिल्ली में स्थित है।

3 संस्था की स्थापना के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(क) मानवता के नैतिक एवं आचरण सम्बन्धी स्तर को उन्नत बनाना।

(ख) निर्धनो, निराश्रितो और अपंगो को आजीविका उपार्जन के लिए हर सम्भव सहायता देना।

(ग) महिलाओ की प्रगति के लिए शैक्षणिक और औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना व संचालन करना।

(घ) समाज की सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक आदि सर्वांगीण प्रगति की देखभाल करना।

(ङ) मनुष्य मात्र के लिए अहिंसा के सिद्धांतो के प्रचार-प्रसार के लिए व्याख्याताओ की नियुक्ति करना।

(च) सर्वधर्म समभाव की दृष्टि से संस्थाओ का संचालन, पाठ्य-पुस्तको की संरचना और प्रशिक्षको को प्रशिक्षित करना।

(छ) अहिंसा, मानवीय दर्शन और इतिहास मे परिशीलन सम्बन्धो को प्रोत्साहित करना और इनकी उपलब्धियो को प्रकाशित करना।

(ज) अहिंसा और सम्बन्धित विषयो के प्रकाशनो को या उनके प्रकाशको को सहायता व सहयोग देना।

(झ) कान्फ्रेंस का संगठित करना और समाज मे जाति-धर्म से परे एकता की स्थापना करना।

(ञ) आम जनता के लिए जाति-धर्म विहीन शैक्षिक संस्थाओं का संगठन और उनकी व्यवस्था करना।

(ट) समाज के समस्त घटको मे भाईचारे की भावना को प्रोत्साहन देना।

(ठ) सर्वसाधारण जनता के लिए अस्पतालो व भवनो का निर्माण करना।

(ड) जीवनयापन के रीति-रिवाजो मे सामयिक सुधारो को आरम्भ करना जिससे समाज का विकास हो।

भाग—२ नियम उपनियम

१ परिभाषायें—

इन नियमो मे जब तक कि वे सदर्भ मे भिन्न अर्थ न रखते हो—

(क) कान्फ्रेस का अर्थ है—"अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस।"

(ख) सदस्य का अर्थ है–इन नियमो के अन्तर्गत कान्फ्रेस की किसी भी सदस्य श्रेणी मे स्वीकृत वह सदस्य जिसे इन नियमो के अन्तर्गत सदसस्य बनाया गया है जिसने अपने वार्षिक सदस्यता शुल्क, जहाँ भी यह नियम लागू हो, अदा किया है, और जिसने अपनी सदस्यता से स्वय त्याग-पत्र नही दिया है अथवा जिसका सदस्यता इन नियमो के अन्तर्गत समाप्त नही हुई है अथवा निरस्त नही की गई है।

(ग) कार्यकारिणी समिति का अर्थ है—इन नियमो के अन्तर्गत गठित कार्यकारिणी समिति।

(घ) प्रबध समिनि का अर्थ है—इन नियमो के अन्तर्गत गठित प्रबधक समिति।

(च) स्थाई कोष का अर्थ है—वे धनराशियाँ जिन्हे कार्यकारिणी समिति चालू फड मे भिन्न स्थायी रूप से, कान्फ्रेस के नाम से जमा करवाने का निर्णय लेगी और जिन का अत्यावश्यक सकट कालीन स्थिति मे कान्फ्रेस के काम-काज मे विनियोग कर सकेगी।

२ वर्ष—

सस्था का वर्ष पहली जुलाई से तीस जून तक होगा।

३ सदस्यता—

(क) सस्था की सदस्यता निम्नलिखित श्रेणियो की होगी तथा प्रत्येक श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन, जिसकी आयु १८ वर्ष हो गई है, निम्नलिखित शुल्क देने पर सस्था का सदस्य बन सकेगा—

१ सरक्षक	२५,०००/-रु या अधिक	४ हितचितक	१,०००/-रु या अधिक
२ आश्रयदाता	१०,०००/- रु या अधिक	५ आजीवन सदस्य	५०१/-रु या अधिक
३ सहायक	५,०००/-रु या अधिक	६ साधारण सदस्य	५१/रु या अधिक

सदस्यता का आवेदन पत्र निर्धारित फार्म (प्रपत्र) मे मस्था के मत्री को भेजा जाना चाहिए और सदस्यता उसी तारीख से लागू समझी जाएगी जिस तारीख को आवेदन पत्र अध्यक्ष अथवा केंद्रीय कार्यालय मत्री द्वारा स्वीकार किया जाएगा परतु उन्हे आगामी प्रबध समिति की बैठक मे जानकारी के लिए प्रस्तुत किया जाएगा। साधारण सदस्यता शुल्क कान्फ्रेस के चालू वर्ष की समाप्ति पर अर्थात् ३० जून को समाप्त हो जाएगा। १ से ५ श्रेणियो के सदस्य आजीवन सदस्य माने जायेगे। उपर्युक्त सशोधन की स्वीकृति से पहले स्वीकृत हुए आजीवन सदस्य बदस्तूर आजीवन सदस्य माने जाते रहेगे, सभी सदस्यो को "जैन प्रकाश" (कान्फ्रेस द्वारा प्रकाशित पत्र) की एक प्रति भेजी जाएगी।

(ख) सम्बद्ध सस्थाएँ—सघ अथवा धार्मिक सामाजिक एव शिक्षा सस्थाएँ ५०१/-रु आजीवन सदस्य या ५१/-रु प्रति वर्ष देने पर साधारण सदस्य रहेगी। प्रत्येक सदस्य सस्था का अध्यक्ष द्वारा मनोनीत एक प्रतिनिधि कान्फ्रेस की साधारण सभा का सदस्य होगा। सस्थाओ को "जैन प्रकाश" की प्रति भेजी जाएगी।

(ग) मानद सदस्य—यदि कोई स्थानकवासी जैन व्यक्ति कान्फ्रेस की अवैतनिक सेवा करता है और जिसकी सेवाएँ कान्फ्रेस की कार्यकारिणी समिति हितकर समझती है तो उसे मानद सदस्य बनाया जा सकता है। ऐसी नियुक्ति कार्यकारिणी समिति के नए निर्वाचन तक की अवधि के लिए ही होगी। मानद सदस्य को साधारण सभा का सदस्य माना जाएगा परन्तु उसे मताधिकार नही होगा।

४ सदस्यता समाप्ति—

निम्नलिखित परिस्थितियो मे कान्फ्रेस की सदस्यता समाप्त हो जायगी —

(क) निधन हो जाने पर।

(ख) सदस्यता का त्यागपत्र देने पर।

(ग) साधारण सदस्य द्वारा वार्षिक शुल्क न देने पर।

(घ) कान्फ्रेस के सदस्यो द्वारा अनुशासन के विरुद्ध आचरण सिद्ध होने पर। ऐसे सदस्य को अपने आचरण के लिए स्पष्टीकरण का अवसर दिया जाएगा और स्पष्टीकरण पर विचार करने के पश्चात ही कार्यकारिणी समिति निर्णय लेगी जो अतिम होगा।

५ सदस्यता रजिस्टर —

आजीवन तथा साधारण सदस्यो के अलग-अलग रजिस्टर रखे जायेगे जिनमे निम्नलिखित ब्यौरा दिया जाएगा —

(क) सदस्य का नाम पता और व्यवसाय।

(ख) आवेदन पत्र स्वीकार करने की तिथि।

(ग) सदस्यता समाप्त होने की तिथि व समाप्ति के कारण।

६ मताधिकार —

सदस्य को बैठको मे मताधिकार तभी प्राप्त होगा जब विधिवत रूप से सदस्य बन चुका हो और अपना शुल्क बैठक की तिथि से कम से कम एक महीने पहले दे चुका हो।

७ साधारण सभा (जनरल बॉडी) —

साधारण सभा के नीचे लिखे सदस्य होगे —

(अ) नियम (३) मे दी गई (१) स (६) श्रेणियो के सभी सदस्य।

(ब) प्रत्येक सम्बद्ध सस्था का एक प्रतिनिधि।

(स) कान्फ्रेस के सभी भूतपूर्व सभापति।

८ बैठके —

कान्फ्रेस की बैठको की तारीख समय व स्थान अध्यक्ष महोदय की आज्ञा से मत्री जी निश्चित करेगे।

९ साधारण सभा की वार्षिक बैठक —

प्रतिवर्ष कान्फ्रेस के वर्ष समाप्त होने के तीन मास के अदर मत्री अध्यक्ष की अनुमति प्राप्त करके साधारण सभा की बैठक आयोजित करग।

(क) बैठक का कार्यक्रम —

१ पिछली साधारण सभा की बैठक की कार्यवाही के ब्यौरे की पुष्टि करना।

२ कार्यकारिणी एव प्रबध समिति द्वारा प्रस्तुत की गई कान्फ्रेस की वार्षिक रिपोर्ट पारित करना।
३ वार्षिक निरीक्षित हिसाब तथा आगामी वर्ष का बजट पारित करना।

४ आडीटर की नियुक्ति करना।

५ यदि विश्वस्त मडल का चुनाव होना हो तो विश्वस्त मडल के सदस्यो का चुनाव करना।

६ यदि चुनाव होने है तो आगामी तीन वर्षों के लिए कान्फ्रेस के अध्यक्ष का चुनाव करना।

७ कान्फ्रेस की नीति तथा काम काज सबधी विषयो पर निर्णय लेना।

८ अध्यक्ष महोदय की अनुमति से अन्य महत्वपूर्ण विषयो पर विचार करना।

नोट-

(क) यदि कान्फ्रेस का अधिवेशन भी बुलाया गया है तो साधारण सभा की बैठक को एक दिन पहले बुलाना उचित होगा।

(ख) सभी चुनाव तथा प्रस्तावो पर मतदान हाथ उठाने की रीति से होगे।

(ग) चुनाव के बारे मे अध्यक्ष का निर्णय अतिम माना जाएगा।

(ख) **अध्यक्षता**—बैठक की अध्यक्षता कान्फ्रेस के अध्यक्ष और उनकी अनुपस्थिति मे वरीयता के आधार पर वरिष्ठतम उपाध्यक्ष करेगे। यदि अध्यक्ष तथा सभी उपाध्यक्ष अनुपस्थित हो तो उपस्थित सदस्यो मे से किसी एक सदस्य को अध्यक्ष पद के लिए चुना जा सकता है।

(ग) सूचना—बैठक की सूचना सदस्या को कम से कम २१ दिन पहले पोस्टल सर्टिफिकेट द्वारा भेजी जायगी। डाक अथवा अन्य कारणो से यदि किसी सदस्य को सूचना न भी मिले तो बैठक अवैध नही समझी जाएगी।

(घ) गणपूर्ति (कोरम)—साधारण सभा की बैठक के लिए कुल सदस्यो का १/३ का कोरम होगा। कोरम के अभाव म बैठक उसी दिन उसी स्थान पर एक घटे बाद हो सकती है, जिसमे कोरम का कोई प्रतिबध नही होगा और न ही अग्रिम सूचना की आवश्यकता होगी। परन्तु ऐसी बैठक मे घोषित विषय सूची (एजडा) के अतिरिक्त अन्य विषयो पर विचार नही किया जाएगा।

१०. साधारण सभा की विशेष बैठक

अध्यक्ष के आदेश से महामत्री काफेस की साधारण सभा की विशेष बैठक विशिष्ट महत्व के विषयो पर विचार करने क लिए बुला सकेगे।

ऐसी विशेष बैठक के आयोजन के लिए ९ दिन की सूचना पर्याप्त होगी, परन्तु कोरम के वही नियम लागू होग जो ऊपर नियम न ९ मे साधारण सभा की वार्षिक बैठक के लिए निर्धारित किए गए है।

११. साधारण सभा की विशेष रूप से प्रार्थित (रिक्वीजीशन) बैठक

यदि काफेस के कम से कम १/३ सदस्यो द्वारा साधारण सभा की बैठक बुलाने की माँग की जाती है तो अध्यक्ष ऐसे प्रार्थना पत्र मिलने के ३० दिन के अदर उचित स्थान पर साधारण सभा की बैठक का आमत्रण जारी करेगे। ऐसी बैठक के लिए १/३ सदस्या का कोरम होगा। यदि बैठक के समय के एक घटे के अदर कोरम पूरा नही होता, तो बैठक समाप्त समझी जाएगी। ऐसी मीटिंग वान्ट ऑफ कोरम की नही हो सकेगी।

१२ कार्यकारिणी समितिः—

(क) कार्यकारिणी समिति का गठन काफेस के सभी सरक्षको तथा नीचे लिखी विधि द्वारा नियुक्त १०१ सदस्यो से होगा —

१	साधारण सभा द्वारा निर्वाचित अध्यक्ष		१
२	अध्यक्ष द्वारा मनोनीत उपाध्यक्ष	७	
	महामत्री	१	
	मत्री	५	
	कोषाध्यक्ष	१	
	अन्य	१४	२८
३	परिच्छेद मे वर्णित राज्यो के प्रतिनिधि (इनका चुनाव इन राज्यो की प्रातीय शाखा सदस्यो द्वारा किया जाएगा।)		६०
४	निवर्तमान अध्यक्ष व महामत्री		२
५	कान्फ्रेन्स के महिला सगठन द्वारा नियुक्त सदस्य		५
६	कान्फ्रेन्स के युवा सगठन द्वारा नियुक्त सदस्य		५
		कुल	१०१

(उक्त न ५ और ६ को काफ्रेस की सदस्यता ग्रहण करना आवश्यक है)।

नोट —

१ कार्यकारिणी समिति की बैठको मे सभी आश्रयदाता सदस्य विशेष आमत्रित किए जाएँगे।
२ अध्यक्ष को अधिकार होगा कि जो प्रात अपने प्रतिनिधि निर्धारित समय तक चुनकर नही भेजते है उनकी पूर्ति वे स्वय कर सकेगे। नवगठित कार्यकारिणी समिति गठित होने से पहले जिन स्थानो की पूर्ति न हो सकी हो तो उनको भी मनोनीत करने का अधिकार अध्यक्ष को होगा।
३ कार्यकाल के मध्य मे रिक्त स्थान की पूर्ति का अधिकार प्रबध समिति को होगा।

(ख) बैठके —

प्रत्येक वर्ष मे कार्यकारिणी समिति की कम से कम दो बैठके होगी।

(ग) कामकाज — (कार्यकारिणी का)

१ अध्यक्ष एव पदाधिकारियो को छोडकर प्रबध समिति के लिए आगामी तीन वर्षो के लिए ग्यारह सदस्यो का कार्यकारिणी मे से चुनाव करना। कार्यकाल के दौरान मे प्रबध समिति मे रिक्त होने वाले स्थानो की पूर्ति अध्यक्ष कर सकेगे।
२ काफ्रेस की प्रातीय शाखाओ के लिए नियम निर्धारित करना तथा विचार करके स्वीकार करना।
३ काफ्रेस के बैक खातो को चलाने के लिए अधिकार व निर्देश देना और आर्थिक स्थिति की देखभाल करना।
४ काफ्रेस के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए नियम बनाना।
५ आवश्यकतानुसार उप-समितियो का गठन करना।
६ आवश्यकतानुसार चुनाव नियम बनाना तथा चुनाव अधिकारी की नियुक्ति अध्यक्ष की मजूरी से करना।
७ उन सभी कामो को करना जो कांफ्रेस के उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक व आवश्यक है।

(घ) कार्यकाल:—

कार्यकारिणी समिति का कार्यकाल तीन वर्ष होगा, परतु जब तक नई कार्यकारिणी का चुनाव नही होता वर्तमान कार्यकारिणी काम करती रहेगी।

(ङ) अध्यक्षता:—

कार्यकारिणी समिति की बैठको की अध्यक्षता काफ्रेस के अध्यक्ष करेगे।
उनकी अनुपस्थिति मे वरीयता के आधार पर उपाध्यक्ष करेगे। अध्यक्ष और सभी उपाध्यक्षो की अनुपस्थिति मे उपस्थित सदस्यो मे से किसी को भी बैठक का अध्यक्ष चुना जा सकेगा।

(च) सूचना:—

कार्यकारिणी समिति की बैठको के लिए सदस्यो को पोस्टल सर्टिफिकेट द्वारा कम से कम १४ दिन की अग्रिम सूचना देनी होगी, परतु विशेष परिस्थितियो मे कार्यकारिणी समिति की बैठक ७ दिन की सूचना पर भी बुलाई जा सकेगी। डाक अथवा अन्य कारणवश किसी सदस्य विशेष को सूचना न मिलने पर बैठक अवैध नही मानी जाएगी।

(छ) कोरम — कार्यकारिणी समिति की बैठक मे १/३ सदस्यो की उपस्थिति का कोरम होगा। यदि कोरम के अभाव मे बैठक को स्थगित करना पडता है तो ऐसी स्थगित बैठक उसी दिन आधा घटे बाद बुलाई जा सकेगी। ऐसी स्थगित बैठक के लिए न तो कोरम की आवश्यकता होगी और न ही सूचना की आवश्यकता होगी परतु स्थगित बैठक मे विचारणार्थ एजेन्डा मे कोई अन्य विषय शामिल नही किए जाएँगे।

१३. विश्वस्त मडल (बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज)

(क) विश्वस्त मडल मे ५ सदस्य होगे जिनका चुनाव निम्न प्रकार से किया जाएगा।

निवर्तमान अध्यक्ष	१
काफ्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मत्रियो मे से	२
काफ्रेस के कम से कम पाँच वर्ष पूर्व बने आजीवन सदस्यो मे से	२

(नोट) विश्वस्त मडल के लिए चुनाव होगा और कार्यकारिणी मे से दो विश्वस्त चुने जाएँगे।

(ख) **बैठके** —विश्वस्त मडल की वर्ष मे कम से कम ३ बैठके अवश्य होगी, जिसे चेयरमैन बुलवाएँगे।

(ग) **कामकाज** —ट्रस्ट की जमीन जायदाद, भवन तथा अन्य अचल सपत्ति के क्रय-विक्रय, निर्माण और व्यवस्था की देखभाल करना तथा कानूनी मामलो की व्यवस्था करना।

(घ) विश्वस्त मडल के अध्यक्ष का चुनाव विश्वस्त मडल के सभासद सदस्य करेगे।

(ङ) काफ्रेस को जरूरत के अनुसार ट्रस्ट मडल द्वारा पैसा देना।

(च) **कार्यकाल** —विश्वस्तमडल का कार्यकाल ५ वर्ष का होगा परंतु जब तक नए विश्वस्त मडल का चुनाव नही होता तब तक पुराना विश्वस्त मडल काम करता रहेगा।

(छ) **अध्यक्षता** — विश्वस्त मडल की बैठको की अध्यक्षता मडल के चेयरमैन करेगे। और उनकी अनुपस्थिति मे किसी एक विश्वस्त को बैठक का चेयरमैन चुना जाएगा।

(ज) **सूचना** — विश्वस्त मडल की बैठको की सूचना पोस्टल सर्टिफिकेट द्वारा कम से कम ७ दिन पूर्व दी जाएगी। डाक अथवा अन्य कारणवश किसी सदस्य को सूचना न मिलने पर बैठक अवैध नही मानी जाएगी।

(झ) **कोरम** — उपस्थित ३ विश्वस्तो का बैठको के लिए कोरम होगा।

१४. प्रबंध समिति

(क) प्रबध समिति मे निम्नलिखित ३१ सदस्य होगे।

अध्यक्ष	१
उपाध्यक्ष	५
महामत्री	१
मत्री	५
कोषाध्यक्ष	१
कार्यकारिणी समिति द्वारा नियुक्त	११
अध्यक्ष द्वारा मनोनीत	३
युवा शाखा से	२
महिला शाखा से	२
	३१

(ख) **बैठके** — प्रबध समिति की बैठक जब आवश्यक हो तब अध्यक्ष महोदय की स्वीकृति से महामत्री द्वारा बुलाई जाएगी। एक वर्ष मे कम से कम ४ बैठके अवश्य होगी।

(ग) **कामकाज** —

१ काफ्रेस के दैनदिन कामकाज को देखना।

२ काफ्रेस के कार्यालय के प्रबध पर नियत्रण करना, आवश्यकतानुसार कार्यालय मे कर्मचारियो की नियुक्तियाँ करना, उनकी वेतन व श्रेणियाँ निर्धारित करना तथा नौकरी से हटाना या नया लगाना।

३ सभी कानूनी मामलो मे काफ्रेस के प्रतिनिधित्व हेतु एक या अधिक व्यक्तियो को अधिकार पत्र देना।

४ काफ्रेस के अधिवेशन और साधारण सभा तथा कार्यकारिणी समिति के प्रस्तावो को क्रियान्वित करना।

५ वार्षिक हिसाब तैयार करवाना उसे निरीक्षक से जँचवाना और उसे साधारण सभा की स्वीकृति के लिए कार्यकारिणी समिति मे प्रस्तुत करना।

६ वार्षिक कार्यक्रम का प्रतिवेदन तैयार करना और उसे कार्यकारिणी समिति मे प्रस्तुत करना।

७ आने वाले वर्ष के लिए अनुमानित आय-व्यय पत्रक कार्यकारिणी समिति के सम्मुख प्रस्तुत करना।

८ ट्रस्ट की जमीन जायदाद भवन और अन्य सपत्तियो की व्यवस्था और देखरेख मे विश्वस्त मडल को सहयोग देना और अन्य सपत्तियो की देखभाल व व्यवस्था करना।

९ उन सब कामो को करना जो काफ्रेस के उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक व आवश्यक हो।

(घ) **कार्यकाल** — प्रबध समिति का कार्याकाल ३ वर्ष का होगा परतु जब तक नई प्रबध समिति का गठन नहीं होता तब तक वर्तमान प्रबध समिति काम करती रहेगी।

(ङ) **अध्यक्षता** — काफ्रेस के अध्यक्ष प्रबध समिति की बैठको की अध्यक्षता करेगे। उनकी अनुपस्थिति मे वरीयता के आधार पर उपाध्यक्ष बैठक के अध्यक्ष होगे और उन सबकी अनुपस्थिति सदस्यो मे से किसी भी सदस्य को बैठक का अध्यक्ष चुना जा सकेगा।

(च) **बैठको की सूचना** — प्रबध समिति की बैठको की सूचना पोस्टल सर्टिफिकेट द्वारा स्पष्ट रूप से १४ दिन पूर्व भेजी जाएगी। परतु डाक व्यवस्था या अन्य किसी कारणवश किसी सदस्य को सूचना न मिलने पर बैठक अवैध नहीं मानी जाएगी।

(छ) कोरम — प्रबंध समिति के ७ सदस्यो की उपस्थिति का कोरम होगा। यदि कोरम के अभाव मे बैठक स्थगित की जाती है तो उसी दिन आधे घटे के बाद बैठक बुलाई जा सकती है। ऐसी स्थगित बैठक के लिए कोरम अथवा १४ दिनो की अग्रिम सूचना का नियम लागू नही होगा। परन्तु एजेडा मे कोई नया विषय नही जोडा जाएगा।

१५.अधिवेशन

(क) काफ्रेस की कार्यकारिणी समिति अधिवेशन आयोजित करने के लिए निमत्रणो पर विचार करके उन्हे स्वीकार करेगी और आमत्रण देने वालो के सहयोग से एक स्वागत समिति गठित करेगी। यदि अधिवेशन के लिए किसी भी प्रात मे ५ वर्षो तक निमत्रण प्राप्त न हो तो प्रबध समिति स्वय अपनी ओर से अधिवेशन बुलाएगी।

(ख) अधिवेशन के लिए स्थान व तिथि का निर्णय प्रबध समिति स्वागत समिति की सलाह से करेगी।

(ग) काफ्रेस के महामत्री अधिवेशन के स्वागत समिति के पदाधिकारियो के चयन और अधिवेशन के अन्य कार्यक्रमो के विवरण के बारे मे आवश्यक होने पर सब प्रकार की सूचनाएँ व सहायता देगे।

(घ) अधिवेशन की अध्यक्षता काफ्रेस के अध्यक्ष करेगे।

(ड) अधिवेशन के वित्तीय मामले—

१ काफ्रेस की कार्यकारिणी द्वारा निर्धारित अधिवेशन का प्रतिनिधि शुल्क स्वीकार करने का अधिकार स्वागत समिति को होगा। साथ मे समिति अपनी सदस्यता के शुल्क एव दान की राशियाँ भी सग्रहीत कर सकेगी।

२ अधिवशन हेतु सारा खर्च करने के बाद जो धनराशि बचेगी उसका कम-से-कम २५ से ४० प्रतिशत काफ्रेस के केद्रीय कार्यालय मे जमा किया जाएगा। लेकिन उसका अतिम निर्णय प्रबध समिति करेगी।अधिवेशन के लिए कोई खर्चा करना होगा तो प्रबध समिति कर सकेगी।

(च) अधिवेशन मे मताधिकार-अधिवेशन के प्रस्तावो पर निम्नलिखित व्यक्तियो को मताधिकार प्राप्त होगा।

(अ) काफ्रेस की साधारण सभा के सभीद सदस्य।

(ब) अधिवेशन मे उपस्थित होने वाले सभी प्रतिनिधि।

(स) स्वगात समिति के सदस्य।

१६ पदाधिकारियो के अधिकार और कर्त्तव्य

(क) अध्यक्ष—

१ साधारण सभा, कार्यकारिणी समिति और प्रबध समिति की बैठको का सचालन व उनकी अध्यक्षता करना।

२ आवश्यकतानुसार साधारण तथा कार्यकारिणी समिति व प्रबध समिति की बैठको को बुलवाने के लिए मत्री को निर्देश देना।

३ काफ्रेस की सभी गतिविधियो पर नियत्रण और देखरेख करना।

४ प्रात मे घूमना, प्रात की शाखा को मजबूत बनाना।

५ बैठको मे किसी भी प्रस्तावो पर बराबर मत होने पर अध्यक्ष को निर्णायक मत देने का अधिकार होगा।

६ एडहाक कमेटी (तदर्थ समिति) की नियुक्ति करना।

७ किसी भी सभा मे सस्था की तथा समाज की दृष्टि मे सगठन की दृष्टि से आवश्यक लगे तो कमेटी के सदस्य छोडकर किसी भी व्यक्ति को आमंत्रित किया जा सकता है। लेकिन उसको मताधिकार नही रहेगा।

८ काफ्रेस की कार्यकारिणी, प्रबध समिति, (सर्वसाधारण जनरल) सभा देश मे किसी भी प्रात मे किसी भी गाँव मे बुलाने का अधिकार अध्यक्ष को है।

(ख) उपाध्यक्ष—

१ अध्यक्ष की अनुपस्थिति मे वरीयता के आधार पर विविध बैठको की अध्यक्षता करना।

२ अध्यक्ष की अनुपस्थिति मे कान्फ्रेंस के विविध कार्यकलापो की देख-रेख रखना।

३ कार्यकारिणी/प्रबध समिति अथवा अध्यक्ष द्वारा सौपे गए कामकाज का भार सभालना।

(ग) महामंत्री

१ कान्फ्रेंस की सभी बैठको की व्यवस्था करना।

२ अध्यक्ष के आदेश अथवा परामर्श से कान्फ्रेंस की विभिन्न बैठको को बुलाना।

३ कान्फ्रेंस के अधिवेशन, साधारण सभा, कार्यकारिणी समिति तथा प्रबध समिति द्वारा पारित प्रस्तावो को क्रियान्वित करना।

४ कान्फ्रेंस के सभी क्रियाकलापो और गतिविधियो पर नियन्त्रण रखना।

५ सभी बैठको की कार्यवाही के आलेख तैयार करना।

६ जो भी उपसमितियाँ गठित की जाएँ उनके कामकाज पर देखरेख रखना व उनके प्रतिवेदन मँगवाना।

७ वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करना, बजट तैयार करना और उन्हे सबधित बैठको मे प्रस्तुत करना।

(घ) मत्रीगण

१ महामत्री द्वारा सभाले हुए उत्तरदायित्व निभाना।

२ कार्यकारिणी, प्रबध समिति, महामत्री, अध्यक्ष द्वारा सौपे गए कान्फ्रेंस के विभागो को सभालना और उनकी देखरेख करना।

(ङ) कोषाध्यक्ष

१ कान्फ्रेंस के आय-व्यय के हिसाब पर नियत्रण रखना।

२ वार्षिक हिसाब तैयार करवाना और उसे निरीक्षक द्वारा जँचवाना।

३ वार्षिक बजट तैयार करने मे महामत्री की सहायता करना।

१७. विवाद

कान्फ्रेंस के किसी भी विवाद के मामले मे कार्यकारिणी समिति का निर्णय अतिम माना जाएगा।

१८ न्याय क्षेत्र

किसी भी प्रकार के कानूनी विवाद मे न्याय क्षेत्र इसके रजिस्टर्ड कार्यालय का न्याय क्षेत्र होगा।

१९. सविधान मे सशोधन

सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट की धाराएँ १२ और १२ ए के अनुसार होगा।

२० अचल सपत्ति के दस्तावेज

अनुबध कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष के नाम से होगे।

२१. कान्फ्रेन्स के नियमो की व्याख्या

के बारे मे अध्यक्ष का निर्णय अतिम माना जाएगा।

२२. सस्था का विलय

करने के लिए सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट की धारा १३ और १४ का पालन किया जाएगा।

२३. वर्ष मे एक बार विधानानुसार साधारण सभा होने के १४ दिन के अदर एक सूची रजिस्ट्रार ऑफ सोसाइटीज के यहाँ दाखिल की जाएगी, जिसमे शासन समिति के सदस्यो, कौंसिल सदस्यो, डायरेक्टरो तथा अन्य समिति के सदस्यो के नाम, पते एव व्यवसाय आदि का विवरण होगा।

२४. संस्था के उद्देश्यो को परिवर्तित करने

बढाने या घटाने के लिए सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट की धाराएँ १२ और १२ ए का पालन किया जाएगा।

२५. विलय

इस कानून के अतर्गत स्थापित सस्था के विलय के बाद अगर यह पाया जाता है कि सस्था के सभी कर्जों का भुगतान करने के बाद कुछ सपत्तियां बच जाती हैं तो उन निधियो, सपत्तियो को सस्था के सदस्यो मे विभाजित या बाँटा नही जा सकेगा, परतु वह ऐसा (बचा हुआ धन) किसी दूसरी सस्था को दिया जाएगा, जिसका निर्णय सदस्यता के उस समय उपस्थित सदस्यो का ३/५ बहुमत लेगा।

२६. दिल्ली क्षेत्र मे लागू सशोधन सोसायटीज एक्ट १८६० की धाराएँ इस सस्था को लागू होगी।

परिशिष्ट

कार्यकारिणी समिति के लिए प्रतिनिधिक क्षेत्र और प्रतिनिधियो की सख्या—

	प्रदेश का नाम	प्रतिनिधि सख्या
१	उत्तर-पश्चिम भारत	
	जम्मू-कश्मीर	१
	हिमाचल प्रदेश	१
	पजाब	५
	हरियाणा	३
२	दिल्ली	६
३	उत्तरप्रदेश	३
४	बिहार, सिक्किम	१
५	पश्चिम बगाल	२
६	उडीसा, आसाम अरुणाचल, मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैड, अडमान, निकोबार	२
७	मध्यप्रदेश	५
८	राजस्थान	६
९	गुजरात	१
१०	महाराष्ट्र	६
११	कर्नाटक	५
१२	आध्रप्रदेश	५
१३	तमिलनाडु, केरल व पाडिचेरी	६
१४	बबई	२
	कुल योग	६०

अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस

अध्यक्ष और महामंत्री

वर्ष (ई सन्)	अध्यक्ष
१९०६	श्री सेठ चाँदमलजी रियावाले, अजमेर
१९०८	सेठ श्री केवलदास त्रिभुवनदासजी, अहमदाबाद
१९०९	शास्त्रज्ञ सेठ बालमुकन्दजी मूथा, सतारा
१९१०	दि ब सेठ श्री उम्मेदमलजी लोढ़ा, अजमेर
१९१३	सेठ श्री लछमनदासजी श्रीश्रीमाल, जलगाँव
१९२५	सेठ श्री मेघजी भाई थोभण, जे पी, बबई
१९२६	सेठ श्री भैरोदानजी सेठिया, बीकानेर
१९२७	तत्वज्ञ श्री बाडीलाल मोतीलालजी शाह, घाटकोपर
१९३३	सेठ श्री हेमचद रामजी भाई, भावनगर
१९४१	सेठ श्री वीरचद मेघजीभाई थोभण, बबई
१९४९	श्रीमान कुन्दनमलजी फिरोदिया, अहमदनगर
१९५२	सेठ श्री चपालालजी बाठिया, भीनासर
१९५६	सेठ श्री बनेचद दुर्लभजी जौहरी, जयपुर
१९५८	सेठ श्री अचलसिंहजी, आगरा
१९६७	डा दौलतसिंह जी कोठारी, दिल्ली
१९७०	सेठ श्री अचलसिंहजी, आगरा
१९७१	सेठ श्री मोहनमलजी चौरडिया, मद्रास
१९७३	पद्म विभूषण डॉ दौलतसिंहजी कोठारी, दिल्ली
१९७४	सेठ श्री अचलसिंहजी, आगरा
१९७८	श्री जवाहरलालजी मुणोत, बबई
१९८१	पद्मश्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
१९८४	श्री मचालालजी बाफना, औरगाबाद

महामंत्री

वर्ष (ई सन्)	महामंत्री
	(प्रारम्भ के वर्षों मे)
	सेठ श्री केवलदास भाई, त्रिभुवनदास भाई, अहमदाबाद
	सेठ श्री अमरचदजी पित्तलिया, रतलाम
	लाला श्री सादीरामजी गोकलचदजी, दिल्ली
	श्री गोकलदास भाई राजपाल भाई, मोरवी
	राय सेठ श्री चाँदमलजी रियावाले, अजमेर
	सेठ श्री बालमुकन्दजी मूथा, सतारा
	दी ब श्री विशनदासजी, जम्मू
	दी ब श्री उम्मेदमलजी लोढा, अजमेर
१९५२	प्राणिमित्र पद्मश्री सेठ आनदराजजी सुराणा, दिल्ली
१९७८	श्री सचालालजी बाफना, औरगाबाद
१९८१	श्री फकीरचदजी मेहता, इदौर
१९८६	श्री हीरालालजी जैन, लुधियाना

अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस

विश्वस्त मडल (बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज)

१९५८

१ श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, अहमदनगर
२ सेठ श्री मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
३ सेठ श्री अचलसिहजी, आगरा
४ सेठ श्री खेलशकरजी दुर्लभजी जौहरी, जयपुर
५ सेठ श्री मणिलाल वीरचदजी थोबण, बबई

१९६८

१ सेठ श्री अचलसिहजी, आगरा
२ सेठ श्री मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
३ सेठ श्री मणिलाल वीरचदजी थोबण, बबई
४ सेठ श्री खेलशकरजी दुर्लभजी जौहरी, जयपुर
५ सेठ श्री आनदराज जी सुराणा, दिल्ली

१९७३

१ प्राणिमित्र पद्मश्री सेठ श्री आनदराजजी सुराणा दिल्ली
२ सेठ श्री अचलसिहजी, आगरा
३ पद्मश्री सेठ श्री मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
४ सेठ श्री मणिलाल वीरचदजी थोबण, बबई
५ सेठ श्री खेलशकर दुर्लभजी जौहरी, जयपुर

१९८१

१ श्री सचालालजी बाफना, औरगाबाद
२ श्री जवाहरलालजी मुणोत, बबई
३ श्री मणिलाल वीरचदजी थोबण बबई
४ श्री पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
५ श्री रामलालजी जैन सर्राफ, दिल्ली

१९८८

१ श्री सचालालजी बाफना, औरगाबाद
२ श्री पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
३ श्री हीरालालजी जैन, लुधियाना
४ श्री अजितराजजी सुराणा, नई दिल्ली
५ श्री पुखराजमलजी लुकड, बबई

अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस

गत ८२ वर्षो मे कान्फ्रेन्स के १६ अधिवेशनो के अध्यक्ष तथा स्वागताध्यक्ष

क्रम	स्थान	तिथि	अध्यक्ष - स्वागताध्यक्ष
प्रथम	मोरवी	फरवरी सन् १९०६ ता २६, २७, २८	अ — सेठ श्री चाँदमलजी रियाँवाले, अजमेर।
			स्वा — सेठ श्री अमृतलाल वर्धमाण, मोरवी।
द्वितीय	रतलाम	मार्च सन् १९०८ ता २७, २८, २९	अ — सेठ श्री केवलदास त्रिभुवनदास, अहमदाबाद।
			स्वा — सेठ श्री अमरचदजी पितलिया, रतलाम।
तृतीय	अजमेर	मार्च सन् १९०९ ता १०, ११, १२	अ — शास्त्रज्ञ सेठ श्री बालमुकन्दजी मूथा, सतारा।
			स्वा — राय सेठ श्री चाँदमलजी सा , अजमेर।
चतुर्थ	जालधर	मार्च सन् १९१० ता २७ २८, २९	अ — दी ब श्री उम्मेदमलजी लोढा, अजमेर।
पचम्	सिकन्द्राबाद	अप्रैल सन् १९१३ ता १२, १३, १४	अ — सेठ श्री लछमनदासजी श्रीश्रीमाल, जलगाँव।
			स्वा — रा ब श्री सुखदेवसहायजी, हैदराबाद।
षष्ठम	मल्कापुर (म प्र)	जून सन् १९२५ ता ७, ८, ९	अ — सेठ श्री मेघजीभाई थोभण, जे पी , बबई।
			स्वा — सेठ श्री मोतीलालजी कौटेचा, मलकापुर।
सप्तम्	बबई	दिस जन सन् १९२६-२७ ता ३१, ता १, २	अ — सेठ श्री भैरोदानजी सेठिया, बीकानेर।
			स्वा — सेठ श्री मेघजीभाई थोभण, बबई।
अष्टम्	बीकानेर	अक्टूबर सन् १९२७ ता ६, ७, ८	अ — तत्वज्ञ श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह घाटकोपर।
			स्वा — सेठ श्री मिलापचन्दजी वैद, झाँसी-बीकानेर।
नवम्	अजमेर	अप्रैल सन् १९३३ ता २२, २३, २४, २५	अ — सेठ श्री हेमचन्द रामजीभाई, भावनगर।
			स्वा — लाला ज्वालाप्रसादजी जैन, महेन्द्रगढ।
दशम्	घाटकोपर	अप्रैल सन् १९४१ ता ११, १२, १३	अ — सेठ वीरचन्द मेघजीभाई थोभण, बबई।
			स्वा — सेठ श्री धनजीभाई देवशीभाई, घाटकोपर।
एकादशम्	मद्रास	दिसबर सन् १९४९ ता २४, २५, २६	अ — श्रीमान कुन्दनमलजी फिरोदिया, अहमदनगर।
			स्वा — सेठ श्री मोहनमलजी चौरडिया, मद्रास।

द्वादशम्	सादडी (मारवाड)	मई सन् १९५२ ता ४, ५, ६	अ — सेठ श्री चपालालजी बाँठिया भीनासर। स्वा — सेठ श्री मोहनमलजी बरलोटा, सादडी।
त्रयोदशम्	भीनासर (बीकानेर, राज)	अप्रैल सन् १९५६ ता ४, ५, ६	अ — सेठ श्री बनेचन्द दुर्लभजी जौहरी, जयपुर। स्वा — सेठ श्री जयचन्दलालजी रामपुरिया, बीकानेर।
चौदहवाँ	दिल्ली	मई सन् १९६७ ता ७, ८	अ — डॉ दौलतसिहजी कोठारी, दिल्ली। स्वा — सेठ श्री आनन्दराज सुराणा, दिल्ली।
पद्रहवाँ	ब्यावर	अक्टूबर सन् १९७१ ता २, ३, ४	अ — श्री मोहनमलजी चौरडिया, मद्रास। स्वा — श्री फूलचन्दजी लूणिया, ब्यावर।
सोलहवाँ	इदौर	अक्टूबर सन् १९८८ ता २२, २३	अ — श्री सचालालजी बाफना, औरगाबाद स्वा — श्री नेमनाथजी जैन, इदौर

दस प्रकार का सत्य

१ **जनपद सत्य** — जिस देश मे जैसी भाषा बोली जाए उस प्रकार बोलना। जैसे खीरे को कही पर ककडी कहा जाता है।

२ **सम्मत सत्य** — पूर्व विद्वानो ने जिस शब्द को जिस अर्थ मे मान्य किया है उस शब्द को उसी अर्थ मे मान्य करना। जैसे पक मे रहने वाले कमल को पकज कहते है जबकि कीचड मे ही रहने वाले मेढक को पकज नही कहते।

३ **स्थापना सत्य** — किसी वस्तु की स्थापना कर उसे एक निश्चित नाम से जानना। जैसे शतरज की मोहरो को हाथी ऊँट घोडा कहना।

४ **नाम सत्य** — गुण के अनुकूल या प्रतिकूल जैसा भी नाम व्यक्ति या वस्तु विशेष का हो उसे उसी नाम से सबोधित करना। जैसे लक्ष्य प्रतिष्ठित होकर भी कोई गरीबदास कहा जाता है।

५ **रूप सत्य** — किसी खास रूप के धारण करने वाले को उसी नाम से जानना। जैसे कि साधु का वेष धारण करने वाले को साधु कहना।

६ **प्रतीत सत्य (अपेक्षा सत्य)** — एक वस्तु की अपेक्षा दूसरे को मोटी, हल्की, भारी आदि कहना। जैसे अनामिका उगली कनिष्ठा की अपेक्षा बडी है जबकि मध्यम से वह छोटी है।

७ **व्यवहार सत्य (लोक सत्य)** — जो बात व्यवहार मे बोली जाए। जैसे कोई कहे यह सडक राजमहल जाती है जबकि सडक स्थिर रहती है कही नही जाती।

८ **भाव सत्य** — जिस वस्तु मे जो भाव मुख्यत दिखता है उसे ही लक्ष्य मे रख उस वस्तु का प्रतिपादन करना। जैसे तोते मे कई रग होते हैं परन्तु उसे हरे रग का कहा जाता है।

९ **योग सत्य** — योग अर्थात् सबध से किसी व्यक्ति या वस्तु को जानना। जैसे अध्यापक को अध्यापन करने के अलावा भी अध्यापक कहा जाता है।

१० **उपमा सत्य** — किसी प्रकार की समानता होने पर उस वस्तु की अन्य के साथ तुलना करना। जैसे चरण कमल, मुख चन्द्र, वाणीसुधा आदि।

अमृत - महोत्सव गौरव ग्रंथ

परिच्छेद—३

जैन संस्कृति

जैन संस्कृति का हृदय

स्व प्रज्ञाचक्षु प श्री सुखलालजी सघवी

सस्कृति का स्रोत

सस्कृति का स्रोत ऐसे नदी के प्रवाह के समान है जो अपने प्रभवस्थान मे अन्त तक अनेक दूसरे छोटे-मोटे जलस्रोतो से मिश्रित, परिवर्धित और परिवर्तित होकर अनेक दूसरे मिश्रणो से भी युक्त होता रहता है और उद्गमस्थान मे पाए जाने वाले रूप, स्पर्श, गन्ध तथा स्वाद आदि मे कुछ न कुछ परिवर्तन भी करता रहता है। जैन कहलाने वाली सस्कृति भी उस सस्कृति-सामान्य के नियम का अपवाद नही है। जिस सस्कृति को आज हम जैन सस्कृति के नाम से पहचानते है, उसके सर्वप्रथम आविर्भावक कौन थे और उनसे वह पहले-पहल किस स्वरूप मे उद्गत हुई इसका पूरा-पूरा सही वर्णन करना इतिहास की सीमा के बाहर है फिर भी उस पुरातन प्रवाह का जो और जैसा स्रोत हम हमारे सामने है तथा वह जिन आधारो के पट पर बहता चला आता है, उस स्रोत तथा उन साधनो के ऊपर विचार करते हुए हम जैन सस्कृति का हृदय थोडा बहुत पहिचान पाते है।

जैन-सस्कृति के दो रूप

जैन सस्कृति के भी, दूसरी सस्कृतियो की तरह दो रूप हैं। एक बाह्य और दूसरा आन्तर। बाह्य रूप वह है, जिसे उस सस्कृति के अलावा दूसरे लोग भी आँख, कान आदि बाह्य इद्रियो से जान सकते हैं। पर सस्कृति का आन्तर स्वरूप ऐसा नही होता क्योकि किसी भी सस्कृति के आन्तर स्वरूप का साक्षात आकलन तो सिर्फ उसीको होता है जो उसे अपने जीवन मे तन्मय कर ले। दूसरे लोग उसे जानना चाहे तो साक्षात दर्शन नही कर सकते पर उस आन्तर सस्कृतिमय जीवन बिताने वाले पुरुष या पुरुषो के जीवन व्यवहारो से तथा आस-पास के वातावरण पर पडने वाले उनके असरो से वे किसी भी आन्तर सस्कृति का अन्दाजा लगा सकते हैं।

उच्चतर धार्मिक अनुष्ठानो से वे इस लोक तथा परलोक के उत्कृष्ट सुखो के लिए प्रयत्न करते थे, उन धार्मिक अनुष्ठानो को निवर्तक-धर्मानुयायी अपने साध्य मोक्ष या निवृत्ति के लिए न केवल अपर्याप्त ही समझते थे, बल्कि वे उन्हे मोक्ष पाने मे बाधक समझकर उन सब धार्मिक अनुष्ठानो को आत्यन्तिक हेय बतलाते थे। उद्देश्य और दृष्टि मे पूर्व-पश्चिम जितना अतर होने से प्रवर्तक धर्मानुयायियो के लिए जो उपादेय है वही निवर्तक धर्मानुयायियो के लिए हेय बन गया। यद्यपि मोक्ष के लिए प्रवर्तक-धर्म बाधक माना गया पर साथ ही मोक्षवादियो को अपने साध्य मोक्ष-पुरुषार्थ के उपाय रूप से किसी सुनिश्चित मार्ग की खोज करना भी अनिवार्य रूप से प्राप्त था। इस खोज की सूझ ने उन्हे एक ऐसा मार्ग, एक ऐसा उपाय सुझाया, जो किसी बाहरी साधन पर निर्भर न था। वह एकमात्र साधक की अपनी विचारशुद्धि और वर्तन-शुद्धि पर अवलबित था। यही विचार और वर्तन की आत्यन्तिक शुद्धि का मार्ग निवर्तक धर्म के नाम से या मोक्ष-मार्ग के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हम भारतीय सस्कृति के विचित्र और विविध तानेबाने की जाच करते है तब हमे स्पष्ट रूप मे दिखाई देता है कि भारतीय आत्मवादी दर्शनो मे कर्मकाण्डी मीमासक के अलावा सभी निवर्तक धर्मवादी है। अवैदिक माने जाने वाले बौद्ध और जैन दर्शन की सस्कृति तो मूल मे निवर्तक-धर्म स्वरूप ही है, पर वैदिक समझे जाने वाले न्याय-वैशेषिक, साख्य-योग तथा औपनिषद् दर्शन की आत्मा भी निवर्तक धर्म, प्रवर्तक-धर्म को या यज्ञयागादि अनुष्ठानो को अत मे हेय ही बतलाते है और वे सभी सम्यक-ज्ञान या आत्म-ज्ञान को तथा आत्मज्ञानमूलक अनासक्त जीवन-व्यवहार को उपादेय मानते हैं एव उसी के द्वारा पुनर्जन्म के चक्र से छूट्टी पाना सभव बतलाते है।

निवर्तक-धर्म के मन्तव्य और आचार—

शताब्दियो ही नही बल्कि सहस्राब्दि पहले से लेकर जो धीरे-धीरे निवर्तक धर्म के अग-प्रत्यग रूप से अनेक मतव्यो और

आचारो का महावीर-बुद्ध तक के समय मे विकास हो चुका था, वे सक्षेप मे ये है—

१ आत्मशुद्धि जीवन का मुख्य उद्देश्य है, न कि ऐहिक या पारलौकिक किसी भी पद कामहत्तव।

२ इस उद्देश्य की पूर्ति मे बाधक आध्यात्मिक मोह, अविद्या और तज्जन्य तृष्णा का मूलोच्छेद करना।

३ इसके लिए आध्यात्मिक ज्ञान और उसके द्वारा सारे जीवन व्यवहार को पूर्ण निस्तृष्ण बनाना। इसके वास्ते शारीरिक, मानसिक, वाचिक विविध तपस्याओ का तथा नाना प्रकार के ध्यान, योग-मार्ग का अनुसरण और तीन चार पाँच महाव्रतो का यावज्जीवन अनुष्ठान।

४ किसी भी आध्यात्मिक अनुभव वाले मनुष्य के द्वारा किसी भी भाषा मे कहे गए आध्यात्मिक वर्णन वाले वचनो को ही प्रमाण रूप मे मानना, न कि ईश्वरीय या अपौरुषेय रूप से स्वीकृत किसी खास भाषा मे रचित ग्रथो को।

५ योग्यता और गुरुपद की कसौटी एकमात्र जीवन की आध्यात्मिक शुद्धि, न कि जन्मसिद्ध वर्ण-विशेष। इस दृष्टि से स्त्री और शूद्र तक का धर्माधिकार उतना ही है जितना एक ब्राह्मण और क्षत्रिय पुरुष का।

६ मद्य-मांस आदि का धार्मिक और सामाजिक जीवन मे निषेध। ये तथा इनके जैसे लक्षण जो प्रवर्तक-धर्म के आचारो और विचारो से जुदा पडते थे, वे देश मे जड जमा चुके थे और दिन-ब-दिन विशेष बल पकडते जाते थे।

निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय-जैन धर्म

न्यूनाधिक उक्त लक्षणो को धारण करने वाली अनेक सस्थाओं और सम्प्रदायो मे एक ऐसा पुराना निवर्तक-धर्मी सम्प्रदाय था, जो महावीर के पहिले बहुत शताब्दियो से अपने खास ढग से विकास करता जा रहा था। उसी सम्प्रदाय मे पहिले नाभिनदन ऋषभदव, यदुनदन नमिनाथ और काशी राजपुत्र पार्श्वनाथ हो चुके थे या व उस सम्प्रदाय के मान्य पुरुष बन चुके थे। उस सम्प्रदाय के समय-समय पर अनेक नाम प्रसिद्ध रहे। यति, भिक्षु, मुनि अनगार श्रमण आदि जैसे नाम तो उस सम्प्रदाय के लिए व्यवहृत होते थे, पर जब दीर्घ-तपस्वी महावीर उस सम्प्रदाय के मुखिया बने तब सभवत वह सम्प्रदाय निर्ग्रन्थ नाम से विशेष प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि निवर्तक-धर्मानुयायी पन्थो मे ऊँची आध्यात्मिक भूमि पर पहुँचे हुए व्यक्ति के वास्ते जिन शब्द साधारण रूप से प्रयुक्त होता था। फिर भी भगवान महावीर के समय मे और उनके कुछ समय बाद तक भी महावीर का अनुयायी, साधु या गृहस्थ वर्ग 'जैन (जिनानुयायी) नाम से व्यवहृत नही होता था। आज जैन शब्द स महावीर पोषित सम्प्रदाय के त्यागी और गृहस्थ' सभी अनुयायियो का जो बोध होता है इसके लिए पहले 'निर्ग्रन्थ और 'समणोवासग' आदि जैन शब्द व्यवहृत होते थ।

जैन और बौद्ध सम्प्रदाय

इस निर्ग्रन्थ या जैन सम्प्रदाय मे ऊपर सूचित निवृत्तिधर्म के सब लक्षण बहुधा थे ही पर इसमे ऋषभ आदि पूर्वकालीन त्यागी महापुरुषो के द्वारा तथा अत मे ज्ञातपुत्र महावीर के द्वारा विचार और आचारगत ऐसी छोटी-बडी अनेक विशेषताएँ आई थी व स्थिर हो गई थी कि जिनसे ज्ञातपुत्र-महावीरपोषित यह सम्प्रदाय दूसरे निवृत्तिगामी सम्प्रदायो मे खास जुदारूप धारण किए हुए था। यहाँ तक कि यह जैन सम्प्रदाय बौद्ध सम्प्रदाय स भी खास फर्क रखता था। महावीर और बुद्ध न केवल समकालीन ही थे, बल्कि वे बहुधा एक ही प्रदेश मे विचरने वाले तथा समान और समकक्ष अनुयायियो को एक ही भाषा मे उपदेश करते थ। दोनो के मुख्य उद्देश्य म कोई अतर नही था, फिर भी महावीर पोषित और बुद्धसचालित सम्प्रदायो मे शुरू से ही खास अतर रहा, जो ज्ञातव्य है। बौद्ध सम्प्रदाय बुद्ध को ही आदर्श रूप मे पूजता है और बुद्ध के ही उपदेशो का आदर करता है, जबकि जैन सम्प्रदाय महावीर आदि को इष्ट देव मानकर उन्ही के वचनो को मान्य रखता है। बौद्ध चित्तशुद्धि के लिए ध्यान और मानसिक सयम पर जितना जोर देते है उतना जोर बाह्य तप और देहदमन पर नही। जैन ध्यान और मानसिक सयम के अलावा देहदमन पर भी अधिक जोर देते रहे। बुद्ध का जीवन जितना लोगो मे हिलने-मिलने वाला व उनके उपदेश जितने सीधे-सादे लोकसेवागामी है, वैसा महावीर का जीवन तथा उपदेश नही है क्योकि भगवान महावीर त्याग व सयम पर अधिक बल देते थे। बौद्ध अनगार की बाह्य चर्या उतनी नियत्रित नही रही, जितनी जैन अनगारो की। इसके सिवाय और भी अनेक विशेषताएँ है, जिनके कारण बौद्ध सम्प्रदाय भारत के समुद्र और पर्वतो की सीमा लाँघकर उस पुराने समय मे भी अनेक भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी सभ्य-असभ्य जातियो मे दूर-दूर तक फैला और करोडो अभारतीयो ने

भी बौद्ध आचार-विचार को अपने-अपने ढग से अपनी-अपनी भाषा मे उतारा व अपनाया जबकि जैन सम्प्रदाय के विषय मे ऐसा नही हुआ।

यद्यपि जैन सम्प्रदाय ने भारत के बाहर स्थान नही जमाया फिर भी वह भारत के दूरवर्ती सब भागो मे धीरे-धीरे न केवल फैल ही गया, बल्कि उसने अपनी कुछ खास विशेषताओ की छाप प्राय भारत के सभी भागो पर थोडी बहुत जरूर डाली।

जैन सस्कृति का प्रभाव

यो तो सिद्धातत सर्वभूतदया को सभी मानते है, पर प्राणीरक्षा के ऊपर जितना जोर जैन-परपरा ने दिया, जितनी लगन से उसने इस विषय मे काम किया उसका नतीजा सारे ऐतिहासिक युग मे यह रहा है कि जहाँ-तहाँ और जब-जब जैन लोगो का एक या दूसरे क्षेत्र मे प्रभाव रहा सर्वत्र आम जनता का प्राणीरक्षा का प्रबल सस्कार पडा है। यहा तक कि भारत के अनेक भागो मे अपने को अजैन कहने वाले तथा जैन-विरोधी समझने वाले साधारण लोग जीव-मात्र की हिसा से नफरत करने लगे हैं। अहिसा के इस सामान्य सस्कार के ही कारण अनेक वैष्णव आदि जैनेतर परपराओ के आचार-विचार पुरानी वैदिक परपरा से बिल्कुल जुदा हो गए है। तपस्या के बारे मे भी ऐसा ही हुआ है। त्यागी हो या गृहस्थ सभी जैन तपस्या के ऊपर अधिकाधिक झुकते रहे है। इसका फल पडौसी समाजो पर इतना अधिक पडा है कि उन्होने भी एक या दूसरे रूप से अनेक विधि सात्विक तपस्याएँ अपना ही ली है और सामान्य रूप मे साधारण जनता जैनो की तपस्या की ओर आदरशील रही है। यहाँ तक अनेक बार मुसलमान सम्राट तथा दूसरे समर्थ अधिकारियो ने तपस्या से आकृष्ट होकर जैन-सम्प्रदाय का बहुमान ही नही किया है, बल्कि उसे अनेक सुविधाएँ भी दी है, मद्य-माँस आदि सात व्यसनो को रोकने के तथा उन्हे घटाने के लिए जैन-वर्ग ने इतना अधिक प्रयत्न किया है कि जिससे वह व्यसनसेवी अनेक जातियो मे सुसस्कार डालने मे समर्थ हुआ है। यद्यपि बौद्ध आदि दूसरे सम्प्रदाय पूरे बल से इस सुसस्कार के लिए प्रयत्न करते रहे पर जैनो का प्रयत्न इस दिशा मे आज तक जारी है और जहाँ जैनो का प्रभाव ठीक-ठीक है वहाँ इस स्वैर-विहार के स्वतत्र युग मे भी मुसलमान और दूसरे माँसभक्षी लोग भी खुल्लम-खुल्ला माँस-मद्य का उपयोग करने मे सकुचाते है। लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा था कि गुजरात आदि प्रान्तो मे जो प्राणीरक्षा और निर्मास भोजन का आग्रह है, वह जैन-परपरा का ही प्रभाव है। जैन-विचारसरणी का एक मौलिक सिद्धात यह है कि प्रत्येक वस्तु का विचार विनिमय अधिकारिक पहलुओ और अधिकाधिक दष्टिकोणो से करना और विवादास्पद विषय मे बिल्कुल अपने विरोधी पक्ष के अभिप्राय को भी उतना ही महानुभूति अपने पक्ष की ओर हो और अन्त मे समन्वय पर ही जीवन-व्यवहार का फैसला करना। यो तो यह सिद्धात सभी विचारको के जीवन मे एक या दूसरे रूप से काम करता ही रहता है। इसके सिवाय प्रजाजीवन न तो व्यवस्थित बन सकता है और न शान्तिलाभ कर सकता है। पर जैन विचारको ने उस सिद्धात की इतनी अधिक चर्चा की है और उस पर इतना अधिक जोर दिया है कि जिससे कट्टर मे कट्टर विरोधी सम्प्रदायो को भी कुछ न कुछ प्रेरणा मिलती ही रही है। रामानुज का विशिष्टाद्वैत उपनिषद् की भूमिका के ऊपर अनेकान्तवाद ही तो है।

जैन-परपरा के आदर्श

जैन सस्कृति के हृदय को समझने के लिए हमे थोडे से उन आदर्शो का परिचय करना होगा जो पहिले से आज तक जैन-परपरा मे एक समान मान्य है और पूजे जाते है। सबसे पुराना आदर्श जैन-परपरा के सामने ऋषभदेव और उनके परिवार का है। ऋषभदेव ने अपने जीवन का बहुत बडा भाग उन जवाबदेहियो का बुद्धिपूर्वक अदा करने मे बिताया जो प्रजापालन की जिम्मेदारी के साथ उन पर आ पडी थी। उन्होने उस समय के बिल्कुल अपढ लोगो को लिखना-पढना सिखाया, कुछ काम धधा न जानने वाले वनचरो को उन्होने खेती-बाडी तथा बढई, कुम्हार आदि के जीवनोपयोगी धधे सिखाए, आपस मे कैसे बरतना, कैसे समाज-नियमो का पालन करना यह भी सिखाया। जब उनको महसूस हुआ कि अब बडा पुत्र भरत प्रजाशासन की सब जवाबदेहियो को निबाह लेगा तब उसे राज्य-भार सौपकर गहरे आध्यात्मिक प्रश्नो की छानबीन के लिए उत्कट तपस्वी होकर घर से निकल पडे।

ऋषभदेव की दो पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की थी। उस जमाने मे भाई-बहन के बीच शादी की प्रथा प्रचलित थी। सुन्दरी ने इस प्रथा का विरोध करके अपनी सौम्य तपस्या से भाई भरत पर ऐसा प्रभाव डाला कि जिससे भरत ने न केवल सुदरी

के साथ विवाह करने का विचार ही छोड़ा, बल्कि वह उसका भक्त बन गया। ऋग्वेद के यमीसूक्त मे भाई यम ने भगिनी यमी की लग्न-माँग को अस्वीकार किया, जबकि भगिनी सुन्दरी ने भाई भरत की लग्न-माँग को तपस्या मे परिणत कर दिया और फलत भाई-बहिन के लग्न की प्रतिष्ठित प्रथा नाम-शेष हो गई।

ऋषभ के भरत और बाहुबली नामक पुत्रो मे राज्य के निमित्त भयानक युद्ध शुरू हुआ। अत मे द्वंद्व-युद्ध का फैसला हुआ। भरत का प्रचण्ड प्रहार निष्फल गया। जब बाहुबली की बारी आई और समर्थतर बाहुबली को जान पडा कि मेरे मुष्टि-प्रहार से भरत की अवश्य दुर्दशा होगी तब उसने उस भ्रातृविजयाभिमुख क्षण को आत्मविजय मे बदल दिया। उसने यह सोचकर कि राज्य के निमित्त लड़ाई मे विजय पाने और वैर-प्रतिवैर तथा कुटुम्ब-कलह के बीच बोने की अपेक्षा सच्ची विजय अहकार और तृष्णा जय मे ही है। उसने अपने बाहुबल को क्रोध और अभिमान पर ही जमाया और अवैर से वैर के प्रतिकार का जीवन दृष्टात स्थापित किया। फल यह हुआ कि अत मे भरत का भी लोभ तथा गर्व खर्व हुआ।

एक समय था जब कि केवल क्षत्रियो मे ही नही पर सभी वर्गों मे माँस खाने की प्रथा थी। नित्य प्रति के भोजन, सामाजिक उत्सव, धार्मिक अनुष्ठानो के अवसर पर पशु-पक्षियो का वध ऐसा ही प्रचलित और प्रतिष्ठित था, जैसा आज नारियलो और फलो को चढ़ाना। उस युग मे यदुनदन नेमिकुमार ने एक अजीब कदम उठाया। उन्होने अपनी शादी पर भोजन के वास्ते कत्ल किए जाने वाले निर्दोष पशु-पक्षियो की आर्त मूक वाणी से सहसा पिघलकर निश्चय किया कि वे ऐसी शादी न करेगे, जिसमे अनावश्यक और निर्दोष पशु-पक्षियो का वध होता हो। उस गभीर निश्चय के साथ वे सबकी सुनी-अनसुनी करके बारात से शीघ्र वापिस लौट आए। द्वारका से सीधे गिरनार पर्वत पर जाकर उन्होने तपस्या की। कौमार्यवयमे राजपुत्री का त्याग और ध्यान तपस्या का मार्ग अपनाकर उन्होने उस चिर प्रचलित पशु-पक्षी वध की प्रथा पर आत्मदृष्टात मे इतना सख्त प्रहार किया कि जिसमे गुजरात भर मे और गुजरात के प्रभाव वाले दूसरे प्रान्तो मे भी वह प्रथा नाम-शेष हो गई और जगह-जगह आज तक चली आने वाली 'पिंजरापोलो' की लोकप्रिय सस्थाओ मे परिवर्तित हो गई।

भ पार्श्वनाथ का जीवन-आदर्श कुछ और ही रहा है। उन्होने एक बार दुर्वासा जैसे सहजकोपी तापस तथा उनके अनुयायियो की नाराजगी का खतरा उठाकर भी एक जलते साप को गीली लकडी मे बचाने का प्रयत्न किया। फल यह हुआ कि आज भी जैन प्रभाव वाले क्षेत्रो मे कोई साप तक को नही मारता।

दीर्घ तपस्वी महावीर ने भी एक बार अपनी अहिंसावृत्ति की पूरी साधना का ऐसा ही परिचय दिया। जब जगल मेवेध्यानस्थ खडे थे एक प्रचण्ड विषधर ने उन्हे डँस लिया, उस समय वे न केवल ध्यान मे अचल ही रहे, बल्कि उन्होने मैत्री-भावना का उस विषधर पर प्रयोग किया, जिससे वह "अहिसा-प्रतिष्ठाया तत्सनिधौ वैरत्याग" इस योगसूत्र का जीवित उदाहरण बन गया। अनेक प्रसगो पर यज्ञयागादि धार्मिक कार्यों मे होने वाली हिंसा को तो रोकने का भरसक प्रयत्न वे आजन्म करते ही रहे। ऐसे ही आदर्शों से जैन सस्कृति उत्प्राणित होती आई है और अनेक कठिनाइयो के बीच भी उसने अपने आदर्शो के हृदय को किसी न किसी तरह सभालने का प्रयत्न किया है, जो भारत के धार्मिक, सामाजिक और राजकीय इतिहास मे जीवित है। जब कभी सुयोग मिला तभी त्यागी राजा तथा मत्री तथा व्यापारी आदि गृहस्थो ने जैन-सस्कृति के अहिंसा, तप और सयम के आदर्शों का अपने ढग से प्रचार किया है।

सस्कृति का उद्देश्य

सस्कृति मात्र का उद्देश्य है मानवता की भलाई की ओर आगे बढ़ना। यह उद्देश्य तभी वह साध सकती है, जब वह अपने जनक और पोषक राष्ट्र की भलाई मे योग देने की ओर सदा अग्रसर रहे। किसी भी सस्कृति के बाह्य अग केवल अभ्युदय के समय ही पनपते है और ऐसे ही समय वे आकर्षक लगते है। पर सस्कृति के हृदय की बात जुदी है। समय आफत का हो या अभ्युदय का अनिवार्य आवश्यकता सदा एक-सी बनी रहती है। कोई भी सस्कृति केवल अपने इतिहास और पुरानी यशोगाथाओ के सहारे न जीवित रह सकती है और न प्रतिष्ठा पा सकती है, जब तक वह भावी-निर्माण मे योग न दे। इस दृष्टात से भी जैन-सस्कृति पर विचार करना सगत है। हम ऊपर बतला आए है कि यह सस्कृति मूलत प्रवृत्ति अर्थात पुनर्जन्म से छुटकारा पाने की दृष्टि मे आविर्भूत हुई। इसके आचार-विचार का सारा ढाँचा उसी लक्ष्य के अनुकूल बना है। पर हम यह भी देखते है कि आखिर मे वह सस्कृति व्यक्ति तक सीमित न रही। उसने विशिष्ट समाज का रूप धारण किया।

निवृत्ति और प्रवृत्ति

समाज कोई भी हो वह एकमात्र निवृत्ति की भूल-भूलैयो पर न जीवित रह सकता है और न वास्तविक निवृत्ति ही साध सकता है। यदि किसी तरह निवृत्ति ही को मानने वाले और सिर्फ प्रवृत्तिचक्र का ही महत्त्व मानने वाले आखिर मे उस प्रवृत्ति के तूफान और आँधी मे ही फँसकर मर सकते हैं तो वह भी उतना ही सच है कि प्रवृत्ति का आश्रय लिए बिना निवृत्ति हवा का किला ही बन जाता है। ऐतिहासिक और दार्शनिक सत्य यह है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति एक ही मानव कल्याण के सिक्के के दो पहलू हैं। कोई भी बीमार केवल अपथ्य और कुपथ्य से निवृत्त होकर जीवित नही रह सकता। उसे साथ ही साथ पथ्यसेवन करना भी चाहिए। शरीर से दूषित रक्त को निकाल डालना जीवन के लिए अगर जरूरी है तो उतना ही जरूरी उसमे नए रुधिर का सचार करना भी हैं।

निवृत्तिलक्षी प्रवृत्ति

ऋषभ से लेकर आज तक निवृत्तिगामी कहलाने वाली जैन-सस्कृति भी जो किसी न किसी प्रकार जीवित रही है, वह एकमात्र निवृत्ति बल पर नही किन्तु कल्याणकारी प्रवृत्ति के सहारे पर। यदि प्रवर्तक-धर्मी ब्राह्मणो ने निवृत्ति मार्ग के सुन्दर तत्वो को अपनाकर एक व्यापक कल्याणकारी सस्कृति का ऐसा निर्माण किया है जो गीता मे उज्जीवित होकर आज नए उपयोगी स्वरूप मे गाँधीजी के द्वारा पुन अपना सस्करण कर रही है तो निवृत्तिलक्षी जैन-सस्कृति को भी कल्याणाभिमुख आवश्यक प्रवृत्तियो का सहारा लेकर ही आज की बदली हुई परिस्थिति मे जीना होगा। जैन-सस्कृति मे तत्वज्ञान और आचार के जो मूल नियम हैं और वह जिन आदर्शों को आज तक पूँजी मानती आई है, उनके आधार पर वह प्रवृत्ति का ऐसा मगलमय योग साध सकती है, जो सबके लिए क्षेमकर हो।

जैन परपरा मे प्रथम स्थान है त्यागियो का, दूसरा स्थान है गृहस्थो का। त्यागियो को जो पाँच महाव्रत धारण करने की आज्ञा है, वह अधिकाधिक सद्‌गुणो मे प्रवृत्ति करने की सद्‌गुण पोषक प्रवृत्ति के लिए बल पैदा करने की प्राथमिक शर्त मात्र है। हिंसा, असत्य, चोरी परिग्रह आदि दोषो से बिना बचे सद्‌गुणो मे प्रवृत्ति हो ही नही सकती और सद्‌गुण पोषक प्रवृत्ति को बिना जीवन मे स्थान दिए हिसा आदि से बचे रहना भी सर्वथा असभव है। इस देश मे जो दूसरे निवृत्ति पथो की तरह जैन पथ मे भी एक मात्र निवृत्ति की एकान्तिक साधना की बात करते हैं,वे उक्त सत्य को भूल जाते हैं। जो व्यक्ति सार्वभौम महाव्रतो को धारण करने की शक्ति नही रखता उसके लिए जैन-परपरा मे अणुव्रतो की सृष्टि करके धीरे-धीरे निवृत्ति की ओर बढने का मार्ग भी रखा है। ऐसे गृहस्थो के लिए हिंसा आदि दोषो से अशत बचने का विधान किया है। उसका मतलब यही है कि गृहस्थ पहले दोषो से बचने का अभ्यास करे। पर साथ ही यह आदेश है कि जिस-जिस दोष को वे दूर करे, उस-उस दोष के विरोधी सद्‌गुणो को जीवन मे स्थान देते जाएँ। हिंसा को दूर करना हो तो प्रेम और आत्मौपम्य के सद्‌गुण को जीवन मे व्यक्त करना होगा। सत्य बिना बोले और सत्य बोलने का बल बिना पाए, असत्य से निवृत्ति कैसे होगी? परिग्रह और लोभ से बचना हो तो सतोष और त्याग जैसी पोषक प्रवृत्तियो मे अपने आपको खपाना होगा। इस बात को ध्यान मे रखकर जैन सस्कृति पर यदि आज विचार किया जाए तो आजकल की कसौटी के काल मे नीचे लिखी बाते फलित होती है—

जैन-वर्ग का कर्तव्य

१ देश मे निरक्षरता, वहम और आलस्य व्याप्त है। जहाँ देखो वहाँ फूट ही फूट है। शराब और दूसरी नशीली चीजे जड पकड बैठी हैं। दुष्काल, अतिवृष्टि और युद्ध के कारण मानव-जीवन का एकमात्र आधार पशुधन नामशेष हो रहा है। अतएव इस सबध मे विधायक प्रवृत्तियो की ओर सारे त्यागी वर्ग का ध्यान जाना चाहिए, जो वर्ग कुटुम्ब के बधनो से बरी है, महावीर का आत्मौपम्य का उद्देश्य लेकर घर से अलग हुआ है, और ऋषभदेव तथा नेमिनाथ के आदर्शों को जीवित रखना चाहता है।

२ देश मे गरीबी और बेकारी की कोई सीमा नही है। खेती-बाडी और उद्योग-धधे अपने अस्तित्व के लिए बुद्धि, धन, परिश्रम और साहस की अपेक्षा कर रहे हैं। अतएव गृहस्थो का यह धर्म हो जाता है कि वे सम्पत्ति का उपयोग तथा विनियोग राष्ट्र के लिए करे। वह गाँधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धात को अमल मे लावे। बुद्धिसपन्न और साहसिको का धर्म है कि वे नम्र बनकर ऐसे ही कार्यों मे लग जाएँ, जो राष्ट्र के लिए विधायक हैं। यह विधायक कार्यक्रम उपेक्षणीय नही है, असल मे वह

कार्यक्रम जैन-संस्कृति का जीवन्त अग है। दलितो और अस्पृष्यो को भाई की तरह बिना अपनाए कौन यह कह सकेगा कि मैं जैन हूँ। खादी और ऐसे दूसरे उद्योग जो अधिक से अधिक अहिंसा के नजदीक है और एकमात्र आत्मौपम्य एव अपरिग्रह धर्म के पोषक है, उनको उत्तेजना दिए बिना कौन कह सकेगा कि मै अहिंसा का उपासक हूँ ? अतएव उपसहार मे इतना ही कहना चाहता हूँ कि जैन लोग, निरर्थक आडम्बरो और शक्ति के अपव्ययकारी प्रसगो मे अपनी सस्कृति सुरक्षित है, यह भ्रम छोडकर जैन सस्कृति के हृदय की रक्षा का प्रयत्न करे।

सस्कृति का सकेत

सस्कृति मात्र का सकेत लोभ और मोह को घटाने व निर्मूल करने का है, न कि प्रवृत्ति को निर्मूल करने का। वही प्रवृत्ति त्याज्य है जो आसक्ति के बिना कभी सभव ही नही जैसे कामाचार व वैयक्तिक परिग्रह आदि। जो प्रवृत्तियाँ समाज का धारण, पोषण विकसन करने वाली है, व आसक्तिपूर्वक और आसक्ति के सिवाय भी सभव है अतएव सस्कृति आसक्ति के त्यागमात्र का सकेत करती है।

महावीर वाणी

धर्म

धम्मो मगल मुक्किट्ठ, अहिसा सजमो तवो।
देवा वि त नमसति जस्स धम्मे सया मणो॥

धर्म उत्कृष्ट मगल है। वह अहिसा-सयम-तप रूप है। जिस साधक का मन सदा उक्त धर्म मे रमण करता है, उसे देवता भी नमस्कार करते है।

एगा धम्म पडिमा, ज से आया पज्जवजाए।

धर्म ही एक एसा पवित्र अनुष्ठान है जिससे आत्मा का शुद्धिकरण होता है।

अहिसा

एव खु नाणियो सार, ज न हिसइ किचण।

किसी भी प्राणी की हिसा न करना ही ज्ञानी होने का सार है।

समया सव्व भूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे।

शत्रु अथवा मित्र सभी प्राणियो पर समभाव की दृष्टि रखना ही अहिसा है।

सव्वे जीवा वि इच्छति, जीविउ न मरिज्जिउ।

सभी जीव जीना चाहते है मरना कोई नही चाहता।

सत्य

त सच्च खु भगव।

वह सत्य ही भगवान है

सच्च लोगम्मि सार भूय गम्भीर तर महासमुद्दाओ।

इस लोक मे सत्य ही सार तत्व है। यह महासमुद्र से भी अधिक गम्भीर है।

लुद्धो लोलो भणेज्ज अलिय।

मनुष्य लोभ से प्रेरित होकर झूठ बोलता है।

मैं जैन-संस्कृति हूँ

श्री डॉ नरेन्द्र भानावत, एम ए ,पी एच डी

मैं जैन-संस्कृति हूँ! विरोधी परिस्थितियो मे मेरा जन्म हुआ। मैने समन्वय का वातावरण बनाकर अपने जीवन का विकास किया। मैं स्वय ही नही जीना चाहती, दूसरो को जीवित रखने का भी प्रयत्न करती हूँ।

मैं पूर्ण अहिंसक हूँ। हिंसा के विरुद्ध मैंने सर्वप्रथम आवाज बुलन्द की। यज्ञो मे बलि होने वाले मूक पशुओ का क्रन्दन मुझ से न सुना गया न देखा गया। मैंने भावयज्ञ की कल्पना की। उसकी वेदी पर अपने असत्य, अहकार अह और मूर्च्छा को बलिदान कर मैं आनन्दित हो उठी। मै शारीरिक हिंसा का जितना विरोध करती हूँ उतना ही विरोध मानसिक हिंसा का भी। आज मानसिक हिंसा ने ससार को जितना त्रस्त, सतप्त एव अशात बनाया है उतना पहले कभी नही। इसीलिए मै अनेकात की बात करती हूँ। एक वस्तु को अनेक दृष्टियो से देखती हूँ। एक कोष को दूसरे कोष से मिलाती हूँ। मैं विचारो का त्रिभुज बनाती हूँ। चिन्तको को विचार-सहिष्णुता के धरातल पर ला खडा करती हूँ। शारीरिक हिंसा की दवा मेरे लिए अहिंसा है तो मानसिक हिंसा की दवा मेरे लिए अनेकात है। अहिंसा मेरा हृदय है, अनेकान्त मेरा मस्तिष्क।

मै मानव-केंद्रित हूँ। मानव की परमात्म शक्ति मे पूरी आस्था रखती हूँ। जो मुझे ससार से विरत मानते है, वे गलती करते है। मै निवृत्ति प्रवृत्ति के दोनो छोरो को मिलाती हूँ। प्रवृत्ति का शोधन करती हूँ। जो मुझे कायर कहते है वे भ्रमित है, मैं वीरता की सीमा निश्चित करती हूँ। यो क्षमा मेरा जीवन है पर मेरी क्षमा विवशता नही लाचारी नही, कमजोरी नही, वह पूर्ण क्षमतावान और शक्ति सपन्न है। शक्ति पर सयम, बल पर नियत्रण और आत्मा पर अनुशासन—यही तो मेरे जीवन का परिधान है। मै क्रोध को क्षमा से पानी बना देती हूँ, मान को विनय से झुका देती हूँ, माया को सरलता से अधीन कर लेती हूँ और लोभ को सतोष से जीत लेती हूँ। मनुष्य-मनुष्य मे भेद नही करती। समग्र रूप मे मै मानवता की पुजारिन हूँ।

मै कर्मनिष्ठ एव पुरुषार्थमयी हूँ। हाथ पर हाथ धरे मै किसी अलौकिक शक्ति का अपने स्वार्थ-सहयोग के लिए आह्वान नही करती। मै सबको कर्म करने की प्रेरणा देती हूँ। सत्कर्मों को प्यार करती हूँ। दुष्कर्मों को ठुकरा देती हूँ। मै अकर्मक नही सकर्मक क्रिया हूँ! प्रार्थना भी करती हूँ पर कुछ पाने के लिए नही—अपने पुरुषार्थ को जागृत करने के लिए, अपने प्रयत्न को गति देने के लिए। जब मेरा पुरुषार्थ जाग पडता है तब मै कर्माकर्म से परे हो जाती हूँ। परमात्मा बन जाती हूँ।

मैं आराधिका हूँ। सम्यक्-दर्शन-ज्ञान और चारित्र की आराधना करती हूँ। जो कुछ देखती हूँ निर्मल दृष्टि से, जो कुछ जानती हूँ पवित्र श्रद्धा से और दोनो (दर्शन-ज्ञान) को विषय बनाती हूँ चारित्र का, आचार का। मै ज्ञान की सुई से चारित्र का धागा पिरोती हूँ—

ताकि सुई **गुमे** नही, किसी को **चुभे** नही—

मोक्ष का अधिकारी

मोक्ष का अधिकारी कौन? जिसके अन्तर मे मुमुक्षा—मुक्ति पाने की इच्छा लगी हो।

कषाय से मुक्ति
विकारो से मुक्ति
परिग्रह से मुक्ति

इन तीनो से मुक्ति पाने की इच्छा रखने वाला ही मोक्ष का अधिकारी है।

—आचार्य श्री आनन्द ऋषि

श्रमण संस्कृति : मूल बिन्दु

उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि

सस्कृति एक चितन

सस्कृति एक ऐसा विराट तत्व है जिसमे सभी कुछ समाविष्ट हो जाता है। मानव जीवन के ज्ञान, भाव और कर्म ये तीन पक्ष है, जिसे दूसरे शब्दो मे बुद्धि हृदय और व्यवहार कहा जा सकता है। इन तीनो तत्वो का जब पूर्ण सामजस्य होता है, तब सस्कृति होती है। प्रबुद्ध विचारको ने सस्कृति के चार तत्व माने है (१) तत्वज्ञान, (२) नीति, (३) विज्ञान और (४) कला। इन चारो तत्वो मे सभी कुछ समाविष्ट हो जाता है। एक लेखक ने विज्ञान, दर्शन, धर्म और सस्कृति का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि बाहर की ओर देखना विज्ञान है, अन्दर की ओर देखना दर्शन है और ऊपर की ओर देखना धर्म है, किन्तु सस्कृति मे धर्म, दर्शन और विज्ञान इन तीनो का पूर्ण सामजस्य है अर्थात् सस्कृति मे, धर्म भी है, दर्शन भी है, विज्ञान भी है और कला भी है। यदि एक शब्द मे कहा जाए तो सस्कृति जीवन का सार है।

धर्म, दर्शन, साहित्य और कला ये सभी तत्व मानव जीवन के विकास के श्रेष्ठ फल है। मानव जीवन के प्रयत्नो की उत्कृष्ट उपलब्धि है। सस्कृति राजनीति और अर्थ नीति को पचाकर विराट मनस्तत्व को जन्म देती है। यदि राजनीति और अर्थनीति पथ की साधना है तो सस्कृति साध्य है। बौद्धिक प्यास को शान्त करने हेतु जो कार्य मानव करता है, वे कार्य सास्कृतिक कार्य कहलाते है। मानव अपनी बुद्धि से विचार और कार्य के क्षेत्र मे जो सृजन करता है वह सस्कृति है। पाश्चात्य विचारक मैथ्यू आर्नल्ड ने कहा- 'विश्व के सर्वोच्च कथनो और विचारो का ज्ञान ही सच्ची सस्कृति है।'' सस्कृति अदृश्य जीवन तत्वो की भाँति कुछ रहस्यमय और दुर्बोध है। वह ठीक-ठीक शब्दो की पकड मे नही आती, तथापि इतना कहा जा सकता है कि सस्कृति किसी जाति या देश की आत्मा है। इससे उसके सब सस्कारो का बोध हो जाता है, जिसके सहारे वह सामूहिक या सामाजिक जीवन का निर्माण करता है। डाक्टर भगवान दास ने सस्कृति की परिभाषा इस प्रकार की है—मानसिक क्षेत्र मे उन्नति की सूचक उसकी प्रत्यक कृति सस्कृति का अग बनती है। इसमे प्रधान रूप से धर्म, दर्शन सभी ज्ञान विज्ञानो तथा कलाओ सामाजिक और राजनैतिक सस्थाओ एव प्रथाओ का समावेश होता है।

सस्कृति एक अविरोधी तत्व है, जो विरोध को नष्ट कर प्रेम का सुनहरा वातावरण निर्माण करता है। नाना प्रकार की धर्म साधना कलात्मक प्रयत्न, योग मूलक अनुभूति और तर्क मूलक कल्पना शक्ति से मानव जिस विराट सत्य को अधिगत करता है, वह सस्कृति है। सस्कृति एक प्रकार से विजय यात्रा है, असत् से सत् की ओर, अधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर बढने का उपक्रम है।

गभीर विचारक साने गुरुजी ने लिखा है—जो सस्कृति महान होती है, वह दूसरी सस्कृति को भय नही देती, बल्कि उसे साथ लेकर पवित्रता देती है। गगा की गरिमा इसी मे है कि वह दूसरे के प्रवाह को अपने मे मिला लेती है इसी कारण वह पवित्र, स्वच्छ और आदरणीय कही जा सकती है। लोको मे वही सस्कृति आदर के योग्य होती है, जो विभिन्न धाराओ को साथ लेकर चलती है।

सस्कृति एक सुन्दर सरिता के समान है, जो सदा प्रवाहित होती रहती है। सरिता के प्रवाह को बाँध देने पर सरिता, सरिता नही रहती। वह तो बाँध बन जाता है। इसी तरह सस्कृति जो जन-जन के मन मे धुल-मिल चुकी है, उसे राष्ट्र की सीमा मे सीमित करना उचित नही है। सस्कृति रूपी सरिता को एक सीमा मे आबद्ध करना मानव की भूल है। सरिता की तरह सस्कृति का प्राणतत्व भी उसका प्रवाह है। सस्कृति का अर्थ है प्रतिपल प्रशिक्षण विकास की ओर बढना। सस्कृति विचार, आदर्श भावना और सस्कार-प्रवाह का एक सुसगठित और सुस्थिर सस्थान है जो मानव को सहज ही पूर्वजो से प्राप्त होता है।

सच्ची सस्कृति भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनो को एक सूत्र मे गूँथती है। इसमे पर्व और नूतन का मेल है। कितने ही

व्यक्ति अतीत के भक्त होते हैं। वे उसे ही अच्छा मानकर रुक जाते हैं। किन्तु भूतकाल के गुणधाम तत्वो को ही ग्रहण कर आगे बढना चाहिए। भूतकाल जीवन को तभी शक्ति प्रदान करता है, जब तक उसमे ग्रहण तत्त्व रहता है। भूतकाल वर्तमान का खाद बन कर ही भविष्य के लिए विशेष उपयोगी बनता है। कितने ही व्यक्तियो के मन मे अतीत के प्रति उद्वेग का भाव रहता है। उन्हे भी स्मरण रखना चाहिए कि जीवन एक वृक्ष की भाँति है, वृक्ष को रस ग्रहण करने के लिए जडो की सहायता लेनी पडती है। जडे भूमि मे छिपी रहने पर भी वे वृक्ष को हरा-भरा रखती है। जिस वृक्ष की जडे नष्ट हो गई है, वह वृक्ष हरा-भरा और स्थिर नही रह सकता , अतएव बुद्धिमता यह है कि अतीत के गुणो को ग्रहण कर नवीन उत्साह के साथ वर्तमान के जीवन को बनाना चाहिए, भविष्य के जीवन विकास के लिए। इस प्रकार पुरातन और नूतन का मेल ही उच्च सस्कृति की उपजाऊ भूमि है।

सस्कृति को समुज्ज्वल बनाने के लिए शील की अत्यधिक आवश्यकता है। शील मानव और पशु मे अन्तर करने वाला एक भेदक तत्त्व है। शील मानव का वह परीक्षण प्रस्तर है, जिस पर खरे और खोटेपन की परीक्षा होती है। शील मानव-जीवन के विकास का मूल आधार है। शील ने मानव मन की उद्दाम वृत्तियो को सयमित किया। शील शब्द अनेक अर्थों मे विश्व के विभिन्न साहित्य मे व्यवहृत हुआ है। जैन सस्कृति मे वह पच महाव्रत के रूप मे प्रसिद्ध है,[1] 'वैदिक सस्कृति मे वह यम के रूप मे प्रतिष्ठित है'[2] और बौद्ध सस्कृति मे पचशील के रूप मे विख्यात है। इस प्रकार महाव्रत, यम और शील मानव जीवन के विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए है। शील स हमारी सस्कृति का सबध अतीत काल से रहा है। शील शून्य सस्कृति सस्कृति नही, किन्तु विकृति है।

सस्कृति और सभ्यता

सस्कृति और सभ्यता ये दोनो एक नही है, किन्तु पृथक है। सस्कृति को अग्रेजी मे कल्चर (Culture) कहा जाता है, और सभ्यता को अँग्रेजी मे सिविलिजेशन (Civilization) कहा जाता है। सस्कृति अन्तकरण है तो सभ्यता शरीर है। सस्कृति अपने को सभ्यता के द्वारा व्यक्त करती है। सस्कृति वह साँचा है जिसमे समाज के विचार ढलते है, वह बिन्दु है जहाँ से जीवन की समस्याएँ देखी जाती है। समाज-जीवन के शरीर को लेकर जिन बाह्याचारो की सृष्टि हुई है, मानव-मन की बाह्य प्रवृत्ति मूलक प्रेरणाओ का जो विकास हुआ वह सभ्यता है और अन्तर्मुखी प्रवृत्तियो से जो कुछ भी निर्माण हुआ है, वह सस्कृति है। दीपक की लौ सभ्यता है उसके अन्दर मे भरा हुआ स्नेह सस्कृति है। सभ्यता जीवन का रूप है और सस्कृति उसका सौन्दर्य है, जो रूप से भिन्न भी है और अभिन्न भी-जो उसके पीछे मे झाँकता है और जीवन के अवगुण्ठन से भी बाहर फूट पडता है, परन्तु वस्तुत वह अन्तर मे समाया हुआ है। एतदर्थ सस्कृति जीवन तत्वो की तरह रहस्यमय और दुर्बोध है। वह किसी जाति और देश की आत्मा है। सस्कृति की अपेक्षा सभ्यता जल्दी बनती और बिगडती है उसका अनुकरण भी शीघ्र किया जा सकता है, किन्तु सस्कृति न पतलून पहनने से बदलती है और न धोती पहनने से, वह तो विचारो के रगड से बनती है, बिगडती है और बदलती है। जीवन के जिस क्षेत्र मे मानव के शारीरिक सुखो को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है, उसके विकास को सभ्यता कहते है और जहाँ पर मन और आत्मा को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है, उन प्रयत्नो को हम सस्कृति के नाम से पुकारते हैं।

डॉक्टर बैजनाथ पुरी सभ्यता और सस्कृति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखते है– सस्कृति आभ्यन्तर है और सभ्यता बाह्य है। सस्कृति को अपनाने मे देर लगती है, पर सभ्यता का अनुकरण सरलता से किया जा सकता है। सस्कृति का सबध निश्चय ही धार्मिक विश्वास है और सभ्यता सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियो से बँधी हुई है। एक दूसरे विद्वान ने लिखा है–सभ्यता मनुष्य के मनोविकारो की द्योतक है, सस्कृति आत्मा के अभ्युत्थान की प्रदर्शिका है। सभ्यता मनुष्य को प्रगतिवाद की ओर ले जाने का सकेत करती है, सस्कृति उसकी आन्तरिक और मानसिक कठिनाइयो पर काबू पाने मे सहायक सिद्ध होती है।

---

१ अहिंससच्च च अतेणग च
तत्तो य बम्भ च अपरिग्गह च।
पडिवज्जिया पच महव्वयाणि
चरिज्ज धम्म जिणदेसिय विऊ।—उत्तराध्ययन २१/१२

२ अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा।—योगदर्शन २/३०

पाश्चात्य विद्वान टाइलर सभ्यता और संस्कृति को एक दूसरे का पर्यायवाची मानता है। वह संस्कृति के लिए सभ्यता व परंपरा शब्द का भी प्रयोग करता है। प्रसिद्ध इतिहासकार टायनवी इसके विपरीत संस्कृति शब्द का प्रयोग करना पसन्द नहीं करता, अपितु वह सभ्यता शब्द का प्रयोग करना पसन्द करता है। किसी अन्य विद्वान ने भी कहा है कि सभ्यता किसी संस्कृति की चरमावस्था होती है। हर संस्कृति की अपनी सभ्यता होती है। सभ्यता संस्कृति की अनिवार्य परिणति है। संस्कृति विस्तार है तो सभ्यता कठोर स्थिरता है।

संस्कृति को भौतिक और आध्यात्मिक इन दो भागो में विभक्त किया जा सकता है। भौतिकवादी संस्कृति को सभ्यता कहते है। इसमें भवन, असन वसन, वाहन आदि समस्त भौतिक साधन आ जाते है कला का संबंध इसी से है। कला मानवीय जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। संस्कृति को मन और प्राण कहा जाए तो कला उसका शरीर है। संस्कृति की इसलिए आवश्यकता है कि भविष्य के विचारो की दासता से मानव की रक्षा हो और कला इसलिए आवश्यक है कि कुरूपता से बचा जाए। कला की उपासना विलास के लिए नहीं, विकास के लिए होनी चाहिए।

भौतिकवादी संस्कृति का प्रचार पाश्चात्य देशो में अधिक हुआ और आध्यात्मवादी संस्कृति का प्रचार भारतवर्ष में। यही कारण है कि पाश्चात्य देशवासी सभ्यता को अधिक प्रधानता देते है और पौर्वात्य संस्कृति को। स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि यूरोप में चीजो का इस दृष्टि से देखा जाता है कि वह धनोपार्जन में कहाँ तक सहायक होगी। भारत में यह परख की जाती है कि इसमें मोक्ष लाभ होगा या नहीं। न हर यूरोपियन लोभी है, न हर भारतीय मुमुक्षु , परन्तु इन दोनो दृष्टियो की प्रधानता अस्वीकार नहीं की जा सकती।भारतीय आदर्शवादी है तो यूरोपियन या अमेरिकन व्यवहारवादी और वस्तुस्थिति दृष्टा है। पाश्चात्य देशो का लक्ष्य इहलोक है तो पौर्वात्यो का लक्ष्य परलोक है। जहाँ पर दोनो के ध्येय मे इतना अन्तर है, वहाँ साधनो में भेद होगा ही। एक स्थान पर संग्रह का आदर है तो दूसरे स्थान का त्याग का। एक स्थान पर धर्म सिंहासन का दरबारी होगा तो दूसरे स्थान पर मुकुट लंगोटी को नमस्कार करेगा। दोनो देशो के आचार-विचार मे, रहन-सहन में शिक्षा-दीक्षा मे साहित्य और कला मे, आकाश-पाताल का अन्तर होना स्वाभाविक है।

तात्पर्य यह है कि पाश्चात्य संस्कृति जड प्रधान है और पौर्वात्य संस्कृति चेतन प्रधान है। पौर्वात्य,संस्कृति का केन्द्र बिन्दु आत्मा रहा है। उन्होंने आत्मा के चिन्तन मनन और निदिध्यासन पर अधिक बल दिया। भारतीय चिन्तन का मुख्य लक्ष्य आत्मा को खोज करना रहा है। इसी कारण भारतीय आचार व नीतिशास्त्र ने भी ऐसी ही आचार-प्रणालिका निर्माण की जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आत्म-शुद्धि या आत्म विकास में सहयोगी हो, किन्तु पाश्चात्य देशो में इस प्रकार आत्म-विषयक स्फूर्तिजिज्ञासा का अभाव है। वहाँ पर भौतिक तत्त्व की इतनी अधिक प्रधानता है कि आत्म तत्त्व उपेक्षणीय बन गया है। पौर्वात्य संस्कृति का झुकाव मुख्यत त्याग, वैराग्य आत्मानुशासन की ओर रहा है, तो पश्चात्य संस्कृति का झुकाव भौतिक सुख समृद्धि की ओर। पौर्वात्य संस्कृति साधक को प्रतिफल, प्रतिक्षण आत्म निरीक्षण, आत्मशोधन एव परमात्म पद की उपलब्धि के लिए उत्प्रेरित करती है , आत्मानुशासन संयम और सदाचार का पुनीत पाठ पढाती है। पालन में झूलने वाले नवजात शिशुओं का भी-"शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसारमायापरिवर्जितोऽसि"की लोरियाँ सुनाकर आध्यात्मिक उच्च संस्कार अंकुरित किए जाते है। यहाँ पर 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य " तथा 'आया हु मुणेयव्वो" 'आत्मा को देखना चाहिए आत्मा का मनन अनुसंधान करना चाहिए' के स्वर निरंतर मुखरित होते रहे है। जबकि पाश्चात्य संस्कृति नित्य नए भौतिक अनुसंधान, सुख समृद्धि की असीम लालसा एव आधिभौतिक समृद्धि की प्रतिस्पर्धा मे ही मानव को बेतहाशा दौडाती रही है। उन्होंने प्रकृति और परमाणु पर अपना अध्यवसाय केन्द्रित कर उनका विश्लेषण किया, विज्ञान के क्षेत्र मे नए-नए चमत्कार पूर्ण प्रयोग किए। आज सर्वत्र विज्ञान की गूँज है। विज्ञान अपनी अभिनव चमत्कृतियो से मानव को आश्चर्यान्वित कर रहा है वही मानो जीवन का स्वर्णिम पथ हो। इतिहास, गणित भूगोल, भूगर्भ पदार्थ, कला कृषि, शिक्षा, मनोविज्ञान, शरीर-विज्ञान, आणविक शस्त्रास्त्र आदि सभी क्षेत्रो मे विज्ञान के अद्भुत प्रभाव से मानव प्रभावित है। विज्ञान की प्रगति के नित-नूतन अध्याय जुड़ते जा रहे है।

विज्ञान की प्रगति सभ्यता की प्रगति है। सभ्यता शरीर का गुण है। विज्ञान की सभी सेवाएँ शरीर के लिए है, आत्मा के लिए नहीं। विज्ञान ने आत्मा के लिए आज तक कोई प्रयास नहीं किया है, यही कारण है कि सभ्यता का चरमो विकास होने पर भी वह मानव के लिए वरदान नहीं अपितु अभिशाप ही सिद्ध हो रही है। वह विश्व के भाग्य विधाताओं के लिए चिन्ता का कारण

बन गई है, अत उस पर सस्कृति के नकेल की आवश्यकता है। जहाँ पर सस्कृति रहती है वहाँ पर सभ्यता रहती ही है, किन्तु जहाँ सभ्यता रहती है वहाँ सस्कृति अनिवार्य रूप से रहे यह आवश्यक नही है। सस्कृत व्यक्ति सभ्य होता ही है पर सभ्य व्यक्ति सस्कृत हो भी सकता है और नही भी हो सकता। रावण परम विद्वान् था, शक्तिशाली भी था, उसने विद्या और शक्ति का दुरुपयोग किया इसलिये वह 'राक्षस' कहलाया। आज ससार मे विद्या की कमी नही है शक्ति की भी कमी नही है, बल्कि पूर्वकाल मे अधिक वृद्धि हुई है, इन सभी की वृद्धि का अर्थ है केवल सभ्यता की वृद्धि। जब सस्कृति की वृद्धि नही होती, केवल सभ्यता की ही वृद्धि होती है तब वह मानव जाति को खतरे मे डाल देती है, अत पौर्वात्य सस्कृति मे सभ्यता सस्कृति की चेरी बनकर रही है। सस्कृति की प्रवृत्ति महाफल देने वाली होती है। सास्कृतिक कार्य लघुबीज के समान होते है, किन्तु वह बीज ही बडा वृक्ष बन जाता है, कल्पवृक्ष की तरह फल देने वाला होता है। जीवन की उन्नति और विकास के लिए सस्कृति की आवश्यकता है उनसे कम महत्व सस्कृति का नही है। दोनो ही एक ही रथ के दो पहिए हैं। एक दूसरे के पूरक है। एक के बिना दूसरे की कुशल नही है। जो विचारक है वे दोनो की आवश्यकता पर जोर देते रहे है। वस्तुत उन्नति का यही राजमार्ग है। आत्मा को भूलकर शरीर की रक्षा करना ही पर्याप्त नही है। सस्कृति जीवन के लिए परम आवश्यक है। वह जीवन वृक्ष का सवर्धन करने वाला मधुर रस है।

भारतीय सस्कृति

वस्तुत सस्कृति सार्वदेशिक होती है। परन्तु विशिष्ट गुणो के आरोप से उसका रूप देशिक और राष्ट्रीय होता है। देश भेद की दृष्टि से अनेक मानव है और उनकी अनेक सस्कृतियाँ हैं। यहाँ नानात्व अनिवार्य है वह नानात्व मानव जीवन की झझट नही किन्तु सजावट है। देश काल की सीमा मे सीमित मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध किसी एक सस्कृति से ही सभव है। वही सस्कृति हमारे मन मे विचारो म रमी रहती है, वही हमारे जीवन का सस्कार करती है। विश्व मे लाखो करोडो स्त्रियाँ और पुरुष हैं, किन्तु जो हमारे माता पिता है उन्ही के गुण हमारे मे आते है हम उन्ही गुणो को अपनाते है। वैसे ही सस्कृति का भी सम्बन्ध है। वह सच्चे अर्थो मे हमारी धात्री है। एक सस्कृति मे निष्ठा रखने का अर्थ विचारो को सकुचित करना नही है, किन्तु बात यह है कि यदि हम एक सस्कृति के मर्म को समझ जायेग तो अन्य सस्कृतियो के रहस्य को भी सहज व सरल रूप मे समझ सकेंगे। अपने केन्द्र की उन्नति ही बाह्य विकास की नीव है। कहावत भी है 'घर खीर तो बाहर भी खीर, घर मे एकादशी तो बाहर भी सूना। जब हमारी एक सस्कृति मे निष्ठा पक्की होगी तो हमारे मन की परिधि विस्तृत होगी, हमारा हृदय विराट् और विशाल होगा।

भारतीय सस्कृति का उच्चारण करते ही भारत देश की सस्कृति ऐसा भान सबके अन्तर्मानस मे होने लगता है। इसका कारण यही है कि हम उस स्थान की मर्यादा मे सोचने लगते है, किन्तु भारतीय सस्कृति का अर्थ है प्रकाश के मार्ग मे अनुष्ठान करने से प्राप्त होने वाली सस्कार सपन्नता। भारत, भा-प्रकाश मे या प्रकाश के मार्ग मे, रत—दत्तचित होकर अनुष्ठान करने से जो सस्कार सपन्नता मानव के मन मे बढती है वह भारतीय सस्कृति है। आन्तरिक स्वरूप की दृष्टि से भारतीय सस्कृति सार्वदेशिक है किंतु कतिपय आदर्शों एव विशिष्टताओ पर अधिक बल देने से उसका बाह्य रूप भी है। अपने दीर्घ अनुभव, तप पूत ज्ञान और सूक्ष्म चिन्तन के द्वारा भारत के आत्मदर्शी ऋषि इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आत्म साक्षात्कार ही मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है।

भारतीय सस्कृति खडी भूमि है पर उसका सिर आकाश की ओर उठा हुआ है। मानव चलता जमीन पर है पर वह देखता है आगे या ऊपर की ओर वैसे ही भारतीय सस्कृति का उपासक अन्य सासरिक कार्य करता हुआ भी अपनी दृष्टि आत्मा की ओर रखेगा। वह कमल की तरह कीचड मे पैदा होकर के भी उससे निर्लिप्त रहेगा।

मानव समाज मे दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ है—(१) केन्द्रोन्मुखी और (२) वृत्तोन्मुखी। पहली प्रवृति मे परिधि स केन्द्र की ओर जाया जाता है कही भी रहे किन्तु केन्द्र मे बँधा रहता है, वह केन्द्र मे ही ध्यानस्थ रहता है। दूसरी प्रवृत्ति मे केन्द्र से परिधि की ओर बढा जाता है। भारतीय सस्कृति केन्द्रोन्मुखी है। वह जगत मे रहकर के भी आदर्शोन्मुखी है। बाहर मे रहकर भी अन्तस्थ और आत्मस्थ है। इसके विपरीत पाश्चात्य सस्कृति वृतोन्मुखी है, बाह्य प्रसारी है, वह केन्द्र स बाहर की ओर जाती है, केन्द्र से दूर फैलने की ओर उसकी प्रवृत्ति है। इन दो प्रवृत्तियो मे ही दो सस्कृतियो का जन्म हुआ, एक त्याग की ओर बढी और दूसरी

भोग की ओर। भारतीय सस्कृति का आदर्श राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध और गाँधी है। राम की मर्यादा, कृष्ण का कर्मयोग, महावीर की सर्वभूत हितकारी अहिंसा और अनेकान्त, बुद्ध की करुणा गाँधी की धर्मानुप्राणित राजनीति और सत्य का प्रयोग ही भारतीय सस्कृति है।

'दयता, दीयता दम्यताम्' इस एक सूत्र मे ही भारतीय सस्कृति का सम्पूर्ण सार आ जाता है। दया, दान और दमन ही भारतीय सस्कृति का मूल है। मानव की क्रूर वृत्ति को नष्ट करने के लिए दया की आवश्यकता है, सग्रह वृत्ति को मिटाने के लिए दान की जरूरत है और भोग के उपशान्ति हेतु दमन आवश्यक है। वेद दान का, बुद्ध दया का और जिन दमन का प्रतीक है।

भारतीय सस्कृति की अनेक विशेषताएँ है जो अन्य सस्कृतियो से इस सस्कृति को पृथक् करती हैं। विश्व की समस्त प्राचीन सस्कृतियो का यदि हम तुलनात्मक अध्ययन करे तो प्रत्येक सस्कृति मे भारतीय सस्कृति के बीज सन्निहित मिलते हैं। मिस्र, असीरिया, ईरान, बेबीलोनिया, चीन और रोम की सस्कृति बहुत पुरानी मानी जाती है, किन्तु इन देशो मे प्राप्त पुरातत्त्व सामग्री मे भारतीय सस्कृति का व्यापक और प्रमुख प्रभाव परिलक्षित होता है। इन सस्कृतियो मे कितनी ही सस्कृतियो का आज अस्तित्व नही है, वे विनष्ट हो चुकी है पर भारतीय सस्कृति आज भी जीवित है। वेद, उपनिषद् , आगम और त्रि पटक ने जो अध्यात्म धारा प्रवाहित की थी, वह आज भी भारतीयो के लिए प्रेरणा स्रोत है। विदेशियो ने भारत पर अनेक बार आक्रमण किये किंतु वे भारतीय सस्कृति के मूल तत्वो को नष्ट नही कर सके। डाक्टर बैजनाथपरी के शब्दो मे कहा जाय तो 'भारतीय सस्कृति आदि काल से ही यह एक शिक्षा के रूप मे अविचल रही है। अन्य सास्कृति थपेडो ने इस पर आघात किया पर वे इसके मूल स्वरूप को नही बदल सके। वे अपने प्रवाह के कुछ अश इस शिला पर छोड गये जिसको इसने सहर्ष ग्रहण किया भारतीय सस्कृति के मूल तत्त्व को किसी भी रूप मे न तो परिवर्तित कर सके और न ही क्षति ही पहुँचा सके। यह सस्कृति अविचल शिला के रूप मे खडी रही और इसका आज भी वही रूप देखते हैं जो पहले था।'' साराश यह है कि विदेशी आक्रमणो के झझावातो मे भी भारतीय सस्कृति का अखण्ड दीप सदा जलता रहा। कोई भी शक्ति उस दीप को बुझा नही सकी।

जिसे हम भारतीय सस्कृति कहते हैं वह आदि से अन्त तक न आर्यों की रचना है और न द्रविडो का प्रयत्न, अपितु उसके भीतर अनेक जातियो का अशदान है। यह सस्कृति रसायन की प्रक्रिया से तैयार की हुई है जिसके अदर अनेक औषधियो का रस मिला हुआ है। यहाँ आर्य, अनार्य, ग्रीक, शक, कुषण हूण, यूनानी, पारसी, गोड आदि विभिन्न जातियो के विचारो का सम्मिश्रण हुआ है किन्तु वे विचार पयपानीवत् इस प्रकार घुलमिल गये हैं कि उन्हे किसी भी प्रकार पृथक् नही किया जा सकता। आत्मीयता यह भारतीय सस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है। भारत के अतिरिक्त किसी भी देश की सस्कृति मे यह विशेषता नही है। बहुत दिनो पूर्व जर्मन तत्त्व वेत्ता पॉलडसेन भारत आये थे। जब वे अपने देश लौटने लगे तो बम्बई मे आयोजित अपने एक विदाई समारोह मे भारतवासियो के आतिथ्य, औदार्य की प्रशसा करते हुए उन्होने कहा कि बाइबिल मे हमने पढा था कि अपने पडौसी को अपना ही समझना चाहिए। उसे पढकर मै सोचा करता था कि पराये को अपना क्यो समझा जाय इसका हेतु क्या है? सारी बाइबिल मे मुझे इस का हेतु नही मिला, भारत आने पर आत्मा की एकता का अनुभव मैंने उसी प्रकार किया जैसा कि उपनिषदो मे पढा था।[1]

आत्मीयता से भारतीय जनता ने किसे नही मोहा? जो आया, उसे अपना लिया। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का स्वर भारतीय सस्कृति का शाश्वत स्वर है, इसलिए यहाँ क्षुद्र स्वार्थों की जगह परार्थ और परमार्थ की मदाकिनी बही है।

भारत मे जन्म लेने वालो का आचरण और व्यवहार इतना निर्मल और पवित्र है कि उनके पावन चरित्र की छाप प्रत्येक व्यक्ति पर गिरी एतदर्थ ही आचार्य मनु ने कहा—

> एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
> स्वं-स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा ।।

---

१ विशेष लेखक की पुस्तक सस्कृति के अचल मे देखे।
सम्मेलन-पत्रिका लोक-सस्कृति के अचल विशेषाक पृ १८ मनुस्मृति।

भारतवर्ष ने भौतिकवाद की अपेक्षा आत्मवाद पर अधिक बल दिया है। यहाँ के दार्शनिको, मनीषियो और तीर्थकरो का रुझान आत्मा की ओर रहा है। उनकी चिन्तन-धारा का केन्द्र बिन्दु आत्मा है। आत्म-विजय के अभाव मे विश्व-विजय शाति प्रदाता नही है। एतदर्थ ही भगवान महावीर ने कहा एक व्यक्ति हजारो लाखो योद्धाओ का समराङ्गण मे परास्त कर सकता है, फिर भी उसकी वास्तविक विजय नही है। वास्तविक विजय तो आत्म विजय करने मे है[1]। भगवान महावीर के चिन्तन की यही प्रतिध्वनि शाक्यपुत्र तथागत की वाणी मे मुखरित हुई है[2], और कर्म योगी श्री कृष्ण ने भी कुरुक्षेत्र के मैदान मे यही कहा—तुम दूसरे शत्रुओ को जीत कर अपना भला नही कर सकते। अपनी आत्मा को जीतकर उसका उद्धार करके ही तुम अपना उद्धार कर सकते हो—उद्धरेदात्मानात्मानम्[3]। अनन्तकाल से आत्मा को जिन आतरिक शत्रुओ मे घेर रखा है जिसके कारण आत्मा की ज्ञान ज्योति धुधली हो गई है उन शत्रुओ को परास्त करना ही सही विजय है और इसी पर भारतीय सस्कृति ने बल दिया है।

सस्कृत की तीन धाराएँ

भारतीय सस्कृति एक होते हुए भी तीन धाराओ मे प्रवाहित हुई है। एक ही धारा तीन रूपो मे विभक्त हुई है जिसे वैदिक, जैन और बौद्ध धारा कहा गया है, तथापि अपने मूल रूप मे उसके दो ही रूप स्पष्ट परिलक्षित होते है जिसे हम श्रमण सस्कृति और ब्राह्मण सस्कृति के नाम से सम्बोधित करते है। ब्राह्मण सस्कृति का मूल आधार वेद रहा है। वेदो मे जो कुछ भी आदेश और उपदेश उपलब्ध होते है उन्ही के अनुसार जिस परम्परा ने अपने जीवन-यापन की पद्धति का निर्माण किया वह परम्परा ब्राह्मण सस्कृति कहलाई और जिस परम्परा ने वेदो को प्रामाणिक न मानकर समत्व की साधना पर अधिक बल दिया वह *श्रमण सस्कृति कहलाई। श्रमण सस्कृति और वैदिक सस्कृति का मिलाजुला रूप ही भारतीय सस्कृति है।* ब्राह्मण सस्कृति और श्रमण सस्कृति मे अत्यधिक विरोध रहा, महाभाष्यकार पतजलि ने अहि-नकुल एव गो-व्याघ्र जैसे शाश्वत विरोध का उल्लेख किया[4]।

आचार्य हेमचन्द्र ने भी अपने ग्रथ मे इसी बात का समर्थन किया है[5] तथापि यह स्पष्ट है कि एक सस्कृति का प्रभाव दूसरी सस्कृति पर अवश्य ही पडा है और वे एक दूसरे से प्रभावित रही है। आचार-भेद और विचार-भेद होने पर भी उनमे कुछ समानता भी रही हुई है। वैदिक परम्परा मे मूल मे एक धारा होने पर भी न्याय और वैशेषिक, साख्य और योग, पूर्वमीमासा और उत्तरमीमासा जैसी उपधाराएँ समय समय पर मुख्य धारा से फूटती रही है। इधर श्रमण सस्कृति मे भी जैन और बौद्ध धाराओ के अनेक भेद प्रभेद प्राचीन साहित्य मे उपलब्ध होते है जैसे जैन परम्परा मे श्वेताम्बर और दिगम्बर, तथा बौद्ध परम्परा मे हीनयान और महायान। इस प्रकार ये धाराएँ पृथक-पृथक् होते हुए भी अपने -अपने मूल रूप मे समाहित होकर एक हो जाती है।

सस्कृति और उसके स्वरूप के सम्बन्ध मे विस्तार से विवेचन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि सस्कृति, मानव-जीवन का सौन्दर्य है, माधुर्य है, सौरभ है, सस्कृति जीवन की मिठास है, गरिमा है जितनी सस्कृति अपनाई जायेगी, उतना ही जीवन महान बनेगा। जिस समाज और राष्ट्र की सस्कृति प्राणवन्त है, उसका कभी विनाश नही हो सकता। वह ध्रुव तारे की तरह सदा चमकता रहेगा।

---

१ जो सहस्स सहस्साण सगामे दुज्जए जिणे।
 एग जिणेज्ज अप्पाण एस से परमो जओ।।
 —उत्तराध्ययन ९।३४

२ यो सहस्स सहस्सेन सगामे मानुसे जिने।
 एक च जेय्यमत्तान स वे सगामजुत्तमो।। धम्मपद ८।४

३ श्रीमद्भगवद्गीता अ ६ श्लोक ५

४ महाभाष्य २।४।९

५ सिद्धहेमशब्दानुशासन ३।१।१४१।

श्रमण सस्कृति

भारत की अनेकविध सस्कृतियो मे श्रमण सम्कृति एक प्रधान एव गौरवपूर्ण सम्कृति है। समता प्रधान होने के कारण यह सस्कृति श्रमण सस्कृति कहलाती है। वह समता मुख्य रूप मे तीन बातो मे निहारी जा सकती है (१) समाज विषयक (२) साध्यविषयक और (३) प्राणी जगत् के प्रति दृष्टि विषयक।[१]

समाज विषयक समता का अर्थ है—समाज म किमी एक वर्ण का जन्म मिद्ध श्रेष्ठत्व और कनिष्ठत्व न स्वीकार कर गुणकृत या वर्णकृत श्रेष्ठत्व या कनिष्ठत्व मानना। श्रमण सस्कृति समाज-रचना या धर्म विषयक अधिकार जन्म सिद्ध वर्ण और लिग को न देकर गुणो के आधार पर ही समाज-रचना करती है। जन्म मे किमी का महत्व नही है। महत्व है सद्‌गुणो का, पुरुषार्थ का। जन्म मे कोई महान् नही होता और न हीन ही होता है। हीनता और श्रेष्ठता का सही आधार जीवनगत गुण-दोष ही हो सकते है।

साध्यविषयक समता का अर्थ है अभ्युदय का एक सदृश्य रूप। श्रमण सस्कृति का साध्य एक एसा आदर्श है जहाँ किमी भी प्रकार का स्वार्थ नही है, न एहिक और न पारलौकिक ही। वहाँ विषमता नही, समता का ही साम्राज्य है। वह अवस्था तो योग्यता अयोग्यता अधिकता न्यूनता, हीनता व श्रेष्ठता म पूर्ण रूप मे परे है।

प्राणीजगत् के प्रति दृष्टि विषयक समता का अर्थ है—ससार मे जितने भी जीव है चाहे मानव हो या पशु-पक्षी हो, कीट या वनस्पति आदि हो उन सभी को आत्मवत् समझना उनका वध आत्मवध की तरह कष्टप्रद होना। आत्मवत् सर्वभूतेषु की भव्य भावना इसमे अठखेलियाँ करती है। श्रमण शब्द का मूल समण है। समण शब्द 'सम' शब्द मे निष्पन्न है। जो सभी जीवो को अपने तुल्य मानता है, वह समण है। जिस प्रकार मुझे दुख प्रिय नही है उसी प्रकार सभी जीवो को भी दुख प्रिय नही है इस समता की भावना म जो स्वय किमी प्राणी का वध नही करता और न दूसरो से करवाता है, वह अपनी समगति के कारण समण कहलाता है।

जिसके मन मे समता की सुर-सरिता प्रवाहित होती है वह न किमी पर द्वेष करता है और न किमी पर राग ही करता है अपितु अपनी मन स्थिति को सदा सम रखता है, इस कारण वह समण कहलाता है।

जिसके जीवन मे सर्प के तन की तरह मृदुलता होती है, पर्वत की तरह जिसके जीवन मे स्थैर्य होता है, अग्नि की तरह जिसका जीवन प्रज्वलित होता है, समुद्र की तरह जिसका जीवन गभीर होता है आकाश की तरह जिसका जीवन विराट् होता है, वृक्ष की तरह जिसका जीवन आश्रयदाता है मधुकर की तरह जिसकी वृत्ति होती है जो अनेक स्थानो से मधु को बटोरता है हरिण की तरह जो सरल होता है, भूमि की तरह जो क्षमाशील होता है कमल की तरह जो निर्मल होता है सूर्य की तरह जिसका जीवन तेजस्वी होता है और पवन की तरह जो अप्रतिहत विहारी होता है वह समण है।[४]

---

१ जैनधर्म का प्राण पृ १

२ जह मम न पिय दुक्ख जाणिय एमेव सव्वजीवाण।
न हणइ न हणावेइ य सममणई तेण सो समणो।। —दशवैकालिक निर्युक्ति गा १५४

३ नत्थि य सि कोइ वेसो पियो व सव्वेसु चेव जीवेसु।
एएण होइ समणो एसो अन्नोऽवि पज्जाओ।। —दशवैकालिक निर्युक्ति गा १५५

४ उरगगिरिजलणसागरनहयलतरुगणसमो य जो होई।
भमरमिगधरणिजलरुहरविपवणसमो जओ समणो।। —दशवैकालिक निर्युक्ति गा १५७

समण वह है जो पुरस्कार के पुष्पो को पाकर प्रसन्न नही होता और अपमान के हलाहल को देखकर खिन्न नही होता अपितु सदा मान और अपमान मे सम रहता है।[1]

आगमसाहित्य मे अनेक स्थलो पर समण के साथ समता का सम्बन्ध जोडकर यह बताया गया है कि समता ही श्रमण संस्कृति का प्राण है।

उत्तराध्ययन मे कहा है—सिर मुडा लेने से कोई समण नही होता, किन्तु समता का आचरण करने से ही समण होता है।[2]

सूत्रकृताग मे समण के समभाव की अनेक दृष्टियो मे व्याख्या करते हुए लिखा है—मुनि को गोत्र-कुल आदि का मद न कर, दूसरो के प्रति घृणा न रखते हुए सदा सम भाव मे रहना चाहिए। जो दूसरो का अपमान करता है वह दीर्घकाल तक संसार मे भ्रमण करता है। अतएव मुनि मद न कर सम रहे।[3] चक्रवर्ती दीक्षित होने पर अपने से पूर्वदीक्षित अनुचर के अनुचर को भी नमस्कार करने मे सकोच न करे, किन्तु समता का आचरण करे।[4] प्रज्ञासम्पन्न मुनि क्रोध आदि कषायो पर विजय प्राप्त कर समता धर्म का निरूपण करे।[6]

जैन संस्कृति की साधना समता की साधना है। समता, समभाव, समदृष्टि एव साम्यभाव ये सभी जैन संस्कृति के मूल तत्त्व है। जैन परम्परा मे सामायिक की साधना को मुख्य स्थान दिया गया है। श्रमण हो या श्रावक हो, श्रमणी हो या श्राविका हो, सभी के लिए सामायिक की साधना आवश्यक मानी गई है। षडावश्यक मे भी सामायिक की साधना को प्रथम स्थान दिया गया है। भरत और बाहुबली का आख्यान अत्यधिक प्रसिद्ध है।[7] जिसमे प्रहार मे से प्रेम प्रकट हुआ,विषमता मे से समता का जन्म हुआ, चित्त शुद्ध हुआ और बाहुबली समता क मार्ग पर बढ गये। समता आत्म परिष्कार का मूल मत्र है।

समता के अनेक रूप है। आचार की समता अहिसा है, विचारो की समता अनेकान्त है, समाज की समता अपरिग्रह है और भाषा की समता स्याद्वाद है। जैन संस्कृति का सम्पूर्ण आचार और विचार समता पर आधृत है। जिस आचार और विचार मे समता का अभाव है, वह आचार और विचार उस संस्कृति को कभी मान्य नही रहा।

समता किसी भौतिक तत्त्व का नाम नही है। मानव मन की कोमल वृत्ति ही समता तथा क्रूर वृत्ति ही विषमता है। प्रेम समता है वैर विषमता है। समता मानवमन का अमृत है और विषमता विष है। समता जीवन है और विषमता मरण है। समता धर्म है और विषमता अधर्म है। समता एक दिव्य प्रकाश है और विषमता घोर अधकार है। समता ही श्रमण संस्कृति के विचारो का निथरा हुआ निचोड है।

आचार की समता का नाम ही वस्तुत अहिसा है। समता मैत्री प्रेम अहिसा—ये सभी समता के ही अपर नाम हैं। अहिसा जैन संस्कृति के आचार एव विचार का केन्द्र है। अन्य सभी विचार और आचार उसके आसपास घूमते है। जैन संस्कृति मे अहिसा का जितना सूक्ष्म विवेचन और विशद विश्लेषण हुआ है—उतना विश्व की किसी भी संस्कृति मे नही हुआ। श्रमण संस्कृति के कण-कण मे अहिसा की भावना परिव्याप्त है। श्रमण-संस्कृति की प्रत्येक क्रिया अहिसा मूलक है। खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल आदि सभी म अहिसा को प्रधानता दी गई है। विचार, वाणी और कर्म सभी मे अहिसा का स्वर मुखरित होना चाहिए। यदि श्रमण संस्कृति के पास अहिसा की अनमोल निधि है तो सभी कुछ है और वह निधि नही है तो कुछ भी नही है। आज के अणु-युग मे सास लेने वाली मानव जाति के लिए अहिसा ही त्राण की आशा है। अहिसा के अभाव मे न व्यक्ति सुरक्षित

---

१ तो समणो जइ सुमणो भावेण य जइ न होइ पावमणो।
समणे य जणे य समो समो य माणावमाणे सु॥ —वही १५६

२ न वि मुण्डिएण समणो न ओकारेण बम्भणो।
न मुणी रण्णवासेण कुसचीरेण न तावसो।
समयाए समणो होइ बम्भचेरेण बम्भणो।
नाणेण य मुणी होई तवेण होई तावसो॥ —उत्तराध्ययन २५।२९-३

३ सूत्रकृताङ्ग १।२।२।१

४ वही १।२।२।२

५ वही १।२।२।३

६ वही १।२।२।६

७ देखिए लेखक का ऋषभदेव एक परिशीलन ग्रन्थ

रह सकता है, न परिवार पनप सकता है, और न समाज तथा राष्ट्र ही अक्षुण्ण रह सकता है। अणु-युग मे अणुशक्ति से संत्रस्त मानव जाति को उबारने वाली कोई शक्ति है तो वह अहिसा है। आज अहिसा के आचरण की मानव जाति को नितान्त आवश्यकता है। अहिसा ही मानव जीवन के लिए मगलमय वरदान है। आचार-विषयक अहिसा का यह उत्कर्ष श्रमण सस्कृति के अतिरिक्त कही भी नही निहारा जा सकता। अहिसा को व्यावहारिक जीवन मे ढाल देना ही श्रमण सस्कृति की सच्ची साधना है।

जैसे वेदान्त दर्शन का केन्द्र बिन्दु अद्वैतवाद और मायावाद है, साख्य दर्शन का मूल प्रकृति और पुरुष का विवेकवाद है, बौद्ध दर्शन का चिन्तन विज्ञानवाद और शून्यवाद है, वैसे ही जैन सस्कृति का आधार अहिसा और अनेकान्तवाद है। अहिसा के सम्बन्ध मे इतर दर्शनो ने भी पर्याप्त मात्रा मे लिखा है। उसे अन्य सिद्धान्तो की तरह प्रमुख स्थान भी दिया है तथापि यह स्पष्ट है कि उन्होने जैनो की तरह अहिसा का सूक्ष्म विश्लेषण, व गम्भीर चिन्तन नही किया है। जैन सस्कृति के विधायको ने अहिसा पर गहराई से विवेचन किया है। उन्होने अहिसा की एकागी और सकुचित व्याख्या न कर सर्वाङ्गपूर्ण व्याख्या की है। हिसा का अर्थ केवल शारीरिक हिंसा ही नही, प्रत्युत किसी को मन और वचन से पीडा पहुँचाना भी हिसा माना है। अहिसा की नव कोटियाँ हैं।

इनके अतिरिक्त जैनो मे प्राणी की परिभाषा केवल मनुष्य और पशु तक ही सीमित नही है, अपितु उसकी परिधि एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक है। कीडो से लेकर कुजर तक ही नही, परन्तु पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पति काय के सम्बन्ध मे भी गम्भीर विचार किया गया है।

अहिसा के सम्बन्ध मे प्रबलतम युक्ति यह है कि सभी जीव जीना चाहते है, कोई भी मरना नही चाहता। अत किसी भी प्राणी का वध न करो।[1] जिस प्रकार हमे जीवन प्रिय है, मरण अप्रिय है, सुख प्रिय है, दु ख अप्रिय है, अनुकूलता प्रिय है, प्रतिकूलता अप्रिय है, मृदुता प्रिय है, कठोरता अप्रिय है, स्वतत्रता प्रिय है, परतत्रता अप्रिय है, लाभ प्रिय है, अलाभ अप्रिय है, उसी प्रकार अन्य जीवो को भी जीवन आदि प्रिय है और मरण आदि अप्रिय है। यह आत्मोपम्य दृष्टि ही अहिसा का मूलाधार है। प्रत्येक आत्मा तात्विक दृष्टि से समान है, अत मन, वचन और काया से किसी को सन्ताप न पहुँचाना ही पूर्ण अहिसा है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो भेद ज्ञान पूर्वक अभेद आचरण ही अहिसा है।

हमारे मन मे किसी के प्रति दुर्भावना है तो हमारा मन अशान्त रहेगा। नाना प्रकार के सकल्प-विकल्प मन मे घूमते रहेगे और चित्त क्षुब्ध रहेगा। हम जो भी कार्य करे दुर्भावना रहित होकर, अत्यन्त सावधानी के साथ, प्रमोद रहित होकर करे। कदाचित् सावधानी रखते हुए हिंसा हो भी गई तो वह आत्मा का उतना अहित न करेगी जितना कि प्रमत्तयोग से की गई हिंसा कराती है।[2] हिंसा का मुख्य अग हमारा प्रमाद है, प्राणो का हनन तो उसका परिणाम मात्र है। यदि हमने प्रमाद किया और उसका परिणाम किसी का प्राणहनन नही हुआ तथापि हम हिंसा के भागी हो ही गये। हम हिंसा के दोषी उसी क्षण हो गए जब हमारे मन मे प्रमाद आया। प्रमाद से हम अपनी आत्मा को तो कलुषित कर ही चुके, आत्मा पर कर्मों का आवरण डाल कर उसे अशुद्ध कर चुके। इस प्रकार अहिसा का अर्थ है प्रमाद—अर्थात् राग-द्वेषादि दूषणो से और असावधानी से मुक्त होना। यही आत्म-विकास का सही मार्ग है। जितने अशो तक हम प्रस्तुत पथ पर बढेगे, उतने ही अशो तक हम सुखी होगे। जब हम पूर्ण रागद्वेष और असावधानी से मुक्त हो जायेगे, तब पूर्ण अहिसक बन जायेंगे।

राग-द्वेष तथा प्रमाद से रहित होना सरल कार्य नही है। बिरले व्यक्ति ही इस पथ के पथिक हो सकते है। अहिसा की साधना वही व्यक्ति कर सकता है जिसके सस्कार निर्मल हो, हृदय मे उदारता अठखेलियाँ कर रही हो, निर्लोभ वृत्ति हो, अदीनता हो, करुणा की भावना हो, सरलता और विवेक हो।

जैन सस्कृति ने जीवन की प्रत्येक क्रिया को अहिसा के गज मे नापा है। जो क्रिया अहिसा मूलक है वह सम्यक् है और जो हिसा मूलक है वह मिथ्या है। मिथ्या क्रिया कर्म बधन का कारण है और सम्यक् क्रिया कर्म क्षय का कारण है। यही कारण है कि

---

१ सव्वे जीवा वि इच्छन्ति जीविउ न मरिज्जिउ।
तम्हा पाणिवह घोर णिग्गन्था वज्जयति ण। —दशवैकालिक ६।१०

२ प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपण हिंसा। —तत्वार्थ सूत्र ७।१३

जैन संस्कृति ने धार्मिक विधि-विधानो मे ही अहिंसा को स्थान नही दिया अपितु जीवन के दैनिक व्यवहार मे भी अहिंसा का सुन्दर विधान किया है। अहिंसा माता के समान सभी की हितकारिणी है।[1] हिंसा के बढते हुए दिन दूने रात चौगुने साधनो को देखकर आज मानवता कराह रही है, भय से काँप रही है। विश्व के भाग्य विधाता चिन्तित हैं। ऐसी विकट बेला मे अहिंसा-माता ही विनाश से बचा सकती है। आज अहिंसा की इतनी आवश्यकता है सभवत उतनी पहले कभी नही रही। इस समय व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व को अहिंसा की अनिवार्य आवश्यकता है। अहिंसा के अभाव मे न व्यक्ति जिन्दा रह सकता है, न परिवार, समाज और राष्ट्र ही पनप सकता है। अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए अहिंसा ही एकमात्र उपाय है। व्यक्ति, समाज और देश के सुख और शान्ति की आधार-शिला अहिंसा, मैत्री और समता है। भगवान् महावीर ने अहिंसा को ही सब सुखो का मूल माना है। जो दूसरो को अभय देता है, वह स्वय भी अभय हो जाता है। अभय की भव्य-भावना से ही अहिंसा, मैत्री और समता का जन्म होता है। जब दूसरो को पर माना जाता है तब भय होता है। जब उन्हे आत्मवत् समझ लिया जाता है,तब भय कहाँ ? सब उसके है और वह सबका है। अतएव अहिंसा का साधक सदा अभय होकर विचरण करता है। 'मैं विश्व का हूँ और विश्व मेरा है' यह अहिंसा का अद्वैतात्मक दर्शन-शास्त्र है। मेरा सुख सभी का सुख है और सभी का दुःख मेरा दुःख है, यह अहिंसा का नीतिमार्ग है, व्यवहार पक्ष है।

विचारात्मक अहिंसा का ही अपर नाम अनेकान्त है। अनेकान्त का अर्थ है–बौद्धिक अहिंसा। दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की भावना एव विचार को अनेकान्त दर्शन कहते है। जब तक दूसरो के दृष्टिकोण के प्रति, विचारो के प्रति, सहिष्णुता व आदर-भावना नही होगी तब तक अहिंसा की पूर्णता कथमपि सभव नही। सघर्ष का मूल कारण आग्रह है। आग्रह मे अपने विचारो के प्रति राग होने से वह उसे श्रेष्ठ समझता है और दूसरो के विचारो के प्रति द्वेष होने से उसे कनिष्ठ समझता है। एकान्त दृष्टि मे सदा आग्रह का निवास है, आग्रह से असहिष्णुता का जन्म होता है और असहिष्णुता मे से ही हिंसा और सघर्ष उत्पन्न होते है। अनेकान्त दृष्टि मे आग्रह का अभाव होने से हिंसा और सघर्ष का भी उसमे अभाव होता है। विचारो की यह अहिंसा ही अनेकान्त दर्शन है।

स्याद्वाद के भाषाप्रयोग मे अपना दृष्टिकोण बताते हुए भी अन्य के दृष्टिकोणो के अस्तित्व की स्वीकृति रहती है। प्रत्येक पदार्थ अनन्त धर्मवाला है तब एक धर्म का कथन करनेवाली भाषा एकांश से सत्य हो सकती है, सर्वांश से नही। अपने दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य के दृष्टिकोणो की स्वीकृति वह 'स्यात्' शब्द से देता है। 'स्यात्' का अर्थ है–वस्तु का वही रूप पूर्ण नही है जो हम कह रहे है। वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। हम जो कह रहे है उसके अतिरिक्त भी अनेक धर्म है। यह सूचना 'स्यात्' शब्द से की जाती है। स्यात शब्द का अर्थ है सभावना और शायद सभावना मे सदेहवाद को स्थान है, जबकि जैन दर्शन मे सन्देहवाद को स्थान नही है किन्तु एक निश्चित दृष्टिकोण है।

वाद का अर्थ है सिद्धान्त या मन्तव्य। दोनो शब्दो का मिलकर अर्थ हुआ– सापेक्ष सिद्धान्त, अर्थात् वह सिद्धान्त जो किसी अपेक्षा को लेकर चलता है और विभिन्न विचारो का एकीकरण करता है। अनेकान्तवाद, अपेक्षावाद, कथंचिद्वाद और स्याद्वाद इन सब का एक ही अर्थ है।

स्याद्वाद की परिभाषा करते हुए कहा गया है–अपने या दूसरो के विचारो, मन्तव्यो वचनो तथा कार्यों मे तन्मूलक विभिन्न अपेक्षा या दृष्टिकोण का ध्यान रखना ही स्याद्वाद है।

आचार्य अमृतचन्द्र लिखते है, जैसे ग्वालिन मथन करने की रस्सी के दो छोरो मे से कभी एक को और कभी दूसरे को खीचती है, उसी प्रकार अनेकान्त पद्धति भी कभी एक धर्म को प्रमुखता देती है और कभी दूसरे धर्म को।[2] इस प्रकार स्याद्वाद का अर्थ हुआ विभिन्न दृष्टिकोणो का बिना किसी पक्षपात के तटस्थ बुद्धि मे समन्वय करना। जो कार्य एक न्यायाधीश का होता है, वही कार्य विभिन्न विचारो के समन्वय के लिए स्याद्वाद का है। जैसे न्यायाधीश वादी और प्रतिवादी के बयानो को सुनकर जाँच पडताल कर निष्पक्ष न्याय देता है, वैसे ही स्याद्वाद भी विभिन्न विचारो मे समन्वय करना है।

दूसरे शब्दो मे, विचारो के अनाग्रह को ही वस्तुत अनेकान्त कहा है। अनेकान्त एक दृष्टि है, एक भावना है, एक विचार है, जिसमे सम्पूर्ण सत्य निहित रहता है। वह व्यापक रूप मे सोचने-समझने की पद्धति है। जब अनेकान्त वाणी का रूप ग्रहण करता

१ मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी।

२ एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तु-तत्त्वमितरेण, अन्तेन जयति जैनी-नीतिर्मन्थान-नेत्रमिव गोपी। –पुरुषार्थ सिद्धयुपाय

है तब वह स्याद्वाद बन जाता है। अनेकान्त विचार-प्रधान है और स्याद्वाद भाषाप्रधान है। जहाँ तक दृष्टि विचार रूप रहती है, वहाँ तक वह अनेकान्त है और जब दृष्टि वाणी का रूप धारण करती है तब वह स्याद्वाद बन जाती है और जब वही दृष्टि आचार का रूप धारण करती है, तब अहिंसा के नाम से पहचानी जाती है। अनेकान्त जैन संस्कृति का मुख्य सिद्धान्त है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने कहा है–अनेकान्त के बिना लोक व्यवहार भी नही चल सकता। मै उस अनेकान्त को नमस्कार करता हूँ, जो जन-जीवन को आलोकित करने वाला विश्व का एक मात्र गुरु है।[1] जब वस्तु को एकान्त दृष्टि से देखा और परखा जाता है, तब उसके सही एव परिपूर्ण स्वरूप का परिज्ञान नही हो सकता। वस्तु का वस्तुत्व अनेकान्त दृष्टि से देखा जा सकता है। एतदर्थ ही आचार्य हरिभद्र ने कहा है–कदाग्रही व्यक्ति पहले अपना विचार निश्चित कर लेता है, फिर उसे परिपुष्ट करने के लिए युक्तियाँ खोजता है। वह युक्तियो को अपने विचार की ओर घसीटने का प्रयत्न करता है, किन्तु निष्पक्ष व्यक्ति उसी बात को स्वीकार करता है, जो युक्ति से सिद्ध होती है।[2]

एकान्तवादी का मन्तव्य है कि जो वस्तु सत् है वह कभी भी असत् नही हो सकती जो नित्य है वह कभी भी अनित्य नही हो सकती। इस प्रश्न का समाधान करते हुए आचार्य समन्तभद्र ने कहा–विश्व की प्रत्येक वस्तु स्वचतुष्टय की अपेक्षा सत् है और पर चतुष्टय की अपेक्षा असत् है। इस प्रकार की व्यवस्था के अभाव मे किसी भी तत्व की सुन्दर व्यवस्था सभव नही है।[3] प्रत्येक वस्तु का अपना निजी स्वरूप होता है, जो अन्य के स्वरूप से भिन्न होता है। अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव होता है। यही स्वचतुष्टय है। स्व से भिन्न जो द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव है, वह पर चतुष्टय है। जैसे-एक घडा स्व द्रव्य (मृत्तिका) की अपेक्षा से है, पर द्रव्य (पीतल आदि) की अपेक्षा से नही है। अपने क्षेत्र–जहाँ वह है की अपेक्षा से है, पर क्षेत्र की अपेक्षा से नही है। स्व-काल जिसमे वह है की अपेक्षा से घट का सद्भाव है पर काल की अपेक्षा से असद्भाव है। अपने स्वभाव की अपेक्षा से घट का अस्तित्व है, पर भाव की अपेक्षा से अस्तित्व नही है। घट की तरह अन्य सभी वस्तुओ के सम्बन्ध मे यही समझना चाहिए। जब एकान्त का कदाग्रह त्याग कर अनेकान्त का आश्रय लिया जाता है तभी सत्य तथ्य का सही निर्णय होता है।

समता का भव्य-भवन अहिंसा और अनेकान्त की भित्ति पर आधारित है। जब जीवन मे अहिंसा और अनेकान्त मूर्त रूप धारण करता है तब जीवन मे समता का मधुर सगीत झकृत होने लगता है। श्रमण संस्कृति का सार यही है कि जीवन मे अधिकाधिक समता को अपनाया जाय और 'तामस्' विषमभाव को छोडा जाय। 'तामस्' समता का ही तो उलटा रूप है। समता श्रमण संस्कृति की साधना का प्राण है और आगम साहित्य का नवनीत है। भारत के उत्तर मे जिस प्रकार चाँदनी की तरह चमचमाता हुआ हिमगिरि का उत्तुग शिखर शोभायमान है, वैसे ही श्रमण संस्कृति के चिन्तन-गगन के पीछे समत्व योग का दिव्य और भव्य शिखर चमक रहा है। श्रमण संस्कृति का यह गभीर आघोष रहा है कि समता के अभाव मे आध्यात्मिक उत्कर्ष नही हो सकता और न जीवन मे पूर्ण शान्ति ही प्राप्त हो सकती है। भले ही कोई साधक उग्र तपश्चरण क्यो न करले, भले ही समस्त आगम साहित्य को कठाग्र करले, भले ही उसकी वाणी मे द्वादशागी का स्वर मुखरित हो, यदि उसके आचरण मे वाणी मे और मन मे समता की सुर-सरिता प्रवाहित नही हो रही है तो उसका समस्त क्रियाकाण्ड और आगमो का परिज्ञान प्राण रहित ककाल की तरह है। आत्म विकास की दृष्टि से उसका कुछ भी मूल्य नही है। आत्मविश्वास की दृष्टि से जीवन के कण-कण मे, मन के अणु-अणु मे समता की ज्योति जगाना आवश्यक है। साम्यभाव को जीवन मे साकार रूप देना ही श्रमण संस्कृति की आत्मा है।

---

१ जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा न निव्वडइ।
तस्स भुवणेक्क गुरुणो णमो अणेगत-वायस्स। –सन्मति तर्क

२ आग्रही बत निनीषति युक्ति,
तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा।
पक्ष-पात रहितस्य तु युक्तिर्यत्र
तत्र मतिरेति निवेशम्॥

३ सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासात् न चैन्न व्यवतिष्ठते। –समन्तभद्र

जैन संस्कृति का योगदान

संस्कृति क्या है? यह एक अत्यत गभीर प्रश्न रहा है, इस प्रश्न का उत्तर अनेक दृष्टियो मे विचारको ने दिया है। संस्कृति मानव के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वागीण प्रकार है। वह मानव जीवन की एक प्रेरक शक्ति है, जीवन की प्राणवायु है, जो चैतन्य भाव की साक्षी प्रदान करती है। सस्कृति विश्व के प्रति अनन्य मैत्री की भावना है जो विश्व के समस्त प्राणियो के प्रति अद्रोह की स्थिति उत्पन्न कर सप्रीति की भावना पैदा करती है। बाह्य स्थूल भेदो को मिटाकर वह एकत्व तक पहुँचने का प्रयास करती है। इस प्रकार राष्ट्र का लोकहितकारी तत्त्व सस्कृति है।

सस्कृति का अर्थ सस्कार सपन्न जीवन है। वह जीवन जीने की कला है पद्धति है। वह आकाश मे नही, धरती पर रहती है, वह कल्पना मे नही, जीवन का ठोस सत्य है। बुद्धि का कुतूहल नही किंतु एक आदर्श है।

सस्कृति और कृषि शब्द समानार्थक है। कृषि शब्द से सस्कृति शब्द अधिक व्यापक है और विशुद्धि का प्रतीक है। कृषि का उद्देश्य है—भूमि की विकृति को दूर कर लहलहाती खेती को उत्पन्न करना। सर्वप्रथम कृषक भूमि को साफ करता है एक सदृश बनाता है, पत्थर आदि को हटाता है, घास-फूस अलगकर भूमि को साफ करता है, खाद डालकर भूमि को उस योग्य बनाता है कि बीज उसमे अच्छी तरह से पनप सके। सस्कृति मे भी यही किया जाता है। मानसिक, वाचिक और कायिक विकृतियाँ दूर की जाती है। विकारो को हटाकर विचारो का विकास किया जाता है। वह सस्कार व्यक्ति मे प्रारभ होकर परिवार, समाज, राष्ट्र और सपूर्ण विश्व मे परिव्याप्त हो जाता है। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र का सशोधन और सस्कार करना ही सस्कृति है। सस्कृति का प्रयोजन मानव जीवन है मानव जीवन को ही सुसस्कृत बनाया जा सकता है एतदर्थ ही वैदिक ऋषि ने कहा मानव से बढ़कर विश्व मे कोई श्रेष्ठ प्राणी नही है— 'न मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित' ।

यही कारण है कि आज तक किसी भी मानवेतर प्राणियो की सस्कृति उत्पन्न नही हुई है और कभी उत्पन्न होगी यह भी सभव नही है। इस दृष्टि से सस्कृति मानव जीवन का ही एक प्रगतिशील तत्त्व है। सस्कृति और सस्कार हम कुछ भी क्यो न कहे, वह हमारे जीवन को उज्ज्वल बनाने की कला है।

सस्कृति किसी एक व्यक्ति के प्रयत्नो का परिणाम नही है, किंतु अनेक व्यक्तियो के द्वारा बौद्धिक क्षेत्र मे किए गए प्रयत्नो का परिणाम है। एक विद्वान के अभिमतानुसार मानव की शिल्पकलाएँ, उसके अस्त्र-शस्त्र, उसका धर्म तथा तत्र विद्या और उसकी आर्थिक उन्नति, उसका कलाकौशल ये सभी सस्कृति मे आते है। सस्कृति मानवी जीवन के उन सब तत्वो के समाहार का नाम है जो धर्म और दर्शन से प्रारभ होकर कलाकौशल समाज और व्यवहार इत्यादि म अत होते हैं।

भारत की पावन पुण्य धरा पर दो प्रमुख सस्कृतियो ने जन्म लिया, वे यहाँ पर खूब फली-फूली और विकसित हुई है। उन दो सस्कृतियो मे एक इद्र की उपासना करती रही है तो दूसरी जिन की। इद्र की उपासना करने वाली सस्कृति ब्राह्मण सस्कृति है तो जिन की उपासना करन वाली सस्कृति श्रमण सस्कृति है। ब्राह्मण सस्कृति बाह्य विजनाओ की सस्कृति है। उसने बाह्य शक्ति की अभिवृद्धि के लिए अथक प्रयास किया है। उसकी सतत् यही भावना रही है कि मै सौ वर्ष तक अच्छी तरह से जीऊँ। सौ वर्ष मेरी भुजाओ मे अपार बल रहे। सौ वर्ष तक मेरे पैरो मे अगद की तरह शक्ति रहे। सौ वर्ष तक मेरी नेत्र-ज्योति पूर्ण निर्मल और तेजस्वी रहे, प्रभृति उद्गारो मे स्पष्ट है कि उसका लक्ष्य तन को सुदृढ बनाने का था, भौतिक वैभव को प्राप्त करने का था। भौतिक वैभव को प्राप्त करने के लिए वे अहर्निश प्रबल प्रयास करते रहे।

किंतु श्रमण संस्कृति आत्म-विजेता की सस्कृति है। उसने तन की अपेक्षा आत्मा को पुष्ट बनाने पर अत्यधिक बल दिया है। आत्मा किस तरह विकारो से मुक्त हो, इसके लिए तप, जप और सयम साधना को अपनाने के लिए उत्प्रेरित किया। मोहन जोदडो और हडप्पा से प्राप्त ध्वसावशेषो ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि श्रमण सस्कृति के उपासक आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए सतत् तत्पर रहे है। ध्यान मुद्रा मे अवस्थित उनकी वे मुद्राएँ इस बात का ज्वलन्त प्रमाण हैं।

भारतीय साहित्य के मूर्धन्य मनीषियो का यह अभिमत है कि, उपनिषद् युग मे जिस ब्रह्मविद्या का विस्तार से विश्लेषण हुआ

है, वह ब्रह्मविद्या पहले यज्ञ विद्या थी, फिर आत्म-विद्या के रूप मे विश्रुत हुई। आत्म विद्या के पुरस्कर्ता क्षत्रिय थे जो श्रमण सस्कृति के उपासक थे। आत्म-विद्या को प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण भी क्षत्रियो के पास पहुँचे थे और उन्होने उनसे आत्म-विद्या प्राप्त की थी।

श्रमण सस्कृति ने आत्म-बल से ही ब्राह्मण सस्कृति पर अपनी विजय वैजयन्ती फहराई। वैदिक काल मे आत्मा, कर्म आदि की गभीर चर्चाएँ नही के समान है पर उपनिषद् युग मे उन विषयो पर चर्चाएँ जमकर हुई है। पहले ब्रह्म का अर्थ यज्ञ, उसके मत्रं व स्तोत्र आदि थे,पर श्रमण सस्कृति के प्रबल प्रभाव से ब्रह्म का अर्थ आत्मा व परमात्मा हो गया।

ऐतिहासिक विज्ञो का यह मन्तव्य है कि प्राचीन उपनिषदो का रचना काल वही है,जो भगवान पार्श्व और महावीर का है, अत उस काल मे एक सस्कृति का दूसरी सस्कृति पर प्रभाव पडा। एक दूसरे ने एक दूसरे की विचारधारा को व शब्दो को ग्रहण किया। ब्राह्मण सस्कृति के उपासक अपने आप को आर्य मानते थे और श्रमण सस्कृति उपासको को आर्येतर मानते थे। श्रमण सस्कृति ने आर्य शब्द को अपनाया जो ज्येष्ठ व श्रेष्ठ व्यक्ति थे, उनके लिए 'आर्य' शब्द व्यवहृत होने लगा। आगम साहित्य मे अनेक स्थलो पर आर्य शब्द आया है। नन्दीसूत्र व कल्पसूत्र की स्थविरावली मे 'अज्ज' शब्द आचार्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है। ब्राह्मण शब्द पहले केवल वैदिक परम्परा के एक समुदाय विशेष के लिए प्रयुक्त होता था, पर श्रमण सस्कृति ने ब्राह्मण शब्द को भी अपनाया। उत्तराध्ययन के पच्चीस वे अध्ययन मे ब्राह्मण शब्द की विस्तार से व्याख्या की कि 'ब्राह्मण' वह है,जिसका जीवन सद्गुणो से लहलहा रहा है, जो उत्कृष्ट चारित्र सपन्न श्रमण है,वह ब्राह्मण है। ब्राह्मण शब्द भी श्रमण सस्कृति मे श्रमण के लिए प्रयुक्त हुआ है।

जैन सस्कृति की भाति बौद्ध सस्कृति मे भी वह श्रमण के अर्थ मे आया है। धम्मपद का ब्राह्मण वर्ग और सुत्तनिपात का वासेट्ठसुत्त इस कथन के साक्ष्य है। ब्राह्मण साहित्य मे ब्रह्मचर्य का वेदो के पठन के अर्थ मे रहा है। इसीलिए ब्रह्मचर्याश्रम उसे कहा गया है। श्रमण परम्परा मे ब्रह्मचर्य आचार के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। आचाराग के प्रथम श्रुतस्कध के अध्ययनो को इसीलिए ब्रह्मचर्य अध्ययन कहा है और बौद्ध परम्परा मे वही ब्रह्मविहार के रूप मे विश्रुत रहा है। ब्रह्मचर्य से लौकिक आचार-विचार नही, किंतु आध्यात्मिक समुत्कर्ष करनेवाला आचार लिया है। ब्राह्मण सस्कृति मे पहले तीन ही आश्रम थे किंतु श्रमण सस्कृति के प्रभाव से सन्यासाश्रम ने स्थान पाया और सन्यासियो की आचार सहिता भी जैन श्रमणो की भाति ही मिलती-जुलती रखी गई। आत्मा, कर्म,व्रत आदि आध्यात्मिक विषयो को भी ब्राह्मण सस्कृति ने अच्छी तरह से अपनाया।

श्रमण और ब्राह्मण सस्कृति मे जहाँ पर अनेक बातो मे परस्पर समन्वय हुआ है, एक सस्कृति दूसरी सस्कृति से प्रभावित हुई है, वहाँ पर दोनो ही सस्कृतियो मे अनेक बातो मे मतभेद भी रहा है। जैन सस्कृति न तो एकान्त रूप से ज्ञान प्रधान है, न एकान्त रूप से चरित्र प्रधान है, उसने ज्ञान और क्रिया इन दोनो पर बल दिया है, जबकि ब्राह्मण सस्कृति मे 'ज्ञान पर आध्यात्मिक बल दिया गया। उसका यह वज्र आघोष रहा 'ऋते ज्ञानान्नमुक्ति' ज्ञान के अभाव मे मुक्ति नही होती, 'न हि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते' ज्ञान के समान कोई पवित्र नही है। यही कारण है कि ब्राह्मण सस्कृति के दिव्य आलोक मे पनपने वाले दर्शनो ने भी ज्ञान पर अत्याधिक बल दिया और उसी मे मोक्ष माना है।

न्यायदर्शन का अभिमत है कि कारण की निवृत्ति होने पर ही कार्य की निवृत्ति होती है। ससार का कारण मिथ्याज्ञान है। जब मिथ्या ज्ञान रूप कारण नष्ट हो जाता है, तब दु ख, जन्म, प्रवृत्ति दोष, प्रभृति कार्य की स्वत नष्ट हो जाते है। अत तत्वज्ञान ही दु ख निवृत्ति रूप मोक्ष का कारण है।

साख्य दर्शन का मन्तव्य है कि प्रकृति और पुरुष का जहाँ तक विवेक ज्ञान नही होता, वहाँ तक मुक्ति नही हो सकती। जब प्रकृति और पुरुष मे भेदविज्ञान होता है, तब प्रमुख स्वय को नि सग, निर्लेप और पृथक् मानने लगता है, यह विवेक ख्याति ही मोक्ष का कारण है।

वैशेषिक दर्शन का कहना है—इच्छा और द्वेष ही धर्म-अधर्म,सुख-दु ख के कारण है। तत्वज्ञानी इच्छा और द्वेष से रहित होता है, अत उसे सुख-दु ख की अनुभूति नही होती। वह अनागत कर्मों का निरुन्धन कर सचित कर्मों को ज्ञानाग्नि से विनष्ट कर मोक्ष प्राप्त करता है। अत तत्वज्ञान ही मोक्ष का कारण है। इस तरह ज्ञान को प्रमुखता देकर चरित्र की उपेक्षा की गई, जिसके फलस्वरूप हम देखते है कि याज्ञवल्क्य ब्रह्मर्षि जैसे पहुँचे हुए ऋषिगण भी गायो के परिग्रह को परिग्रह मे नही गिनते। उनके मैत्रेयी और कात्यायनी,ये दो पत्नियाँ है। सपत्ति के विभाजन की गभीर समस्या है। अनेक ऋषियो के विराट् आश्रम है, जहाँ

सर्वाधिक गाये भी हैं। ज्ञान के क्षेत्र मे ऋषिगण जहाँ ऊँची उडाने भरते रहे हैं, वहाँ आचरण के क्षेत्र मे उनके कदम कुछ शिथिल प्रतीत होते हैं। वैदिक परम्परा मे ही मीमासक दर्शन आदि की कुछ ऐसी विचारधारा भी रही है कि उन्होने ज्ञान की सर्वथा उपेक्षा भी की है। उनका मन्तव्य है कि ज्ञान की कोई आवश्यकता नही है, क्रिया की आवश्यकता है। बिना क्रिया के ज्ञान भार रूप है। 'ज्ञान भार क्रिया बिना' अत वेदोक्त क्रियाकाड विधि-विधान करते रहना चाहिए। जानना मुख्य नही है। आचरण मुख्य है।

जैन सस्कृति ने न केवल ज्ञान को महत्व दिया है और न केवल क्रिया को ही। उसका यह स्पष्ट अभिमत है कि ज्ञान के अभाव की केवल क्रिया थोथी है, निष्प्राण है, अधी है। विचार रहित कोरा आचरण भव-भ्रमण का कारण है, इसी तरह कोरा ज्ञान या विचार लगडा है, गतिहीन है, आध्यात्मिक प्रगति का बाधक है। जब तक ज्ञान और क्रिया, विचार और आचार दोनो पृथक्-पृथक् रहते है, वहाँ तक अपूर्ण है। दोनो का समन्वय होने पर ही वे पूर्ण होते है। उच्च विचार के साथ उच्च आचार की भी आवश्यकता है। अनन्त गगन मे ऊँची उडान भरने के लिए पक्षी को स्वस्थ और अविकल दोनो पाखे अपेक्षित हैं। वैसे ही साधना के अनन्त आकाश मे आध्यात्मिक उडान भरने के लिए ज्ञान और क्रिया, आचार और विचार की स्वस्थ पांखे परमावश्यक है। यदि एक ही पांख स्वस्थ है और दूसरी पाख सड चुकी है या नष्ट हो चुकी है तो वह पक्षी अनन्त आकाश मे उड नही सकता, वह चाहे कितना भी प्रयास कर ले, सफलता प्राप्त नही कर सकता। इसलिए उसने ज्ञान और क्रिया इन दोनो का समन्वय किया।

जैन सस्कृति ने जितना ज्ञान पर बल दिया है, उतना ही चरित्र पर भी दिया है। यही कारण है कि जैन सस्कृति का श्रमण पूर्ण अपरिग्रही होता है। न उसके स्वय का कोई आवास होता है और न स्त्री आदि है। स्त्री आदि के स्पर्श आदि का भी स्पष्ट रूप से निषेध है। वह कनक और कान्ता दोनो का त्यागी होता है।

श्रमण और ब्राह्मण सस्कृति मे दूसरा मुख्य अतर यह है कि श्रमण सस्कृति के प्रभाव से ब्राह्मण सस्कृति ने सयास को तो स्वीकार किया पर 'सन्यास' को वह उतनी प्रमुखता नही दे सका, जितनी गृहस्थाश्रम को दी गई। गृहस्थाश्रम सभी आश्रमो का मूल है। स्मृतिकारो ने उसे सर्वाधिक महत्व दिया है। उसे ही सब आश्रमो मे मुख्य माना। श्राद्ध आदि के लिए सन्तान आवश्यक मानी गई, जबकि श्रमण सस्कृति मे श्रमण ही प्रमुख रहा। वही पूर्ण आध्यात्मिक उत्कर्ष कर सकता है। श्रमण सस्कृति ने किसी वर्ण विशेष को प्रमुखता नही दी। यद्यपि सभी तीर्थंकर क्षत्रिय वर्ण मे ही हुए, पर क्षत्रिय वर्ण ही सर्वश्रेष्ठ है, यह बात नही है। शूद्र भी यदि चारित्र निष्ठ है तो वह क्षत्रियो के द्वारा पूज्य है, अर्चनीय है। हरिकेशी और मेतार्य इसके ज्वलत उदाहरण हैं। जाति-पाति भेद-भाव की दीवारो को तोडने मे श्रमण सस्कृति का प्रमुख हाथ रहा है। 'मनुष्य जाति एक है।' एक ऊँचा और एक नीचा मानना मानवता का अपमान है।

ब्राह्मण सस्कृति मे ब्राह्मण की प्रमुखता रही है। वह सर्वश्रेष्ठ माना गया है। उसके सामने अन्य वर्ण हीन माने गये। शूद्रो को तो वेद पढने का अधिकार ही नही दिया गया। यहाँ तक कि शूद्र के कान मे वेद की ऋचाए गिर जाती तो उनके कर्ण कुहरो मे गर्मागर्म शीशा उडेलकर प्राण-दण्ड दिया जाता था। उनके साथ दानवतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। आध्यात्मिक उत्क्रान्ति का उन्हे कोई अधिकार नही था। इसी तरह ब्राह्मण सस्कृति ने महिला वर्ग को भी अत्यन्त हीन दृष्टि से देखा। उनके लिये भी वेदो का अध्ययन निषिद्ध माना गया, जबकि जैन सस्कृति ने स्पष्ट उद्घोष किया कि महिलाएँ भी केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर सकती हैं और मुक्ति को वरण कर सकती है। इस तरह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'विश्व भवत्येक नीडम्' का उद्घोष करके भी ब्राह्मण सस्कृति ने जाति-पाँति, ऊँच-नीच की स्थिति समाज मे उत्पन्न की। ब्राह्मण वर्ण की ही महत्ता रही, और उसमे भी पुरुष वर्ग की ही।

श्रमण सस्कृति और ब्राह्मण सस्कृति मे मुख्य अन्तर यह भी रहा है कि श्रमण सस्कृति निवृत्ति प्रधान है, उसकी सम्पूर्ण आचार सहिता निवृत्तिपरक है। उसने मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को रोकने पर बल दिया। यहाँ तक कि कोई भी पापकारी कार्य न स्वय करना, न दूसरो को उस कार्य को करने के लिये उत्प्रेरित करना और न करने वाले का अनुमोदन करना-मन से, वचन से और काया से। इस तरह श्रमण के नव कोटि का प्रत्याख्यान होता है। उसकी प्रवृत्ति केवल सयम साधना, तप आराधना के लिये ही होती है, शेष कार्य के लिये नही, जबकि ब्राह्मण सस्कृति प्रवृत्ति प्रधान है। यज्ञ, योग, कर्मकाण्ड उसके फलाफल की जो भी चर्चाए हैं, वे सभी प्रवृत्ति की दृष्टि से ही हैं। श्रमण सस्कृति की जो भी धार्मिक साधनाएँ

हैं, वे सभी साधनाएँ व्यक्तिपरक हैं, जबकि ब्राह्मण धर्म की साधनाएँ समाजपरक रही हैं। समाज को सलक्ष्य में रखकर ही वहाँ साधनाएँ चली हैं। यह सत्य है कि श्रमण संस्कृति ने बाद में चलकर समाज व्यवस्था अपनाई और सामूहिक साधना पर उसने भी बल दिया।

श्रमण संस्कृति और ब्राह्मण संस्कृति में यह भी एक मुख्य अंतर रहा है कि श्रमण संस्कृति ने जनभाषा का उपयोग किया है। उसका यह स्पष्ट मन्तव्य था कि भाषा एक दूसरे के साथ संपर्क स्थापित करने का एक सशक्त माध्यम है। उसका उद्देश्य है—अपने भीतर के जगत् को दूसरों के भीतरी जगत् में उतारना, यही भाषा की उपयोगिता है। भाषा बड़प्पन का मापदंड नहीं है। अतः महावीर ने अभिजात्य भाषा या पंडितों की भाषा न अपना कर उस समय की जन भाषा प्राकृत को अपनाया। वह भाषा मगध के आधे भाग में बोली जाती थी। अतः वह अर्धमागधी कहलाती थी। अर्धमागधी उस समय की एक प्रतिष्ठित लोक भाषा थी। प्राकृत का अर्थ है—प्रकृति जनता की भाषा। इसी तरह तथागत बुद्ध ने भी जन बोली पाली को अपनाया था, पर ब्राह्मण संस्कृति ने जनभाषा की उपेक्षा की, उसने सालंकृत संस्कृत भाषा को अपनाया और उसी भाषा का प्रयोग करने बड़प्पन का अनुभव किया। उन्होंने प्राकृत और पाली भाषा के विरोध में अपना स्वर बुलन्द किया और कहा—ये भाषाएँ मूर्खों की भाषाएँ है और कम पढ़ी लिखी स्त्रियों की भाषाएँ है। प्राचीन नाटकों में शूद्र और महिला पात्रों के मुँह से उन भाषाओं का प्रयोग कराकर ब्राह्मण विदों ने उन भाषाओं के प्रति अपने हृदय का आक्रोश भी व्यक्त किया है। श्रमण संस्कृति में 'देवाणुप्पिया' यह शब्द देवताओं के वल्लभ यानि अत्यन्त आदर का सूचक रहा है, जब कि ब्राह्मण संस्कृति में 'देवनाप्रिय' यह शब्द मूर्ख के लिए व्यवहृत हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक संस्कृति के अनुयायी दूसरी संस्कृति का विरोध करने में अपना गौरव अनुभव करते रहे है।

श्रमण संस्कृति और ब्राह्मण संस्कृति में एक मुख्य अंतर यह भी रहा है कि श्रमण संस्कृति ने किसी एक परम तत्त्व की सत्ता को स्वीकार नहीं किया है, जो सृष्टि का निर्माण, संरक्षक और संहार करती हो। श्रमण संस्कृति का यह दृढ मंतव्य है कि सृष्टि अनादि है, इसका निर्माता कोई ईश्वर नहीं है। संसार चक्र की भांति अनादि काल से चल रहा है। व्यक्ति जिस प्रकार के कर्म करता है, उसी प्रकार वह चार गतियों में परिभ्रमण करता है। अशुभ कर्मों की प्रबलता होने पर उसे नरक गति की भयंकर यातनाएँ मिलती है, शुभ कर्मों की प्रबलता होने पर स्वर्ग के रंगीन सुख प्राप्त होते है और शुद्ध की प्रबलता होने पर मुक्त होता है। संसार चक्र से मुक्त होने के लिए ही साधनाएँ है। साधना के लिए प्रबल पुरुषार्थ अपेक्षित है। साधक को ही सब कुछ करना है। ब्राह्मण संस्कृति ने एक परम सत्य को स्वीकार किया है वही सृष्टि का निर्माण करती है। सृष्टि का संरक्षण और संहार करती है। वह सत्ता ब्रह्मा, विष्णु और महादेव के रूप म विश्रुत है। यदि परमात्मा की कृपा हो जाये तो पापी से पापी जीव भी स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है। उसकी प्रसन्नता से ही जीवन में सुख-शांति की वंशी बजने लगती है, आनन्द का सरसब्ज बाग लहराने लगता है। यदि भगवान किंचित मात्र भी अप्रसन्न हो जाते है तो नरक की दारुण वेदनाएँ मिलती हैं। कष्टों की काली कजराली घटाएँ उमड़-घुमड़कर मँडराने लगती हैं। वह चाहे जिसे तिरा सकता है और चाहे जिसे डुबा सकता है। तिराना और डुबाना उसी परम सत्ता के हाथ में है। उसकी बिना इच्छा के पेड़ का एक पत्ता भी हिल नहीं सकता।

श्रमण संस्कृति में ईश्वर को जगत् का कर्ता व संहर्ता नहीं माना है। पाश्चात्य चिंतक जब तक श्रमण संस्कृति के संपर्क में नहीं आए, तब तक उनका यह मानना था कि बिना ईश्वर के कोई भी धर्म नहीं हो सकता क्योंकि इस्लाम, ईसाई, पारसी आदि भारतीयेत्तर धर्मों में भी ईश्वर को प्रमुख स्थान दिया गया था, अतः उन्हे अपनी मान्यताओं व परिभाषाओं में परिवर्तन करना पड़ा। जैन धर्म ने सर्वशक्ति संपन्न ईश्वर के स्थान पर कर्म की संस्थापना की। उसका अभिमत है कि अनादि काल से जो यह संसार चक्र चल रहा है, वह कर्म के कारण है। कर्म के कारण ही सुख और दुःख उपलब्ध होता है। जब तक जीव के साथ कर्म है, तब तक संसार है, भव-भ्रमण है। कर्म नष्ट होते ही संसार भी नष्ट हो जाता है। कर्म ही संसार की व्यवस्था है। जैन धर्म के प्रस्तुत कर्मवाद सिद्धांत का भारतीय अन्य दर्शनों पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानने वाले उन दर्शनों ने भी कर्म के सिद्धांत को स्वीकार किया। उन्होंने यह कहा-ईश्वर अपनी इच्छा से किसी भी प्राणी को सुख-दुःख प्रदान नहीं करता। वह तो उस प्राणी के कर्म के आधार से ही सुख-दुःख आदि फल प्रदान करता है। जैन संस्कृति ने कर्म की महत्ता को स्वीकार करके भी यह स्पष्ट किया कि आत्मा अपने पुरुषार्थ से कर्म को नष्ट कर सकता है। आत्मा अलग है और कर्म अलग है। कर्म जड़ है और आत्मा चेतन है, यों कर्म अत्यधिक बलवान है, किंतु आत्मा की शक्ति उससे बढ़कर है। वह चाहे

तो प्रबल प्रयास से कर्म शत्रुओ को नष्ट कर पूर्ण सर्वतत्र स्वतत्र बन सकता है।

जैन दृष्टि मे जीव की दो स्थितियाँ हैं--एक अशुद्ध है और दूसरी है शुद्ध। ससार अवस्था अशुद्ध अवस्था है और सिद्ध अवस्था पूर्ण शुद्ध अवस्था है। ससार अवस्था मे कितने ही जीव बहिर्मुखी हैं जो राग-द्वेष मे तल्लीन होकर प्रतिपल-प्रतिक्षण नित-नूतन कर्म बाधते रहते हैं। उन्हे विषय-वासना मे, राग-द्वेष मे आनन्द की अनुभूति होती है, पर जब भेद-विज्ञान के द्वारा विवेक दृष्टि प्राप्त होती है, तब उसे यह परिज्ञान होता है कि आत्मा और कर्म ये पृथक-पृथक हैं। मैं जड स्वरूप नही, चेतन स्वरूप हूँ। मेरा स्वभाव वर्ण, गध, रस युक्त नही अरूपी है। प्रस्तुत विश्वास ही जैन दर्शन की परिभाषा मे सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर साधक विशुद्ध आध्यात्मिक साधना की ओर अग्रसर होता है। वह अहिसा आदि महाव्रतो को धारण कर जीवन को चमकाता है। ब्राह्मण सस्कृति के मूर्धन्य मनीषीगण अपने सुख और शान्ति के लिये यज्ञ करते थे और उस यज्ञ मे बत्तीस लक्षण वाले मानवो की तथा पशुओ की बलि देते थे। भगवान महावीर ने उस घोर हिसा का विरोध किया और अहिसा की सूक्ष्म व्यवस्था की।

ब्राह्मण परम्परा के तपस्वीगण पचाग्नि तप तपते थे। नदी, समुद्र, तालाब, कुण्ड व वाटिकाओ मे स्नान करने मे धर्म मानते थे। भगवान पार्श्व और महावीर ने उसका भी विरोध किया और कहा कि अग्नि और पानी मे जीव है। अत उनकी विराधना करने मे धर्म कदापि नही हो सकता। धर्म हिसा मे नही, अहिसा मे है। द्रव्य-शुचि प्रमुख नही, भाव शुचि प्रमुख है। यदि स्नान से ही मुक्ति होती हो तो फिर मछलियाँ जो रात-दिन पानी मे ही रहती है, उनकी मुक्ति हो जाएगी। ब्राह्मण परम्परा के ऋषियो ने कन्द-मूलआदि के आहार पर बल दिया। जैन परम्परा ने उसे भी अहिसा की दृष्टि मे अनुचित माना। उन्होने कहा-कन्द मूल मे अनन्त जीव होते है। अनन्त काय का उपयोग करना साधको के लिए अनुचित है।

आचाराग सूत्र मे पृथ्वी, पानी अग्नि वायु और वनस्पति मे भी जीव है। इस बात को स्पष्ट किया है। अहिसा का जो सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है वह अपूर्व है। जैन आचार का भव्य प्रासाद अहिसा की इसी मूल भित्ति पर अवस्थित है। जैन सस्कृति ने प्रत्येक क्रिया मे अहिसा को स्थान दिया है। चलना उठना, बैठना खाना, पीना सोना प्रभृति जीवन सबधी कोई भी क्रिया क्यो न हो, यदि उसमे अहिसा का आलोक जगमगा रहा है तो वह क्रिया पाप का अनुबधन करने वाली नही होगी। वाणी और व्यवहार मे सर्वत्र अहिसा की उपयोगिता स्वीकार की गई है। श्रमण के महाव्रत, समिति, गुप्ति, यतिधर्म, द्वादश अनुप्रेक्षाएँ बाईस परीषह, षडावश्यक, चारित्र और तप आदि की जो भी साधनाएँ है उनमे अहिसा का ही प्रमुख स्थान है। अहिसा को केद्र बिदु मानकर ही अन्य व्रतो का विकास हुआ।

अहिसा वाणी का विलास नही, जीवन का वास्तविक तथ्य है। वह तर्क का नही व्यवहार का सिद्धात है आचरण का मार्ग है। श्रमणाचार मे ही नही, अपितु गृहस्थ के आचार मे भी अहिसा प्रमुख है। उसके द्वादश व्रतो का आधार भी अहिसा ही है। यह स्मरण रखना होगा कि अहिसा की नही जाती वह फलित होती है। हिसा से निवृत होना ही अहिसा है। हिसा का निषेध केवल आचार मे ही नही, विचार मे भी किया गया है। विचारगत हिसा ही एकात दर्शन है और अहिसा अनेकात दर्शन है।

ब्राह्मण परम्परा के कितने ही दार्शनिको का यह मन्तव्य था कि आत्मा व्यापक है। सपूर्ण विश्व मे केवल एक ही आत्मा है तो कितने ही दार्शनिक आत्मा को चावल के जितना, जौ के दाने के जितना और अगुष्ठ के जितना मानते रहे तो कितने ही व्यापक मानते रहे, पर जैन सस्कृति का यह मन्तव्य है कि आत्मा शरीर परिमाण वाला है। यदि आत्मा को व्यापक माना जाएगा तो पुनर्जन्म आदि नही हो सकेगा। चूँकि व्यापक वस्तु मे गति सभव नही है। यदि जो, तिल और तन्दुल जितना ही आत्मा को माना जाय तो शरीर मे उतने ही स्थान पर कष्ट का अनुभव होना चाहिए। सपूर्ण शरीर मे नही, पर ऐसा होता नही। सपूर्ण शरीर मे ही सुख और दुःख की अनुभूति होती है।

जैन सस्कृति का मानना है, आत्मा एक गति से दूसरी गति मे जाता है। उस गमन मे धर्मास्तिकाय सहायक बनता है और अवस्थिति मे अधर्मास्तिकाय सहायक होता है। गति सहायक द्रव्य धर्मास्तिकाय कहलाता है और स्थिति सहायक द्रव्य अधर्मास्तिकाय है। इन दोनो द्रव्यो की चर्चा जैन दर्शन के अतिरिक्त अन्य किसी भी दर्शन मे नही आई है। जीव का स्वभाव गमन करने का है। जब जीव कर्ममुक्त होता है, उस समय उसकी गति ऊर्ध्व होती है। मिट्टी का लेप हटने से जैसे तुम्बा पानी के ऊपर आता है, वैसे ही कर्म का लेप हटते ही जीव ऊर्ध्व गति करता है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये केवल लोक मे ही हैं, अत जीवलोकाग्रभाग पर अवस्थित हो जाता है। अलोक मे केवल आकाश ही है अन्य कोई भी द्रव्य नही है। कर्मो की

अधिकता के कारण ही जीव इस विराट विश्व मे परिभ्रमण कर रहा है। कर्म आत्मा से पृथक् है। ससार मे जो विविधता दृष्टिगोचर हो रही है उसका मूल कारण कर्म है। कर्म से ही पुनर्जन्म है। प्रवाह की दृष्टि से कर्म जीव के साथ अनादि अनन्त काल से है। आयु पूर्ण होने पर गतिनामकर्मानुसार जीव चार गतियो मे से किसी एक गति मे जन्म ग्रहण करता है और एक शरीर का परित्याग कर अन्य शरीर का धारण करता है। आनुपूर्वी नाम कर्म के कारण वह जीव उस स्थान पर जाता है। गत्यतर के समय तेजस व कार्माण ये दो शरीर उसके साथ रहते है। वह जहाँ पर जन्म ग्रहण करता है, वहाँ पर यदि वह मनुष्य और तिर्यंच बनता है तो औदारिक शरीर को धारण करता है और यदि नरक व देवगति मे जाता है तो वैक्रिय शरीर धारण करता है। कर्मबन्ध के मिथ्यात्व अव्रत, प्रमाद कषाय व योग ये पाँच कारण है जिन से कर्म वर्गणा के पुद्गल खिंचे चले आते हैं। जितने कारण कम होते जाएँगे, उतनी ही कर्म-बधन मे शिथिलता आएगी। मुक्त होने के लिए कर्मों के प्रवाह को रोकना होगा और पूर्वोपार्जित कर्मों को नष्ट करने के लिए साधना मे प्रबल पुरुषार्थ करना होगा। अन्य दार्शनिको का यह मन्तव्य है कि जीव और शरीर का सबध होने पर भी जीव मे किसी भी प्रकार का विकार नही आता। जीव तो शाश्वत है। जो कुछ भी विकार दृष्टिगोचर होता है, वह जीव सबधी अचेतन प्रकृति का है। ज्ञान आदि जितने भी गुण है, वे जीव के नही, प्रकृति के है। पुरुष और प्रकृति मे भेदज्ञान होने मे प्रकृति अलग हो जाती है। वही मोक्ष है अर्थात् ससार और मोक्ष ये जड तत्व के है और पुरुष मे आरोपित हैं, पुरुष तो अपरिणामी नित्य है। चार्वाक दर्शन का मन्तव्य है कि पाँच महाभूतो से जीव की उत्पत्ति होती है और उनके नष्ट हो जाने से मृत्यु होती है अत पुनर्जन्म और मोक्ष का कोई प्रश्न ही नही है। इस प्रकार प्रस्तुत दोनो विचारधारा के लिए जैन मनीषियो ने गहराई मे चिन्तन किया है और अनेकान्त दृष्टि से उसका समाधान किया है कि द्रव्य दृष्टि से जीव नित्य है और पर्याय दृष्टि से अनित्य है। कर्मजन्य पर्याय को नष्ट कर जीव मुक्त होता है। द्रव्य और पर्याय की मान्यता भी जैन दर्शन की अपनी मान्यता है। द्रव्य और पर्याय को क्रमश नित्य और अनित्य मानकर उसने ससारावस्था और मुक्तावस्था का समाधान किया है। जैन दर्शन ने आत्मा को शरीर प्रमाण माना है जिसमे पुनर्जन्म मे किसी भी प्रकार की बाधा नही आती और शरीर व्यापी होने से शरीर के प्रत्येक कण कण मे उसे सुख व दु ख की अनुभूति होती है।

इस प्रकार दर्शन और धर्म की सास्कृतिक परम्पराओ का पर्यवेक्षण करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जैन मनीषियो ने अहिंसा, अनेकान्त, सर्वभूत समानता (अत्तसम मन्निज्ज छप्पिकाए) ईश्वर कर्तृत्व को अस्वीकार करके भी कर्म सिद्धान्त को जगत् व्यवस्था का नियन्ता तथा नैतिक जीवन का मूलाधार माना है। जीवन मे ज्ञान का महत्व स्वीकार किया है, ज्ञान को प्रथम स्थान दिया है किंतु आचार की कतई उपेक्षा नही की है, बल्कि दोनो ज्ञान-क्रिया को जीवन शरीर के दो चरण स्वीकार कर समान महत्व दिया है अथवा चक्षु और चरण के रूप मे दोनो को ही अत्यावश्यक माना है, अत हम कह सकते है कि भारतीय चिन्तन की सास्कृतिक धारा को जैन मनीषियो ने सतत् प्रवहमान निर्मल और निर्दोष रखने का प्रयत्न किया है। यह है जैन सस्कृति का भारतीय सस्कृति को योगदान।

श्रमण सस्कृति की प्राचीनता

मोहन जोदडो और हडप्पा के ध्वसावशेषो ने पुरातत्व के क्षेत्र मे एक नई हलचल पैदा कर दी है। जहाँ आज तक सभी प्रकार की प्राचीन सास्कृतिक धारणाएँ आर्यो के परिकर मे बधी थी, वहाँ पर खुदाई से प्राप्त उन अवशेषोने यह प्रमाणित कर दिया है कि आर्यो के कथित भारत आगमन के पूर्व यहाँ एक समृद्ध सस्कृति और सभ्यता थी। उस सस्कृति के मानने वाले मानव सुसभ्य, सुसस्कृत और कलाविद् ही नही थे अपितु आत्मविद्या के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। पुरातत्व विदो के अनुसार जो अवशेष मिले है, उनका सीधा सम्बन्ध श्रमण सस्कृति से है। आज यह सिद्ध हो चुका है कि आर्यो के आगमन के पूर्व ही श्रमण सस्कृति भारतवर्ष मे अत्यन्त विकसित अवस्था मे थी। पुरातत्व सामग्री मे ही नही अपितु ऋग्वेद आदि वैदिक साहित्य मे भी इस सम्बन्ध मे पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है।

व्रात्य

अथर्ववेद मे व्रात्य शब्द आया है। हमारी दृष्टि से यह शब्द श्रमण-परम्परा से ही सम्बन्धित होना चाहिए।

व्रात्य शब्द अर्वाचीन काल मे आचार और सस्कारो से हीन मानवो के लिए व्यवहृत होता रहा है। अभिधान चिन्तामणि

कोश मे आचार्य हेमचन्द्र ने भी यही अर्थ किया है।[१] मनुस्मृतिकार ने लिखा है—क्षत्रिय, वैश्य और ब्राह्मण योग्य अवस्था प्राप्त करने पर भी असस्कृत हैं क्योकि वे व्रात्य है और वे आर्यों के द्वारा गहणीय है।[२] उन्होने आगे लिखा है —'जो ब्राह्मण, सतति उपनयन आदि व्रतो से रहित हो उस गुरु मत्र से परिभ्रष्ट व्यक्ति को व्रात्य नाम से निर्दिष्ट किया गया है।[३] ताण्डय महाब्राह्मण मे एक व्रात्य स्तोत्र है जिसका पाठ करने से अशुद्ध व्रात्य भी शुद्ध और सुसस्कृत होकर यज्ञ आदि करने का अधिकारी हो जाता है।[४] इस पर भाष्य करते हुए सायण ने भी व्रात्य का अर्थ आचार हीन किया है।[५]

इन सभी अर्वाचीन उल्लेखो मे व्रात्य का अर्थ आचारहीन बताया गया है। जबकि इनसे पूर्ववर्ती जो ग्रन्थ है, उनमे यह अर्थ नही है, अपितु विद्वत्तम, महाधिकारी, पुण्यशील और विश्वसम्मान्य आदि महत्वपूर्ण विशेषण व्रात्य के लिए व्यवहृत हुए हैं।[६] व्रात्यकाण्ड की भूमिका मे आचार्य सायण ने लिखा है—इसमे व्रात्य की स्तुति की गई है। उपनयन आदि से हीन मानव व्रात्य कहलाता है। ऐसे मानव को वैदिक कृत्यो के लिए अनधिकारी और सामान्यत पतित माना जाता है। परन्तु कोई व्रात्य ऐसा हो जो विद्वान और तपस्वी हो, ब्राह्मण उससे भले ही द्वेष करे परन्तु वह सर्वपूज्य होगा और देवाधिदेव परमात्मा के तुल्य होगा।[७] यह स्पष्ट है कि अथर्ववेद के व्रात्य काण्ड का सम्बन्ध किसी ब्राह्मणेतर परम्परा मे है। व्रात्य ने अपने पर्यटन मे प्रजापति को भी प्रेरणा दी थी।[८] उस प्रजापति ने अपने मे सुवर्ण आत्मा को देखा।[९]

प्रश्न यह है कि वह व्रात्य कौन है जिसने प्रजापति को प्रेरणा दी? डाक्टर सम्पूर्णानन्द व्रात्य का अर्थ परमात्मा करते है[१०] और बलदेव उपाध्याय भी उसी अर्थ को स्वीकार करते है,[११] किन्तु व्रात्य-काण्ड का परिशीलन करने पर प्रस्तुत कथन युक्तियुक्त प्रतीत नही होता। व्रात्य-काण्ड मे जो वर्णन है वह परमात्मा का नही अपितु किसी देहधारी का है। हमारी दृष्टि मे उस व्यक्ति का नाम भगवान् ऋषभदेव है। क्योकि भगवान् ऋषभदेव एक वर्ष तक तपस्या मे स्थिर रहे थे। एक वर्ष तक निराहार रहने पर भी उनके शरीर की पुष्टि और दीप्ति कम नही हुई थी।

व्रात्य शब्द का मूल व्रत है। व्रत का अर्थ धार्मिक सकल्प, और जो सकल्पो मे साधु है, कुशल है, वह व्रात्य है।[१२] डाक्टर हेवर प्रस्तुत शब्द का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं—व्रात्य का अर्थ व्रतो मे दीक्षित है अर्थात् जिसने आत्मानुशासन की दृष्टि से स्वेच्छापूर्वक व्रत स्वीकार किये हो वह व्रात्य है।[१३] यह निर्विवाद सत्य है कि व्रतो की परम्परा श्रमण सस्कृति की मौलिक देन है। डाक्टर हर्मन जेकोबी की यह कल्पना कि जैनो ने अपने व्रत ब्राह्मणो मे लिये है[१४] निराधार कल्पना ही है। वास्तविक सत्य उसमे

---

१ व्रात्य सस्कारवर्जित। व्रते साधु कालो व्रात्य। तत्र भवो व्रात्य प्रायश्चित्तार्ह, सस्कारोऽत्र उपनयन तेज वर्जित। —अभिधान चिन्तामणिकाष, ३/५१८

२ अत ऊर्ध्व त्रयोऽप्येते यथाकालमसस्कृता।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिता॥ - मनुस्मृति, १/५१८

३ द्विजातय सवर्णासु जनयन्त्यव्रतास्तु तान।
तान् सावित्री-परिभ्रष्टान् ब्राह्मानिति विनिर्दिशेत्। —मनुस्मृति १०/२०

४ हीना वा एते। हीयन्ते ये व्रात्या प्रवसन्ति। षोडशो वा एतत् स्तोम समाप्तुमर्हति। —ताण्डय महाब्राह्मण

५ व्रात्यान् व्रात्यता आचारहीनता प्राप्य प्रवसत प्रवास कुर्वत। —ताण्डय महाब्राह्मण सायण भाष्य

६ कश्चिद् विद्वत्तम महाधिकार पुण्यशील विश्वसमान्य।
ब्राह्मणविशिष्ट व्रात्यमनुलक्ष्य वचनमिति मतव्यम्॥ —अथर्ववेद १५/१/१/१ सायण भाष्य

७ वही, १५/१/१/१

८ व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापति समैरयत्। —अथर्ववेद १५/१/१/१

९ स प्रजापति सुवर्णमात्मन्नपश्यत्। —वही, १५/१/१/३

१० अथर्ववेदीय व्रात्यकाण्ड, पृ १।

११ वैदिक साहित्य और सस्कृति पृ २२९।

१२ 'व्रियते यद् तदव्रतम्, व्रते साधु कुशले वा इति व्रात्य।

१३ Vratya as initiated in vratas Hence vratyas mean a person who has volmitanly accepted the moral code of vows for his own spiritual discipline -By Dr Hebar

१४ The sacred Books of the East Vol XXII Intr P 24 It is therefore probable that the Jains have borrowed their own vows from Brahamans, not from Buddhists

नही है। अहिंसा आदि व्रतो की परम्परा ब्राह्मण सस्कृति की नही, जैन सस्कृति की देन है। वेद, ब्राह्मण और आरण्यक साहित्य मे कही पर भी व्रतो का उल्लेख नही आया है। उपनिषदो, पुराणो और स्मृतियो मे जो उल्लेख मिलता है, वह सारा भगवान् पार्श्वनाथ के पश्चात् का है। भगवान् पार्श्व की व्रत-परम्परा का उपनिषदो पर प्रभाव पडा और उन्होने उसे स्वीकार कर लिया। यही तथ्य श्रीरामधारी सिह दिनकर ने निम्न शब्दो मे बताया है—'हिन्दुत्व और जैन धर्म आपस मे घुलमिलकर इतने एकाकार हो गये हैं कि आज का साधारण हिन्दू यह जानता भी नही कि अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये जैनधर्म के उपदेश थे, हिन्दुत्व के नही।''[1]

"व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापति समैरयत" इस सूत्र मे 'आसीदीयमान' शब्द का प्रयोग हुआ है। उसका अर्थ है—पर्यटन करता हुआ। यह शब्द श्रमण सस्कृति के सन्त का निर्देश करता है। श्रमण सस्कृति का सन्त आदि काल से ही पक्का घुमक्कड रहा है। घूमना उसके जीवन की प्रधानचर्या रही है। वह पूर्व,[2] पश्चिम,[3] उत्तर[4] और दक्षिण आदि सभी दिशाओ मे अप्रतिबद्ध रूप से परिभ्रमण करता है। आगम साहित्य मे अनेक स्थलो पर उसे अप्रतिबन्धविहारी कहा है। वर्षावास के समय को छोडकर शेष आठ माह तक वह एक ग्राम से दूसरे ग्राम एक नगर से दूसरे नगर विचरता रहता है।[5] भ्रमण करना उसके लिए प्रशस्त माना गया है।[6]

डाक्टर ग्रीफिथ ने व्रात्य को धार्मिक पुरुष के रूप मे माना है।[7] एफ आई सिन्दे ने व्रात्यो को आर्यों मे पृथक् माना है। वे लिखते है—वस्तुत व्रात्य कर्मकाण्डी ब्राह्मणो से पृथक् थे। किन्तु अथर्ववेद ने उन्हे आर्यों मे सम्मिलित ही नही किया उनमे से उत्तम साधना करने वालो को उच्चतम स्थान भी दिया है।[8]

व्रात्य लोग व्रतो को मानते थे अर्हन्तो (सन्तो) की उपासना करते थे, और प्राकृत भाषा बोलते थे। उनके सन्त ब्राह्मण सूत्रो के अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय थे।[9] व्रात्यकाण्ड मे पूर्ण ब्रह्मचारी को व्रात्य कहा है।[10]

विवेचन का सार यह है कि प्राचीन काल मे व्रात्य शब्द का प्रयोग श्रमण सस्कृति के अनुयायी श्रमणो के लिए होता रहा है। अथर्ववेद के व्रात्य-काण्ड मे रूपक की भाषा मे भगवान् ऋषभ का ही जीवन अकित किया गया है। भगवान् ऋषभ के प्रति वैदिक ऋषि प्रारभ से ही निष्ठावान् रहे है और उन्हे वे देवाधिदेव के रूप मे मानते रहे है।[11]

वातरशना मुनि

श्रीमद्भागवत पुराण मे लिखा है—स्वय भगवान् विष्णु महाराज नाभि को प्रिय करने के लिए उनके रनिवास मे महारानी मरुदेवी के गर्भ मे आये। उन्होने वातरशना श्रमण ऋषियो के धर्म को प्रकट करने की इच्छा से यह अवतार ग्रहण किया।[12]

---

१ सस्कृति के चार अध्याय पृ १२५

२ स उदतिष्ठत स प्राचीदिशमनुव्यचलत। —अथर्ववेद, १५/१/२/१

३ स उदतिष्ठत् स प्रतीची दिशमनुव्यचलत्। —अथर्ववेद, १५/१/२/१५

४ स उदतिष्ठत स उदीची दिशमनुव्यलत। —अथर्ववेद

५ दशवैकालिक चूलिका २ गा ११

६ विहार चरिया इसिण पसत्था। —दशवैकालिक चूलिका-२ गा ५

७ The Religion & Philosophy of Atharva Veda Vratyas were outside the pale of the orthodox Aryans The Atharva Veda not ouly admitted them in the Aryan fold but made the most rightous of them the highest divinity

-F I Sinde

८ देखे लेखक का ऋषभदेव एक परिशीलन ग्रन्थ।

९ वैदिक इण्डैक्स दूसरी जिल्द १९५८ पृ ३४३ मैक्डानल और कीथ।

१० वैदिक कोश वाराणसय हिन्दु विश्वविद्यालय १९६३ सूर्यकान्त।

११ भगवान् परमर्षिभि प्रसादितो नाभ प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मरुदेव्या धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानाम् ऋषीणाम् ऊर्ध्वमन्थिना शुक्लया तन्वावतार। —भागवत पुराण, ५/३/२०

१२ ऋग्वेद १०/११/१३६ २,३

ऋग्वेद मे वातरशन-मुनि का उल्लेख आया है। वे ऋचाएँ इस प्रकार हैं —

मुनयो वातऽरशना पिशगा वसते मला।
बातस्यानु ध्राजिम् यन्ति यद्देवासो अविक्षत।।
उन्मदिता मौनेयन वाता आ तस्थिमा वयम्।
शरीरेदस्माक यूय मर्तासो अभि पश्यथ।।

अर्थात् अतीन्द्रियार्थदर्शी वातरशना मुनि मल धारण करते है जिससे पिंगलवर्ण वाले दिखाई देते हैं। जब वे वायु की गति को प्राणोपासना द्वारा धारण कर लेते है अर्थात् रोक देते है तब व अपने तप की महिमा से दीप्तिमान होकर देवता स्वरूप को प्राप्त हो जाते है। सर्व लौकिक व्यवहार को छोडकर वे मौनेय की अनुभूति मे कहते है "मुनिभाव से प्रमुदित होकर हम वायु मे स्थित हो गए है। मर्त्यो! तुम हमारा शरीर मात्र देखते हो।" रामायण की टीका मे जिन वातरसन मुनियो का उल्लेख किया गया है वे ऋग्वेद मे वर्णित वातरशन मुनि ही ज्ञात होते है। उनका वर्णन उक्त वर्णन से मेल भी खाता है।[१] केशी मुनि भी वातरशन की श्रेणी के ही थे।[२]

तैत्तिरीयारण्यक मे भगवान् ऋषभदेव के शिष्यो को वातरशन ऋषि और ऊर्ध्वमथी कहा है।[३]

वातरशन मुनि वैदिक परम्परा के नही थे। क्योकि वैदिक परम्परा मे सन्यास और मुनि पद को पहले स्थान नही था। श्रमण शब्द का उल्लेख तैत्तिरीयारण्यक और श्रीमद् भागवत के साथ ही वृहदारण्यक उपनिषद[४] और रामायण[५] मे भी मिलता है। इण्डो-ग्रीक और इण्डो-सीथियन के समय भी जैनधर्म श्रमण धर्म के नाम से प्रचलित था। मैगस्थनीज ने अपनी भारत यात्रा के समय दो प्रकार के मुख्य दार्शनिको का उल्लेख किया है। श्रमण और ब्राह्मण उस युग के मुख्य दार्शनिक थे।[६] उस समय उन श्रमणो का बहुत आदर होता था। काल ब्रुक ने जैन सम्प्रदाय पर विचार करते हुए मैगस्थनीज द्वारा उल्लिखित श्रमण सम्बन्धी अनुच्छेद को उद्धृत करते हुए लिखा है कि श्रमण वन मे रहते थे। सभी प्रकार के व्यसनो से अलग थे। राजा लोग उनको बहुत मानते थे और देवता की भाँति उनकी पूजा और स्तुति करते थे।[७]

केशी

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार भगवान् ऋषभदेव जब श्रमण बने तो उन्होने चार मुष्टि केशो का लोच किया था। सामान्य रूप से पाँच-मुष्टि केशलोच करने की परम्परा है। भगवान् केशो का लोच कर रहे थे। दोनो भागो के केशो का लोच करना अवशेष था। उस समय प्रथम देवलोक के इन्द्र शक्रेन्द्र ने भगवान् से निवेदन किया कि इतनी सुन्दर केशराशि को रहने दे। भगवान् ने इन्द्र की प्रार्थना से उसको उसी प्रकार रहने दिया।[८] यही कारण है कि केश रखने के कारण उनका एक नाम केशी या केशरिया जी हुआ। जैसे सिंह अपने केशो के कारण केसरी कहलाता है वैसे ही भगवान् ऋषभ केशी, केसरी और केशरियानाथ के नाम से

१ वातरशना वातरशनस्य पुत्रा मुनय अतीन्द्रियार्थदर्शिनो जूतिवात जूतिप्रभृतय पिशगा पिशगानि कपिलवर्णानि मला मलिनानि वल्कलरूपाणि वासासि वसते आच्छादयन्ति। —सायण भाष्य, १०/१३६/२

२ वही १०/१३५/७

३ वातरशना हवा ऋषय श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिना बभूवु। —तैत्तियारण्यक २/७/१ पृ १३७

४ वृहदारण्यकोपनिषद् ४/३/२२

५ तपसा भुञ्जते चापि श्रमण भुञ्जते तथा। —रामायण बालकाण्ड स १४ श्लोक २२

६ एन्शियेन्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाय मैगस्थनीज एण्ड एरियन कलकत्ता १९२६ पृ ९७-९८

७ ट्रान्सलेशन आव द फेग्मेन्टस आव द इण्डिया आव मेगस्थनीय बान १८४६, पृ १०५

८ चउहि अट्ठाहि लोअ करेइ। —मूल
वृत्ति—तीर्थकृता पचमुष्टिलोच सम्भवेऽपि अस्य भगवतश्चतुर्मुष्टिकलोचगोचर श्री हेमाचार्यकृतऋषभचरित्राद्यभिप्रायोऽयम् प्रथममेकया मुष्टया श्मश्रुकूर्चयोर्लोचे तिसृभिश्च शिरोलोचे कृते एका मुष्टिमवशिष्यमाणा पवनान्दोलितां कनकावदातयो प्रभुस्कन्धयोरुपरि लुठन्ती मरकतोपमानभमाविभ्रती परमरमणीया वीक्ष्य प्रमोद मानेन शक्रेण भगवन्! मय्यनुग्रहविधाय ध्रियतामियमित्थमेवेति विज्ञप्ते भगवतापि सा तथैव रक्षितेति। न ह्येकान्तभक्तानां याच्ञामनुग्रहीतार खण्डयन्तीति —जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्षस्कार २ सू ३०

विश्रुत है। ऋग्वेद मे भगवान् ऋषभ की स्तुति केशी के रूप मे की गई है।[1] वातरशना मुनि प्रकरण मे प्रस्तुत उल्लेख आया है, जिससे स्पष्ट है कि केशी ऋषभदेव ही थे। अन्यत्र ऋग्वेद मे केशी और वृषभ का एक साथ उल्लेख भी प्राप्त होता है। मुद्गल ऋषि को गाये (इन्द्रियाँ) चुराई जा रही थी। उस समय केशी के सारथी ऋषभ के वचन से वे अपने स्थान पर लौट आयी। अर्थात् ऋषभ के उपदेश से वे इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो गयी।[2] ऋग्वेद मे भगवान् ऋषभ का उल्लेख अनेक बार हुआ है।[3]

अर्हन्

जैन और बौद्ध साहित्य मे सहस्रो बार अर्हन् शब्द का प्रयोग हुआ है। जो वीतराग और तीर्थंकर भगवान् होते है, वे अर्हन् की सज्ञा से पुकारे गय है। अर्हन् शब्द श्रमण सस्कृति का अत्यधिक प्रिय शब्द रहा है। अर्हन् के उपासक होने से जैन लोग आर्हत कहलाते है। आर्हत लोग प्रारम्भ मे ही कर्म मे विश्वास रखते थे। यही कारण था कि वे ईश्वर को सृष्टि कर्ता नही मानते थे। आर्हत मुख्य रूप से क्षत्रिय थे। राजनीति की भाँति वे धार्मिक प्रवृत्तियो मे विशेष रुचि रखते थे और वे समय पर वाद-विवादो मे भी भाग लेते थे। इस आर्हत परम्परा की पुष्टि श्री मद्भागवत,[4] पद्मपुराण,[5] विष्णुपुराण,[6] स्कदपुराण,[7] शिवपुराण,[8] मत्स्यपुराण[9] और देवीभागवत[10] आदि स भी होती है। इनमे जैन धर्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे अनेक आख्यान उपलब्ध होते है। हनुमन्नाटक मे, 'अर्हन्नित्यथ जैन शासनरता ' लिखा है। श्रमणनेता के लिए अर्हन् शब्द का प्रयोग ऋग्वेद मे भी हुआ है।८

विष्णु पुराण के अनुसार असुर लोग आर्हत धर्म के मानने वाले थे। उनको मायामोह नामक किसी व्यक्ति विशेष ने आर्हत धर्म मे दीक्षित किया था।[11] वे सामवेद, यजुर्वेद और ऋग्वेद मे श्रद्धा नही रखते थे।[12] वे यज्ञ और पशु बलि मे भी विश्वास नही रखते थे।[13] अहिसा धर्म मे उनका पूर्ण विश्वास था।[14] वे श्राद्ध और कर्म काण्ड का विरोध करते थे।[15] मायामोह ने अनेकान्तवाद का भी निरूपण किया था।[16] ऋग्वेद मे असुरो को वैदिक आर्यो का शत्रु कहा है।[17]

वैदिक आर्यो के आगमन के पूर्व भारतवर्ष मे सभ्य और असभ्य ये दो जातियाँ थी। असुर, नाग और द्रविड ये नगरो मे रहन के कारण सभ्य जातियाँ कहलाती थी और दास आदि जगलो मे निवास करने के कारण असभ्य जातियाँ कहलाती थी। सभ्यता और सस्कृति की दृष्टि स असुर अत्यधिक उन्नत थे। आत्म विद्या के भी जानकार थे।[18] शक्तिशाली होने के कारण वैदिक आर्यो को उनसे अत्यधिक क्षति उठानी पडी। वैदिक वाङ्मय मे देव-दानवो का, जो युद्ध वर्णन आया है हमारी दृष्टि से यह युद्ध असुर

१ केश्यग्नि केशी विष केशी बिभर्ति रोदसी।
केशी विश्व स्वर्दृशे केशीद ज्योति रुच्यते।। —ऋग्वेद १०/११/१३६/१

२ ककर्दवे वृषभो युक्त, आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी दुधेर्युक्तस्य द्रवत सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम। —ऋग्वेद १०/९/१०२/६

३ ऋग्वेद १/२४/१९०/१ ऋग्वेद २/४/३३/१५ ऋग्वेद ५/२/२८/४ ऋग्वेद ६/१/१/८ ऋग्वेद ६/२/१९/११ ऋग्वेद १०/१२/१६६/१

४ श्रीमद्भागवत ५/३/२०

५ पद्मपुराण १३/३५०

६ विष्णुपुराण १७-१८ अ

७ स्कदपुराण ३६ ३७ ३८

८ शिवपुराण ५/४ ५

९ मत्स्यपुराण २४/४३ ४९

१० देवीभागवत ४/१३/५४ ४७

११ अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्क यजत विश्वरूपम् अर्हन्निद दयसे विश्वमम्ब न वा ओजोयो रुद्र त्वदस्ति। —ऋग्वेद २/४/३३/१०

१२ अर्हतैत महाधर्म मायामोहन ते यत।
प्रोक्तास्तआश्रिता धर्ममार्हतास्तेन तेऽभवन्। —विष्णुपुराण ३/१८/१२

१३ विष्णुपुराण ३/१८/१३/१४

१४ विष्णुपुराण ३/१८/२७

१५ विष्णुपुराण ३/१८/२५

१६ विष्णुपुराण ३/१८/२८-२९

१७ विष्णुपुराण ३/१८/८ ११

१८ ऋग्वेद १/२३/१७४/२ ३

१९ महाभारत शान्तिपर्व २२७/१३

और वैदिक आर्यों का युद्ध है। वैदिक आर्यो के आगमन के सात ही असुरो के साथ जो युद्ध छिडा वह कुछ ही दिनो मे समाप्त नही हो गया, अपितु वह सघर्ष ३०० वर्षों तक चलता रहा।[1] आर्यों का इन्द्र पहले बहुत शक्ति सम्पन्न नही था।[2] एतदर्थ प्रारभ मे आर्य लोग पराजित होते रहे थे।[3] महाभारत के अनुसार असुर राजाओ की एक लम्बी परम्परा रही है[4] और वे सभी राजागण व्रत परायण, बहुश्रुत और लोकेश्वर थे।[5] पद्मपुराण के अनुसार असुर लोग जैन धर्म स्वीकार करने के पश्चात् नर्मदा के तट पर निवास करने लगे।[6]

ऊपर के सक्षिप्त विवरण मे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि श्रमण सस्कृति भारत की एक महान् सस्कृति और सभ्यता है जो प्राग् ऐतिहासिक काल से ही भारत के विविध अचलो मे फलती और फूलती रही है। यह सस्कृति वैदिक सस्कृति की धारा नही है, अपितु एक स्वतत्र सस्कृति है। इस सस्कृति की विचारधारा वैदिक सस्कृति की विचारधारा से पृथक् है। वैदिक सस्कृति प्रवृत्ति प्रधान है और श्रमण सस्कृति निवृत्ति प्रधान। वैदिक सस्कृति विस्तारवादी है और श्रमण सस्कृति शम श्रम और सम प्रधान है। वैदिक सस्कृति का प्रतिनिधि ब्राह्मण है, श्रमण सस्कृति का प्रतिनिधि श्रमण है। जो बाह्य दृष्टि से विस्तार करता है, वह ब्राह्मण है और जो शान्ति, तपस्या व समत्वयोग की साधना करता है, वह श्रमण है। ब्राह्मण सस्कृति विस्तारवादी होने से प्रवृत्ति प्रधान है, श्रमण सस्कृति सीमित होने से निवृत्ति प्रधान है। ब्राह्मण सस्कृति ने ऐहिक अभ्युदय पर बल दिया है, श्रमण सस्कृति ने आत्मा की शाश्वत मुक्ति पर बल दिया है। इस प्रकार दोनो का लक्ष्य पृथक् होने से दोनो सस्कृतियो मे मौलिक अन्तर है।

दूसरी बात यह है कि जैन सस्कृति बौद्ध सस्कृति की भी शाखा नही है। जो विद्वान् जैन सस्कृति को बौद्ध सस्कृति की शाखा मानते है, उनके इतिहास विपर्यास पर तरस आता है। त्रिपिटक साहित्य का परिशीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तथागत बुद्ध ने अनेक स्थलो पर श्रमण भगवान् महावीर को निग्गथ नाथपुत्त के नाम से सम्बोधित किया है। तेईसवे तीर्थंकर पार्श्व के आचार-विचार की छाप बुद्ध के जीवन पर और उनके धर्म पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। जैन पारिभाषिक शब्द ही नही, कथा और कहानियाँ भी बौद्ध-साहित्य मे ज्यो की त्यो मिलती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जैन सस्कृति, जिसे श्रमण सस्कृति कहा गया है, वैदिक और बौद्ध सस्कृति से पूर्व की सस्कृति है, भारत की आदि सस्कृति है।

---

१ अथ देवासुर युद्धमभूद वर्षशतत्रयम। —मत्स्यपुराण २४/३७

२ अशक्त पूर्वमासीत्त्व कथचिच्छक्तता गत।

३ कस्त्वदन्य इमा वाच सुक्रूरा वक्तुमर्हति॥ —महाभारत शान्तिपर्व २२७/२२
देवासुरमभूद युद्ध दिव्यमब्दशत पुरा।

४ तस्मिन पराजिता देवा दैत्यैर्ह्लादपुरोगमै॥ —विष्णुपुराण ३/१७/७
महाभारत शान्तिपर्व २२७/४९-५४

५ महाभारत शान्तिपर्व २२७/५९ ६०

६ नर्मदासरित प्राप्य, स्थिता दानवसत्तमा। —पद्मपुराण १३/४१२

गुणो का चिन्तन

मनुष्य जैसा सोचता रहता है वैसा ही बनता है। अगर आप दूसरो के दोषो और बुराइयो का चिन्तन करते रहेगे तो वे दोष आदि आपके भीतर प्रविष्ट हो जायेगे। बुराई सोचने वाला स्वय बुरा बन जायेगा। अगर आप किसी के गुणो का चिन्तन करेगे तो नि सदेह वे गुण आपके भीतर निवास करने लगेगे। इसलिए तो कहा है—दोष तो त्यागकर गुणो का चिन्तन करो।

—उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि

भारतीय संस्कृति : जैन अवदान

डॉ. नेमीचन्द जैन

सभ्यता का उदयास्त सम्भव है, किन्तु संस्कृति—वह तो एक अटूट धारा है, अखण्ड प्रवाह, उसका विकास सम्भव है, उदयास्त असम्भव। भारतीय संस्कृति की स्थिति भी यही है। वह एक अतल महार्णव है, जिसमे नाना संस्कृति-धाराएँ—यहाँ से वहाँ से किस्त-दर-किस्त आई है और पूरी तरह घुलमिल गई है। वस्तुत वह एक ऐसा घोल है, जिसकी अस्मिता अब सम्पूर्णत स्थापित हो गई है।

बहुत पहले भारत मे दो संस्कृति-सरिताएँ समानान्तर प्रवाहित थी, दौड रही थी, दौडती रही पूरी रवानी पर काफी लम्बे समय तक। दोनो तब थी, दोनों आज है, और निरापद अक्षुण्ण है। ये थी/ है—वैदिक श्रमण (इनके अलावा और भी है किन्तु लेख के लिय उनका उल्लेख प्रयोजनीय नही है)। वैदिक संस्कृति की अपनी विशेषताएँ थी (सम्भव है वह आरम्भ मे लोकोन्मुख रही हो और कालान्तर मे विशिष्टजनोन्मुख हो गई हो, किन्तु यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि श्रमण संस्कृति का आविर्भाव सर्वहारागत चेतना मे से हुआ, और वह फैली)। इस संस्कृति को जात-पात, छुआछूत, भाषा भूगोल का कोई आग्रह नही था। इसने सदैव प्रतिपाद्य पर ध्यान दिया, माध्यम पर इसका कभी ध्यान नही गया। ध्यान रहा मात्र यह कि माध्यम कोई हो उसमे से जीवन का सम्यक्त्व प्रकट होना चाहिये, इस तरह इस संस्कृति ने सम्प्रेषण की अपेक्षा सम्प्रेषित को अधिक महत्व दिया, उसने माना कि जो भी कहा जाये वह उन तक अवश्य पहुँचे, जिनके लिय वस्तुत वह संयोजित है।

यही कारण है कि श्रमण संस्कृति की एक प्रमुख धारा जैन धर्म/दर्शन ने लोकजीवन का आश्रय लिया, लोकभाषा और लोक कल्याण को सामने रखा और उन लोगो के लिये उसने धर्म/दर्शन की राहे खोलनी शुरू की जो दलित-पतित दमित-उपेक्षित थे। ऐसे लोगो का धर्म के द्वारा प्राय शोषण हो जाता था, कहे किया जाता था, इसीलिये जब संस्कृत का एकछत्र साम्राज्य था और लोकभाषाएँ निपट उपेक्षित थी, तब श्रमण संस्कृति के मनीषियो ने लोकभाषाओ को विचाराभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। अर्द्ध-मागधी प्राकृत, पालि, अपभ्रंश, अवहट्ठ, हिन्दी इत्यादि जो भी भाषाएँ उसके सामने आयी, उसने उनका पूरे बल से उपयोग किया और लोक-जीवन को एक नवोत्थान दिया। ऐसा नही है कि जैनाचार्य संस्कृत से अपरिचित थ, उसमे भी उन्होने लिखा किन्तु आम आदमी के लिये उन्होने अपनी समकालीन आचलिक भाषा का ही उपयोग किया। असल मे जैन धर्म/दर्शन ने किसी एक भाषा को कभी अपना प्रिय पात्र नही बनाया, अपितु जो भाषा उसे मिलती गयी, वह उसमे ही अपनी बात कहता चला गया।

जैन धर्म का सबसे प्रमुख योगदान है—चिन्तन म औदार्य। जैन मनीषियो ने अपने समकालीनो को बगैर किसी वैचारिक टकराव क समझन का सफल प्रयत्न किया। दुराग्रह को तो उन्होने जैसे अपन शब्दकोष से ही हटा दिया। अनेकान्त और स्याद्वाद जैसे सृजनधर्मी शब्दो को समझन का प्रयत्न जब हम करते है तब यह तथ्य बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। श्रमण संस्कृति ने एक तो जनभाषा को जन स सम्वाद बनाने के लिये अपनाया दूसरे उसने सम्भावनाओ को एक पल के लिय भी नही नकारा। असल मे, अनेकान्त सम्भावनाओ का शास्त्र है। उसका प्रतिपाद्य है कि कोई भी वस्तु कभी एकमुखी/एकायामी नही है, वह बहुमुखी और नाना आयामी है किन्तु जो भाषाएँ/ शब्द हमारी जेब म है, उनकी स्पष्ट हदे है, वे एक समय मे किसी वस्तु की सम्पूर्णता का कथन नही कर सकते। उनकी अपनी विवशताएँ है। वे एक समय मे किसी वस्तु का एक आयाम ही खोल सकते है, स्वभावत शेष आयाम बच रहत है। इस तरह जो आयाम कथन स छूट जात है, उनके अस्तित्व को हम नकार नही सकते। स्याद्वाद मे "स्यात्" का प्रयोग इसी उद्देश्य स हुआ है। लोग 'स्यात्' का प्राय गलत अर्थ कर जाते हैं। वे इस फारसी विशेषण का पर्याय मान लेते है, किन्तु यह भ्रम है, चीजो का बिना समझे ग्रहण किया जाना है। यहाँ 'स्यात्' का अर्थ है, जो कुछ कहा गया है वह एक दृष्टि से/एक परिस्थिति मे कहा गया है अभी बहुत कुछ कहने से छूट गया है। जो/जितना हम अनुभव करते हैं, वह उतना/सब हम भाषा के द्वारा कह नही पाते, इसलिये 'स्यात्' निपात का उपयोग करते हैं। वस्तुत हम मात्र सम्बन्धो का कथन

कर पाते हैं, निरपेक्ष कथन कभी सम्भव ही नहीं है। हजार सर मारने पर भी सारी सम्भावनाएँ एकबारगी चुकाई नहीं जा सकती, हर बार हाशिये में कुछ-न-कुछ बच ही रहता है। इस तरह जैन दर्शन ने वस्तु को समझने के लिये एक चिन्तन-पद्धति आविष्कृत की और कहा कि वस्तु को उसके समस्त आयामों में खोजो/जानो, समझो/टटोलो, किसी एक छोर को अंतिम मान लेने में टकराहट है, क्योंकि भाषा के माध्यम से कभी कोई अंतिम कथन नहीं हो सकता, अनुभव के स्तर पर ही वह हो सकता है, किन्तु अनुभव का शत-प्रतिशत कथन भाषा युगपत् नहीं कर सकती। इस समस्या का समाधान जैनदर्शन/न्याय ने अनेकान्त, स्याद्वाद के द्वारा किया। अनेकान्त मानता है कि वस्तु बहुआयामी है और स्याद्वाद बताता है कि उसका एक ही समय में सम्पूर्ण कथन सम्भव नहीं है।

महत्वपूर्ण यह है कि जैनन्याय ने अपनी इस सहिष्णुतापूर्ण/युक्तियुक्त चिन्तन-प्रक्रिया का प्रतिपादन तब किया, जब लोग अपने मत को प्राय अन्तिम कह रहे थे। उनका कथन था कि जो भी कहा जा रहा है उसके पूर्वापर कोई संभावना शेष नहीं है। जैनदर्शन ने स्पष्ट जाना और कहा कि उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्--उत्पाद व्यय तथापि ध्रौव्य से युक्त जो है वही सत् है, यानी रूप/पर्याय की दृष्टि से तो कोई चीज बनती-मिटती है, किन्तु द्रव्य दृष्टि से उसका ध्रौव्य कभी खतरे में नहीं पड़ता। सोने से नाना आभरण बार-बार बनते हैं, किन्तु सोना जहाँ का तहाँ बना रहा है। वर्ण से नाना शब्द/वाक्य बनते हैं, किन्तु वर्ण ज्यों-का-त्यों बना रहता है बना रह सकता है। रूप/आकार जनमते/मरते हैं, रूपवान यथापूर्व बना रहता है। इस तथ्य को हृदयंगम करते ही कई समस्याओं का स्वत समाधान हो जाता है। स्याद्वाद के सात अंग हैं, जिनके द्वारा वस्तु का कथन होता है, उसके व्यक्तित्व की व्याख्या होती है/की जा सकती है। यह वस्तु-स्वरूप को उसकी गहराइयों में पकड़ने की पद्धति है, इसमें संदेहात्मकता के लिये कोई गुंजाइश नहीं है।

ऐसे उत्तप्त क्षणों में जब शब्द बहुत विस्फोटक हो गया था और उसका एक क्रूर/हिंसक औजार की तरह इस्तेमाल किया जाने लगा था, जैन धर्म ने इस स्वस्थ/निर्भीक, उदार/सम्यक् चिन्तन-पद्धति पर बल दिया और फलत एक वैचारिक जनतन्त्र की स्थापना को प्रेरित किया। विचार-जगत् में एक तर्कसंगत सहिष्णुता को स्थापित करने का श्रेय जैनधर्म को है। अनाग्रह के साथ किसी तथ्य को सुनना और बिना किसी पक्षपात के उसे तर्क की कसौटी पर भाषा की विवशताओं और सीमाओं को जानते हुए-पहिचानने/समझने का प्रयत्न करना जैनधर्म की तत्कालीन-समकालीन भी-बहुत बड़ी विशेषता है। एक तो उसने सुगम-सुबोध जनभाषा को न्याय/दर्शन का माध्यम माना/बनाया, दूसरे उसने किसी गर्भित संभावना से इनकार नहीं किया, उसने माना कि सामने जो है वह भी किसी एक अपेक्षा/दृष्टि से सही हो सकता है, अत उसे भी समझा जाना चाहिये। जैनधर्म/दर्शन के इस अवदान का सही मूल्यांकन यह होगा कि ऐसे समय में जबकि व्यक्ति का सम्मान/अस्तित्व लगभग समाप्तप्राय था, जैनधर्म ने उस सम्मान की वापसी की और व्यक्ति की स्वतन्त्रताओं को आश्वस्त किया। आत्मस्वातन्त्र्य या वस्तुस्वातन्त्र्य-बोध जैनदर्शन की भारतीय संस्कृति को सबसे बड़ी देन है।

यों जब हम अतीत में सुदूर तक आँख पसारते हैं तब देखते हैं कि जैन मनीषियों ने मात्र एक ही क्षेत्र में नहीं वरन् अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य किया और अपनी प्रखर मनीषा के माध्यम से नवकीर्तिमान स्थापित किये। भारतीय भाषाओं कला और शिल्प, न्याय और दर्शन, पुरातत्व और इतिहास, चिन्तन और बहस, नीति और सदाचार, विश्वबन्धुत्व और विश्वशान्ति, लिपि और लेखन-कला, चिकित्सा और आयुर्वेद, ज्योतिष और सामुद्रिक, तन्त्र और मन्त्र, गणित और विज्ञान, भूगोल, व्यापार और उद्योग, पत्र-पत्रिकाओं राजनीति, व्यक्ति-उत्थान, राष्ट्रीयता आदि अनेक क्षेत्रों में जैनधर्म ने अपनी अपूर्व भूमिका का निर्वाह किया है।

इन सब पर संक्षेप में विचार करने से पूर्व हम यह बहुत स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि जैनाचार्यों ने जिस भी क्षेत्र में, जो भी किया है, उसके सन्दर्भ में उसने कभी किसी हिंसा, दुराचरण, क्रूरता इत्यादि का प्रयोग नहीं किया है, सर्वत्र उसका दृष्टिकोण अहिंसक/रचनात्मक रहा है। वस्तुत जैनाचार्यों की भावना सदैव बहुत पवित्र रही और इसीलिये तन्त्र जैसे क्षेत्र में भी उन्होंने संयम, शील और अहिंसा का पूर्णत पालन किया। जो लोग तन्त्र की संरचना को जानते हैं,वे साफ ही कहेंगे कि तन्त्र-जगत् में सुरा-सुन्दरी से बच कर चलना कदापि सम्भव नहीं है। वह मुक्ति का एक साधन माना गया है किन्तु सारा भेद जीवन-शैली का है, इसीलिये जैन मनीषियों ने तन्त्र का कम-से-कम तथा यन्त्र-मन्त्र का अधिक उपयोग किया है। यही स्थिति आयुर्वेद-जगत् की है। कहा जाता है कि भरत की प्रार्थना पर भगवान आदिनाथ ने तन को स्वस्थ/सक्षम बनाये रखने के उपायों का वर्णन किया

था। आयुर्वेदवेत्ता जैन मनीषियो ने वनस्पति-जगत् पर निर्भर रहकर इसका विकास किया है। इस क्षेत्र मे भी अहिंसा और अध्यात्म को सर्वोपरि रखा गया और प्राणिमात्र के कल्याण के लिये जो भी सम्भव हुआ, किया गया।

भारतीय साहित्य को समृद्ध करने मे जैनाचार्यों का अपूर्व योगदान रहा है। संस्कृत, प्राकृत, अर्द्धमागधी, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय आर्य/आर्येत्तर भाषाओ की समृद्धि मे उसकी उल्लेखनीय भूमिका रही है। राजस्थानी, मराठी, गुजराती, हिन्दी इत्यादि भारतीय भाषाओ मे आज जो भी उपलब्ध है, उसका एक नगण्य प्रतिशत ही अभी प्रकाश मे लाया जा सका है, शेष शास्त्र भाण्डारो की ठण्डी फर्श पर अन्धकार मे सोया पडा है। कितनी हस्तलिखित प्रतियाँ/पाण्डुलिपियाँ आज पाठालोचन, सम्पादन, प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रही है, इसका ठीक-ठीक अनुमान भी हम नही कर सकते। निर्विवाद है कि हिन्दी की संपूर्ण विकास-कथा प्राकृत/अपभ्रंश मे जुडी हुई है। जैनाचार्यो ने जो भी रचनाएँ की है, उनके अध्ययन से ही हिन्दी भाषा के विलुप्त विकास सूत्रो को ढूँढा जा सकता है।

इस दृष्टि से जैसे-जैसे/जितना-जितना काम होता जा रहा है वैसे-वैसे/उतनी-उतनी नयी सामग्री सामने आती जा रही है। रिट्ठणेमिचरिउ (स्वयम्भू-७९० ई०) से लेकर प० सदासुखलाल कासलीवाल की विविध भाषा-टीकाओ (१८४९-१८६४ ई०) तक विपुल साहित्य हमारे सामने है। प्राकृत साहित्य का तो कोई ओर-छोर नही है, वह अकूत है। अपभ्रंश साहित्य की भी यही स्थिति है। आज भी प्राय समस्त साहित्य-विधाओ मे जैनसाधु लिखते है। लेख के कलेवर को देखते यहाँ कोई विस्तृत सर्वेक्षण देना सभव नही है, किन्तु यह निर्विवाद है कि जैनाचार्यो ने भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है और इतना दिया है कि जिसका कोई हिसाब नही है। अभी इस सब/सारे का वस्तुनिष्ठ मूल्याकन शेष है।

आर्येत्तर भाषाओ मे द्रविडी भाषाएँ आती है। कर्नाटक मे कन्नड, तमिलनाडु मे तमिल, आन्ध्र मे तेलुगू और केरल मे मलयालम भाषाएँ प्रयुक्त है। इनमे से कन्नड और तमिल मे जो साहित्य उपलब्ध है उसका एक बडा प्रतिशत जैनाचार्यो की देन है। अत्युक्ति नही होगी यदि हम कहे कि तमिल/कन्नड भाषा/ साहित्य का अध्ययन हम यदि करना चाहे तो यह सम्भव ही नही है कि जैनाचार्यो की अनदेखी करे। उनकी कलम का गहन अध्ययन अपरिहार्य है।

यदि हम भारतीय आर्य भाषाओ के क्रमिक विकास का अध्ययन करना चाहे तो भी वह जैन साहित्य के अध्ययन के बिना सभव नही है। अभी तो प्राचीन और मध्यकालीन भाषाओ के विकास का व्युत्पत्तिपरक अध्ययन भलीभाँति नही हुआ है, किन्तु इस ओर विद्वानो का ध्यान गम्भीरतापूर्वक जाता है तो यह असंदिग्ध है कि तद्युगीन जैन साहित्य का गहन अध्ययन-अनुसधान किये बिना वैसा करना लगभग असभव ही होगा। लेखक का विश्वास है कि आज भी जैन साहित्य के गहन अनुशीलन के माध्यम से भारतीय आर्य भाषाओ के ढाँचे का वैज्ञानिक मूल्याकन सम्भव है। सर्वोत्तम उर्वर स्थिति यह है कि जैनाचार्य सारे देश मे पैदल विचरण करते रहे है। उन्होने व्यापक देशाटन द्वारा यहाँ के लोकजीवन को निकट से देखा है/था। इसलिए उनकी कृतियाँ न केवल भाषिक दृष्टि से अपितु सास्कृतिक/सामाजिक दृष्टि से भी बहुमूल्य राष्ट्रीय दस्तावेज है। हिन्दी के व्युत्पत्तिमूलक अध्ययन की भी अनेक गुत्थियाँ प्राकृत/अपभ्रंश-अध्ययन के माध्यम से सुलझायी जा सकती है क्योकि बोलचाल का जो रूप जैनाचार्यो की रचनाओ मे सहज ही सुलभ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। जैनाचार्यो की—फिर वे चाहे किसी भी युग के रहे हो—सबसे बडी विशेषता यह है कि वे बिना किसी दुराव/पक्षपात/सकोच के समकालीन भाषा और साहित्य-विधाओ का उपयोग करते रहे, इसीलिये उनकी सारी कृतियाँ उतने ही महत्व की आज है, जितना कोई रिकॉर्डेड मटीरियल हो सकता है। कुल मे हम कहेगे कि ५०० ई० पूर्व से १५०० ई० तक के भाषा/साहित्य-विकास का अध्ययन इसी पीठिका पर होना चाहिये। यह रूढ दृष्टि होगी कि कोई अध्येता इसलिये इस बहुमूल्य सामग्री को छोड दे कि इसका सम्बन्ध किसी धर्म से है। अध्ययन-अनुसन्धान के क्षेत्र मे धर्म, सम्प्रदाय, राजनीति इत्यादि द्वितीयक महत्व के होते है।

लिपि और लेखन कला की दृष्टि से भी जैन साहित्य महत्वपूर्ण है। कहा जाता है कि प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभनाथ के १०० पुत्र और २ पुत्रियाँ थी। इनमे भरत प्रथम चक्रवर्ती हुये। वे ज्येष्ठ थे। उनके नाम पर ही 'भारत' का नाम 'भारत' हुआ। बाहुबलि छोटे थे उन्होने युद्धशास्त्र को नया मोड दिया, जिसका अभी समीचीन मूल्याकन नही हुआ है। वस्तुत उन्होने मानव-विकास के आदिकाल मे ही युद्धरहित समाज-रचना को प्रवर्तित किया और प्रतिपादित किया कि युद्ध प्राय व्यक्तिगत होते है अत उन्हे व्यक्ति तक ही सीमित रखा जाये व्यापक नरसहार का कारण न बनने दिया जाये। भरत-बाहुबलि युद्ध की कथा वस्तुत एक ऐसे रचनाधर्मी समाज-रचना की कथा है जो मनुष्य की मनीषा को गौरवान्वित करती है और युद्ध को एक नया

आयाम देती है। ब्राह्मी और सुन्दरी भगवान् आदिनाथ की पुत्रियाँ थीं। भगवान् ने ब्राह्मी को अक्षर और सुन्दरी को अंक दिये। इस तरह कर्मभूमि के आरम्भ मे ही मनुजता ने आँख खोलते, न खोलते लिपि और अंकशास्त्र प्राप्त किये। वैसे सारा जैन साहित्य सदियो तक श्रुत रहा, किन्तु ऐसा लम्बे समय तक सम्भव नही था। मनुष्य की स्मृति क्षीण होने लगी थी। आचार्य लगातार चिन्तित थे, अत लेखन-कला का जन्म हुआ। लेखन-कला को लेकर जो सामग्री उपलब्ध है, उससे पता चलता है कि जैनाचार्यों ने ताडपत्रो के आकार, उनके लेखन-योग्य तैयार करने की विधि, अमिट स्याही बनाने की रीति, ग्रन्थो के आकार-प्रकार इत्यादि के सम्बन्ध मे एक सुसमृद्ध शब्दावली का विकास कर लिया था। 'दवात' के लिये मष्यासन, विद्यासन जैसे शब्दो का प्रयोग काफी सार्थक लगता है। पुस्तको के प्रकार मे-गडी कच्छपि, मुष्टि, संपुटफलक, छेदपाटी आदि थे। मुष्टि (मुट्ठी मे आने योग्य) पॉकिटबुक जैसा ही कोई आकार रहा होगा। जिस तरह आज मुद्रण के सन्दर्भ मे प्रूफ-संशोधन का एक शास्त्र विकसित हो गया है, उसी प्रकार मध्यकाल तक हस्तलिखित शास्त्रो/ग्रन्थो के वाचन/संशोधन का भी एक संपूर्ण/समर्थ शास्त्र विकसित हो गया था। 'लहिये' (लिपिक/पाण्डुलिपिकार) को वर्णसाम्य की दृष्टि से इस शास्त्र का अध्ययन करना होता था। अच्छे प्रशिक्षित लहिये कठिनाई से ही मिलते थे। लहिये को न केवल लिपि ज्ञान होता था वरन् वह चित्रकला भी जानता था। ग्रन्थि-छिद्र के चारों ओर जो स्थान छोडा जाता था, उसे कला की दृष्टि स प्राय नयनाभिराम बना लिया जाता था। लेखन-कला और सौन्दर्यशास्त्र गलबहियाँ से चल रहे थे। लेखन को प्रामाणिक, निर्दोष और सम्पूर्ण बनाने का प्रयत्न जैनाचार्यों ने किया था।

ज्योतिष और तन्त्र-मन्त्र के क्षेत्र भी जैनाचार्यों की दृष्टि मे नही छूटे। जैन तन्त्र आद्यन्त अहिंसक और सदाचारमूलक है। वहाँ मासाहार सुरापान सुन्दरीसेवन इत्यादि के लिये कोई स्थान नही है। तन्त्र का जो सामान्य ढाँचा है वे इसीलिये जैनाचार्यों को रास नही आया कि वह लोकजीवन के सामान्य शील और सदाचार का उल्लघन करता है। तन्त्र का मार्ग, वस्तुत सभोग से समाधि का मार्ग है और जैन तन्त्र सयम/सम्यकचारित्र के बिना एक पग भी आगे नही बढ सकता। यही कारण है कि जैन तन्त्र यन्त्र तक ही सीमित रह गया। जैन भण्डारो मे कई यन्त्र मिलते है जिनमे ओम्, अक, चक्र, त्रिकोण चतुष्कोण, स्वस्तिक इत्यादि की आकृतियाँ है। बीजाक्षरो का भी उपयोग हुआ है किन्तु यह सब सयत है और जैनाचार के मूलभूत सिद्धान्तो के अनुरूप है।

जैनाचार्य तन्त्र विद्या के सम्बन्ध मे जानते गहन थे, किन्तु इस सबकी जैनाचार के साथ कोई स्पष्ट सगति नही थी, इसीलिये इस विद्या का समीचीन विकास नही हुआ। असल मे जैन तन्त्र का मूलाधार सात्विकता है। मल्लिषेण (११ वी सदी) के 'भैरवपद्मावतीकल्प' तथा 'विद्यानुशासन' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ म वज्रस्वामी, पादलिप्तसूरि आदि के नाम भी उल्लेख्य है।

जहाँ तक मन्त्र शास्त्र का प्रश्न है, जैनाचार्यो ने इस क्षेत्र म अच्छा कार्य किया है। महामन्त्र णमोकार को लेकर जो भी लिखा गया है, उससे इस तथ्य का पता चलता है कि जैनाचार्यों को बीजाक्षर-विज्ञान, ध्वनिशास्त्र वर्ण-विज्ञान आकृति-विज्ञान इत्यादि का गहन ज्ञान था। णमोकार की रहस्यभूमियो को स्पष्ट करने हुये जैनाचार्यों ने योग/ध्यान मे सम्बन्धित शास्त्र को भी समृद्ध किया है। आचार्य शुभचन्द्र का 'ज्ञानार्णव' इस दृष्टि से एक उल्लेखनीय कृति है। जैन मन्त्रो की सर्वोपरि विशेषता यह है कि उनका प्रयोजन लौकिक न होकर अलौकिक है। सारे मन्त्र आत्मिक शक्तियो के उद्‌घाटन के लिये ही सयोजित है। इन मन्त्रो मे किसी व्यक्ति का कोई महत्व नही है। णमोकार महामन्त्र मे न कोई जाति है, न पाँति, मात्र गुणोपासना है। इस तरह जैन मन्त्रो की सबसे बडी विशेषता है अन्धविश्वासो को उन्मूलित/पराजित करना और लोक/व्यक्ति-जीवन को आत्मोन्नयन की दिशा म प्रवृत्त करना। जैन मन्त्र-स्मरण रहे—कभी भी अन्यत्र नही साधे जाते, उनकी साधना-भूमि व्यक्ति स्वय होता है। शरीर को खोजना और उसे आत्मोत्थान का समर्थ आसन बनाना मन्त्रो का प्रमुख प्रयोजन माना गया है।

जैनाचार्यों ने केवल शरीर को जाना हो, ऐसा नही है, उन्होने सृष्टि रचना को समझने का प्रयत्न किया है। उनका प्रतिपादन है कि सृष्टि अनादि-अनन्त है, इसका कोई रचयिता नही है। इसके निर्माता द्रव्य ६ हैं—जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश काल। उक्त द्रव्य जहाँ तक गमनशील हैं वहाँ तक लोकाकाश और शेष अलोकाकाश है। जीव लोकाग्र तक जा सकता है। जीव और पुद्‌गल का श्लेष ससार बनाता है। मूलत दोनो जुदा हैं, किन्तु एक दीख पडते है देह के रूप मे। दोनो की सत्ताएँ स्वतन्त्र हैं। इनमे से कोई एक-दूसरे मे रूपान्तरित नही हो सकता। यदि कोई यह कहता है कि जीव पुद्‌गल और पुद्‌गल जीव हो सकता है

तो वह सृष्टि-रचना के मूल तत्व को नकारता है। द्रव्य अविनाशीक है, उसके रूपाकार बदलते हैं, मौलिकता ध्रुव रहती है। जीव स्वतन्त्र है। वह किसी विधाता की कृति नहीं है और न ही वह किसी सृष्टिकर्ता के प्रति उत्तरदायी ही है। वह स्वाधीन है और अपनी तमाम हैसियतों में अपने प्रति ही जवाबदेह है। जब तक संसार में वह है, तब तक वह स्वयं भोक्ता और कर्ता है। मुक्त होने के बाद वह द्रष्टा है—वीतराग, अनासक्त। उसे दीख पड़ता है सब कुछ युगपत् किन्तु वह देखता नहीं है।

वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। वस्तु पूर्णतः स्वतन्त्र है। धर्म गति और अधर्म स्थिति-सूचक शब्द हैं। आकाश वह है जो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल को अवकाश देता है। काल परिवर्तनसूचक द्रव्य है। जीव-पुद्गल के बन्ध-मोक्ष की कथा जैन-साधना की सम्पूर्ण कथा है।

सृष्टि-रचना पर विचार करते हुए जैनाचार्यों ने भूगोल पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। जैन भूगोल कितना मान्य/अमान्य है इसकी संपुष्टि तो असम्भव है, किन्तु यह निश्चित है कि जैनाचार्यों ने इस पर ज्योतिषिक और गणितीय दृष्टियों से भी विचार किया है। कर्मसिद्धान्त और ज्योतिष सम्बन्धी विषयों पर जैनाचार्यों ने गणितीय दृष्टि से प्रामाणिक प्रकाश डाला है। यतिवृषभ की अद्वितीय कृति 'तिलोयपण्णत्ति' और वीरसेनाचार्य की 'धवला टीका' नेमिचन्द्राचार्य का 'गोमटसार' और महावीराचार्य का 'गणितसार' इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। प्रा० लक्ष्मीचन्द्र जैन ने जैन गणित पर जो बहुमूल्य शोधकार्य किया उसमें सूचना मिलती है कि जैन गणित अनन्तताओं पर आधारित था और आज के गणित से दो सौ साल आगे था। कर्म सिद्धान्त को लेकर जो गणितीय समाधान आचार्यों ने रखे हैं वे इतने वैज्ञानिक और अकाट्य हैं कि भारतीय गणित को विश्वव्यक्तित्व प्रदान करते हैं। जैन-ज्योतिष के विकास का प्रामाणिक सूत्र हमें ५०१ ई० पू० में उपलब्ध होता है।

सृष्टि-रचना को लेकर कालचक्र पर भी विचार किया गया है। यहाँ कालद्रव्य और कालचक्र एक नहीं हैं। कालचक्र से आशय विकासक्रम से है। माना है कि कालचक्र के बारह आरे हैं, जिनमें से छह अवसर्पिणी के हैं और छह उत्सर्पिणी के। अवसर्पिणी के छह भेद हैं—सुषमसुषमा, सुषमा, सुषमदुष्षमा, दुष्षमसुषमा, दुष्षमा, अतिदुष्षमा तथा उत्सर्पिणी के छह भेद हैं-दुष्षमदुष्षमा, दुष्षमा, दुष्षमसुषमा, सुषमदुष्षमा, सुषमा, अतिसुषमा। जिस काल में जीवों की आयु, देह की ऊँचाई और विभूति आदि में उत्तरोत्तर वृद्धि हो वह उत्सर्पिणी कहलाता है और जिसमें उत्तरोत्तर ह्रास होता हो वह अवसर्पिणी कहलाता है। यह कालचक्र अरुक घूमता रहता है। कुलकरों और तीर्थंकरों की परम्पराएँ आती हैं और अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभाती हैं। नाभिराय जो हमारी पहुँच में हैं चौदहवें कुलकर थे। आदिनाथ इन्हीं के पुत्र थे। भगवान् आदिनाथ ने भोग संस्कृति से बाहर आते लोगों को कर्म का संदेश दिया उन्हें असि, कृषि, मसि में लैस किया। इस तरह कालचक्र मात्र कोई पौराणिक विवरण नहीं है उसका मनुष्य के सांस्कृतिक, सामाजिक और जैविक विकास से सीधा सम्बन्ध है।

जैनाचार में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के महत्व का प्रतिपादन हुआ है। इस त्रयी को मोक्षमार्ग कहा गया है। तत्त्वार्थसूत्र में सर्वप्रथम सूत्र है—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। दर्शन, श्रद्धा, ज्ञान, बुद्धि/तर्क और चारित्र क्रिया/आचरण तत्त्व हैं। श्रद्धा के बिना ज्ञान और ज्ञान के बिना चारित्र क्रमशः अन्धे और पंगु हैं। दर्शन, ज्ञान और चारित्र शब्दों के पूर्व सम्यक् विशेषण प्रयुक्त है जिसका अर्थ है कि यह सारी प्रक्रिया भेद विज्ञान से जुड़ी हुई है। भेदविज्ञान क्या है ? वह विज्ञान जिसके द्वारा आत्मा आत्मा है और शरीर शरीर इसे स्पष्टतः जाना/समझा जाता है, भेदविज्ञान है। भेदविज्ञान जैन तप का मेरुदण्ड है। जो व्रतादि उपवास/एकासन भेदविज्ञान से रीते होते हैं उनका कोई अर्थ नहीं होता। वे लगभग पाषाण-पतित तीर होते हैं।

हम ऊपर कह आये हैं कि जैनधर्म की शरीर-रचना (एनाटामी) में अन्धविश्वास और रूढियों का कोई स्थान नहीं है, अतः हम यहाँ स्पष्ट कहना चाहेंगे कि ऐसा सारा कर्मकाण्ड जो भेदविज्ञान की भूमिका/आधारभूमि पर स्थित नहीं है जैन धर्म में अस्वीकृत है। जैनाचार का केन्द्रबिन्दु इस पार्थक्य की चरम सिद्धि है कि आत्मा आत्मा है देह देह, दोनों श्लिष्ट लगते हैं, तथापि स्वतन्त्र हैं और इन्हें विश्लिष्ट करना ही जैनों का मोक्षमार्ग है।

जैनागम में धर्म शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त है। धर्म द्रव्य का अर्थ गति है, अधर्म का स्थिति। वस्तु के स्वभाव को भी धर्म कहा गया है। क्षमादि आत्मा के स्वभाव हैं अतः इन्हें भी धर्म कहा गया है। क्षमादि दस धर्म हैं (क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य) इन सबके पूर्व उत्तम विशेषण का प्रयोग हुआ है। इसमें यह स्पष्ट हुआ कि जैनाचार में सम्यक्त्व

उत्तमता को सर्वोपरि माना गया है, इस तरह के पाँच व्रत है—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य। श्रावक जैन गृहस्थ इनका अंशत पालन करते हैं और साधु पूर्णत । इसीलिये इन्हे क्रमश अणु और महाव्रत कहा गया है। इस तरह जैनाचार्य का प्रमुख लक्ष्य व्यक्ति और समाज को एक अहिंसक, शान्तिप्रिय, अभीत, प्रीतिपूर्ण, सृजनोन्मुख जीवन शैली प्रदान करना है। उसने सदैव चाहा है कि विषमताओ मे भी समता साँस ले वैचारिक सहिष्णुता स्थापित हो, सब एक-दूसरे को समझे और हाशिया दे तथा एक ऐसे विश्व की रचना हो जिसमे न युद्ध हो, न शत्रुता, मात्र विश्वास और प्रेम हो।

जहाँ तक राजनीतिक क्षेत्र का प्रश्न है, जैन अवदान बहुत स्पष्ट है। जैन तीर्थंकर क्षत्रिय कुल से आये, ऐसे राजघरानो मे जिनकी गणतन्त्र मे सघन/सपूर्ण आस्था थी। लिच्छवि गण, जिसमे से भगवान महावीर आये, एक ऐसा गणराज्य था जिसमे राजा का महत्व कम और प्रजा का अधिक था। दूसरी ओर भगवान महावीर का स्वय का जीवन इस बात का प्रतीक है कि उन्होने समाज के अतिम आदमी को प्रथम माना और उसे बाहर-भीतर मे मुक्त करने का प्रयत्न किया। उनके चतु संघ में कोई भेदभाव नही था। जातपाँत का तो कभी कोई प्रश्न उठा ही नही। समत्व, स्वाधीनता और सकटापन्न की सहायता उनकी क्राति के प्रमुख आधार थे। सहअस्तित्व पर उन्होने पूरा बल दिया। 'जियो, जीने दो' जैनधर्म का प्रमुख आधारस्तम्भ था। यह सब वस्तुत इतना व्यापक था/है कि जीव-जन्तुओ और वनस्पतियो तक को इसने छुआ और अपनी प्रीति-परिधि मे स्वीकार किया। फलत उपयोगी पशु बने रह और जगल अपनी रचनात्मक भूमिका निभाते रहे।

जनतन्त्र मे स्वतन्त्रता का महत्व सर्वोपरि है। जैनदर्शन की रीढ भी स्वाधीनता ही है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिए, उसकी स्वाधीन अस्मिता के निमित्त जैनधर्म/दर्शन ने जो काम किया है, वह भारतीय सस्कृति के इतिहास मे अपनी तरह का निराला है। यहाँ तक कि राजनीति भी इस दृष्टि मे व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा नही कर सकी। आत्मस्वातन्त्र्य को युक्तियुक्त रखने की दृष्टि से भी जैनधर्म की भूमिका उल्लेखनीय है। उसने व्यक्ति को कभी भीड मे धँसने नही दिया, उसकी निजता का न केवल प्रतिपादन किया वरन् उसकी रक्षा भी की। इसी तरह अपरिग्रह के माध्यम से उसने दास-प्रथा को चुनौती दी। ब्रह्मचर्य के द्वारा नारी-मुक्ति का एक मनोवैज्ञानिक आयाम दिया। सामाजिक साम्य की दृष्टि से भी जैनधर्म/दर्शन का अवदान कम उल्लेखनीय नही है। नारी को पुरुष के समकक्ष ले आने का काम उसने तब किया जब नारी को परिग्रह माना जाता था और उसका सामान्य सपत्ति की भाति क्रय-विक्रय होता था। उक्त क्रान्ति द्वारा जैनधर्म ने राष्ट्रीय चेतना को भी उन्नत किया और समाज मे मानवीय दृष्टि को विस्तृत किया। जैनधर्म की भाषानीति और नारी-जागृति की पहल उसे क्रान्तिधर्मी और प्रगतिकामी सिद्ध करने के लिए काफी है।

पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी जैनधर्म/समाज का ऐतिहासिक योगदान है। 'विज्ञप्तिपत्रो' के रूप मे जो वृत्तविवरण मिलते है, वे अद्भुत है। ये पत्र चौदहवी सदी से उन्नीसवी सदी तक के है। माना, ये पूरी तरह अखबार नही है, किन्तु इनका मूल चरित्र अखबार जैसा ही है, समाचारात्मक है। जैन पत्र-पत्रिकाओ के १९७७ मे हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार उनका प्रादेशिक प्रकाशन-वितरण इस प्रकार है—असम, आन्ध्र ४, उत्तर प्रदेश ७३, कर्नाटक ५, गुजरात ६१, तमिलनाडु ७, दिल्ली ३८, नागालैंड १, पजाब-हरियाणा ७, पश्चिम बगाल २३ बिहार ६ मध्य प्रदेश ३५ महाराष्ट्र ७८, राजस्थान ७७ = कुल ३८६। यदि भाषावार इन्हे देखा जाए तो स्थिति इस प्रकार होगी अग्रेजी ११, उर्दू ७, कन्नड ५, गुजराती ७३, तमिल ६, बगला २ मराठी २४, संस्कृत १, हिन्दी २६७ = कुल ३८६। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जैनधर्मानुयायी भाषा, साहित्य, सस्कृति, समाज, राष्ट्र और राजनीति से सम्बन्धित समस्याओ मे कितना रुझान रखता है और किस तरह राष्ट्र को एक कोने से दूसरे कोने तक जोडता है। उक्त पत्र-पत्रिकाओ के—जिनका प्रकाशन-काल लगभग ११५ वर्ष के सुदीर्घ पाट पर फैला हुआ है—सिहावलोकन से पता चलता है कि जैनो ने उन्नीसवी-बीसवी शताब्दियो मे व्याप्त राष्ट्रीय/सामाजिक/सास्कृतिक आन्दोलनो मे किस तरह और कितना हिस्सा लिया और अपने अस्तित्व की रक्षा की।

जैनधर्म की प्राचीनता पर हम यहाँ इसलिए विचार नही करेगे कि अब वह एक सुस्थापित तथ्य है और उस पर और अधिक बहस की गुजाइश नही है। मान लिया गया है कि जैनधर्म अतिप्राचीन है और उसके अवशेष सिन्धुघाटी मे भी प्राप्य हैं। जैनो के २४वे तीर्थंकर भगवान् महावीर को भ्रमवश लोग प्राय जैनधर्म का प्रवर्तक कह देते है, लिख भी देते है, किन्तु वास्तविकता यह है कि उनसे पहले २३ तीर्थंकर और हुए हैं जिनके नाम प्राचीनतम भारतीय साहित्य मे मिलते हैं।

जहाँ तक व्यापार-व्यवसाय/उद्योग मे जैन अवदान का प्रश्न है, वह निर्विवाद है। जैन समाज विश्व मे सर्वत्र विकीर्ण है और अपने आचार-विचार के लिए विख्यात है। उसने देश-विदेश मे उद्योग-धधो के विकास मे जो भूमिका निभायी है, वह सर्वविदित है।

कला और शिल्प के साक्षी भारतीय इतिहास और पुरातत्व है। वास्तु से चित्र तक जैन अवदान अविस्मरणीय है। गुजरात, राजस्थान, बिहार और कर्नाटक के सरस्वती भाण्डारइस तथ्य के जीवन्त प्रमाण है कि जैनो ने कला/शिल्प के क्षेत्र मे भारत का मस्तक सदैव ऊँचा किया है। कला की उपासना मे जैन कभी पीछे नही रहे। जैन मन्दिर तो कला के केन्द्र रहे ही है, शास्त्र-पृष्ठ भी उत्कृष्ट नमूनो मे भर पडे है। समवसरण की रचना और परिकल्पना स्वय मे वास्तुशिल्प की महत्वपूर्ण प्रतीक है उदय गिरि, एलोरा आदि की गुफाएँ भी जैनो की रुचि को स्पष्ट करती हैं। खजुराहो, आबू, राणकपुर, चित्तौड, सोनागिरि, मथुरा, लोहानीपुर श्रवणबेलगोल मूडबिद्री, देवगढ इत्यादि स्थान तो मूर्तिकला और स्थापत्य-शिल्प के जीते जागते उदाहरण है।

यदि भारत के सारे सरस्वती-भाण्डारो और जैन मन्दिरो को बिना किसी पूर्व ग्रहके एक साथ ले लिया जाए तो भारतीय संस्कृति का जो दीप्तिमन्त मुखमण्डल बनेगा वह अद्वितीय/अप्रतिम होगा। इस तरह हम सहज ही कह सकते है कि जैनाचार्यो ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध करने मे जो योग दिया है वह इतना विपुल है कि उसका मूल्याकन इस समय इसलिए असम्भव है कि वह उत्तरोत्तर बाहर आता जाता है और हमारी पूर्व मान्यताओ/निष्कर्षोको प्रभावित करता है। भाषा, साहित्य, सस्कृति, इतिहास, कला, पुरातत्व आदि प्राय सभी क्षेत्रो मे जो नये तथ्य प्राप्त हो रहे है, उनसे भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन का प्रश्न तीव्रतर हुआ है और हम एक ऐसे मोड पर आ खडे हुए है जहाँ प्राप्त निष्कर्षो और तथ्यो की अनदेखी नही कर सकते।

सदर्भ/सहायक सामग्री

१ जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, जिनेन्द्र वर्णी भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, १९७१।
२ जैन लक्षणावली बालचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली १९७२।
३ हिन्दी जैन साहित्य ७९० ई-१८५० ई भगवानदास तिवारी, श्राविका प्रकाशन श्राविका सस्थान नगर सोलापुर १९७५।
४ जैन ज्योतिष साहित्य की परम्परा नेजसिंह गौड श्री वीर ब्रदर्स मन्दसौर १९७७।
५ श्रमणो का महत्वपूर्ण योगदान (भारतीय भाषाओ के विकास और साहित्य की समृद्धि मे) आर के चन्द्र प्राकृत जैन विद्या विकास फड अहमदाबाद १९७९।
६ जैन आयुर्वेद साहित्य की परम्परा, नेजसिंह गौड अर्चना प्रकाशन, उन्हेल (उज्जैन) १९७८।
७ जैन तन्त्र साहित्य मरुधरकेसरी मुनि मिश्रीमल अभिनन्दन ग्रन्थ ब्यावर पृ २२३-२३६ पर प्रकाशित लेख अगरचन्द नाहटा।
८ तन्त्र (अग्रेजी) फिलिप रासन थेम्स एण्ड हडसन लि लन्दन १९७३।
९ राजस्थान का जैन साहित्य प्राकृत भारती जयपुर १९७७।
१० तत्वार्थसूत्र स प फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला भदैनी वाराणसी १९४९।
११ ज्ञानार्णव आचार्य शुभचन्द्र जैन सस्कृति सरक्षक सघ, सोलापुर १९७७।
१२ भारतीय सस्कृति मे जैनधर्म का योगदान हीरालाल जैन मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् भोपाल, १९६०।
१३ ट्रेजर्स ऑफ जैना भाण्डाराज, स उमाकान्त पी शाह एल डी इन्स्टीटयूट आफ इण्डोलाजी अहमदाबाद १९७८।
१४ तीर्थंकर मासिक हिन्दी, जैन पत्र-पत्रिकाएँ विशेषाक—१९७७ वर्ष ७, अक ४-५ हीरा भैया प्रकाशन ६५ पत्रकार कालोनी, इन्दौर
१५ तीर्थंकर मासिक (हिन्दी) णमोकार मन्त्र विशेषाक १-२ १९८० वर्ष १०, अक ७-८-९ हीरा भैया प्रकाशन इन्दौर।
१६ तीर्थंकर मासिक (अग्रेजी), जिल्द १ न ७-१२, राजेन्द्र सूरीश्वर विशेषाक जुलाई-दिसम्बर १९७५।
१७ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन १ २ नमिचन्द्र शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९५६।
१८ मारवाडी समाज (व्यवसाय से उद्योग म), टॉमस एम्बिर्ग राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली १९७८।
१९ न्यू डॉक्यूमेंट्स आफ जैना पेंटिंग्ज मोतीचन्द्र उमाकान्त पी शाह श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, १९७५।
२० मोर डॉक्यूमेंट्स आफ जैना पेंटिंग्ज एण्ड गुजराती पेंटिंग्ज ऑफ सिक्स्टीन्थ एण्ड लेटर सेंचुरीज उमाकान्त पी शाह एल डी इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्डोलॉजी अहमदाबाद, १९७६।
२१ देवगढ की कला भागचन्द्र जैन भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९७४।

संस्कृति की सजग प्रहरी

-डॉ विद्युत जैन, गाजियाबाद

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्त रमन्ते तत्र देवता" जहाँ पर नारियो की पूजा और अर्चना होती है, वहाँ पर देवता निवास करते है। यह आचार्य मनु की अमरवाणी- नारियो के लिए वरदान रूप है। नारी देश, समाज और धर्म की एक दिव्य और भव्य शक्ति है। वह स्वय जागृत रहकर अपने ध्येय की ओर निरन्तर सरिता की सरम धारा की तरह बहती रहती है। नारियो के आदर्श व बलिदानो की कथाओ से भारतीय साहित्य का इतिहास भरा पडा है। उन्होने उग्र तप कर एक कीर्तिमान स्थापित किया। सेवा, सवेदना, त्याग और साहस की जीती जागती प्रतिमा है नारी। उसकी सेवाओ का ऋण इतना महान है कि कभी कोई चुका नही सकता, क्योंकि उसका प्रत्येक कार्य श्रद्धा और प्रेम से भरा हुआ है।

श्रमण भगवान महावीर की वाणी का अमृत रसपान जितना नारी ने किया है, उतना पुरुषो ने नही। महावीर के उपदेश को श्रवण कर वे श्रमणियाँ बनी, भीषण गर्मी और कडकडाती सर्दी की बिना परवाह किए वे अहिसा, अपरिग्रह और अनेकान्त का मगलमय सन्देश घर-घर पहुँचाने के लिए भारत के विविध अचलो मे विचरण करती रही। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भगवान महावीर के १४ हजार श्रमण थे तो श्रमणियो की सख्या ३६ हजार थी। १ लाख ५९ हजार श्रावको की सख्या थी, तो ३ लाख १८ हजार श्राविकाओ की सख्या थी। पुरुषो से नारियो के कदम सदा आगे रहे। उनका तेजोमय इतिहास जब हम पढते है तब हमारा हृदय बासो उछलने लगता है।

भारतीय साहित्य के अभ्यासियो को पता है कि सरस्वती, जो ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी है, चेतना की ऊर्जा है, वह नारी है, सम्पत्ति के बिना मानव समाज की जीवन-यात्रा सुखद नही हो सकती दरिद्रता सबसे बडा पाप है। सम्पत्ति की अधिकारिणी देवी लक्ष्मी भी नारी है और शक्ति की मार्तकिन दुर्गा भी नारी है। नारी ने जन-जन के अन्तर्मानस मे अहिसा, करुणा और ममता की भावना पल्लवित व पुष्पित की। साहित्य कला की मगलमूर्ति नारी है, जिसने ससार को सस्कार प्रदान किए, जननी बनकर स्नेह स्निग्ध गोद मे शिशु को मानवता का पाठ पढाया। बहिन बनकर पवित्र प्रेम प्रदान किया और ध्रुवस्वामिनी बनकर आदर्श गृह जीवन का सचार किया। एतदर्थ ही 'न गृह गृहमित्याहु गृहिणीगृहमुच्यते' कहा गया है। नारी जागरण की इस बेला मे नारियो को यह प्रेरणा देगी कि वे अपने अतीत के उज्ज्वल आदर्श को स्मरण कर अपना जीवन तप और त्याग से उज्ज्वल और समुज्ज्वल बनाएँ।

गुरु की ताडना

दर्जी वस्त्र को काटता है, फिर भी वह दोषी नही है। डाक्टर मनुष्य के हाथ-पैर आदि अगो का छेदन करता है, फिर भी वह दडनीय नही है। राज या मिस्त्री मकान तोडता है, फोडता है, फिर भी वह अपराधी नही है।

इसी प्रकार गुरु या अधिकारी भलाई और सुधार के लिए किसी को ताडना, तर्जना तथा दड आदि देते है तो वे आक्रोश के पात्र नही अपितु अधिकारी ही कहलाते है।

-उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि

नारी के कदम पुरुषों से आगे

—सौ मजुला बहिन अनिलकुमार, बोटादरा,

नारी मानवता के इतिहास की प्रधान नायिका है जिसके आधार पर राष्ट्र का उत्थान और पतन दोनो हुए है। सस्कृति की धाराए फैली भी है और सिमटी भी है। मानव के हृदय जुडे भी है और टूटे भी है सम्बन्ध सुधरे भी है और बिखरे भी है। नारी सेवा और समर्पण की प्रतिमूर्ति है उसने विभिन्न रूप से समाज को सदा समर्पित किया है। सामाजिक, कदर्थनाओ के यत्र मे ईक्षु खड की तरह पिसी जाकर के भी उसने सदा रस प्रदान किया है। समाज के द्वारा पिसी जाकर के भी वह सदा सुवास प्रदान करती रही है। शोषण और उत्पीडन के भुजगो से लिपटी रहने पर भी जो सदा सर्वदा चन्दन की तरह महकती रही है। नारी निष्काम सेवा और समर्पण की पावन प्रतीक है। मानव समाज मे पुरुष सदा सत्ता पर आरूढ रहा, उसने नारी का योग्य मूल्याकन नही किया सदा उसे यातना ही दी।

भगवान महावीर ने नारी जाति का महत्व प्रदान किया, उसने अपने चतुर्विध सघ मे नारी को समान अधिकार दिया। श्रमणी और श्राविका— ये दोनो सघ नारी से ही सम्बन्धित है। हम इस कथन को गौरव के साथ कहते हुए अघाते नही है कि साधु और श्रावक की अपेक्षा साध्वी और श्राविकाओ की सख्या अधिक रही। आज भी साधना के क्षेत्र मे नारी के कदम पुरुषो से बहुत आगे है। यदि हम तप सेवा के क्षेत्र का सर्वेक्षण करे तो सहज ही ज्ञात होगा कि नारी के कदम कितने आगे है। शासन की सेवा मे और उसकी महिमा और गरिमा की अभिवृद्धि करने मे नारी पुरुषो से आगे होने पर भी उसे पुरुषो ने कितना महत्व दिया है? यदि कही पर भाषण का प्रश्न आए तो पुरुषो का स्थान मिलता है, नारी को नही। सघ के अध्यक्ष मत्री आदि पद भी पुरुषो को ही दिए जाते है। कान्फ्रेन्स स्थानक वासी समाज की मातृ सस्था है। उस मातृ सस्था मे भी माताओ को कितना स्थान है जरा शान्त मस्तिष्क से हमारे अधिकारीगण चिन्तन करे। एक चारपाई के दो पाँव मजबूत हो और दो पाँव कमजोर हो तो क्या वह चारपाई बैठने के लिए उपयुक्त रहेगी? चतुर्विध सघ मे यदि साध्वी और श्राविका के पैर कमजोर है तो चतुर्विध सघ किस प्रकार अपनी प्रगति कर सकेगा?

स्मरण रखे नारी ससार की महान शक्ति है। उसके जीवन मे सेवा की सौरभ है। वह प्राणीमात्र की जननी है। राम कृष्ण महावीर, बुद्ध गाधी विनोबा महाराणा प्रताप शिवाजी नेपोलियन बोनापार्ट आदि जितने भी आध्यात्मिक सामाजिक और राष्ट्रीय महापुरुष हुए है, उन्हे जन्म प्रदान करने वाली नारी ही है। आगम साहित्य मे नारी के लिए रत्न कुक्ष धारिणी शब्द का प्रयोग शक्रेन्द्र ने किया है, कितनी गरिमा थी नारी की। पर आज वह गरिमा कितनी अक्षुण्ण है यह सोचने की बात है।

एक दिन नारी ने ऊर्जस्वल व्यक्तित्व और कृतित्व मे पुरुषो से भी आगे अपना स्थान बनाया था। उदाहरण के रूप मे राम की पहचान सीता से श्याम की पहचान राधा से और शकर की पहचान गौरी पार्वती से होती थी। आज भी सीताराम राधेश्याम और गौरीशकर कहते है। प्रस्तुत अवसर्पिणी काल मे भगवान ऋषभदेव की माता मरुदेवा सर्वप्रथम मोक्ष मे पधारी थी। २४ तीर्थंकरो मे एक तीर्थंकर मल्ली भगवती नारी ही थी। नारी ने मानव को सदा उदबोधन दिया। ब्राह्मी सुन्दरी के उद्बोधन से बाहुबली नमन करने के लिए उद्यत हुए। कमलावती के उद्बोधन से इक्षुकार राजा सतपथ पर आरूढ हुआ। राजमती की प्रेरणा से रथनमी साधना पथ मे स्थिर हुए। रत्नावली की प्रेरणा से तुलसीदास रामभक्त बने। नारी प्रेरणास्रोत है।

मै अपनी बहिनो से यह नम्र निवेदन करना चाहूँगी कि लज्जा तुम्हारा आभूषण है, समर्पण और सेवा तुम्हारे जीवन के अलकार है। तुम्हे पाश्चात्य सभ्यता के चकाचौंध मे विलासिता की ओर नही बढना है, तुम्हे अपने सद्गुणो का सदा स्मरण रखकर जीवन जीना है। साथ ही मै कान्फ्रेन्स के अमृत महोत्सव के सुनहरे अवसर पर यह प्रेरणा प्रदान करती हूँ कि इस कान्फ्रेन्स मे महिलाओ को सक्रिय स्थान दे जिससे कान्फ्रेन्स की शक्ति मे अभिवृद्धि होगी।

जैन-संस्कृति में स्त्री का महत्व

श्रीमती सौ पारस रानी मेहता

भारत की परम्परा मे शक्तिबल अथवा शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मबल अथवा अध्यात्मबल की प्रधानता रही है। क्योकि वैभव की पराकाष्ठा होने पर भी आत्मिक शान्ति दुर्लभ रहती है। अमेरिका जैसे धन-सम्पन्न देश मे प्रतिवर्ष जिस तादाद मे आत्महत्याएँ हो रही है, क्या वह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण नही कि भौतिक सुख-समृद्धि की चरम सीमा भी मानव मन को शान्ति नही दे सकती है। जिस प्रकार आकाश का छोर नही मापा जा सकता, वैसा ही तृष्णा का वेग अनन्त है। जितना भोजन दे, कम होने के बजाय क्षुधा बढती-बढती जाती है। तब जिन्होने अपने जीवन के आलोक से मानवता का पथ प्रशस्त किया ऐसे महापुरुषो ने, ज्ञानियो ने–हृदय के आनन्द के लिए, मानसिक परितृप्ति के लिए, चिर सुख व शान्ति के लिए अनेको बार अनेक सूत्र उच्चारण किए। जब-जब सामाजिक या धार्मिक चेतना लुप्त होने लगी, धर्म के नाम पर नाना प्रकार के पाखण्ड और पोप-लीलाएँ चलने लगी उस युग को बदल देने के लिए, प्रचलित मान्यताओ के अन्धविश्वासो को, कुरूढियो के उन्मूलन को जो व्यक्ति-विशेष सामने आया वही कालान्तर मे महापुरुष कहलाया। सस्कृति का अर्थ है सस्कारो का परिष्कृत रूप। *सस्कारो के गठन मे, सस्कृति के निर्माण मे ऐसी महान् आत्माओ का प्रचुर योगदान रहा। इसी प्रकार जैन-सस्कृति को आदर्श* बनाने मे हमारे तीर्थंकर प्रणेता रहे। उनके अनुयायी साधु और श्रावको ने इसे ग्रहण किया। देखना यह है कि इस सस्कृतिकी महानता मे नारी का कैसा और क्या महत्व-योगदान रहा ?

जैनधर्म की आधारशिला तप त्याग और सयम है। इस प्रवृत्ति को आत्मसात् करने मे, धार्मिक नियमो को निष्ठापूर्वक पालने मे इस समाज की महिलाएँ पुरुषो की अपेक्षा भी अग्रणी रही है। जब शास्त्रो मे श्रेणिक पत्नियो या कोणिक माताओ श्री काली/सुकाली आदि देवियो के कठोर तपश्चरण का वर्णन आता है, तब मात्र हम पढकर या सुनकर स्तभित और रोमाचित हो उठते है ऐसा घोर तप उन्होने किया। अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर आज तक का इतिहास साक्षी है कि जिस एकनिष्ठ श्रद्धा से धर्म का अनुसरण स्त्रियो ने किया उसके फलस्वरूप जैन-सस्कृति के मूलाधार–तप, त्याग और प्रत्याख्यान मे इनका स्थान प्रथम रहा।

जैन इतिहास की सतियो के सतीत्व और शील की अनेक तेजोमय भव्य गाथाओ ने जैन-साहित्य को समृद्ध और पूर्ण बनाया है। सती सुभद्रा ने धर्म व शील पर मिथ्या कलक के निराकरण के हेतु परीक्षा की कसौटी पर कच्चे सूत से बधी हुई चलनी से नीर निकाला। महासती राजमती ने केवल अरिष्टनेमी की वाग्दत्ता ही होने पर उन्हे ही पति मानकर उनके ही मार्ग का अनुकरण कर साध्वी-जीवन अगीकार किया। **मयणरेहा के समान धैर्यशील रमणी ने पति के अन्तिम काल मे भी** अखण्ड धैर्य से उनकी सद्गति मे सहायता की। **सुलसा** के समान श्राविका की श्रद्धा को देव भी नत हो गए।

एक ही उदर से उत्पन्न सहोदर बन्धु अनजानवश युद्ध क्षेत्र मे भिड गये। तब साध्वी माता ने समरागण मे जाकर उन्हे शान्ति और वैराग्य का पाठ पढाया।

बाहुबली के समान विकट योद्धा को जो उद्बोधन देने मे समर्थ हुई ऐसी प्रात स्मरणीय **ब्राह्मी और सुन्दरी सती** जो हमारे इतिहास की प्रथम आर्यिकाएँ रही, जिनकी कलाएँ सुविख्यात थी, अवश्य ही जिन्होने उस काल मे महिला समाज का नेतृत्व किया होगा। ऐसी अनेक महादेवियो ने जैन-सस्कृति का गौरव बढाने मे अपना स्थान रखा है।

जैन-धर्म और सस्कृति के श्रेष्ठ उन्नायक प्रभु महावीर के समय मे धर्म और समाज मे विकृतियाँ उत्पन्न हो चुकी थी। वर्ण-व्यवस्था के नाम पर शूद्र कहलाने वालो की दशा दयनीय थी। महिलाओ की दशा भी कुछ अच्छी नही थी, बहु पत्नित्व के कारण नारी भोग-उपभोग की सामग्री थी, वे विलास और वैभव का साधन मात्र थी। दास प्रथा जैसी घृणित प्रथा के कारण मनुष्य पशु की तरह बेचे और खरीदे जाते थे, जिसके परिणामस्वरूप चन्दनबाला को बाजार मे बिकने आना पडता था। दैनिक

जीवन से लेकर धार्मिक विधि-विधानो मे हिसा का बाहुल्य था। ऐसी विषम परिस्थितियो से वैशाली के राजकुमार का परदु खकातर हृदय क्यो न द्रवित होता। अरिहन्तो की साधना आत्म-कल्याण के साथ पर-कल्याण भी है। वर्द्धमान मे "महावीर" प्रगट हुए, अडिग और अजेय। महान तपस्वी और कठोर साधक। अहिसा, अनेकान्त व अपरिग्रह की पुकार लेकर जगत् को कल्याण का सन्देश देने समदर्शी प्रभु आगे आए। अहिसा के द्वारा मैत्री और करुणा की धारा बहानी थी। अनेकान्त के शाश्वत मन्त्र द्वारा भेद-विभेद मिटाने थे। अपरिग्रह के मौलिक सिद्धान्त से स्वस्थ समाज की रचना होने को थी। उस समय भगवान महावीर जितनी श्रेष्ठता पर स्त्रियो को ले जा सकते थे, ले गये। उन्ही के समकालीन भगवान बुद्ध के सामने जब स्त्रियो के प्रव्रज्या का प्रश्न आया, तथागत चिन्तित हुए। प्रधान शिष्य आनन्द के आग्रह पर स्त्रियो को दीक्षित करते समय जो उद्गार उनसे निकले जो शका उनके हृदय मे थी बहुअशो मे वह सत्य भी सिद्ध हुई। परन्तु महावीर निश्चित थे कि धर्म के प्रसार मे महती नारी-शक्ति की आवश्यकता है। वह क्रान्तिकारी परिवर्तन अद्भुत था अपूर्व था, जब नर हो या नारी सिद्धि या मुक्ति दोनो के लिए समान हो गई। समकक्ष अधिकार देकर मातृ-जाति की प्रतिष्ठा और गौरव बढाया। आत्म बल के अनुपम उदाहरण साधना के कठोर मार्ग पर नारी को प्रवृत्त किया। भगवान महावीर ने जब अति कठिन अभिग्रह धारण किया था तब नारी जाति की महान् शक्ति के रूप मे **आर्या चन्दनबाला प्राप्त हुई**। महासाध्वी चन्दनबाला के नेतृत्व मे छत्तीस हजार साध्वियो का विशाल समुदाय जिन शासन की प्रवृत्ति मे, जैन-सस्कृति के उत्थान मे तत्पर हुआ। वास्तव मे यह बहुत बडी विजय थी। नारी-जाति की विजय थी। यह जैन सस्कृति को नारी की अपूर्व देन थी और नारी को यह जैन-सस्कृति की देन थी– आज भी उसी परम्परा मे स्त्रियो का सम्मानपूर्ण स्थान है। परम्परागत सस्कारो के कारण जैन महिलाओ मे आज भी श्रद्धा, शील सन्तोष और दयालुता का प्राचुर्य है। जैन महिला समाज मे अधिकाधिक सद्गुणो की वृद्धि हो ताकि हमारे पूर्वजो की देन हमारी सस्कृति का गौरव अक्षुण्ण रहे।

महावीर वाणी

समभाव

नो उच्चावय मण नियच्छिज्जा।

सकट की घडियो मे भी मन को ऊँचा नीचा अर्थात् डावाडोल नही होने देना चाहिए।

समय सया चरे।

साधक को सदा समता का आचरण करना चाहिए।

सम्यग्दर्शन

सम्मत्तदसीण करेई पाव।

सम्यक्त्वधारी साधक पाप-कर्म नही करता है।

नादसणिस्स नाण।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान नही होता।

श्रावकाचार: विविध रूप

उपाचार्य देवेंद्र मुनि

श्रावकाचार की पृष्ठभूमि

एक भव्य भवन, जो अनन्त आकाश को छू रहा है, जिस पर चमकते हुए स्वर्ण कलश जन-जन के मन को आकर्षित कर रहे है, दर्शक के मन को मुग्ध कर रहे है और वह उसकी प्रशसा करते हुए अघाते नही है, कितनी सुन्दर चमक-दमक है भव्य भवन की, पर उन्हे पता नही कि इस भव्य भवन का मूल आधार सुदृढ नीव की ईंट है। बिना नीव के भव्य भवन का अस्तित्व ही कहाँ है? हवा मे फेकी गई ईंटो से भवन का निर्माण नही होता । वे तो पुन लौटकर निर्माता की जीवन -लीला को ही समाप्त कर देती है।

मानवता की नींव

आध्यात्मिक, धार्मिक और सास्कृतिक जीवन-प्रासाद का निर्माण भी मानवता की गहरी नीव पर ही हो सकता है। आज के जाने हुए विश्व मे ४ अरब से अधिक मनुष्य है किन्तु उनमे से अधिकाश शरीर की अपेक्षा ही मानव है, उनके मन मे मानवता नही है। उनके मन मे पशुवृत्ति पनप रही है, कभी वे अपने भाई को निहार कर कुत्ते की तरह भौकते हैं तो कभी बिल्ली की तरह घुर्राते हैं, कभी लोमडी की तरह काली करतूत का परिचय देते है तो कभी भेडिये की तरह अपनी दुष्ट प्रकृति का प्रभाव दिखाते है। ऐसा पशुवृत्ति वाला मनुष्य इन्सानी-चोले मे क्या नही करता, वह स्वय आबाद रहकर दूसरो की बर्बादी के सपने संजाता रहता है। हर किसी के पथ पर क्रोध और अहकार के काँटे बिछाता रहता है। इसका मूल कारण है मानवता का अभाव! बिना मानवता के नैतिक धार्मिक, आध्यात्मिक जीवन-निर्माण नही हो सकता। जन-जीवन मे जो विसगतियाँ दृष्टिगोचर हो रही है, उनका मूल कारण मानवता का अभाव ही है। जब तक इस कारण को नष्ट न किया जाये, तब तक साधना मे प्राणो का सचार नही हो सकता।

मार्गानुसारी के दिव्य गुण

जैन दर्शन के मूर्धन्य मनीषी आचार्यो ने श्रावकधर्म और श्रमणधर्म ग्रहण करने के पूर्व मानवता के दिव्य गुणो को धारण करना आवश्यक माना। सामान्य मानव से विशिष्ट मानव बनने के लिए आवश्यक है कि वह सर्वप्रथम मार्गानुसारी के दिव्य गुणो को अपनाये।

आगम व आगमेतर साहित्य का गम्भीर अध्ययन कर सर्वप्रथम धर्मबिंदु प्रकरण ग्रन्थ मे मार्गानुसारी के पैतीस बोल पर आचार्य हरिभद्र ने चिन्तन प्रस्तुत किया। उसके पश्चात् अनेक आचार्यो ने अपनी कमनीय कल्पना से उन गुणो पर अधिक विस्तार से प्रकाश डाला। कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र ग्रन्थ मे उन गुणो पर अत्यन्त गहाराई से भाष्य प्रस्तुत किया। ये पैतीस गुण जीवन के लिए इतने अधिक उपयोगी है कि मानव के जीवन मे सद्गुणो का सरसब्ज बाग लहलहाने लगता है। ये गुण मनुष्य को तन से ही नही मन से भी मानव बनाने मे पूर्ण सक्षम है।

धर्म का निवास शुद्ध हृदय मे

धर्म अमृत है। उस अमृत को धारण करने की योग्यता उसी मे आती है, जिसके कण-कण मे मानवता भरी हो। यदि कच्चे घडे मे अमृत भर दिया जाये तो घडा भी नष्ट होगा और अमृत भी। कहा जाता है कि सिहनी का दूध स्वर्णपात्र मे ही टिकता है, सामान्य पात्र मे नही। एक महान कलाकार जिसकी तूलिका मे जादू है, वह ऐसे सुन्दर चित्र अकित करता है, कि दर्शक उन्हे ठगा सा देखता रह जाता है। पर वह उसी दीवार पर चित्र अकित कर सकता है जो दीवार पूर्णरूप से स्वच्छ और चिकनी है, धूल मे सनी हुई और भद्दे रगो से पुती हुई दीवार पर वह मनमोहक चित्र अकित नही कर सकता। एक कुशल कलम कलाधर है जिसकी लेखनी कागज पर सरपट दौडती है पर तेल से स्निग्ध बने हुए कागज पर वह लिख नही सकता। वैसे ही मानवरहित हृदय पर धर्म अकित नही किया जा सकता। इसलिए भगवान महावीर ने स्पष्ट शब्दो मे यह उद्घोष किया कि—"**धम्मो**

सुद्धस्स चिट्ठइ" धर्म शुद्ध हृदय मे ठहरता है। यदि हृदय शुद्ध नहीं है तो कितनी ही धार्मिक साधना की जाये, राख मे घी डालने के सदृश होगी।

यदि मकान के एक कोने मे गन्दगी का ढेर लगा हुआ हो, उसकी भयकर दुर्गन्ध चारो ओर व्याप्त हो, उस समय कोई व्यक्ति उस दुर्गन्ध से बचने के लिए अगरबत्तियाँ जला दे और चाहे कि मधुर सुगन्ध से सारा वातावरण गमक उठे तो यह कदापि सम्भव नही है। यही स्थिति जीवन की है। मन विषय कषायो से कलुषित है, विकारो की गन्दगी से सत्रस्त है तो धर्म जीवन को पवित्र नही बना सकता। उसे जीवन मे धर्म का दिव्य तेज प्रकट नही हो सकता। एतदर्थ ही आचार्यो ने सर्वप्रथम सद्गुणो के आचरण पर बल दिया है।

आत्मा की पाँच श्रेणियाँ

भारत के तत्त्व महर्षियो ने आत्मा के सम्बन्ध मे विभिन्न दृष्टियो से चिन्तन किया है। आध्यात्मिक उन्नति और उत्थान की क्षमता की दृष्टि से उन्होने आत्मा की पाँच श्रेणियाँ प्रतिपादित की हैं। वे इस प्रकार है—(१) प्रसुप्त आत्मा (२) सुप्त आत्मा (३) जागृत आत्मा (४) उत्थित आत्मा (५) समुत्थित आत्मा।

(१) **प्रसुप्त आत्मा**—जो आत्मा मोह की गाढ निद्रा मे सोया हुआ है, वह प्रसुप्तात्मा कहलाता है। मोह के सघन आवरण को नष्ट करने मे वह आत्मा कभी सक्षम नही होता। अभव्य आत्मा इसी कोटि के अन्तर्गत है जो व्यवहार दृष्टि से उग्र तपश्चरण करने पर भी मोह का विलयन कर सकने के कारण तीन काल मे भी मोक्ष प्राप्त नही कर पाता।

(२) **सुप्त आत्मा**—अभव्य आत्मा की भाँति मोह का अत्यन्त सघन और कभी भी न टूट सकने वाला आवरण इस आत्मा पर नही होता, प्रयत्न करने पर वह आत्मा जागृत भी हो सकती है। किन्तु इस आत्मा मे इतनी सुषुप्ति होती है कि सत्य को समझने की भावना ही उसमे उदबुद्ध नही होती। यह स्थिति प्रथम गुणस्थानवर्ती भव्य आत्मा की होती है।

(३) **जागृत आत्मा**—यह वह आत्मा है जिस पर अनन्त काल से चढी हुई मिथ्यात्व की परते हटने लगती है, अज्ञान की दुर्भेद्य ग्रन्थियाँ खुलने लगती है, जिससे जीवन मे सत्य के सदर्शन होते है। आत्मानुभव का अपूर्व आह्लाद जगमगाने लगता है। यह अवस्था चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यग्दृष्टि जीव की होती है।

(४) **उत्थित आत्मा**—जगने के पश्चात् प्रमाद का परिहार कर धर्माचरण की ओर इस श्रेणी के आत्मा की गति और प्रगति होती है। वह प्रबल पराक्रम कर श्रावक के अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत तथा एकादश प्रतिमाओ को धारण करता है। यह अवस्था पचम गुणस्थानवर्ती देशविरत श्रावक की होती है।

(५) **समुत्थित आत्मा**—यह आत्मा पूर्णरूप से जागृत होकर दृढ सकल्प के साथ साधना के महापथ पर बढता है। चाहे कितने भी विघ्न और बाधाएँ आये उनसे जूझता हुआ आगे बढता है उसके कदम पीछे नही हटते यह भूमिका छठे और सातवे गुणस्थानवर्ती श्रमण साधक की होती है।

प्रसुप्त और सुप्त आत्मा मे मानवता का अभाव होता है। जागृत आत्मा ही मानवता के पथ पर अपने कदम बढाती है। वही मार्गानुसारी गुणो को अपनाती है। मार्गानुसारी के पैंतीस गुणो मे सर्वप्रथम गुण है न्यायसम्पन्न-विभवता अर्थात् न्याय से उपार्जित धन से आजीविका करना।

(१) न्याय सम्पन्न विभव

एक सद्गृहस्थ श्रमण की तरह भिक्षा माँग कर जीवन निर्वाह नही करता वह न्याय और नीतिपूर्वक अर्थ का उपार्जन करता है। आचार्य हरिभद्र[१] ने, आचार्य हेमचन्द्र[२] ने और पण्डित आशाधर[३] ने एक स्वर मे इस बात का समर्थन किया है कि गृहस्थ न्याय और नीतिपूर्वक ही अर्थोपार्जन करे। आगम साहित्य मे भी गृहस्थ का विशेषण **'धम्माजीवी'** आया है। न्याय और नीतिपूर्वक वह आजीविका चलाता है। तथागत बुद्ध ने भी अष्टाङ्गिक मार्ग मे पाँचवाँ मार्ग **'सम्यग् आजीव'** बताया है। अन्याय और अनीति से जो धन कमाया जाता है वह धन धर्मयुक्त नही है। जैसे जहरीले भोजन से जीवन के लिए खतरा पैदा हो जाता है वैसे ही अन्याय और अनीति से प्राप्त धन भी शान्ति प्रदान नही करता। सम्पत्ति का अर्थ है—**सम्यग् प्रतिपत्ति —सम्पत्ति।** जो

---

१ न्यायोपात्त हि वित्तमुभयलोकहितायेति। —धर्मबिन्दु प्रकरण १

२ न्यायसम्पन्नविभव। —योगशास्त्र, १/४७

३ न्यायोपात्त धनायजन् गुणगुरून् सदगीस्त्रिवर्गभजन्। —सागारधर्मामृत

न्यायपूर्ण, शुद्ध और सम्यक प्रकार से प्राप्त होती है, वह सम्पत्ति है। अन्याय और गलत तरीके से प्राप्त सम्पत्ति, सम्पत्ति नहीं विपत्ति है।

(२) शिष्टाचार-प्रशसक

मार्गानुसारी का द्वितीय गुण शिष्टाचार-प्रशसक है, श्रेष्ठ आचार की प्रशसा करना है। शिष्ट शब्द का अर्थ व्याकरण की दृष्टि से अनुशासित है। जो गुरुजनो के अनुशासन म रहता है, वह शिष्ट है। शिष्ट को ही वर्तमान भाषा मे "करेक्टर" (**character**) या 'मोरल" (**Moral**)कहते है। जिसमे वह होता है, यह व्यक्ति समाज का शृगार है। दूध मे शक्कर मिल जाने से उसका स्वाद बढ जाता है, वैसे ही सदाचार से जीवन मे निखार आ जाता है। शिष्टचार की प्रशसा करने से समाज मे सदाचार की प्रतिष्ठा होती है। गीताकार ने भी कहा है—श्रेष्ठ व्यक्तियो के आचरण का अनुसरण समाज के अन्य लोग करते है। जिसके मन मे श्रेष्ठाचार के प्रति आस्था होगी, वही शिष्टाचार की प्रशसा कर सकता है। सर्वोदयी सन्त विनोबा ने कहा—'यह मत भूलो कि जनता थर्मामीटर है। हमारे आचरणो की नाप-जोख जितनी जल्दी वह कर सकती है हम स्वय भी नही कर सकते।'

आचार्य मुनिचन्द्र[१] ने शिष्टचार के अठारह सूत्र दिये है, वे इस प्रकार हैं—

१—लोकापवाद का भय।
२—दीन और गरीबो के प्रति सहयोग की भावना।
३—कृतज्ञता।
४—निन्दा का परित्याग।
५—विज्ञजनो की प्रशसा।
६—आपत्ति की घडियो मे धैर्य।
७—धन-वैभव की प्राप्ति होने पर भी विनम्र रहना।
८—समय पर औचित्यपूर्ण और परिमित वाणी बोलना।
९—किसी के साथ कदाग्रह और विरोध न करना।
१०—जिस कार्य को स्वीकार किया है, उस कार्य को पूर्ण करना।
११—कुलधर्म का सम्यग् प्रकार स पालन करना।
१२—अर्थ का अपव्यय न करना।
१३—आवश्यक कार्य को सम्पन्न करने के लिए यत्न करना।
१४—श्रेष्ठ कार्य म सदा सलग्न रहना।
१५—प्रमाद का परिहार करना।
१६—लोकाचार का पालन करना।
१७—जहाँ तक हो सके अनुचित कार्य स बचकर उचित कार्य करना।
१८—निम्नस्तरीय कार्यो से सदा बचना।

ये अठारह सूत्र केवल सकेत है, इन सकेत के आधार पर अन्य शताधिक ऐसे सूत्र व्यवहार तथा शिष्टाचार के सम्बन्ध मे हो सकते हैं जिनका पालन सद्गृहस्थ के लिए आवश्यक है। कौन सा व्यवहार शिष्टाचार है, और कौन- सा नही है? इसका निर्णय विवेक के आधार पर किया जा सकता है।

(३) काम सयम

गृहस्थ पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य का पालन नही कर सकता। इसलिए उसके अनियन्त्रित जीवन को नियन्त्रित करने हेतु विवाह का विधान किया है। विवाह का अर्थ है—स्त्री-पुरुष का जीवन भर के लिए स्नेह और सहयोग के सूत्र म बँध जाना। उस बधन मे केवल काम-भावना की प्रमुखता नही होती किन्तु उच्च सकल्प और उच्च धैर्य के साथ जीवन के क्षेत्र म अपने लक्ष्य की ओर

---

१ धर्मबिन्दु टीका।

बढने की होती है। इसलिए विशिष्टता के साथ वहन करने को विवाह कहा है। वह विवाह हरेक के साथ न किया जाये, इसके लिए प्रस्तुत मार्गानुसारी गुण मे दो बाते बताई हैं—

(१) समान कुलशील और (२) अन्य गोत्र।

• आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार—सामन कुल-शील वाले तथा अन्य गोत्र मे उत्पन्न हुए परिवार के साथ वैवाहिक सम्बन्ध किया जा सकता है।[१] अन्य कुल मे समुत्पन्न हुई कन्या का यदि आचार-विचार रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान पृथक् हैं तो न कन्या प्रसन्न रह सकती है, और न ही अन्य पारिवारिक जन ही। अत आचार्य ने समान कुल और समान शील पर बल दिया, जिससे एक-दूसरे के जीवन मे विषमता न आये।

भगवती[२] और ज्ञाताधर्मकथा[३] आदि मे महाबल और मेघकुमार के विवाह-प्रसग है, वहाँ यह स्पष्ट बताया है कि कन्या और वर परस्पर वय की दृष्टि से, रूप की दृष्टि से, सुन्दरता की दृष्टि से, यौवन की दृष्टि से समान थे। जिससे उनके जीवन मे परस्पर स्नेह सम्बन्ध बना रहता। धार्मिक समानता भी थी जिससे पति-पत्नी के जीवन मे कलह नही होता।

विवाह के लिए सगोत्र कन्या का जो निषेध किया गया है, उसके पीछे शारीरिक और मनोवैज्ञानिक कारण रहे हुए होगे। सगोत्रज कन्या की अपेक्षा अन्य गोत्रज कन्या की सन्तान सभव है अधिक प्रतिभाशाली और शारीरिक-मानसिक दृष्टि से अधिक विकसित होती होगी।[४]

समान कुल और शील वाली पत्नी ही धर्म मे सहायता करने वाली धर्म मे अनुरक्त और सुख-दुःख मे साथ देने वाली होती है।[५]

आगम साहित्य के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि विवाह योग्य वय मे ही किया जाता था। इस सम्बन्ध मे आगमो मे कहा गया है—बालभाव से उन्मुक्त होने पर[६] नौ अग प्रतिबुद्ध होने पर[७] और गृहस्थ सम्बन्धी भोग भोगने मे समर्थ होने पर।[८]

इससे यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह उस समय अयोग्य माने जाते थे।

(४) पाप का भय

जो आत्मा को पतन की ओर ले जाता है, वह पाप है।[९] दूसरे शब्दो मे जो पुण्य का शोषण करता है, वह पाप है।[१०] अथवा—जीव रूपी वस्त्र को जो मलिन करता है, वह पाप है।[११] पाप वह परिणाम है, जिससे आत्मा का बन्धन और पतन होता है।[१२] जिसके करने से मन शकित-सत्रस्त होता है, वह पाप है।

यद्यपि गृहस्थ सर्वथा पाप का वर्जन नही कर सकता तथापि विवेक के कारण वह पाप मे मन्दता तो ला ही सकता है क्योकि पाप मे तीव्रता और मन्दता भावो के कारण ही होती है। पाप करते समय यदि मन मे पाप के प्रति घृणा नही है, सकोच नही है तो वह उत्कृष्ट पाप का बन्धन करता है। यदि मन मे यह विचार है कि परिस्थितिवश मुझे पाप करना पड रहा है, मेरे मन मे इतना सामर्थ्य नही कि मै इस पाप से बच सकूँ। इस प्रकार कार्य करते हुए पाप का तीव्र बन्धन नही होगा। मार्गानुसारी का चतुर्थ गुण **'पापभीरु'** बताया गया है। गृहस्थ अन्य किसी भी चीज से भयभीत नही होता, किन्तु पाप से भयभीत होता है।

पाप का भय रखना एक बात है और पाप करके भय लगाना दूसरी बात है। पाप करने पर व्यक्ति का कलेजा थर-थर काँपता है। कहावत भी है—पाप किसी का बाप नही है। जो भी पाप करेगा उसे उसका कडवा फल अवश्य ही मिलेगा। पाप करने के पूर्व

---

१ कुलशीलसमै सार्धकृतादवाहोऽन्यगोत्रजै। —योगशास्त्र १/४७

२ सरिसयाण सरिसव्वण सरिसत्ताण सरिसलावण्णरूवजोवण् गुणोववेयाण सरिस एहि तो। —भगवती सूत्र ११/११

३ ज्ञातासूत्र १/१

४ साधना के सूत्र पृष्ठ ९९ प्रथम सस्करण श्री मधुकर मुनि।

५ उपासकदशाग सूत्र ७/२४७

६ उम्मुक्क बालभावे। —भगवती सूत्र ११/११

७ णवग सुत्त पडिबोहिए। —ज्ञातासूत्र १/१

८ अल भोग समत्थ। —भगवती सूत्र ११/११

९ पातयति आत्मान इति पापम्।

१० पातयति—शोषयति पुण्य इति पापम्।

११ पाशयति—गुण्डयति जीव वस्त्रामिति पापम्।

१२ पाशयति पातयति वा पापम्। —उत्तरा चूर्णि २

यदि मन मे भय है तो वह कभी भी पाप नही करेगा। जो पाप से डरता है वह पण्डित है। चूर्णिकार जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने कहा—**पापात्डूडीन पण्डित।**[1] केवल पढने-लिखने से कोई पण्डित नही होता, पर पण्डित वह होता है—जो पाप से दूर रहता है। पाप पशु है। उस अशुभ पाप से गृहस्थ को बचना चाहिए। इसीलिए सद्‌गृहस्थ का पापभीरु[2] गुण बताया गया है। सरक्षण सस्कारित प्रसिद्ध[3]

(५) देश-प्रसिद्ध आचार का पालक

गृहस्थ का जीवन समाज और राष्ट्र से सबधित होता है। वह अपने देश और राष्ट्र की सस्कृति व सभ्यता का समुचित पालन करता है। ज्ञान-विज्ञान, अनुभव और चिन्तन के फलस्वरूप जो महान आचार-विचार की सम्पत्ति उसे प्राप्त हुई है, उसके सरक्षण, सवर्धन और सचालन का महान उत्तरदायित्व उस पर है। प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि जीवन को सस्कारित बनाने वाले आचार और विचार का आदर करे। जिसे अपने देश और राष्ट्र के प्रति गौरव है वह देशाचार का उल्लघन नही करता। पवित्र चरित्र को अपनाने मे ही गौरव की अनुभूति करता है।

(६) निन्दा नहीं करता

गृहस्थ किसी की भी निन्दा न करे और विशेषरूप से राजा, मन्त्री आदि शासन के अधिकारी तथा धर्मगुरुओं की कभी भी निन्दा न की जाये।

निन्दा जीवन का बहुत बडा दुर्गुण है। निन्दक व्यक्ति की दृष्टि गुण पर नही, दोष पर रहती है, उसमे कषाय की तीव्रता रहती है जिससे वह दूसरो के गुणो मे भी दोषो को निहारता है। सौ सद्‌गुणो की उपेक्षा कर एक दुर्गुण पर ही उसकी दृष्टि केन्द्रित होती है।

भगवान महावीर ने निन्दा को पीठ का मास खाने के सदृश्य कहा है।[4] तथागत बुद्ध ने कहा—जो व्यक्ति दूसरो की निन्दा करता है, वह अपने मुख मे पाप एकत्र करता है।[5] इस्लाम धर्म मे भी कहा है—"गीबत (निन्दा) जिना (व्यभिचार) से भी सगीन है। यदि कोई मानव व्यभिचार का सेवन कर ले तो वह पश्चात्ताप करके उस पाप से मुक्त हो सकता है किन्तु निन्दा की माफी तब तक नही होती जब तक वह इन्सान माफ न करे जिसकी उसने निन्दा की है।[6]

आचार्यों ने निन्दा का निषेध करते हुए प्रस्तुत गुण मे एक बात पर विशेष बल दिया है कि राजा मन्त्री आदि की निन्दा न की जाय क्योंकि राजा, मन्त्री आदि राष्ट्र के गौरव होते है, उनका चरित्र राष्ट्र का प्रतीक होता है। इसलिए राष्ट्र के प्रतीक राजा व राज्य के अधिकारी व्यक्ति पर लाछन लगाने से न केवल उसका चारित्र लाछित होता है अपितु राष्ट्र भी लाछित होता है। इसके अतिरिक्त उन राज्याधिकारियो की दृष्टि वक्र हो सकती है जिससे गृहस्थ के स्वय के जीवन मे अशान्ति छा सकती है। अत निन्दा से दूर रहकर किसी के भी सद्‌गुणो की प्रशसा करनी चाहिए। इस सद्‌गुण का मूल भाव है कि गुणानुरागी बना जाय।

(७) आदर्श घर

गृह मे रहने के कारण मनुष्य गृहस्थ कहलाता है—**गृहे तिष्ठति गृहस्थ।** इसीलिए उसे आगारी भी कहते है और सागारी भी। भारतीय जन-जीवन के ज्ञाता आचार्य ने कहा—गृहस्थ का आवास न एकदम खुला हो और न एकदम गुप्त ही हो।[7]

मार्गानुसारी का यह सातवाँ गुण इस बात पर प्रकाश डालता है कि घर ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहाँ पर आबादी हो क्योकि गृहस्थ के पास माया-धन आदि भी होता है। उसकी सुरक्षा की दृष्टि से बिल्कुल एकान्त स्थान खतरे से खाली नही है। और ऐसी गली मे भी मकान नही होना चाहिए, जहाँ शुद्ध हवा और धूप का अभाव हो, अशुद्ध हवा से प्राणो मे स्फूर्ति का

---

१ उत्तराध्ययन १ चूर्णि

२ योगशास्त्र १/४८।

३ प्रसिद्ध च देशाचार समाचरन्। —योगशास्त्र १/४८

४ पिट्ठिमस न खाइज्जा। —दशवैकालिक सूत्र ८/४७

५ विचिनाति मुखेन सो कलि कलिना तेन सुख न विन्दति। —सुत्तनिपात ३/३६/२

६ इस्लाम धर्म क्या कहता है? पृष्ठ ५६

७ अनतिव्यक्तगुप्ते च स्थाने सुप्रातिवेश्मिके। —योगशास्त्र १/४९

सचार नही होता, एतदर्थ ही कहा जाता है—सौ दवा एक हवा। गृहस्थ को अपना घर स्वच्छ रखने का ध्यान भी रखना चाहिए। मल-मूत्र, खखार आदि से सम्मूर्च्छिन जीवो की उत्पत्ति तो होती ही है, साथ ही भयकर रोगो के कीटाणु भी फैलते हैं। इसीलिए एक प्राचीन आचार्य ने कहा—जिस घर मे स्वच्छता और सफाई रहती है, वहाँ देवता भी रमण करते हैं।

जैसे श्रमणो के लिए भण्डोपकरण इधर-उधर बिखरे हुए रखना अनुचित माना गया है, वैसे ही गृहस्थ को भी इधर-उधर बिखरी हुई वस्तुएँ रखना अनुचित है। एतदर्थ ही प्रस्तुत विधान किया गया है।

(८) घर के अनेक द्वार न हो

प्रस्तुत गुण भी गृह मे ही सम्बन्धित है। इस गुण मे इस बात पर बल दिया गया है कि मकान के अनेक द्वार न हो। मकान चाहे कितना ही विशाल क्यो न हो पर बाहर आने-जाने के रास्ते अधिक न हो। अधिक रास्ते होने से गृह की सुरक्षा नही रह पाती। तस्करो का भय सदा बना रहता है। गृहस्थ सोने के पूर्व सभी द्वार सभालता है, कही कोई द्वार खुला रह जाये तो तस्कर से हानि होने की सभावना है।

(९) सतपुरुषो की सगति

सद्गृहस्थ को उत्तम आचारनिष्ठ एव सद्विचारवान् व्यक्तियो की सगति करनी चाहिए। क्योकि जैसे व्यक्तियो के साथ वह रहता है, वैसा उसका जीवन बनता है। सदा-सर्वदा ऐसे व्यक्तियो की ही सगति करनी चाहिए, जो हमारे से ज्ञान मे, विनय मे, साधना मे और अनुभव मे विशिष्ट हो। भगवान महावीर ने स्पष्ट शब्दो मे कहा[1]—**अल बालस्स सगेण, वैर वड्ढइ अप्पणो**—अज्ञानी व्यक्ति की कभी भी सगति नही करनी चाहिए, क्योकि उससे वैर बढता है। तथागत बुद्ध ने भी कहा[2]—अपने से जो शील और प्रज्ञा मे हीन है उस व्यक्ति के सग से मानव हीन बन जाता है। अपने से श्रेष्ठ व्यक्तियो के सग से मानव का विकास होता है।

बहुमूल्य वस्त्र पर जरा सा गन्दगी का दाग लग जाये तो उस वस्त्र की शोभा न्यून हो जाती है वैसे ही कुसगति के दाग से जीवन मलिन बन जाता है। जल की एक बूँद साँप के मुँह मे जाने से विष बन जाती है, वही बूँद सीप के मुँह मे जाने से मोती बन जाती है। वैसे ही कुसगति के कारण जीवन दूषित बन जाता है। एतदर्थ ही भारत के ऋषियो ने कहा—**ससर्गजा दोष गुणा भवन्ति।** शेखसादी ने कहा—तुख्मे तासीरे, सोहबते असर। आधुनिक मनोविज्ञान का भी मन्तव्य है कि वातावरण (**environment**) का गहरा असर होता है। घर के पश्चात् सत्सगति का जो गुण बताया है, उसका अर्थ यह भी हो सकता है कि घर के आस-पास का वातावरण ऐसा उत्तम हो जिसस कि जीवन मे शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सके।

(१०) माता-पिता की सेवा

मार्गानुसारी के गुणो मे दसवाँ गुण माता-पिता की सेवा का है। अन्य सम्बन्धो की अपेक्षा माता-पिता का सम्बन्ध जीवन मे निकटतम है। सन्तान पर उनका उपकार अपरिमेय और असीम होता है। जैसे माली पौधो की देखभाल करता है उससे भी अधिक देखभाल माता-पिता अपनी सतान की करते है। उसके विकास का हर तरह से प्रयास करते है।

एक कवि ने तो कहा—पृथ्वी के समस्त रजकण एव समुद्र के समस्त जलकणो से भी अनन्त गुणा उपकार माता-पिता का होता है। आचार्य मनु[3] का मतव्य है—दश उपाध्यायो मे एक आचार्य श्रेष्ठ है, सौ आचार्यों मे भी एक पिता अधिक योग्य शिक्षक है और हजार पिताओ मे भी माता की शिक्षा बढकर है।

माता सतान मे सस्कारो के बीज वपन करती है तो पिता उन सस्कारो का सरक्षण और सवर्धन करता है। एतदर्थ ही ऋषियो ने माता को पृथ्वीरूप और पिता को परमेश्वररूप कहा है। नीतिशास्त्र का कथन है कि पुत्र का कर्तव्य है कि बिना माता-पिता की सलाह के कोई भी कार्य न करे। जो कुछ भी पुत्र अर्जित करे वह माता-पिता को समर्पित कर और उनके आशीर्वाद को प्राप्त करे।

---

१ आचाराग सूत्र।

२ (क) अगुत्तरनिकाय, ३/३/६ (ख) जातक २२/५४१/४३९

३ उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणा शत पिता।
सहस्र तु पितृन्माता, गौरवेणातिरिच्यते।। —मनुस्मृति २/१४५

जैन आगम साहित्य मे भी माता का स्थान देव-गुरु के समान बताया है। माता पर देव के समान श्रद्धा करनी चाहिए और गुरु के समान उसका आदर करना चाहिए—**देवगुरुसमा माया।** भारतीय साहित्य मे माता और पिता के प्रति सेवानिष्ठ रहने वाली सन्तानो के अनेक उदाहरण हैं। प्रस्तुत गुण के द्वारा आचार्य ने सद्‌गृहस्थ को प्रेरणा दी है कि वह माता-पिता की सेवा करने वाला बने।

(११) कलह से दूर रहे

गृहस्थ ऐसे स्थान पर रहे, जो उपद्रव मे ग्रसित न हो। जहाँ पर उपद्रव हो रहे हो, वहा सास्कृतिक और धार्मिक जीवन के अनुकूल वातावरण नही रहता। प्राचीन युग मे मुख्य रूप से दो प्रकार के उपद्रव थे—एक युद्ध और दूसरा सक्रामक रोग। युद्ध की ज्वालाओ से हजारो निरपराध प्राणियो के जीवन सकटमय हो जाते थे और प्लेग आदि महामारियोके कारण कुछ ही क्षणो मे लाखो प्राणी मृत्यु को वरण कर लेते थे। अत निरुपद्रव स्थान आवश्यक है।

(१२) निन्दनीय आचरण न करे [1]

गृहस्थ ऐसी कोई प्रवृत्ति और आचरण नही करता है, जिसमे समाज मे निन्दा और घृणा हो। प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि उसकी सभी प्रशसा करे। पर वह प्रशसा मिलती है, व्यक्ति को अपने सुन्दर आचरण से और भद्र व्यवहार से। कस्तूरी की गन्ध बताने के लिए सौगन्ध खाने की आवश्यकता नही है, वह तो अपने आप प्रकट होती है। यदि छिपकर के भी निन्दनीय आचरण किया जाय, तो वह अपने आप प्रकट हो जायेगा। कौन सा कार्य निन्दनीय है, और कौन सा कार्य निन्दनीय नही है? इसका निर्णय व्यक्ति अपने ज्ञानचक्षु से कर सकता है। अत आचार्य ने निन्दनीय आचरण करने का निषेध किया है।

(१३) आय के अनुसार व्यय करे

गृहस्थ को अपने आय और व्यय का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। यदि आय कम है और व्यय अधिक है तो जीवन अस्त-व्यस्त बन जाता है और केवल आय ही आय है, व्यय का पूर्ण अभाव है तो भी जीवन मे सन्तुलन नही रहता। एतदर्थ ही इस मार्गानुसारी गुण मे बताया गया है कि आय के अनुसार ही व्यय किया जाए। क्योकि गृहस्थ की जीवन धुरी अर्थ पर अवस्थित है। बिना अर्थ के उसका जीवन चल नही सकता। पर यह स्मरण रखना चाहिए कि चार पुरुषार्थों मे धर्म के पश्चात् अर्थ को रखा गया है। धर्मरहित अर्थ अनर्थ है।

अतीतकाल मे अर्थ की व्यवस्था गृहस्थ चार प्रकार [2] से करता था—(१)अर्थ का एक विभाग व्यापार मे लगा रहता था। (२) एक विभाग से घर की सम्पूर्ण व्यवस्था—अतिथिसेवा, दान आदि के कार्य किए जाते थे। (३) एक विभाग अपने आश्रित व्यक्तियो के भरण-पोषण मे लगाया जाता था। (४)एकविभाग भविष्य के लिए निधि के रूप मे भूमि मे सुरक्षित रखा जाता था।

दीघनिकाय [3] मे कहा है—गृहस्थ धन का एक विभाग स्वय के खर्च के लिए उपयोग करे, दो विभाग व्यापार आदि कार्य क्षेत्र मे लगाए और चतुर्थ विभाग भविष्य मे यदि विपत्ति आदि आ जाये तो उसका उपयोग किया जाये, अत उसे सुरक्षित रखा जाता था। "**आपदर्थ धन रक्षेत्**" नीति का यह वचन भी गृहस्थ के लिए प्रेरणादायी रहा है।

यदि खर्च कम है और आमदनी अधिक है तो किसी भी प्रकार की चिन्ता की बात नही है। किन्तु खर्च अधिक हो और आमदनी के स्रोत बन्द हो तो एक दिन कुबेर भी दरिद्रनारायण की तरह भीख माँगने लगेगा, कुबेर का खजाना भी रिक्त हो जाएगा तो सामान्य मानव की तो बात ही क्या? लोकोक्ति भी है—

> **आय कम और खर्चा ज्यादा, ये हैं लक्षण मिटने के।**
> **ताकत कम और गुस्सा ज्यादा, ये हैं लक्षण पिटने के।**

आय से अधिक व्यय होने पर प्राय तस्कर वृत्ति पनपती है और अन्यान्य अन्याय के मार्ग अपनाए जाते हैं। इसीलिए गृहस्थ को प्रस्तुत गुण को अपनाने की प्रेरणा दी है।

---

१ योगशास्त्र, १/५०।

२ (क) उपासकदशाग—आनद अधिकार

(ख) राजप्रश्नीयसूत्र—प्रदेशी अधिकार

३ दीघनिकाय ३/८/४

(१४) आर्थिक स्थिति के अनुसार वस्त्र पहने[1]

आधुनिक अर्थशास्त्रियो का अभिमत है कि अन्यान्य देशो की अपेक्षा भारत की आर्थिक स्थिति कमजोर है। साथ ही भारतीयो का जीवनस्तर और रहन-सहन की पद्धति मे व्यय भी कम है जिससे यहाँ उतनी विषमता नही हैं। अन्य देशो (अमेरिका आदि) की अपेक्षा व्यर्थ अपव्यय भी कम है। किंतु भारत मे भी शनै-शनै फैशन आदि के कारण व्यय की मात्रा बढ रही है जिससे जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा है।

यह स्मरण रखना होगा कि कजूसी और किफायतशारी मे बहुत अन्तर है। कजूसी एक दुर्गुण है तो किफायतशारी एक सद्गुण है। आज प्रदर्शन का रूप बढ रहा है। आमदनी न होने पर भी बहुमूल्य तथा चटकीले-भडकीले वस्त्रो को पहनने मे मानव गौरव का अनुभव करता है। खाने को अन्न भी नही है, किन्तु घर फूँककर झूठी शान दिखाना आवश्यक समझा जा रहा है, यह सर्वथा अनुचित है। इसलिए मार्गानुसारी के इस गुण मे यह सकेत किया गया है कि आर्थिक स्थिति के अनुसार ही वस्त्र आदि धारण किए जाये। वस्त्रो के साथ ही अन्य व्यर्थ के खर्चों से बचने की प्रेरणा भी इस सूत्र द्वारा दी गई है।

(१५) धर्मश्रवण[2]

ससार मे बुद्धि-बल, शरीर-बल और धन-बल ये तीन प्रकार के बल है। इनमे बुद्धि-बल सबसे बढकर है। बुद्धिमान व्यक्ति अपने बुद्धिकौशल से असभव कार्य को भी सभव कर देता है। व्यास ने कहा है—बुद्धिमान की भुजाएँ अत्यधिक लम्बी होती है—"**दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू**" शरीर बल-पशुता का प्रतीक है, तो बुद्धिबल मानव की विशेषता है। बुद्धि के कारण ही मानव मस्तिष्क को हिरण्यकोष कहा है। जिसके पास बुद्धि है, वही ससार का सर्वश्रेष्ठ बलवान है। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है कि सद्गृहस्थ को आठ प्रकार की बुद्धियो से युक्त होना चाहिए। उनके नाम इस प्रकार है—

(१) सुश्रूषा (जिज्ञासा)	(४) धारणा	(७) अपोहा
(२) श्रवण	(५) विज्ञान	(८) तत्त्वाभिनिवेश
(३) ग्रहण	(६) ऊहा	

गृहस्थ इन बुद्धियो से युक्त होकर धर्म को श्रवण करता है। वह बुद्धि से निर्णय लेता है कि किन शब्दो को श्रवण करने से आत्मा मे निर्मलता आती है, मन शान्त और प्रशान्त होता है। जैसे पौष्टिक भोजन से शरीर मे बल का सचार होता है वैसे ही धर्म-श्रवण से सद्-विचार पुष्ट होते है। इसलिए प्रस्तुत गुण मे बुद्धि के आठ गुणो से युक्त होकर धर्मश्रवण की प्रेरणा दी गई है।

(१६) अजीर्ण होने पर भोजन न करे[3]

भारतीय चिन्तको ने शरीर को धर्म का मुख्य साधन माना है—**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**। इसलिए प्रत्येक गृहस्थ का कर्त्तव्य है—शरीर को स्वस्थ रखे। अजीर्ण हो जाने पर भोजन का त्याग कर दे और भूख लगने पर भोजन करे।

कितने ही व्यक्ति स्वाद के लिए भोजन करते है, कितने ही स्वास्थ्य के लिए तो कितने ही साधना के लिए। स्वाद के लिए भोजन करना भोजन का निकृष्टतम उद्देश्य है। वह स्वाद को ही प्रमुखता देता है। स्वाद के लिए स्वास्थ्य को भी दाव पर लगा देता है। ऐसे लोग विविध रोगो से सत्रस्त होते है भयकर पीडाएँ सहते हुए तडप-तडप कर प्राण गँवाते है।

भोजन का दूसरा उद्देश्य स्वास्थ्य है। कब खाना और कैसे खाना? वह इन बातो पर चिंतन करके ही भोजन करता है। अत्रि नामक ऋषि ने आयुर्वेद का एक महत्वपूर्ण ग्रथ लिखा, जिसमे एक लाख श्लोक थे। राजा की जिज्ञासा पर सक्षेप मे उसने कहा—"**जीर्णे भोजनमात्रेय**" भोजन हजम हो जाने के पश्चात ही दूसरा भोजन करना बस यही सपूर्ण आयुर्वेद का मूल सूत्र है। पहले किया गया भोजन हजम नही हुआ है और नया भोजन किया जा रहा है, तो वह भोजन रोगो को निमत्रण देगा। जितने भी रोग है उन सब की जड "अजीर्ण" है—**अजीर्ण प्रभवा रोग**"। सद्गृहस्थ भोजन हजम होने पर ही भोजन करता है।

स्वास्थ्य विशेषज्ञो का कथन है कि अजीर्ण होने पर पानी पीना अमृत के समान है और भोजन करना विष के सदृश है। अब प्रश्न है कि पचन हो जाने पर कैसा भोजन करना चाहिए। इसके लिए आचार्य ने कहा- जिस आहार से स्वास्थ्य पर बुरा असर न हो, बुद्धि निर्मल और स्वस्थ बनी रहे, वही भोजन उपयुक्त है। कितने ही व्यक्ति स्वास्थ्य के नाम पर अडे माँस मछली तथा कदमूल

---

१ योगशास्त्र १/५१

२ योगशास्त्र १/५१

३ योगशास्त्र १/५२

आदि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन पर बल देते हैं, किंतु उन्हे तामसिक और अभक्ष्य आहार से बचना चाहिए। यह भी इस गुण मे बताया गया है।

वस्तुत भोजन के सबध मे विवेकी पुरुष को इस सूत्र को सदैव स्मृति मे रखना चाहिए—**हितभुक् ऋतुभुक्, मितभुक्।** उसे सदा ऐसा भोजन करना चाहिए जो स्वास्थ्य के अनुकूल हो, मन और बुद्धि मे सात्विकता लाए, ऋतु के अनुकूल हो और परिमित मात्रा मे खाया जाए अर्थात भूख से अधिक भोजन कभी न करना चाहिए।

(१७) नियत समय पर संतोष के साथ भोजन करे[1]

पूर्व गुण मे भोजन के सबध मे चिंतन किया गया है और इस गुण मे भी नियत समय पर भोजन करने के लिए कहा गया है। यह स्मरणीय है कि भोजन करते समय मन प्रसन्न रहना चाहिए, स्वास्थ्य के साथ ही उस साधना का भी लक्ष्य रखना चाहिए। पशु भी स्वास्थ्य का ध्यान रखता है, वह भी सूँघ-सूँघकर खाता है। यदि उसका पेट भर जाए तो चाहे जितना भी अनुकूल भोजन क्यो न हो, वह नही खाता। तामसिक भोजन से बुद्धि सात्विक नही रह सकती। कहावत भी है- जैसा खाये अन्न, वैसे होवे मन। जैसा पीवे पानी, वैसी बोले वाणी। वैज्ञानिक भी इस सत्य को स्वीकार करते हैं।

भोजन के सबध मे चिंतन करते हुए जैनाचार्यों के **"अप्पपिण्डासि अप्पाहारस्स मिय मुंजे"** आदि वाक्य अल्पहार का सूचन करते है। जो अल्पहारी होता है, वह दीर्घजीवी होता है। जो हिताहारी मिताहारी, अल्पाहारी होता है, उसे कभी भी चिकित्सा की आवश्यकता नही होती है, वह स्वय ही चिकित्सक है।[2] सद्गृहस्थ को अपने जीवन मे धर्म, अर्थ और काम की साधना करनी है इसलिए स्वस्थ रहना आवश्यक है। स्थानाङ्ग मे दस प्रकार के सुखो मे आरोग्य को पहला स्थान दिया गया है।[3] 'चरक' सहिता मे भी धर्म, अर्थ काम और मोक्ष मूल का आरोग्य ही माना है।[4] बुद्ध ने[5] भी कहा- आरोग्य ही सबसे बडी सम्पत्ति है। इसलिए समय पर सतुलित और सात्विक भोजन करना, यह मार्गानुसारी का गुण माना गया है।

(१८) अवरोधी भाव से त्रिवर्ग की साधना करे

भारतीय मनीषियो ने गृहस्थ जीवन को सुदर और सुव्यवस्थित बनाने के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थ चतुष्टय पर बल दिया। धर्म, अर्थ और काम का त्रिवर्ग माना है। त्रिवर्ग मे मोक्ष को धर्म के साथ मिला दिया गया है। गृहस्थ को घर, परिवार और समाज का भी उत्तरदायित्व सभालना पडता है। अर्थ के बिना उनका जीवन नही चल सकता। वश और परिवार की वृद्धि के लिए काम को भी पुरुषार्थ मे गिना है। अर्थ और काम यदि धर्म के साथ हैं तो उन्हे पुरुषार्थ गिना गया है। जब तक न्याय-नीतिपूर्वक अर्थ का उपार्जन नही होता, वहाँ तक वह अर्थ परोपकार आदि के कार्यों मे व्यय नही होता।

फ्रायड ने काम को जीवन का आवश्यक अग माना है। जैन दर्शन की दृष्टि मे भी मैथुन सज्ञा सभी प्राणियो मे होती है? जिस तरह से आहार भय और परिग्रह सज्ञा सभी मे है, वैसे ही मैथुन सज्ञा भी है। काम वासना का सबध मोहनीय कर्म से है जिसका सबध आत्मा के साथ अनादि काल से है। किंतु अनादि काल मे सम्बध होने के कारण यह वृत्ति अच्छी हो, यह बात नही है। अनादि वृत्ति को खुली छोडने मे समझदारी नही है। जैसे भूख लग गई तो इसका यह अर्थ नही कि जो भी मन मे आए वही उदरस्थ कर लिया जाए। भूख की तरह काम भी सहज है किन्तु वह काम्य नही, दम्य है। यदि उसके ऊपर नियत्रण नही होगा तो पशु और मानव मे कोई अतर नही रह जाएगा। काम पर धर्म का नियत्रण होना अतीव आवश्यक है।

जैसे ट्रेन के आगे इजिन होता है और उसके बाद डिब्बे होते है, और अत मे गार्ड। पुरुषार्थ चतुष्टय का इजिन धर्म है और मोक्ष उसका गार्ड है। बीच मे अर्थ और काम के डिब्बे है। जो काम और अर्थ के डिब्बो पर नियत्रण करते है। यही चार पुरुषार्थों का अवरोधी रूप है। जिसे आचार्य हेमचन्द्र ने मार्गानुसारी गुणो म अवरोधी रूप के द्वारा प्रगट किया है।[6]

---

१ योगशास्त्र १/५२
२ ओघनिर्युक्ति ५७८
३ स्थानाग सूत्र १०
४ धर्मार्थकाममोक्षणामारोग्य मूलमुत्तमम्।—चरकसंहिता १५
५ आरोग्या परमा लाभा।—धम्मपद
६ योगशास्त्र १/५२

(१९) अतिथि सेवा

गृहस्थ व्यर्थ अपव्यय नही करता किंतु अपने अर्थ का उपयोग अतिथि, साधु एव दीन व्यक्तियो की सेवा मे करता है। उनका योग्य स्वागत व सत्कार करता है। अतीत-काल मे आचार्य शिष्य को अपने दीक्षान्त भाषण मे यह शिक्षा प्रदान करते हुए कहता था-वत्स! तू गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करने जा रहा है, वहाँ पर अतिथि भी आएंगे, उनकी देवता की तरह अर्चना करना।[१] अतिथि का अर्थ है—जो आया और चला गया और पूरी तिथि अर्थात् रात्रि भर घर मे नही रुकता। आचार्य मनु ने भी अतिथि की परिभाषा करते हुए लिखा है[२]—जिसका रुकना अनिश्चित है, वह अतिथि है। सद्‌गृहस्थ का कर्तव्य है कि उसके घर पर चाहे परिचित आए, चाहे अपरिचित आए वह उसका यथायोग्य स्वागत करे। व्यास ने कहा है[३]-जैसे वृक्ष जल सींचने वाले को भी छाया प्रदान करता है और काटने वाले को भी, वैसे ही सद्‌गृहस्थ घर पर आए हुए अतिथि का स्वागत करता है, भले ही उसका कोई शत्रु ही क्यो न हो। ब्रह्मपुराण मे लिखा है[४] कि यदि किसी के घर मे अतिथि निराश होकर लौटता है तो वह अपने सभी पाप गृहस्थ के सिर पर डालकर और उसके पुण्य लेकर चला जाता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र[५] मे लिखा है कि अतिथि की पूजा करने मे मन को शांति प्राप्त होतीहै और परलोक मे स्वर्ग मिलता है।

अतिथि-सत्कार मे गृहस्थ की उदात्त भावना परिलक्षित होती है। जो भी द्वार पर आया है, उसकी वह समानरूप मे सेवा करता है। वायु पुराण मे कहा गया है[६] कि मानवो के कल्याण के लिए योगी और सिद्ध पुरुष विभिन्न रूप धारण कर विचरण करते है। अतिथि-सत्कार करने वाला यह नही देखता कि मैं जिसका सत्कार कर रहा हूँ, वह कैसा है? उसकी तो यही भावना रहती है कि घर पर जो भी आ जाए, उसका यथोचित सत्कार किया जाए। बृहत् पाराशर स्मृति[७] मे और महाकवि तुलसीदास जी ने[८] इस बात का समर्थन किया है।

आगम साहित्य[९] के अध्ययन से स्पष्ट है कि जब गृहस्थ के घर कोई अतिथि पहुँचता तो गृहस्थ हर्ष से फूल उठता। वह आसन से उठकर सात-आठ कदम सामने जाता, उसका मधुर शब्दो से स्वागत करता और कहता कि मुझे अनुगृहीत कीजिये। जब अतिथि कुछ ग्रहण कर लेता तब वह अपनी भव्य भावना इस रूप मे व्यक्त करता कि मै आज धन्य हूँ कृतपुण्य हूँ और अतिथि के लौटने पर वह उसे पहुँचाने के लिये जाता। यह थी अतिथि सत्कार की पावन परम्परा। इसीलिये मार्गानुसारी के गुणो मे अतिथि-सत्कार को एक गुण माना है।

(२०) दुराग्रह के वशीभूत न हो[१०]

नशे मे चूर व्यक्ति को भान नही रहता कौन-सा कार्य कृत्य है और कौन-सा अकृत्य है। इसी प्रकार दुराग्रही व्यक्ति मे भी *एक प्रकार का उन्माद होता है जिससे विवेक पर पर्दा गिर जाता है। दुराग्रह कई प्रकार का होता है। सम्प्रदायगत कदाग्रह मे* व्यक्ति यह मानता है कि मेरी ही सम्प्रदाय सर्वश्रेष्ठ है। इस कदाग्रह के वशीभूत होकर कुछ कट्टर मुस्लिम धर्मान्धो ने हजारो लोगो को कत्ल करा दिया था। उनका यह अभिमत था कि ससार मे केवल कुरान की ही आवश्यकता है, अन्य किसी भी धर्म ग्रथ की नही। जो कुछ भी सत्य है वह इसी मे ही है। जो इसमे नही है, उसकी हमे आवश्यकता नही। कुछ कट्टर मुसलमान एक हाथ मे कुरान और दूसरे हाथ मे तलवार लेकर आक्रमण करते थे। अपने धर्म और धर्म-ग्रथो के प्रति यह स्पष्ट दुराग्रह था।

धर्म और सम्प्रदाय की तरह जाति का भी दुराग्रह होता है। मेरी जाति महान है और दूसरो की जाति हीन है। काले-गोरे के सघर्ष मे भी यही भावना काम कर रही है। सभी भी प्रकार के दुराग्रह से गृहस्थ को मुक्त होना चाहिए।

---

१ अतिथि देवो भव—तैत्तरीय उपनिषद १।११।२

२ अनित्यास्यस्थितिर्यस्मात् तस्मादतिथिरुच्यते।

३ महाभारत—शान्तिपर्व १४६।५

४ ब्रह्मपुराण ११४।३६

५ आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।३।६।६

६ वायुपुराण ७१।१।६४

७ बृहत पाराशरस्मृति पृष्ठ ००

८ ना जाने किस वेश मे नारायण मिल जाए।

९ विपाक सूत्र, सुबाहुकुमार।

१० योगशास्त्र १।५८

(२१) गुणानुरागी बने[1]

यदि हम किसी फूलो के बगीचे मे पहुँचे तो वहाँ मन को मुग्ध करने वाली सौरभ मिलेगी। किन्तु रग-बिरगे फूल जहाँ दृष्टिगोचर होते हैं, वहाँ काँटे भी टहनी पर लगे हुए दिखाई देंगे। वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे सद्गुणो के फूल भी होते हैं और दुर्गुणों के काँटे भी। मक्खी गन्दगी पर बैठती है, वह मिठाई को छोडकर भी गन्दगी पर बैठना पसन्द करती है। वैसे ही कितने ही व्यक्ति मक्खी के साथी होते है। वे सद्गुणो को छोडकर दुर्गुणो को ग्रहण करते है। इसीलिये आचार्यश्री ने कहा है-गुणग्राही बनो। जहाँ भी गुण दिखाई दे, उसे ग्रहण करो।"**शत्रोरपि गुणा वाच्या**" यदि किसी शत्रु मे सद्गुण हो, तो उसकी भी प्रशसा करनी चाहिये। उसके गुणो को देखकर मन मे प्रफुल्लित और आनन्दित होना चाहिये। यदि परमाणु जितना भी दूसरे मे गुण हो तो पर्वताकार के रूप मे उसकी प्रशसा करनी चाहिये। ऐसे व्यक्ति का हृदय सद्गुणो को ग्रहण करने मे समर्थ होता है।

(२२) देश-कालोचित आचरण[2]

सद्गृहस्थ की जीवन-चर्या देश और काल के अनुसार होती है। वह भावावेश मे आकर अन्धानुकरण नही करता। वह ऐसा कोई कार्य नही करता जिससे सामाजिक नियम भग होते हो, व्यावहारिक जीवन विकृत होता हो और गलत परम्पराएँ पनपती हो तथा गलत उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हो। जो इस प्रकार परम्पराओ को तोडता है,वह अविवेकी और स्वच्छन्द आचारी कहलाता है।

आचार्यों ने स्वच्छन्दता का निषेध किया है। जो परम्पराएँ शुद्ध है, उनको अपनाना और जो परम्पराएं शास्त्र विरुद्ध है, उन्हे ग्रहण न करना सद्गृहस्थ का कर्तव्य है। देश और काल के योग्य उचित कार्य करता हुआ सद्गृहस्थ कभी दु खी नही होता।

(२३) शक्ति के अनुसार कार्य करे

देश और काल के परिज्ञान के साथ ही सद्गृहस्थ को अपने सामर्थ्य के अनुसार कार्य करना चाहिए। यदि स्वय मे उस कार्य को करने के सामर्थ्य का अभाव है तो कोई चाहे कितनी ही प्रेरणा क्यो न दे, उस कार्य में हाथ नही डालना चाहिए। कार्य प्रारम्भ करने के पश्चात बीच मे ही छोड देना सर्वथा अनुचित और अपयश का कारण है। नीतिकारो ने भी कहा है- "**ते ते पाँव पसारिए, जेती लांबी सोड**" जितनी अपनी शक्ति है, उतना ही कार्य करना चाहिए। घर फूँककर तमाशा दिखाना अनुचित है। सदगृहस्थ अपना सामर्थ्य देखकर ही प्रत्येक कार्य करता है।

(२४) व्रती और ज्ञानी जनो की सेवा करे

सद्गृहस्थ व्रतधारियो का आदर करता है। प्राचीन युग मे ऋषियो की भारत मे प्रधानता थी। चक्रवर्ती सम्राटो के सिर भी उनके चरणो मे नत होते थे। आज ऋषियो के स्थान पर ऋद्धि और सिद्धि की प्रतिष्ठा बढ रही है। पर व्रतो को ग्रहण करना अत्यधिक कठिन है, जो महान् आत्मबली साधक होते है, वे ही इस अग्निपथ पर कदम बढा सकते है। व्रतियो की सेवा करना त्याग की भावना को बढावा देना है। दूसरा कारण यह भी है कि व्रतियो की सेवा करने से सातावेदनीयकर्म का अनुबन्ध होता है जिससे इस जन्म मे भी और अगले जन्म मे भी साता होती है। पर उस सेवा मे भावना की प्रमुखता होनी चाहिए। जितनी भावो की प्रमुखता होगी उतना ही पुण्य का बध और निर्जरा होगी।

प्रस्तुत गुण मे व्रतियो के साथ ज्ञानवृद्ध को भी लिया गया है। शारीरिक दृष्टि से बहुत से वृद्ध हो सकते है पर ज्ञानवृद्ध होना अधिक महत्वपूर्ण है। जैन परम्परा मे भी ज्ञानस्थविर कहा है। उसके लिये अवस्था का कोई नियम नही होता। एक दिन का दीक्षित भी अपने विशिष्ट ज्ञान से ज्ञानस्थविर हो सकता है। जिसमे ज्ञान की वृद्धि यथेष्ट हो चुकी हो, वह ज्ञानवृद्ध है। उन ज्ञानियो का सत्कार करना,उनके ज्ञान-ध्यान के प्रति मन मे आदर रखना, गृहस्थ का कर्तव्य है क्योकि ज्ञान प्राप्त करने के लिये उनका विनय अपेक्षित है। यही इस गुण का भाव है।

(२५) उत्तरदायित्व निभाना

गृहस्थ पर परिवार समाज और राष्ट्र की महान् जिम्मेदारी होती है। वह उन सभी जिम्मेदारियो को सम्यक् प्रकार से वहन करता है। उसका जीवन घटादार और छायादार वृक्ष की भाँति होता है, जिस पर शताधिक पक्षीगण विश्राम लेते है। उसी प्रकार गृहस्थ के आश्रित सभी आश्रम रहे हुए होते हैं। वह स्वय भी अपना विकास करता है और अपने आश्रित जो भी हैं,

---

१ योगशास्त्र १।५३

२ योगशास्त्र १।५४

उनका भी वह विकास करता है। जैसे विराट् सागर मे बहते हुए प्राणी को द्वीप सहारा देता है वैसे ही दु ख के सागर मे निमग्न व्यक्तियो को सदगृहस्थ सहारा देता है। वह अपने उत्तरदायित्व को टालने का प्रयास नही करता। इसीलिए मार्गानुसारी के गुणो मे इसे स्थान दिया गया है।

(२६) दीर्घदर्शी

सद्गृहस्थ तीक्ष्ण बुद्धि का धनी होता है। वह अपनी प्रतिभा द्वारा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म रहस्य को पकड लेता है। वह अपनी बुद्धि से शीघ्र निर्णय कर लेता है कि कौन-सा कार्य उसके लिए लाभप्रद है, किससे समाज और राष्ट्र का उत्थान होगा। उसी दीर्घदृष्टि से वह प्रत्येक पहलू पर चिन्तन करता है। समाज मे, परिवार मे पनपती हुई बुराइयो को वह नजर अन्दाज नही करता। वह जानता है कि ये छोटे-छोटे छिद्र भविष्य मे बडे होकर हानिप्रद होगे। अत प्रारम्भ मे ही उस पर अकुश लगा देता है। वह कोई भी कार्य हो गम्भीरतापूर्वक चिन्तन कर निर्णय लेता है, जिससे समाज और देश मे अशान्ति और क्षोभ पैदा नही होता।

यह स्मरण रखना होगा कि दीर्घदृष्टि अलग चीज है और दीर्घसूत्रता अलग चीज है। दीर्घसूत्री व्यक्ति आलसी और पुरुषार्थहीन होता है।

(२७) विशेषज्ञ

गृहस्थ अपने व्यवसाय मे विशेषज्ञ होता ही है। व्यावसायिक ज्ञान उसे पैतृक सम्पत्ति के रूप मे मिलता है। यहाँ जो विशेषज्ञ कहा गया है, उसका तात्पर्य इतना ही है कि वह धर्म और विधि मे विशेषज्ञ होता है। वह उन ग्रन्थो का अध्ययन करके जो सारतत्व है उसे लेता है।

(२८) कृतज्ञ

सद् गृहस्थ अपने ऊपर माता-पिता, गुरुजन, परिवार आदि का जो भी उपकार है उस उपकार को वह विस्मृत नही होता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हमारे ऊपर उपकार होते है और सद्गृहस्थ उन उपकारियो के उपकार को विस्मृत नही हो सकता। महाभारतकार ने भी कहा है—जो अपकार करने वालो के प्रति भी उपकार करे, वह महामानव है उपकारी के प्रति भावना रखे, वह सामान्य मानव है और जो उपकारी के उपकार को भुलाकर अपकार करता है, वह अधमाधम है।

(२९) लोकप्रिय

गृहस्थ जीवन की महत्ता प्रतिपादित करते हुए आचार्य ने एक गुण 'लोकप्रिय' बताया। प्रत्येक व्यक्ति लोकप्रिय बनना चाहता है और उसके लिये वह प्रयास भी करता है। अथर्ववेद[१] मे अनेक बार लोकप्रिय बनने के लिये प्रार्थनाएँ की गई है— "मुझे सज्जनो का प्रिय बनाओ। मुझे सभी का प्यारा बनाओ। मेरे मे कोई भी ईर्ष्या-द्वेष और डाह न करे। मैं ससार मे मधु से भी अधिक मीठा बनकर रहूँ। मेरा सर्वत्र सम्मान हो, आदर हो।"

लेकिन लोकप्रियता केवल स्तुति और प्रार्थना करने से प्राप्त नही होती। उसके लिए तो प्रयत्न करना पडता है। प्रयत्न से ही व्यक्ति लोकप्रिय बनता है। राम के लिए प्रियदर्शन और सम्राट अशोक के लिए प्रियदर्शी शब्द व्यवहृत हुआ है। जब व्यक्ति सद्गुणो से मण्डित होता है तभी उसे लोकप्रियता प्राप्त होती है।

लोकप्रिय बनने के लिए सेवा, सहयोग, मधुर, व्यवहार, नम्रता आदि अपेक्षित है। लोकप्रियता न पैसो से खरीदी जा सकती है और न सत्ता से ही प्राप्त होती है। किन्तु वह सद्गुणो से और समर्पण से प्राप्त होती है।

(३०) लज्जाशील

लज्जा एक प्रकार का मानसिक सकोच है। किसी व्यक्ति का जीवन, परम्परा, कुल आदि अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा हो, वह व्यक्ति कभी कोई अनुचित कार्य करने के लिए तत्पर होता है, उस समय उसके अन्तर्मानस मे ये विचार लहरियाँ उद्बुद्ध होती हैं कि यह कार्य मेरे गौरव के प्रतिकूल है। इस प्रकार दुष्कर्म अथवा पापकृत्य करते समय उसे लज्जा आती है।

---

१ (क) प्रिय मा कृणु देवेषु प्रिय सर्वस्य पश्यत —अथर्ववेद १९।६२।१

(ख) मा नो द्विक्षत कश्चन —अथर्ववेद १२।१।२४

(ग) मधोरस्मि मधुतरो —अथर्ववेद १।३४।४

भगवान् महावीर ने यह स्पष्ट कहा है—श्रमण वेश धारण कर धर्म के नाम पर हिंसा करते है, जीवो की विराधना करते हैं, उन्हे देखकर हमारे मन मे लज्जा आती है। देखो! यह धर्म के नाम पर किस प्रकार जीवो की विराधना कर रहा है।

लज्जा जिसे लाज भी कहा जाता है, वह बुरे कार्यों से होनी चाहिए। जिसकी आँख मे लाज है, वह कभी भी बुरे कार्य नही करता। बेशर्म, निर्लज्ज व्यक्ति घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। 'लाज सुधारे काज' जो कहावत है, वह बडी ही महत्वपूर्ण है।

(३१) दयावान

जो सद्गृहस्थ लज्जावान् होगा, उसके हृदय मे दया की भावना भी होगी। सन्त तुलसीदास जी ने दया को धर्म का मूल कहा है। दयारूपी नदी के किनारे ही धर्मरूपी वृक्ष लहलहाते हैं। दयालु व्यक्ति किसी दुखी पुरुष को देखकर सोचता है—जैसी पीडा इसे हो रही है, वैसी ही मुझे भी होती है। इसलिए मै दूसरो को क्यो कष्ट दूँ। सद्गृहस्थ दूसरे को दुखी देखकर काँप उठता है। यह स्वय आकुल-व्याकुल हो जाता है। उसका सम्पूर्ण सामर्थ्य उसी कार्य मे लग जाता है। वह उसकी रक्षा और सेवा के लिये तत्पर हो जाता है।

सम्यक्त्व के लक्षण मे अनुकम्पा एक मुख्य लक्षण है। जिसका हृदय दयालु है उसी मे सम्यक्त्वरूपी पुष्प खिल सकता है।

(३२) सौम्यता

सद्गृहस्थ के जीवन मे शान्ति, शीतलता और शालीनता होती है। जिस सरोवर मे जल भरा हुआ है उसके किनारे पर हमेशा शीतलता रहती है। जिसके हृदय मे दया है, उसके मन और वाणी मे सौम्यता होती है। वह महादेव की भाँति सकटो के गरल को भी पीकर मुस्कराता है। मन मे हजार गम हो, मगर शिकन न हो चेहरे पर। और वह तभी सभव है जब आपके मन मे धैर्य-समता और सौम्यता हो। चेहरा हृदय का दर्पण है। मुँह के आईने मे हृदय की तस्वीर झलकती है। जिसकी प्रकृति तमोगुण प्रधान है उसकी आकृति भी डरावनी होगी किन्तु जिसका हृदय सौम्य है, उसकी आकृति भी सौम्य होगी। इसीलिए आचार्य ने कहा कि सद्गृहस्थ के चहरे पर शान्ति और प्रसन्नता झलकनी चाहिए।

(३३) परोपकारी

गृहस्थ अपने सुख-दुख की चिन्ता न कर दूसरे के सुख-दुख की चिन्ता करता है। वह अपना बलिदान करके भी दूसरो की भलाई करना चाहता है। अपना पेट तो सभी भर लेते है पर दूसरो का जो पेट भरता है, वह इन्सान है। सद्गृहस्थ के मानस मे यह उमग होती है– कब मुझे ऐसा सुनहरा अवसर प्राप्त हो कि मै दूसरो के लिए कुछ कर सकूँ। वह दूसरो का उपकार करके भूल जाता है, किन्तु यदि उस पर कोई उपकार करता है तो वह उसे जीवन भर स्मरण रखता है। उसमे प्रतिफल की कामना नही होती और न अहकार ही होता है। केवल कर्तव्य भावना ही प्रमुख होती है।

(३४) षड् रिपुओ को जीतने वाला

शत्रु दो प्रकार के है—एक बाह्य और दूसरा अन्तरग। अन्तरग शत्रुओ से ही बाह्य शत्रु पैदा होते है। अन्तरग शत्रु छह है—काम, क्रोध, लोभ मोह, मद और मात्सर्य। ये ही मुख्य शत्रु है। जो विजय का इच्छुक है, जिसके अन्तर्मानस मे विजय की भावना लहरा रही है, उसे इन अन्तरग शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

काम यह दुर्जेय शत्रु है। यह शत्रु मन मे रहता है, जिससे व्यक्ति सत्कर्म की ओर अग्रसर नही हो पाता। काम शूल की तरह चुभने वाला तथा विष की तरह मारने वाला है और आशीविष की तरह क्षण मात्र मे भस्म करने वाला है।[1] थेरीगाथा ग्रन्थ मे[2] लिखा है कि विष-बुझे बाण के सदृश और तीखे भालो के सदृश कोई पीडादायक वस्तु है तो काम है। काम ऐसा भस्म रोग है, जिससे कभी भी तृप्ति नही होती। जिसने काम पर विजय की है, उसने अन्तरग शत्रु पर विजय की है।

काम से ही द्वितीय अन्तरग शत्रु क्रोध उत्पन्न होता है। काम अन्दर ही अन्दर जलाता है तो क्रोध अन्दर और बाहर दोनो को जलाता है। क्रोधी व्यक्ति स्वय की शान्ति को तो नष्ट करता ही है, किन्तु परिवार, समाज और राष्ट्र की शान्ति को भी नष्ट करता है। क्रोध मे विवेक नष्ट हो जाता है, जिससे वह निर्णय नही कर पाता। क्रोधी की शक्ति और प्रतिभा अग्नि पर पडे हुए

---

१ सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा —उत्तराध्ययन ९।५३

२ सत्तिसूलूपमा कामा। —थेरीगाथा

नमक की तरह चर-चर कर के जलती है।[1] क्रोध मन का धुँआ है। क्रोध से मोह की भी उत्पत्ति होती है। गीताकार ने भी कहा है— **क्रोधाद् भवति सम्मोह।** मोह बुद्धि पर आवरण डाल देता है। उससे स्मृति-विभ्रम हो जाता है। स्मृति-विभ्रम से बुद्धि का नाश होता है। मानव पतित हो जाता है। आचार्य अक्षपाद ने भी न्याय-दर्शन मे कहा है- राग द्वेष आदि विकारो मे मोह अधिक दुष्ट और हानिकारक है। मोह के पश्चात् लोभ है। लोभ को पाप का बाप बताया है। लोभ के कारण व्यक्ति बडे से बडे दुष्कृत्य करता है। कुछ पैसो के लोभ मे ही कसाई निरपराधी पशुओ को मार देता है। इसलिए लोभरूपी अन्तरग शत्रु पर विजय प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। लोभ की तरह मद याने अहकार भी पतन का कारण है। अहकार पुण्य के रस को सोख लेता है। अहकार के लिए जो साधना की जाती है वह साधना राख मे घी डालने के सदृश है।

छठा अतरग शत्रु मात्सर्य है। मात्सर्य का अर्थ ईर्ष्या है। दूसरे की अभिवृद्धि को निहार कर मन मे आनद होना चाहिए पर उसके स्थान पर होती है मन मे ईर्ष्या और डाह।

सद्गृहस्थ इन षड्रिपुओ पर विजय प्राप्त करता है।

अतरग शत्रुओ पर विजय वैजयन्ती फहराने के पश्चात आचार्य ने पैतीसवाँ गुण इद्रिय-विजय बताया है। इद्रियाँ अतरग शत्रुओ के द्वारा बहकाने पर ऐसा आचरण करती है जिस आचरण से आत्मा का पतन होता है। इद्रियो को नष्ट न कर उनके जो विकार है, उन विकारो के परिहार हेतु प्रयास करने की प्रेरणा दी गई है। इद्रियो पर नियत्रण रखने से वे आत्मा का अहित नही कर पाती। यदि उन पर नियत्रण न रखा जाय तो अत्यन्त अहित कर सकती है। महाभारतकार ने भी यह स्वीकार किया है कि इद्रियाँ अत्यन्त ही चचल है, पवन की तरह अस्थिर है, जरा सी भी ढील दे दी जाए तो वे विषयो की ओर लपकती है और आत्मा को पतन के महागर्त म गिरा देती है। इद्रियो का समूह अत्यत बलवान है। विद्वान और ज्ञानियो को भी वे चुम्बक की तरह खीचकर ले जाती है। इद्रियो के अधीन व दास बन जाता है, उसका शीघ्र ही पतन हो जाता है। जिसने इद्रियो पर विजय प्राप्त कर ली है वह सम्पूर्ण शत्रुओ पर सहज रूप मे विजय प्राप्त कर सकता है।

सद्गृहस्थ पूर्णरूप से इद्रिय-विजेता नहीं बन सकता। हाँ वह इद्रिय-विजेता बनने का अभ्यास कर सकता है और निरन्तर अभ्यास करने से एक दिन वह उस दिशा मे भी आगे बढ जाता है।

आचार्य हेमचद्र ने मार्गानुसारी के पैतीस गुणो पर चिन्तन करते हुए अत मे लिखा कि "**गृहीधर्माय कल्पते**" इन गुणो को जो धारण करता है वह सदगृहस्थ की भूमिका पर प्रतिष्ठित होता है। इन गुणो मे कितने ही गुण ऐसे है जिनका सबध केवल लोक जीवन से है। ये गुण श्रावक-धर्म की पृष्ठभूमि के लिए आवश्यक ही नही अनिवार्य है। इसका मुख्य कारण यह है कि जीवन एक अखड वस्तु है। वह धर्मस्थानको मे अलग रूप मे रहे घर और दुकान मे तथा सामाजिक जीवन मे अलग रूप मे रहे यह जीवन का दुहरा रूप एक आत्म-प्रवचना है। श्रावकधर्म और श्रमण-धर्म की भूमिका सदगृहस्थ के जीवन से बहुत ही ऊपर उठी हुई होती है। सदगृहस्थ का जीवन मानवता का पुनीत प्रतीक है। यह वह भूमिका है। जैसे सूर्योदय के पूर्व उषा सुदरी मुस्कराती है और उसका सुनहरा आलोक जगमगाने लगता है किन्तु सूर्य का अभी उदय नही हुआ है। वैसे ही सम्यक्त्वरूपी सूर्य के उदित होने के पूर्व जो उषा की स्थिति है, वही सद्गृहस्थ की स्थिति होती है। सामान्य गृहस्थ मे मिथ्यात्व का इतना गहन अधकार होता है कि उसमे मानवता की भूमिका भी नही होती है। सद्गृहस्थ म मानवता के गुण होते है और चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यक्दृष्टि मे सम्यक्त्व का दिव्य आलोक होता है। पचम गुणस्थानवर्ती श्रावक मे देशरूप से व्रतो का आचरण होता है और छठे गुणस्थान से लेकर अगले गुणस्थानो मे महाव्रतो का पूर्णरूप से पालन होता है।

श्राद्ध विधि आदि ग्रथो मे मार्गानुसारी के पैतीस गुणो के स्थान पर सक्षेप मे इक्कीस गुण भी बताए है। वे इस प्रकार है (१) उदार-हृदयी (२) यशवत (३) सौम्य प्रकृति वाला (४) लोकप्रिय (५) अक्रूर प्रकृति वाला, (६) पापभीरू, (७) धर्म के प्रति श्रद्धावान (८) चतुर (९) लज्जावान, (१०) दयाशील, (११) मध्यस्थ वृत्तिवान (१२) गम्भीर (१३) गुणानुरागी, (१४) धर्मोपदेशक, (१५) न्यायी, (१६) शुद्ध विचारक, (१७) मर्यादायुक्त व्यवहार करने वाला, (१८) विनयशील, (१९) कृतज्ञ (२०) परोपकारी, (२१) सत्कार्य मे दक्ष।

इन गुणो का धारक श्रावक निश्चित रूप से अपने जीवन-निर्माण के साथ समाज और राष्ट्र का भी उत्थान करता है।

---

१ नीतिवाक्यामृत—आचार्य सोमदेव सूरि

श्रावक : एक लक्ष्य, नाम अनेक

जैनधर्म मे श्रावक और श्रमण दोनो की साधना का विस्तार से निरूपण है। श्रावकधर्म का सयतासयत, देशविरति और देशचरित्र कहा है। वह गृहस्थाश्रम मे रहकर गृहस्थ के कर्तव्यो का पालन करता हुआ अणुव्रतरूप एकदेशीय व्रतो का पालन करता है।

श्रावक शब्द की परिभाषा

जैन साहित्य मे श्रावक शब्द के दो अर्थ प्राप्त होते है। प्रथम 'श्रु' धातु से बना है, जिसका अर्थ है–सुनना। जो श्रमणो से श्रद्धापूर्वक निर्ग्रन्थ प्रवचन को श्रवण करता है तदनुसार यथाशक्ति उस पर आचरण करने का प्रयास करता है, वह श्रावक है।[1] श्रावक शब्द से प्राय यही अर्थ ग्रहण किया जाता है।

श्रावक शब्द का दूसरा अर्थ "श्रा–पाके" धातु के आधार से किया जाता है। प्रस्तुत धातु से सस्कृत रूप श्रावक बनता है। पर श्रावक शब्द की अर्थसगति श्रावक शब्द के साथ नही बैठती है। सभव है, श्रावक से यह तात्पर्य रहा हो–जो भोजन पकाता है। श्रमण भिक्षा से अपना जीवन निर्वाह करते है, किन्तु श्रावक गृहस्थाश्रमी होने से भोजन पकाता है।

अक्षरो के आलोक मे

एक आचार्य ने श्रावक शब्द के तीनो अक्षरो पर गहराई से चिन्तन करते हुए लिखा है कि ये तीनो अक्षर श्रावक के पृथक्-पृथक कर्तव्य का बोध कराते है।[2]

प्रथम "श्रा" अक्षर से यह अर्थ द्योतित है–जो जिन-प्रवचन पर दृढ श्रद्धा रखता है और "श्रा" का दूसरा अर्थ यह भी है कि जो श्रद्धापूर्वक जिनवाणी का श्रवण करता है। श्रावक मनोरजन की दृष्टि से या दोषदृष्टि से उत्प्रेरित होकर शास्त्र श्रवण नही करता, अपितु श्रद्धा से करता है। विवेकपूर्वक जिज्ञासा बुद्धि से तर्क भी करता है। उन सभी के पीछे श्रद्धा प्रमुख रूप से रही हुई होती है।

श्रावक शब्द मे दूसरा अक्षर "व" है। "व" से यह अर्थ ध्वनित होता है कि श्रावक सुपात्र, अनुकम्पापात्र मध्यमपात्र सभी को बिना विलम्ब किये दान देता है। किसी भी पुण्यकार्य या धर्मकार्य का पावन-प्रसग उपस्थित होने पर वह इधर-उधर बगले नही झाकता। वह स्वय कष्ट सहन करके भी दूसरो को दान देने मे सकोच नही करता। इस तरह "व" अक्षर से सत्कार्य का वपन यह अर्थ प्रगट होता है। "व" अक्षर से दूसरा अर्थ वरण भी है। श्रावक हठाग्रही नही होता, जो बात धर्म, समाज व आत्मा के हित के लिए है उसे वह वरण करता है। 'व' का तीसरा अर्थ विवेक भी है। श्रावक की सभी क्रियाएँ चाहे वे लौकिक हो या धार्मिक, विवेकपूर्ण होती है। वह विवेक की तुला पर तौलकर ही कोई आचरण करता है उसका कोई भी कार्य अविवेकपूर्ण नही होता।

श्रावक शब्द मे तीसरा अक्षर 'क' है। उसके भी दो अर्थ होते है–प्रथम अर्थ है जो पाप को काटता है। श्रावक किसी भी पापकार्य मे प्रवृत्त नही होता। परिस्थिति-विशेष के कारण कदाचित् फँस जाता है तो अपनी विवेक-बुद्धि से अपने आप को पाप-कार्य से बचा लेता है। वह पूर्वकृत पाप कृत्यो को काटने के लिए दान, शील तप और भाव की आराधना करता है। 'क' का दूसरा अर्थ है–अपनी आवश्यकताओ को कम करना। उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति मे सयम और सवर रहा हुआ होता है।

व्रत ग्रहण करने से श्रावक (व्रती)

डाक्टर के घर मे जन्म लेने से कोई डाक्टर नही बनता। उसके लिए डाक्टरी की परीक्षा समुत्तीर्ण करनी होती है। वैसे ही श्रावक के घर मे जन्म लेने मात्र से ही श्रावक नही बनता, पर व्रत ग्रहण करने वाला ही श्रावक कहलाता है। यह एक ऐसा गुण है जो जन्मजात प्राप्त नही होता, अर्जित करना पडता है।

---

१ सम्मत्तदसणाइ पइदिअह जइजणा सुणेइ य।
सामायारी परम जो खलु त सावग बिति।। –समणसुत्त गाथा ३०१

२ श्रद्धालुता श्राति शृणोति शासनम्। दान वपदाशु वृणोति दर्शनम्।।
कृन्तत्यपुण्यानि करोति सयमम्। त श्रावक प्राहुरमी विचक्षणा।।

श्रमणोपासक

श्रावक के लिए दूसरा शब्द श्रमणोपासक है। श्रमणो की उपासना करने वाला व्यक्ति श्रमणोपासक कहलाता है। श्रमण सद्गुणो के आगार होते हैं। इसलिए श्रावक उनके सद्गुणो को ग्रहण कर अपने जीवन को भी सद्गुणपूर्ण बनाता है। श्रावक ससार मे रहता है, किन्तु उसका मन सासारिक भौतिक पदार्थों मे लुब्ध नही होता। उसकी आन्तरिक अभिलाषा यही होती है कि–

(१) वह दिन धन्य होगा, जब मैं गृहस्थाश्रम का परित्याग कर श्रमण धर्म धारण करूँगा।

(२) कब वह दिन सुदिन होगा जब मै बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त होऊँगा।

(३) कब वह दिन सुदिन होगा जिस दिन मैं आरम्भ से सर्वथा मुक्त होकर अन्त समय मे सलेखना स्वीकार कर, आहार आदि का त्याग कर, जीवन-मरण की इच्छा न करता हुआ सथारा ग्रहण करूँगा[1]।

सच्चे श्रमणोपासक की भावना धन, सन्तान और सासारिक सुख आदि की प्राप्ति की नही होती। वे वस्तुएँ पुण्य की प्रबलता से उसे सहज ही मिल जाती है। वह तो श्रमणत्व का उपासक होता है।

यह सहज जिज्ञासा हो सकती है कि श्रमणत्व की पहचान कैसे की जाये, क्योकि श्रमणत्व एक प्रकार का अन्तर्भाव है? समाधान है–श्रमणत्व के मनोभाव को हर व्यक्ति समझ नही सकता, किन्तु श्रमण पच महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि की जो वह आराधना करता है, उसके आदर्श व्यवहार को देखकर हर कोई व्यक्ति यह समझ जाता है कि यह श्रमण है।

अरिहन्तोपासक क्यो नहीं?–दूसरी जिज्ञासा यह हो सकती है श्रावक को श्रमणोपासक क्यो कहा? उसे अरिहन्तोपासक कहना चाहिए। श्रमण मे सम्भवतया कुछ दोष भी हो सकते है पर अरिहन्त सर्वथा निर्दोष होते है। उनकी सहज पहचान भी हो सकती है। समाधान है–उपासना तभी पूर्ण होती है जब उपास्य सामने हो। यदि उपास्य सामने विद्यमान नही है तो उपासक उपासना किस तरह कर सकेगा? अरिहन्त काल-चक्र मे स्वल्प होते है। वे किसी विशिष्ट काल मे ही विद्यमान होते हैं, पर श्रमण हर समय विद्यमान रहते है। जिस समय श्रमणोपासक होता है, उस समय श्रमण होता ही है। बिना श्रमणोपासक के श्रमण नही रह सकता। यो एक दृष्टि से देखा जाये तो अरिहन्त भी श्रमण ही है। हाँ यह सत्य है कि वे वीतराग श्रमण है तो सामान्य श्रमण छद्मस्थ है। किन्तु सामान्य छद्मस्थ श्रमण की साधना भी श्रमणोपासक की साधना से कई गुणी उच्चकोटि की है। श्रमण का साक्षात् उपासक होने से वह श्रमणोपासक कहलाता है। सम्यक्त्व स्वीकार करते समय व्यवहार की दृष्टि से श्रमण ही उसका गुरु है। अरिहन्त तो देव है।

आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यकनिर्युक्ति मे श्रमण के सम्बन्ध मे बहुत ही सुन्दर समाधान करते हुए कहा है–श्रमण के सम्बन्ध मे तुम क्या पूछ रहे हो? उसके तप को, नियम को और ब्रह्मचर्य को देखो। केवल वेश और क्रियाकाण्ड को मत देखो। राजस्थानी मे भी एक सन्त कवि ने कहा है–[2]

भेख देख भूलो मती, ओलखजो आचार।

अम्मापिउ समाणा–यह भी जिज्ञासा हो सकती है कि श्रमणोपासक श्रमण की किस प्रकार उपासना करे? समाधान है–श्रावक मन-वचन-तन आदि अनेक साधनो से साधु-मर्यादा के अनुसार श्रमण की सेवा कर सकता है।

उदाहरण के रूप मे, श्रावक श्रमण-श्रमणियो को निर्दोष आहार-पानी प्रदान करता है। वह इस प्रकार का विवेक रखता है, जिससे स्वय भी अचित्त आदि पदार्थों का उपयोग करता है। यो तो उसके लिए गुठली सहित आम आदि का उपयोग करने का निषेध नही है, पर बीज आदि से रहित उपयोग करने पर अचित्त फल आदि को बहराने का लाभ भी प्राप्त हो सकता है। सहज रूप से अतिथि-सविभागव्रत की आराधना भी हो सकती है।

जहाँ पर जैन समाज के घर न हो और वहाँ पर यदि श्रमण-श्रमणियाँ विचरण कर रहे हो, तो वह श्रावक इनको निर्दोष आहार-पानी दिलाकर, श्रमण-जीवन की कठोर चर्या बताकर धर्म-दलाली कर सकता है। जैसे श्रमण श्रमणोपासक की आचार विशुद्धि का ध्यान रखता है, वैसे ही श्रमणोपासक भी श्रमणो का आचार-विशुद्ध बना रहे, उनका तप-सयम अत्युज्ज्वल बना रहे। इसलिए वह उनकी महती सेवा करता है। ऐसा श्रावक '**अम्मापिउ समाणा**' का विरुद निभाता है।

---

१ स्थानाग सूत्र–स्था ३ उद्दे ४ सूत्र २१०।

२ किं पुच्छसि साहूण तव च नियम च बभचेर च। –आवश्यकनिर्युक्ति

अणुव्रती आदि अन्य नाम

श्रावक के लिए अणुव्रतो का पालन करना आवश्यक है। इसलिए वह **अणुव्रती** भी कहलाता है। किन्तु पूर्ण रूप मे व्रतो का पालन न करने से वह **व्रताव्रती, विरताविरति, देशविरति, देशसयति** और **सयमासंयमी** भी कहलाता है। आगार यानी घर मे रहने के कारण वह **सागारी** भी कहलाता है और गृहस्थधर्म का पालन करने से वह **गृहस्थधर्मी** के नाम से भी विश्रुत है। उपासना करने के कारण वह **उपासक** भी कहलाता है। उसमे श्रद्धा की प्रमुखता होती है, इसलिए वह **श्राद्ध** भी कहलाता है।

रत्न-पिटारा

कितने ही चिन्तको की यह भ्रान्त धारणा है कि श्रावक पूर्ण रूप मे अव्रती, असयमी अविरति है। वह जहर से भरे हुए प्याले के सदृश है। उस श्रावक की सेवा करना, उसे दान देना और उसके प्रति दया करना, अव्रत का पोषण करना है। उन चिन्तको को यह स्मरण रखना होगा कि आगम-साहित्य मे कही भी यह बात नही कही गई है। श्रावक के जो पर्यायवाची नाम आये हैं, वे भी इस बात के ज्वलन्त प्रतीक है कि वह सर्वथा अविरति और असयमी नही, किन्तु व्रताव्रती और सयमासयमी है। यही कारण है कि दिगम्बर परम्परा के समर्थ आचार्य समन्तभद्र ने श्रावक को रत्न करण्डक अर्थात् रत्नो का पिटारा कहा है। सूत्रकृताग मे स्पष्ट उल्लेख है कि जिन्होने हिसा और अहिंसा आदि के बन्धन कुछ अशो मे नष्ट कर दिये है और हिंसा आदि बन्धनो को पूर्णतया नष्ट करने की जिनकी निर्मल भावना है, और जो क्रमश नष्ट करने का प्रयास करते है, वे गृहस्थ श्रावक भी आर्य है। उनका मार्ग भी मोक्ष का मार्ग है। श्रमण के समान श्रावक भी आर्य की भूमिका पर प्रतिष्ठित है। इसके विपरीत जो मिथ्यात्वी है, हिंसा आदि मे जो रत है, वे अनार्य है।[१]

उपर्युक्त पक्तियो मे श्रावक की जो विशिष्ट भूमिका है, उसके पर्यायवाची शब्दो के पीछे जो रहा हुआ रहस्य है, उसे हमने स्पष्ट किया है। एक श्रावक की भूमिका कितनी महान् है, यह भी इससे स्पष्ट है। व्रती श्रावक किस रूप मे व्रतो को स्वीकार करता है और उन व्रतो की क्या-क्या मर्यादाएँ है? इन सभी पहलुओ पर हम अगले अध्यायो मे विचार करेगे। □

श्रावकव्रत

जैन साहित्य मे श्रावक के आचारधर्म को द्वादश व्रतो के रूप मे निरूपित किया गया है। श्रावक अत्यन्त निष्ठा के साथ इन व्रतो का पालन करता है। द्वादश व्रतो मे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत है। श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थो मे गुणव्रतो व शिक्षाव्रतो के नामो मे तथा गणना-क्रम मे एकरूपता नही है। उपासकदशाग मे गुणव्रतो और शिक्षाव्रतो का सयुक्त नाम शिक्षाव्रत है। पच अणुव्रत और सप्त शिक्षाव्रतो को द्वादश व्रत कहा गया है।

अणुव्रत सामान्य परिचय

द्वादश व्रतो मे प्रथम जो पाँच अणुव्रत हैं, उन्हे किन्ही-किन्ही ग्रन्थो मे **शीलव्रत** भी कहा है। अणुव्रत का अर्थ है--छोटे व्रत। श्रमण हिंसा आदि का पूर्ण रूप से परित्याग करता है, उसके व्रत महाव्रत कहलाते हैं, पर श्रावक उन व्रतो का पालन मर्यादित रूप से करता है। इसलिए उसके व्रत अणुव्रत कहे जाते है।

शील का अर्थ आचार है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच व्रत आचार का मूल आधार हैं। बौद्ध साहित्य मे इनका नाम 'शील' है। योगदर्शन मे इन्हे 'यम' कहा गया है। अष्टाग योग इन्ही पर आधृत है। ये व्रत सार्वभौम हैं--व्यक्ति, देश, काल और परिस्थिति की मर्यादा से परे हैं। अन्य नियमो के लिए इन नियमो को गौण नही बनाया जा सकता है। हिंसा प्रत्येक परिस्थिति मे पाप ही है और अहिंसा सदा धर्म ही है।

साधक का लक्ष्य हिंसा आदि से बचने का है। वह यथाशक्ति आगे बढता है। श्रमण और श्रावक इसी प्रगति की दो कक्षाएँ है। साधु अहिंसादि व्रतो का पूर्ण रूप से पालन करता है किन्तु गृहस्थ साधक अपनी मर्यादा निश्चित करता है। उस मर्यादा को सकुचित करना उसकी इच्छा पर निर्भर है, पर मर्यादा से आगे बढने पर अथवा उसका उल्लघन करने पर व्रत भग हो जाता है। जिन दोषो से व्रत टूटने की सम्भावना बनी रहती है, उनका भी निरूपण किया गया है। श्रावक को इन्हे जानना चाहिए, पर आचरण नही करना चाहिए। उन सम्भावित दोषो को अतिचार कहा गया है।

---

१ एस ठाणे आरिए, जाव सव्वदुक्खपहीण मग्गे एगंतसम्मे साहू। -सूत्रकृताग सूत्र

अतिचार अनाचार

जैन आगम साहित्य मे व्रत के अतिक्रमण की चार कोटियाँ बताई गई है–

(१) अतिक्रम–व्रत को उल्लघन करने का मन मे ज्ञात व अज्ञात रूप से विचार आना।

(२) व्यतिक्रम–व्रत का उल्लघन करने के लिए प्रवृत्ति करना।

(३) अतिचार–व्रत का आशिक रूप मे उल्लघन करना।

(४) अनाचार–व्रत का पूर्ण रूप मे खण्डित हो जाना।

अनजान मे दोष लग जाता है वह अतिचार है और जान-बूझकर व्रत भग करना अनाचार है। श्रावक इन चारो दोषो मे अपने व्रतो की रक्षा करता है।

बारह व्रतों के नाम

बारह व्रतो के नाम इस प्रकार है–(१) स्थूलप्राणातिपातविरमण व्रत (२) स्थूल मृषावादविरमणव्रत, (३) स्थूल अदत्तादानविरमण व्रत, (४) स्वदारसन्तोष व्रत (५) स्थूल परिग्रहपरिमाण व्रत (६) दिशा परिमाण व्रत (७) उपभोग-परिभोगपरिमाण व्रत (८) अनर्थ दण्डविरमण व्रत, (९) सामायिक व्रत (१०) देशावकाशिक व्रत (११) पौषधोपवास व्रत, (१२) अतिथि सविभाग व्रत।

पाँच अणुव्रत

(१) स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत

जैन धर्म और दर्शन का विकास अहिसा के आधार पर हुआ है। अहिसा जैन धर्म का प्राण है। आचार्य उमास्वाति ने हिसा की परिभाषा करते हुए लिखा है–"**प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपण हिंसा**" प्रमत्त योग से प्राणो का व्यपरोपण करना हिसा है। मन वचन और काया की प्रमादयुक्त प्रवृत्ति हिसा है।

आघात के दो प्रकार

प्राण शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थ लिये हुए है। जैन शास्त्रो मे प्राण के दश भद बताये गये है। पाँच इन्द्रियाँ मन वचन काया, श्वासोच्छ्-वास और आयु। इनका व्यपरोपण दो प्रकार से होता है। आघात द्वारा और प्रतिबन्ध द्वारा। दूसरे को ऐसी चोट पहुचाना, जिसमे दिखाई देना अथवा सुनना बन्द हो जाय आघात है। दूसरे को देखने और सुनने से रोकना उनकी स्वतन्त्र प्रवृत्तियो मे बाधा उपस्थित करना, प्रतिबन्ध है।

प्रश्न है–एक व्यक्ति दूसरे के जीवन मे हस्तक्षेप करता है, चोरी, डकैती या अन्य अपराधो द्वारा शाति भग करता है, क्या उस पर नियत्रण करना आवश्यक नही है?

उत्तर–श्रमण और श्रावक की चर्या मे यही अन्तर है कि श्रमण किसी पर हिंसात्मक नियन्त्रण नही करता। वह अपराधी को भी स्नेह से उपदेश देता है। वह उसे किसी भी प्रकार का कष्ट नही देता। किन्तु श्रावक के लिये यह नियम नही है। वह अपराधी को दण्ड भी दे सकता है। किन्तु दण्ड देते समय वह बदले की भावना नही रखता। वह चिकित्सक की दृष्टि रखता है, दण्ड देकर अपराधी को सुधारने का लक्ष्य रखता है।

अहिसा व्रत के दो आगार

श्रवण और श्रावक की अहिसा मे एक बात का और भी अन्तर है। जैन दृष्टि मे **पृथ्वी**, पानी अग्नि, वायु और वनस्पति मे जीव है जिन्हे स्थावर कहा गया है। श्रमण स्वय के लिये भोजन नही बनाता है और न दूसरो के लिये ही बना सकता है। मकान आदि का निर्माण जैसी सावद्य प्रवृत्ति वह नही कर सकता। वह भिक्षा द्वारा अपना जीवन निर्वाह करता है। किन्तु श्रावक के लिये यह बात नही है। वह मर्यादित रूप से प्रवृत्तियाँ भी करता है। उन प्रवृत्तियो मे पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा और वनस्पति प्रभृति स्थावर प्राणियो की हिसा भी होती है। सूक्ष्म हिसा का उसको त्याग नही होता। वह केवल त्रस जीवो की सकल्पपूर्वक हिसा का त्याग करता है। वह सूक्ष्म हिसा को हिसा समझता है। उस हिंसा से बचने का प्रयास भी करता है। पर ससार-व्यवहार मे फँसा होने के कारण सूक्ष्म हिसा का सर्वथा त्याग नही कर सकता। इस प्रकार श्रावक के अहिसाव्रत मे दो आगार हैं–प्रथम अपराधी को दण्ड देने का और दूसरा जीवन निर्वाह के लिये सूक्ष्म हिंसा का। इन्ही आगारो के आधार से श्रावक को सागारी

कहा गया है और आगार का अभाव होने से साधु को अनगार कहा है।

स्थूल प्राणातिपात

श्रावक के अहिंसा व्रत का नाम उपासकदशाग सूत्र और आवश्यक सूत्र आदि मे स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत है। श्रमण की सर्वहिंसाविरति की तुलना मे श्रावक की हिंसा देशविरति है। श्रमण मन, वचन और काया से किसी भी प्राणी की, चाहे वह त्रस हो, चाहे वह स्थावर हो, न स्वय हिसा करता है न करवाता है और न करने वाला का समर्थन ही करता है। इस प्रकार श्रमण हिंसा का तीन योग (मन, वचन और काया) और तीन कारण (करना, करवाना और अनुमोदन करना) पूर्वक त्याग करता है। उसका प्रस्तुत त्याग सर्वविरति कहलाता है।

श्रावक इस प्रकार की हिंसा का त्यागी नही होता। वह केवल त्रस प्राणियो की हिंसा से विरत होता है। उसकी यह विरति तीन योग और तीन कारण पूर्वक न होकर तीन योग व दो करण पूर्वक होती है। वह निरपराध प्राणियो को मन, वचन और काया से न स्वय मारता है और न दूसरो से मरवाता है, परिस्थिति-विशेष मे स्थूल हिंसा के समर्थन की उसको छूट होती है। श्रावक ऐसी कोई भी प्रवृत्ति नही कर सकता है जिसमे स्थूल हिंसा की सम्भावना हो। वह ऐसी प्रवृत्ति दूसरो से भी नही करवा सकता है। इस प्रकार उसका व्रत भग नही होता। वह जो भी कार्य करता है, या करवाता है उसमे वह पूर्ण सावधानी रखता है कि किसी को कष्ट न हो, किसी की हिंसा न हो, किसी के प्रति अन्याय न हो। विवेकपूर्वक पूर्ण सावधानी रखने पर भी यदि किसी प्राणी की हिंसा हो जाय तो श्रावक के अहिंसा व्रत का भग नही होता।

कर्तव्याकर्तव्य का ध्यान न रखना, न्याय और अन्याय का विवेक न रखना स्पष्ट रूप से हिंसा को प्रोत्साहन देना है। अहिंसा की सुरक्षा के लिए विचारो की निर्मलता, यथार्थता एव दृष्टि की विराटता अपेक्षित है। श्रावक किसी को मारते समय अनुकम्पित होता है, किन्तु व्रत की सुरक्षा के लिए हँसते व मुस्कराते हुए प्राणोत्सर्ग करने के लिए भी सदा तत्पर रहता है। हिंसा व अन्याय के सामने वह कभी भी झुकता नही, अपितु वीरता के साथ उसका प्रतिकार करता है। निर्भयता अहिंसा के लिए आवश्यक है। कायर व्यक्ति हिंसा अन्याय एव अनाचार को प्रोत्साहन देता है।

सकल्प और आरम्भ

उपासकदशाग मे[1] आनन्द श्रमणोपासक ने प्रस्तुत व्रत ग्रहण करते हुए प्राणातिपात के दो भेद किये है--सकल्प से और आरम्भ से। इनमे से श्रमणोपासक सकल्प से जीवन भर के लिए प्राणातिपात का त्याग करता है किन्तु आरम्भ मे नही। मारने की भावना से समझ-बूझकर मास हड्डी, चमडी, नख, केश, दाँत आदि के लिए, किसी निर्दोष-निरपराध त्रस प्राणी की बिना प्रयोजन के हिसा करना, सकल्पजा हिसा है। मकान निर्माण कराने मे, पृथ्वी खोदने, खेत जोतने आदि विविध आरम्भ के कार्यो मे त्रस जीवो की हिंसा हो जाना आरम्भजा हिंसा है। आरम्भजा हिसा मे हिंसा करने का सकल्प नही होता। किसी भी त्रस जीव की घात करने की हानि पहुँचाने की या उन्हे भयभीत करने की भावना नही होती।

कल्पना कीजिए--किसी व्यक्ति से शस्त्र-सचालन सीखते समय कोई शस्त्र यदि किसी को असावधानी से लग गया है। जिसके हाथ से शस्त्र लगा है वह दण्ड का पात्र तो अवश्य है, पर यदि उस व्यक्ति का इरादा नही है तो भारी दण्ड इसे प्राप्त नही होता।

प्रश्न है--एक श्रावक ने अपनी बहू-बेटियो की लाज लूटने वाले पुरुष पर आक्रमण किया और उस आक्रमण मे वह व्यक्ति मर जाता है। वह हिंसा सकल्पजा है या आरम्भजा है? उत्तर है-- उस हिसा को सकल्पजा हिंसा मे नही गिन सकते, क्योकि सकल्पजा हिसा वह है जो निरपराधी जीवो को मारकर की जाती है। निरपेक्ष यानी निष्प्रयोजन हिंसा करना सकल्पजा हिंसा है। इसके अतिरिक्त किसी भी प्राणी को मारने की इच्छा न रखते हुए भी कार्य करते हुए प्राणियो का मर जाना आरम्भजा हिंसा है।

---

१ से पाणाइवाइए दुविहे पण्णत्ते त जहा-सकप्पओ य आरम्भओ य। तत्थ समणोवासओ सकप्पओ जावज्जीवाए पच्चक्खाई नो आरम्भओ ।
--उपासकदशा, १

अहिंसाव्रत की मर्यादा

प्राचीन आचार्यों ने हिंसा का सूक्ष्म रहस्य समझाने के लिए हिंसा के सकल्पजा और आरम्भजा व उद्योगिनी और विरोधिनी ये चार भेद किये हैं। इन चार हिंसाओ मे से सकल्पजा हिंसा का वह पूर्ण रूप से त्याग करता है।[1] शेष तीन हिंसाएँ वह चाहते हुए भी सर्वथा त्याग नही सकता है, सिर्फ मर्यादा कर सकता है। श्रावक बिना प्रयोजन निरपराधी जीव को मारने की बुद्धि से नहीं मारता। एक श्रावक किसान है। खेती करते समय अनेक जीव मर जाते है, पर वह सकल्प से एक भी जीव को नही मारता। यदि मारता है तो सकल्पी हिंसा है, ऐसी हिंसा श्रावक कभी भी नही कर सकता। उससे उसके अहिंसाव्रत की मर्यादा भग होती है।

शिकार करना महाहिंसा

कितने ही व्यक्तियो की यह भ्रान्त धारणा है कि शिकार आदि करना उद्योगी हिंसा है पर वह उद्योगी हिंसा नही है। शिकार आदि उद्योग के लिए नही, मनोरजन के लिए किये जाते है। वह सकल्पी हिंसा है, महाहिंसा है। सम्यक्त्व आने से ही पूर्व ही यह व्यसन छोडना आवश्यक है जिससे हृदय की कोमल वृत्तियाँ नष्ट न हो।

कितने ही व्यक्तियो का यह तर्क है कि हिंसक जीवो को यदि मार दिया जाय तो अनेक जीवो की रक्षा होगी, क्योकि वे जब तक जीवित रहेगे तब तक वे विविध प्राणियो का हनन कर पाप का उपार्जन करते रहेगे उन्हे मार दिया जायेगा तो वे उस पाप से मुक्त हो जायेगे। पर उनका यह तर्क कुतर्क है। यदि हिंसक प्राणी श्रावक पर आक्रमण कर रहा है तो उस समय वह अपराधी है। उसके अतिरिक्त अन्य सारे हिंसक प्राणी अपराधी नही है, उन निरपराधियो को श्रावक मार नही सकता, यदि मारता है तो घोर सकल्पी हिंसा है।

जिस प्रकार मानव हिंसक प्राणियो को मारना चाहता है कि वे हमारे दुश्मन हैं, उसी प्रकार यदि हिंसक प्राणी यह सोचे कि मानव हमारे दुश्मन है जो हमे मारते हैं, हमे मानवो को मार देना चाहिए। तो क्या उन हिंसक प्राणियो का प्रस्तुत निर्णय हमे पसद आयेगा? जब हमे उनका निर्णय पसन्द नही है तो हमारा निर्णय उन्हे किस प्रकार पसन्द आयेगा?

कोई भी प्राणी मरना पसन्द नही करता इसलिए मारने का विचार करना ही सर्वथा अनुचित है। हिंसक जीवो को मारने से अनेक जीवो की रक्षा होगी, यह धारणा भी भ्रान्त ही है। यदि आयुष्य बलवान है तो किसी भी जीव की शक्ति नही कि उसे मार सके और यदि आयुष्य ही क्षीण हो चुका है तो कोई भी उपाय नही जिससे वह बचा जाय। हिंसक जीव को मारने की भावना ही अनुचित है। हिंसक प्राणी प्राय तभी काटते हैं जब उन्हे छेडा जाता है या उन पर पैर आदि लग जाता है अथवा सिंह आदि तभी आक्रमण करते है, जब वे भूख से पीडित हो लेकिन मानव तो अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए उन्हे मारता है।

मत्स्य गलागल-न्याय से शांति नहीं

इस विराट् विश्व मे जैसे मानव को रहने का अधिकार है उसी तरह अन्य हिंस्र प्राणियो को भी रहने का अधिकार है। जो प्राणी अपने आप को सबल मानता है, कल दूसरा व्यक्ति उससे भी सबल हो सकता है। मत्स्यगलागल-न्याय से विश्व मे शाति स्थापित नही हो सकती। यह अनुभूति की कसौटी पर कसा हुआ सिद्धान्त है कि हिंस्र प्राणी तभी हमला करता है जब उसे मारने या सताने की भावना मन मे पनप रही हो। यदि हृदय मे निर्वैर और निर्भयता की भावना अठखेलियाँ कर रही हो तो वे पशु न कभी काटते है, न ही कष्ट ही देते है।

कुल-विनाशिनी हिंसा

श्रावक न स्वय मास और चमडे का व्यापार करता है और न दूसरो को करने के लिए ही उत्प्रेरित करता है। जो इस प्रकार के कार्य करते हैं, वे हिंसा के भागीदार होते है। आचार्य मनु ने तो स्पष्ट शब्दो मे लिखा है[2]—पशुवध के लिए आदेश देने वाला, मारने वाला, मास को काटने वाला, बेचने वाला, खरीदने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला ये आठो व्यक्ति हिंसा के भागी होते हैं। अत श्रावक इस प्रकार की सकल्पी हिंसा का त्यागी है। श्रावक अपने कुल के नामो पर, रीति-रस्म

---

१ पगुकुष्टिकुणित्वादि दृष्ट्वा हिंसाफल सुधी।
निरागस्त्रसजन्तूना हिंसा सकल्पतस्त्यजेत्॥—आचार्य हेमचन्द्र—योगशास्त्र, २/१९

२ अनुमन्ता विशसिता हन्ता च क्रय-विक्रयी।
सस्कर्ता चोपहर्ता च, खादकश्चेति घातक॥—मनुस्मृति

के नाम पर और विघ्नो की शांति के नाम पर भी हिंसा नही करता। आचार्य हेमचन्द्र ने[1] कुल का आधार समझकर की गयी हिंसा को कुल-विनाशिनी कहा है।

संकल्पी हिंसा

अतीतकाल मे स्वार्थ के कारण, गलत परम्पराओ के कारण, धर्म मानकर पशु और पक्षियो की बलि दी जाती थी। आचार्य हेमचन्द्र और आचार्य अमृतचन्द्र ने अपने योगशास्त्र और पुरुषार्थसिद्ध्युपाय[2] ग्रन्थ मे उसकी कटु आलोचना करते हुए लिखा है कि वे धर्ममूढ है जो जीवहिंसा मे दोष नही मानते।[3] चाहे किसी के नाम पर हिंसा की जाये, वह हिंसा कभी भी अहिंसा नही हो सकती। प्राणो का अपहरण करना हिंसा तो है ही, साथ ही किसी को सताना, भयभीत करना, अग-भग करना, विविध प्रकार की यातनाएँ देना, परतन्त्र बनाकर रखना, मिथ्या-दोषारोपण करना, मर्मकारी वचनो का प्रयोग करना, किसी का अपमान करना—ये सारी हिंसाएँ सकल्पपूर्वक होने से सकल्पी हिंसा मे ही समाविष्ट होती है।

किसी रोग से सत्रस्त या कष्ट मे उत्पीडित व्यक्ति को निहारकर उसे वेदना से मुक्त करने के लिए शस्त्र, विष, इन्जेक्शन आदि द्वारा किसी को मारने का उपक्रम करना और मन मे यह समझना कि हमने दया की है, यह दया नही है, किन्तु दया का भ्रम है। कोई भी प्राणी मरना नही चाहता। फिर भले ही वह कितना भी कष्ट मे क्यो न हो, अत मारने का निर्णय करना,हृदय की कोमल-वृत्तियो को तिलाजलि देना भी सकल्पी हिंसा ही है। सकल्पी हिंसा के विविध प्रकारो से श्रावक बचता है। आरम्भी, उद्योगिनी और विरोधिनी—इन तीन प्रकार की हिंसाओ से श्रावक पूर्णतया बच नही पाता। उसे गृहस्थाश्रम मे रहते हुए घर की सफाई करनी होती है। भोजन आदि बनाना पडता है। पशु और पारिवारिक जनो की सेवा और शुश्रूषा भी करनी होती है। सावधानी रखने पर भी हिंसा होती है किन्तु हिंसा करने का उसका उद्देश्य नही होता। आचार्य अकलक ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है—श्रावक उन्ही व्यापारो को करता है जो अल्पारम्भी और अल्पसावद्य आर्य कर्म हो।

अहिंसा व्रत के अतिचार

गृहस्थ श्रावक को प्रमाद या अज्ञान के कारण दोष लगने की सम्भावना रहती है। ऐसे दोषो को अतिचार कहा है। स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत के मुख्य पाँच अतिचार हैं।

(१) **बन्ध**—किसी त्रस प्राणी को कष्टमयी बन्धन मे बाँधना, उसे अपने इष्ट स्थान पर जाने से रोकना या अपने अधीनस्थ व्यक्ति को निर्दिष्ट समय से अधिक रोककर उससे अधिक से अधिक कार्य लेना आदि भी बन्ध से अन्तर्गत है। यह बन्धन शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक आदि अनेक प्रकार के हैं। बध के अर्थबध और अनर्थबध ये दो प्रकार है।किसी को किसी प्रयोजन या हेतु स बाँधनाअर्थ बन्ध है। जैसे किसी रुग्ण या पागल व्यक्ति को चिकित्सा आदि के लिए बाँधना। कलुषित भावना से बिना प्रयोजन बाँधना अनर्थबन्ध है, जो सर्वथा हिसा है।

(२) **बध**—किसी भी त्रस प्राणी को मारना वैध है। अपने आश्रित व्यक्तियो को या अन्य किसी भी प्राणी को लकडी, चाबुक, पत्थर आदि से मारना, उन पर अनावश्यक भार डालना, किसी की लाचारी का अनावश्यक लाभ उठाना, अनैतिक ढग से शोषण कर उससे लाभ उठाना आदि वध है। जिस कार्य-विशेष से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से त्रस प्राणियो की हिंसा होती है, वह वध है।

(३) **छविच्छेद**—किसी भी प्राणी के अगोपाग काटना, अग-भग कर देना क्रोध से या मनोरजन के लिए छविच्छेद है। छविच्छेद के समान वृत्तिच्छेद भी अनुचित है। किसी की आजीविका का सपूर्ण छेद करना, उचित पारिश्रमिक से कम देना, आदि भी छविच्छेद के समान दोषयुक्त है।

(४) **अतिभार**—बैल, ऊँट, घोडा आदि पशुओ पर या अनुचर एव कर्मचारियो पर उनकी शक्ति से अधिक बोझ लादना, अतिभार है। किसी की शक्ति से अधिक कार्य करवाना भी अतिभार है।

---

[1] हिंसा विघ्नाय जायेत, विघ्नशान्त्यै कृताऽपिहि।
कुलाचार-धियाऽप्येषा, कृता कुलविनाशिनी।।—योगशास्त्र, २/२९

[2] योगशास्त्र २/३९

[3] पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, ७९-८१।

(५) **भक्तपानविच्छेद**—समय पर भोजन-पानी न देना, नौकर को समय पर वेतन न देना, जिससे उसे कष्ट पहुँचे आदि सभी क्रिया-कलाप अन्नपान विच्छेद है।

अहिंसा के उपासक श्रावक को इन अतिचारों से सदा बचना चाहिए।

(२) स्थूल मृषावादविरमण

श्रावक का द्वितीय व्रत स्थूलमृषावादविरमण है। गणधर सुधर्मास्वामी के शब्दों **मे—सच्चं खु अणवज्जं वयंति**—सत्य अनवद्य अर्थात् अपापकारी वचन है। आचार्य उमास्वाति ने अनृत की व्याख्या करते हुये कहा है —**असदभिधान अनृतम्।** असदभिधान के तीन अर्थ है—

(१) असत्—अर्थात् जो बात नही है, उसको कहना।

(२) जैसी बात है वैसी न कहकर दूसरे रूप मे कहना।

एक ही तथ्य को इस रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है जिससे सुनने वाले पर अच्छा प्रभाव पडे। उसी को विकृत रूप मे भी प्रस्तुत किया जा सकता है जिससे सुनने वाला अप्रसन्न हो जाये। सत्यवादी वस्तु को वास्तविक रूप मे रखता है, उसे बनाने या बिगाडने का प्रयास नही करता।

तृतीय अर्थ है—असत्—बुराई या दुर्भावना को लेकर किसी से कहना। यह दुर्भावना दो प्रकार की है—(१) स्वार्थसिद्धिमूलक—अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए दूसरे को सत्य न बताना (२) द्वेषमूलक—दूसरे को हानि पहुँचाने की भावना से सत्य को विकृत रूप मे प्रस्तुत करना।

श्रावक स्थूल असत्य से बचता है

प्रस्तुत व्रत का सम्बन्ध मुख्य रूप से भाषण अथवा वचन-प्रयोग के साथ है। परन्तु दुर्भावना से उत्प्रेरित मानसिक चिन्तन व कायिक व्यापार भी इसके अन्तर्गत आ जाते है। श्रावक श्रमण की भाँति पूर्ण रूप से सत्य व्रत का पालन नही कर पाता। क्योकि उस पर पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्व का भार होता है जिससे वह सूक्ष्म सत्य का पालन नही कर सकता। वह ऐसे असत्य से बचता है जिसे लोक-व्यवहार मे असत्य कहा जाता हो, जिससे दूसरे का अहित होता हो, जो सरकार द्वारा दण्डनीय हो, समाज द्वारा निन्दनीय हो और ससार की दृष्टि मे वह स्थूल असत्य हो। श्रावक स्थूल मृषावाद का त्याग करता है।

प्रस्तुत व्रत को धारण करने पर गृहस्थ के सासारिक कार्यो मे किसी भी प्रकार की बाधा नही आती। एक जैनाचार्य ने सूक्ष्म असत्य का विश्लेषण करते हुए कहा—ऐसे वचन जो गृहस्थ पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और वनस्पति प्रभृति का उपयोग करने के लिए प्रयुक्त करता है, जिस वचन से एकेन्द्रिय जीव की हिंसा की सम्भावना हो, वह सूक्ष्म असत्य है।

जिस तरह से श्रावक अहिंसा अणुव्रत की मर्यादा दो करण तीन योग से करता है उसी तरह स्थूल मृषावाद का त्याग भी दो करण तीन योग से करता है।[1] आचार्य समन्तभद्र ने श्रावक के स्थूलमृषावादविरमण के सम्बन्ध मे चिन्तन करते हुये लिखा है कि श्रावक स्थूल असत्य स्वय न बोले, न दूसरो से बुलवाये, साथ ही ऐसा भाषण न करे जिससे दूसरो पर कष्टो का पहाड ही ढह जाये।[2]

असत्य बोलने के कारण

स्थूल मृषावाद से मानव का सर्वतोमुखी पतन होता है। अनेक कारणो से मानव स्थूल असत्य का प्रयोग करता है। उपासकदशाग मे श्रावको का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करने के लिए स्थूल असत्य के मुख्य पाँच प्रकार बताये है जिनका श्रमणोपासक परित्याग करता है। वे ये है—(१) कन्या के सम्बन्ध मे (२) गाय के सम्बन्ध मे (३) भूमि के सम्बन्ध मे (४) न्यास-धरोहर के सम्बन्ध मे (५) मिथ्या साक्ष्य देने के लिए।[3]

---

१ थूलाओ मुसावायाओ वेरमण दुविहेण तिविहेण मणेण वायाए काएण—उपासकदशा १

२ स्थूलमलीक न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद् वदन्ति सन्त स्थूल मृषावादवैरमणम्॥—रत्नकरण्ड श्रावकाचार ५५

३ थूलग मुसावाय समणोवासआ पच्चक्खाई से य मुसावाए पचविहे पन्नत्ते, त जहा कन्नालीए गवालीए भोमालीए णासावहारे कूडसक्खिज्जे।
—उपासकदशा १/६ अभयदेववृत्ति, पृष्ठ ११

कन्या के सम्बन्ध मे

यहाँ पर जो कन्या के सम्बन्ध मे असत्य न बोलने का कहा गया है, उपलक्षण से उसका तात्पर्य है— मनुष्य जाति के सम्बन्ध मे असत्य न बोला जाय।[1] मानव जाति मे कन्या को प्रधानता दी गई है। कन्या पुरुष-रत्न की खान है। जो मानव कन्या के सम्बन्ध मे असत्य बोलता है, वह मातृजाति का घोर अपमान करता है। कन्यालीक मे विवेक रखने हेतु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारो की अपेक्षा से चिन्तन किया है। द्रव्य से यदि कन्या सर्वांग सुन्दर हो, उच्च वर्ण की व सस्कारो से सम्पन्न हो, स्वार्थ से उत्प्रेरित होकर उसे कुरूपा, अगहीना, नीच कुल समुत्पन्ना आदि दोष प्रगट होते हो, उस प्रकार चित्रण करना और सदोष को निर्दोष बताना, क्षेत्र से कन्या को जिस जनपद की हो, उसकी न बताकर दूसरे स्थल की बताना, काल की दृष्टि से बडी उम्र की कन्या को छोटी उम्र की और छोटी उम्र की कन्या को बडी उम्र की बताना, भाव मे चतुर कन्या को मूर्ख और मूर्ख कन्या को चतुर कहना, गुण और अवगुणो को छिपाकर न्यूनाधिक रूप से चित्रण करना।

तात्पर्य यह है कन्या मे लेकर सम्पूर्ण मानव जाति के लिए क्रोध, अभिमान, लोभ, स्वार्थ व कपट आदि से अयथार्थ भाषण करना, चिन्तन करना और शरीर से चेष्टा करना कन्यालीक है। उससे श्रावक बचता है।

गाय के सम्बन्ध मे

द्वितीय स्थूल असत्य गाय के सम्बन्ध मे है। जैसे कन्या से सम्पूर्ण मानव-जाति ली गई है वैसे गाय से सम्पूर्ण पशु-जगत को लिया गया है। मानवो मे कन्या श्रेष्ठ मानी गई है वैसा ही स्थान पशुओ मे गाय का है। गाय मानव-जाति के लिए विशेष रूप मे आधार रही है। जैन बौद्ध और वैदिक तीनो ही परम्पराओ मे गाय का गौरवपूर्ण स्थान है। गाय के सम्बन्ध मे भी द्रव्य मे अच्छी गाय को बुरी गाय, अधिक दूध देने वाली को कम दूध देने वाली बताना, क्षेत्र से अमुक क्षेत्र की उत्पन्न गाय को अन्य क्षेत्र मे उत्पन्न हुई बताना, भाव मे मारने वाली गाय को सीधी या सीधी को मारक बताना। इसी प्रकार घोडा, हाथी, ऊँट, भैंस, बकरी, कुत्ता प्रभृति जितने भी पालतू जानवर है, उनके सम्बन्ध मे द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव की दृष्टि से असत्य बोलना गवालीक है। श्रावक इस स्थूल मृषावाद से भी अपने आप को बचाता है।

भूमि के सम्बन्ध मे

इसी प्रकार भूमि भी जीवन-निर्वाह के लिए महत्वपूर्ण साधन है। स्वार्थ व लोभ आदि के वश मे होकर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि से भूमि के सम्बन्ध मे असत्य बोलना भूमि-अलीक है। भूमि-अलीक से भूमि मे उत्पन्न होने वाली सभी तरह की सचित्त और अचित्त वस्तुओ को लिया गया है क्योकि वह सभी का आधार है। जैसे फल, वृक्ष आदि सचित वस्तुएँ तथा स्वर्ण चाँदी हीरा ताम्बा, अभ्रक आदि अचेतन वस्तुएँ भूमि मे ही ली गई है। श्रावक भूमि तथा भूमि से निकलने वाली और भूमि पर पैदा होने वाली किसी भी वस्तु के सम्बन्ध मे असत्य नही बोलता, असली को नकली नही बताता और न अन्य की भूमि को अपनी बताता है।

धरोहर के सम्बन्ध मे

चतुर्थ स्थूल असत्य धरोहर के सम्बन्ध मे है। लोभ के कारण किसी की रखी हुई अमानत को हडपने के लिए कम-ज्यादा बताना या सर्वथा इन्कार हो जाना। यद्यपि आचार्य मनु ने[2] धरोहर को न लौटाने को तस्करकृत्य माना है और कहा है कि उसे तस्कर की तरह दण्डित करना चाहिए पर यहाँ न्यासापहार को असत्य मे लिया है क्योकि यह कुकृत्य असत्य बोल कर किया जाता है। यह भी द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव मे बोला जाता है। बढिया धरोहर को घटिया कहना, नयी को पुरानी और पुरानी को नई कहना।

झूठी साक्षी

झूठी साक्षी देना भी स्थूल असत्य का पाँचवाँ प्रकार है। किसी प्रलोभन, भय, स्वार्थ या आदत के कारण किसी दूसरे के लाभ के लिए या स्वय के लाभ के लिए या दूसरो की हानि के लिए न्यायाधीश या सघ के समक्ष मिथ्या बयान देना, मिथ्या गवाही देना या मिथ्या प्रशसा करना। कूट साक्षी मे सभी प्रकार की प्रशसा जो मिथ्या है, वह आ जाती है। कूट साक्षी की आचार्य मनु

---

१ तेन सर्वमनुष्यजाति विषयमलीकमुपलक्षित्। —आवश्यकसूत्र टीका

२ यो निक्षेप नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते।
तावुभौ चोरवच्छास्यौ दाप्यौ वा मम फलम्।। —मनुस्मृति

ने निन्दा करते हुए कहा है—वह वाणी को चुराता है। वह या तो न्यूनाधिक कहेगा या बिल्कुल ही नकार जायेगा, इस तरह वह चोरी करने वाला है। भारतीय मनीषियो ने उसे घृणित और घोरातिघोर पाप कहा है। जो गति ब्राह्मण, स्त्री, बालक के हत्यारे की होती है, वही गति कूट साक्षी देने वाले की होती है। श्रावक इस प्रकार के स्थूल मृषावाद से अपने आपको पूर्णतया बचाता है।

स्थूल मृषावाद के पाँच अतिचार

पूर्ण रूप से सावधानी रखने पर भी प्रस्तुत व्रत मे जिन दोषो के लगने की सम्भावना रहती है, वे मुख्य रूप से पाँच है—

१ सहसाऽभ्याख्यान—सहसा—बिना किसी कारण के तथा सत्यासत्य का निर्णय किये बिना कषाय से उत्प्रेरित होकर किसी भी व्यक्ति पर दोषारोपण करना, किसी के प्रति गलत धारणा पैदा करना, सज्जन को दुर्जन गुणी को अवगुणी, ज्ञानी को अज्ञानी, ब्रह्मचारी को व्यभिचारी कहना आदि।

कितनी ही बार आँखो देखी घटना भी असत्य होती है। फिर सुनी-सुनाई बात पर बिना किसी प्रकार का निर्णय किये शीघ्र ही किसी पर कलक लगा देना सर्वथा अनुचित है। सत्याणुव्रतधारी श्रावक को इस दोष से मुक्त रहना चाहिये।

२ रहस्याभ्याख्यान—किसी की गुह्य बात को किसी के सामने प्रगट कर देना। जैसे कोई व्यक्ति एकान्त शान्त स्थान मे किसी गम्भीर विषय पर चिन्तन कर रहा हो, उस समय कल्पना से या अटकलबाजी लगाकर यह ढिंढोरा पीटना कि अमुक विषय पर अमुक प्रकार की मन्त्रणा की जा रही है। केवल अनुमान से ही लोग गलत धारणा बना लेते है, और उनमे पूर्वाग्रह की ग्रन्थि बन जाती है। इस तरह असत्य का प्रचार करना भयकर दोष है।

३ स्वदारमन्त्रभेद—पति-पत्नी का, एक-दूसरे की गुप्त बातो को किसी अन्य के सामने प्रकट करना स्वदार या स्वपति-मत्रभेद है। प्रस्तुत अतिचार मे स्त्री की गुप्त बात को प्रकट करने का निषेध जिस प्रकार पुरुष के लिए है, वैसे ही पुरुष सम्बन्धी गुप्त बात को प्रकट करना स्त्रियो के लिए निषिद्ध है। इससे कुटुम्ब मे वैमनस्य पैदा होता है और बाहर बदनामी भी होती है।

४ मिथ्योपदेश—सच्चा-झूठा समझाकर किसी को कुमार्ग पर लगाना। असत्य का उपदेश देना नाप-तौल मे किस प्रकार का छल-छद्म किया जाता है, किस तरह चालाकी और बेईमानी करके व्यापार किया जा सकता है, आदि मिथ्या कार्यों के लिए प्रेरणा देना—मिथ्या उपदेश है, जब ऐसा उपदेश असावधानी से दिया जाता है, तब वह अतिचार है पर पुन सत्यव्रत का विचार न कर धडल्ले के साथ गलत सलाह देना अनाचार है। इससे व्रत का सर्वथा भग हो जाता है। श्रावक को प्रस्तुत अतिचार से बचना चाहिए तथा अनाचार का सेवन तो कभी भी न करना चाहिए।

५ कूटलेखप्रक्रिया—कितने ही श्रावको की यह भ्रान्त धारणा होती है कि मैने स्थूल असत्य बोलने का परित्याग किया है किन्तु असत्य लिखने का नही। इसी कारण हाथ से मिथ्या लेख, झूठे दस्तावेज जाली लेख, किसी दूसरे व्यक्ति के अक्षर सदृश अक्षर लिख देना, जाली हुण्डी, बिल्टी, नोट, सिक्के, मुहर आदि बनाना, इसी तरह बहीखातो मे झूठा जमा-खर्च करना कई बार तो लोभ के वशीभूत होकर किसी की वस्तु को हजम करने के लिए पाँच सौ के स्थान पर पाँच हजार बनाकर गरीब व्यक्तियो को कष्ट प्रदान करना आदि कार्य करने मे सकोच का अनुभव नही करते है। भले ही मुँह से झूठ न बोला गया हो पर लेखन मे तो भयकर झूठ तो है ही। इस प्रकार के सभी मिथ्या लेख कूटलेखप्रक्रिया मे आते है और ये सभी सत्याणुव्रत के अतिचार है, जो श्रावक को नही करने चाहिए।

उपासकदशाग सूत्र[1] मे इन पाँच अतिचारो का वर्णन है। आचार्य उमास्वाति ने सहसाभ्याख्यान के स्थान पर न्यासापहार अतिचार लिखा है। अन्य दिगम्बर आचार्यों ने भी उन्ही का अनुसरण किया है। न्यासापहार का अर्थ है—किसी की धरोहर को रखकर इन्कार हो जाना। श्रावक को इन सभी अतिचारो से बचकर सम्यक प्रकार से सत्य का पालन करना चाहिए।

(३) स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत

श्रावक का तृतीय व्रत स्थूल अदत्तादान विरमण है। श्रमण के लिए बिना अनुमति के दन्तशोधनार्थ तृण आदि ग्रहण करना भी वर्ज्य माना गया है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह सम्भव नही कि सम्पूर्ण प्रकार की चोरी का मन-वचन-काया से त्याग कर दे।

---

१ थूलगमुसावायवेरमणस्स समणोवासएण इमे पच अइयारा जाणियव्वा न समायरिव्वा। त जहा—सहस्साऽब्भक्खाणे रहस्साऽब्भक्खाणे, सदारमतभेए मोसुवएसे, कूडलेहकरणे। —उपासकदशा १/६ अभयदेव वृत्ति पृष्ठ ११

गृहस्थ श्रावक स्थूल अदत्तादान का त्याग करता है। वह यह प्रतिज्ञा ग्रहण करता है कि चाहे सचित्त वस्तु हो, चाहे अचित्त वस्तु हो,[1] वह दुष्ट अध्यवसायपूर्वक अपने अधिकार से बाहर की अथवा दूसरे के अधिकार की वस्तु को उस वस्तु के अधिकारी की आज्ञा के बिना ग्रहण नही करेगा, क्योकि ऐसा करना स्थूल अदत्तादान है।

जिसे समाज मे चोरी कहा जाता है, जिसके करने से समाज मे व्यक्ति चोर, बेईमान या तस्कर कहलाता है, जिसे लोग घृणा की दृष्टि से निहारते हैं, जो वस्तु सार्वजनिक है, जिस वस्तु पर उसका स्वय का अधिकार नही है, उस वस्तु को लेकर उसका उपभोग करना स्थूल अदत्तादान है।

स्थूल अदत्तादानविरमण व्रत स्थूल मृषावाद की भाँति दो करण (करूँ नही, कराऊँ नही) और तीन योग (मन, वचन और काया) पूर्वक होता है।[2]

स्थूल चोरी का परित्याग करने पर श्रावक का जीवन लोक-व्यवहार की दृष्टि से विश्वस्त और प्रामाणिक बन जाता है, उसका चारित्रिक बल बढ जाता है और किसी भी सासरिक कार्य मे उसे बाधा उपस्थित नही होती।

कितने ही व्यक्तियो की यह धारणा है कि श्रावक अस्तेय व्रत का पूर्णतया पालन नही कर सकता। जिस परिवार मे स्नेहाधिक्य होता है वहाँ परस्पर कोई चोरी नही करता। जब मन मे प्रेम व्यापक बन जाता है तब व्यक्ति तस्कर कृत्य नही करता।

चोरी के बाह्य कारण

चोरी का प्रथम कारण भोगो के प्रति आसक्ति है जब मानव के मन मे भोग लालसा, वैभव-लिप्सा आदि हीन वृत्तियाँ पनपती है, तो वह स्तेय की ओर प्रवृत्त होता है। किसी के पास कोई बढिया वस्तु देखकर उसे प्राप्त करने के लिए मन ललक उठता है और उसी के लिए व्यक्ति निम्न कोटि के कार्य करने के लिए उत्प्रेरित होता है। सबसे पहले मन मे चोरी की भावना उद्बुद्ध होती है फिर वाचिक और कायिक प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ होती हैं।

अस्तेय व्रत की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि अनावश्यक आवश्यकताएँ कम की जाये, अनुचित व गलत उपायो से धन प्राप्त करने की कामनाएँ न की जाये। अधिकाश चोरियाँ आसक्ति और लालसा से प्रेरित होकर की जाती हैं। दूसरा कारण भुखमरी और बेकारी भी है। तीसरा कारण फिजूलखर्ची है, चौथा कारण यश-कीर्ति व प्रतिष्ठा की भूख है। पाँचवाँ कारण स्वभाव है। अशिक्षा और कुसगति के कारण भी व्यक्ति चोरी करने के लिए विवश होता है।

श्रावक स्थूल चोरी का त्याग करता है।

स्थूल चोरी के प्रकार

स्थूल-चोरी के कुछ प्रकार इस तरह हैं—किसी दूसरे के घर मे सेध लगाना, किसी की जेब काटना, किसी के घर का ताला तोडना, या अपनी चाबी लगाना, या बिना पूछे किसी दूसरे की गाँठ खोलकर वस्तु निकाल लेना, किसी का गडा हुआ धन निकाल लेना, डाका डालना, ठगना, चौर्यबुद्धि से किसी की वस्तु को उठा लेना, और उसे अपने पास रख लेना आदि।

अस्तेय व्रत के अतिचार

अस्तेय व्रत का सम्यक् प्रकार से प्रतिपालन करते हुए भी कभी प्रमाद या असावधानी से जो दोष लग जाता हैं, उन्हे अतिचार कहा है।[3] वे मुख्य रूप से पाँच प्रकार के हैं।

(१) **स्तेनाहृत—** जानकारी के अभाव मे या यह समझकर कि चोरी करने व कराने मे पाप है, पर चोर के द्वारा लायी गयी चोरी की वस्तु खरीदने या घर मे रखने मे क्या हर्ज है श्रावक चोरी की वस्तु खरीद लेता है पर यह स्मरण रखना चाहिए कि वह अतिचार है।

कितने ही व्यक्तियो की यह भ्रान्त धारणा भी है कि हम मुफ्त मे तो कोई वस्तु ले नही रहे है, दाम लेकर वस्तु को खरीद रहे हैं, उसमे चोरी जैसी क्या बात है। पर उन्हे यह स्मरण रखना होगा कि जो वस्तु चोरी से लायी जाती है, वह वस्तु सस्ती बेची

---

१ थूलग अदिन्नादाण समणोवासओ पच्चक्खाइ, से अदिन्नादाणे दुविहे पन्नत्ते त जहा—सचित्तादत्तादाणे अचित्तादत्तादाणे य। —आवश्यकसूत्र, तीसरा पाठ

२ तयाणतर च थूलग अदिन्निदाण पच्चक्खाई दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा।-उपासकदशा १/६ अभयदेववृत्ति पृ ११ १३

३ थूलग अदिन्नादाणवेरमणस्स पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, त जहा— तेनाहडे, तक्करपओगे, विरुद्धरज्जातिकम, कूडतुल्लकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे। —उपासकदशा १/६, अभयदेव वृत्ति पृ ११-१३

जाती है। इसलिए श्रावक को विवेकपूर्वक जाँच करके ही कोई वस्तु लेनी चाहिए। चोरी की वस्तु खरीदने वाला व्यक्ति भी चोर के समान ही दण्डनीय होता है।

यह जिज्ञासा हो सकती है कि सस्ते दामो मे मिलने वाली सभी वस्तुएँ चोरी की कैसी हो सकती है? किसी व्यक्ति को धन की अत्यधिक आवश्यकता हो तो वह भी सस्ते दामो मे अपनी वस्तु बेचता है।

समाधान है कि वह वस्तु सस्ती हो सकती है पर चोरी की वस्तु की तरह अत्यधिक सस्ती नही होती। चोरी की वस्तु को बेचने समय बेचन वाले के मन मे भय रहता है। वह लुक-छिपकर बेचता है अत इन सभी बातो मे विवेक रखने की आवश्यकता है।

चुराई हुई वस्तु को अपने घर मे रखना, चोर डाकू आदि को अपन घर मे आश्रय देना यह भी अपराध है। श्रावक इस अतिचार म अपन आप को बचाता है।

(२) **तस्करप्रयोग**— तस्करो को तस्कर-कृत्य करने क लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन देना उस कार्य की प्रशसा करके उस कार्य को उत्तेजना दना तस्कर प्रयोग है। जैसे—एक वकील एक व्यक्ति को जानता है कि यह तस्कर है तथापि अपने पारिश्रमिक के लिए उसे निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास करता है। यह एक प्रकार म चोर को सहायता देकर चोरी करने की प्रेरणा देना है। इसी तरह जिस किसी भी कार्य से तस्कर-वृत्ति पनपती हो वह भी तस्करप्रयोग अतिचार है।

(३) **विरुद्धराज्यातिक्रम**—जो राज्य एक-दूसरे के विरोधी है उसे विरुद्ध राज्य का उल्लघन करना यानी राज्य की सीमा का अतिक्रमण करना। इसका एक अर्थ यह है कि विरोधी राज्य की सीमा का उल्लघन करके वहाँ के लोगो को माल दना और वहाँ से माल लाना शासन-विरुद्ध कार्य करना जिसस शासन म अव्यवस्था फैलती है। इस अतिचार मे अवैधानिक व्यापार निषिद्ध वस्तु एक स्थल से द्वितीय स्थल पर पहुँचाना राज्य के विरुद्ध गुप्त कार्य आदि करना आदि सभी सम्मिलित है।

(४) **कूटतुला कूटमाप**—सरकार ने तोलमाप के जो पैमाने उदाहरणार्थ मीटर किलोग्राम लीटर आदि निश्चित किये हो उसस कम-ज्यादा तौलना और मापना। यह एक प्रकार म बेईमानी और विश्वासघात है। किसी के अज्ञान का अनुचित लाभ उठाना है। यदि व्यापारी बॉट सही रखकर भी तोलते समय डण्डी मारता है या नापते समय हाथ को आगे-पीछे करता है तो यह भी चोरी ही है। श्रावक को इस अतिचार से भी बचना चाहिए।

(५) **तत्प्रतिरूपक व्यवहार**—किसी श्रेष्ठ वस्तु म उसी के सदृश नकली वस्तु मिलाकर देना। जैसे—गेहूँ म ककर काली मिर्चो मे पपीते के बीज जीरे मे रेत, असली घी मे वनस्पति घी दूध म पानी आदि मिलाना। अच्छी वस्तु बताकर खराब वस्तु देना तत्प्रतिरूपक अतिचार है।

सत्य व्रत और अचौर्य व्रत के अतिचारो का व्यापार व व्यवहार म कितना महत्वपूर्ण स्थान है, यह कहने की आवश्यकता नही। आज यदि व्यापारी वर्ग इन अतिचारो का सेवन न करे तो देशवासियो को हर दृष्टि से लाभ हो सकता है और श्रावक की गौरव-गरिमा मे भी अभिवृद्धि हो सकती है।

(४) स्वदारसन्तोष व्रत

ब्रह्मचर्य मानव-जीवन के उत्थान का मेरुदण्ड है। विश्व के सभी मूर्धन्य मनीषियो न ब्रह्मचर्य की गौरव गरिमा के गीत गाये है। ब्रह्मचर्य आत्मा की आन्तरिक शक्ति है। जिस शक्ति के विकसित होने पर विश्व की अन्य शक्तियाँ ब्रह्मचारी के चरणो मे नत हो जाती है। देवराज इन्द्र भी सिंहासन पर आसीन होते समय **"नमो बभयारिस्स"** कहकर ब्रह्मचारी के चरणो मे अपना सिर झुकाता है।

गृहस्थ की ब्रह्मचर्य मर्यादा

मोक्ष मार्ग की आराधना के लिए ब्रह्मचर्य की साधना आवश्यक मानी गई है। श्रमण पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करता है। किंतु गृहस्थाश्रम मे रहकर श्रावक के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना असभव तो नही किंतु अत्यत कठिन अवश्य है। गृहस्थ पराई स्त्री के साथ सहवास का सर्वथा परित्याग करता है और अपनी स्त्री के साथ भी काम-सेवन की मर्यादा निश्चित करता है।

गृहस्थाश्रम का लक्ष्य वासना-पूर्ति करना नही अपितु ब्रह्मचर्य के उच्च आदर्श को प्राप्त करना है। पत्नी भोग-वासना की पूर्ति करने वाली पुतली नही अपितु ब्रह्मचर्य के महामार्ग पर बढने मे सहायिका है। एतदर्थ ही आगम साहित्य मे उसके लिए **धम्म-सहाय्या, धर्मपत्नी, सहचारिणी,** प्रभृति विविध विशेषण प्रयुक्त हुए है। जिस प्रकार पति के लिए स्वदार-स्वपत्नी-सतोष व्रत

है उसी तरह श्राविका के लिए भी स्वपतिसतोष-व्रत है।

यह व्रत सामाजिक दृष्टि मे भी अत्यत आवश्यक है। वैयक्तिक जीवन विकास के लिए भी आवश्यक है। देशविरति ब्रह्मचर्य का नियम स्वीकार करने पर विवाहित स्त्री- पुरुष के सांसारिक कार्यों मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नही होती। नैतिक-धार्मिक सभी दृष्टियो मे इस व्रत का पालन करना श्रेयस्कर है।

गृहस्थ ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा इस प्रकार ग्रहण करता है—मैं विधिपूर्वक विवाहित स्वपत्नी के अतिरिक्त शेष सभी स्त्री जाति के साथ मैथुन का परित्याग करता हूँ। यावज्जीवन देव-देवी सबधी मैथुन के दो कारण तीन योग मे (मैथुन सेवन न करूँगा, न कराऊँगा, मन, वचन व काया से), इसी तरह मनुष्य-मनुष्यणी और तिर्यञ्च-तिर्यञ्चणी सबधी मैथुन सेवन का एक करण एक योग (काया) से त्याग करता हूँ।

प्रतिज्ञा से वासना के द्वार का अवरोध

प्रस्तुत प्रतिज्ञा से श्रावक के कार्य मे किसी प्रकार की बाधा नही आती। उसके जीवन मे स वासना का विष प्राय निकल जाता है। केवल एक बूँद जितना अवशेष रहता है। उस विष का उपयोग भी वह स्वच्छन्द रूप से नही करता किन्तु विवेकपूर्वक विवश होकर करता है। उसके मन मे अपनी विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त जितनी भी महिलाएँ है, उनके प्रति मातृ-भाव और भगिनी-भाव रहता है। श्रावक के जीवन मे स्वपत्नी के अतिरिक्त सभी महिलाओ के प्रति वासनाओ के द्वार बन्द हो जाते हैं उसके जीवन मे वेश्यागमन परस्त्रीगमन या अप्राकृतिक मैथुन को किसी प्रकार का अवकाश नही रहता जो गृहस्थ पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करने मे अक्षम है, उनके लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना श्रेयस्कर है। पर जो पूर्ण रूप से नैष्ठिक ब्रह्मचारी नही रह सकते, वे कम से कम उच्छृंखल और स्वैराचारपूर्ण जीवन न जीये। उनके लिए ही स्वदारसन्तोष-व्रत का विधान है।

श्रावक व श्राविकाएँ विवाह होने के पूर्व तक समस्त महिलाओ को माता और बहिन तथा पुरुषो को पिता व भाई के सदृश समझती हैं। जिसका विधिवत् पाणिग्रहण नही हुआ है, वह स्त्री चाहे, कुमारिका हो, वेश्या हो, विधवा हो, रखैल हो, या उस व्यक्ति को चाहने वाली हो, वह सभी परस्त्री हैं, इसी तरह महिलाओ के लिए पति के अतिरिक्त सभी प्रकार के पुरुष पर-पुरुष हैं।

स्वच्छन्दता नहीं

स्वदारसतोषव्रत मे किसी भी प्रकार की स्वच्छन्दता नही होती। भारतीय नीतिशास्त्र मे भी स्व-स्त्री के साथ भी सयममय जीवन जीने की प्रेरणा दी गई है और एक लम्बी सूची प्रस्तुत की है जिससे वे दोनो (पति-पत्नी) नियम मे आबद्ध रह सके। इस नियम मे देशविरति है।

स्वदारसतोषव्रती को अपने ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए विलासपूर्ण वस्त्र, आभूषण, मादक वस्तुएँ, मिर्च-मसालेदार गरिष्ठ दुष्पाच्य तामसिक पदार्थों के सेवन से सतत बचना चाहिये। कितनी ही बार विषय-वासना के अधीन होकर व्यक्ति ज्ञात व अज्ञात अवस्था मे ऐसी भयकर भूले कर देता है और समझता है कि मेरा व्रत भग नही हुआ और मेरी विषय इच्छा भी पूर्ण हो गई। ये दोष सर्वथा त्याज्य है। स्वदारसतोष व्रत के मुख्य रूप से पाँच अतिचार हैं।

स्वदारसन्तोषव्रत के पाँच अतिचार

(१) **इत्वरिक परिगृहीतागमन**—कुछ समय के लिए पैसे देकर या किसी तरह से अपने यहाँ पर रखी हुई स्त्री के साथ गमन करना। भ्रान्तिवश व्यक्ति यह समझता है कि मैंने स्वपत्नी की छूट रखी है इसलिये किसी स्त्री को कुछ दिनो के लिए धन या अन्य वस्तुएँ देकर अपनी बना लूँ और उसके साथ पत्नी की तरह व्यवहार करूँ। पर वह यह नही सोचता है कि स्वदार वह स्त्री है जिसका उसके साथ विधिवत् विवाह हुआ है। जो महिला अपनी स्त्री नही है, उसे कुछ समय के लिये अपनी मानना और उसके साथ पत्नीवत् व्यवहार करना, अतिचार है। क्योकि जो कुछ समय के लिए अपनाई जाती है वह धर्मपत्नी नही, भोगपत्नी होती है। वह जीवनोत्थान मे सहायक नही हो सकती। इसीलिए श्रावक उसके साथ सहवास नही कर सकता।

(२) **अपरिगृहीतागमन**—कितने ही व्यक्तियो मे यह भ्रम होता है कि परदारविरमणव्रत का अर्थ दूसरो की विवाहिता पत्नी

---

१ सदारसंतोसिए पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अनंगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोग-तिव्वाभिलासे। —उपासकदशा १।६, अभयदेववृत्ति, पृ १३

से निवृत्त होना है। पर जो वेश्याएँ, विधवाएँ, परित्यक्ताएँ या कुमारिकाएँ हैं, जो वर्तमान में किसी की भी परिगृहीता नहीं हैं, उनके साथ गमन किया जाये तो व्रत भग नहीं होता। किन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि जो भी पर-स्त्रियाँ हैं, वे सभी अपरिगृहीता हैं। उनके साथ गमन करना अतिचार है। इसका अर्थ यह भी है—जिस कन्या के साथ सगाई हो चुकी हो, किन्तु विधिवत् विवाह नही हुआ हो तो उनके साथ भी गमन करना अतिचार है।

(३) **अनङ्गक्रीडा**—अप्राकृतिक मैथुन करना अथवा कृत्रिम साधनो द्वारा कामाचार का सेवन करना अनङ्गक्रीडा कहलाता है।

(४) **परविवाहकरण**—अपने पुत्र और पुत्रियो का विवाह करना, श्रावक के चतुर्थ व्रत के अन्तर्गत है। किन्तु कन्यादान मे पुण्य समझ कर और रागादि के कारण दूसरो के लिए लडके-लडकियाँ ढूढना, उनका विवाह करना परविवाहकरण नामक अतिचार है।

(५) **कामभोगतीव्राभिलाषा**—विषयभोग और काम-क्रीडा मे तीव्र आसक्ति होना। उसके लिए या कामोद्दीपन करने वाली औषधियो का सेवन कर विषय-वासना मे प्रवृत्त होना।

इन अतिचारो से सदाचार अथवा ब्रह्मचर्य व्रत दूषित होता है। अत श्रावक को इस अतिचारो से बचना चाहिए।

(५) स्थूल परिग्रहपरिमाण व्रत

पाप और साँप ये दोनो हानिप्रद है। विवेकी मानव इन दोनो से बचता है। परिग्रह भी एक भयकर पाप है, जो जीवन को पतन के गहरे गर्त मे डाल देता है। पर भ्रम से परिग्रह पाप को पुण्य मान लिया जाता है। किन्तु पुण्य के भेदो मे परिग्रह का कही नामोनिशान नही है।

परिग्रह को पाप का मूल माना है। परिग्रह के कारण अन्य अनेक पाप पनपते हैं। एतदर्थ ही प्रश्नव्याकरण[१] मे स्पष्ट कहा है कि परिग्रह के लिए लोग हिंसा करते है, झूठ बोलते हैं, चोरियाँ करते है, मिलावट और धोखेबाजी करते हैं और दूसरो को अपमानित करते है।

परिग्रह के कारण ही महाशिलाकटक महायुद्ध हुआ था। इतिहास के पृष्ठो पर ऐसे सैकडो व्यक्तियो के उदाहरण हैं जिन्होने परिग्रह के लिए महापाप किये। माता-पिता, पुत्र और पुत्रियाँ, भाई और बहन के मधुर सम्बन्ध भी परिग्रह के कारण अत्यन्त कटु हो गये, यहाँ तक कि एक दूसरे के सहारक बने।

परिग्रह दोषो का आगार है। विषमता का कारण है। एतदर्थ ही परिग्रह पर नियन्त्रण करने हेतु परिग्रहपरिमाण व्रत का विधान है। श्रावक जो कुछ भी सग्रह करता है, वह केवल आवश्यकता की पूर्ति के लिये करता है। वह सन्तोषपूर्वक स्वय की और अपने आश्रितो की उचित इच्छाओ को पूर्ण करता है। श्रावक की इस प्रकार परिग्रह परिमिति का नाम स्थूल परिग्रहपरिणाम व्रत है।

सम्पत्ति नहीं, सन्तोष

आज का मानव भौतिक विकास को अपने जीवन का परम और चरम लक्ष्य मान रहा है। वह सम्पत्ति के लिए अपने आपको समर्पित कर रहा है और भौतिक आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए आध्यात्मिक सद्गुणो को तिलाञ्जलि दे रहा है। यही कारण है कि विकास विनाश का कारण बन गया है। परिग्रहपरिमाण व्रत इसकी ओर सकेत करता है कि जीवन का चरम व परम लक्ष्य सम्पत्ति नही, सन्तोष है।

बाह्य परिग्रह

इस व्रत का महत्त्व अन्य दृष्टि से भी है। इस विश्व मे सुवर्ण, चाँदी, हीरे, पन्ने, माणिक्य, मोती, भूमि, अन्न, वस्त्रादि जितने भी पदार्थ हैं, वे परिमित हैं। जब एक व्यक्ति उनका अधिक सग्रह करता है तब विषमता की विभीषिका भडक उठती है। परिग्रहपरिमाण व्रत उन विभीषिकाओ को शान्त करता है। जीवन मे सुख और शान्ति पैदा करता है। जैन आगम साहित्य मे उन समस्त परिग्रहो को नौ विभागो मे विभक्त किया है।[२] वे नौ प्रकार बाह्य परिग्रह के नाम से विश्रुत हैं।

---

१ प्रश्नव्याकरण—परिग्रह द्वार

२ उपासकदशा १।६, अभयदेववृत्ति, पृ ११-१३

(१) **क्षेत्र**—उपजाऊ भूमि की मर्यादा। इसमे खेत, खलिहान, चारागाह, बाग, पहाड, खान, जगल, आदि सभी तरह की खुली भूमि का समावेश है।

(२) **वास्तु**—मकान, दुकान, गोदाम, अतिथिगृह, बगला, कारखाने का मकान आदि।

(३) **हिरण्य**—चाँदी के बर्तन, आभूषण तथा चाँदी के अन्य उपकरण आदि।

(४) **सुवर्ण**—स्वर्ण, स्वर्ण के बर्तन, स्वर्ण के आभूषण, सोने की घडी, सोने का पैन आदि।

(५) **धन**—रुपये, पैसे, सिक्के, नोट, ड्राफ्ट, चेक, बैक बैलेस आदि।

(६) **धान्य**—अन्न, गेहूँ, चावल, उडद, मूग, तिल, मटर आदि।

(७) **द्विपद**—दो पाँव वाले प्राणी, जैसे—स्त्री, पुरुष, मैना, तोता, हस आदि।

(८) **चतुष्पद**—हाथी, घोडा, गधा, बैल, बकरी, गाय, भैस आदि पशु।

(९) **कुप्य या गोप्य**— स्वर्ण, चाँदी की वस्तुओ के अतिरिक्त अन्य समस्त वस्तुओ का समावेश कुप्य मे होता है। कितने ही आचार्य कुप्य का अर्थ घर की समस्त सामग्री ग्रहण करते है। उनके अनुसार घर में रहे हुए समस्त बर्तन, वस्त्र, सोफासेट, मेज, कुर्सी, अलमारी, पखे, टेलीविजन, रेडियो, रथ, मोटर, स्कूटर, साइकिल आदि सभी प्रकार के वाहन और घर की समस्त खाद्य-पेय सामग्री। जिन वस्तुओ का उपयोग स्वय के लिये न होकर व्यापारार्थ होता है,उनकी परिगणना धन के अन्तर्गत की गई है।

परिग्रह व्रत की मर्यादाएँ

श्रावक पूर्ण रूप से परिग्रह का परित्याग नही कर सकता। वह इन नौ प्रकार के परिग्रहो मे से अपने लिये आवश्यक वस्तुओ की मर्यादा कर शेष समस्त वस्तुओ के ग्रहण व सग्रह का त्याग करता है। यही इच्छापरिणाम व्रत या परिग्रहपरिमाण व्रत है।

प्रस्तुत व्रत तीन करण (करना, कराना और अनुमोदन) तथा तीन योगो (मन, वचन, काया) मे से अपनी इच्छा के अनुसार ग्रहण किया जा सकता है। श्रावक को अपनी गृहस्थी को चलाने के लिए अपनी सन्तान को व्यापारार्थ प्रेरणा भी देनी पडती है, विवश होकर सभालना भी पडता है अत श्रावक दो करण तीन योग से अथवा एक करण, तीन योग से परिग्रहपरिमाण व्रत को स्वीकार करता है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से भी परिग्रह का परिणाम किया जाता है। द्रव्य से—अमुक वस्तु के अतिरिक्त वस्तु की इच्छा न करूँगा। क्षेत्र से—अमुक क्षेत्र से बाहर की वस्तु की इच्छा न करूँगा। काल से—इतने दिन, मास, वर्ष या जीवन भर इन वस्तुओ के अतिरिक्त उपयोग न करूँगा। भाव से—जिन वस्तुओ की मर्यादा की है उनसे अधिक इच्छा न करना। वह ग्रहण की हुई मर्यादाओ को घटाता है, बढाता नही।

परिग्रहपरिमाण व्रत ग्रहण करने से किसी भी प्रकार बाधा नही आती अपितु अनन्त तृष्णा की समाप्ति होने से अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है।

कितने ही व्यक्तियो के पास व्रत-ग्रहण करते समय बहुत ही कम सम्पत्ति होती है तथापि वे मर्यादा बहुत ही बढ़ा-चढ़ाकर रख लेते है, जो अनुचित है और कितने ही व्यक्ति मर्यादा से अधिक सम्पत्ति होने पर उसे अपनी स्त्री, सन्तान या विवाह आदि के लिए अमानत के रूप मे रख लेते है और समझते हैं कि हम व्रत-भग से मुक्त हो गये। पर यह कपटपूर्ण व्यवहार ही है जो अनुचित है।

परिग्रहपरिमाण व्रत के पाँच अतिचार

अन्य व्रतो की भाँति इस व्रत के भी पाँच अतिचार हैं जो इस प्रकार हैं-[1]

(१) क्षेत्र-वास्तु परिमाणातिक्रम।

(२) हिरण्य-सुवर्ण परिमाणातिक्रम।

(३) द्विपद-चतुष्पद परिमाणातिक्रम।

(४) धन्य-धान्य परिमाणातिक्रम।

(५) कुप्य परिमाणातिक्रम।

यदि मर्यादा से अधिक परिग्रह हो जाये तो दानादि मे उपयोग कर लेना चाहिए।

---

१ उपासकदशांग १।६, पृ ११-१३

आचार्य समन्तभद्र[1] ने अतिवाहन, अतिसग्रह, बिस्मय, लोभ और अतिभारवहन ये पाँच परिग्रहपरिमाण व्रत के विक्षेप बताए हैं जिससे लोभवृत्ति बढती है और वह व्यक्ति परिग्रहपरिमाण व्रत को ग्रहण करने से कतराता है।

इस व्रत को ग्रहण करने से जीवन मे सादगी, मितव्ययिता और शान्ति अनुभव होती है।

गुणव्रत

गुणव्रतों का महत्व

अणुव्रतो के विकास के लिए गुणव्रत का विधान किया गया है। दिशापरिमाण व्रत, उपभोग-परिभोगपरिमाण व्रत, अनर्थदण्डविरमण व्रत—इन तीनो को गुणव्रत इसलिए कहा जाता है कि ये अणुव्रत रूपी मूल गुणो की रक्षा व विकास करते हैं। अणुव्रत यदि स्वर्ण के सदृश हैं तो गुणव्रत उस स्वर्ण मे चमक-दमक बढाने के लिए पॉलिश के सदृश हैं। अणुव्रत खुली पुस्तक है तो गुणव्रत उस पुस्तक पर जिल्द बाँधने के सदृश है। अणुव्रतो मे शक्ति का सचार करने वाले गुणव्रत है। अणुव्रतो के पालन करने मे जो कठिनाइयाँ है उन कठिनाइयो को गुणव्रत दूर करते हैं। प्राचीन युग मे नगरो की सुरक्षा के लिए कोट निर्मित किए जाते थे, वैसे ही गुणव्रत अणुव्रत रूपी नगर की सुरक्षा करने वाले परकोटे के सदृश है। गुणव्रत द्वारा अणुव्रत की सीमा मे रही हुई मर्यादा को और अधिक सकुचित किया जाता है। अणुव्रतो मे सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से हिंसादि के द्वार खुले रहते है। उन द्वारो को अमुक द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से बद करने मे गुणव्रत सहायक होते है। जैसे दिशापरिमाण व्रत मे छहो दिशाओ मे गमनागमन की मर्यादा कर लेने से पहले जो सभी हिंसा, असत्य के अश खुले थे वे उक्त मर्यादा के बाहर गमन न करने से सारे पाप द्वार बद हो जाते है। इसी तरह उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रत मे भी सीमा निर्धारित हो जाती है। उस सीमा के बाहर की समस्त वस्तुओ का उपभोग परिभोगद्वार बद हो जाता है। इसी तरह अनर्थदण्ड व्रत से भी जितने अनर्थदण्ड हैं उनसे वह मुक्त हो जाता है। इसीलिए मूलगुणरूप अणुव्रतो के पश्चात् गुणव्रतो का विधान किया गया है।

(१) दिशापरिमाण व्रत

पाँचवे अणुव्रत मे सम्पत्ति आदि की मर्यादा की जाती है। व्यक्ति सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए दिन रात दौड-धूप करता है। प्रस्तुत व्रत मे श्रावक उन प्रवृत्तियो का क्षेत्र सीमित करता है। वह यह प्रतिज्ञा ग्रहण करता है—चारो दिशाओ मे व ऊपर-नीचे (यानी छहो दिशाओ मे तथा उपलक्षण मे चारो विदिशाओ मे अर्थात दशो दिशाओ मे) निश्चित सीमा से आगे बढकर मै किञ्चित् मात्र भी स्वार्थमूलक प्रवृत्ति नही करूँगा।

श्रमण के लिए क्षेत्र की मर्यादा का विधान नही है, क्योकि उसकी कोई भी प्रवृत्ति स्वार्थमूलक या हिंसात्मक नही होती। वह किसी भी प्राणी को बिना कष्ट पहुँचाए जन-जन के अभ्युत्थान के लिए विहार करता है। वह घुमक्कड है। चरैवेति-चरैवेति उसकी साधना का लक्ष्य है। पर श्रावक की प्रवृत्ति हिंसात्मक भी होती है। अत उसे मर्यादा करना आवश्यक है।

वर्तमान युग मे इस व्रत का महत्व अत्यधिक है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी-अपनी राजनीतिक और आर्थिक सीमाएँ निश्चित कर ले तो बहुत से सघर्ष स्वत मिट जाएँगे। भारत के भूतपूर्व प्रधानमत्री प जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रो मे परस्पर व्यवहार के लिए पचशील के रूप मे जो आचार सहिता निर्मित की थी उसमे इस पर अधिक बल दिया गया था कि एक राज्य दूसरे राज्य मे हस्तक्षेप न करे।

गमनागमन की मर्यादाएँ

आचार्य हेमचद्र ने कहा है कि जिस मानव ने दिग्व्रत को धारण कर लिया है उसने जगत् पर आक्रमण करने वाले अभिवृद्धि लोभरूपी समुद्र को आगे बढने से रोक दिया है।[2]

विदेश यात्रा करने के मुख्य तीन कारण है—(१) अधिकाधिक लोभ के वशीभूत होकर व्यापार की अभिवृद्धि के लिए, (२) आमोद-प्रमोद, सैर-सपाटे और वैषयिक सुखो के आस्वादन के लिए, (३) किसी आध्यात्मिक महापुरुषो के दर्शन के लिए।

---

१ अतिवाहनातिसग्रह, विस्मय-लोभातिभारवहनानि।
परिमित परिग्रहस्य च विक्षेपा पच लक्ष्यन्ते।। रत्नकरण्ड श्रावकाचार ६२

२ जगदाक्रममाणस्य प्रसरल्लोभवारिधे।
स्खलन विदधे तेन, येन दिग्विरति कृता।। योगशास्त्र ३/३

प्रथम दो कारणो मे अर्थ और काम की प्रधानता रहती है अत श्रावक को उन कारणो से बचना चाहिए।[1] जैसे तपाए हुए लोहे के गोले को कही पर भी रखने से जीवो की हिंसा है वैसे मानव के गमनागमन से त्रस और स्थावर जीवो की हिंसा होती है। प्रस्तुत व्रत के ग्रहण से आवागमन की मर्यादा स्थिर हो जाती है।[2] हिंसा, तृष्णा और लोभ को घटाने के लिए इस व्रत की आवश्यकता है।

प्रस्तुत व्रत मे दिशाओ की मर्यादा निश्चित की जाती है। मुख्य रूप से दिशाएँ तीन हैं--ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा और तिर्यक्‌दिशा। इन तीन दिशाओ मे तिर्यक्‌दिशा के आठ भेद हैं—(१) पूर्व, (२) पश्चिम, (३) उत्तर, (४) दक्षिण, और चार विदिशाएँ (५) ईशान, (६) आग्नेय, (७) नेऋत्य, (८) वायव्य। इनके अतिरिक्त (९) सिर की ओर ऊर्ध्वदिशा, (१०) पैर के नीचे की ओर अधोदिशा है।

मर्यादाएँ अपनी इच्छा से ग्रहण की जाती है

प्रस्तुत व्रत ग्रहण करने वाला श्रावक किसी एक स्थान (उदाहरणार्थ निवास स्थान आदि) को केद्र बनाता है और उस केद्रस्थान से प्रत्येक दिशा के लिए मर्यादा स्थिर करता है कि मैं अमुक केद्र स्थान से दशो दिशाओ मे इतनी दूर तक जाऊँगा। इस प्रकार स्वेच्छा से गमनागमन के क्षेत्र को सीमित करता है। यह मर्यादा कोस, मील, किलोमीटर, फर्लांग, हाथ आदि किसी भी पैमाने मे निर्धारित की जा सकती है। केद्र स्थल किस को मानना यह भी उसकी स्वय की इच्छा पर निर्भर है। किस दिशा मे अधिक किस दिशा मे कम मर्यादा रखनी, यह भी उसकी इच्छा पर अवलम्बित है। हा एक बार मर्यादा निश्चित करने के पश्चात उसमे परिवर्तन करना, सकल्प को तोडना सर्वथा अनुचित है। सरलतापूर्वक जीवन-निर्वाह सम्बन्धी गमनागमन आदि क्रियाओ के लिए जितना क्षेत्र आवश्यक है, उतने की मर्यादा रखनी चाहिए। आवश्यकता से अधिक क्षेत्र की मर्यादा रखना उचित नही है।

दिशापरिमाण व्रत का सकल्प जीवन भर के लिए होता है। केवल दिन-रात या उससे भी कम समय के लिए जो मर्यादा होती है, वह देशावकाशिक व्रत मे होती है, जो दशवाँ व्रत है।

दिशा-परिमाण के अतिचार

जिस साधक ने दिग्‌परिमाण व्रत ग्रहण कर लिया है, उसे उस मर्यादा का अतिक्रमण नही करना चाहिए। दिशापरिमाण व्रत के पाँच अतिचार बताए गए है[3] वे इस प्रकार है—

(१) **ऊर्ध्वदिशापरिमाणातिक्रम**—ऊर्ध्वदिशा मे गमनागमन के लिए जो क्षेत्र-मर्यादा निश्चित कर रखी है, उस क्षेत्र को अनजान मे उल्लघन कर जाना।

(२) **अधोदिशापरिमाणातिक्रम**— नीची दिशा मे जो गमनागमन की क्षेत्र-मर्यादा रखी है,उसका अज्ञात रूप से उल्लघन हो जाना।

(३) **तिर्यग्दिशापरिणामाणातिक्रम**—पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, नैऋत्य, वायव्य, ईशान और आग्नेय दिशा-विदिशाओ मे जो क्षेत्र मर्यादा रखी है, उसका अतिक्रमण हो जाना।

(४) **क्षेत्रवृद्धि**—असावधानी से क्षेत्र की मर्यादा को एक दिशा के परिमाण का अश दूसरे दिशा के परिमाण मे मिला देना। एक दिशा के लिये की गई सीमा को कम करके दूसरी दिशा की सीमा मे जोड लेना।

इसमे व्रतधारी को ऐसा भ्रम होता है कि "मैने एक दिशा का क्षेत्र घटा दिया है, फिर मुझे अतिचार क्यो लगेगा?" किन्तु यह स्मरणीय है कि श्रावक को मर्यादित क्षेत्र को घटाने का अधिकार तो है, किन्तु दूसरी दिशा मे क्षेत्र की मर्यादा को बढाने का अधिकार नही है। इसलिये क्षेत्र-मर्यादा की वृद्धि करना अतिचार है।

(५) **स्मृति भ्रश**—कितनी ही बार मर्यादा का स्मरण न रहने से मर्यादा का भग हो जाता है। जैसे—मैंने पचास योजन की मर्यादा की है या सौ योजन की? इस प्रकार सन्देह होने पर पचास योजन से उसे आगे नही जाना चाहिये, फिर भले ही मर्यादा सौ योजन की क्यो न की हो। यदि क्षेत्र के परिमाण का उल्लघन हुआ हो तो उसे तुरन्त वापिस लौट जाना चाहिये,

---

१ श्रावक धर्म-दर्शन, पृ ३९०, उपाध्याय पुष्कर मुनिजी

२ चराचराणा जीवानां विमर्दन-निवर्तनात्।
तप्तायोगोलकल्पस्य सद्वृत्त गृहिणोप्यद ॥ —योगशास्त्र ३/२

३ उपासकदशांग १।६ अभयदेववृत्ति, पृ १४

ज्ञात होने पर बिल्कुल भी आगे नहीं बढ़ना चाहिये और न अन्य किसी व्यक्ति को भेजना चाहिये। यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति क्षेत्र मर्यादा से आगे गया हो तो उसके द्वारा लाई गई वस्तु का उपभोग भी नहीं करना चाहिए।

(२) उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत

जो वस्तु एक बार उपभोग मे आती है उसे उपभोग कहते हैं और पुन -पुन काम मे आने वाली वस्तु परिभोग कहलाती है। उपभोग और परिभोग मे आने वाली वस्तुओ की मर्यादा को निश्चित करना उपभोग-परिभोग परिमाणव्रत है।

प्रस्तुत व्रत अहिंसा और अपरिग्रह व्रत की रक्षा के लिये है। इससे जीवन मे सादगी और सरलता का सचार होता है तथा महारम्भ, महा-परिग्रह एवं महातृष्णा से श्रावक मुक्त हो जाता है।

प्रस्तुत व्रत ग्रहण करने पर श्रावक को यह विवेक रखना पडता है कि अमुक पदार्थ मेरे शरीर धारण करने के लिये उपयोगी है या केवल स्वाद अथवा फैशन के लिये मैं इसका उपयोग कर रहा हूँ? आजकल सभ्यता-सस्कृति और फैशन के नाम पर, इन्द्रियो के पोषण हेतु मनुष्य ऐसे पदार्थों का उपभोग करने मे आनन्द की अनुभूति करते हैं, जो स्वास्थ्य के लिये भी हानिप्रद होते हैं तथा रोगो को उत्पन्न करते हैं। श्रावक उन सभी पदार्थों का त्याग करता है। वह जीवन-निर्वाह के लिये ऐसे पदार्थों का उपयोग करता है जो जीवन के लिये उपयोगी और स्वास्थ्यवर्द्धक हो।

जो पदार्थ एक बार सेवन करने के पश्चात पुन वह पदार्थ सेवन नहीं किया जा सके, वह उपभोग है, जैसे—भोजन, पानी, अग-विलेपन आदि। इसके अतिरिक्त जो वस्तु एक से अधिक बार सेवन की जा सके, वह परिभोग है, जैसे—आसन, शैय्या, वस्त्र[1] आदि।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे उपभोग-परिभोग के स्थान पर भोग और उपभोग यह नाम प्राप्त होता है किन्तु अर्थ की दृष्टि से इन दोनो मे कोई अतर नही है[2]।

उपभोग-परिभोग की एक अन्य व्याख्या भी शास्त्रो मे उपलब्ध होती है। जो पदार्थ शरीर के आन्तरिक भाग से भोगे जाते हैं वे उपभोग हैं और जो पदार्थ शरीर के बाह्य भाग से भोगे जाते हैं, वे परिभोग हैं।

अत उपभोग और परिभोग पदार्थों के सम्बन्ध मे श्रावक यह मर्यादा करता है कि मैं अमुक-अमुक पदार्थों के अतिरिक्त शेष पदार्थों का उपभोग-परिभोग नही करूँगा। इस प्रकार श्रावक अपने शरीर को पूर्ण स्वस्थ, सशक्त और कार्यक्षम बनाये रखने के लिये उन शरीर और इन्द्रियो से सम्बन्धित आवश्यक पदार्थों की मर्यादा करता है।

छब्बीस बोल

शास्त्रकारो ने प्रस्तुत व्रत की सुविधा की दृष्टि से छब्बीस प्रकार के पदार्थों की एक सूची दी है। वह इस प्रकार है——

(१) शरीर आदि पोछने का अँगोछा या तौलिया आदि। (२) दाँत साफ करने के लिये मजन आदि। प्राचीन काल मे बबूल, नीम, मुलैठी आदि की लकडी से दतौन करते थे। वर्तमान मे टूथ-पेस्ट, दन्त-मजन आदि से दतौन करते हैं। (३) फल, (४) मालिश के लिये तेल,(५)उबटन के लिये लेप आदि। (६) स्नान के लिये जल। (७) पहनने के लिये वस्त्र। (८) विलेपन के लिये चन्दन आदि। (९) फूल-पुष्पो की मर्यादा करना। (१०) आभरण अर्थात आभूषण आदि। (११) धूप-दीप—वायु-शुद्धि के लिये धूप आदि का उपयोग।

ये जो ग्यारह पदार्थ बताये हैं, उन पदार्थों से शरीर की रक्षा होती है तथा उसमे स्फूर्ति व स्वस्थता का सचार होता है। आगे वह सूची दी जा रही है जिससे शरीर मे पुष्टि व शक्ति की अभिवृद्धि होती है।

(१२) पेय पदार्थ दूध, शर्बत, मट्ठा आदि। (१३) पक्वान्न-भोजन के पूर्व नाश्ते के रूप मे जो पदार्थ खाये जाते हैं। (१४) ओदन—ओदन मे उन द्रव्यो को लिया गया है, जो विधिपूर्वक अग्नि पर पकाकर खाये जाते है। जैसे—चावल थूली आदि। (१५) सूपदार—सूप मे उन तरल खाद्य पदार्थों का समावेश होता है, जैसे—दाल, सूप आदि जिससे लगाकर रोटी, भात आदि खाये जाते हैं। (१६) घृत आदि विगय—जो भोजन को सुस्वादु और पौष्टिक बनाते है। दूध, दही, घी, तेल और मीठा ये पाँचो विगय हैं। मधु और मक्खन की गणना महाविगयो मे की गई है किन्तु विशेष परिस्थिति मे औषधि के रूप मे ये लिये जा सकते

---

१ उपभोग सकृद्भोग स चाशनपानानुलेपनादीनाम्।
परिभोगस्तु पुनर्पुन भोग्य स चासनवसनशयनवनितादीनाम्।। —आवश्यकवृत्ति

२ भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्य।
उपभोगोऽशन-वसनप्रभृति पचेन्द्रियो विषय ।।—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ८३

हैं, सामान्य परिस्थिति मे इनका उपयोग नही किया जा सकता। किन्तु मद्य और मांस जो महाविगय हैं, वे सर्वथा त्याज्य है। (१७) शाक–भोजन के साथ व्यञ्जन के रूप मे खाये जाने वाले पदार्थ शाक या साग कहलाते हैं। (१८) माधुरक-मेवा मधुर–हरे फलो मे आम, केला, जामुन, नारगी, सेब अनार आदि हैं। सूखे फलो मे बादाम, पिस्ता, किशमिश आदि। (१९) जेमन-भोजन–जो पदार्थ क्षुधा-निवारणार्थ खाये जाते हैं। जैसे–रोटी, बाटी, पुडी आदि। (२०) पीने का पानी–विविध प्रकार के उष्णोदक, शीतोदक, गन्धोदक, खारा-मीठा आदि पेय-पदार्थ। (२१) मुखवास–सुपारी, पान आदि। (२२) वाहन–हाथी, घोडा, बैल आदि। (२३) उपानत–जूते बूट, चप्पल आदि। (२४) शय्यासन–पलग, पाट, गद्दा, तकिया आदि। (२५) सचित्त वस्तु की मर्यादा करना। (२६) खाने के द्रव्य–स्वाद की भिन्नता की दृष्टि से जितनी वस्तुएँ पृथक्-पृथक् द्रव्यो के सयोग के साथ मुँह मे डाली जाती है, पृथक्-पृथक् द्रव्य हैं।

पाँच बातों से बचो

उपभोग-परिभोग व्रत मे वस्तुओ का उपयोग करते समय गृहस्थ को इन पाँच बातो से बचना आवश्यक है।

(१) **त्रसवध**–जिन वस्तुओ मे त्रस जीवो का वध होता हो, उनका सर्वथा त्याग करना चाहिये। जैसे–रेशमी वस्त्र, कॉडलिवर आइल, हेमोग्लोबिन आदि। (२) **बहुवध**–जिन पदार्थों के तैयार करने मे त्रस जीवो का सहार तो नही होता किन्तु तैयार होने पर त्रस जीव पैदा हो जाते हैं अथवा असख्य स्थावर जीवो की हिंसा होती है। जैसे–मदिरा त्रस जीवो के वध से निर्मित नही होती किन्तु इसके निर्माण करने मे पदार्थ को सडना पडता है जिससे उसमे असख्य त्रस जीव पैदा हो जाते हैं। इसीलिये मदिरा बहुवध होने से वर्ज्य है। (३) **प्रमाद**–जिस वस्तु के सेवन करने से प्रमाद की अभिवृद्धि होती हो जैसे गरिष्ठ और तामसिक भोजन, अतिमात्रा मे विकृतियो (विगइयो) का सेवन, अत्यन्त गुदगुदा और लचीला आसन भी त्याज्य है। (४) **अनिष्ट**–जिन वस्तुओ के सेवन से स्वास्थ्य बिगडता हो। जैसे–अधपकी हुई, चलित रस वस्तुएँ। (५) **अनुपसेव्य**–जिस वस्तु का सेवन शिष्टसम्मत नही है, घृणित और अनुपसेव्य है। जैसे–बिना जाने हुए फल व मास, मछली, अण्डे आदि।

उपभोग-परिभोग व्रत के अतिचार

इस व्रत के पाँच अतिचार है। इन अतिचारो मे अस्वादवृत्ति पर अधिक बल दिया गया है। स्वादवृत्ति, आसक्ति और उच्छृखलता को प्रश्रय देने से मर्यादा का स्पष्ट रूप से भग होता है। अत श्रावक को सतत सतर्क रहकर इन अतिचारो से बचना चाहिये। वे अतिचार इस प्रकार हैं[1] —

(१) **सचित्ताहार**–जो सचित्त वस्तु मर्यादा मे नही है, उसका भूल से आहार करने पर सचित्ताहार दोष लगता है।

(२) **सचित्त-प्रतिबद्धाहार**–जिस सचित्त वस्तु का त्याग कर रखा है, उस सचित्त वस्तु से अचित्त वस्तु लगी हुई है, उसका भूल से उपयोग कर लेना वह सचित्त-प्रतिबद्धाहार है। जैसे–वृक्ष से लगा हुआ गोद, पिण्डखजूर, गुठली सहित आम आदि खाना।

(३) **अपक्वाहार**–सचित्त वस्तु का त्याग होने पर बिना अग्नि के पके, कच्चे शाक, बिना पके फल आदि का सेवन करना।

(४) **दुष्पक्वाहार**–जो वस्तु अर्द्ध पक्व हो, उसका आहार करना।

(५) **तुच्छौषधिभक्षण**–जो वस्तु कम खाई जाये और अधिक मात्रा मे बाहर डाली जाये, ऐसी वस्तु का सेवन करना, जैसे सीताफल आदि।

इन पाँच अतिचारो मे मुख्य रूप से भोजन को लिया गया है। किन्तु उप लक्षण से शरीर-रक्षा के लिये अन्य पदार्थ जैसे–वस्त्र, दतौन, फल, स्नान, विलेपन आदि भी समझ लेने चाहिए।

आचार्य समन्तभद्र ने उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत के अतिचार[2] अन्य रूप मे भी बताए हैं। वे ये है—

(१) विषय रूपी विष के प्रति आदर रखना (२) बार-बार भोग्य पदार्थों को स्मरण करना (३) पदार्थों के प्रति अत्यधिक लोलुपता रखना (४) भविष्य के भोगो की अत्यन्त लालसा रखना (५) भोगो मे अत्यधिक तल्लीन होना।

श्रावक उपभोग-परिभोग व्रत के प्रति सदा जागरूक रहे क्योकि उपभोग्य-परिभोग्य वस्तुओ के प्रति भी आसक्ति रहती है। पुन -पुन स्मरण, अत्यधिक लोलुपता, अप्राप्त भोगो की लालसा तथा भोगो मे अति तल्लीनता रखते हुए भले ही व्रत बाह्य रूप

---

१ सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे अप्पोलिओसहिभक्खणया, दुप्पोलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया।

२ विषयविषतोऽनुपेक्षाऽनुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषाऽनुभवो।
भोगोपभोगपरिमाणव्यतिक्रमा पच कथ्यन्ते।।—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ९०

से धारण कर लिये जाएँ, पर अन्दर से वह खोखला होता है। ऊपर से वह धर्मध्वजी प्रतीत होता होता है किन्तु अन्दर से उसके जीवन मे साधना का प्राण नही होता। श्रावक को सतत इन अतिचारो से बचना चाहिये। कदाचित् दोष भी लग जाये तो यथा-शीघ्र शुद्धीकरण कर लेना चाहिये।

पन्द्रह कर्मादान

उपभोग-परिभोग के लिये वस्तुओ की प्राप्ति करनी पडती है और उसके लिये व्यक्ति को पाप कर्म भी करना पडता है। जिस व्यवसाय मे महारम्भ अर्थात् अतिहिंसा होती है,वह कार्य श्रावक के लिये निषिद्ध है। श्रावक-जीवन का वर्णन करते हुए भगवती सूत्र मे कहा है कि श्रावक अल्पारम्भी, अल्पपरिग्रही, धार्मिक, धर्मानुसारी, धर्मिष्ठ, धर्मख्याति, धर्मप्रलोकिकता, धर्मप्रज्वलन एव धर्मयुक्त होते हैं। वे धर्म से आजीविका चलाते है[1]।

धर्ममय आजीविका तभी हो सकती है जब वह अल्प आय से सन्तुष्ट हो। यदि उसमे तृष्णा की अधिकता होगी तो वह निषिद्ध व्यवसाय भी करेगा। श्रावक निषिद्ध व्यवसायो को जानकर सर्वथा त्याग करता है। वे निषिद्ध व्यवसाय 'कर्मादान' कहलाते हैं।

कर्मादान का अर्थ है—उत्कट (गाढ)। ज्ञानावरणीय प्रभृति पाप कर्म प्रकृतियो के ग्रहण करने के कारणभूत महापापपूर्ण होने से वे व्यवसाय कर्मादान कहलाते हैं।[2]

कर्मादान की सख्या पन्द्रह हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं——

(१) **अगारकर्म**—अग्नि सम्बन्धी व्यापार, जैसे—कोयले बनाना, ईंटे पकाना आदि।

(२) **वनकर्म**—वनस्पति सम्बन्धी व्यापार, जैसे–वृक्ष काटना, घास काटना आदि, जिससे वनाश्रित रहने वाले पशु आदि नष्ट हो जाते है।

(३) **शकटकर्म**—वाहन सम्बन्धी व्यापार जैसे—गाडी, मोटर, ताँगा, रिक्शा आदि बनाना।

(४) **भाटकर्म**—वाहन आदि किराये पर देना।

(५) **स्फोटकर्म**—भूमि फोडने का व्यापार, जैसे—खाने खुदवाना, नहरे बनवाना, मकान बनाने का व्यवसाय करना।

कितने ही कृषि कर्म को भी स्फोटकर्म मानते है, पर कृषि कर्म स्फोटकर्म नही है। उसमे जमीन फोडी नही जाती खोदी व कुरेदी जाती है।

(६) **दन्त वाणिज्य**—हाथी दाँत आदि का व्यापार।

(७) **लाक्षा वाणिज्य**—लाख आदि का व्यापार।

(८) **रस वाणिज्य**—मदिरा आदि का व्यापार।[3]

(९) **केश वाणिज्य**—बालो व बाल वाले प्राणियो का व्यापार।

(१०) **विष वाणिज्य**– जहरीले पदार्थ एव हिंसक अस्त्र-शस्त्रो का व्यापार।

(११) **यन्त्रपीडन कर्म**—मशीन चलाने आदि का धन्धा।[4]

(१२) **निर्लाञ्छन कर्म**– प्राणियो के अवयवो को छेदने, काटने आदि का व्यवसाय।

(१३) **दावाग्निदान कर्म**—जगल, खेत आदि मे आग लगाने का कार्य।

(१४) **सरोहृदतडागशोषणता कर्म**—सरोवर, झील, तालाब आदि को सुखाने का कार्य।

(१५) **असतीजनपोषणता कर्म**—कुलटा स्त्रियो के पोषण, हिंसक प्राणियो का पालन समाज विरोधी तत्त्वो का सरक्षण आदि।

इस प्रकार ये पन्द्रह कर्मादान रूप पन्द्रह व्यवसाय श्रावक के लिये मन-वचन-काया व कृत-कारित-अनुमोदित रूप से सर्वथा त्याज्य हैं। पन्द्रह व्यवसायो के अतिरिक्त भी ऐसे अनेक व्यवसाय है जिनसे भी महापाप होता है। जैसे—कसाईखाना,

---

१ अप्पारम्भा, अप्पपरिग्गहा, धम्मिया धम्माणुगा, धम्मिट्ठा, धम्मक्खाई धम्मप्पलोइया
धम्मपज्जलणा धम्मसमुदायारा धम्मेण चेव वित्ति कप्पेमाणा विहरति।—भगवती

२ कर्मणामुत्कटज्ञानावरणीयादीना पापप्रकृतिना आदानानि कर्मादानानि।—उपासकदशा १।६, अभयदेववृत्ति, पृ १५

३ रसवाणिज्यं सुरादिविक्रिय। उपासकदशा-टीका अभयदेव १।६ पृ १५ १६

४ यन्त्रै पीडन शोषण मानवाना यस्मिन् कर्मणि तत् यन्त्रपीडनकर्म।

शिकारखाना, द्यूतक्रीडा केन्द्र, चौर्यकर्म, दस्युक दस्युकर्म, मास विक्रय केन्द्र, मदिरालय, वेश्यालय आदि। उन सभी का समावेश भी इन पन्द्रह में हो जाता है। दूसरी बात यह भी है कि श्रावक बनने के पूर्व ही उसने सप्त व्यसन का परित्याग किया है, मार्गानुसारी के गुणो को धारण किया है इसलिये वह इस प्रकार का व्यापार कर भी नही सकता है। श्रावक इनसे मिलते-जुलते सभी प्रकार के व्यवसाय नही करता जिनमे महान् हिंसाएँ होती हो। वह अपने जीवन-निर्वाह हेतु इस प्रकार का व्यवसाय करता है जिसमें कम से कम हिंसा हो, जिससे समाज और व्यक्ति का शोषण न हो या कम से कम शोषण हो। महात्मा गाँधी ने जो अहिंसक समाज की कल्पना की है वह भी इन कर्मादानो के त्याग से मिलती-जुलती है।

(३) अनर्थदण्ड-विरमण व्रत

स्वय के लिये या अपने पारिवारिक व्यक्तियो के जीवन-निर्वाह हेतु अनिवार्य सावद्य प्रवृत्तियो के अतिरिक्त शेष समस्त पापपूर्ण प्रवृत्तियो से निवृत्त होना अनर्थदण्डविरमण व्रत है।[1] जिसके द्वारा आत्मा कर्मबन्धन के कारण दण्डित हो, वह दण्ड है। आत्मा जब तक ससारावस्था मे है तब तक शुभाशुभ कर्म का बन्धन प्रतिपल-प्रतिक्षण होता रहता है। शुभास्रव से शुभदण्ड मिलता है और अशुभास्रव से अशुभदण्ड प्राप्त होता है। कौन-सी प्रवृत्ति सार्थक है और कौन-सी प्रवृत्ति निरर्थक है? इसका निर्णय श्रावक अपनी प्रज्ञा और सात्विक बुद्धि से कर सकता है। जैसे एक चतुर नारी अन्न के कणो मे से मिले हुए अन्न कणो को पृथक् करती है और ककरो को बीनकर अलग कर देती है वैसे ही सुज्ञ श्रावक अशुभास्रव-जनित दण्ड रूप प्रवृत्तियो को पृथक् कर लेता है।

लोक मे भी यदि दूध देने वाली गाय हो तो उस गाय की लात भी व्यक्ति सहन करता है किन्तु कोई भी व्यर्थ की लात खाना पसन्द नही करता।अशुभ आस्रवजनित सभी प्रवृत्तियाँ त्याज्य है, पर गृहस्थ श्रावक को अपने जीवन-निर्वाह के लिए कुछ प्रवृत्तियाँ करनी पडती है। वह ऐसी प्रवृत्तियाँ करता है जो अत्यन्त आवश्यक है। जिन प्रवृत्तियो से किसी भी प्रकार का लाभ न हो, वे सारे अनर्थदण्ड है।

अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड को नापने का थर्मामीटर विवेक है। परिस्थिति-विशेष के कारण कितने ही कार्य अर्थरूप होते हैं। परिस्थिति-परिवर्तन होने पर वे ही कार्य अनर्थरूप भी हो जाते है। आचार्य उमास्वाति ने [2] अनर्थदण्ड मे अर्थ और अनर्थ शब्द की परिभाषा इस प्रकार की है—जिसस उपभोग-परिभोग होता है, वह श्रावक के लिये अर्थ है और उससे भिन्न जिससे उपभोग-परिभोग नही होता है, वह अनर्थ है। उस अनर्थदण्ड से विरत होना ही अनर्थदण्ड-विरति है।

प्रस्तुत व्रत से श्रावक प्रत्येक प्रवृत्ति के फलाफल पर विचार करता है। जिन प्रवृत्तियो से हानि अधिक होती है और लाभ कम होता है, पाप की माया अधिक होती है और पुण्य की माया कम होती है उस कार्य को वह त्याग देता है।

अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड

आचार्य अभयदेव ने [3] अनर्थदण्ड के सम्बन्ध मे चिन्तन करते हुए लिखा है कि अर्थ का अभिप्राय प्रयोजन है। गृहस्थ अपने खेत, घर, धनधान्य की रक्षा या शरीर-पालन प्रभृति प्रवृत्तियाँ करता है। उन प्रवृत्तियो मे आरम्भ द्वारा प्राणियो का जो उपमर्दन होता है, वह अर्थदण्ड है। दण्ड, निग्रह, यातना और विनाश ये चारो शब्द एकार्थक है। अर्थदण्ड के विपरीत निष्प्रयोजन निरर्थक प्राणियो का विघात करना अनर्थदण्ड है।

दूसरे शब्दो मे यो कहा जा सकता है कि किसी आवश्यक कार्य के आरम्भ-समारम्भ मे त्रस और स्थावर जीवो को जो कष्ट होता है वह अर्थदण्ड है और निष्प्रयोजन ही केवल प्रमाद, कुतूहल, अविवेक प्रभृति के वश मे होकर जीवो को कष्ट देना अनर्थदण्ड है।

इससे स्पष्ट है कि श्रावक ऐसा कोई भी कार्य नही करता जिससे उसके किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति न होती हो। यदि वह

---

१ आभ्यन्तर दिगवधेरपार्थिकेभ्य सपापयोगेभ्य।
विरमणमनर्थदण्डव्रत विदुर्व्रतधराग्रगण्य ॥

२ उपभोग-परिभोगौ अस्यागारिणोऽर्थ। तद्व्यतिरिक्तोऽनर्थ।—तत्त्वार्थभाष्य ७-१६

३ अर्थ प्रयोजनम्। गृहस्थस्य क्षेत्र-वास्तु-धन-धान्य शरीरपरिपालनादि विषय, तदर्थे आरम्भे भूतोपमर्दोऽर्थदण्ड। दण्डो निग्रहो, यातना, विनाश इति पर्याया। अर्थेन प्रयोजनेन दण्डोऽर्थदण्ड। स चैवम्भूत उपमर्दन लक्षणदण्ड क्षेत्रादिप्रयोजनमपेक्षमाणोऽर्थदण्ड उच्यते। तद्विपरीतोऽनर्थदण्ड।
—उपासकदशागटीका

लकीर का फकीर बनकर औचित्य और अनौचित्य का विवेक रखे बिना कार्य करता है तो वह अपने व्रत की मर्यादा को सुरक्षित नही रख सकता।

अनर्थदण्ड के चार आधार

शास्त्रकारो ने अनर्थदण्ड रूप प्रवृत्तियो के चार आधार स्तम्भ बताये हैं। वे इस प्रकार हैं –

(१) **अपध्यानाचरित**–अपध्यान का अर्थ है–अप्रशस्त-ध्यान। बुरे विचारो मे मन को एकाग्र करना, अप्रशस्त ध्यान है। आचार्य अमृतचन्द्र[1] ने अपध्यान की व्याख्या करते हुए लिखा है–शिकार, पाप की वृद्धि, जय-पराजय, युद्ध, परस्त्रीगमन आदि पापकर्म करने का चिन्तन अपध्यान है। जिसका फल सदैव पाप रूप होता है। आचार्य समन्तभद्र ने[2] भी इसी तरह अपध्यान की व्याख्या करते हुए लिखा है–राग-द्वेष वश किसी प्राणी के वध, बन्धन, छेदन आदि का तथा परस्त्री को अपनी बनाने का–ध्यान को जिनशासन के श्रुतधरो ने अपध्यान कहा है। आचार्य हेमचन्द्र[3] ने श्रावको को कहा है–वैरी का घात करूँ, राजा हो जाऊँ, नगर का नाश कर दूँ, आग लगा दूँ, आकाश मे उड जाऊँ या विद्याधर बन जाऊँ, इत्यादि दुर्ध्यान पहले तो मन मे आने ही नही देना चाहिये। यदि कदाचित आ भी जाये तो लम्बे समय तक मन मे ठहरने नही देना चाहिये, एक मुहूर्त के बाद तो अवश्य ही छोड देना चाहिए।

अशुभ ध्यान से किसी अन्य की हानि और लाभ नही होता किन्तु ऐसे अपध्यान से करने वाले को अवश्य ही पाप रूप अनर्थदण्ड होता है। श्रावक विवेक के द्वारा अपध्यान से बच सकता है। इष्ट वियोग, अनिष्ट सयोग, रोग आदि प्रसगो मे राग-द्वेष आदि उत्पन्न होते हैं। उस समय निमित्त की अपेक्षा उपादान का विचार करे, और मन को शान्त करे। सारा खेल उपादान का है। निमित्त केवल निमित्त ही है। यदि मानव उपादान का चिन्तन करे तो दुर्ध्यान मे सहज ही मुक्त हो सकता है। अशुभ विचारो से अशुभ सस्कार बढते हैं, अशुभ विचारो का सहवास असुरो के सहवास से भी अधिक भयकर है। इसलिए ऐसे विचारो को अपध्यानाचरित कहा है।

(२) **प्रमादाचरित**–यह अनर्थदण्ड का द्वितीय आधार है। प्रमाद जीता-जागता मरण है। वह जीवन का सार तत्त्व चूस लेता है। एतदर्थ ही भगवान महावीर ने समय मात्र का भी प्रमाद न करने का सदेश दिया। आचार्य हेमचन्द्र ने[4] प्रमादाचरण की व्याख्या करते हुए कहा है–कुतूहलवश अश्लील गीत, नृत्य-नाटक आदि देखना, आसक्तिपूर्वक कामशास्त्र, विषय-कषायवर्द्धक साहित्य पढना, जुआँ खेलना, मद्यपान करना, बिना प्रयोजन हिंडोले मे झूलना, कलहवर्द्धक विनोद करना, प्राणियो को परस्पर लडाना, निरर्थक वार्तालाप करना, बिना कारण के सोते पडे रहना, यह सब प्रमादाचरण है। बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह इन सब का परित्याग करे।

आचार्य समन्तभद्र ने लिखा है–[5] निरर्थक जमीन को खोदना, अग्नि प्रज्वलित करना, बिना प्रयोजन हवा करना, निरर्थक ही वनस्पति का छेदन भेदन करना, पानी का दुरुपयोग करना, घी, तेल, दूध आदि के बर्तन खुले रख देना, लकडी, पानी आदि को बिना देखे भाले काम मे लेना प्रमादचर्या है।

---

१ पापर्द्धिजय-पराजय-सङ्गर-परदारगमनचौर्याद्या।
न कदाचनाऽपि चिन्त्या, पापफल केवल यस्मात्॥–पुरुषार्थसिद्ध्युपाय १४१

२ वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद् रागाच्च परकलत्रादे।
आध्यानमपध्यान शासति जिनशासने विशदा॥–रत्नकरण्ड श्रावकाचार ७८

३ वैरिघातो, नरेन्द्रत्व पुरघाताऽग्निदीपने।
खेचरत्वाद्यपध्यान मुहूर्तात्परमस्त्यजेत्॥–योगशास्त्र ३।७५

४ कुतूहलाद् गीत नृत्य-नाटकादि निरीक्षणम्।
कामशास्त्रप्रसक्तिश्च द्यूतमद्यादि सेवनम्॥७८॥
जलक्रीडाऽऽन्दोलनादि विनोदो जन्तुयोधन।
रिपो सुतादिना वैर भक्त-स्त्रीदेशराट्कथा॥७९॥
रोगमार्ग श्रमौ मुक्त्वा, स्वापश्च सकला निशाम्।
एवमादि परिहरेत् प्रमादाचरण सुधी॥८०॥–योगशास्त्र ३।७८ ८०

५ क्षितिसलिलदहनपवनारम्भ विफल वनस्पतिच्छेदनम्।
सरण सारणमपि च प्रमादचर्या प्रभाषन्ते॥–रत्नकरण्ड श्रावकाचार ८०

(३) **हिंस्र-प्रदान**--यह अनर्थदण्ड का तीसरा आधार-स्तम्भ है। हिंसा में सहयोग देने वाले उपकरण या साधन दूसरो को देना। हिंसा करने के लिये हिंसाकारी साधनो का दान देना, हिंस्र-प्रदान अथवा हिंसादान है। आचार्य अभयदेव ने[1]प्रस्तुत विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है-- जिनसे हिंसा होती है, उन अस्त्र, शस्त्र, आग, विष आदि हिंसा के साधनो को क्रोधाविष्ट या क्रोधावेश से रहित व्यक्ति के हाथो मे दे देना, हिंस्र-प्रदान या हिंसा मे सहायक होना है।

(४) **पापोपदेश**--यह अनर्थदण्ड का चतुर्थ आधार स्तम्भ है। इसका अर्थ है-- पाप कर्म का उपदेश देना। कितने ही व्यक्ति यद्यपि स्वय पाप को बुरा समझते हैं तथापि जानबूझकर अथवा लापरवाही से दूसरो को पापो का उपदेश देते रहते हैं। किसी मानव या पशु को मारने या उसे परेशान करने के लिये किसी अन्य को उभारना और स्वय सन्निकट खड़े रहकर तमाशा देखना, ये सभी पाप कर्मोपदेश हैं। इसी तरह तस्कर-कृत्य के लिए, वेश्यावृत्ति के लिए दूसरो को उत्प्रेरित करना भी पापोपदेश मे गिना जाता है।

आचार्य समन्तभद्र ने[2]चार के स्थान पर अनर्थदण्ड को पाँच भागो मे विभक्त किया है- (१) पापोदेश, (२) हिंसादान, (३) अपध्यान, (४) प्रमादचर्या, (५) दु श्रुति, इनमे से चार का वर्णन तो उपरोक्त पक्तियो मे कर ही दिया गया है। एक दु श्रुति नया है। दु श्रुति को भी शास्त्रकारो ने प्रमादाचरण मे ही ले लिया है।

प्रमाद के मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा ये पाँच प्रकार हैं। उसमे विकथा का जो रूप है। वही रूप द श्रुति का भी है। आचार्य अमृतचन्द्र ने[3]दु श्रुति का अर्थ इस प्रकार किया है-- ऐसी बातो या कहानियो, उपन्यासो, नाटको का सुनना या पढ़ना, जिनसे मन मे कामादि विकार उत्पन्न होते हैं, किन्तु मानसिक उन्नति, शक्ति आदि कुछ भी लाभ नही होता। यहाँ यह कहा जा सकता है कि ऐसे साहित्य का सशोधनार्थ पढना आदि दु श्रुति नही है। आचार्य समन्तभद्र ने[4]भी लिखा है--दु श्रुति वह है जिन बातो को पढने-सुनने से चित्त आरम्भ मे आसक्त हो, पाप करने के साहस से वह मिथ्यात्व, द्वेष, राग, मद और काम से कलुषित हो जाता है।

इससे स्पष्ट है कि प्रमादाचरण मे ही दु श्रुति का अन्तर्भाव हो जाता है।

अनर्थ दण्ड के पाँच अतिचार

प्रस्तुत व्रत के पाँच अतिचार[5]है जिनका परिहार करना, व्रत के विकास के लिए आवश्यक है।

(१) **कन्दर्प**--विकारवर्धक वचन बोलना या सुनना या वैसी चेष्टाएँ करना।

(२) **कौत्कुच्य**--भाडो के समान हाथ पैर पटकना, नाक मुँह और आँख आदि की विकृत चेष्टाएँ करना।

(३) **मौखर्य**--वाचाल बनना, बढा-चढाकर बाते करना, अपनी शेखी बघारना।

(४) **सयुक्ताधिकरण**--बिना आवश्यकता के हिंसक हथियारो एव ऐसे घातक साधनो का सग्रह करके रखना, जैसे- बन्दूक के साथ कारतूस, धनुष के साथ तीर सयुक्त करके रखना।

(५) **उपभोग-परिभोगातिरेक**--उपभोग और परिभोग की सामग्री को आवश्यकता से अधिक सग्रह करके रखना। मकान, कपडे, फर्नीचर आदि का आवश्यकता से अधिक सग्रह करना भी इस अतिचार के अन्तर्गत ही है। आचार्य समन्तभद्र ने[6]प्रस्तुत अतिचार का नाम **अतिप्रसाधन** लिखा है तो आचार्य अमृतचन्द्र ने[7]**भोगानर्थक्य** लिखा है। शब्दो मे अन्तर है पर तीनो का भाव एक ही है।

---

१ हिंसाहेतुत्वादायुधानलविषादयो हिंसोच्यते, तेषा प्रदानम्। अन्यस्मै क्रोधाभिभूताय अनभिभूताय प्रदान, परेषां समर्पणम्।—उपासकदशांग टीका।

२ पापोपदेशहिंसादानापध्यानदु श्रुति पच।
प्राहु प्रमादचर्यामनर्थदण्डान् अदण्डधरा ॥—रत्नकरण्ड श्रावकाचार ७५

३ रागादिवर्द्धनाना दुष्टकथानामपि बोधबहुलानाम्।
न कदाचन कुर्वीत श्रवणार्जनशिक्षणादीनि॥—पुरुषार्थसिद्धयुपाय, १४५

४ आरम्भसग-साहस मिथ्यात्व-द्वेष-राग-मद-मदनै।
चेत कलुषयता श्रुतिरधीयमाना दु श्रुतिर्भवति॥—रत्नकरण्ड श्रावकाचार ७९

५ उपासकदशाग १।६ अभयदेववृत्ति, पृ १७

६ रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ८१

७ पुरुषार्थ सिद्धयुपाय

इस तरह अनर्थदण्डविरमण व्रत से मानसिक, वाचिक और कायिक सभी प्रवृत्तियाँ विशुद्ध होती हैं। जिससे श्रावक सामायिक आदि अगले व्रतो का सम्यग् प्रकार से पालन कर सकता है।

शिक्षाव्रत

शिक्षा का अर्थ–अभ्यास है। जैसे विद्यार्थी पुन पुन अभ्यास करता है, उसी प्रकार श्रावक को जिन व्रतो का पुन पुन अभ्यास करना चाहिये, उन व्रतो को शिक्षाव्रत कहा है। अणुव्रत और गुणव्रत जीवन मे एक ही बार ग्रहण किये जाते हैं, किन्तु शिक्षाव्रत बार-बार ग्रहण किये जाते है। वे व्रत कुछ समय के लिये ही होते है। उनके नाम ये हैं– (१) सामायिक (२) देशावकाशिक (३) पौषधोपवास (४) अतिथिसविभाग।

(१) सामायिक व्रत

शिक्षाव्रतो मे प्रथम स्थान सामायिक का है, जिसके निरन्तर अभ्यास से आत्मा-विकास के चरम लक्ष्य को प्राप्त करता है। एक आचार्य ने[1] कहा है–सामायिक के अभाव मे चाहे कितने ही तपश्चरण किये जाये, चाहे कितने ही कष्ट सहन किये जाये, चाहे कितना ही जप किया जाये, श्रमण वेश धारण कर बाह्य चारित्र का पालन किया जाये, किन्तु समभावरूपी सामायिक के अभाव मे किसी को भी मुक्ति प्राप्त नही होती है और न प्राप्त ही होगी। समभाव से ही आत्मा मोक्ष प्राप्त करता है।[2]

समभाव के निरन्तर अभ्यास मे समता के सस्कार अन्त करण मे बद्धमूल हो जाते हैं, जिससे गृहस्थ-जीवन मे किसी भी प्रकार की समस्या, जो उसकी मानसिक शान्ति को भग कर सके, समुत्पन्न नही होती। यदि समुत्पन्न हो भी जाती है तो वह उसी क्षण उसका समाधान भी कर देता है। विकट सकट की घडियो मे भी उसके अन्तर्मानस मे शान्ति का महासागर लहराता है। वह समता की लक्ष्मण रेखा से तनिक मात्र भी इधर-उधर नही होता।

समभावी साधक मे यह अपूर्व विशेषता होती है कि वह प्रतिकूलता को भी अनुकूलता मे बदल देता है। वह सोचता है कि जीवन एक यात्रा है। यात्री को कभी नुकीले-पथरीले पथ को भी पार करना ोना है तो कभी साफ-सुथरी सडक पर चलने का सयोग मिल जाता है। कभी सरस सरिता पार करनी होती है तो कभी रेगिस्तान के टीले को भी पार करना होता है। वह यात्री निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर आगे बढता है। इस विचारधारा के अनुसार समभावी साधक जीवन-यात्रा मे समभाव से आगे बढता है।

सामायिक के दो भेद

हमने सामायिक आवश्यक मे सामायिक के महत्व और उसकी आवश्यकता पर विस्तार से विश्लेषण किया है। अत यहाँ अत्यधिक विस्तार मे न जाकर सक्षेप मे ही इस व्रत का स्वरूप बता रहे है।

सामायिक के दो भेद है–एक आगार सामायिक और दूसरी अनगार सामायिक। गृहस्थ की सामायिक आगार सामायिक है और श्रमण की सामायिक अनगार सामायिक है।

गृहस्थ की सामायिक अल्पकालिक है जबकि श्रमण की सामायिक जीवन-पर्यन्त के लिए होती है। श्रावक की सामायिक दो करण और तीन योग से की जाती है जबकि श्रमण की सामायिक तीन करण और तीन योग स की जाती है। शास्त्रीय दृष्टि से श्रावक की सामायिक मे अनुमोदन (करण) खुला रहता है। किन्तु उसका तात्पर्य यह नही कि सामायिक मे श्रावक पापकारी प्रवृत्तियो का अनुमोदन करेगा ही। वह सामायिक मे किसी भी पापकारी प्रवृत्ति का अनुमोदन नही करता तथापि जो यहाँ अनुमोदन खुला रखा है, उसका तात्पर्य यही है कि गृहस्थ श्रावक आखिर गृहस्थ ही है। वह स्वय सामायिक मे बैठा है, किन्तु उसके व्यापार-धन्धे चलते रहते है। उसके परिवारीजन, पुत्र, मुनीम, गुमाश्ते आदि व्यापार कार्य करते रहते है अन्य आरम्भ-समारम्भ के कार्य भी होते हैं। यद्यपि वह उसकी प्रशसा और समर्थन नही करता, पर ममता का जो धागा उसके साथ बँधा है, जिसे उसने अभी तक काटा नही है उसी के कारण सवासानुमति रूप अनुमोदन से वह मुक्त नही हो पाता।

---

१ कि तिव्वेण तवेण कि च जवेण कि चरित्तेण।
समयाइ विण मुक्खो, नहु हुओ कहवि नहु होइ।।

२ (क) जे केवि गया मोक्ख, जे वि य गच्छन्ति जे गमिस्सति।
ते सव्वे समाइय-पभावेण मुणेयव्वा।।
(ख) समभावभावियप्पा, लहइ सुक्ख न सदेहो।

गृहस्थ श्रावक कुछ काल के लिए सामायिक ग्रहण करता है। यद्यपि उसमे पूर्ण साधुता नही आती, किन्तु आचार्य अमृतचन्द्र[1] की भाषा मे वह साधुतुल्य हो जाता है। आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण[2] का भी यही मन्तव्य है। उन्होंने श्रावक को यह उद्बोधन दिया है कि वह प्रतिदिन अनेक बार सामायिक करे।

जीवन परिवर्तन

सामायिक मे वेश भी परिवर्तन किया जाता है, किन्तु वेष के साथ जीवन-परिवर्तन उसका मूल उद्देश्य है। आत्मा जो अनादि काल से विषय-कषाय से सन्त्रस्त होकर पाप-कृत्य कर कर्मों से भारी हो रहा है उन पापकृत्यो का परित्याग कर आत्मा को अधिक से अधिक हलका बनाने का उपक्रम किया जाता है। एतदर्थ इन्द्रियो की चपलता का त्याग एव चित्त की एकाग्रता अपेक्षित होती है।

कितने ही व्यक्तियो का यह अभिमत है कि पूर्ण सामायिक तेरहवे गुणस्थान मे हो सकती है। जब तक पूर्ण वीतरागता न आये तब तक समभाव की पूर्ण साधना नही होती। राग-द्वेष का पूर्ण नाश और वीतराग दशा की अभिव्यक्ति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। ग्यारहवे गुणस्थान के पूर्व कषाय किसी न किसी रूप मे रहता है। इसलिये पूर्ण-समता तेरहवे गुणस्थान मे ही प्राप्त हो सकती है।

उत्तर मे निवेदन है कि समता का साधक उस पथ पर धीरे-धीरे बढता है। सभी साधक गजसुकुमाल नही होते, जो कुछ ही क्षणो मे उच्चतम भूमिका को प्राप्त कर ले। धीरे-धीरे निरन्तर अभ्यास करने से ही सामायिक मे पूर्णता आती है। बूँद-बूँद से ही घट भरता है। यदि बूँद-बूँद की भी उपेक्षा की जायेगी तो घट रीता ही रहेगा। अत साधक को सावधानी से साधना के पथ पर निरन्तर बढते रहना चाहिये।

सामायिक व्रत के पाँच अतिचार

सामायिक व्रत की साधना करते समय साधक पूर्ण सावधानी रखता है किन्तु फिर भी कुछ दोष लगने की सम्भावना रहती है। उन दोषो को ही अतिचार कहा गया है। वे पाँच है-[3]

(१) **मनदुष्प्रणिधान**—सामायिक के भावो से मन को बाहर दौडाना। मन मे सासारिक प्रपचो की उधेड-बुन चलते रहना।
(२) **वचनदुष्प्रणिधान**—सामायिक मे वचन का दुरुपयोग करना, कठोर, कर्कश, निष्ठुर अपशब्द का प्रयोग करना।
(३) **कायदुष्प्रणिधान**—सामायिक मे शरीर से सावद्य प्रवृत्ति करना, पुन-पुन शरीर को हिलाना, सिकोडना, प्रसारना आदि।
(४) **स्मृत्यकरण**—सामायिक की स्मृति न रखना, समय आने पर न करना।
(५) **अनवस्थितता**—सामायिक को अस्थिर होकर या शीघ्रता से करना, निश्चित विधि के अनुसार न करना।

२ देशावकाशिक व्रत

दिशापरिमाणव्रत मे जीवन भर के लिए दिशाओ की मर्यादा की जाती है। उन दिशाओ की मर्यादाओ के परिमाण मे कुछ घण्टो के लिये या दिनो के लिये विशेष मर्यादा निश्चित करना देशावकाशिक व्रत[4] है। एक आचार्य[5] का यह भी मत है कि दिग्परिमाणव्रत एक वर्ष के लिए या चार मास के लिए भी किया जाता है। देशावकाशिक व्रत प्रहर मुहूर्त व दिन भर के लिये किया जाता है।

आधुनिक युग मे इसे सवर ग्रहण करना भी कहते हैं। सामायिक मे कम से कम अडतालीस मिनिट का समय अपेक्षित है। यदि उससे कम समय मे यदि कोई साधक पाँच आश्रव-द्वारो का त्याग करता है तो वह प्रस्तुत व्रत ग्रहण कर सकता है। ऑफिस

---

१ सामायिक श्रिताना समस्तसावद्ययोगपरिहारात्।
भवति महाव्रतमेषामुदयेऽपि चारित्रमोहस्य॥—पुरुषार्थसिद्ध्युपाय १५०

२ सामाइयम्मि कए समणो इव सावओ हवइ जम्हा।
एएण कारणेण बहुसो सामाइय कुज्जा॥—विशेषावश्यकभाष्य २६९०

३ उपासकदशा १।६ पृ १२ (अभयदेव वृत्ति)

४ दिग्व्रत परिमाण यत्तस्य सक्षेपण पुन।
दिने रात्रौ च देशावकाशिकव्रतमुच्यते॥—योगशास्त्र ३।८४

५) दिग्व्रत यावज्जीव सवत्सर-चातुर्मासीपरिमाण वा।
देशावकाशिक तु दिवस-प्रहर-मुहूर्तादिपरिमाण॥

आदि मे आधा या पौन घण्टे का अवकाश मिलता है। उसी तरह दैनिक कार्यक्रम में से समय निकालकर श्रावक कुछ समय के लिए पाँच आस्रवों से अवकाश ग्रहण कर आत्म-साधना कर सकता है।

जीवन को अनुशासित बनाने का मन्त्र

देशावकाशिक व्रत मे देश और अवकाश ये दो शब्द है। जिनका अर्थ है—स्थान-विशेष। क्षेत्र मर्यादा को सकुचित करने के साथ ही उपलक्षण से उपभोग-परिभोगादि रूप अन्य मर्यादाओ को भी सकुचित करना भी इस व्रत मे गर्भित है।

साधक जो निश्चितकाल के लिए देश या क्षेत्र की मर्यादा करता है। उसके बाहर वह किसी भी प्रकार की सावद्यमूलक प्रवृत्ति नहीं करता। स्वय मर्यादित क्षेत्र से बाहर नही जाता, बाहर से किसी को आवाज देकर बुलाता भी नही है, न बाहर किसी को भेजता ही है, बाहर से लाई हुई वस्तु का उपभोग भी नही करता, न क्रय-विक्रय ही करता है।

आवश्यक सूत्र की वृत्ति[1] मे यह स्पष्ट है देशावकाशिक व्रत मे दिग्व्रत की मर्यादा सक्षिप्त की जाती है, किन्तु उपलक्षण मे अन्य अणुव्रतो को भी सक्षेप किया जाता है, अर्थात जिस व्रत मे जो मर्यादाएँ रखी गई हैं, उन सभी मर्यादाओ को एक घडी, मुहूर्त, प्रहर, दिन-रात आदि के लिए न्यून करना, देशावकाशिक व्रत है।

विवेकी श्रावक प्रतिपल-प्रतिक्षण यह चिन्तन करता है कि मेरी आत्मा मे इतनी शक्ति पैदा हो जाये कि मै आरम्भ-समारम्भ का पूर्ण रूप मे त्याग कर निर्ग्रन्थ बन जाऊँ। जहाँ तक उतना सामर्थ्य मुझ मे प्रगट न हो, वहाँ तक कम से कम एक दिन-रात के लिये आवश्यकताओ को कम करके आत्म-चिन्तन के द्वारा आत्म-शक्ति को बढाने का प्रयास करूँ। इसी उदात्त भावना के कारण श्रावक व्रत ग्रहण करते समय जो मर्यादाएँ रखी हैं उन्हे वह और भी सक्षिप्त करता है। चौदह नियमो के अनुसार जो मर्यादाएँ है, उन्हे स्थापित करता है तथा उनका सम्यकरूप से पालन करता है।

प्राचीन महर्षि आचार्यों ने चौदह नियमो[2] के चिन्तन का क्रम ऐसा उचित ढग से रखा है जिससे प्रतिदिन भोजन, पान और अन्यान्य प्रवृत्तियो के विषय मे मर्यादाएँ निश्चित की जा सकती है। इन नियमो को ग्रहण करने से जीवन अनुशासित बनता है और त्याग-मार्ग मे दृढता आती है। वे चौदह नियम ये है—

(१) **सचित्त**—प्रतिदिन अन्न, फल, पानी आदि के रूप मे जिन सचित्त वस्तुओ का सेवन करते हैं, उनकी मर्यादा निश्चित करना। प्रस्तुत मर्यादा सख्या, तौल व नाप के रूप मे की जाती है।

(२) **द्रव्य**—खाने-पीने सम्बन्धी वस्तुओ की मर्यादा करना, जैसे- भोजन के समय अमुक सख्या से अधिक वस्तुओ का उपयोग नही करूँगा।

(३) **विगय**—घी, तेल, दूध, दही, गुड और पक्वान्न की मर्यादा करना।

(४) **पन्नी**—उपानह (जूते), मोजे, खडाऊ, चप्पल आदि पैर मे पहनी जाने वाली वस्तुओ की मर्यादा करना।

(५) **वस्त्र**—प्रतिदिन पहने जाने वाले वस्त्रो की मर्यादा करना।

(६) **कुसुम**—फूल, इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों की मर्यादा करना।

(७) **वाहन**—सवारी आदि की मर्यादा करना।

(८) **शयन**—शय्या एव स्थान की मर्यादा करना।

(९) **विलेपन**—केसर, चन्दन, तेल, प्रभृति लेप किये जाने वाले पदार्थों की मर्यादा करना।

(१०) **ब्रह्मचर्य**—मैथुन सेवन की मर्यादा करना।

(११) **दिशा**—दिशाओ में यातायात व अन्य जो भी प्रवृत्तियाँ की जाती है, उनकी मर्यादा करना।

(१२) **स्नान**—स्नान व जल की मर्यादा करना।

(१३) **भक्त**—असन, पान, खादिम, स्वादिम की मर्यादा करना।

इस प्रकार नियमो का चिन्तन करके प्रत्येक नियम के सम्बन्ध मे प्रतिदिन मर्यादा निश्चित की जाती है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से भी सातवे व्रत मे जो मर्यादाएँ स्वीकार की गई हैं, उन मर्यादाओ का और भी सकोच किया जाता है। इसी तरह

---

१ दिग्व्रत सक्षेपकरणमणुव्रतादिसक्षेपकरणस्याऽप्युपलक्षण द्रष्टव्य, तेषामपि सक्षेपस्यावश्य कर्तव्यत्वात्।—आवश्यकवृत्ति

२ सचित्त-दव्व-विगई-पन्नी तांबूल-वत्थ कुसुमेसु।
वाहण-सयण-विलेवण-बम्भ-दिशि-नाहण-भत्तेसु।।

अन्य व्रतों की मर्यादाओ का भी सकोच किया जाता है। आधुनिक युग मे स्थानकवासी जैन परम्परा मे उसे दयाव्रत या छहकाय व्रत कहते हैं।

देशावकाशिक ग्रहण की मर्यादाएँ

प्रस्तुत व्रत के अन्तर्गत कितने ही व्यक्ति दो करण और तीन योग से आश्रव-द्वार सेवन करने का त्याग करते हैं अर्थात् मन-वचन और काया से पाँच आश्रवो का सेवन न स्वय करना और न दूसरो से करवाना। द्वितीय प्रकार यह भी है–एक करण और एक योग से पचाश्रव-सेवन का त्याग किया जाता है। इस प्रकार से त्याग करने वाला श्रावक स्वय के शरीर से आरम्भ-समारम्भ का कार्य नही करता। मन-वचन के सम्बन्ध मे उसका त्याग नही है और न कराने व अनुमोदन का ही त्याग है, किन्तु जो श्रावक दो करण और तीन योग से प्रतिज्ञा ग्रहण करता है वह न स्वय व्यापार, कृषि तथा अन्यान्य आरम्भ-समारम्भ के कार्य कर सकता है और न दूसरो से कहकर करवा ही सकता है। कितने ही श्रावक इस व्रत को एक करण और तीन योग से ग्रहण करते हैं और आश्रव-द्वार के सेवन करने का त्याग करते हैं। ऐसा श्रावक स्वय तो आरम्भ-समारम्भ का कार्य नही कर सकता पर दूसरो से कहकर आरम्भ-समारम्भ के कार्य करवा सकता है। उसने दूसरो से आरम्भ-समारम्भ करवाने का त्याग नही किया है। इसलिये दूसरो से ऐसे कार्य कराने पर उसका व्रत भग नही होता।

आचार्य समन्तभद्र ने[1] देशावकाशिक व्रत का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा है कि इस व्रत मे एक तरह से महाव्रतो के सदृश साधना हो जाती है। उसने गमनागमन की जितनी सीमा रखी है, उसके अतिरिक्त उस श्रावक के स्थूल-सूक्ष्म सभी पापो का त्याग हो जाता है।

दिशा-परिमाण-व्रत मे जिन दिशाओ की मर्यादाएँ रखी गई हैं, उनको प्रस्तुत व्रत मे सक्षेप किया जाता है। आचार्य अभयदेव[2] ने प्रस्तुत व्रत की परिभाषा करते हुए लिखा है–देश अर्थात् दिशा व्रत मे रखा हुआ जो विभाग-अवकाश या क्षेत्र-सीमा या प्रदेश है उसको और भी कम करना, वह देशावकाश है।उसी को व्रत देशावकाशिक कहते है अथवा दिग्परिमाणव्रत मे निश्चित किये हुए दिशा-परिमाण को प्रतिदिन सकुचित करना, देशावकाशिक है।

देशावकाशिक व्रत के पाँच अतिचार

प्रस्तुत व्रत मे दिग्परिमाणव्रत मे रखी हुई क्षेत्र-मर्यादा को घटाने का विधान है। उसी परिभाषा के आलोक मे देशावकाशिक व्रत के पाँच अतिचारो[3] का वर्णन हुआ है—

(१) **आनयन प्रयोग**—इस व्रत को ग्रहण करने के बाद दिशाओ का सकोच कर लेने से आवश्यकता उत्पन्न होने पर मर्यादित भूमि से बाहर रहे हुए सचित्त आदि पदार्थ किसी को प्रेषित कर मँगवाना या समाचार मँगवाना, आनयन प्रयोग अतिचार है, क्योंकि प्रथम व्याख्या के अनुसार श्रावक प्राय दो करण तीन योग से व्रत ग्रहण करता है। ऐसी स्थिति मे यह मर्यादित भूमि से बाहर रही हुई वस्तु को स्वय या किसी अन्य द्वारा समाचार भेजकर नही मँगवा सकता। जरा-सी असावधानी से अतिचार लगने की सम्भावना रहती है।

(२) **प्रेष्य प्रयोग**—मर्यादित क्षेत्र से बाहर किसी वस्तु को भेजना।

(३) **शब्दानुपात**—जिस देश मे स्वय न जाने का नियम ग्रहण किया हो, वहाँ पर शब्द सकेत से अपना कार्य करना।

(४) **रूपानुपात**—मर्यादित क्षेत्र के बाहर कोई वस्तु, सकेत आदि भेजकर उसी के सहारे काम करना।

(५) **पुद्गल प्रक्षेप**—मर्यादित क्षेत्र से बाहर ककर, पत्थर आदि फेककर किसी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना।

(३) पौषधोपवास व्रत

पौषध शब्द सस्कृत के 'उपवषथ' शब्द से निर्मित हुआ है जिसका अर्थ है- धर्माचार्य के समीप या धर्म स्थान मे रहना, धर्मस्थान मे निवास करते हुए उपवास करना, पौषधोपवास है। दूसरे शब्दो मे कहे तो पौषध व्रत का अर्थ है- पोषना, तृप्त करना। हम प्रतिदिन भोजन से शरीर को तृप्त करते है, किन्तु आत्मा भूखा ही रहता है। इस व्रत मे शरीर का पोषण न कर

---

१ सीमान्तानां परत स्थूलेतरपचपाप सत्यागात्।
देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते॥—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ९५

२ देशे दिग्व्रतगृहीतस्य दिक्परिमाणस्य विभागोऽवकाशोऽवस्थानमवतारो विषयो तद्देशावकाशम्। तदेव देशावकाशिकम्। दिग्व्रतगृहीतस्य दिक्परिमाणस्य प्रति-दिन सक्षेपकरण लक्षणे वा।—स्थानाङ्ग ४।३ वृत्ति

३ आणवणपओगे, पेसवणपओग, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहिया पोग्गल पक्खेवे।—आवश्यक सूत्र

आत्मा को तृप्त किया जाता है। आत्म-चिन्तन, मनोमन्थन कर आत्म-भाव में रमण करना पौषध व्रत है। पौषधोपवास व्रत आत्मअभ्युदय की सर्वोत्तम साधना है। गृहस्थ श्रावक को अपने गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्वो को निभाने के कारण अत्यधिक समयाभाव रहता है, किन्तु उसे जो भी अवकाश मिलता है,[1] उस अवकाश को वह आन्तरिक-चिन्तन, आत्मविकास और आत्मशक्ति की अभिवृद्धि हेतु लगाता है। इसीलिए अष्टमी, चतुर्दशी, पक्खी प्रभृति पर्व तिथियो मे अष्ट प्रहर का पूर्ण अवकाश लेकर वह पौषधोपवास करता है और पूरे दिन-रात आत्मा के चिन्तन-मनन मे पुरुषार्थ करता है। शारीरिक पुरुषार्थ तो पशु भी करते हैं। वे इस दृष्टि से मानवो से भी आगे माने जा सकते है किन्तु मानव की विशेषता बौद्धिक और आध्यात्मिक पुरुषार्थ करने मे है।

स्वय के दोषो का चिन्तन

पौषध मे आत्मचिन्तन, आत्मशोधन और आत्मविकास का पुरुषार्थ ही मुख्य रूप से किया जाता है। यद्यपि पुर्वाभ्यस्त सस्कारो को छोडने मे कुछ कठिनाई अवश्य होती है, किन्तु पौषधोपवास का अभ्यासी साधक उन कठिनाइयो से घबराता नही है। वह आत्मालोचन, आत्मनिरीक्षण, आत्मनिन्दा आत्मगर्हा और आत्मशुद्धि का यथेष्ट आत्म लाभ प्राप्त करता है। जब साधक आत्मचिन्तन करता है तब उसे अपने अन्तर मे रही हुई अपनी कमजोरियो का परिज्ञान होता है और जिन शक्तियो की कमी है, उन शक्तियो की पूर्ति के लिए वह प्रयास करता है। पौषध मे परदोष का चिन्तन नही होता किन्तु स्वय के दोषो का ही चिन्तन किया जाता है कि मेरे मे क्या-क्या दोष हैं और उन दोषो से मैं किस प्रकार मुक्त हो सकता हूँ। दूसरो को सुधारना अपने हाथ मे नही है, किन्तु व्यक्ति अपने आप को तो सुधार ही सकता है। यही कारण है कि पौषध मे साधक को सासारिक प्रवृत्तियो से मुक्त होकर निरन्तर धर्म-जागरण, आत्म जागरण करना चाहिये।

आत्मशक्ति का प्रकटीकरण

पौषधव्रती साधक को आत्म-चिंतन करते समय सभव है कि कभी उपसर्ग भी उपस्थित हो तो भी उसमे विचलित नही होना चाहिये। उपासक-दशाग मे कामदेव श्रावक का वर्णन है। उन्हे विचलित करने के लिये एक देव प्रकट हुआ था। उसने अपनी अनेक काली करतूते भी दिखायी किन्तु कामदेव किचित् मात्र भी विचलित नही हुए। दियासलाई मे आग प्रच्छन्न रूप से रही हुई होती है किन्तु वह आग बिना रगड खाये प्रगट नही होती। वैसे ही मानव की आत्मा मे प्रचुर मात्रा मे शक्ति विद्यमान है और वह शक्ति पौषध की रगड मे प्रगट होती है।

पौषध के चार प्रकार

आवश्यकसूत्र के वृत्तिकार[2] ने पौषधोपवास का लक्षण इस प्रकार व्यक्त किया है—धर्म और अध्यात्म को पुष्ट करने वाला विशेष नियम धारण करके उपवास सहित पौषध मे रहना। शास्त्रकार ने पौषध के मुख्य रूप म चार भेद[3] किये है।

(१) **आहार-पौषध**—आहार को त्याग कर पौषध करना। आहार करने से नीहार भी करना पडता है। आहार को लाने, पकाने, खाने और पचाने मे अत्यधिक समय का व्यय होता है। अधिक आहार आत्म-चिन्तन मे बाधक बनता है। आहार त्याग कर धर्म-ध्यान मे अधिक समय लगाया जा सकता है।

(२) **शरीर पौषध**—स्नान-विलेपन, उबटन, पुष्प, तैल, गन्ध, आभूषण प्रभृति से शरीर को सजाने और सवारने का परित्याग करके शरीर को धर्माचरण मे लगाना शरीर पौषध है। यह आशिक और पूर्ण—दो प्रकार का है।

(३) **ब्रह्मचर्य पौषध**—सभी प्रकार के मैथुन और मैथुनागो का त्याग करके ब्रह्म यानी आत्मभाव मे रमण करना, ब्रह्मचर्य-पौषध है।

(४) **अव्यापार पौषध**—आजीविका के लिये जो भी व्यवसाय है—व्यापार नौकरी, खेती आदि सभी सावद्य-प्रवृत्तियो का त्याग करना।

---

१ चतुष्पर्व्यां चतुर्थादि कुव्यापारनिषेधनम।
ब्रह्मचर्य क्रियास्नानादित्याग पौषधव्रतम्।।—योगशास्त्र ३।८५

२ पौषधे उपवसन पौषधोपवास, नियमविशेषाभिधान चेद पौषधोपवास।—आवश्यकवृत्ति

३ पोसहोववासे चउव्विहे पण्णत्ते त जहा—आहारपोसहे, सरीरपोसहे बभचेरपोसहे अव्वावाहारपोसहे।

पौषध और काल मर्यादा

आठ प्रहर तक जो पौषध किया जाता है, वह प्रतिपूर्ण पौषध है। आचार्य अमृतचन्द्र ने पौषधपवास व्रत के सम्बन्ध मे चिन्तन करते हुए लिखा है कि समस्त आरम्भो से मुक्त होकर, देह आदि के प्रति ममत्व का त्याग करके प्रथम आधे दिन से उपवास ग्रहण करे। फिर एकान्त वसति मे जाकर समस्त सावद्य योगो का परिहार करके समस्त इन्द्रियो के व्यापारो से विरत होकर मन-वचन और काया की गुप्ति से गुप्त होकर उस प्रथम तथा दूसरे दिन को धर्म-ध्यान करने मे व्यतीत करे। उसके पश्चात् सान्ध्य-विधि सम्पन्न करके स्वच्छ संस्तारक (बिछौने) पर स्वाध्यायरत होकर निद्रा पर विजय-वैजयन्ती फहराता हुआ रात्रि व्यतीत करे। प्रात उठकर आवश्यक क्रिया-कलाप कर प्रासुक-द्रव्यो से वीतराग की उपासना करे। इस तरह वह तृतीय दिन का आधा भाग व्यतीत करता है। सोलह प्रहर तक समस्त सावद्य व्यापार से मुक्त होकर पूर्ण अहिंसक जीवन व्यतीत करता है। वागृगुप्ति होने से पूर्ण सत्य व्रत का पालन करता है। कुछ भी ग्रहण न करने से पूर्ण अदत्तादान-विरमण व्रत का भी पालन करता है। मैथुन का त्याग होने से पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है। मूर्च्छा-त्याग होने से परिग्रह का लेश मात्र भी सेवन नही करता। इस प्रकार पाँचो आस्रवो का त्याग करने से गृहस्थ श्रावक उपचार से महाव्रती हो जाता है। किन्तु चारित्र-मोह के उदय के कारण वह पूर्ण सयमी श्रमण नही बन पाता है।

किन्ही-किन्ही ग्रन्थो मे पौषध-व्रत की काल-मर्यादा तीन दिन की भी मिलती है। पौषध-व्रतधारी श्रावक सम्पूर्ण समय तत्व-चिन्तन, आत्म-मन्थन मे लगाता है। इस व्रत को स्वीकार करने के पश्चात् श्रावक सभी प्रकार की सावद्य प्रवृत्तियो से मुक्त हो जाता है।

पचम गुणस्थानवर्ती होने से श्रावक शुक्लध्यान तो कर नही सकता, तथा आर्त और रौद्र ध्यान पौषध मे निषिद्ध होने से वह केवल धर्मध्यान ही ध्याता है। धर्मध्यान से ही वह पौषधकाल पूर्ण करता है।

पौषध व्रत के पाँच अतिचार

पौषधव्रत के पाँच अतिचार[१] इस प्रकार हैं-

(१) **अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित-शय्या-सस्तारक**—पौषध-योग्य स्थान आदि का भली प्रकार से निरीक्षण न करना।

(२) **अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित शय्या-सस्तारक**—पौषध योग्य शय्या आदि का सम्यक्-अवलोकन न करना।

(३) **अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित उच्चार-प्रस्रवण भूमि**—मल-मूत्र त्यागने के स्थान का निरीक्षण न करना।

(४) **अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित उच्चार प्रस्रवण भूमि**—मल-मूत्र की भूमि को साफ किये बिना या बिना अच्छी तरह साफ किये उपयोग करना।

(५) **पौषधोपवास-सम्यगननुपालनता**—पौषधोपवास का सम्यक् प्रकार से पालन न करना।

प्रथम चार अतिचारो मे अनिरीक्षण, दुर्निरीक्षण अथवा अप्रमार्जन के कारण हिंसा दोष की सभावना रहती है।

(४) अतिथिसविभाग व्रत

व्रतो के परिपालन से आध्यात्मिक उत्कर्षता के साथ ही श्रावक मे विश्वबन्धुत्व की उदात्त भावनाएँ भी अगडाइयाँ लेने लगती है। वह सर्वस्व समर्पित करने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। अतिथिसंविभाग व्रत मे सेवा, दान, करुणा और परमार्थ की भावनाएँ ही मुख्य रूप से रही हुई है। स्व-कल्याण के साथ ही पर-कल्याण के लिये भी श्रावक प्रयास करता है। वह स्वय के लिये बनाये हुए खाद्य-पदार्थ, वस्त्र, पात्र, औषध आदि अतिथियो को समर्पित करता है। समय आने पर स्वय के पास जो भी साधन सामग्री है, वह दूसरो को समर्पित कर देता है। आगम-साहित्य मे जहाँ-तहाँ जो श्रमणो को दान दिया जाता है,उसके लिये प्रतिलाभ शब्द व्यवहृत हुआ है।

अतिथि का अर्थ

अतिथि का अर्थ है—जिसके आने की कोई भी तिथि, दिन या समय नियत नही है। जो बिना ही सूचना के अनायास आ जाता है, वह अतिथि है। उस अतिथि के लिये विभाग करना अतिथिसविभाग है। इस दृष्टि से मुख्यतया पच महाव्रतधारी, पच समिति और तीन गुप्ति के आराधक श्रमण-श्रमणियो को ही अतिथि कहा गया है। इस प्रकार अतिथि को श्रद्धा-भावना से विभोर होकर अत्यन्त सम्मान के साथ उनके लिये कल्पनीय, एषणीय, ग्राह्य, निर्दोष आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोछन, पीठ,

१ उपासकदशा १।६, पृ १९, अभयदेव वृत्ति

फलक–पट्टा, शय्या, सस्तारक औषध, भैषज, प्रभृति जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थों को देकर प्रतिलाभित करना। प्रस्तुत व्रत का यथा-सविभाग नाम भी उपलब्ध होता है। आवश्यकसूत्र के वृत्तिकार ने लिखा है कि श्रावक ने अपने लिये जो आहार आदि का निर्माण किया है या अन्य साधन प्राप्त किये है, उनमे से एषणा समिति मे युक्त निस्पृह श्रमण-श्रमणियो को कल्पनीय एव ग्राह्य आहार आदि देने के लिये विभाग करना यथासविभाग[1] है।

दाता चार बातों का ध्यान रखे

अतिथिसविभाग व्रत के माध्यम से दान प्रदान करते समय चार बातो का ध्यान रखना आवश्यक है–विधि, द्रव्य, दाता और पात्र।[2] जो दान इन चार विशेषताओ से युक्त है, वही श्रेष्ठ सुपात्रदान है। दान देने के पूर्व दाता को किसी लोभ, भय, स्वार्थ या अन्ध-विश्वास स उत्प्रेरित होकर नही देना चाहिये, अपितु भक्ति भावना मे विभोर होकर सन्मानपूर्वक निर्दोष, ऐसा द्रव्य प्रदान करना चाहिये, जो श्रमणो के तप और सयम मे सहायक हो। वह द्रव्य शुद्ध कहलाता है। दाता भी वही शुद्ध कहलाता है, जिसके मन मे भक्ति की भागीरथी प्रवाहित हो रही हो और वही पात्र शुद्ध है, जिसके जीवन मे यम-नियम और सयम का साम्राज्य हो। श्रमण ही उत्कृष्ट अतिथि है। बारहवे व्रत का श्रेष्ठतम आदर्श श्रमण ही रहा है। ऐसे उत्कृष्ट श्रमणो का योग अत्यन्त कठिनता मे प्राप्त होता है। इसलिये श्रावक के द्वार अन्य सभी अतिथियो के लिय भी खुले रहते है। घर के द्वार ही नही, मन के द्वार भी खुले रहते है। इसलिए मध्यम और जघन्य अतिथियो को भी श्रावक यथाशक्ति दान देता है।

राजप्रश्नीय सूत्र[3] मे उल्लेख है राजा प्रदेशी केशी श्रमण के पावन उपदेश से प्रभावित होकर श्रावको के व्रतो को ग्रहण करता है और अपने राज्य की समस्त सम्पत्ति को चार विभागो मे विभक्त करता है। एक विभाग मे राज्य-सचालन का कार्य दूसरे विभाग मे पारिवारिक जनो के भरण-पोषण का कार्य करता है। तृतीय विभाग खजाने के लिये रखा जाता है और चतुर्थ विभाग श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि आदि के लिये रखा जाता है। इस प्रकार वह अपनी सम्पत्ति का चौथा हिस्सा दान मे लगाता है।

जैसे निर्ग्रन्थ अतिथि को दान देना श्रमणोपासक का कर्त्तव्य है, क्योकि निर्ग्रन्थ आध्यात्मिक साधना हेतु गृह-वास का त्याग कर ग्रामानुग्राम परिभ्रमण करता है। उस निर्ग्रन्थ श्रमण को न्यायोपार्जित निर्दोष वस्तुएँ नि स्वार्थ भाव से, श्रद्धा मे देना चाहिये। वैसे ही अन्य अतिथियो को भी वह समुचित सहयोग देता है दीन दु खियो का यथोचित सत्कार करना है।

अतिथिसविभागव्रत के अतिचार

अन्य व्रतो की भाँति अतिथिसविभागव्रत के भी पाँच अतिचार है।

(१) **सचित्त निक्षेपण**–श्रावक प्रबुद्ध होता है वह हर कार्य मे विवेक रखता है जिससे कि व्रत मे दोष न लगे। पर जब विवेक का दीपक गुल हो जाता है या कृपणता का प्राधान्य हो जाता है तब वह वस्तु जो श्रमण के लिय कल्पनीय है, एषणीय और ग्राह्य है, उस अचित्त वस्तु मे सचित्त वस्तु का समिश्रण कर देता है या उसके सन्निकट रख देता है, जिससे वह अचित्त वस्तु श्रमण के ग्रहण करने योग्य नही रहती।

(२) **सचित्तपिधान**–अचित्त पदार्थ जो श्रमण के ग्रहण करने योग्य है, उस पर सचित्त पदार्थ ढक देना।

(३) **कालातिक्रम**–जो आहार आदि का समय है उस समय कोई श्रमण आदि आहार के लिये न आ जाये, इसलिये उस समय को टालकर भोजन आदि बनाना, जिससे कि यह कहा जा सके, अभी भोजन का समय ही नही हुआ है या हम भोजन आदि मे कभी के निवृत्त हो चुके है।

(४) **परव्यपदेश**–जो वस्तु स्वय की है किन्तु कृपणता के कारण अपनी वस्तु को पराई बताना या पराई वस्तु को अपनी बताना, जिससे कि अतिथि उस वस्तु को ग्रहण न कर सके।

(५) **मात्सर्य**–ईर्ष्या व अहकार की भावना से दान देना। दूसरे श्रावक को दान देते हुए देखकर मन मे प्रतिस्पर्धा की भावना उद्बुद्ध हो जाती है और उसी प्रतिस्पर्धा की भावना से अतिथि को दान देना। दान देने के पहले या दान देने के पश्चात् अथवा दान देते समय अपने मुँह मे अपनी प्रशसा करना–मैने आपको ऐसी श्रेष्ठतम वस्तु दी है, जैसी अन्य कोई नही दे सकता।

---

१ यथासिद्धस्य स्वार्थे निर्वर्तितस्येत्यर्थ अशनादि समिति सगतत्वेन पश्चात्कर्म-दिदोषपरिहारेण विभजन साधवे दानद्वारेण विभागकरण यथासविभाग ।—आवश्यक वृत्ति

२ विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र विशेषात तद्विशेष ।—तत्त्वार्थसूत्र ७।३४

३ तए ण से पएसी राया चत्तारि भाए करेइ। एग भाग बलवाहणस्स दलइ जाव कूडागारसाल करेइ —रायपसेणीय ७४, सुत्तागमे १९

इन अतिचारो मे लोभवृत्ति, अहकार, ईर्ष्या और द्वेष वृत्ति रही हुई है, जिससे श्रावक का व्रत दूषित या भग होता है। श्रावक को अत्यन्त उदार होना चाहिये। कोई भी अतिथि उसके द्वार से निराश और हताश होकर न लौटे, यह उसे ध्यान रखना चाहिये।

उपर्युक्त व्रत-विवेचन मे बहुत ही सक्षेप मे व्रतो के स्वरूप, महत्त्व और उसमे लगने वाले दोषो के सम्बन्ध मे चिन्तन किया गया है, जिससे प्रबुद्ध पाठको को व्रतो का हार्द हृदयगम हो सके। प्राचीन आचार्यों ने बहुत विस्तार से व्रतो के सम्बन्ध मे विश्लेषण किया है। विशेष जिज्ञासुओ को वे ग्रन्थ निहारने चाहिये। बीसवी शताब्दी मे जब इन्सान का जीवन अमर्यादित हो रहा है, तब इस समय श्रावक आचार सहिता की कितनी आवश्यकता है, यह स्वय ही स्पष्ट है।

श्रावक प्रतिमा

विश्व सस्कृति

विश्व के इतिहास का हम यदि गहराईसे अनुशीलन-परिशीलन करे तो यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि विश्व मे तीन सस्कृतियाँ मौलिक एव प्राचीनतम हैं—यूनानी,भारतीय और चीनी। यूनानी सस्कृति मे समाज की प्रधानता है, भारतीय सस्कृति मे व्यक्ति की प्रधानता है और चीनी सस्कृति मे परिवार की प्रधानता है। यदि विश्व सस्कृति का निर्माण करना है तो तीनो सस्कृतियो की मौलिक विचारधाराओ का समिश्रण अपेक्षित है।

भारतीय सस्कृति मे भले ही अनेक सस्कृतियो का समिश्रण है तथापि विश्व-सस्कृति के सन्दर्भ मे यह स्पष्ट है कि वह व्यक्ति-प्रधान है। व्यक्ति ही अपने भाग्य का निर्माता है, वही अपने लिए सुख और दु ख का निर्माण करता है, वही अपना शत्रु और मित्र है। इसीलिये यहाँ व्यक्ति-प्रधान साधना पद्धति विकसित हुई।

श्रावकधर्म और श्रमणधर्म की साधना भी व्यक्तिपरक है, समाजपरक और परिवारपरक नही। व्यक्ति सामाजिक। धार्मिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष पर ही समाज और परिवार का उत्कर्ष अवलम्बित है क्योकि व्यक्तियो का समूह ही तो समाज है।

साधना के विविध रूप

साधक की योग्यता को सलक्ष्य मे रखकर ही साधना-पद्धति के विविध रूप उजागर हुए हैं, विवध सोपान निर्मित हुए हैं। श्रावक की साधना के भी तीन रूप आये है—दर्शन श्रावक, व्रती श्रावक और प्रतिमाधारी श्रावक। यह क्रम उत्तोरोत्तर साधना पद्धति का विकसित रूप है। दर्शन श्रावक बने बिना व्रती श्रावक नही बन सकता और बिना व्रती बने प्रतिमाधारी नही बन सकता। श्रावक सुदीर्घकाल तक व्रतो का सम्यक-प्रकार से पालन करता हुआ त्याग-मार्ग की ओर प्रतिपल-प्रतिक्षण आगे बढता है। फिर एक दिन अपने कुटुम्ब का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सन्तान को समर्पित कर और स्वय पौषधशाला मे जाकर सारा समय धार्मिक क्रियाओ मे व्यतीत करता है। कितने ही आचार्य सम्पूर्ण उत्तरदायित्व समर्पित कर धार्मिक साधना की बात नही करते, उनका मन्तव्य है कि गृहस्थाश्रम मे रहकर ही श्रावक नियमोपनियम का सम्यक् प्रकार से पालन करते है।

प्रतिमाएँ

प्रतिमा का अर्थ है—प्रतिज्ञा-विशेष,[1] व्रत-विशेष तप विशेष, साधना पद्धति। प्रतिमा-स्थिति साधक श्रमण के सदृश व्रत-विशेषो का पालन करता है। उसका जीवन एक तरह से श्रमण-जीवन की प्रतिकृति है।

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो के ग्रन्थो मे उपासक की एकादश प्रतिमाओ का वर्णन आया है। क्रम व नामो मे कुछ अन्तर है। वह इस प्रकार है—

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार[2]

(१) दर्शन (२) व्रत (३) सामायिक (४) पौषध (५) नियम (६) ब्रह्मचर्य (७) सचित्तत्याग (८) आरम्भत्याग (९) प्रेष्य-परित्याग अथवा परिग्रह-परित्याग (१०) उद्दिष्टभक्तत्याग (११) श्रमणभूत।

---

१ (क) प्रतिमा प्रतिपत्ति प्रतिज्ञेतियावत —स्थानांगवृत्ति पत्र ६१ (ख) प्रतिमा—प्रतिज्ञा अभिग्रह —वही, पत्र १८४

२ (क) दशाश्रुतस्कन्ध ६ दशा, (ख) विंशिका-१० वी—लेखक आचार्य हरिभद्र

दिगम्बर परम्परा अनुसार[1]

(१) दर्शन (२) व्रत (३) सामायिक (४) पौषध (५) सचित्तत्याग (६) रात्रिभुक्तित्याग (७) ब्रह्मचर्य (८)आरम्भत्याग (९) परिग्रहत्याग (१०) अनुमतित्याग (११) उद्दिष्टत्याग।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार उद्दिष्टत्याग क्षुल्लक और ऐलक के रूप मे दो प्रकार का है। प्रथम चार प्रतिमाओं के नाम दोनो ही परम्पराओ मे एक समान हैं। सचित्तत्याग का क्रम दिगम्बर परम्परा मे पाँचवाँ है तो श्वेताम्बर परम्परा मे सातवाँ है। दिगम्बर परम्परा मे रात्रिभुक्तित्याग को स्वतन्त्र प्रतिमा गिना है जब कि श्वेताम्बर परम्परा मे पाँचवी प्रतिमा नियम मे उसका समावेश होता है। ब्रह्मचर्य का क्रम श्वेताम्बर परम्परा मे छठा है तो दिगम्बर परम्परा मे सातवाँ है। दिगम्बर परम्परा मे अनुमतित्याग का दसवी प्रतिमा के रूप मे उल्लेख है किन्तु श्वेताम्बर परम्परा के उद्दिष्टत्याग मे इसका समावेश हो जाता है। चूँकि इस प्रतिमा मे श्रावक उद्दिष्टभक्त ग्रहण न करने के साथ अन्य आरम्भ का भी समर्थन नही करता है। श्वेताम्बर परम्परा मे जो श्रमणभूत प्रतिमा है उसे ही दिगम्बर परम्परा मे उद्दिष्टत्याग प्रतिमा कहा है क्योकि इसमे श्रावक का आचार श्रमण के सदृश होता है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर ग्रन्थो के अनुसार प्रतिमाओ का वर्णन इस प्रकार है—

(१) दर्शन प्रतिमा—इस प्रतिमा को धारण करने वाला श्रावक देवगुरु की सेवा करता है। श्रावकधर्म और श्रमणधर्म पर उसकी अत्यन्त निष्ठा होती है। यह प्रतिमा सम्यग्दर्शन की सुदृढ नींव पर अवस्थित है जिसके आधार पर ही व्रतो का भव्य भवन खडा होता है। श्रावक निरतिचार इस प्रतिमा का आराधन करता है। प्रस्तुत प्रतिमा की आराधना अविरत सम्यग्दृष्टि भी कर सकता है। जिसने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है, वह यह प्रतिमा धारण नही कर सकता और न औपशमिक सम्यक्त्वधारी ही यह प्रतिमा धारण करता है। क्षायिक सम्यक्त्वधारी का सम्यक्त्व निर्मल होता है, उसको अतिचार नही लगता और औपशमिक सम्यक्त्व की स्थिति केवल अन्तर्मुहूर्त की ही होती है, अत वह मासिक प्रतिमा को किस प्रकार धारण कर सकता है। इसलिए क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी ही प्रस्तुत प्रतिमा धारण करता है।[2]

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि सामान्य रूप से जो सम्यग्दर्शनी है और प्रतिमाधारी जो सम्यग्दर्शनी है। उनमे अन्तर है। सामान्य सम्यक्त्वी राज्याभियोग आदि आगारो को रखता है, प्रस्तुत प्रतिमाधारी नही। उसमे मलिनता कम होती है। वह केवल निर्ग्रन्थ प्रवचन को ही यथार्थ मानता है। इस प्रतिमा के धारक को दार्शनिक श्रावक भी कहते है। इसका धारक सम्यक्त्व की साक्षात् मूर्ति है।

(२) व्रत प्रतिमा—अतिचाररहित पच अणुव्रतो का सम्यक् प्रकार से पालन करना, उनमे किसी भी प्रकार का दोष नही लगने देना। वह तीनो शल्यो से मुक्त होता है। वह शीलव्रत, गुणव्रत, प्रत्याख्यान आदि का भी अभ्यास करता है। द्वादश व्रतो मे आठवे व्रत तक तो वह नियमित रूप से पालन करता है। पर सामायिक, देशावकाशिक व्रतो की आराधना परिस्थिति के कारण नियमित रूप से सम्यक् प्रकार से नही भी कर पाता। पर उसकी श्रद्धाप्ररूपणा सम्यक् होती है। सामान्य श्रावक अणुव्रत और गुणव्रत को धारण करता भी है और नही भी करता है जबकि व्रत प्रतिमा मे अणुव्रत और गुणव्रत धारण करना आवश्यक ही नही, अनिवार्य है। व्रत मे कई पत्नियाँ रखकर भी व्रत ले सकता है पर प्रतिमाधारी उपपत्नी नही रख सकता। प्रतिमाधारी मे भावशुद्धि अधिक होती है।

(३) सामायिक प्रतिमा—अपने अपूर्व बल, वीर्य उल्लास से पूर्व प्रतिमाओ के सम्यक् प्रकार मे पालन करता है और अनेक बार सामायिक की साधना करता है व देशावकाशिक व्रत का भी पालन करता है। अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व दिनो मे प्रतिपूर्ण पौषध भी करता है।

दिगम्बर ग्रन्थो के अनुसार सामायिक प्रतिमा मे तीनो सन्ध्याओ मे सामायिक करना आवश्यक माना गया है। सामायिक मे उत्कृष्ट काल छ घडी का है। एक बार मे दो घडी की सामायिक होने से तीन बार जो सामायिक की जाती है, उसमे छ घडी सहज रूप से हो जाती है।

---

१ समन्तभद्रकृत श्रावकाचार, वसुनन्दी श्रावकाचार आदि

(क) गृहस्थ धर्म-उपाध्याय फूलचन्दजी महाराज पृ २०   (ख) आयारदशा, ६।१८, पृ ५५

२ पचाणुव्वयधारित्तमणइयार वएसु पडिबधो।
वयणा तदणइयारा वयपडिमा सुप्पसिद्ध त्ति।।—विंशतिका १०।५

आचार्य समन्तभद्र[1] का यह अभिमत है कि इसमे जो सामायिक होती है, वह 'यथाजात' होती है। यथाजात से इनका तात्पर्य यह है कि नग्न होकर सामायिक की जाये। तीन बार दिन मे दो-दो घडी तक नग्न रहने से आगे चलकर वह दिगम्बर श्रमण बन सकता है। पर श्वेताम्बर परम्परा मे इस प्रकार का विधान नही है।

(४) **पौषध प्रतिमा**—व्रत की दृष्टि से पौषण ग्यारहवाँ व्रत है और प्रतिमा की दृष्टि से वह चतुर्थ प्रतिमा है। व्रत मे देशत पौषध भी कर सकता है। पर प्रस्तुत प्रतिमा मे प्रतिपूर्ण पौषध करने का विधान है। दशा-श्रुतस्कन्ध[2] में स्पष्ट वर्णन है कि श्रावक अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी प्रभृति पर्व दिनो मे प्रतिपूर्ण पौषधोपवास करे। इस प्रतिमा का कालमान चार माह बताया गया है। सामान्य पौषधधारी दिन मे नीद आदि निकाल सकता है। उसके प्रतिक्रमण, प्रतिलेखना आदि मे दोष भी मही लग सकता है, पर प्रतिमाधारी में दोष की सम्भावना नही होती।

दिगम्बर परम्परा[3] के ग्रन्थो के अनुसार पौषध व्रत मे सोलह, बारह या आठ प्रहर तक उपवास करने का कोई प्रतिबन्ध नही है। उस समय आचाम्ल, निर्विकृति आदि से भी पौषध की साधना की जा सकती है। उसमे कुछ शिथिलता भी होती है। पर प्रतिमा मे किसी भी प्रकार की कोई शिथिलता नही होती। प्रतिमा निरतिचार होती है। यदि शरीर स्वस्थ है तो प्रतिमाधारी श्रावक को सोलह प्रहर का पौषधोपवास करना चाहिये। यदि शरीर अस्वस्थ और अशक्त है तो बारह और आठ प्रहर का भी पौषध किया जा सकता है। पौषधोपवास के दिन गृहस्थ श्रावक श्रमण के समान आरम्भ आदि का परित्याग कर धर्मध्यान करता है।

(५) **नियम**—प्रस्तुत प्रतिमा मे श्रावक विविध नियमो को ग्रहण करता है। उनमे पाँच प्रमुख हैं—स्नान नही करता, रात्रि मे चारो प्रकार के आहार का परित्याग करता, धोती को लाँग नही लगाता, दिन मे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है, रात्रि मे मैथुन की मर्यादा करता है, एक रात्रि की प्रतिमा का भी भलाभाँति पालन करता है। इस तरह विविध नियमो को वह धारण करता है। एक माह मे एक रात्रि कायोत्सर्ग की साधना करता हुआ व्यतीत करता है। इसमे श्रद्धा, धृति, सवेग, सहनन के अनुसार धर्मध्यान की आराधना की जाती है।

भोज्य पदार्थ के सचित्त और अचित्त ये दो प्रकार है। श्रमण धर्म को ग्रहण करने की निर्मल भावना वाला श्रावक जीव-रक्षा के लिये और राग-भाव के परिहारार्थ सचित्त फल, शाक आदि पदार्थों का यावज्जीवन के लिये त्याग करता है। प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक सचित्त जल का उपयोग भी न पीने के लिये करता है,न स्नानके लिए करता है और न वस्त्र प्रक्षालन के लिए करता है।

दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे इस प्रतिमा का नाम 'सचित्त त्याग' दिया है। लाटीसहिता[4] मे लिखा है कि रोगादि होने पर उसके शमनार्थ रात्रि मे गध-माल्यविलेपन और तैलाभ्यगन भी नही करना चाहिए। प प्रवर दौलतरामजी[5] ने रात्रि मे गमनागमन का निषेध किया है तथा अन्य आरम्भ का भी निषेध किया है।

(६) **ब्रह्मचर्य**—पाँचवी प्रतिमा मे श्रावक दिवा-मैथुन का त्याग करता है पर रात्रि मे इसका नियम नही होता। किन्तु प्रस्तुत प्रतिमा मे चाहे दिन हो, चाहे रात्रि हो वह मन-वचन और काया से पूर्णतया अब्रह्म का त्याग करता है। वह पूर्ण जितेन्द्रिय बन जाता है। वह इन्द्रियो के विषय-विकारो मे आसक्त नही होता।[6]

दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे इस छठी प्रतिमा का नाम 'रात्रिभुक्ति त्याग' दिया है और उस पर चिन्तन करते हुए लिखा है कि प्रस्तुत प्रतिमा का सम्बन्ध उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रत से हैं। उपभोग के योग्य पदार्थों मे सबसे प्रधान-वस्तु है—स्त्री। अत दिन मे मन-वचन और काया से स्त्री-सेवन का परित्याग किया जाता है। प्रतिमा धारण करने के पूर्व भी श्रावक दिन मे मैथुन का सेवन नही करता किन्तु हास-परिहास के रूप मे वह मनोविनोद कर लेता था। किन्तु प्रतिमा धारण करने के पश्चात् उसका भी वह परित्याग कर देता है। दिवा-मैथुन और रात्रिभुक्ति ये दोनो कार्य इस प्रतिमा मे होते है।

---

१ चतुरावर्तत्रितयश्चतुष्प्रणाम स्थितो यथाजात।
सामायिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी।—रत्नकरण्ड श्रावकाचार १३९

२ दशाश्रुतस्कन्ध ६।४

३ (क) श्रावकाचार सग्रह, भाग-४, प्रस्तावना, पृ ८३ (ख) धर्मरत्नाकर, पृ ३३६, श्लोक ३२-३३

४ लाटी सहिता, श्लोक २०, प राजमल्लजी

५ श्रावकाचार, भाग ५, पृ ३७२-३७३

६ (क) दशाश्रुतस्कन्ध ६।६ (ख) विंशतिका १०।९-११

(७) **सचित्तत्याग प्रतिमा**—यावज्जीवन के लिए सभी प्रकार के सचित्त आहार का परित्याग कर अचित्त आहार को ग्रहण करता है। आहार प्रत्येक जीवात्मा के लिए आवश्यक है। पर जो आहार भक्ष्य व अचित्त हो, वही प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक ग्रहण कर सकता है। जो आहार सचित्त है, उसे वह ग्रहण नही कर सकता। जैसे गुठलीयुक्त आम, गुठली-युक्त पिण्डखजूर, बीजयुक्त मुनक्का आदि।

प्रश्न यह है कि सातवे प्रश्न मे सचित्त आहार एक अतिचार माना गया है तो फिर प्रस्तुत प्रतिमा मे नई बात क्या है?

उत्तर है—मर्यादा के उपरान्त सचित्त आहार करना अतिचार है जब कि प्रस्तुत प्रतिमा मे सचित्त का सर्वथा त्याग होता है। व्रतधारी की अपेक्षा यह अधिक जागरूक होता है, तथा इसका त्याग भी अधिक होता है।

(८) **आरम्भत्याग प्रतिमा**—सचित्त त्याग के पश्चात् सभी प्रकार के सावद्य आरम्भ का त्याग किया जाता है। आरम्भ शब्द जैन परम्परा का एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है—हिंसात्मक क्रिया। श्रमणोपासक सकल्पपूर्वक त्रस जीवो की हिंसा नही करता, किन्तु कृषि, वाणिज्य अन्य व्यापार और घर-गृहस्थ के कार्यों को करते हुए षटकाय के जीवो की हिंसा हो जाती है। प्रस्तुत प्रतिमा मे उन हिंसाओ से बचा जाता है। मन से किसी प्राणी के हनन का विचार करना मानसिक आरम्भ है यानी हिंसा है। इस प्रकार की वाणी का उपयोग करना, जिससे दूसरो का हृदय तिलमिला उठे, वह वाचिक आरम्भ है। शस्त्र आदि के द्वारा या शारीरिक क्रियाओ के द्वारा किसी प्राणी का हनन करना कायिक आरम्भ है। इस तरह मानसिक, वाचिक और कायिक तीनो आरम्भ का वह त्याग करता है।[1]

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रावक स्वय आरम्भ का त्याग करता है परन्तु वह सेवक आदि से आरम्भ कराने का त्यागी नही होता। उसका आरम्भ का त्याग एक करण तीन योग से होता है। पुत्र-भृत्य आदि जो व्यापार करते चले आ रहे हैं उन्हे वह रोकता नही। आचार्य सकलकीर्ति[2] ने आठवी प्रतिमाधारी को रथादि के सवारी के त्याग का भी विधान किया है।

(९) **प्रेष्य-परित्याग**—प्रस्तुत प्रतिमाधारी सेवक व्यक्तियो से भी किंचित मात्र भी आरम्भ नही कराता है। स्वय ने तो आरम्भ का परित्याग आठवी प्रतिमा मे ही ग्रहण किया हुआ होता है। आठवी प्रतिमा मे एक करण तीन योग से आरम्भ का त्याग होता है और इसी नौवी प्रतिमा मे दो करण तीन योग से आरम्भ का त्याग होता है।

प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक जलयान, नभोयान, स्थलयान आदि किसी भी वाहन का उपयोग न स्वय करता है और न दूसरो को उपयोग करने के लिए कहता ही है। जितने भी गृहस्थ सम्बन्धी कार्य है, जैसे—गृहनिर्माण, व्यापार पचन-पाचन विवाह आदि जिनमे आरम्भ रहा हुआ होता है उन्हे वह मन-वचन-काया से न स्वय करता है, और न दूसरो से करवाता है, किन्तु उसमे अनुमोदन का त्याग नही होता।

इस प्रतिमा मे श्रावक सवर मे अधिक रत रहता है। वह अपने अनुचरो पर अनुशासन करना भी बद कर देता है। उससे परिग्रह की वृत्ति भी न्यून हो जाती है। परिग्रह की वृत्ति न्यून होने से इस प्रतिमा का अपर नाम परिग्रह-परित्याग भी है।

दिगम्बर परम्परा का मन्तव्य है कि इस प्रतिमा मे श्रावक सम्पूर्ण-परिग्रह का परित्याग कर देता है। केवल वस्त्र आदि जो बहुत ही आवश्यक है, उन्हे रखता है। पण्डित दौलतरामजी[3] ने अपने क्रिया-कोष ग्रन्थ मे स्पष्ट लिखा है कि प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक काष्ट और मिट्टी से निर्मित पात्र रख सकता है, धातु पात्र नही रख सकता। गुणभूषण[4] ने प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक के लिए वस्त्र के अतिरिक्त सभी प्रकार के परिग्रह-परित्याग का वर्णन किया है।

(१०) **उद्दिष्टभक्तत्याग**—नौवी प्रतिमा मे श्रमणोपासक न स्वय आरम्भ करता है और न ही दूसरो से आरम्भ करवाता है। पर उसके निमित्त जो आहार आदि तैयार किया हुआ है, उसे ग्रहण कर लेता है। किन्तु प्रस्तुत प्रतिमा धारण के बाद अपने निमित्त से बना हुआ आहार आदि भी वह ग्रहण नही करता। वह निरन्तर स्वाध्याय और ध्यान मे तल्लीन रहता है। वह अपने शिर के बालो का शस्त्र से मुण्डन करवाता है किन्तु चोटी अवश्य रखता है, क्योकि वह गृहस्थाश्रम का चिह्न है।[5]

१ एव चिय आरभ वज्जइ सावज्जमट्ठमाम जा।
नप्पडिया पेसेहि वि अप्प कारेइ उवउत्ता।।—विंशतिका १०।१४

२ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार श्लो १०७

३ क्रिया-कोष श्रावकाचार, भाग ५ पृ ३७५

४ गुणभूषण श्रावकाचार, श्रावकाचार भाग २ पृ ४५४ श्लो ७३

५ सेण खुरमुडए वा सिहा-धारए वा तस्स ण आभट्ठस्स समाभट्ठस्स वा कप्पति दुवे भासाओ भासित्तए ।—दशाश्रुतस्कन्ध ६।१०

सम्भव है वैदिक परम्परा मे वानप्रस्थाश्रमी केश आदि रखते थे। पर दशवी प्रतिमाधारी श्रावक केश नहीं रख सकता था। शिखा रखने की परम्परा वैदिक काल मे प्रचलित थी। कहा जाता है कि भगवान ऋषभदेव ने जब दीक्षा ग्रहण की, तब चार मुष्टि लोच किया। पाँचवीं मुष्टि लोच करने वाले ही थे कि इन्द्र की अभ्यर्थना से वह लोच नहीं किया और उसी समय से शिखा रखने की परम्परा प्रचलित हो गई।[1]

प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक की यह विशेषता है कि वह जिसके सम्बन्ध मे जानता है तो पूछने पर कहे कि 'मैं जानता हूँ' और यदि नहीं जानता है तो स्पष्ट रूप से कह दे कि 'मैं उसे नही जानता।' "सत्य शिव सुन्दरम" उसे इष्ट है। वह ऐसी भाषा का प्रयोग नही करता है जिससे किसी को हानि हो। वह भाषा का पूर्ण विवेक रखता है।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार इस प्रतिमा का नाम अनुमतित्यागप्रतिमा है। जिसका अर्थ है—जो भी आरम्भ आदि के कार्य हैं उनके लिए वह अनुमति भी नही देता। वह घर मे रहकर भी घर के इष्ट-अनिष्ट कार्यों के प्रति न राग करता है, न द्वेष ही करता है। कमल की तरह निर्लिप्त रहता है। भोजन का समय होने पर भोजन के लिए आमन्त्रित करने पर वह भोजन कर लेता है। भले ही वह भोजन उसके लिए निर्मित हो। किन्तु वह भोजन की अनुमोदना नही करता। वह परिमित वस्त्र धारण करता है। अपने निमित्त बने हुए भोजन व वस्त्र के अतिरिक्त वह किसी भी भोगोपभोग सामग्री का उपयोग नही करता। जब उसे यह प्रतीत होता है कि घर मे रहने मे आकुलता रहती है जिससे साधना मे बाधा उपस्थित होती है तो वह घर का परित्याग कर निर्ग्रन्थ श्रमणो की सेवा मे पहुँच जाता है। भिक्षावृत्ति ग्रहण कर जीवन-निर्वाह करता है। उसके पश्चात् वह मुनि बन जाता है। पुरुषार्थ अनुशासन ग्रन्थ मे लिखा है कि दशवी प्रतिमा का धारक श्रावक सभी पाप-कृत्यो या गृहारम्भ की अनुमति नही देता किन्तु वह पुण्य-कार्यों की अनुमति देता है।[2]

(११) **श्रमणभूत प्रतिमा**—प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक श्रमण के सदृश जीवन-यापन करता है। वह श्रमण के समान निर्दोष भिक्षा, प्रतिलेखन, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग, समाधि आदि मे लीन रहता है। सभी प्रतिमाओ का निरतिचार पालन करता है। उसकी वेश-भूषा निर्ग्रन्थ की भाँति होती है। वह मुख पर मुखवस्त्रिका, चोलपट्टक, चद्दर तथा रजोहरण, आदि जो श्रमण की वेश-भूषा है, उसी तरह धारण करता है। यदि शरीर मे शक्ति हो तो दाढी-मूँछ आदि का लुञ्चन करता है और शक्ति के अभाव मे उस्तरे आदि से भी मुण्डन करवा सकता है। पच समिति का परिपालन करता है। वह श्रमण की भाँति हर घर से भिक्षा नही लेता किन्तु स्वजाति और स्वघरो से भिक्षा ग्रहण करता है पर अज्ञात कुल से नही। जब वह किसी गृहस्थ के घर पर भिक्षा के लिए जाता है तब वह कहता है—प्रतिमा-प्रतिपन्न श्रमणोपासक को भिक्षा दो। वह श्रमण की तरह मौन होकर भिक्षा के लिए नही जाता। बोलने की जो बात कही गई है वह इसलिए है कि श्रमणोपासक और श्रमण का वेश एक सदृश होने से कही श्रमणोपासक को श्रमण न समझ लिया जाये। इसलिए वह स्पष्टीकरण करता है। दूसरी बात यह है कि वह श्रमणोपासक है। अभी तक वह श्रमण नही बना है। श्रमणोपासक होने के नाते किसी के घर मे प्रविष्ट होना उचित नही। प्रतिमाधारी होने के कारण यदि आहार आदि के लिए प्रविष्ठ होता है तो वह स्पष्ट शब्दो मे कह देता है कि मैं श्रमणोपासक हूँ, आहार आदि के लिए आया हूँ।

दशाश्रुतस्कन्ध[3] के अनुसार ग्यारहवी प्रतिमा सम्पन्न कर श्रमणोपासक श्रमण बन जाता है। आचार्य हरिभद्र[4] का मन्तव्य है कि कितनी ही बार संक्लेश बढ जाने से वह श्रमण न बनकर गृहस्थ भी हो जाता है।

दिगम्बर-परम्परा मे ग्यारहवी प्रतिमा का नाम उद्दिष्टत्याग है। वहाँ ग्यारहवी प्रतिमा के क्षुल्लक और ऐलक ये दो भेद किये हैं।[5] क्षुल्लक एक ही वस्त्र रखता है। वह मुनियो की तरह खडे-खडे भोजन नही करता। उसके लिये आतापन योग, वृक्षमूल योग प्रभृति योगो की साधना का भी निषेध है। वह क्षौर-कर्म से मुण्डन भी करवा सकता है और लोच भी। पाणि-पात्र मे भी भोजन कर सकते है और कासी के पात्र आदि मे भी। कोपीन लगाता है। इसलिए वह क्षुल्लक कहलाता है।

---

१ कल्पसूत्र, ऋषभाधिकार

२ पुरुषार्थानुशासन—भावसग्रह, श्लोक ६०-७०, प गोविन्द

३ दशाश्रुतस्कन्ध ६।११

४ आसेविऊण एय कोई पव्वयइ तह गिही होइ।
तब्भावभेयओ च्चिय विसुद्धिसकसभेएण॥—विंशतिका १०-१८

५ द्रष्टव्य-वसुनन्दी श्रावकाचार, सागारधर्मामृत-प आशाधर, धर्मसग्रह मेधावी, गुणभूषण श्रावकाचार आदि।

दूसरा भेद "ऐलक" है। ऐलक शब्द ग्यारहवी प्रतिमाधारक नाम मात्र का वस्त्र धारण करने वाले उत्कृष्ट श्रावक के लिए व्यवहृत होने लगा। वह केवल कोपीन के अतिरिक्त सभी प्रकार के वस्त्रो का परित्यागी होता है। साथ ही मुनियो की तरह खड़े-खड़े भोजन करता है,केश लुञ्चन करता है और मयूर पिच्छी रखता है। ऐलक के अर्थ मे ही भिक्षुक, ईषत् मुनि, देशयति, कहा जाने लगा।

आचार्य कुन्दकुन्द, स्वामी समन्तभद्र, स्वामी कार्तिकेय, सोमदेव, अमितगति प्रभृति अनेक आचार्यो ने ग्यारहवी प्रतिमा के दो भेद नही किये हैं। आचार्य वसुनन्दी, प आशाधर जी,[1] मेधावी, गुणभूषण आदि अनेक विज्ञो ने दो भेद किये हैं। ग्यारहवी प्रतिमाधारी श्रावक के लिए आचार्य सकलकीर्ति[2] ने केवल मुहूर्त प्रमाण निद्रा लेने का उल्लेख किया है। लाटी संहिता मे क्षुल्लक के लिये कास्य या लोह पात्र, मे भिक्षा लेने का विधान है। तो सकलकीर्ति[3] ने सर्वधातु का कमण्डलु और छोटा पात्र यानी थाली रखने का विधान किया है।

प्रतिमाओ की काल मर्यादा

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार प्रथम प्रतिमा का उत्कृष्ट काल एक मास है, द्वितीय का दो मास है, तृतीय का तीन मास है, चतुर्थ का चार मास है, पचम का पाँच मास है षष्ठम का छ मास है, सप्तम का सात मास है, अष्टम का आठ मास है, नवम का नौ मास है दशम का दश मास है और एकादश का ग्यारह मास है।[4] इस तरह ६६ मास पश्चात् उस प्रतिमाधारी श्रावक को श्रमण बन जाना चाहिए। इसका स्पष्ट उल्लेख दशाश्रुतस्कन्ध मे है। उपासकदशाग सूत्र के अनुसार समाधिकरण का भी उल्लेख है।

दिगम्बर-परम्परा के ग्रन्थो मे नियत समय का कोई उल्लेख नही है। श्रावक अपने सामर्थ्य को निहार कर और प्रतिमा को स्वीकार करने के पश्चात् यह अनुभव करे कि मै आगे की प्रतिमा को स्वीकार करने मे सक्षम हूँ तो वह अगली प्रतिमा स्वीकार करता है। जीवन की सान्ध्यवेला मे या तो वह श्रमण बन जाता है अथवा समाधिकरण स्वीकार कर आयु पूर्ण करता है।

दिगम्बर परम्परा के आचार्यो ने ग्यारह प्रतिमाधारी श्रावको को तीन विभागो मे विभक्त किया है-गृहस्थ, वर्णी-ब्रह्मचारी तथा भिक्षु। पहली से छठी प्रतिमा तक गृहस्थ, सातवी और आठवी और नवमी प्रतिमाधारी वर्णी और अन्तिम दशवी और ग्यारहवीप्रतिमाधारीको भिक्षु की सज्ञा प्रदान की है। कितने ही आचार्यो ने इन्हे जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट श्रावक की सज्ञा से भी अभिहित किया है। ग्यारहवी प्रतिमाधारी परमोत्कृष्ट श्रावक कहलाता है।आचार्य वसुनन्दी[5] ने अपने उपासकाध्ययन ग्रन्थ मे लिखा है कि वह भिक्षा-पात्र ग्रहण कर अनेक घरो से भिक्षा माँग कर या एक स्थान पर बैठकर भोजन करे।

श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों मे

प्रतिमाओ के सम्बन्ध मे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो ही परम्पराओ के ग्रन्थो मे वर्णन है। अग सूत्रो मे समवायाग मे ११ प्रतिमाओ का वर्णन है। उपासकदशाग सूत्र मे व्रतो का विश्लेषण हुआ है, किन्तु प्रतिमाओ के सम्बन्ध मे विस्तार से वर्णन नही है। दशाश्रुतस्कन्ध मे ग्यारह प्रतिमाओ का विस्तार से वर्णन मिलता है। आचार्य हरिभद्र ने विंशिका मे प्रतिमाओ के सम्बन्ध मे चिन्तन किया है। आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थ सूत्र मे व्रत और उनके अतिचारो का विश्लेषण किया है किन्तु प्रतिमाओ के वर्णन के सम्बन्ध म वे मौन रहे है। तत्त्वार्थसूत्र के सभी टीकाकार चाहे वे श्वेताम्बर परम्परा के रहे हो, या दिगम्बर परम्परा के रहे हो, उन्होने प्रतिमाओ का कोई उल्लेख नही किया है। इसी तरह दिगम्बर परम्परा के पूज्यपाद[6], अकलक,[7] विद्यानन्दी,[8] शिवकोटि,[9] रविषेण,[10] जटासिंह नन्दी[11] जिनसेन,[12] पद्मनन्दी,[13] देवसेन,[14] अमृतचन्द्र[15] आदि ने श्रावक के व्रतो के सम्बन्ध मे

१ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, श्लोक ११० पृ ४३४
२ लाटी संहिता श्लो ६४
३ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार श्लो ३४-४१ ४२
४ दशाश्रुतस्कन्ध ६।१ ११
५ वसुनन्दी श्रावकाचार
६ तत्त्वार्थसूत्र—सर्वार्थसिद्धि
७ तत्त्वार्थसूत्र—राजवार्तिक
८ तत्त्वार्थसूत्र—श्लोकवार्तिक
९ रत्नमाला
१० पद्मचरित
११ वरागचरित
१२ हरिवंशपुराण
१३ पचविंशतिका
१४ भावसग्रह (प्राकृत)
१५ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय

चिन्तन किया, किन्तु प्रतिमाओ के सम्बन्ध मे नही। दूसरी परम्परा यह भी रही है कि उन्होने व्रतो के साथ प्रतिमाओ का उल्लेख ही नही किया, किन्तु विस्तार से निरूपण भी किया। उनमे आचार्य समन्तभद्र,[1] सोमदेव,[2] अमितगति,[3] वसुनन्दी,[4] प आशाधर,[5] मेधावी,[6] सकलकीर्ति[7] प्रभृति के नाम विशेष रूप से लिये जा सकते हैं।

उपासकदशाग सूत्र मे वर्णन है कि आनन्द आदि श्रावको ने पहले व्रतो की आराधना की। उसके पश्चात् प्रतिमाओ की। भगवती सूत्र मे कार्तिक सेठ का एक प्रसग है। वे एक हजार आठ व्यापारी निगम के प्रथमासनिक (नगराध्यक्ष) थे। उन्होंने पाँचवी प्रतिमा का एक सौ बार पालन किया था। एक बाल तपस्वी उनसे नमस्कार कराना चाहता था। राजा के कहने से, कार्तिक श्रेष्ठी की पीठ पर गर्मागर्म खीर रखकर खाई। जिसके फलस्वरूप उनकी पीठ पर छाले हो गए। किन्तु उपसर्ग को शान्त भाव से सहन करने के कारण वे प्रथम देवलोक के देव बने।

प्रतिमा एक चिन्तन

प्रतिमाएँ वही श्रावक ग्रहण करता है जिसे नवतत्त्व की सम्यक् जानकारी होती है। जब तक जानकारी न हो तब तक प्रतिमाओ का सम्यक् पालन नही हो सकता। कितने ही विचारको का यह अभिमत है कि प्रथम प्रतिमा मे एक दिन उपवास और दूसरे दिन पारणा, द्वितीय प्रतिमा मे बेले-बेले पारणा इसी तरह क्रमश तेले-तेले, चौले-चौले से लेकर ग्यारह तक तप कर पारणा किया जाये। पर उन विचारको का कथन किसी आगम या परवर्ती ग्रन्थो से प्रमाणित नही है। आनन्द आदि श्रावको ने प्रतिमाओ के आराधन के समय तप आदि अवश्य किया। पर इतना ही तप करना चाहिए, इसका स्पष्ट निर्देश वहाँ नही है। कितने ही विचारको का यह भी मानना है कि वर्तमान मे कोई भी श्रावक प्रतिमाओ की आराधना नही कर सकता। जैसे भिक्षु-प्रतिमा का विच्छेद हो गया है,वैसे ही श्रावक प्रतिमा का भी विच्छेद हो गया। उन विचारको की बात चिन्तनीय अवश्य है। श्रमण प्रतिमा मे जो कठोर और उग्र साधना है, वैसी कठोर और उग्र साधना श्रावक प्रतिमाओ मे नही है और न श्रावक प्रतिमाओ के विच्छेद का उल्लेख ही है। श्रावक-प्रतिमा वज्रऋषभ नाराच सहनन वाला ही धारण करता हो, ऐसा भी कही उल्लेख नही है। हमारे अपने अभिमतानुसार वर्तमान मे भी श्रावक-प्रतिमा धारणा की जा सकती है। आवश्यकता है कि निरतिचार पालन किया जाये। विशुद्धतापूर्वक बिना आगार रखे, अतिचाररहित, जो प्रतिज्ञा पालन की जाती है, उसके अर्थ मे भी प्रतिमा शब्द का प्रयोग हुआ है जैसे भगवान् महावीर ने भद्र प्रतिमा, सुभद्र प्रतिमा, महाभद्र प्रतिमा आदि धारण की थी।

---

१ रत्नकरण्ड श्रावकाचार
२ उपासकाध्ययन
३ अमितगति श्रावकाचार
४ वसुनन्दी श्रावकाचार
५ सागार धर्मामृत
६ धर्मसग्रह श्रावकाचार
७ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार

परम पुरुष की उपासना

सस्कृत व्याकरण के अनुसार 'देवता' शब्द स्त्रीलिंग है। इसलिए सतों और तपस्वियो को 'देवता' की कामना-उपासना नही करना चाहिए, किन्तु जो देवताओ का भी आराध्य है, उस 'परम पुरुष' की उपासना मे ही लगना चाहिए।

—आचार्य श्री आनन्द ऋषि म

श्रमणाचार

स्वर्गीय मालव केसरी सौभाग्यमल जी महाराज

जीवमात्र का एक ही लक्ष्य है दु:ख से मुक्त होना सुख एवं शांति को प्राप्त करना। इसीलिए प्रत्येक विचारक, चिन्तक ने जीव और जगत का चिन्तन करते हुए दु:ख से निवृत्ति और सुख की प्राप्ति के उपायों पर विचार किया है। यह बात तो सभी विवेकशील व्यक्तियों ने सिद्धांत स्वीकार की है कि कर्म से आबद्ध जीव इस जगत में परिभ्रमण करता है और विभिन्न योनियों में अनेक प्रकार के सुख-दु:खों का अनुभव करते हुए भी दु:खों से छुटकारा पाने का सतत प्रयास करता है। दु:खों से छुटकारा यानी कर्मबन्ध से मुक्ति, अनन्त सुख, शाश्वत आनन्द एवं परम शांति की प्राप्ति।

प्रत्येक दर्शन एवं धर्म के शास्त्रों एवं ग्रन्थों में चिन्तन के आधार पर बंधन से मुक्त होने का रास्ता बतलाया है। इस कथन का एक ही उद्देश्य रहा है कि व्यक्ति जीवन के स्वरूप को समझे, बन्ध और मुक्ति के कारणों का परिज्ञान करे और तदनन्तर साधना के द्वारा अपने साध्य लक्ष्य को प्राप्त करे। परन्तु विचारकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से साधना का मार्ग बतलाया है। इसीलिए साधना-पद्धतियों में विभिन्नता परिलक्षित होती है और यह स्वाभाविक भी है।

भारतीय चिन्तन अध्यात्मपरक है। उसमें प्रत्येक प्रवृत्ति को आध्यात्मिक विकास के साथ सम्बद्ध किया गया है कि आत्मा को इससे क्या हानि-लाभ होगा? इसीलिए भारतीय चिन्तन में मुक्ति के दो मार्ग बतलाए गए हैं—ज्ञान और क्रिया अथवा विचार और आचार। कुछ विचारकों ने ज्ञान को प्रमुखता दी और कुछ ने क्रिया को, आचार को ही सब कुछ स्वीकार किया। अद्वैतवादी शंकराचार्य की मान्यता है कि ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान कर लेना ही मुक्ति का मार्ग है। जब तक व्यक्ति अविद्या-अज्ञान के बंधन में जकड़ा रहेगा, तब तक मुक्त नहीं हो सकेगा। इसके विपरीत मीमांसादर्शन का कथन है कि मुक्तिप्राप्ति के लिए सिर्फ ब्रह्म का जानना ही काफी नहीं है किंतु वेदविहित यज्ञयागादि करना चाहिए, क्योंकि विचारों की काल्पनिक उड़ान से प्राप्ति नहीं होती है आचार के द्वारा ही लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार एक ओर ज्ञान को श्रेष्ठ मानकर आचार की उपेक्षा की गई तो दूसरी ओर क्रियाकांड को प्रमुख मान कर ज्ञान का तिरस्कार किया गया है। दोनों दर्शनों ने इसके लिए अपनी-अपनी युक्तियाँ दी हैं।

जैन दर्शन की दृष्टि

लेकिन जैनदर्शन में ऐसे दुविधापूर्ण परस्पर विरोधी दृष्टिकोण को कोई स्थान नहीं दिया है। न तो यह माना है कि ज्ञान ही श्रेष्ठ है और क्रिया अथवा आचार का कोई मूल्य नहीं है और न यह प्रतिपादित किया है कि आचार के सामने विचार-ज्ञान का महत्त्व नहीं है। भगवान महावीर ने स्पष्ट उद्घोषणा की कि—मुक्ति के लिए ज्ञान और क्रिया—विचार और आचार दोनों आवश्यक है।[1] विचार का महत्त्व, उपयोगिता आचार द्वारा प्रगट होती है और आचार में ओज ज्ञान-विचार द्वारा प्राप्त होता है। विचार के आधार है—सम्यक्-दर्शन और सम्यक-ज्ञान तथा आचार की भूमिका है—सम्यक् चारित्र यानी जो दर्शन और ज्ञान से जाना, समझा, अनुभूति की उसे आचरण के द्वारा मूर्त रूप देना। इस प्रकार ज्ञान और क्रिया के समन्वित रूप द्वारा साधक बंधन से पूर्ण मुक्त हो सकता है। ज्ञान जब तक विचार-चिन्तन तक सीमित रहता है, तब तक साधक अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता है और क्रिया-आचार का बिना ज्ञान के पालन हो तो लक्ष्य को नहीं देख पाता है इधर-उधर उलझ जाता है, अत: जब ज्ञान आचार में उतरता है और आचार ज्ञान की दृष्टि लेकर गति करता है तब साधक को साध्यसिद्धि में सफलता प्राप्त होती है।

आचार का स्वरूप

जब यह निश्चित है कि साध्य प्राप्ति के लिए ज्ञान और क्रिया मुख्य साधन है तब उनके स्वरूप को समझना आवश्यक है। ज्ञान का अर्थ है—वस्तु स्वरूप को देखना, जानना, समझना और उसका चिन्तन-मनन करना। ज्ञान की प्रवृत्ति द्विमुखी है, उससे स्व का भी ज्ञान होता है और पर-स्वरूपावबोध होता है। यानी ज्ञान का अर्थ हुआ आत्मा का बोध रूप व्यापार और उस ज्ञान

[1] नाणकिरियाहिं मोक्खो।

को आचरण मे उतारने एव व्यवहार मे लाने की प्रक्रिया को आचार कहते हैं। जो कुछ जाना और समझा उसी के अनुरूप व्यवहार करना अथवा उसके अनुसार अपने जीवन को ढालना आचार है। निश्चय दृष्टि से आचार का अर्थ होगा 'स्व' के द्वारा 'स्व' और 'पर स्वरूप' का यथार्थ बोध करके 'पर' से मुक्त होकर 'स्व' मे स्थित हो जाना। यानी विचार के अनुरूप हो जाना। इस स्थिति मे विचार और आचार मे कोई भेद परिलक्षित नही होता है।

आचार के भेद

आगमो मे आचार के विभिन्न दृष्टियो से अनेक भेद किए गए है, जैसे श्रुतधर्म और चारित्रधर्म। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तथा ज्ञान-आचार, दर्शन-आचार चारित्र-आचार, तप-आचार, वीर्य-आचार। इन दो, तीन अथवा पाँच भेदो मे सख्या भेद अवश्य है लेकिन सैद्धान्तिक दृष्टि मे इनमे कोई मौलिक अतर नही है। विभिन्न प्रकार मे समझाने के लिए भेद की कल्पना की गई है, क्योकि सम्यग्दर्शन और ज्ञान श्रुतधर्म के अतर्गत आ जाते है और सम्यक्चारित्र चारित्रधर्म है ही। इसी प्रकार जो पाँच भेद किए गए है, उनमे प्रथम दो का ज्ञान मे और अतिम तीन का चारित्र मे समाहार हो जाता है, क्योकि तप और वीर्य दोनो चारित्र साधना के ही अग है। इस प्रकार ज्ञान और क्रिया अथवा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मे सभी भेदो को गर्भित किया जा सकता है। जैन धर्म मे जिसे दर्शन, ज्ञान और चारित्र कहा है उसे गीता मे भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग कहा गया है[1] क्योकि भक्ति के मूल मे श्रद्धा रहती है, श्रद्धा के अभाव मे भक्ति सम्भव ही नही है। ज्ञान ज्ञान है ही और कर्म का अर्थ क्रिया करना-आचरण करना। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान और कर्मयोग जैन धर्म के दर्शन, ज्ञान और चारित्र के दूसरे नाम कहे जा सकते हैं।

परन्तु गीता और जैन परम्परा की मान्यता मे एक मौलिक अन्तर है। गीता के अनुसार साधक किसी एक योग की साधना द्वारा साध्य को प्राप्त कर सकता है जबकि जैन परम्परा मे भक्ति, ज्ञान और कर्म इन तीनो योगो की समन्वित साधना द्वारा साध्य प्राप्ति मानी गई है। क्योकि 'स्व' पर विश्वास करना श्रद्धा (दर्शन) है, स्व को जानना ज्ञान है और स्व मे स्थिर होना चारित्र है और इन तीनो की एकरूपता मोक्षमार्ग—दुःख मुक्ति का उपाय है।

आचार भी दर्शन है

आचार सिर्फ क्रिया या प्रवृत्ति ही नही, किंतु एक दर्शन भी है। उसकी तात्विक एव सैद्धातिक दृष्टि है। वही आचार आचरण करने योग्य होता है जो चरम सत्य को केद्र बिंदु मानकर चलता है। जब सत्य की प्राप्ति के लिए प्रवृत्ति की जाती है, तब दर्शन, चिन्तन और आचार एक-दूसरे से इस तन्मय बन जाते हैं कि उनमे भेद नही होता है। एक-दूसरे दूध और मक्खन के समान एकाकार हो जाते है। शाब्दिक भेद मे भले ही हम ज्ञान-क्रिया, विचार-आचार आदि पृथक्-पृथक कह सकते है लेकिन तिल और तेल की तरह दोनो एक-दूसरे पर आधारित है।

आचाराग सूत्र आचार की व्याख्या करता है और व्याख्या के लिए सर्वप्रथम सूत्र मे कहा है कि 'जिसको अपने स्वरूप का, अपने त्रिकालवर्ती अस्तित्व का, ससार मे अनन्तकाल से परिभ्रमण के कारण का, पूर्व-पश्चिम आदि दिशाओ मे से किस दिशा से आने और किस दिशा मे जाने आदि का ज्ञान हो गया है, वही आत्मवादी है, लोकवादी है, कर्मवादी है और क्रियावादी है।[2] इसका साराश यह है कि जिस जीव को अपने त्रिकालवर्ती अस्तित्व का बोध नही है उसे न तो ससार का ज्ञान होगा और न ही बध-मोक्ष के कारणो को जान सकेगा। इस स्थिति मे वह किसे तो छोडेगा और किसे ग्रहण करेगा। वहाँ त्यागने और ग्रहण करने का प्रश्न ही नही उठेगा। लेकिन जिसे 'स्व-पर' का ज्ञान है, वह किसी वस्तु को छोडता नही किंतु वस्तु स्वय छूट जाती है। यही आचार का दार्शनिक रूप है।

भगवती सूत्र मे गौतम गणधर के एक प्रश्न का उल्लेख है कि हिंसा झूठ, चोरी आदि का त्याग-प्रत्याख्यान करने वाले व्यक्ति का त्याग सुप्रत्याख्यान है या दुष्प्रत्याख्यान है। इसका समाधान करते हुए भगवान महावीर ने फरमाया है कि जिसे अपने स्वरूप का ज्ञान है, जीव क्या है, अजीव आदि का ज्ञान है, उसका त्याग—प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है। इसके सिवाय अन्य सब त्याग-

१ श्रद्धावाल्लभते ज्ञानं, तत्पर सयतेन्द्रिय।—गीता ४/३९

श्रद्धावान ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है और ज्ञान प्राप्त होने पर ही इन्द्रिय-सयम (सदाचार) सधता है।

२ आचाराग १/१/१

प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान है।[1] इस कथन का साराश यह है कि त्याग-विराग की सम्यक्ता का आधार 'स्व' स्वरूप का बोध है। स्व-स्वरूप के बोध के साथ जो भी स्थूल प्रवृत्ति होगी वह सब स्वरूप बोध का ही एक पहलू है। अत आचार दर्शन का मूल उद्देश्य है,समत्वयोग की साधना—आत्मा का आत्मा मे प्रतिष्ठित हो जाना, स्व को इतना व्यापक बनादेना कि पर कुछ भी न रह जाए अथवा पर को इतना अस्तित्व हीन कर लिया जाए कि पर का नामावशेष हो जाए। जब यह स्थिति बन जाएगी तब साधक अपने साध्य की सिद्धि कर लेता है।

आचार का व्यावहारिक दृष्टिकोण

ऊपर आचार की तात्त्विक भूमिका का सकेत किया गया है। लेकिन जब तक साधक साध्य की सिद्धि नही कर लेता है, तब तक लक्ष्य के उच्च होने पर भी, उसे जीवन व्यवहार चलाना ही पडता है। केवल ज्ञान प्राप्त दशा मे भी केवलज्ञानी अपनी शारीरिक प्रवृत्तियो मे, व्यावहारिक प्रवृत्ति मे परिवर्तन नही करते हैं। निरावरण ज्ञान होने पर भी रात्रि मे आहार नही लेते हैं, रात्रि मे गमनागमन की क्रियाओ को नही करते हैं। इसीलिए आगम मे कहा गया है कि साधना मे केवल निश्चय नही,व्यवहार भी आवश्यक है। अध्यात्म का मुख्य रूप से कथन करने वाले उपनिषदो मे भी व्यवहार को उपेक्षणीय नही बताया है और कहा है कि कर्मों (व्यवहारो) की उपेक्षा करके ज्ञान सम्भव नही है। आचार से शून्य होकर कोई व्यक्ति ज्ञान की वृद्धि नही कर सकता है।

जैन परम्परा का दृष्टिकोण पहले बताया ही जा चुका है कि आचार उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना ज्ञान। आगम मे कहा गया है कि चलने, उठने, बैठने, खाने-पीने की क्रिया जो करो, वह यत्न एव विवेकपूर्वक करो। यत्नपूर्वक कार्य करने से पापबन्ध नही होगा। इसका अभिप्राय यह कि बध तभी होता है जब क्रिया मे राग-द्वेष होता है, आसक्ति होती है। आगमो मे आचार का व्यावहारिक दृष्टिकोण यह है कि सयम से रहो, जितना सभव हो सके अपने आपकी प्रवृत्ति कोसकुचित बनाओ, आवश्यकता पडने पर कार्य किया जाए, निष्प्रयोजन इधर-उधर भटकना नही चाहिए। इसके लिए ईर्यासमिति आदि पाँच समितियो और तीन गुप्तियो का विधान किया गया है। इन समिति और गुप्ति का आशय यह है कि आवश्यकता होने पर विवेकपूर्वक गति की जाए, भोजन की गवेषणा (भिक्षाचरी) की जाए, वस्त्र-पात्र आदि ग्रहण किए जाएँ, मन, वचन काय की प्रवृत्ति का गोपन किया जाए। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि महाव्रत तप एव इनकी सुरक्षा तथा अभ्यास के लिए अनेक नियमोपनियम बताए गए हैं। यह सब आचार का व्यावहारिक पक्ष है। इन सब का लक्ष्य यह है कि बाहर से हटकर, विभाव से हटकर अतर मे स्वभाव मे आना, स्व-स्वरूप मे रमण करना। इसके लिए जो भी क्रिया सहायक बनती है, वह सम्यक् है, उसे व्यावहारिक दृष्टिकोण से और तात्विक दृष्टि से चारित्र-आचार माना जाएगा और वही सम्यक् है।

जैन परम्परा मे आचार को मात्र क्रियाकाड या प्रदर्शन न मानकर आत्म विकास का दर्शन कहा है और अपेक्षा भेद से उसके भेद करते हुए भी उन सब मे आत्म दर्शन, ज्ञान और रमणता को मुख्य माना है।

पात्र की अपेक्षा आचार के भेद

जैन आगमो मे आचार का महत्त्व बतलाने के लिए उसे धर्म कहा है–'चारित्त धम्मो' अर्थात् चारित्र ही धर्म है और चारित्र क्या है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा है—"असुहादो विणवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्त" अशुभ कर्मों से निवृत्त होना और शुभ कर्मो मे प्रवृत्त होना चारित्र कहलाता है। अशुभ मे प्रवृत्ति के कारण हैं—राग-द्वेष। जब तक राग-द्वेष की परम्परा चलती रहती है तब तक शुभ प्रवृत्ति नही हो सकती है। जैन-धर्म मे राग-द्वेष प्रवृत्तियो के निवारणार्थ आचार को दो भागो मे विभाजित किया है—साधु-आचार और श्रावकाचार। साधु आचार साक्षात् मोक्ष का मार्ग है और श्रावकाचार परम्परा से मोक्ष का कारण है। साधु का एकमात्र लक्ष्य आत्मोद्धार करना है। वह लोक, कुटुम्ब आदि पर-पदार्थों से ही नही, लेकिन अपनी साधना मे सहायक शरीर से भी निस्पृह होकर साधना मे लग जाता है। साधु ही अहिंसा का उत्कृष्टतया पालन कर सकता है, श्रावक नही। क्योकि साधु प्राणीमात्र से मैत्री भाव रखकर निरतर रागद्वेषमयी प्रवृत्तियो के उन्मूलन मे तत्पर रहता है। ज्ञान ध्यान, तप आदि मे अहर्निश रत रह कर उत्तरोत्तर रत्नत्रय प्राप्ति के लिए सजग रहता है और आत्मा मे विद्यमान अप्रकट अनन्त शक्तियो का विकास करना ही साधु का एकमात्र लक्ष्य होता है। सक्षेप मे,साधु आचार व्यक्ति को वीतरागी बनाने एव प्राकृतिक जीवन जीने के लिए स्वावलम्बी बनने की प्रवत्ति है।

---

१ भगवती सूत्र ७/३२

लेकिन सभी साधुपद मर्यादा का निर्वाह करने मे सक्षम नहीं होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी-अपनी मानसिक, शारीरिक योग्यता होती है। अतएव जो व्यक्ति साधु-आचार का पालन करने मे तो पूर्णतया समर्थ नही हैं, लेकिन उस आचार को ही आत्मकल्याण का साधक मानते हैं, उसमे रुचि भी रखते हैं और साध्य की सिद्धि करना चाहते है, उनकी सुविधा एव अभ्यास के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार साधना की प्रारम्भिक भूमिका के रूप मे श्रावकाचार के सरल नियम निर्धारित किये हैं, ताकि अभ्यास द्वारा शनै-शनै अपने प्रमुख लक्ष्य को पा सके। इस अभ्यास की प्रारम्भिक इकाई हिसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का आशिक त्याग करना। आशिक त्याग के अनुरूप इन्द्रियो का व्यापार किया जाना और पारिवारिक जीवन मे रहते हुए साम्यभाव मे वृद्धि करते जाना।

इस प्रकार से जैन धर्म मे आचार का उद्देश्य एक होते हुए भी व्यक्ति की योग्यता को ध्यान मे रखते हुए साधु-आचार और श्रावकाचार,ये दो भेद किए गए है। दोनो प्रकारो मे एक ही भावना व्याप्त है—

नाणेण दसणेण च चरित्तेण तवेण य।
खतीए मुत्तीए वड्ढमाणो भवाहि य।। —उत्तरा २२/२६

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, क्षमा और निर्लोभता की दिशा मे निरतर बढते रहो अथवा इन ज्ञानादि के अभ्यास द्वारा आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया जाये।

जैन धर्म मे पात्रता को ध्यान मे रखते हुए आचार धर्म के भेद अवश्य किए है, लेकिन इसका कारण जाति, वर्ण लिग, वेष आदि नही है किन्तु व्यक्ति का आत्मबल या मनोबल ही उस भेद का कारण है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी देश, काल आदि का हो, किसी जाति वर्ण का हो, स्त्री हो या पुरुष, समान रूप मे धर्मसाधना कर सकता है। सभी प्रकार के साधकों का वर्गीकरण करने के लिए १ साधु, २ साध्वी ३ श्रावक और ४ श्राविका, ये चार श्रेणियाँ बतलाई है। इनमे साधु और साध्वी का आचार प्राय एक-सा है और श्रावक व श्राविका का आचार एक-सा है।

उक्त श्रेणियो मे साधु और श्रावक के लिए आचार नियम पृथक्-पृथक् बतलाये है। साधु-आचार को महाव्रत और श्रावक-आचार को अणुव्रत कहते है। इन दोनो आचारो मे पहले साधु-आचार का और बाद मे श्रावकाचार का वर्णन यहाँ करते है।

साधु-आचार

विश्व के सभी धर्मो और चिन्तको ने त्याग को प्रधानता दी है। जैन सस्कृति ने त्याग की जो मर्यादाएँ और योग्यताएँ स्थापित की है, वे असाधारण है। वैदिक सस्कृति के समान जैन धर्म ने त्याग जीवन को अगीकार करने के लिए वय, वर्ण आदि को मुख्य नही माना है। उसका तो एक ही स्वर है कि यह जीवन क्षणभगुर है मृत्यु किसी भी समय जीवन का अन्त कर सकती है। अतएव इस जीवन मे जो कुछ लाभ प्राप्त किया जा सकता है, उसे प्राप्त कर लेना चाहिए।

वय पर जोर न देते हुए भी जैन शास्त्रो मे त्यागमय जीवन अगीकार करने वाले की योग्यता का अवश्य सकेत किया है कि जिसे तत्त्वदृष्टि प्राप्त हो गई है, आत्मा-अनात्मा का भेद समझ लिया है, ससार, इन्द्रिय, विषय-भोगो का स्वरूप जान लिया है और वैराग्य भावना जाग्रत हो गई है, वह व्यक्ति त्यागी-साधु बनने के योग्य है। ससार, शरीर, भोगो से ममत्व का त्याग करके जो आत्मसाधना मे सलग्न रहना चाहता है, वह साधु-आचार को अगीकार कर सकता है।

साधु की साधना स्वय मे स्व को प्राप्त करने के लिए होती है, तभी आत्मा की सर्वोच्च सिद्धि मिलती है। इस भूमिका को प्राप्त करने के लिए घर-परिवार धन-सम्पत्ति आदि बाह्य पदार्थो का त्याग तो करना ही पडता है, लेकिन इतना ही पर्याप्त नही, साधुता मे तेज तभी आता है जब अन्तर मे जड जमाये हुए विकारो पर विजय पा ली जाती है। मान-अपमान, निन्दा-स्तुति,जीवन-मरण मे भेद नही माना जाता है।[1] तिरस्कार को भी अमृत मानकर पान किया जाता है और स्वय कटुवचन बोलकर दूसरे का तिरस्कार नही किया जाता है। पृथ्वी के समान बनकर सब अच्छा-बुरा, हानि-लाभ आदि सहन किया जाता है।[2]

आत्मसाधना करते हुए भी साधु ससार की भलाई से विमुख नही होता है। वह तो आध्यात्मिकता की अखण्ड ज्योति लेकर

१ समो निन्दापससासु तहा माणावमाणओ। उत्तरा १९/९१
२ पुढवीसमो मुणी हवेज्जा। -दशवै १०/१३

विश्व मानव को सन्मार्ग का दर्शन कराता है। उसे अपने दुःख, पीडा, वेदना का तो अनुभव नही होता लेकिन पर-पीडा उसके लिए असह्य हो जाती है। वह भलाई करते हुए भी अहकार नही करता है कि मैंने अमुक कार्य करके दूसरो का भला किया है, किन्तु सोचता है कि अपनी भलाई के लिए मेरे द्वारा दूसरे का भी भला हो गया है। इस प्रकार की साधना द्वारा साधु अपने जन्म-मरण का अत करता है और सिद्धि लाभ कर परमात्मपद प्राप्त कर लेता है।

भगवान महावीर ने साधु आचार और साधु जीवन की मर्यादा की ओर संकेत करते हुए कहा है —श्रमण के लिए लाघव—कम से कम साधनो से जीवन निर्वाह करना, निरीहता-निष्काम वृत्ति अमूर्च्छा—अनासक्ति, अप्रतिबद्धता, अक्रोधता, अमानता, निष्कपटता और निर्लोभता के द्वारा साधनात्मक मार्ग प्रशस्त होता है। इस कथन के आधार पर जैनागमो मे साधु के आचार-विचार की विस्तार मे प्ररूपणा की गई है। सक्षेप मे यहाँ साधु-आचार का दिग्दर्शन कराते है।

साधु आचार की रूपरेखा

पच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। पाँच समिति—ईर्यासमिति भाषा-समिति, एषणासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति, परिष्ठापनिकासमिति। तीन गुप्ति—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति। द्वादश अनुप्रेक्षा-अनित्य, अशरण, ससार, एकत्व अन्यत्व अशुचि, आस्रव सवर निर्जरा लोकभावना, बोधिदुर्लभ, धर्मभावना। दस धर्म—क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य सयम तप त्याग, आकिचन्य, ब्रह्मचर्य। पाँच चारित्र—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म-सपराय यथाख्यात। इस प्रकार से महाव्रत से लेकर चारित्र पर्यन्त साधु आचार की सक्षिप्त रूपरेखा है। इसका विवरण यथाक्रम मे बतलाते है।

पच महाव्रत—पाँच महाव्रत साधुता की अनिवार्य वृत्ति है। इनका भली-भाँति पालन किये बिना कोई भी साधु नही कहला सकता है।

१ अहिंसामहाव्रत

जीवन पर्यन्त के लिए सर्वथा प्राणातिपातविरमण। यानी त्रस और स्थावर सभी जीवो की मन वचन काय से हिंसा न करना दूसरे से भी नही कराना और हिसा करने वाले का अनुमोदन न करना।

अहिंसा महाव्रत का पालन करने वाले के मन वचन और काय सद्‌भावना से आप्लावित होते है। वे प्राणिमात्र पर अखण्ड करुणा की वृष्टि करते है। अतएव वे सजीव जल का उपयोग नही करते। अग्निकाय के जीवो की हिंसा से बचने के लिए अग्नि का किसी भी प्रकार से आरभ नही करते हैं। पखा आदि हिलाकर वायु को उद्वेलित नही करते हैं। कन्द, मूल, फल आदि किसी भी प्रकार की सचित्त वनस्पति का स्पर्श भी नही करते। पृथ्वीकाय के जीवो की रक्षा के लिए जमीन को खोदने आदि की क्रिया नही करते है। रात्रि मे विहार, आहार आदि नही करते है और ऊँट, घोडा, बैल आदि का सवारी के लिए उपयोग नही करते है। साराश यह है कि जिन कारणो और क्रियाओ द्वारा जीव हिंसा की सम्भावना हो सकती है, उन सब कार्यो मे अहिंसा का पालक विरत रहता है।

२ सत्यमहाव्रत

सर्वथा मृषावाद का विरमण करना। मन से सत्य विचारना सत्य वचन को बोलना और काय से सत्य आचरण करना। क्रोध, लोभ, हास्य, भय आदि कारणो के वश होकर सूक्ष्म असत्य का भी कभी प्रयोग न करना। सत्य का साधक मौन रहना प्रियतर मानता है, फिर भी प्रयोजनवश हित, मित और प्रिय निर्दोष भाषा का प्रयोग करता है। वह न तो बिना सोचे-विचारे बोलता है और न हिंसा को उत्तेजना देने वाला ही वचन कहता है।

३ अचौर्यमहाव्रत

सर्वथा अदत्तादानविरमण। साधु ससार की कोई भी वस्तु चाहे वह सचित्त हो या अचित्त, अल्पमूल्य की हो या बहुमूल्य की, छोटी हो या बडी बिना स्वामी की आज्ञा के ग्रहण नही करते है। और तो क्या, दात साफ करने के लिए तिनका भी बिना आज्ञा के ग्रहण नही करते हैं।

४. ब्रह्मचर्यमहाव्रत

सर्वथा मैथुनविरमण। कामराग-जनित चेष्टा का नाम मैथुन है। साधक के लिए कामवृत्ति और वासना का नियमन आवश्यक

---

१ भगवती १/९

है। इस व्रत का पालन करना दुर्द्धर है। अतएव इस व्रत का पालन करने के लिए अनेक प्रकार की नियम-मर्यादाएँ बतलाई हैं। उनमे से कुछ इस प्रकार है-

१ **शुद्ध स्थान सेवन**—स्त्री-पशु, नपुसको से रहित स्थान मे रहना।
२ **स्त्री का वर्जन**—कामराग उत्पन्न करने वाले स्त्री के हाव, भाव, विलास आदि का सपर्क व वर्णन न करना।
३ **एकासनत्याग**—स्त्रियो के साथ एक आसन पर न बैठना एव जहाँ स्त्री बैठी हो, उस स्थान पर अन्तर्मुहूर्त तक न बैठना।
४. **दर्शननिषेध**—स्त्री के अगोपागो को प्रेमभरी या स्थिर दृष्टि से न देखना।
५ **श्रवणानिषेध**—स्त्री-पुरुषो के विकारोत्पादक कामुकता पूर्ण शब्दो को न सुनना।
६. **स्मरणवर्जन**—पूर्व कालीन विषय भोगो का स्मरण न करना।
७ **सरस आहारत्याग**—सरस, पौष्टिक, विकारजनक राजस, तामस आहार का त्याग करना।
८ **विभूषात्याग**—स्नान, मजन, विलेपन आदि द्वारा शरीर को विभूषित नही करना।
९ **शब्दादित्याग**—विकारोत्पादक शब्द, रूप आदि इद्रिय विषयो मे आसक्त न बनना।

ये नियम ब्रह्मचर्य की रक्षा करने वाले द्वारपाल के समान हैं। इनका ध्यान रखने से ब्रह्मचर्य को किसी प्रकार का खतरा नही है। इनमे से आदि के नौ नियमो को ब्रह्मचर्य की नवगुप्ति (वाड) और दसवे (ब्रह्मचर्य) को कोट भी माना गया है।

५ अपरिग्रहमहाव्रत

सर्वथा परिग्रहविरमण साधु परिग्रह मात्र का त्यागी होता है। चाहे फिर वह घर, धंधन-धान्य हो, द्विपद हो या अन्य कुछ ही हो। वह मदा के लिए मन, वचन, काय से समस्त परिग्रह-मूर्च्छाभाव को छोड देता है और पूर्ण असग, अनासक्त, अपरिग्रही होकर विचरण करता है। सयमसाधना के जिन उपकरणो की अनिवार्य आवश्यकता होती है, उनके प्रति भी ममत्व नही होता है।

किसी भी वस्तु मे मूर्च्छा-आसक्ति का नाम परिग्रह है। वस्तुएँ बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार की है। बाह्य मे क्षेत्र, धन-धान्य, द्विपद- चतुष्पद, गाय-बैल आदि का ग्रहण होता है और हास्य, रति, अरति, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मानसिक विकारो को आभ्यन्तर परिग्रह माना जाता है। साधु दोनो प्रकार के परिग्रह के त्यागी होते है।

पाँच समिति

पाप प्रवृत्तियो से बचने के लिए प्रशस्त एकाग्रता की जाने वाली-प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। ये पाँच प्रकार की समितियाँ महाव्रतो की रक्षा और पालन मे सहायक होने से साधु आचार की अग है। वे इस प्रकार है—

१ **ईर्या समिति**—जीवो की रक्षा के लिए, ज्ञान, दर्शन, चारित्र के निमित्त सावधानी के साथ चारहाथ जमीन देखकर चलना।
२ **भाषा समिति**—यतनापूर्वक हित, मित, प्रिय, निरवद्य सत्य बोलना।
३ **एषणा समिति**—निर्दोष एव शुद्ध आहार, उपधि आदि की गवेषणा कर ग्रहण करना।
४ **आदान-निक्षेपण समिति**—आदान नाम लेने—ग्रहण करने, उठाने का है और निक्षेपण का अर्थ है रखना। किसी वस्तु को सावधानी के साथ उठाना या रखना, जिससे किसी भी जीव-जतु का घात न हो जाए।
५ **परिष्ठापनिका समिति**—मल, मूत्र आदि अनावश्यक वस्तुएँ ऐसे स्थान पर विसर्जित करना, जिससे जीवो को घात न हो और न जीवोत्पत्ति हो तथा दूसरो को घृणा या कष्ट न हो।

उक्त पाँच समितियाँ साधन की प्रवृत्ति को निर्दोष बनाती है।

तीन गुप्ति

मोक्षाभिलाषी आत्मा आत्मरक्षा के लिए इद्रियो और मन का गोपन करना अर्थात् उन्हे असत्य से हटा लेना, अशुभ योगो को रोकना गुप्ति कहलाती है।गुप्ति के तीन भेद इस प्रकार है—

१ **मनोगप्ति**—मन को अप्रशस्त, अशुभ एव कुत्सित सकल्प-विकल्पो से हटना यानी आर्त-रौद्र ध्यान तथा सरम्भ, सरारभ, आरभ सबधी मानसिक सकल्प विकल्पो को रोक देना।

२ **वचनगुप्ति**—वचन के अशुभ व्यापार को रोकना, असत्य, कर्कश, कठोर, कष्टजनक, अहितकर भाषाप्रयोग को रोक देना।

३ **कायगुप्ति**—उठना, बैठना, खडा होना आदि कायिक व्यापार है। शरीर को असत व्यापारो से निवृत्त करना एव प्रत्येक शारीरिक क्रिया मे अयतना-असावधानी का परित्याग करके सावधानी रखना।

समिति प्रवृत्ति रूप है और गुप्ति निवृत्ति रूप। समिति और गुप्ति का घनिष्ट सबध है। जैसे सावधानीपूर्वक चलना ईर्या-समिति है और देखे बिना न चलना कायगुप्ति है। निरवद्य भाषा बोलना भाषासमिति है और सावद्य भाषा निरोध करना या मौन रहना वचनगुप्ति है। साराश यह है कि समिति द्वारा जो मन, वचन आदि की प्रवृत्ति की जाती है, उसमे गुप्ति द्वारा अयतना-असावधानी के अश की निवृत्ति की जाती है।

पाँच समिति और तीन गुप्ति इन आठो को प्रवचनमाता कहते है।[१] इनमे द्वादशाग रूप प्रवचन-शास्त्र समा जाते है। पाँच महाव्रतो का जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे सतत पालन करना होता है। महाव्रत सिर्फ नियम मात्र नही किंतु जीवन व्यवहार बने इसके लिए आचार की तालीम जीवन मे आए एतदर्थ आगमो की २५ भावनाएँ बताई गई है।उन भावनाओ के चिंतन अनुशीलन से जीवन व्रतो मे एकरस हो जाता है और वह सहज जीवन क्रम बन जाता है। विस्तार के लिए प्रश्न-व्याकरण सँवर द्वार देखना चाहिए।

बारह भावनाएँ

साधना को ओजस्वी और सजीव बनाने के लिए मन को साधना अनिवार्य है। मन का निग्रह किए बिना आचार मे शुद्धता नही आ सकती है। इसीलिए मन को साधने विरति की स्थिरता एव शुद्धि के लिए साधक को अनित्य आदि १२ भावनाओ को पुन पुन चिंतन करना जरूरी बताया है। जब तक साधक सासारिक वस्तुओ को क्षणभगुर अपने आपको अशरण, अकेला आदि नही मानेगा और आत्म-विकास के कारणो को नही समझेगा, तब तक सिद्धि प्राप्त नही हो सकती है। भावनाएँ वैराग्य को जगाने एव सयम को सबल बनाने मे सहायक होने से चितवन करने योग्य है। बारह भावनाओ का चिंतवन प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह श्रमण हो या श्रावक कर सकता है। इन भावनाओ का जितना चिंतन-मनन किया जाएगा, उतना ही मन एकाग्र होगा, विरक्त होगा और मन की एकाग्रता होने पर कर्ममुक्ति सहज हो जाएगी।

बारह भावनाओ के नाम पूर्व मे कहे गए है और उनका अर्थ भी सरलता से समझा जा सकता है। अत यहाँ विशेष कथन नही किया गया है।

दस श्रमणधर्म

जीव स्वभाव से अमर है लेकिन कर्मवशात जन्म-मरण अवस्थाओ द्वारा शरीर मे शरीरातर होता रहता है। फिर भी भौतिक पदार्थों के माध्यम से अथवा सतान परपरा द्वारा अपने को अमर करने की अभिलाषा रखकर बाह्य नाशवान पदार्थों के सग्रह मे जुटा रहता है। उन पदार्थों को प्राप्त करने के लिए क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायो मे रत रहने से अमरता के मूल

आधार आत्मा का ज्ञान नही होता है तो ये आशावान पदार्थ अमर कैसे बना सकते हैं, जो स्वय नाशवान हैं वे दूसरो को कैसे अमर बना सकेगे? अमरता प्राप्ति का मार्ग क्षमा, मार्दव आदि दस विधि धर्म रूप है। इसीलिए श्रमण को उनका पालन करना आवश्यक बतलाया है। उनका सक्षिप्त रूप इस प्रकार है।

१ **क्षमा—** क्रोध को उत्पन्न न होने देना एव उत्पन्न होने पर उसे जीतना, शमन करना क्षमा है।

बृहत्कल्प भाष्य ४।१५ मे बतलाया है कि साधु, साध्वियो को परस्पर मे कलह हो जाने पर तत्काल क्षमायाचना करके शात कर देना चाहिए। क्षमायाचना किए बिना गोचरी आदि के लिए जाना, स्वाध्याय करना, विहार भी नही कल्पता है। क्षमायाचना करने वाला साधु आराधक और न करने वाला विराधक माना गया है।

२ **मार्दव—**मान को जीतना, विनम्र वृत्ति रखना मार्दव कहलाता है। अभिमान के आठ कारण होने से अभिमान के आठ भेद हैं—जाति, कुल, बल, रूप, तप, ज्ञान, लाभ एव ऐश्वर्य (प्रभुत्व)। व्यक्ति जिस-जिस वस्तु का अभिमान करता है, उससे उस वस्तु की प्राप्ति मे कमी हो जाती है। जैसे ज्ञान का घमड करने से मूर्खता और रूप का अभिमान करने से कुरूपता मिलती है। इसीलिए अभिमान करना योग्य नही है। व्यक्ति जिन वस्तुओ पर अभिमान करता है, वे तो क्षणिक है किंतु उन पर अभिमान करने से पाप कर्मों का बध तो हो जाता है।

३ **आर्जव—**माया, छल, कपट, वक्रता का त्याग करना। सरल वृत्ति रखना। आर्जव धर्म का पालन करने से मन, वचन, काय की कथनी-करनी मे समानता की प्राप्ति होती है।

४ **शौच—**लोभ को जीतना। पौद्गलिक वस्तुओ की आसक्ति का त्याग करना। इस धर्म का पालन करने मे अपिग्रहत्व की प्राप्ति होती है। शौच का दूसरा नाम सतोष है।

५ **सत्य—**सावद्य-प्रिय एव अहितकारी मन, वचन, काया की प्रवृत्तियो का सर्वथा त्याग करना, सत्य व्यवहार करना सत्य धर्म है। सत्यधर्म का पालन करने वालो को ही सभी प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसीलिए साधु को प्राण देकर भी सत्य की सुरक्षा करना चाहिए।

६ **सयम—**सर्व सावद्य व्यापारो मे निवृत्त होना सयम धर्म है। सयम के सत्रह भेद है—पाँच आस्रवो से निवृत्ति, पाँच इद्रियो का निग्रह, चार कषायो पर विजय तथा मन, वचन, काय की अशुभ प्रवृत्ति से विरति।

७ **तप—**जिस अनुष्ठान द्वारा शारीरिक विकारो और ज्ञानावरणादि कर्मों को तपाकर नष्ट किया जाए। तप के बाह्य और आभ्यन्तर दो भेद है। बाह्य तप के अनशन, ऊनोदरी आदि छ भेद है तथा प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्ति आदि अतरग तप के छ भेद होते है। कुल मिलाकर तप के बारह भेद है।

८ **त्याग—**कर्मों के ग्रहण कराने के बाह्य कारण-पारिवारिक जन तथा आभ्यन्तर कारण-राग-द्वेष आदि का त्याग करना धर्म है।

९ **आकिचन्य—**इसका दूसरा नाम लाघव है। यानी द्रव्य से अल्प उपकरण रखना तथा भाव से तीन प्रकार के गारव-ऋद्धिगारव, रसगारव, सातागारव का परित्याग करना। मान एव लोभ से मिश्रित अशुभ भावना का नाम गारव है।

१० **ब्रह्मचर्य—ब्रह्म** अर्थात आत्मा और चर्य अर्थात चिंतन। आत्मा के चिंतन मे तल्लीन रहने को ब्रह्मचर्य कहते है।

उपर्युक्त महाव्रत आदि श्रमण आचार प्रवृत्ति करने से स्व मे रमणता करने मे वृद्धि होती जाती है। इसीलिए इन सबको साधु आचार का व्यावहारिक रूप कह सकते है। इन सबका यथावत् आचरण करने मे स्व को स्व मे देखना सरल होता जाता है और जब साधक अपनी साधना की चरम स्थिति पर पहुँच जाता है तब स्व-रमणता के क्षेत्र मे प्रविष्ट होकर आत्मोन्मुखी बन जाता है। उसकी यह स्थिति योगी जैसी कही जा सकती है।

योगावस्था सपन्न आत्मा अपने आप मे समता भावना को इतना व्यापक बना लेता है कि बाह्य पदार्थों के प्रति आकर्षण तो पहले ही नष्ट हो जाता है लेकिन जो कुछ भी थोडा बहुत राग-द्वेष का अश रह जाता है उसे भी साधना के द्वारा शात करता है अथवा उसको निष्क्रिय बना देता है।

इस प्रकार सक्षेप मे यह श्रमण-आचार है।

महावीर वाणी

☐ **जहा सुणी पूइकण्णी, निक्क सिज्जई सव्वसो।**
एव दुस्सीलपडिणी, मुहरी निक्क सिज्जई।।

जिस प्रकार सडे हुए कान वाली कुतिया सभी जगह से दुतकार दी जाती है, उसी प्रकार दु शील व ज्ञानियो के वचन से प्रतिकूल चलने वाले वाचाल मनुष्य को सब जगह से धकेल दिया जाता है।

☐ **मुहुत्त दुक्खा उ हवति कटया**
अओमया ते वि तओ सुउद्धरा।
वाया दुरुत्ताणि दुरुद्धराणि
वेराणुबधीणि महब्भयाणि।।

लोहे का शूल चुभा हो तो दो घडी दु ख होता है और उसे सहजता से निकाला जा सकता है, परन्तु कठोर वाणी रूप शूल चुभा जाए तो उसे सहजता से नहीं निकाला जा सकता। वह बैर का बध करने वाला तथा महाभय उत्पन्न करने वाला होता है।

☐ **अप्पत्तिअ जेण सिया, आसु कुप्पिज्ज वा परो।**
सव्वसो त न भासिज्जा भास अहिअगामिणि।।

जिससे अविश्वास उत्पन्न हो अथवा अन्यो को शीघ्र क्रोध आए ऐसी अहितकर भाषा विवेकी पुरुष सर्वथा नही बोलते।

☐ **इह माणुस्सा ठाणे, धम्ममाराहिउ नरा**

धर्म की आराधना करने के लिए ही मनुष्य लोक मे मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

☐ **जस कित्ति सिलोग च, जा य वदणपूयणा।**
सव्वलोयसि जे कामा, त विज्ज परिजाणिया।।

अमृत = महोत्सव गौरव ग्रंथ

परिच्छेद–४

जैन धर्म, दर्शन, इतिहास

तीर्थंकर महावीर

डॉ. एस. राधाकृष्णन्

चिन्तन का लक्ष्य बदला:

ईसा पूर्व ८०० से २०० के बीच के युग मे मानव-इतिहास का लक्ष्य मानो बदल गया। इस अवधि मे विश्व के चिंतन का लक्ष्य प्रकृति के अध्ययन से हटकर मानव-जीवन के चिंतन पर आ टिका। चीन मे लाओत्से और कन्फ्यूशस, भारत मे उपनिषदो के ऋषि, महावीर और गौतम बुद्ध, ईरान मे जरथुस्त, जुडिया मे पैगम्बरो की परम्परा और यूनान मे पीथागोरस, सुकरात और अफलातून-इन सबने अपना ध्यान बाह्य प्रकृति से हटाकर मनुष्य की आत्मा के अध्ययन पर केंद्रित किया।

आत्मिक संग्रामो का महावीर·

मानव-जाति के इन महापुरुषो मे से एक हैं महावीर। उन्हे 'जिन' अर्थात विजेता कहा गया है। उन्होंने राज्य और साम्राज्य नही जीते, अपितु आत्मा को जीता। सो उन्हे 'महावीर' कहा गया है- सांसारिक युद्धो का नही, अपितु आत्मिक संग्रामो का महावीर। तप, सयम, आत्मशुद्धि और विवेक की अनवरत प्रक्रिया से उन्होने अपना उत्थान करके दिव्य पुरुष का पद प्राप्त कर लिया। उनका उदाहरण हमे भी आत्मविजय के उस आदर्श का अनुसरण करने को प्रेरणा देता है।

यह देश अपने इतिहास के आरभ से ही इस महान् आदर्श का कायल रहा है। मोहन-जोदडो और हडप्पा के जमाने से आज तक के प्रतीको, प्रतिमाओ और पवित्र अवशेषो पर दृष्टिपात करे, तो वे हमे इस परंपरा की याद दिलाते हैं कि हमारे यहाँ आदर्श मानव उसे ही माना गया है, जो आत्मा की सर्वोपरिता और भौतिकतत्वो पर आत्मतत्व की श्रेष्ठता प्रस्थापित करे। यह आदर्श पिछले चार या पाँच सहस्राब्दियो से हमारे देश के धार्मिक चिंतन पर हावी रहा है।

आत्मवान बनें:

जिस महावाक्य के द्वारा विश्व उपनिषदो को जानता है, वह है 'तत् त्वमसि'- तुम वह हो। इसमे आत्मा की दिव्य बनने की शक्यता का दावा किया गया है और हमे उद्‌बोधित किया गया है कि हम नष्ट किये जा सकने वाले इस शरीर को मोडे और बदले जा सकने वाले अपने मन को आत्मा समझने की भूल न करे। आत्मा प्रत्येक व्यक्ति मे है, यह अगोचर है, इंद्रियातीत है। मनुष्य इस ब्रह्मांड के भवर से छिटका हुआ छींटा नही है। आत्मा की हैसियत से वह भौतिक और सामाजिक जगत् से उभर कर ऊपर उठा है। यदि हम मानव-आत्मा की अतर्मुखता को नही समझ पाते तो अपने आपको गँवा बैठते हैं।

हममे से अधिकाश जन सदा ही सासारिक व्याप्तियो मे निमग्न रहते हैं। हम अपने आपको स्वास्थ्य, धन, साजोसामान, जमीन, जायदाद आदि सासारिक वस्तुओ मे गवा देते हैं। वे हम पर स्वामित्व करने लगती हैं, हम उनके स्वामी नही रह जाते। ये लोग आत्मघाती हैं। उपनिषदो ने इन्हे 'आत्महनो जना' कहा है। इस तरह हमारे देश मे हमे आत्मवान बनने को कहा गया है।

समस्त विज्ञानो में आत्मविज्ञान सर्वोपरि है- अध्यात्मविद्या विद्यानाम्। उपनिषद् हमसे कहते हैं-आत्मानं विद्धि। शकराचार्य ने आत्मानात्मवस्तुविवेक अर्थात आत्मा और अनात्मा की पहचान को आत्मिक जीवन की अनिवार्य शर्त बताया है। अपनी आत्मा पर स्वामित्व से बढकर दूसरी चीज ससार मे नहीं है। इसीलिए विभिन्न लेखक हमसे यह कहते हैं कि असली मनुष्य वह है, जो अपनी समस्त सांसारिक वस्तुएँ आत्मा की महिमा को अधिगत करने में लगा दे। उपनिषद् मे एक लबे प्रकरण मे बताया गया कि पति, पत्नी, सपत्ति सब अपनी आत्मा को अधिगत करने के अवसर मात्र है- आत्मनस्तु कामाय।

जो संयम द्वारा, निष्कलंक जीवन द्वारा इस स्थिति को प्राप्त कर ले, परमेष्ठी है। जो पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर ले, वह अर्हत् है- वह पुनर्जन्म की संभावना से, काल के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त है। महावीर के रूप मे हमारे समक्ष ऐसे व्यक्ति का उदाहरण है, जो सांसारिक वस्तुओ को त्याग देता है, जो भौतिक बधनो मे नही फसता, अपितु जो मानव आत्मा की आंतरिक महिमा को अधिगत कर लेता है।

कैसे हम इस आदर्श का अनुसरण करे? वह मार्ग क्या है जिससे हम यह आत्म-साक्षात्कार, या आत्मजय कर सकते हैं।

तीन महान् सिद्धान्त.

हमारे धर्म ग्रथ हमे बताते हैं कि यदि हम आत्मा को जानना चाहते हैं तो हमे श्रवण मनन, तथा ध्यान का अभ्यास करना होगा। भगवद् गीता ने इसी बात को यो कहा है- **"तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।"** इन्ही तीन महान् सिद्धांतो को महावीर ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चरित्र' के नाम से प्रतिपादित किया है।

हममे यह विश्वास होना चाहिए, यह श्रद्धा होनी चाहिये कि सासारिक पदार्थों से श्रेष्ठतर कुछ है। कोरी श्रद्धा से, विचारविहीन अधश्रद्धा से काम नही चलेगा। हममे ज्ञान होना चाहिए- **मनन।** श्रद्धा की निष्पत्ति को मनन ज्ञान की निष्पत्ति मे बदल देता है। किन्तु कोरा सैद्धान्तिक ज्ञान काफी नही है। **वाक्यार्थज्ञानमात्रेण** न अमृत-शास्त्र के शब्दार्थ मात्र जान लेने से अमरत्व नही मिल जाता। उन महान् सिद्धान्तो को अपने जीवन मे उतारना चाहिये। **चारित्र बहुत** जरूरी है।

हम दर्शन, प्राणिपात या श्रवण से आरम्भ करते हैं, ज्ञान, मनन या परिप्रश्न पर पहुँचते हैं, फिर निदिध्यासन, सेवा या चारित्र पर आते है। जैसा कि जैन तत्व चिंतको ने बताया है, ये अनिवार्य है।

अहिंसा का कार्य-क्षेत्र बढ़ायें

चारित्र यानी सदाचार के मूल तत्व क्या हैं? जैन गुरु हमे विभिन्न व्रत अपनाने को कहते है। प्रत्येक जैन को पाँच व्रत लेने पड़ते है- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। सबसे महत्वपूर्ण व्रत है अहिंसा, यानी जीवो को कष्ट न पहुँचाने का व्रत। कई इस हद तक इसे ले जाते है कि कृषि भी छोड देते हैं, क्योकि जमीन की जुताई मे कई जीव कुचले जाते हैं। हिंसा मे पूर्णत विरति इस ससार मे सभव नही है। जैसा कि महाभारत मे कहा गया है- **जीवो जीवस्य जीवनम्।** हमसे जो आशा की जाती है, वह यह है कि अहिंसा का कार्य-क्षेत्र बढाये- **यत्नाबल्पतरा भवेत्।** हम प्रयत्न करे कि बल प्रयोग का क्षेत्र घटे, रजामदी का क्षेत्र बढे। इस प्रकार अहिंसा हमारा आदर्श है।

वस्तु अनेक धर्मात्मक

यदि अहिंसा को हम अपना आदर्श मानते है, तो उससे एक और चीज निष्पन्न होती है, जिसे जैनो ने अनेकातवाद के सिद्धात का रूप दिया है। जैन कहते है कि **निर्भ्रांत** सत्य, केवलज्ञान- हमारा लक्ष्य है, परतु हम तो सत्य का एक अश ही जानते हैं। वस्तु 'अनेक धर्मात्मक' है, उसके अनेक पहलू हैं, वह जटिल है। लोग उसका यह या वह पहलू ही देखते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि आशिक है, अस्थायी है, **सोपाधिक** है। सत्य को वही जान सकता है, जो वासनाओ से मुक्त हो।

यह विचार हममे यह दृष्टि उपजाता है कि हम जिसे ठीक समझते हैं वह गलत भी हो सकता है। यह हमे इसका एहसास कराता है कि मानवीय अनुमान अनिश्चययुक्त होते हैं। यह हमे विश्वास दिलाता है कि हमारे गहरे से गहरे विश्वास भी परिवर्तनशील और अस्थिर हो सकते है।

जैन चिंतक इस बारे मे छह अधो और हाथी का दृष्टात देते हैं। एक अधा हाथी के कान छूकर कहता है कि हाथी सूप की तरह है। दूसरा अधा उसके पैरो का आलिंगन करता है और कहता है कि हाथी खभे जैसा है। मगर इनमे से हर एक असलियत का एक अश ही बता रहा है। ये अश एक दूसरे के विरोधी नही हैं। उनमे परस्पर वह सबध नहीं है, जो अंधकार और प्रकाश के

बीच होता है, वे परस्पर उसी तरह सबद्ध है जैसे वर्णक्रम के विभिन्न रग परस्पर सबद्ध होते है। उन्हे विरोधी नही विपर्याय मानना चाहिए। वे सत्य के वैकल्पिक पाठ्याक (रीडिंग) हैं।

आज ससार नवजन्म की वेदना मे से गुजर रहा है। हमारा लक्ष्य तो 'एक विश्व' है, परन्तु एकता के बजाय विभक्तता हमारे युग का लक्षण है। द्वद्वात्मक विश्व-व्यवस्था हमे यह सोचने को प्रलोभित करती है कि यह पक्ष सत्य है और वह पक्ष असत्य है और हमें उसका खडन करना है। असल मे हमे इन्हे विकल्प मानना चाहिए, एक ही मूलभूत सत्य के विभिन्न पहलू। सत्य के एक पक्ष पर बहुत अधिक बल देना हाथी को छूने वाले अधो के अपनी-अपनी बात का आग्रह करने के समान है।

विवेक दृष्टि अपनाये:

वैयक्तिक स्वातत्र्य और सामाजिक न्याय दोनो मानव-कल्याण के लिए परमावश्यक है। हम एक के महत्व को बढा-चढा कर कहे या दूसरे को घटाकर कहे, यह सभव है। किन्तु जो आदमी अनेकातवाद, सप्तभगिनय या स्याद्वाद के जैन विचार को मानता है वह इस प्रकार के सांस्कृतिक कठमुल्लापन को नही मानता। वह अपने और विरोधी के मतो मे क्या सही है और क्या गलत है, इसका विवेक करने और उनमे उच्चतर समन्वय साधने के लिए सदा तत्पर रहता है। यही दृष्टि हमे अपनानी चाहिये।

इस तरह, सयम की आवश्यकता, अहिसा और दूसरे के दृष्टिकोण एव विचार के प्रति सहिष्णुता और समझ का भाव- ये उन शिक्षाओ मे से कुछ है, जो महावीर के जीवन से हम ले सकते हैं। यदि इन चीजो को हम स्मरण रखे और हृदय मे धारण करे, तो हम महावीर के प्रति अपने महान् ऋण का छोटा-सा अश चुका सकेगे।

—— ○ ○ ○ ——

भगवान महावीर ने कहा है-

सव्वे पाणा पिआउया।
सुहसाया दुक्खपडिकूला।
अप्पियवहा, पियजीविणो।
जीविउकामा।
सव्वेसि जीविय पिय।
नाइवाएज्ज कचण।

-आचारांग सूत्र

अपना जीवन सभी प्राणियो को प्यारा है।
सुख सबको भाता है। दु ख सबको बुरा लगता है।
वध सबको अप्रिय लगता है। जीवन सबको प्रिय लगता है।
सब प्राणी जीवित रहना पसन्द करते हैं।
जीवन सभी को प्रिय है।
इसलिए किसी भी जीव को कष्ट मत दो। किसी भी जीव को सताओ मत। किसी भी प्राणी की हिंसा न करो।

विश्व-शान्ति की जननी-अहिंसा

जैनधर्मदिवाकर पू आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज

आज के युग का मानव कुछ आकुल-सा, अशान्त-सा रहता है। उसे अपने पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन मे कहीं शान्ति-माता के सुमङ्गल-दर्शन नही हो रहे। उसके चारो ओर वैर-विरोध और विद्वेष की एक धधकती दावाग्नि है, जिसमें मनुष्य की मनुष्यता भस्मीभूत हो रही है। विश्व के महाकाश पर अशान्ति की श्यामल घटाएँ घुमड रही है, हर ओर प्रलयकारी शक्तियाँ अपना मुँह बाए खडी है। मानव को अपने अस्तित्व की सुरक्षा मे भी आशकाएँ हो रही है। भला यह क्यो? यह महानाश का सागर क्यो उमड रहा है? हमारे बाह्य-जगत् मे इतनी हलचल क्यो हो गई है भला, आओ, हम इसका कारण तो खोजे क्योकि कारण के बिना कार्य की निष्पत्ति नही हो सकती।

इसमे कोई सदेह नही कि मनुष्य के दाये-बाये भोग के विपुल साधन बिखरे पडे है। विज्ञान ने प्रकृति को अपनी दासी-सी बना लिया है और प्रकृति भी अपने विराट सुख-साधन की पिटारी खोल कर सदैव मनुष्य की सेवा के लिए तत्पर रहती है। यह सब कुछ है, किन्तु फिर भी सुख नही, शान्ति और चैन नही। यही एक रहस्य है जिसका उद्घाटन हमे करना है।

यदि हम अपनी मनीषा का सूक्ष्मता की पुट देकर सोचे तो पता चलेगा कि व्यक्ति के अन्तर्जगत् का एक घनिष्ठ सम्बन्ध उसके बाह्य ससार से सदैव रहता आया है। क्योकि मनुष्य के मन की हर चेष्टा कुछ आगे बढकर उसकी वाणी और शरीर मे व्यक्त होकर कर्म के रूप मे सामने आती है तथा उस कार्य का एक व्यापक प्रभाव समूची मानव-समाज को अपनी लपेट से लपेट लेती है, क्योकि व्यक्ति और समाज फूल और डाली की तरह एक दूसरे से जुडे हुए है। इसलिए यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि सामाजिक द्वन्द्व असल मे मानव के अपने ही मानस लोक के वैषम्य का प्रतिबिम्ब है। अब भला यह भीतरी विषमता मिटे तो कैसे मिटे। मैं पूछता हूँ अधकार, धूप विराट होने पर भी एक ही क्षण मे कैसे मिट जाता है? आप कहेगे कि आकाश पर सूर्य के उदय होने पर तो बस हल हो गई समस्या आप भी अपने हृदय-गगन पर अहिंसा का भास्कर चमकने दीजिये और उसकी चमत्कृत रश्मियो को मन के कोने मे प्रसारित होने दीजिए। फिर तो यह राग द्वेष मूलक अन्तर्द्वन्द्व स्वय ही मिट जायेगा और वैषम्य के स्थान पर साम्य की स्थापना हो कर जीवन शान्ति-पुज बन जायेगा यही भाव आगम की गाथा मे भी झलकता है—

'तत्थ पढम अहिंसा, तस थावर सव्व भूय-खेमकरी,
तीसे सभावणाओ किंचि वोच्छ गुणुद्देस।'

प्रश्न व्याकरण प्रथम संवर द्वार- अर्थात पाँच सवरो मे अहिंसा प्रथम सवर है और यह अहिंसा त्रस स्थावर रूप समग्र विश्व के लिए क्षेमकारिणी है। भावनाओ के साथ इस अहिंसा का मैं आगे चलकर विवेचना करूँगा।

शास्त्र मे अहिंसा भगवती का कितना ऊँचा स्थान! कितनी गुण गरिमा!! ससार की अशान्ति-ज्वाला यदि शान्त हो सकती है तो केवल अहिंसा के सुखद वर्षण से। आज के भूले भटके प्राणी यदि एक बार अहिंसा की पगडन्डी पर बढ जाये तो स्वर्ग ही भूतल पर उतर आये। जरा देखिये आगम क्या कहता है—

ताणि उ इमाणि सुव्वयाइ, लोकहियसव्वाइ,
सूय-सागर-देसियाई, तव-सयम महव्वयाइ, सोल गुण
वरव्वयाइ सच्चज्जववयाइ नरगतिरिय-मणुय देव गति विवज्जकाइ
सव्व जिणसासणगाइ, कम्म-रय-विदारगाइ भवसयविणासणकाइ

दुहसयविमोयणकाइं, सुहसयपवत्तणकाइं, कापुरिसदुरुत्तराइं
सप्पुरिसनिसेवियाइं, निव्वाण गमण-मग्ग-सग्गपणायगाइं,
संवर-दाराइं पंच कहियाणि उ भगवया।

प्रश्न व्याकरण प्रथम संवर द्वार-सूत्र का यह पाठ आपके सामने है। पाँच संवर व्रतो का गुण कीर्तन कितने सुन्दर ढंग से किया गया है। यह प्रशस्ति-वचनावलियाँ आखिर अहिंसा के लिए ही है। क्योंकि अहिंसा व्रतो का मूल है। सदा मूल को सींचा जाता है न कि शाखा-प्रशाखा को। सत्य आदि व्रतो का विधान भी तो केवल अहिंसा के अखण्ड पालन के लिए है। इसीमे लोक का हित है। तप-संयम-शील, सत्य-सरलता आदि गुणो की जननी अहिंसा ही है। स्वर्ग-मोक्ष का सोपान भी अहिंसा ही है। सुख का यही पथ है। इस पर चलो तो हमारे बाहर-भीतर शान्ति ही शान्ति है।

——○ ○ ○——

** जीवन-सूत्र **

- *काल किसी की परवाह नही करता। इसलिए हमे चाहिए कि जिस क्षण मन मे शुभ सकल्प आएँ, उसी क्षण से उन्हे कार्यान्वित करने का प्रयत्न करे।*
- *दान, अध्ययन एव कर्म से व्यक्ति को कभी सन्तुष्ट नही होना चाहिए।*
- *सस्कारहीन शिक्षा निष्प्राण देह की सज्जा है और सस्कारयुक्त शिक्षा प्राणवान देह का शृगार।*
- *अनीति से उपार्जित धन प्राय शृगार या विलासिता मे खर्च हो जाता है।*
- *सन्तोष के बिना बढती हुई इच्छाओ एव तृष्णा का कोई भी अकसीर इलाज नही है।*
- *सुखरूपी फल प्राप्त करने के लिए धर्मरूपी बीज बोना आवश्यक है।*
- *जिनके साथ रहना है, उनसे मधुर सम्बन्ध बनाए रखने मे ही फायदा है।*
- *परिवार-जीवन मे सहिष्णुता के बिना सुख-शान्ति नही मिल सकती।*

-आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज

जैन धर्म जीवन धर्म है

आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज

जो व्यक्ति सस्कारिता, नागरिकता, राष्ट्रीयता आदि धर्मगुणो को अपने जीवन मे ताने-बाने की तरह बुन लेता है, वही व्यक्ति जीवन धर्म आत्म धर्म को सागोपाग जीवन मे उतार सकता है।

जीवन-धर्म का मर्म समझने का अर्थ है-आत्मा को पहचानना। ग्राम-धर्म, नगर-धर्म, राष्ट्र-धर्म आदि धर्म जीवन के अग-उपाग है। जहा तक समानता का आदर्श जीवन मे नही उतरता, वहाँ तक आत्मा की पहचान नही होती। और समानता का आदर्श जीवन मे उतारने के लिए सबसे पहले जीवन मे मानवता प्रकट करनी होती है। जब मानवता प्रकट होती है, तब मानव का ध्येय-मन्त्र बन जाता है- मैं मानव हूँ। मुझे मानवता समझनी चाहिए और मानव के लिए ही जीवित रहना चाहिए, क्योकि सभी धर्म महान् है, किन्तु मानवधर्म उन सब मे महान् है।'

जिसके जीवन मे, रग-रग मे मानवता व्याप जाती है, वह मानता है और समझता है कि धर्म मात्र मानव के लिए है। मानव को अधिक सस्कारी, अधिक सुन्दर, अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए धर्म है। अतएव जहाँ धर्म का पालन करने मे मानव के प्रति अन्याय होता हो, वहाँ धर्म को साधन रूप मानकर उसकी पुनर्योजना करना उचित है।

तमाम धर्म मानव-धर्म सीखने के साधन है। जो धर्म मानव के प्रति तिरस्कार उत्पन्न करता है, मनुष्य को मनुष्य से जुदा करना सिखलाता है, मानव को तुच्छ समझना सिखलाता है, वह धर्म नही है। धर्म मे ऐसी बातो को स्थान नही है।

मनुष्य धर्म का पालन करता है सो इसलिए नही कि वह अपने आपको ऊँचा ठहराने की कोशिश करे, बल्कि इसलिए कि वह वास्तव मे ऊँचा बने। धर्म-पालन का उद्देश्य उत्कृष्ट मनोदशा प्राप्त करना है, जिसमे विश्व बन्धुत्व का भाव मुख्य होता है। 'मित्ती मे सव्वभूएसु वैर मज्झ ण केणई' अर्थात् समस्त प्राणियो के प्रति मेरा मैत्रीभाव-बन्धुभाव है किसी के साथ मेरा वैर-विरोध नही है। जैसे सच्ची महत्ता सादी होती है, उसी प्रकार यह महान् मानव-धर्म भी सरल और सादा होता है। इसे एक ही वाक्य 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' मे प्रकट किया जा सकता है।

तुम्हारे लिए जो अनिष्ट है वह दूसरे के लिए भी अनिष्ट है। अगर तुम सडा पानी नही पी सकते हो, दूसरा मनुष्य भी उसे नही पी सकता। अगर तुम अपनी बीमारी मे दूसरो की सहायता चाहते हो, दूसरा भी यही चाहता है।

अगर मनुष्य इतना सीधा-सादा मानव धर्म समझ ले और अपने समस्त साधन इस धर्म का विकास करने के लिए ठान ले तो फिर धर्म सम्बन्धी अधिक ज्ञान इसी मे उसे मिल जायगा, धर्म सम्बन्धी विधि-विधान खोजने के लिए उसे इधर-उधर नहीं भटकना पडेगा। मानव धर्म इतना सादा है कि घडी भर मे सब सीख सकते है, फिर भी मानव धर्म मे रहने वाली गहनता इतनी उदार और भव्य है कि वह जीवन भर की शुद्धि की माँग करती है। जीवन धर्म का आदर्श विकारो को जीतना और विश्वबन्धुता सीखना है।

आत्मा को पहचानना अथवा जीवन धर्म का मर्म समझ लेना सरल काम नही है। क्योकि मानव समाज युग-युगान्तर से वासनाओ, अज्ञानता, सम्मूढता, अश्रद्धा आदि आन्तरिक शत्रुओ द्वारा बाह्य शत्रुओ की अपेक्षा कही अधिक पीडित है, त्रस्त है

विरतम वासनाओ पर विजय प्राप्त करना साधारण मनुष्य के लिए सरल नही है। आत्म-विजय के लिए जीवनोत्सर्ग करने की क्षमता, असीम अहिंसा, त्याग, ज्ञान, तप आदि आत्मिक बल की अपेक्षा है। आत्म-बल के अभाव मे जीवन युद्ध नही खेला जा सकता। अतएव आत्म-बल के द्वारा पुरुषार्थ पूर्वक जीवन-युद्ध करके विकार शत्रुओ को पराजित करके, दुर्दम आत्मा का दमन करना लाखो सुभटो को जीतने की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। संसार को आत्म-विजय का जय-नाद सुनाने वाला और स्वतन्त्रता का राजमार्ग दिखलाने वाला जय शील धर्म ही जैन धर्म कहलाता है।

जीवन मे जैनत्व प्रकट करना आत्म गवेषणा की मूल चाबी है, क्योकि जैन धर्म विश्व विजेता का धर्म है, आत्म-विजय करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए विकार विजयी क्षत्रिय वीरो का विजय-धर्म जैन धर्म है। युद्ध मे वीरता दिखलाकर, विजेता के रूप मे क्षत्रिय वीर प्रसिद्ध है, मगर उनकी विशेष प्रसिद्धि और महत्ता तो इस बात मे है कि उन्होने जीवन-सग्राम में वासना आदि आन्तरिक शत्रुओ पर विजय प्राप्त की थी और विजयधर्म-जैनधर्म का प्रचार किया था। ससार को आत्म-स्वातन्त्र्य का विजय-नाद सुनाने वाले ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक, चौबीस तीर्थंकरो ने जगत के जीवो को बन्धनो से मुक्त होने का स्वतन्त्र बनने का जो विजय मार्ग बतलाया है, वही विजयमार्ग, जैनधर्म है। भगवान् ऋषभदेव तथा महावीर आदि तीर्थङ्करो ने आत्म विजय के जो मन्त्र जगत् को सिखलाए उनका सक्षिप्त सार यह है—

(१) **पहला विजयमन्त्र-** स्वतन्त्र बनो, स्वतन्त्र बनाओ और स्वतन्त्र बने हुए महापुरुषो के चरण चिन्हो पर चलो।
(२) **दूसरा विजयमन्त्र-** पराधीन मत बनो, पराधीन मत बनाओ, पराधीन का पदानुसरण मत करो।
(३) **तीसरा विजयमन्त्र-** सघ-शक्ति को सुदृढ बनाओ।
(४) **चौथा विजयमन्त्र-** सघ शक्ति को पुष्ट बनाने के लिए विवेक बुद्धि का उपयोग करो, कदाग्रह बुद्धि को स्थान दो।
(५) **पाँचवाँ विजयमन्त्र-** अपनी आत्मिक शक्ति मे दृढ विश्वास रक्खो, बाहर की लुभावनी शक्ति का भरोसा मत करो। विजय की आकाक्षा मत त्यागो और विजय प्राप्त करते चलो।

उल्लेखित विजयमत्रो के आधार से जैन धर्म का मुख्य सिद्धात इस प्रकार फलित होते हैं—

(१) **आत्म स्वातन्त्र्य अहिंसावाद-** छोटे-बडे सभी प्राणियो की आत्मा स्वतन्त्र है। किसी को किसी की स्वतन्त्रता छीनने का कोई अधिकार नही है। कीडो से कुजर तक सभी छोटे-मोटे जीवधारी आत्म स्वातन्त्र्य की दृष्टि से समान है। अतएव किसी भी प्राणी को स्वार्थ के खातिर, मोक्ष प्राप्ति या धर्म के बहाने से मारने का बलिदान् करने का घात करने का अथवा उसे कष्ट देने का किसी को अधिकार नही है।

सभी जीना चाहते हैं, मरना कोई नही चाहता। सभी निर्भय रहना चाहते हैं। अतएव निर्भय रहो, दूसरो को निर्भय बनाओ और निर्भय बनने वालो की मदद करो। अहिसा परमो धर्म इस सनातन धर्म का मूल आत्मस्वातन्त्र्य के इसी सिद्धात मे निहित है। आत्मस्वातन्त्र्य या अहिंसावाद का यह पहला विजय मन्त्र है।

(२) **कर्मवाद**—निसर्गत स्वाधीन आत्मा कर्म बन्धनो मे जकड कर पराधीन हो रहा है। कर्म की बेडी काटकर पराधीन आत्मा क स्वाधीन बनाना मानव-पुरुषार्थ की सार्थकता है। किसी भी प्रकार की पराधीनता के आगे, चाहे वह सामाजिक हो या धार्मिक हो, नतमस्तक नही होना चाहिए। यही नही, साक्षात् ईश्वर की भी पराधीनता अगीकार करने योग्य नही है। जहाँ स्वाधीनता है वहा सुख है। दु ख कौन चाहता है? सभी सुख चाहते दिखाई देते हैं। तो शाश्वत सुख की अभिलाषा करने वाले को कर्मों की पराधीनता हटानी चाहिए। सुख-दु ख मनुष्य के हाथ मे है। कृत कर्म के अनुसार सुख-दु ख की प्राप्ति होती है। कोई अलौकिक शक्ति, सुख-दु ख नही देती। कर्म के प्रताप से ही आत्मा दु खी होती है। ज्यो-ज्यो कर्म क्षीण होता चलता है त्यो-त्यो आत्मा सुखी बनती जाती है।

(३) **सघशक्ति-सघधर्म**—जीवन-सग्राम मे विजय प्राप्त करने के लिए ऐक्यबल या सघशक्ति की परमावश्यकता है। ऐक्यबल के बिना जीवन की साधना दुष्कर हो जाती है, अतएव सघशक्ति की बडी आवश्यकता है। सघबल एकत्र करना आत्म-विजय प्राप्त करने का श्रेष्ठ साधन है।

(४) समन्वयबुद्धि-अनेकान्तवाद—अपने विरोधियों को काबू मे करने का और साथ ही उनके प्रति न्याय करने का अमोघ साधन अनेकान्तवाद है। वह विरोधी पक्ष को समझने-समझाने का और अपने पक्ष को परिपूर्ण एव सुदृढ बनाने का प्रबल साधन है। अनेकान्तवाद अपने विरोधियो को भी अमृतपान कराकर अमर बनाता है। अनेकान्तवाद को सीधी-सादी भाषा मे विवेकबुद्धि या समन्वयबुद्धि कहा जा सकता है। विवेक की गैरमौजूदगी मे धर्म, अधर्म बन जाता है और अनेकान्त दृष्टि के अभाव में भी धर्ममय कृत्य, अधर्ममय बन सकता है। अनेकान्त, विचार-वृक्ष का सुफल है। अनेकान्तवाद जैनधर्म की विशेषता है, फिर भी ससार का कोई विचारक उसकी उपयोगिता को अस्वीकार नहीं कर सकता।

अनेकान्तवाद, अज्ञान का अधकार दूर करके ज्ञान का प्रकाश करता है। इससे विजय प्राप्त होती है। अहिंसा और अनेकान्तवाद का सगम आत्मविजय के लिए अनिवार्य है।

(५) आत्मविश्वास—विजयकाक्षी बनकर आत्मविश्वास पूर्वक प्रयत्न करना आत्मविजय का मूलमन्त्र है। आत्मविश्वास को जैन परिभाषा मे 'सम्यक्त्व' कहा जाता है। विश्वास के अभाव मे आत्मविजय होना सभव नही है। आत्मशक्ति मे सपूर्ण विश्वास के साथ प्रवृत्ति करते चलने मे ही आत्मविश्वास है। बाहर की किसी भी शक्ति का भरोसा रखकर प्रवृत्ति करने से आत्मविजय प्राप्त नहीं हो सकती। याद रखो, कोई भी जड शक्ति तुम्हारे भीतर प्राण नही डाल सकती।

जिसे आत्मविश्वास प्राप्त है, वह विश्व-विजेता बन सकता है। जो धर्म विश्व विजय का ऐसा अमोघ विजय-मन्त्र सिखलाता है, वह धर्म किसी एक फिरके का नही, मानव मात्र का सपूर्ण जगत का धर्म हो तो उसमे आश्चर्य ही क्या है?

जिस धर्म का अनुसरण कर आत्मा जैसी अगम-अगोचर वस्तु का वैज्ञानिक दृष्टि से साक्षात्कार कराता है, वह धर्म जगत को विश्वमैत्री एव निर्वैरवृत्ति के द्वारा स्नेह के सूत्र मे बाँध दे और वैज्ञानिक सत्य का सफलता पूर्वक अन्वेषण करके जगत को नवीन आविष्कारो से चकित करे, यह स्वाभाविक है।

इस प्रकार जिस व्यक्ति के जीवन मे विश्वबन्धुत्व विश्व मैत्री अर्थात् 'जैनत्व' प्रकट हो जाता है, वह जीवन-धर्म, आत्म-धर्म को साक्षात् करता है। वह अनखोजे की खोज करके और खोजे हुए जीवन के साथ एकरस करके आत्मशुद्धि प्राप्त करता है।

सर्वे सुखिन सन्तु, सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दु खमाप्नुयात् ।।

सब जीव सुखी हो। सब जीव निरोगी हो। सब का कल्याण हो। कोई दु ख का भागी न हो। जीवन-धर्म का यह ध्येय-मत्र है।

——○ ○ ○——
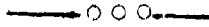
विनीत कौन?

आणानिद्देसकरे, गुरूणमुववायकारए।
इगियागारसम्पन्ने से विणीए त्ति वुच्चई ।।उत्तरा।।

जो गुरुजनो की आज्ञाओ का यथोचित पालन करता है, उनके निकट सम्पर्क मे रहता है, उनके हर सकेत व चेष्टा के प्रति सजग रहता है, वह विनीत कहलाता है।

विज्ञानयुग की अहिंसा

डॉ. दौलतसिंह कोठारी

मानव-समाज का इतिहास ही अहिंसा का इतिहास है क्योंकि हिंसा का इतिहास, अलग-अलग वर्गों के बीच लडाई-झगडे का इतिहास, पशुजन्य प्रवृत्ति का द्योतक है। किन्तु अहिंसा का इतिहास बतलाता है कि अलग-अलग देशो मे रहने वाले अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाले, विभिन्न धर्मावलम्बी , अलग-अलग राजनैतिक दृष्टिकोण रखने वाले महापुरुष अहिंसा और ज्ञान की खोज मे एक रहे हैं और एक ही रहेंगे।

आज के जमाने मे विज्ञान की प्रगति के कारण कुछ ऐसा लगता है कि भविष्य का युग विज्ञान और अहिंसा का युग होगा। इससे इन्कार नही किया जा सकता कि भारत की ससार को सबसे बडी देन आध्यात्मिकता और विशेषकर अहिंसा के क्षेत्र मे रही है। आधुनिक युग मे गाँधीजी ने अहिंसा द्वारा सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की समस्याओ को सुलझाने का प्रयत्न किया। यह उनका ही काम था कि उन्होने और उनके सहयोगियो ने राष्ट्रीय पैमाने पर अहिंसा द्वारा हिंसा का मुकाबला किया। अपनी साधना के द्वारा देश मे अहिंसा के वातावरण का निर्माण किया और जिसके कारण भारत को आजादी मिली। और उन्होंने तो अपनी 'आत्मकथा' तक का नाम 'सत्य के प्रयोग' रखा था। सचमुच जीवन को प्रयोगशाला समझना बडी बात है। स्वर्गीय प्रसिद्ध जीव-शास्त्री डॉ हेल्डेन अपने जीवन को एक प्रयोगशाला समझते रहे और उन्होंने अपने शरीर पर अनेक प्रयोग किये। यह तभी हो सकता है जब जीवन मे कम से कम परिग्रह हो। क्योकि आदमी उसी हद तक अपने जीवन को प्रयोगशाला बना सकता है और दूसरो की सेवा कर सकता है जिस हद तक वह जीवन मे अपरिग्रह और अनासक्ति को अपना सकता है। लेकिन जब मनुष्य अपनी इच्छाओ का दास बन जाता है और उसके मोह-जाल मे फँस जाता है तो उसके मन मे सेवा का भाव उदय होने पर वास्तविक जीवन मे सेवा करना कठिन हो जाता है। अहिंसा के क्षेत्र मे बनावटीपन और प्रदर्शन का कोई स्थान नहीं होता। बनावटीपन तो वैसे भी बुरा होता है किन्तु यदि वह धर्म, सस्कृति और अध्यात्म के क्षेत्र मे प्रवेश कर जाता है तो इससे नैतिक मूल्यो मे हानि और गिरावट होती है। अहिंसा का इतिहास वह इतिहास है जिसके बनाने मे सुकरात ने, महावीर ने, ईसा ने और बुद्ध ने भाग लिया था और जिसकी परिणति इस युग मे महात्मा गाँधी और विनोबा भावे मे हुई।

अहिंसा का वही पालन कर सकता है जो अभय हो। जिस मात्रा मे हम निडरता प्राप्त करते हैं उसी मात्रा मे हम अहिंसक होते हैं।

विज्ञान के अनुसार कहा जा सकता है कि पृथ्वी पर लगभग दो अरब साल पहले सबसे आदिम जीवन का विकास हुआ होगा। विज्ञान के द्वारा इस बात का भी पता चला है कि सीधे खडे होने वाले वनमानुष से लेकर मनुष्य तक विकसित होने का सक्रमणकाल लगभग एक-डेढ करोड वर्ष है। इस सक्रमणकाल की विशेषता थी मनुष्य के दिमाग का विकसित होना और विशेष रूप से मस्तिष्क के अग्र ललाट या फ्रन्टल लोब का विकास। नई खोजो से पता चला है कि मस्तिष्क के इस अग्र ललाट का विकास तेज रफ्तार से हुआ और २०-३० लाख वर्षों मे पूरा हो गया। अग्र ललाट मस्तिष्क का वह भाग है जिसका विशेष सम्बन्ध मनुष्य के सहयोग, शालीनता और सहकार गुणो से है। विज्ञान की सहायता से मनुष्य की औसत आयु तमाम ससार मे बढ गई है और विज्ञान के क्षेत्र मे ससार के सभी देशो मे इतने बडे पैमाने पर सहयोग हो रहा है, जितना कि पहले कभी नहीं हुआ था। मनुष्य निकट भविष्य मे ही अपने प्रजनन पर नियत्रण करने की दिशा मे सफल हो सकेगा, यह आज के प्रयोगो ने सिद्ध कर दिया है। विज्ञान की खोजो से यह तो प्राय निश्चित हो चुका है कि केवल इस पृथ्वी पर ही बुद्धिमान प्राणी नहीं रहते। इतनी तेजी से बढते हुये विज्ञान के युग मे मनुष्य-जाति के लिये आज यह सबसे सजीव और जरूरी प्रश्न हो गया है कि अहिंसा और विज्ञान का समन्वय कैसे किया जाये या यो कहिये कि मनुष्य के भौतिक विकास और उसके आध्यात्मिक विचारो

मे जो असन्तुलन पैदा हो गया है, जो खाई बन गई है, उसको कैसे पाटा जाये। मनुष्य इस विराट समस्या को यदि आने वाले कुछ वर्षों मे हल नही कर सका तो यह एक भयकर सत्य है कि आणविक युद्ध या इसी तरह के सघर्ष द्वारा सम्पूर्ण मानव समाज नष्ट हो जायेगा क्योंकि जिस अनुपात मे आज परमाणु अस्त्रो की दक्षता, क्षमता और कर्मकुशलता बढती जाती है, आधुनिक राष्ट्रो की सुरक्षा और बचाव की क्षमता उसी अनुपात मे कम होती जाती है। उदाहरण के लिये यदि १९५० के लगभग उस समय तक विकसित परमाणु अस्त्रो के आणविक हमले से दोनो गुटो के हताहतो की सख्या लाखो तक सीमित होती और यदि इसी प्रकार का आणविक हमला १९६० के लगभग होता तो परमाणु अस्त्रो का इतना विकास हो गया था कि दोनो ओर के हताहतो की सख्या करोडो तक होती। आज तो परमाणु अस्त्रो का इतना विकास कर लिया गया है कि आज के एक आणविक युद्ध मे दोनो गुटो के हताहनो की सख्या दस-बीस करोड तक पहुँचेगी।

आज हम एक ऐसे चौराहे पर खडे हैं जहाँ से हम चाहे तो ऐसी दुनिया मे प्रवेश कर सकते हैं जो विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय से बनने वाली है या चाहे तो ऐसे रास्ते पर जा सकते है जहाँ सम्पूर्ण मानव समाज अपने से टकराकर चकनाचूर हो जायेगा। हमे कौन सा रास्ता चुनना है यह सोचने मे हम जितनी देरी करेंगे उतना ही सकट बढता जायेगा। मनुष्य से अपने प्रयत्नो से ऐसी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ प्राप्त कर ली हैं जिनके कारण वह आज एक विराट विश्व का नागरिक बनने जा रहा है। शर्त यह है कि अपनी मूर्खता से कही परमाणु अस्त्रो के सर्पिलाकार भँवर मे न फँस जाये। इसलिये आज जो भी छोटे से छोटा काम होगा, वह निश्चय ही हमे सकट से दूर करने मे सहायता करेगा।

१९५५ मे ससार के प्रसिद्ध वैज्ञानिको और दार्शनिको ने, जिनमे डॉ अल्बर्ट आइस्टाइन, बरट्रेड रसल, डॉ एच जे मूलर, प्रो एच युकावा और प्रो मैक्सबोर्न शामिल थे , परमाणु शक्ति के गलत उपयोग के बारे मे वक्तव्य देते हुये कहा था—"यदि हम सदैव के लिये युद्ध से विमुख हो जाते हैं तो हम एक ऐसा समाज-निर्माण कर सकते हैं जिसमे आनन्द, ज्ञान और बुद्धि की सतत् प्रगति हो सकती है। तो क्या हम इस स्वर्गीय आनन्द के बदले विनाशक मृत्यु का वरण इसलिये करना चाहते हैं क्योकि हम अपने झगडे समाप्त नही कर सकते। हम आपसे मनुष्य होने के नाते, मनुष्यता के नाम पर यह निवेदन करते है कि आप सब कुछ भूलकर केवल अपनी मानवता को याद रखे।

——○○○——

ज्ञान स्वयं प्रकाशमान है

ज्ञान प्रकाश है, अज्ञान अधकार है। ज्ञान स्वय प्रकाशमान है। ज्ञान का प्रकाश सूरज के प्रकाश से भी श्रेष्ठ है। ज्ञान का प्रकाश दिन मे तथा रात मे भी मार्ग दिखलाता है। ज्ञान का प्रकाश नेत्रहीनो को अन्तर्दृष्टि देता है।

अज्ञान पाप को जन्म देता है। उसके रहते आत्म-कल्याण नही हो सकता। ज्ञान की आराधना सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार मे सहयोग देकर करनी चाहिए। ज्ञान पर पडे आवरण को हटाने मे पुरुषार्थ करना चाहिए।

-आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म

विश्व समस्या और जैन जीवन

श्री जैनेन्द्रकुमार

जैन जीवन बिखरा हुआ है। उसमे एकता नही है। पहले दो सम्प्रदाय हैं फिर उप सम्प्रदाय हैं। कोई सस्था ऐसी नही है, जो सब जैनो की अपनी कही जा सके। परिणाम यह है कि जैन लोग हर दिशा और हर रूप मे सपन्न होते हुए भी उनका समग्र जीवन बलशाली नही है। जैन धर्म के तत्वों का महत्व भी अज्ञात–सा है, जबकि दुनिया के आज के हाल को देखते हुए उन तत्वो के प्रकाशन की बहुत ही आवश्यकता है।

अहिंसा को यदि किसी ने अथक भाव से बल दिया तो जैन–धर्म ने। लोगो को शिकायत रही है कि शायद वहाँ उसकी 'अति' हो गई हो, लेकिन आज जबकि विज्ञान ने अणुशक्ति प्रकट कर दी है, अहिंसा की अनिवार्यता से मुँह नही मोडा जा सकता। अहिंसा को सापेक्ष से आगे परम धर्म मानना ही होगा। उस सबध की असावधानी भारी विपत्ति ला सकती है।

कहने की आवश्यकता नही कि हिंसा का रास्ता सफल नही हुआ है। विरोधी को उससे मिटाया जा सकता है, पर विरोध नहीं मिटता। वह अपने अदर से फूट आता है। इतिहास हमे यही बताता है। मामूली तौर पर जान पडता है कि अवरोध दूर हुआ नही कि प्रगति हमारी खुल आएगी और बाधा के और अवरोध के रूप मे हमे सदा अपने से भिन्न दूसरा ही दिखाई देता है। इस तरह हम स्वय अपने दोष से लडने के बजाय दूसरे पर टूटते हैं। विजय पाकर थोडी देर के लिए भूल जाते हैं और अपने को सफल मान लेते हैं। पर वही सफलता आगे विफल दिख पडती है और मालूम होता है कि उससे कषाय का ऐसा विषम चक्र शुरू हो गया कि उससे छुटकारा मुश्किल होगा।

ससार की और ससारी प्राणी की यही गति है। धर्म इसी जगह उसे सहारा दे सकता है।

जैन धर्म विजय का धर्म है, लेकिन विजय अपने पर, अपनी इन्द्रियो पर, वासनाओ पर। यह विजय परम दुर्लभ है। जिसने इसे साधा, वह जिन कहलाया। इसी साधना का धर्म है जैन धर्म।

धर्म मे ही इस तरह निस्तार है लेकिन सच यह है कि आज के पढे–लिखे आदमी मे उस धर्म के प्रति सबसे अधिक अश्रद्धा है। मानो यह स्वीकृत है कि धर्म प्रतिगामी है और प्रगति उसे छोडने मे है। वह बढने से रोकता है और हमारी आँखे भविष्य की ओर नही होने देता, अतीत मे गाडे रखता है।

धर्म के बारे मे यदि ऐसा लोकमानस हो। और मानना होगा कि है, तो इसका दोष धर्मानुयायियो को स्वीकार करना चाहिए। धर्म यदि उनके जीवन से ज्वलत होकर प्रकट होता, स्वार्थ की जगह उनमे से बलिदान की भावना निखरी होती, तो कभी लोकमत वैसा न बन सकता।

प्रश्न है कि धर्म, जो चैतन्य को प्रबुद्ध करता है और जडता को जलाता है, वही जडता का आलबन कैसे बन जाता है? यह कि धर्म के नीचे जगह–जगह जडता का पोषण हो रहा है, विवादास्पद नही है। वह इतना साफ है।

कारण बहुत सीधा है, यद्यपि कुछ सूक्ष्म है। वह यह कि हम स्वय धर्म का बनने के बजाय धर्म को अपना बनाते हैं, अर्थात धर्म के प्रति अपने स्वत्व का विसर्जन नहीं करते, अपने स्वत्व को उस पर थोपते हैं। नतीजा होता है कि धर्म हमारे जितना छोटा हो आता है। कहाँ तो उसके सहारे हमे विराट होना था, कहाँ हमारे आश्रित वही क्षुद्र हो आता है।

इस सूक्ष्म भेद को हम पहचान ले तो समस्याए खुल आती हैं और समाधान की राह दीख आती है।

सम्प्रदाय कोई गलत नही है। छोटी से छोटी शाखा उसकी गलत नहीं है। जैसे आत्मा देह के सहारे टिकती है वैसे धर्म संप्रदाय में मे प्रकट होता है। यह मारा कि दुनिया मे धर्म एक हो, भ्रान्त है। भ्रान्त इसलिए कि आत्मा की ओर से तो वह सदा ही एक रहा है और एक रहेगा। अभिव्यक्ति की ओर से उसकी अनेकता सह्य ही नही, बल्कि हमे उचित और आदरणीय लगनी चाहिए। शरीर से हम अलग है, इसी मे हमारी परीक्षा है। अगर इस प्रकार अलग होकर भी हम आपस मे मन की एकता साध पाते हैं तो यही हमारा पुरुषार्थ है।

अनेकता में ही हमे एकता को साधना है। उस दीखने वाली अनेकता को हठपूर्वक खडित करने की पद्धति से ऐक्य सधेगा, यह मानना विडम्बना है।

सम्प्रदाय गलत नही है, गलत साप्रदायिकता है। मैं गलत हो जाता हूँ, अगर अहन्ता से चलता हूँ। सेवा–भाव मे चल सकूँ तो ऐसे 'मुझ', को ही सार्थकता मिल जाती है।

जैन धर्म अहिंसा का धर्म है। अहिंसा की सामाजिक व्याख्या अपरिग्रह है। जैन धनाढ्य गिने जाते हैं। अब यह भी हो सकता है कि जैन लोग धर्म को अपनी धनाढ्यता ओढ़ा दे या फिर दूसरा मार्ग यह है कि वे धर्म की अपरिग्रहता अपने भीतर उतार ले। अपरिग्रहता मे धन कही जाता नही है, उसकी ममता और परिणाम मे मिलने वाला सक्लेश ही समाप्त हो जाता है। हम निश्चय रखे कि धर्म हमारे आगे भिक्षार्थी नही है। वह मूल शक्ति है। अगर अपरिग्रह धर्म है, तो चाहे–अनचाहे उसका विस्तार होगा। सोशलिस्ट पैटर्न की बात किसने नही सुनी! जैन शास्त्र मे कथन होने के कारण ही अपरिग्रह धर्म नही है। धर्म वह इस कारण है और उसका कथन भी शास्त्र मे इसी कारण है कि वह अपरिग्रह जीवन विकास मे अनिवार्य नियम रूप से अतर्मुख है।

आज की प्रचलित विचारधारा धर्म को स्थापित स्वार्थ की ढाल बताती है। मेरी प्रतीति है कि वह विचारधारा सम्यक नही है। उसके आदोलन और प्रचार से स्वार्थ गिरे नही है। बल्कि वे और सगठित और विस्तृत ही हुए है। पश्चिम मे हर कुछ वर्षों के बाद उठने वाली लड़ाइयाँ उसकी प्रमाण हैं। स्वार्थ का गलन व्यक्ति की इकाई से ही आरभ होगा। उसका उपाय अगर है तो धर्म के पास है। सब धर्मों के पास है, क्योकि सार की ओर से सब धर्म एक हैं। सब मानव, व्यष्टि की परमात्मसमष्टि मे मुक्ति को ध्येय मानते हैं।

धर्म के पास वह उपाय है, लेकिन जो धर्म को मानने वाला धार्मिक है, उसके जीवन से वह प्रकट नही हो सकेगा तो वह सम्यग्दर्शन भी शकालीन को कभी प्राप्त न होगा। यह चुनौती धर्म मे मानने वाले हर व्यक्ति को स्वीकार करनी होगी, अन्यथा धर्म–सिद्धात चाहे जितने ध्रुव हो, धर्म सस्था के मिटने से बचाया नही जा सकेगा।
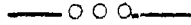
पवित्रता की कसौटी

अगर अनुचित लोभ–लालच मे फँसे नही हो, दिन–रात हाय पैसा, हाय पैसा नही करते रहते हो, बल्कि न्याय–नीति के साथ निर्वाह के योग्य धन उपार्जन करके सतोष मान लेते हो और परमात्मा के भजन के लिए समय बचा लेते हो। बडे–बडे प्रलोभनो के सामने होने पर भी मर्यादा से नही गिरते और धर्म के पथ पर अग्रसर होते चले जा रहे हो, तो नि सदेह तुम्हारा मन पवित्र है।

-जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म.

विश्व शान्ति के तीन सूत्र

श्री शांतिलाल व सेठ

अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह- ये विश्व–शान्ति के तीन महान अमोघ सूत्र हैं। वास्तव मे अहिंसा ही मुख्य सूत्र हैं। शेष अपरिग्रह और अनेकान्त दोनो अहिंसा की भौतिक अभिव्यक्ति और बौद्धिक व्याख्या ही हैं। इसलिए इसी अहिंसा–भावना को जन–मानस मे प्रतिष्ठित किया जाए तो शेष दोनो सिद्धांतो का आचरण सरल हो सकता है। इसलिए अहिंसा का अनुसधान आज नए प्रकार से, नई और व्यापक दृष्टि से करना आवश्यक हो गया है।

विश्व–शान्ति की स्थापना के लिए अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह के जो उपाय बताए गए हैं, वास्तव मे विश्व–शान्ति के मूलाधार हैं। यदि इन तीन अहिंसक उपायो की उपेक्षा की जाए तो विश्व मे प्रलय फैल जाए और ससार की स्थिति नारकीय जीवन से भी भयकर बन जाए। आज ससार मे जो थोडी बहुत सुख–शान्ति दृष्टिगोचर होती है, उसका मुख्य श्रेय भी अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह इस त्रिरत्न को ही प्राप्त है। इस त्रिरत्न को जितने प्रमाण मे जीवन मे अपनाया जाएगा, उतने प्रमाण मे विश्वशान्ति और विश्वमैत्री का प्रसार होगा।

ससार के प्राय सभी महापुरुषो ने उक्त तीन विश्व–शान्ति के साधनो को जीवन मे अपनाने की प्रेरणा दी है और अपने धर्म मे प्रतिष्ठित स्थान दिया है। प्राय सभी भारतीय धर्मो ने अहिंसा को परमधर्म के रूप मे स्वीकार किया है।

अनेकान्तवाद मतभेद या विचारसघर्ष द्वारा जो शक्ति क्षीण होती है, उससे बचाता है। साथ ही विचार–भिन्नता होते हुए समन्वय करने की जीवनदृष्टि देता है। अपरिग्रह यह तो अपने जीवन मे तो स्वार्थवृत्ति और दूसरो के शोषण करने की वृत्ति बढ रही है, उसको अकुश मे लाने का और सतोषमय जीवन व्यतीत करने का पथ–प्रदर्शित करने वाला सर्वोत्तम साधन सिद्ध हुआ है।

जीवन-अस्तित्व का मूलाधार की अहिंसा है। उसकी बौद्धिक व्याख्या स्याद्वाद (विभिन्न मतो का सश्लेषण) है और उसका भौतिक रूप अपरिग्रहवाद (अर्थात मानवीय आवश्यकताओ और कामनाओ को सीमित करना) है। अनेकांत और अपरिग्रहवाद के रूप मे अहिंसा का व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्तर पर, बौद्धिक और कायिक पालन होगा। तभी निश्चय ही हम विश्व-शांति के अहिंसापथ पर प्रस्थान कर सकेगे।

जब जीवन मे स्वार्थ और सघर्ष की भावना ही समाप्त हो जाएगी, तब अहिंसा-प्रेमवृत्ति का स्रोत फूट पडेगा। अहिंसा की यह पावन गगा अवतरित और प्रवाहित करने का भगीरथ कार्य वर्तमानयुग मे महात्मा गाँधीजी ने किया है।

अहिंसामूर्ति महावीर, करूणामूर्ति महात्मा बुद्ध और प्रेमावतार ईसामसीह के बाद महामानव के रूप मे महात्मा गाँधीजी ने अहिंसा का सत्य-प्रयोग करके राष्ट्र जीवन मे अहिंसा की पावन-गगा प्रवाहित की है। अहिंसा का विश्वरूप प्रकाशित करने मे उन्होने अहिंसा-धर्म व रचनात्मक कार्य का नया ही मूल्याकन किया है।

———○ ○ ○———
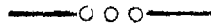
दर्शन और विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में पुद्गल : एक विश्लेषणात्मक विवेचन

राष्ट्रसंत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज

'पुद्गल' शब्द दार्शनिक चिन्तन के लिए अनजाना नही है। न्याय-वैशेषिक दर्शन जिसे भौतिक तत्व और साख्य प्रकृति नाम से कहते हैं, उसे जैन दर्शन मे पुद्गल सज्ञा दी है। बौद्धदर्शन मे पुद्गल शब्द का प्रयोग आलयविज्ञान, चेतना-सतति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैनागमो मे भी उपचार से पुद्गल युक्त (शरीरयुक्त) आत्मा को पुद्गल कहा गया है। परतु सामान्यतया प्रमुखता से पुद्गल शब्द का प्रयोग अजीव मूर्तिक द्रव्य के लिए हुआ है। विज्ञान के क्षेत्र मे भी पुद्गल (मैटर Matter) और इनर्जी (Energy) शब्दो द्वारा जाना समझा जाता है। विज्ञान के समग्र विकास, सशोधन आदि का आधार पुद्गल ही है। परमाणु के रूप मे जो पुद्गल का ही भेद है, तो पुद्गल ने आज समस्त विश्व मानस पर अपना अधिकार जमा लिया है। परमाणु की प्रगति ने तो विश्व को उसकी शक्ति, सामर्थ्य आदि से परिचित होने के लिए जिज्ञासाशील बना दिया।

दर्शन के क्षेत्र मे पुद्गल के विषय मे क्या, कैसा, चिन्तन, मनन और निर्णय किया गया एव विज्ञान के क्षेत्र मे पुद्गल परमाणु के रूप मे कब आया, उसका आविष्कर्ता कौन था और अब तक विकास के कितने सोपानो को पार कर किस मजिल तक पहुँच सका है? आदि इन दोनो पक्षो को एक साथ यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

दर्शन पक्ष

पाश्चात्य जगत की यह धारणा रही है कि पुद्गल परमाणु सम्बन्धी पहली बात डेमोक्रेट्स (ई पू ४६०-३७०) नामक वैज्ञानिक ने कही थी। लेकिन पौर्वात्य दर्शनो और उनमे भी भारतीय दर्शनो का अवलोकन करे तो भारत वर्ष मे परमाणु का इतिहास इससे भी सैकडो वर्ष पूर्व का मिलता है। चिन्तन और मनन की दृष्टि से काल गणना का निर्णय किया जाए तो उसे सुदूर प्रागैतिहासिक काल मे भी आगे तक मानना पडेगा। वैशेषिक दर्शन मे परमाणु का उल्लेख अवश्य है, लेकिन वह नही जैसा है, उसमे क्रमबद्ध विचार प्रणाली का अभाव है, लेकिन जैनदर्शन के पुद्गल और परमाणु के विषय मे सुव्यवस्थित विवेचन किया गया है।

जैनधर्म और दर्शन की प्रागैतिहासिक प्राचीनता स्वय सिद्ध है और अब ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह सर्वानुमोदित हो चुका है कि जैनधर्म वैदिक और बौद्ध धर्म मे भी प्राचीन है। इस प्रकार परमाणु का अस्तित्व जैनदर्शन के साथ बहुत प्राचीन सिद्ध हो जाता है। फिर भी हम वर्तमान जैनदर्शन का सम्बन्ध तीर्थंकर महावीर से माने तो उनका काल ई पू ५९८ से लेकर ५२६ तक का है जो डेमोक्रेट्स से कुछ अधिक सौ वर्ष पूर्वकालिक है। अत यह सिद्ध हो जाता है कि पाश्चात्य जगत मे डेमोक्रेट्स ने परमाणु शब्द का प्रयोग किया है लेकिन वह उसका आविष्कर्ता नही था।

पुद्गल का अर्थ

'पुद्गल' जैन पारिभाषिक शब्द है। बौद्धदर्शन मे अवश्य पुद्गल शब्द का प्रयोग हुआ है लेकिन उसका नितान्त भिन्न अर्थ मे प्रयोग होने से विज्ञान सम्मत पदार्थ (Matter) के आशय से मेल नही खाता है। जबकि जैन दर्शन का पुद्गल शब्द विज्ञान के पदार्थ का पर्यायवाची है तथा पारिभाषित होते हुए रूढ नही किन्तु व्युत्पत्तिक है—**पूरणात् पुत् गलयतीति गलपूरण—गलनान्वर्थ सज्ञत्वात् पुद्गला** —अर्थात् पूर्ण स्वभाव से पुत् और गलन स्वभाव से गल इन दो अवयवो के मेल से पुद्गल शब्द बना है, यानी पूरण और गलन को प्राप्त होने से पुद्गल अन्वर्थ सज्ञक है।

जो वस्तु दूसरी वस्तु (द्रव्य या पर्याय) से मिलती रहे, मिले और गले, पृथक हो इस प्रकार के गलन-मिलन स्वभाव वाली वस्तु को पुद्गल कहते हैं।

गलन और मिलन स्वभाव को इस प्रकार समझा जा सकता है कि बड़े स्कन्धो मे से कितने ही परमाणु दूर होते हैं और कितने ही नवीन परमाणु जुड़ते हैं, मिलते हैं, जबकि परमाणु मे से कितनी ही वर्णादि पर्याये बिलग हो जाती हैं, हट जाती हैं और कितनी ही आकर मिल जाती हैं। इसीलिए सभी स्कन्धो और परमाणुओ को पुद्गल कहते हैं और उनके लिए पुद्गल कहना सार्थक, अन्वर्थक है।

जैनागमो मे पुद्गल की स्वरूपात्मक व्याख्या करते हुए बताया है कि भाव की अपेक्षा पुद्गल वर्ण, गन्ध रस, स्पर्श वाला है। वह पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श वाला होता है। द्रव्य की अपेक्षा पुद्गल अनन्त है, क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण है। काल की अपेक्षा कभी नहीं था, नहीं है, नही रहेगा, ऐसा नही है, किन्तु सदैव उसका अस्तित्व है। अतीत अनन्तकाल मे था, वर्तमान काल मे है और अनागत अनन्तकाल मे रहेगा। वह ध्रुव, नियत, शाश्वत अक्षय, अव्यय, अवस्थित तथा नित्य है। गुण की अपेक्षा ग्रहण गुण वाला है। जीव द्वारा पुद्गल का ग्रहण होता भी है, वर्णादि वाला होने से स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियो का विषय ज्ञेय है।

पुद्गल के भेद

पुद्गल द्रव्य के अपेक्षानुसार भेद किए गए हैं। जैसे, पुद्गल के दो भेद हैं—अणु और स्कन्ध। स्वभाव पुद्गल और विभाव पुद्गल, यह दो भेद भी पुद्गल द्रव्य के किए गए हैं तथा चार भेद भी है—(१) स्कन्ध, (२) स्कन्ध देश, (३) स्कन्ध प्रदेश, (४) परमाणु।

स्कन्ध—दो से लेकर यावत् अनन्त परमाणुओ का एक पिंड रूप होना स्कन्ध है। कम से कम दो परमाणुओं का स्कन्ध होता है जो द्विप्रदेशी स्कन्ध कहलाता है और कभी-कभी अनन्त परमाणुओ के स्वाभाविक मिलन से एक लोकव्यापी महास्कन्ध भी बन जाता है। इस महास्कन्ध की अपेक्षा पुद्गल द्रव्य सर्वगत है और शेष पुद्गलो की अपेक्षा असर्वगत है।

स्कन्ध देश—स्कन्ध एक इकाई है। उस इकाई का बुद्धिकल्पित एक भाग स्कन्ध देश है। अथवा स्कन्ध के आधे भाग को स्कन्ध देश कहते हैं।

स्कन्ध प्रदेश—जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक स्कन्ध की मूल भित्ति परमाणु है। जब तक यह परमाणु स्कन्धगत है, तब तक वह स्कन्ध प्रदेश कहलाता है। अथवा पूर्वोक्त आधे भाग के भी आधे भाग को स्कन्ध प्रदेश कह सकते हैं।

परमाणु—स्कन्ध का वह भाग, जो विभाजित हो ही नही सकता है, उसे परमाणु कहते हैं। जब तक वह स्कन्दगत है, तब तक वह स्कन्ध प्रदेश कहलाता है और अपनी पृथक अवस्था मे परमाणु।

परमाणु के स्वरूप को शास्त्रकारो ने विभिन्न प्रकार से स्पष्ट किया है। जैसे कि परमाणु पुद्गल अविभाज्य, अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य व अग्राह्य है। किसी भी उपाय, उपचार या उपाधि से उसका भाग नही हो सकता है। परमाणु पुद्गल अनर्ध है, अमध्य है, अप्रदेशी है, सार्ध नहीं है, समध्य नही है। परमाणु की न लम्बाई है, न चौडाई है, न गहराई है, यदि वह है तो स्वय एक इकाई रूप है। सूक्ष्मता के कारण वह स्वय ही आदि मध्य और अन्त है।

प्रथम अणु और स्कन्ध यह जो दो भेद बताए गए हैं उनमे और स्कन्ध आदि इन चार भेदो मे संक्षेप और विस्तार की अपेक्षा अन्तर अवश्य है, लेकिन मूल लाक्षणिक भेद नहीं है। स्कन्ध के अतिरिक्त स्कन्ध देश और स्कन्ध प्रदेश यह स्कन्ध के दो अवान्तर भेद कर लेने से पुद्गल द्रव्य के चार भेद होते हैं।

सूक्ष्मता और स्थूलता को लेकर दूसरे प्रकार से पुद्गल द्रव्य के निम्नलिखित छह भेद भी हैं—

(१) स्थूलस्थूल (२) स्थूल (३) स्थूलसूक्ष्म (४) सूक्ष्मस्थूल (५) सूक्ष्म (६) सूक्ष्मसूक्ष्म।

स्थूल स्थूल—जिस पुद्गल स्कन्ध का छेदन, भेदन तथा अन्यत्र वहन सामान्य रूप से हो सके। जैसे—भूमि, पत्थर, पर्वत आदि।

स्थूल—जिस पुद्गल स्कन्ध का छेदन, भेदन न हो सके किन्तु अन्यत्र वहन हो सके। जैसे—घी, तेल, पानी आदि।

स्थूल सूक्ष्म—जिस पुद्गल स्कन्ध का छेदन, भेदन, अन्यत्र वहन कुछ भी न हो सके। जैसे—छाया, आतप आदि।

स्थूल सूक्ष्म-वे इन्द्रिय को छोडकर शेष स्पर्शन आदि चार इन्द्रियो के विषयभूत पुद्गल स्कध। जैसे वायु तथा अन्य प्रकार की गैसे।

सूक्ष्म-वे सूक्ष्म पुद्गल स्कध जो अतीन्द्रिय है। जैसे मनोवर्गणा, भाषावर्गणा, कायवर्गणा आदि।

सूक्ष्म सूक्ष्म-ऐसे पुद्गल स्कध जो भाषावर्गणा, मनोवर्गणा के स्कधो से भी सूक्ष्म हैं जैसे द्वि प्रदेशी स्कध आदि।

ये छह भेद भी स्कन्ध पुद्गल की अपेक्षा से होते हैं। परमाणु पुद्गल के भेद नही होते हैं। इसका स्पष्टीकरण पूर्व मे परमाणु के लक्षण मे किया जा चुका है।

जीव और पुद्गल की पारस्परिक परिणति और स्वय पुद्गल के स्वभाव की अपेक्षा उसके तीन भेद हैं-

प्रयोग परिणत-ऐसे पुद्गल, जो जीव द्वारा ग्रहण किए गए हो। जैसे-इन्द्रिय, शरीर आदि।

मिश्र परिणत-जो पुद्गल जीव द्वारा परिणत होकर पुन मुक्त हो चुके हो। जैसे-कटे हुए नख, केश, मल, मूत्र आदि।

विस्रसा परिणत-ऐसे पुद्गल जो जीव की सहायता के बिना स्वय स्वभावत परिणत है। जैसे बादल इन्द्रधनुष आदि।

जैनदर्शन मे पुद्गल के पूर्वोक्त भेद–प्रभेदो के अतिरिक्त कुछ और भी भेद–प्रभेद (पर्याय) माने गये है जैसे-शब्द, बन्ध, सौक्ष्म्य, स्थौल्य, भेद, तम, छाया, आतप, उद्योत आदि। इनमे कुछ ऐसे पर्याय हैं, जिन्हे प्राचीन काल के अन्य दार्शनिक पुद्गल रूप मे स्वीकार नही करते थे, किन्तु अब उनमे से बहुतो को आधुनिक विज्ञान ने पुद्गल रूप मे स्वीकार कर लिया है। वे है-शब्द, अधकार, छाया, आतप, उद्योत आदि।

शब्द-अन्य दार्शनिको ने शब्द को आकाश का गुण माना है। लेकिन जैनदर्शन की मान्यतानुसार लोक व्यापी समस्त पुद्गल द्रव्य की तेईस प्रकार की वर्गणाओ (समान जातीय वर्गों) मे से एक भाषा वर्गणा है। उसके विद्यमान अणुओ के ध्वनि रूप परिणाम को शब्द कहते हैं। यह श्रोत्रेन्द्रिय का विषय होने से मूर्त और पौद्गलिक है। इसके दो भेद है- भाषा रूप और अभाषा रूप। अभाषात्मक दो प्रकार के हैं- प्रायोगिक और वैस्रसिक। प्रायोगिक शब्द तत, विनत, घन सुषिर के भेद से चार प्रकार के हैं। तत्, वितत्, घन, सुषिर, घोष और भाषा के भेद ये छह प्रकार के हैं। भाषात्मक शब्द दो प्रकार के है—साक्षर और अनक्षर अथवा आमन्त्रिणी, आज्ञापनी, आदि के भेद से भाषात्मक शब्द के अनेक भेद किए जा सकते हैं। इन सब भेदो मे सामान्य से समझने के लिए शब्द के दो मुख्य भेद हैं- प्रायोगिक और वैस्रसिक। प्रयोग पूर्वक उत्पद्यमान ध्वनि प्रायोगिक और मेघादि जन्य स्वाभाविक ध्वनि वैस्रसिक शब्द कहलाते हैं। प्रायोगिक शब्द भाषात्मक और अभाषात्मक है। अर्थ प्रतिपादक ध्वनि भाषात्मक और जिस ध्वनि से अर्थ प्रतिपादक भाषा की अभिव्यक्ति न हो वह अभाषात्मक शब्द है। तत (नगाडे आदि की ध्वनि) वितत (वीणा आदि जन्य ध्वनि) घन (घण्टा आदि की ध्वनि) और सुषिर (बाँसुरी, शखजन्य ध्वनि) के भेद से वह चार प्रकार का है।

अन्धकार–प्रकाश आदि-कृष्ण वर्ण बहुल पुद्गलो का परिणाम अन्धकार है। सूर्य, दीपक आदि के उष्ण प्रकाश को आतप कहते है। प्रतिबिम्ब रूप पुद्गल परिणाम छाया है और चन्द्र मणि आदि का अनुष्ण प्रकाश उद्योत कहलाता है।

पुद्गलों के सामान्य और विशेष गुण

स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, मूर्तत्व और अचेतनत्व ये छह पुद्गल द्रव्य के विशेष गुण हैं। यद्यपि अचेतन रूप गुण अन्य धर्म अधर्म आदि अजीव द्रव्यो मे भी पाया जाता है, लेकिन यहाँ जीव (सचेतन) से पृथक अस्तित्व बताने के लिए अचेतन तत्व को पुद्गल द्रव्य के विशेष गुणों में ग्रहण किया गया है। इनके अतिरिक्त अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व आदि अनेक सामान्य गुण हैं। इन सामान्य गुणो की सख्या इक्कीस है।

पुद्गलों के संस्थान

आकृति को सस्थान कहते हैं। सस्थान दो प्रकार के होते हैं- इत्थस्थ और अनित्थस्थ। नियत आकार वाले को इत्थस्थ और अनियत आकार वाले को अनित्थस्थ सस्थान कहते हैं। त्रिकोण, चतुष्कोण, आयतन, परिमडल आदि नियत आकार इत्थस्थ सस्थान है और बादल आदि की अनियताकार आकृतियाँ अनित्थस्थ सस्थान हैं।

पुद्गल के गुण

पुद्गल के गुणो का सामान्यत पूर्व मे सकेत किया है और उसके लाक्षणिक पारिभाषिक स्वरूप की भी रूपरेखा बताई जा चुकी है। इन्ही दोनो बातो का और अधिक स्पष्टतापूर्वक विवेचन करते हुए भगवतीसूत्र मे बताया गया है कि पुद्गल पाँच वर्ण (कृष्ण, नील, पीत, लोहित और शुक्ल), दो गध (सुगध और दुर्गन्ध), पाँच रस (तिक्त, कटु, अम्ल, कषाय और मधुर) और आठ स्पर्श (मृदु, कठिन, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और सूक्ष्म) से युक्त होता है। ये पाँच वर्ण आदि किसी भी स्थूल स्कध मे मिलेगे, किंतु परमाणु मे तो एक वर्ण, एक गध, एक रस और दो स्पर्श होते हैं। स्पर्शों की अपेक्षा स्कधो के दो भेद हो जाते हैं--चतुस्पर्शी स्कध और अष्टस्पर्शी स्कध। सूक्ष्म से सूक्ष्म पुद्गल स्कध चतुर्स्पर्शी स्कध वाला है। चतुर्स्पर्शी स्कध मे आठ स्पर्शों मे से शीत, उष्ण, स्निग्ध सूक्ष्म ये चार स्पर्श मिलेगे और परमाणु मे उक्त चारो मे से कोई दो स्पर्श होंगे। कोई परमाणु शीत या उष्ण होगा, स्निग्ध या सूक्ष्म होगा। मृदु, कठिन, गुरु, लघु इन चार स्पर्शों मे से कोई भी स्पर्श अकेले परमाणु मे प्राप्त नही होता है। क्योकि ये चार स्पर्श मौलिक न होकर सयोजक है। जैन दार्शनिको ने गुरुत्व और लघुत्व (भारीपन और हल्कापन) को मौलिक स्वभाव नही माना है, किन्तु वे तो विभिन्न परमाणुओ के सयोजक वियोजक परिणाम हैं। यदि स्कध स्थूलत्व से सूक्ष्मत्व की ओर अवरोहण करते हैं तब उनमे लघुत्व और सूक्ष्मत्व से स्थूलत्व की ओर आरोहण करने पर गुरुत्व योग्यता उत्पन्न हो जाती है। इसलिए पुद्गल को गुरुत्व और अगुरु--लघु कहा गया है।

पुद्गल पुद्गलत्व की अपेक्षा अनादि पारिणामिक भाव है, सादि पारिणामिक भाव नही है। द्रव्य की अपेक्षा सप्रदेशी पुद्गल भी होते हैं और अप्रदेशी पुद्गल भी। परमाणु पुद्गल अप्रदेशी पुद्गल है और द्विप्रदेशी स्कध से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कध पुद्गल सप्रदेशी है। इसी दृष्टि से जैनधर्म मे पुद्गल के सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश कहे गए हैं।

द्रव्य की तरह क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा सप्रदेशी भी होता है और अप्रदेशी भी। क्षेत्र की अपेक्षा सप्रदेशित्व अप्रदेशित्व इस प्रकार समझना चाहिए कि एक आकाश प्रदेश को अवगाहन करने वाला होने से अप्रदेशी एक, अनेक आकाश प्रदेशो को अवगाहन करने वाला होने से सप्रदेशी है। काल की अपेक्षा एक समय की स्थिति वाला होने से अप्रदेशी और अनेक समय की स्थिति वाला होने से सप्रदेशी है। काल की अपेक्षा एक समय की स्थिति वाला होने से अप्रदेशी और अनेक समय की स्थिति वाला होने से सप्रदेशी है। यह स्थिति परमाणुत्व तथा स्कधत्व की अपेक्षा भी, अवगाहन तथा क्षेत्रान्तर की अपेक्षा भी और भाव गुणो की अपेक्षा भी हो सकती है। भाव की अपेक्षा एक गुण वाला होने मे अप्रदेशी और अनेक अश गुण वाला भी होने से सप्रदेशी है। जैसे कि कोई पुद्गल एक अश काला वर्ण गुणवाला भी होता है और अनेक अश काला वर्ण गुण वाला भी होता है।

पुद्गल विभाजन के प्रकार

पुद्गल द्रव्य का विभाजन पाँच प्रकार का होता है--उत्कट, चूर्ण, खंड अतर और अनुतटिका।

उत्कट—मूँग की फली का टूटना।
चूर्ण—गेहूँ आदि का आटा।
खंड—पत्थर के टुकडे।
प्रतर—अभ्रक के दल।
अनुतटिका—तालाब की दरारे।

पुद्गल के बंध के भेद

विभिन्न परमाणुओ के सश्लिष्ट होने, मिलने, चिपकने, जुडने को बध कहते है। इस बध के प्रमुख दो भेद है—प्रायोगिक और वैस्रसिक। प्रायोगिक बध जीवप्रयत्न प्रयोग जन्य होता है और वह सादि है तथा वैस्रसिक बध मे व्यक्ति के प्रयत्न की अपेक्षा नही रहती है, वह सहज स्वभावजन्य है। इसके दो प्रकार है—सादि वैस्रसिक और अनादि वैस्रसिक। सादि वैस्रसिक बद वह है, जो बनता है, बिगडता है और उसके बनने-बिगडने मे किसी व्यक्ति के प्रयत्न की अपेक्षा नही रहती है। जैसे-बादलो मे चमकने वाली बिजली, उल्का, मेघ, इद्रधनुष आदि। अनादि वैस्रसिक बध तद्गत स्वभावजन्य है।

स्कध निर्माण की प्रक्रिया

जब प्रत्येक परमाणु स्वतत्र इकाई है, तब वे परस्पर मिलकर महाकाय स्कधो के रूप मे कैसे परिणत हो जाते हैं? यह एक विचारणीय स्थिति है। परमाणु का रूप स्वतत्र इकाई अस्तित्व कैसे विलीन कर देती है और विलीन करने का कारण क्या है? परमाणु के निर्माण मे कोई रुकावट नही है, क्योकि स्कध के छिन्न-भिन्न होने से उसके खड-खड होते जाने से परमाणु का निर्माण होता है। यह बात आज के वैज्ञानिक प्रयोगो से स्पष्ट हो चुकी है। लेकिन स्कध निर्माण की प्रक्रिया मे अन्तर है। प्रायोगिक बधजन्य स्कध निर्माण की प्रक्रिया के लिए यह एक सामान्य बात है कि मकान आदि बनाते समय ईंटो को परस्पर जोडने के लिए चूना, सीमेट आदि सयोजक द्रव्य का उपयोग होता है। परन्तु गलन-मिलन रूप मे वैस्रसिक प्रक्रिया के कारण अनन्त ब्रह्माण्ड मे स्कधो का सघटन और विघटन प्रतिक्षण स्वत भी होता रहता हैं। जैसे-निरभ्र आकाश थोडे समय मे बादलो से भर जाता है, वहाँ बादल रूप स्कधो का जमघट लग जाता है और कुछ ही क्षणो मे वह बादल बिखरता भी देखा जाता है। इस प्रकार के स्वाभाविक स्कधो के निर्माण का क्या हेतु है? हमारे हाथो मे जो पौद्गलिक वस्तु आती है, जो दृश्यमान महल, मकान आदि है, वे सब तो परमाणुओ के समवायी परिणाम है। उनमे सख्यात असख्यात अनन्त परमाणु है।

जैनदर्शन मे स्कध निर्माण की एक समुचित रासायनिक प्रक्रिया बतलाई है, जो प्रायोगिक बध की प्रक्रिया से भिन्न नही है। वह सक्षेप मे इस प्रकार है—

पूर्व मे यह सकेत दिया गया है कि प्रत्येक परमाणु मे एक वर्ण, एक गध, एक रस तथा स्निग्ध-रुक्ष मे से एक तथा शीत-उष्ण मे से एक, इस प्रकार कुल दो स्पर्श होते हैं। एक परमाणु दूसरे परमाणु के साथ जो स्कधजनक सजोग करता है। उसमे परमाणुगत वर्ण, गध, रस तथा शीत या उष्ण स्पर्श का उपयोग नही होता है, किन्तु जो स्निग्ध या रुक्ष स्पर्श है उन्ही का उपयोग होता है। जैसे कि निरभ्र आकाश मे एकाएक बादलो के स्कधो के छा जाने मे नितान्त शान्त वातावरण मे आधी तूफान के रूप मे वायु के स्कधो के भर जाने मे और थोडी ही देर मे उन सबके बिखर जाने मे कोई मनुष्य, देव या ईश्वर कारण नहीं है और न यह उन सबके द्वारा कृत है। किन्तु पौद्गलिक परमाणुगत स्निग्ध-रुक्ष स्पर्शो का स्वाभाविक सयोग और वियोग कारण है। इसीलिए इस स्कध निर्माण की प्रक्रिया मे स्निग्ध-रुक्ष स्पर्शो को मुख्य माना गया है। वर्ण आदि के जैसे गुणात्मक तारतम्य के अनन्त प्रकार (Degree)होते हैं, वैसे ही ये स्निग्ध और रुक्ष स्पर्श भी एक गुण से लेकर अनन्त गुण प्रकार के हो सकते हैं।

स्कधो की उत्पत्ति तीन प्रकार से होती है—सघात, भेद और भेद-सघात। कोई स्कध सघात, एकत्व परिणति, मिलने से उत्पन्न होता है। कोई भेद से और कोई एक साथ भेद-सघात दोनो के निमित्त से होता है। जब पृथक-पृथक स्थित दो परमाणुओ

के मिलने पर द्वि-प्रदेशी स्कंध होता है, तब वह संघातजन्य कहलाता है। इसी प्रकार तीन, चार, संख्यात-असंख्यात, अनन्त यावत् अनन्तानन्त परमाणुओ के मिलने से जो द्वि-प्रदेशी, त्रि-प्रदेशी आदि अनन्तानन्त प्रदेशी स्कध बनते है, वे सब संघातजन्य है। किसी बड़े स्कध के टूटने से जो छोटे स्कध बनते हैं, वे भेदजन्य है। ये भी द्वि-प्रदेशी से लेकर अनन्तानन्त प्रदेशी तक हो सकते हैं। जब किसी एक स्कध के टूटने पर उसके अवयव के साथ उसी समय दूसरे किसी द्रव्य के मिलने से जो नया स्कध बनता है, तब वह नवीन स्कध भेदसघातजन्य है। ऐसे स्कध भी द्वि-प्रदेशी से लेकर अनन्तानन्त प्रदेश वाले हो सकते हैं। इन सबके निर्माण में स्निग्धत्व और रुक्षत्व कारण है।

स्कध निर्माण की उक्त सामान्य प्रक्रिया है। किन्तु अचाक्षुष स्कध के चाक्षुष होने मे भेद और सघात ये दो ही हेतु है। अर्थात् सभी अतीन्द्रियक स्कधो के एन्द्रियक (इन्द्रिय ग्राह्य) बनने मे भेद और सघात ये दो ही हेतु अपेक्षित है। क्योंकि जब किसी स्कध मे सूक्ष्मत्व परिणाम की निवृत्ति होकर स्थूलत्व परिणाम पैदा होता है, तब कुछ नये परमाणु उसमे अवश्य मिलते हैं और इसी मिलने के साथ कुछ परमाणु उस स्कध मे से अलग भी हो जाते है। सूक्ष्मत्व परिणाम की निवृत्तिपूर्वक स्थूलत्व परिणाम की उत्पत्ति न केवल सघात परमाणुओ से होती है और न भेद परमाणुओ के पृथक होने मात्र से होती है और स्थूलत्व रूप परिणाम के अलावा कोई स्कध चाक्षुष नही हो सकता है। इसीलिए चाक्षुष स्कध की उत्पत्ति भेद और सघात दोनो से बताई है।

स्कध निर्माण मे कौनसा परमाणु किस परमाणु के साथ सयोग कर सकता है? इसके लिए जैनदर्शन मे कुछ नियम निर्धारित हैं। वे इस प्रकार है—

१ स्निग्ध और रुक्ष परमाणुओ के श्लेष (मिलन) से स्कध बनते है। यह श्लेष दो प्रकार का हो सकता है—सदृश और विसदृश। स्निग्ध का स्निग्ध के साथ और रुक्ष का रुक्ष के साथ श्लेष होना सदृश श्लेष है और स्निग्ध का रुक्ष से श्लेष विसदृश श्लेष है। इसमे स्निग्ध परमाणु का स्निग्ध परमाणु के साथ मेल होने पर स्कध का निर्माण अवश्य हो सकता है, लेकिन उसके लिए शर्त यह है कि उन दोनो परमाणुओ को स्निग्धता से कम से कम दो अशो से अधिक अतर हो। इसी तरह रुक्षता के लिए भी समझना चाहिए।

२ रुक्ष परमाणु का स्निग्ध परमाणु के साथ मेल होने से स्कध का निर्माण होता है, बशर्ते कि उन दोनो परमाणुओ की स्निग्धता-रुक्षता मे कम से कम दो अशो से अधिक अन्तर हो।

३ स्निग्ध और रुक्ष परमाणुओ के मिलन से स्कध निर्माण होता ही है, चाहे फिर वे विषम अश वाले हो या सम अश वाले अर्थात् एक परमाणु मे स्निग्धता है और दूसरे मे रुक्षता, तो ऐसे दो परमाणुओ का सयोग अवश्य होता है। चाहे फिर उन दोनो के समान गुण हो या विषम गुण हो। दो गुण स्निग्धता और दो गुण रुक्षता वाला परमाणुओ का भी स्कध बनता है और एक गुण स्निग्धता तथा दो-तीन या उससे अधिक गुण रुक्षता वाले परमाणुओ का भी स्कध बनता है।

उक्त नियमो मे अपवाद केवल इतना ही है कि एक गुण स्निग्धता और एक गुण रुक्षता नही होना चाहिए। अर्थात जघन्य गुण वाले परमाणु का कभी बध नही होता है।

किसी भी स्कध निर्माण की प्रक्रिया मे उक्त नियम लागू होते हो, तो वहाँ उन परमाणुओ के स्कध बनते ही है। इस प्रकार दो, तीन, चार यावत असख्य, अनन्त परमाणुओ का भी एक स्कध बन सकता है। लेकिन ऐसा कोई नियम नही है कि परमाणुओ से बने स्कध मे विद्यमान रुक्षता और स्निग्धता के अशो मे परिवर्तन न हो तब तक उस स्कध मे सयोजित परमाणु उस स्कध से अलग नही हो। क्योकि स्कध से परमाणु के पृथक होने का यही एकमात्र कारण नही है। अन्य दूसरे भी कारण हैं। उनमे से कोई भी कारण उपस्थित हो जाये तो परमाणु उस स्कध से अलग हो सकता है। वे कारण इस प्रकार है—

१ कोई भी स्कध अधिक से अधिक असख्य काल तक रह सकता है। अर्थात् उतने काल के पूर्ण होने पर परमाणु स्कध से अलग हो सकता है।

२ अन्य द्रव्य का विघटन होने पर भी स्कध का विघटन होता है।
३ बध योग्य स्निग्धता और रूक्षता के गुरो मे परिवर्तन आने से भी स्कध का विघटन होता है।
४ स्कध मे स्वाभाविक रीति से उत्पन्न होने वाली गति से भी स्कध का विघटन होता है।

स्कध निर्माण व विघटन की उक्त प्रक्रिया का निष्कर्ष यह है कि विघटन होना भी पुद्गल का स्वभाव है। अत स्कधगत परमाणु पृथक भी होते रहते हैं, लेकिन सश्लिष्ट होने के बारे मे नियम हैं कि जघन्य गुणाशो वाले परमाणुओ का न तो सदृश और न विसदृश सश्लेष होता है। किन्तु जघन्य-एकाधिकार जघन्येतर-समजघन्येतर—एकाधिकजघन्येतर गुणाशो वाले परमाणुओं का सदृश्य बध तो नही होता है, विसदृश बध हो सकता है। जघन्य-द्वयधिक, जघन्य-त्र्यअधिक, अजघन्येतर-द्वयधिकजघन्येतर, जघन्येतर-त्र्यादिअधिक जघन्येतर परमाणुओ का सदृश व विदृश बध होता है।

स्कंध के सम्बन्ध मे विशेष ज्ञातव्य

स्कध के लक्षण, निर्माण प्रक्रिया आदि के बारे मे ऊपर सामान्य जानकारी दी गई है। उसके अतिरिक्त कुछ विशेष ज्ञातव्य इस प्रकार है कि पुद्गल द्रव्य होते हुए अजीव, रूपी तथा बहुप्रदेशी होने से अस्तिकाय द्रव्य है। स्कध की निष्पत्ति परमाणुओ के परस्पर मिलने से होती है। स्कध सूक्ष्म परिणाम वाले भी होते हैं और बादर परिणाम वाले भी होते हैं। दोनो अनन्त प्रदेशी भी हो सकते हैं। स्कध पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा सप्रदेशी है, अप्रदेशी नही है। क्षेत्र की अपेक्षा अप्रदेशी भी होता है और सप्रदेशी भी अर्थात् एक आकाश प्रदेश मे अवगाहन करने वाला भी होता है और अनेक आकाश प्रदेशो मे भी रह सकता है। काल की अपेक्षा सप्रदेशी भी होता है और अप्रदेशी भी। अर्थात् एक समय की स्थिति वाला भी होता है और अनेक समय की स्थिति वाला भी। भाव की अपेक्षा भी सप्रदेशी और अप्रदेशी है। यानी एक अश गुण वाला भी होता है और अनेक अश गुण वाला भी। समपरमाणु वाले स्कध सार्ध, अमध्य और सप्रदेशी है तथा विषम परमाणु वाले स्कध अनर्ध, समध्य और सप्रदेशी है। द्वि-प्रदेशी स्कध से लेकर असख्यात व कतिपय अनन्त प्रदेशी स्कध इतने सूक्ष्म है कि छद्मस्थ तथा अवधिज्ञानी तो नही देखते हैं, किन्तु केवल ज्ञानी तथा परम अवधिज्ञानी देख सकते हैं। स्कधो की गति आकाश प्रदेशो की पक्ति के अनुरूप होती है। इनमे सादि पारिणामिक भाव हैं अनादि पारिणामिक भाव नही है तथा सतति प्रवाह की अपेक्षा अनादि, अनन्त और स्थिति की अपेक्षा सादि सान्त है।

परमाणु विषयक वक्तव्य

सामान्य रूप से पुद्गल और उसके भेद स्कध व परमाणु के बारे मे विचार करने के अनन्तर अब परमाणु विषयक विशेष स्पष्टीकरण करते हैं।

परमाणु का लाक्षणिक स्वरूप ऊपर बताया गया है। उसका सक्षिप्त आशय यह है कि सब द्रव्यो मे जिसकी अपेक्षा अन्य कोई अनुत्तर न हो, परम अत्यन्त अणुत्व हो उसे परमाणु कहते है।

परमाणु दो प्रकार का है—कार्य परमाणु और कारण परमाणु। स्कध के विघटन से उत्पन्न होने वाला कार्य परमाणु है और जिन परमाणुओ के मिलने से कोई स्कध का निर्माण हो, उन्हे कारण परमाणु कहते है। अथवा परमाणु के चार प्रकार हैं—द्रव्य परमाणु, क्षेत्र परमाणु, काल परमाणु, भाव परमाणु। जिन्हे आधुनिक विज्ञान की भाषा मे क्रमश पदार्थ, स्थान, काल (समय) और शक्ति या गुणवत्ता की इकाई के नाम मे कहा जा सकता है।

भाव परमाणु के चार भेद हैं—वर्ण, गुण, गन्ध, रस गुण, स्पर्श गुण। इनके उपभेद सोलह है। जो इस प्रकार है (१-५) एक गुण वर्ण क्रमश कृष्ण, नील, लाल, पीत, श्वेत (६-७) एक गुण दुर्गन्ध एक गुण सुगन्ध, (८-१२) एक गुण रस क्रमश तिक्त, मधुर,कटुक, कषाय और अम्ल (१३-१६) एक गुण उष्ण, एक गुण शीत, एक गुण रुक्ष, एक गुण स्निग्ध। तात्पर्य यह है कि परमाणु वर्ण गन्ध रस स्पर्शवान है और ऐसा होना पुद्गल का स्वभाव है।

परमाणु में वर्ण, गन्ध आदि होने की व्यवस्था इस प्रकार है—पूर्वोक्त पाँच प्रकार के वर्णों में से कोई एक वर्ण दो गन्धो मे से कोई एक गन्ध, पाँच रसों मे से कोई एक रस और चार स्पर्शों मे दो स्पर्श होते हैं—स्निग्ध-रुक्ष मे से एक और शीत या उष्ण मे से एक।

परमाणु की परिभाषा टीकाकारो ने इस प्रकार की है—

कारणमेव तदन्त्य सूक्ष्मों नित्यश्च भवति परमाणु।
एक रस-गध-वर्णो-द्वि-स्पर्श कार्यलिंगश्च।।

अर्थात् परमाणु स्कध पुद्गलो के निर्माण का अन्त्य कारण है। यानी वह स्कध मात्र मे उपादान है। वह सूक्ष्मतम है। अत भूत, वर्तमान और अनागत काल मे था, है और रहेगा। वह एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण और दो स्पर्श युक्त है और कार्यलिंग है। कार्यलिंग का तात्पर्य यह है कि वह परमाणु नेत्रो या अन्य किसी वैज्ञानिक उपकरणो, साधनो, सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र आदि से दीखता नही है किंतु सामूहिक क्रिया-कलाप एव तज्जन्य कार्य से उसका अस्तित्व माना जाता है। उसके स्वरूप को केवलज्ञानी या परम अवधिज्ञानी ही जानते और देखते हैं।

परमाणु-परमाणु के बीच ऐसी कोई भेद-रेखा नही है कि एक परमाणु दूसरे परमाणु रूप न हो सके। कोई भी परमाणु कालान्तर मे किसी भी परमाणु के सदृश-विसदृश हो सकता है। आधुनिक विज्ञान की भी यही मान्यता हो गई है। वर्ण, गन्ध आदि गुणो से सब परमाणु सदृश नही रहते है। उनके गुणो मे परिवर्तन होते रहने अथवा गुणो की तरतमता से परमाणु के अनन्त भेद हो जाते हैं। जैसे कि विश्व मे जितने कृष्ण वर्ण परमाणु है, वे सब समान अशो मे काले नही है। एक परमाणु एक गुणाश वाला है तो दूसरा दो गुणाश वाला। गन्ध, रस, स्पर्श आदि को लेकर भी इसी प्रकार एक मे अनन्त गुणांश पर्यन्त अन्तर रहता है और यह गुणाशान्तर शाश्वत नही है, उसमे परिवर्तन होता रहता है। यहाँ तक कि एक गुण रुक्ष परमाणु कालान्तर मे अनन्त गुण रुक्ष हो सकता है तथा अनन्त गुण रुक्ष परमाणु एक गुण वाला। परमाणु की इस परिणमनशीलता के लिए शास्त्रो मे षड्गुणी-हानिवृद्धि शब्द का उपयोग किया है और यह हानि-वृद्धि स्वाभाविक होती है।

परमाणु जड, अचेतन होता हुआ भी गतिधर्म वाला है। उसकी गति अन्य पुद्गल प्रेरित भी होती है और अप्रेरित भी। वह सर्वदा गतिमान रहता है, गति करता रहता हो, ऐसी भी बात नहीं है, किन्तु कभी करता है और कभी नही करता है। यह अगतिमान निष्क्रिय परमाणु कब गति करेगा, यह अनिश्चित है। इस प्रकार सक्रिय परमाणु कब गति और क्रिया बद कर देगा, यह भी अनियत है। वह एक समय से लेकर आवली के असख्यातवे भाग समय मे किसी समय भी गति व क्रिया बद कर सकता है, किन्तु आवली के असख्यात भाग उपरान्त वह निश्चित ही गति व क्रिया प्रारभ करेगा।

परमाणु की स्वाभाविक गति सरल रेखा में होती है। गति मे वक्रता तभी आती है, जब अन्य पुद्गल का सहकार होता है। परमाणु अपनी तीव्रतम उत्कृष्ट गति से एक समय मे चौदह राजू प्रमाण ऊँचे लोक के पूर्व चरमान्त से पश्चिम चरमान्त, उत्तर चरमान्त से दक्षिण चरमान्त तथा अधोचरमान्त से ऊर्ध्व-चरमान्त तक पहुँच सकता है। इसी प्रकार परमाणु की तीव्रतम गति के समान अल्पतम गति के लिए शास्त्रो मे बताया है कि वह कम से कम गति करता हुआ एक समय मे आकाश के एक प्रदेश से अपने निकटवर्ती दूसरे प्रदेश में जा सकतता है। यह प्रदेश भी उतना ही छोटा है, जितना कि एक परमाणु। अर्थात् प्रदेश उसे कहते हैं, जितने स्थान को एक परमाणु अपने अवस्थान द्वारा रोकता है।

उक्त कथन मे समय और राजू का अर्थ ज्ञातव्य है। यह दोनो जैन पारिभाषिक शब्द हैं। उनमे से समय काल का चरम अश है। स्थूल रूप से हम उसे इस प्रकार समझ सकते है कि हमारी आंखो के पलक को एक बार उठने और गिरने मात्र मे असख्य समय व्यतीत हो जाते हैं। उन असख्य समयो मे से एक अश मे परमाणुलोक के अधोचरमान्त से ऊर्ध्वचरमान्त तक चला जाता

है। राजू के बारे मे बताया गया है कि कोई देव हजार मन के लोहे के गोले को हाथ मे उठाकर अनन्त आकाश मे छोड दे और वह गोला छह महीने तक अध पतित होता जाये तो उस अवधि में जितने आकाश देश का अवगाहन करता है, वह एक राजू है। ऐसे चौदह राजुओ की ऊँचाई वाला यह लोक है। अत एक समय मे लोक के इस छोर से उस छोर तक पहुँचने वाले परमाणु की तीव्रतम गति का इससे अनुमान लगाया जा सकता है।

परमाणु मे जीव निमित्तक कोई क्रिया, गति नही हो सकती है। इसका कारण यह है कि परमाणु जीव द्वारा ग्रहण नही किया जा सकता है तथा पुद्गल को ग्रहण किये बिना पुद्गल मे परिणमन कराने की जीव मे शक्ति नही है।

परमाणु अप्रतिघाती है। अर्थात वह अपने अवस्थान मे न तो किसी को रोकता है और न स्वय रुकता है। उसकी अव्याहत, प्रतिघात रहित गति होती है। पर्वत, वज्र आदि कोई भी उसकी गति मे रुकावट नही डाल सकते हैं। परमाणु मे सूक्ष्मपरिणामावगाहन की विलक्षण शक्ति है। अतएव जिस आकाश प्रदेश मे एक परमाणु स्थिति है, उसी आकाश प्रदेश मे दूसरा परमाणु भी स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकता है और उसी आकाश प्रदेश मे अनन्त प्रदेशी स्कध भी ठहर जाता है। यह सब सूक्ष्मपरिणामावगाहन शक्ति के कारण सम्भव होता है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा परमाणु की सप्रदेशिता और अप्रदेशिता का विचार किया जाये तो परमाणु द्रव्य की अपेक्षा अप्रदेशी है और क्षेत्र की अपेक्षा तो नियमत अप्रदेशी है अर्थात् एक आकाश प्रदेश का ही अवगाहन करता है, काल की अपेक्षा कदाचित् अप्रदेशी और कदाचित् सप्रदेशी है। यानी एक समय की स्थिति वाला होने से अप्रदेशी और अनेक समय की स्थिति वाला भी होने से सप्रदेशी है। भाव की अपेक्षा कदाचित् अप्रदेशी और कदाचित सप्रदेशी है, यानी एक अश गुण वाला भी होता है और अनेक अश गुण वाला भी। परमाणु की सूक्ष्मता, अभेद्यता आदि को इस प्रकार समझा जा सकता है कि परमाणु तलवार आदि की धार पर रह सकता है और वहाँ अवस्थित उस परमाणु का छेदन-भेदन नही होता है, अग्नि के मध्य प्रविष्ट होकर भी जलता नही है। पुष्कर सवर्तक नामक महामेघ के मध्य भी प्रविष्ट होकर गीला नही होता है तथा गगा नदी के प्रतिस्रोत प्रवाह मे प्रविष्ट होकर भी प्रतिस्खलित नही होता है और उदगावर्त या उदक् (पानी) बिन्दु मे प्रविष्ट होकर भी नष्ट नही होता है।

विज्ञान पक्ष और पुद्गल

पुद्गल के सम्बन्ध मे जैन दार्शनिक पक्ष की सक्षेप मे मीमासा करने के पश्चात् अब वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते है।

अनादिकाल से विश्व को पहचानने के प्रयत्न हो रहे है। मानव मस्तिष्क मे जिज्ञासा हुई कि यह जगत् किन तत्वो से निर्मित होता है? इन तत्वो का प्रारम्भ और प्रलय कैसे होता है? इसी जिज्ञासा के आधार से अनेक दर्शनो का जन्म हुआ। विज्ञान की धारा भी इसी ओर गतिशील है। दर्शनो ने अपनी जिज्ञासा के समाधान के लिए जड और चेतन इन दो पदार्थों को केन्द्रबिन्दु बनाया लेकिन विज्ञान के विकास का आधार भौतिक पदार्थ है। पहले जिज्ञासा हुई कि इस दृश्यमान जगत मे असख्य प्रकार के पार्थिवपदार्थ भरे पडे हैं, उन पदार्थों का उपादान कारण क्या है? और इसके समाधान के लिए पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांच भूतो की कल्पना उठी और अपने-अपने दृष्टिकोण मे वैज्ञानिको ने उनमे से प्रत्येक को अलग कारण बताया। लेकिन अन्त मे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मूल तत्व तो इन पच भूतो से अतिरिक्त और कोई दूसरा पदार्थ है। ये भूत तो उसके समिश्रण का परिणाम है।

इसी चिन्तन के फलस्वरूप विज्ञान के क्षेत्र मे परमाणु का प्रवेश हुआ और यह माना जाता है कि परमाणुवाद यूनान की देन है। डेमोक्रेट्स पहला व्यक्ति था, जिसने कहा था—यह ससार शून्य, आकाश और अदृश्य, अविभाज्य अनन्त परमाणुओ की एक इकाई है। दृश्य और अदृश्य सभी सगठन परमाणुओ के सयोग और वियोग के ही परिणाम है। परमाणु सम्बन्धी उसकी धारणा इस प्रकार है—

(१) पदार्थ (Matter) ससार मे एकाकार नही, किन्तु विभक्त व्याप्त है।

(२) ससारव्यापी समस्त पदार्थपिड ठोस परमाणुओ से निर्मित है। वे परमाणु विस्तृत आकाशान्तर से पृथक् हैं। प्रत्येक परमाणु एक स्वतन्त्र इकाई है।

(३) परमाणु अच्छेद्य, अभेद्य और अविनाशी है। वे पूर्ण और सदैव शुद्ध, नवीन और निर्मल है। जैसे कि ससार की शुरुआत मे ।

(४) प्रत्येक परमाणु मे आकार, लम्बाई, चौडाई और वजन को लेकर पृथकता होती है।

(५) परमाणुओ के प्रकार सख्यात है, किन्तु उनमे से प्रत्येक प्रकार के परमाणु अनन्त है।

(६) पदार्थों के गुण परमाणुओ के स्वभाव, सविधान अर्थात् कौन से परमाणु किस प्रकार से सयुक्त हुए हैं, पर निर्भर है।

(७) परमाणु निरन्तर गतिशील है।

डेमोक्रेट्स के समय से लेकर वर्तमान समय तक परमाणु के बारे मे अन्वेषण का क्रम चालू है और इससे नये तथ्य भी सामने आये हैं, जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है, लेकिन वैज्ञानिको की दृष्टि मे अब तक वह परमाणु अच्छेद्य, अभेद्य और न्यूनतम ही बना रहा है। उसके चरम अश की प्राप्ति नही की जा सकी है जैसा जैनदर्शन मे बताया गया है।

जैनदर्शन मे तो परमाणु को सूक्ष्मतम बताया है और विज्ञान भी उसे सूक्ष्म मानता है और उसके परमाणु की सूक्ष्मता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि पचास शख परमाणुओ का वजन केवल ढाई तोले के लगभग होता है और व्यास एक इच का दस करोडवाँ हिस्सा है। सिगरेट लपेटने के पतले कागज अथवा पतगी कागज की मोटाई मे एक से एक सटाकर परमाणुओ को रखा जाये तो एक लाख परमाणु आ जायेगे। सोडा वाटर को गिलास मे डालने पर जो छोटी-छोटी बूँदे निकलती हैं, उनमे से एक के परमाणुओ को गिनने के लिए ससार के तीन अरब व्यक्तियो को लगाया जाये और वे निरतर बिना खाये, पीये, सोये लगातार प्रति मिनट तीन सौ की चाल से गिनते जाये तो उस लघुतम बूँद के परमाणुओ की समस्त सख्या को गिनने मे चार माह लग जायेगे।

परमाणु' वैज्ञानिक शोध-धारा

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि वैज्ञानिको ने पहले तो पृथ्वी आदि पच भूतो को सृष्टि का मूल कारण माना और उसके बाद वे उक्त निर्णय मे भी परिवर्तन करने के लिए विवश हुए। इसका कारण यह था कि जब रसायन के क्षेत्र मे लोहे या ताँबे को सोना बनाने की होड लगी तो निश्चय हुआ कि पचभूत मूल तत्व ही नही है। मूल तत्व तो इनसे अतिरिक्त और पदार्थ है। फिर भी मूल तत्व की शोध के आधार पचभूत ही रहे।

पचभूतो मे वायु भी एक तत्व था, लेकिन उसमे भार नही माना जाता था। बोयल ने अपने अनुसन्धान से पहले पहल बताया कि उसमे भार है। उस समय तक विभिन्न स्वभाववाली गैसो का आविष्कार हो चुका था, किन्तु वे वायु का ही प्रकार मानी जाती थी। कार्बनडाई आक्साइड का पता पहले पहल इग्लैंड निवासी ब्लैक ने सन् १७८८ मे लगाया और इसका नाम स्थिरवायु रखा। अनन्तर आक्सीजन (प्राण वायु) की खोज प्रीस्टली ने की और कहा कि आग को जलाने एव प्राणधारियो को श्वास लेने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। हेन्डीक प्रेडिन्स ने पानी पर अन्वेषण करके उसे ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के मिश्रण का परिणाम सिद्ध किया कि पानी का स्कध (सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण) हाइड्रोजन के दो परमाणु और ऑक्सीजन के एक परमाणु से मिलकर बना है। इससे पानी को मूल द्रव्य मानने की धारणा का अत हुआ।

इन अन्वेषणो मे हाइड्रोजन के परमाणु को सबसे छोटा देखकर पहले समझा गया कि यह सब तत्वों का मूल है। लेकिन हाइड्रोजन के परमाणु को भी जब बारीकी से तोला गया तो स्पष्ट हो गया कि वह भी सभी पदार्थों का मूल तत्व नही हो सकता है। वह भी मिश्रित है और मौलिक द्रव्य की परिभाषा यह मानी गई थी कि वह किसी भी समिश्रण का परिणाम न हो। इस प्रकार पाँच भूतो से प्रारम्भ हुई मौलिक तत्वो की सख्या पहले उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ३० हो गई और आज तो बढते-बढते १०५ तक पहुँच गई है।

सन् १८११ तक अणु ही सबसे सूक्ष्म तत्व समझा जाता रहा। इसके बाद वैज्ञानिक अवोगद्रो ने खोजकर अणु से परमाणु को अलग किया और सूक्ष्म अवयव माना जाता रहा इसके बाद सन् १८९७ मे सर जे.जे टामसन ने परमाणु के अन्वेषण के समय एक ओर टुकड़ा पाया जो छोटे से हाइड्रोजन परमाणु से भी अत्यन्त छोटा था, जिसे इलेक्ट्रोन कहा जाता है। उसने अणु के बारे मे अभी तक की सभी मान्यताओ को बदल दिया तथा सोने, चाँदी आदि मूलभूत तत्व एक नये रूप मे ही पहचाने जाने लगे।

टायसन के शिष्य रुदरफोर्ड ने परमाणु के भीतरी ढाँचे के बारे मे बहुत सी महत्वपूर्ण खोजे कीं। जिनसे ज्ञात हुआ कि परमाणु के नाम से ज्ञात छोटे से छोटे अणु के अन्दर सौर परिवार का एक नया संसार ही बसा हुआ है। प्रत्येक परमाणु के अनेक कण हैं। उनमे से कुछ केन्द्र मे स्थित हैं और कुछ उस केन्द्र की नाना कक्षाओ मे निरन्तर अत्यन्त तीव्र गति से परिभ्रमण करते रहते हैं जैसे कि सूर्य के चारो ओर मगल ग्रह आदि। केन्द्रस्थ कणो में धन विद्युत आदि है और परिभ्रमणशील कणो मे ऋण विद्युत और उन समस्त परमाणुओ को १०३ मौलिक भेदो मे इसलिये बाँटा गया कि उनकी सघटना मे ऋणाणुओ और धनाणुओ का क्रमिक अन्तर रहता है।

ऊपर के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि वैज्ञानिक मान्य मौलिक तत्वो मे पहला तत्व हाइड्रोजन है। इसमें एक धनाणु (Proton प्रोटोन) और एक ऋणाणु (Electron इलेक्ट्रोन) होता है। धन बिजली का कार्य किसी पदार्थ को अपनी ओर खीचना है और ऋण बिजली पदार्थ को दूर फेकती है। इन दोनो विरोधी कणो का परिणाम हाइड्रोजन अणु है। किन्तु दोनो प्रकार की विद्युत समान होने पर हाइड्रोजन का परमाणु न ऋणात्मक है और न धनात्मक है अपितु तटस्थ स्वभाव वाला है।

हाइड्रोजन के बाद दूसरे नम्बर के तत्व का नाम हेलियम है। उसके केन्द्र मे दो प्रोटोन और इलेक्ट्रोन होते हैं। जो निरन्तर अपने नाभिकरण की परिक्रमा करते हैं। इसी प्रकार तीसरे-चौथे , लिकियम, बेरिलियम आदि मे क्रमश एक-एक बढ़ते हुये अणुकेन्द्र और कक्षागत हैं। सबसे अन्तिम तत्व यूरेनियम मे ९२ प्रोटोन नाभिकण मे और उतने ही इलेक्ट्रोन विभिन्न कक्षाओ मे अपने केन्द्र की परिक्रमाएँ करते हैं। लेकिन हाइड्रोजन परमाणु मे एक ही इलेक्ट्रोन है, जिससे कक्षा भी एक है। अन्य परमाणुओ मे सभी प्रोटोन एकीभूत होकर नाभिकण का रूप ले लेते हैं और इलेक्ट्रोन अनेक टोलियो मे सुनिश्चित कक्षाएँ बनाकर घूमते रहते हैं।

प्रोटोन (धनाणु) भी स्वय अपने आप मे स्वतन्त्र कण न होकर न्यूट्रान और पोजीट्रोन का सायोगिक परिणाम है, न्यूट्रोन यानी जिसमे न तो इलेक्ट्रोन की ऋणात्मक बिजली है और न प्रोटोन की धनात्मक। अर्थात यह तटस्थ है। पोजीट्रोन मे बिजली की मात्रा तो प्रोटोन के समान ही रहती है, मूलमात्रा इलेक्ट्रोन के बराबर।

इस प्रकार आधुनिक पदार्थ विज्ञान ब्रह्माण्ड के उपादान की खोज मे अणु अणुगुच्छको, परमाणु मे भटका और अब उसकी यात्रा इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन, पोजीट्रोन की ओर हो रही है। लेकिन इस अन्वेषण का परिणाम अब यह आया कि वैज्ञानिक यह कहने का साहस नही कर पा रहे हैं कि हम सूक्ष्मतम उपादान तक पहुँच गए हैं। उनका विश्वास बार-बार बदल रहा है कि कही इलेक्ट्रोन आदि सूक्ष्म कणो के अन्दर कोई दूसरा सौर परिवार न निकल आये।

विज्ञान मान्य परमाणु गति

जैन दर्शन मान्य परमाणु की अधिकतम और न्यूनतम गति का पूर्व उल्लेख किया गया है कि वह एक समय मे कम से कम आकाश के एक प्रदेश से प्रदेशान्तर मे गमन, अवगाहन कर सकता है और अधिक से अधिक चतुर्दश रज्ज्वात्मक लोक मे। इस न्यूनतम और अधिकतम दो गतियो का उल्लेख कर देने से मध्य की सारी गतियाँ वह यथाप्रसग करता रहता है। आधुनिक विज्ञान ने भी अणु-परमाणु की ऐसी गतियो को पकड लिया है जो साधारण मनुष्य की कल्पना से परे हैं। विज्ञान कहता है कि प्रत्येक इलेक्ट्रोन अपनी कक्षा पर प्रति सेकण्ड १३०० मील की रफ्तार से गति करता है। गैस और उसीप्रकार के पदार्थों को अणुओ का कम्पन इतना तीव्र होता है कि प्रति सेकण्ड छह अरब बार टकरा जाता है, जबकि दो अणुओ के बीच का स्थान एक इच का तीस लाखवाँ हिस्सा है। प्रकाश की गति प्रति सेकण्ड १,८६,००० मील है। हीरे आदि ठोस पदार्थों मे अणुओ की गति ९६० मील है।

इस प्रकार जैन दर्शन और विज्ञान, अणु-परमाणु को गतिशील मानने तक को एक मत है कि परमाणु गति करता है। लेकिन गति के बारे में दोनो में जहाँ साधर्म्य है, वही वैधर्म्य भी है। विज्ञान के अनुसार इलेक्ट्रोन सबसे छोटा कण है और उसकी गति गोलाकार मे है और जैन दर्शन के अनुसार परमाणु की स्वाभाविक गति आकाश के प्रदेशो के अनुसार सरल रेखा मे है और वैभाविक गति वक्र रेखा मे।

परमाणु का सघनीकरण

जैन दर्शन में बताया है कि परमाणु मे सूक्ष्म परिणामावगाहन शक्ति है। जिससे थोडे से परमाणु एक विस्तृत आकाशखण्ड को घेर लेते हैं और कभी-कभी वे परमाणु घनीभूत होकर बहुत छोटे आकाश देश मे समा जाते हैं और वे अनन्तानन्त परमाणु निर्विरोध रूप से उस एक आकाश प्रदेश मे रह सकते हैं। पदार्थ की इस सूक्ष्मपरिणति के सम्बन्ध मे यद्यपि वैज्ञानिको की पहुँच अभी इस पराकाष्ठा तक नहीं हो सकी है, फिर भी परमाणु की सूक्ष्मपरिणति के बारे मे होने वाले वैज्ञानिक प्रयोग जैन दर्शन के विचारो की पुष्टि कर रहे हैं। साधारणतया सोना, पारा, शीशा, प्लेटिनम आदि-आदि भारी वजनदार पदार्थ माने जाते हैं। एक इच के काष्ठ टुकडे मे और उतने ही बडे लोहे के टुकडे के भार मे कितना अन्तर है? यह स्पष्ट है। जिसका कारण परमाणुओ की सघनता, निविडता है। जितने आकाश खड को उस काष्ठ के छोटे से परमाणुओ ने घेरा, उतने ही आकाश खड मे अधिकाधिक परमाणु एकत्रित होकर खनिज पदार्थों, सोना-चाँदी आदि के रूप मे रह सकते हैं। इसी तरह अन्य सघन ठोस पदार्थों के बारे मे जाना जा सकता है जो अपनी सघनता से एक छोटे से आकाश खड मे रहते हैं और उनके भार को उठाने के लिये बडे-बडे क्रेन भी असफल, अक्षम हो जाये तथा एक छोटा-सा ढेला ऊपर से गिरकर बडे-बडे भवनो को भी तोड सकता है।

जैन दर्शन के अनुसार एक छोटा-सा बालुकण अनन्त परमाणुओ का पिण्ड है, जिसे स्कन्ध कहते हैं, छोटे से छोटा स्कन्ध दो परमाणुओ का होता है। आँखो से दिखने वाले पदार्थ तो अनन्त प्रदेशात्मक हैं और स्कन्ध के तोडने से भी स्कन्ध बनते जाते हैं। लेकिन परमाणु के बारे मे यह नियम स्थिति लागू नही होती है। क्योकि परमाणु पदार्थ का वह अनुत्तर परम अणु है जिसे अलग नही किया जा सकता है यानी परमाणु को कभी भी परमाणु से पृथक नही किया जा सकता है। वह स्वय अपना आदि, मध्य और अन्त है। यही धारणा अब विज्ञान की भी बनती जा रही है। विज्ञान के क्षेत्र मे भी अब यही चर्चा होने लगी है। प्रो अण्ड्रेड ने कहा है कि एक औंस पानी मे इतने स्कन्ध है जिनको गिनने के लिये ससार के सभी मनुष्य लग जाये तो उनका यह गिनती का कार्य चालीस लाख वर्षों मे पूर्ण हो सकेगा। यही अनुमान हवा के बारे मे लगाया गया है कि एक इच लम्बी, एक इच चौडी, एक इच ऊँची डिबिया मे समा जाने वाली हवा मे ४४२४ के ऊपर १७ शून्य रखे जाये तो उस सख्या के बराबर स्कन्ध उसमे है। जब इनमे (पानी और हवा मे) इतने स्कन्ध हैं तो परमाणुओ की सख्या का तो अनुमान ही नही लगाया जा सकता है। इस प्रकार पुद्‌गल और पदार्थ की सूक्ष्मता और सघनता के दोनो पक्षो (दर्शन व विज्ञान) मे और भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। परमाणु की जैन दर्शन मान्य सूक्ष्मता और सघनता का तो पूर्व मे स्पष्ट उल्लेख किया जा चुका है।

जैन शास्त्रो मे परमाणु के दो भेद बतलाये है—परमाणु और व्यवहार परमाणु। अविभाज्य सूक्ष्मतम अणु परमाणु है और सूक्ष्म स्कन्ध जो इन्द्रिय व्यवहार मे सूक्ष्मतम लगते हैं, वे व्यवहार परमाणु हैं जिनको ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु, रथ-रेणु आदि शब्दो से कहा गया है। विज्ञान के क्षेत्र मे भी अब ऐसे व्यवहार प्रचलित हो गये हैं कि जिसे परमाणु माना गया है, वह तो परम अणु नही है किन्तु व्यवहार से उस अणु की पहचान परमाणु शब्द से होती है। जैन दर्शन की दृष्टि मे इलेक्ट्रोन आदि अन्य कण भी व्यवहार परमाणु हैं, यथार्थ परमाणु नही हैं।

जैन दर्शन मे पुद्‌गल के स्थूल-स्थूल (अति स्थूल) आदि छह भेद बताये हैं। जिनकी व्याख्या का पूर्व में सकेत किया गया है। विज्ञान ने भी पदार्थ को ठोस, तरल और वाष्प इन तीन भेदो मे बाँटा है। ये तीनो भेद जैन दर्शन के छह भेदो मे से क्रमश प्रथम अतिस्थूल, द्वितीय स्थूल और चतुर्थ सूक्ष्म-स्थूल भेद मे समाविष्ट हो जाते हैं। दार्शनिको की दृष्टि मे ठोस (अति स्थूल) आदि तीन भेदो के अतिरिक्त और भी पदार्थ थे। इसीलिये उन्होंने पदार्थ के छह भेद किये। अणु विखण्डन के पश्चात जो विभिन्न प्रकार के पदार्थ कण सामने आये तो वैज्ञानिको के तीन भेद भी अब केवल कहने मात्र के लिये रह गये हैं। वैज्ञानिक इस बात को स्वीकार करते हैं और उनको किस नाम से कहा जाये? विचारणीय है।

डेमोक्रेट्स की परमाणु सम्बन्धी मान्यताओ मे बताया गया है कि प्रत्येक परमाणु स्वतन्त्र इकाई है। जबकि जैन दर्शन का मत है कि प्रत्येक परमाणु अपने गुण, पर्यायो को रूपान्तरित कर सकता है। अब यही बात वैज्ञानिको ने भी स्वीकार कर ली है। सन् १९४१ मे वैज्ञानिक बैंजामिन ने पारे को सोने के रूप मे परिवर्तित किया। पारे के अणु का भार दो सौ अश होता है। उसे एक अश भार वाले विद्युत प्रोटोन से बिस्फोटित किया गया जिससे प्रोटोन पारे मे घुल-मिल गया तब उसका भार २०१ अश हो जाना चाहिये था। लेकिन उस मिले हुये अणु की मूल धूनि मे से एक अल्फा बिन्दु जिसका भार चार अश था, स्वत निकल भागा। परिणामत पारे का भार २०१ अश से घटकर १९७ अश का हो गया। इस १९७ अश भार का ही सोना होता है। इसी तरह सन् १९५३ मे प्लेटिनम को सोने मे परिवर्तित करने मे सफलता मिली। इन प्रयोगो से यह सिद्ध हो जाता है कि विज्ञान मान्य मूल द्रव्यों में परिवर्तन न होने की बात अब कल्पना की उडान रह गई है। विज्ञान जैन दर्शन के मत की ओर अग्रसर हो रहा है कि परमाणु अपने गुण-पर्यायो को रूपान्तरित कर सकता है, उसके गुण-पर्यायो मे परिवर्तन होता है।

ऊपर दर्शन और विज्ञान के परमाणु की सक्षिप्त जानकारी दी है। जिसकी समीक्षा का साराश नीचे लिखे अनुसार है—

जैन दर्शन मे परमाणु की व्याख्या करते हुये अनेक बातो विशेषताओ का विश्लेषण करते हुये कहा है कि परमाणु पुद्‌गल अविभाज्य, अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य है। उसकी गति अप्रतिहत है। वह अनर्ध, अमध्य, अप्रदेशी है डेमोक्रेट्स ने भी परमाणु की जो परिभाषा बताई है उसमे कहा गया है—परमाणु अच्छेद्य, अभेद्य और अविनाशी है। वे पूर्ण हैं और ताजे (नये) हैं, जैसे कि संसार के आदि मे थे।

उक्त दोनो व्याख्यानो मे कुछ समानता है और भावाभिव्यक्ति के लिये शाब्दिक प्रयोग भी समान हैं लेकिन डेमोक्रेट्स का माना गया अच्छेद्य, अभेद्य परमाणु आज खण्डित हो चुका है। उसमे पहले इलेक्ट्रोन और प्रोटोन का पता चला और विकास विश्लेषण के साथ अब प्रोटोन भी एक शाश्वत इकाई नही रहा। उसमे से न्यूट्रोन और पोजीट्रोन जैसे कण एक इकाई के रूप मे निकल पडे हैं। इसी तरह की प्रक्रिया आगे भी चालू है, जिससे यह दावा नही किया जा सकता है कि वास्तव मे परमाणु किसे कहा जाए? चरम परम कौन है?

विज्ञान मान्य परमाणु के अन्दर जितने भी कण हैं, वे जैन दर्शन की परिभाषा के अनुसार परमाणु कहलाने की क्षमता वाले नही है, उन्हे परमाणु नही कहा जा सकता है। क्योकि उसके अनुसार तो वे आज तक खोजे गये सूक्ष्म कण असख्य और अनन्त प्रदेशात्मक हैं। जिससे उन्हे परमाणु की बजाय स्कन्ध कहना चाहिये। यह केवल एक कल्पना की बात है कि अब इलेक्ट्रोन आदि कणो के विखण्डित होने की सभावना नही है। यही बात पहले अणु को लेकर भी कही जाती थी, लेकिन उसे भी स्वय वैज्ञानिको ने खण्डित करके अपने निर्णय को बदल दिया। इस प्रक्रिया का परिणाम, यह अवश्य हुआ कि प्रकृति ने अपने रहस्य को मनुष्य के समक्ष आशिक रूप मे उद्‌घाटित किया है,लेकिन भविष्य मे क्या रूप बनेगा? प्रकृति अपने अन्तर मे न जाने कैसे-कैसे रहस्य छिपाये हुये है? यह अभी नही कहा जा सकता है। अतीन्द्रिय प्रेक्षको ने जिस परमाणु का दर्शन कराया है, वहाँ तक मनुष्य अपनी क्षमता से पहुँच सकेगा, यह सम्भव नही है।

विज्ञान मान्य स्कन्ध की परिभाषा

जैन दर्शन मान्य स्कन्ध की परिभाषा को पूर्व मे बताया गया है कि दो से लेकर यावत् अनन्त परमाणुओ का एकीभाव स्कन्ध है। यह स्कन्ध विभिन्न परमाणुओ के एक, सघातित होने से बनता है, वैसे ही विविध स्कन्धो का एक होना व एक स्कन्ध का एक से अधिक खडो मे परमाणु रूप इकाई न आने तक टूटने का परिणाम भी एक स्वतन्त्र स्कन्ध है।

दर्शन की तरह विज्ञान मे भी स्कन्ध की चर्चा है। वहाँ बताया गया है कि पदार्थ स्कन्धो से निर्मित है। वे स्कन्ध गैस आदि पदार्थों में बहुत तीव्रता से सभी दिशाओ मे गति करते है। सिद्धान्तत स्कन्ध वह है कि एक चाक का टुकडा जिसके दो टुकडे किये जाये और फिर दो के चार, इसी क्रम से असख्य तक करते जाये जब तक कि वह चाक के रूप मे रहे तो उसका वह सूक्ष्मतम विभाग स्कन्ध कहलायेगा। इसका कारण यह है कि किसी भी पदार्थ के हम टुकडे करते जायेगे तो एक रेखा ऐसी आ जायेगी,

जहाँ से वह पदार्थ अपनी मौलिकता खोये बिना नहीं टूट सकेगा। अतः उस पदार्थ का मूल रूप स्थिर रखते हुये उसका जो अंतिम टुकड़ा है, वह एक स्कन्ध है।

जैन दर्शन और विज्ञान कृत स्कन्ध की व्याख्या मे कुछ समानता है तो कुछ असमानता भी है। जैन दर्शन ने पदार्थ की एक इकाई को एक स्कन्ध माना है। जैसे घड़ा, मेज, कुर्सी आदि। घड़े के दो टुकड़े हो गये तो दो स्कन्ध, इसी तरह दस, बीस आदि हजार टुकड़े हो जाये तो वे सब स्कन्ध ही हैं। यदि उसको पीसकर चूर्ण कर लिया तो एक-एक कण एक-एक स्कन्ध है। जबकि विज्ञान मे पदार्थ का मूल रूप स्थिर रखते हुये उसका अंतिम टुकड़ा यानी एक अणु ही स्कन्ध है, जिसे फिर तोड़ा जाये तो वह अपने रूप को खोकर अन्य जाति में परिणत हो जायेगा। जैनदर्शन की दृष्टि से वह अन्तिम अणु स्कन्ध तो है ही किन्तु पदार्थ स्वरूप के बदलने की अपेक्षा न रखते हुये वह जब तक तोड़ा जा सकता है अर्थात जब तक परमाणु के रूप में परिणत नहीं हो जाता तब तक वह स्कन्ध है और उसके सहधर्मी जितने भी टुकड़े है, वे भी स्कन्ध हैं। परमाणु रूप अवस्था को प्राप्त होने के पूर्व तक पदार्थ के सभी अंश स्कन्ध कहलायेंगे।

विज्ञान की स्कन्ध निर्माण प्रक्रिया

जैनदर्शन मे स्कन्ध निर्माण की प्रक्रिया का एक ही सिद्धान्त है कि अनेक परमाणु परस्पर मिलकर जो एक इकाई बनते हैं, उसका हेतु उनका परमाणुओ का स्निग्धत्व व रूक्षत्व स्वभाव है। जघन्य गुण यानी एक अंश वाले स्निग्ध व रूक्ष परमाणु तो अवश्य ही संश्लिष्ट होकर स्कन्ध नहीं बनते हैं, लेकिन इसके अतिरिक्त दो आदि यावत् अनन्त गुणांशो वाले समान या असमान परमाणु संश्लिष्ट होने से स्कन्ध रूप हो जाते हैं। इस प्रकार जैसे जैनदर्शन मे स्निग्धत्व और रूक्षत्व को बन्धन का कारण माना है, वैसे ही वैज्ञानिको ने पदार्थ के धन विद्युत और ऋण विद्युत इन दो स्वभावो को बन्धन का कारण कहा है। जैनदर्शन के अनुसार स्निग्धत्व और रूक्षत्व परमाणु मात्र मे मिलता है और विज्ञान के अनुसार धन व ऋण विद्युत पदार्थ मात्र मे पायी जाती है। इससे प्रतीत होता है कि जैनदर्शन और विज्ञान मे शाब्दिक भेद से रूक्षत्व और स्निग्धत्व के नाम से तथा वैज्ञानिको ने धन और ऋण विद्युत के नाम से पदार्थो मे दो धर्मो को कहा है। सर्वार्थसिद्धि अध्याय ५ सूत्र ३४ मे विद्युत के विषय मे बताया है कि **'स्निग्धरूक्षगुणनिमित्तो विद्युत '** अर्थात आकाश मे चमकने वाली विद्युत परमाणुओ के स्निग्ध और रूक्ष गुणो का परिणाम है, तन्निमित्तक है। इसका स्पष्ट आशय यह हुआ कि स्निग्धत्व और रूक्षत्व इन दो गुणो से धन और ऋण विद्युत उत्पन्न होती है। यानी स्निग्धित्व और रूक्षत्व आणविक बन्धनो के कारण हैं या धन और ऋण दो प्रकार के विद्युत स्वभाव के।

इसी प्रकार जब हम विज्ञान के बन्धनो के प्रकारो का अध्ययन करते हैं तब वहाँ भी जैन दर्शन के विचारो से समानता मिलती है। विज्ञान ने भी भारी ऋणाणु की भविष्यवाणी की है जो साधारण ऋणाणुओ से पचास गुना भारी होता है और वह ऋणाणुओ के समुदाय का परिणाम ही होता है। इसलिये उसे नेगेट्रोन कहते हैं। क्योंकि उसमे केवल निषेध विद्युत ही पाई जाती है। इस प्रकार के परमाणु जब पूर्णरूपेण प्रकट हो जायेंगे तो आशा है कि वे रूक्ष के साथ रूक्ष के बन्ध को भी चरितार्थ कर देंगे जैसा कि जैन दर्शन मे माना गया है। इस नियम से प्रोटोन स्निग्ध के साथ स्निग्ध के, तथा न्यूट्रोन रूक्ष और रूक्ष के बन्ध के उदाहरण बन सकते हैं। आधुनिक परमाणु का बीजाणु भी जो ऋणाणुओ तथा धनाणुओ को समुदाय मात्र है, स्निग्ध और रूक्ष बन्ध का उदाहरण बनता है। डॉ बी एल शील ने अपनी पुस्तक 'पोजिटिव साइन्स ऑफ एन्सिएन्ट हिन्दूज' मे स्पष्ट लिखा है कि जैनदर्शनकार इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि पोजिटिव और निगेटिव विद्युत कणो के मेल से विद्युत की उत्पत्ति होती है।

जैनदर्शन मे जैसे शब्द, अन्धकार, छाया, प्रकाश, आतप, उद्योत आदि की पौद्गलिकता सिद्ध की गई है, वैसे ही विज्ञान भी इनके बारे मे अधिकांशतया समान मत रखता है। यदि उनमे कहीं अंतर है तो उसका कारण वैज्ञानिक प्रयोगो की सीमा है। पदार्थ की उत्पत्ति, विनाश और स्थिति के बारे मे विज्ञान का मत बनता जा रहा है कि शक्ति अविनाशी एवं शाश्वत है, वह नष्ट न होकर दूसरा रूप ले लेती है, किन्तु उस परिवर्तन मे शक्ति मात्रा ज्यो की त्यो स्थिर रहती है विज्ञान की इसी बात को दर्शन के क्षेत्र मे शक्ति (ध्रौव्य) परिवर्तन (उत्पत्ति, विनाश) इन तीन शब्दो मे व्यक्त किया गया है।

जैनदर्शन और विज्ञान के पदार्थ विषयक विचार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैनदर्शन पर परमाणु-विज्ञान और पदार्थदर्शन निश्चल और समग्र निरूपण है। आध्यात्मिक विषयो की तरह पदार्थ विज्ञान के बारे में भी इतने अनुपम अकाट्य विचार दिये हैं कि जिनका अनुसरण करके आधुनिक विज्ञान अपने क्रमिक आरोहण की स्थिति मे एक के बाद दूसरे सोपान पर बढ़ रहा है। आज वैज्ञानिक मानने लगे है कि दार्शनिको की परमाणु सम्बन्धी धारणा के समक्ष विज्ञान की धारणा नगण्य है। जो सन् १९५६ में लदन से प्रकाशित 'परमाणु और विश्व' नामक पुस्तक के लेखक पदार्थ विज्ञान के अधिकारी विद्वान वैज्ञानिक जी ओ जोन्स, जे रोटबेल्ट और जे जे विटरो के विचारो से स्पष्ट हो जाता है। वे पुस्तक के पृष्ठ ४९ पर परमाणु के अतर्गत मौलिक तत्वो की चर्चा करते हुये लिखते हैं—

"बहुत दिनो तक तीन ही तत्व—इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन और प्रोटोन—विश्व सघटना के मूलभूत आधार माने जाते थे। किन्तु वर्तमान मे उनकी सख्या कम से कम १६ तक पहुँच गई है एव उस प्रकार के अन्य दूसरे तत्वो का अस्तित्व और भी सम्मिलित हो गया है। मौलिक तत्वो का यह अप्रत्याशित बढ़ावा बहुत ही असतोष का कारण है और सहज ही यह प्रश्न उठता है कि मौलिक तत्वो का हम सही अर्थ क्या ले? पहले अग्नि, पृथ्वी, हवा और पानी इन चार पदार्थों को मौलिक तत्वो की संज्ञा दी, इसके बाद सोचा गया कि प्रत्येक रासायनिक पदार्थ का मूलभूत अणु ही परमाणु है, उसके अनन्तर प्रोटोन, न्यूट्रोन और इलेक्ट्रोन इन तीन मूलभूत अणुओ की सख्या बीस तक पहुँच गयी है। यह सख्या और भी आगे बढ सकती है। क्या वास्तव मे ही पदार्थ के इतने टुकडो की आवश्यकता है या मूलभूत अणुओ का यह बढ़ावा पदार्थ मूल सम्बन्धी हमारे अज्ञान का ही सूचक है? सही बात तो यह है कि मौलिक अणु क्या है? यह पहेली अभी तक सुलझ नही पायी है।"

उक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो गया है कि आज के यांत्रिक युग मे परमाणु एक पहेली बना हुआ है। दर्शन और विज्ञान जगत के मूल उपादानो के अन्वेषण की ओर उन्मुख रहे हैं। प्रयोगशालाओ के बिना भी दार्शनिको ने जो चिन्तन किया और उसके निष्कर्ष रूप मे जो सिद्धान्त स्थापित किये, वे आज के उन विद्वान माने जाने वाले व्यक्तियो को चुनौती दे रहे हैं जो यह मानते थे कि अणुविज्ञान आधुनिक विज्ञान की देन है। दार्शनिक जगत के अणु का कल्पनाओ से प्रादुर्भाव हुआ था।

जैन दर्शन मे आध्यात्मिक चिन्तन जिस सीमा तक पहुँचा हुआ है, उसी तरह पदार्थ चिन्तन भी। जिसका पूर्ण विश्लेषण समय और श्रम साध्य है। पृष्ठ मर्यादा के कारण प्रस्तुत निबन्ध मे पुद्गल, स्कन्ध, परमाणु का सूचना रूप मे ऊपरी तौर पर विहगावलोकन किया है। प्रतिपाद्य विषय के बहुत से आयामो का स्पर्श भी नही किया गया है। लेकिन इसे महासागर मे से एक बूँद को ग्रहण करने के लिये किये गये चचुपात की तरह मानकर विशेष जानकारी की ओर जिज्ञासु जन अग्रसर होंगे, यही आकांक्षा है।

———○ ○ ○———

महावीर वाणी

जब तुम किसी को मारने अथवा सताने जाते हो तो उसकी जगह पर अपने को रखकर देखो। यदि तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार होता तो कैसा लगता? यदि मानते हो कि बुरा लगता और चाहते हो कि तुम्हारे साथ ऐसा कोई न करे तो तुम भी दूसरो के साथ ऐसा मत करो। समस्त प्राणियो को दुःख अप्रिय है और सुख प्रिय है। यदि चाहते हो कि तुम्हे कोई दुःख न दे तो तुम भी किसी को दुःख मत दो। इसमे परस्पर व्यवहार मे स्थित वैषम्य दूर होगा।

—आचारांग सूत्र

जैनदर्शन की निक्षेप-पद्धति

स्वर्गीय युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी महाराज

सासारिक सरचना के मौलिक आधार दो हैं—अजीव और जीव। इसमे से अजीव ज्ञेय है। वह ज्ञाता के ज्ञान के द्वारा जाना, देखा जाता है और प्रयोग–व्यवहार मे आता है। यह सामर्थ्य उसमे नही है कि कभी भी जानने देखने आदि की योग्यता, क्षमता प्राप्त कर सके। जबकि जीव ज्ञाता है, विश्व के सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञाता, दृष्टा और उनको अपने व्यवहार मे उपयोग करने का अधिकारी है।

अवस्था की दृष्टि से जीव के भी दो भेद हैं, ससारी और मुक्त। मुक्त जीव तो त्रिकालवर्ती पदार्थों के स्वतन्त्र ज्ञाता-दृष्टा है। लेकिन ससारी जीवो को तो अपने प्रत्येक व्यवहार मे पदार्थों का आश्रय लेना पडता है। वे बिना उनके अपना व्यवहार नही चला सकते हैं। पदार्थ के बिना लेन-देन नही होता है, जानना देखना नही होता। इसका तात्पर्य यह हुआ कि समूचा व्यवहार पदार्थ-आश्रित है। लेकिन पदार्थ अनेक हैं। उनका एक साथ व्यवहार नही होता है। वे अपनी-अपनी पर्यायो से पृथक्-पृथक् हैं अत उनकी पहिचान भी अलग-अलग होनी चाहिए।

ससारी जीवो मे मानव श्रेष्ठतम है। उसे अनुभूति और अभिव्यक्ति करने की विशेष क्षमता प्राप्त है। पशु अनुभूति तो करते हैं, लेकिन भाषा की स्पष्टता न होने से वे उसे यथार्थ रूप मे अभिव्यक्त नही कर पाते हैं। जबकि मानव अपनी अनुभूति–विचारों को भाषा के माध्यम से सम्यक् प्रकारेण व्यक्त कर सकता है। विश्व का कोई भी व्यवहार बिना भाषा के नहीं चल सकता। पारस्परिक व्यवहार को अच्छी तरह से चलाने के लिये भाषा का अवलम्बन एव शब्द प्रयोग का माध्यम अनिवार्य है। विश्व मे हजारो भाषाये हैं और उनके अपने लाखो शब्द हैं। अत भाषा के ज्ञान के लिये शब्दज्ञान और शब्दज्ञान के लिये भाषा का परिज्ञान होना जरूरी है। किसी की भाषा का सही बोध तभी हो सकता है जब हम उनके शब्दो का समुचित प्रयोग करना सीखे *कि यह शब्द किस आशय को व्यक्त करने के लिये प्रयुक्त हुआ है।*

शब्दप्रयोग पदार्थ के लिये किया जाता है। स्वरूप की दृष्टि से पदार्थ और शब्द में कोई तादात्म्य नही है। दोनो अपनी-अपनी स्थिति मे स्वतन्त्र हैं। लेकिन किस शब्द से कौन-सा पदार्थ समझना, इस समस्या को सुलझाने के लिये सकेत पद्धति का विकास हुआ, पदार्थों का नामकरण हुआ। कहने के लिये पदार्थ मे शब्द की और शब्द मे पदार्थ की स्थापना हुई। जिससे शब्द और अर्थ परस्पर सापेक्ष बन गये। समस्याओ के समाधानार्थ दोनो परस्पर कडी से कडी जैसे एक-दूसरे से जुडकर श्रृखलाबद्ध हो गये। दोनो का आपस मे वाच्य-वाचक सम्बन्ध बन गया कि अमुक शब्द इस पदार्थ का वाचक और यह पदार्थ इस शब्द का वाच्य है।

शब्द और अर्थ का यह वाच्य-वाचक सम्बन्ध भिन्नाभिन्न है। भिन्न इसलिये कि अग्नि पदार्थ और अग्नि शब्द एक नही है। क्योकि अग्नि शब्द का उच्चारण होने पर जीभ मे दाह नही होता। अभिन्न इसलिए कि अग्नि शब्द से अग्नि पदार्थ का ही बोध होता है, अन्य पदार्थ का नही। भेद स्वभाव-कृत है और अभेद सकेत-जन्य। लेकिन सकेत शब्द और पदार्थ को एक सूत्र मे जोड देता है। अत वक्ता द्वारा प्रयुक्त शब्द का नियत अर्थ क्या है ? किस पदार्थ के लिये यह शब्द प्रयुक्त हुआ है ? इसको ठीक रूप मे समझने का कार्य निक्षेप पद्धति है।

निक्षेप की परिभाषा :

'निक्षेप' यह जैनदर्शन का एक लाक्षणिक शब्द है। पदार्थबोध के कारणो से निक्षेप भी एक कारण है। अत जैन दार्शनिको ने विविध प्रकार से निक्षेप की लक्षणात्मक व्याख्याये की हैं। जैसे कि 'युक्ति मार्ग' प्रयोजन-वशात् जो वस्तु को नाम आदि चार भेदो

में क्षेपण कर स्थापित करे उसे निक्षेप कहते हैं।[1] अथवा वस्तु का नाम आदिक मे क्षेप करने या धरोहर रखने को भी निक्षेप कहते हैं।[2] अथवा सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय मे अवस्थित वस्तु को उनसे निकाल कर जो निश्चय मे क्षेपण करता है, उसे भी निक्षेप कहते हैं।[3] अर्थात् जो अनिर्णीत वस्तु का नामादिक द्वारा निर्णय कराये, वह निक्षेप है। अथवा अप्रकृत का निराकरण करके प्रकृत का निरूपण करना निक्षेप कहलाता है। अथवा शब्द का अर्थ मे और अर्थ का शब्द मे आरोप करना यानी जो शब्द और अर्थ को किसी एक निश्चय या निर्णय मे स्थापित करता है, उसे निक्षेप कहते हैं।[4]

उक्त सभी लक्षणो का साराश यह है कि जिसके द्वारा वस्तु का ज्ञान क्षेपण किया जाये या उपचार से वस्तु मे जिन प्रकारो से आक्षेप किया जाये, उसे निक्षेप कहते हैं। क्षेपण क्रिया के दो रूप हैं--प्रस्तुत अर्थ का बोध देने वाली शब्द रचना या अर्थ का शब्द मे आरोप करना। यह कार्य वक्ता के अभिप्राय विशेष पर आधारित है।

निक्षेप का पर्यायवाची शब्द 'न्यास'[5] है। जिसका प्रयोग तत्वार्थसूत्र मे हुआ है और तत्वार्थ राजवार्तिक मे **'न्यासो निक्षेपः'**[1] इन शब्दो द्वारा उसका स्पष्टीकरण किया गया है। न्यास (निक्षेप) का लक्षण इस प्रकार है--

उपायो न्यास उच्यते।[2] नामादिक के द्वारा वस्तु मे भेद करने के उपाय को न्यास या निक्षेप कहते हैं।

निक्षेप का आधार

निक्षेप का आधार पदार्थ है। चाहे फिर वह पदार्थ, अप्रधान, कल्पित या अकल्पित कैसा भी क्यो न हो। भाव अकल्पित दृष्टि है। अत वह प्रधान होता है, जबकि शेष तीन निक्षेप-कल्पित होने से अप्रधान है। क्योकि नाम मे वस्तु की पहिचान होती है। स्थापना मे आकार की भावना होती है, गुण की वृत्ति नही होती है। द्रव्य मे मूल वस्तु नही, किन्तु इसकी पूर्व या उत्तर दशा या उससे सम्बन्ध रखने वाली अन्य कोई वस्तु होती है। इसमे भी मौलिकता नही है अत ये तीनो अमौलिक हैं, मौलिक नही।

निक्षेप निर्देश का कारण और प्रयोजन ·

जगत मे मौलिक अस्तित्व यद्यपि इनका है और परमार्थ अर्थ सज्ञा भी इसी गुण-पर्याय वाले द्रव्य को दी जाती है लेकिन व्यवहार केवल परमार्थ मात्र से नही चल सकता। अत व्यवहार के लिये पदार्थों का शब्द, ज्ञान और अर्थ इन तीन प्रकारो से निक्षेप किया जाता है। शब्दात्मक अर्थ का आधार है पदार्थ का नामकरण मात्र और तदाकार सद्भावरूप या अतदाकार-असद्भाव रूप मे पदार्थ की स्थापना करना। ज्ञानात्मक अर्थ, स्थापना-निक्षेप मे और शब्दात्मक अर्थ नामनिक्षेप मे अन्तर्भूत होता है। लेकिन परमार्थ अर्थ द्रव्य और भाव है। जो पदार्थ की त्रैकालिक पर्याय मे होने वाले व्यवहार के आधार बनते हैं तथा शब्दिक व्यवहार शब्द से। इस प्रकार व्यवहार कही शब्द, कही अर्थ और कही स्थापना अर्थात् ज्ञान से चलते है। इसीलिये निक्षेप पदार्थ और शब्द प्रयोग की सगति का सूत्राधार है। इसे समझे बिना भाषा के वास्तविक अर्थ को समझा नही जा सकता। जिससे उस स्थिति मे अयुक्त पदार्थ युक्त और युक्त पदार्थ अयुक्त प्रतीत होता है। किस शब्द का अर्थ क्या है, यह निक्षेपविधि द्वारा विस्तार से बतलाया जाता है।

दूसरी बात यह है कि श्रोता तीन प्रकार के होते है--अव्युत्पन्न श्रोता, सम्पूर्ण विवक्षित पदार्थ को जानने वाला श्रोता और एक देश विवक्षित पदार्थ को जानने वाला श्रोता।

उक्त तीनो प्रकार के श्रोताओ मे से अव्युत्पन्न श्रोता यदि पर्याय (विशेष) को जानने का इच्छुक है तो उसे प्रकृत विषय की व्युत्पत्ति के द्वारा अप्रकृत विषय के निराकरण के लिये अथवा वह द्रव्य (सामान्य) को जानने का इच्छुक है तो प्रकृत विषय के प्ररूपण हेतु तथा दूसरे व तीसरे प्रकार के श्रोताओ को यदि पदार्थ के बारे मे सदेह या विपर्याय हो तो सदेह दूर करने व निर्णय के लिये निक्षेपो का कथन किया जाता है।

निक्षेप भाषा और भाव, वाच्य और वाचक की सगति है। इसे जाने बिना भाषा के यथार्थ आशय को अधिगत नही कर सकते। अर्थ सूचक शब्द के पीछे पदार्थ की स्थिति को स्पष्ट करने वाला जो विशेषण लगता है यही निक्षेप पद्धति की विशेषता

है। निक्षेप के द्वारा पदार्थ की स्थिति के अनुरूप शब्द रचना या शब्द प्रयोग की जो शिक्षा मिलती है, वही वाणी–सत्य का महान तत्व है। इसीलिये दूसरे शब्दो मे इसे सविशेषण भाषा प्रयोग भी कह सकते हैं। भले ही अधिक अभ्यास दशा मे विशेषण का प्रयोग न भी किया जाये। किन्तु यह विशेषण गर्भित अवश्य रहता है। यदि इस अपेक्ष्य दृष्टि की ओर ध्यान दे तो कदम-कदम पर असत्य भाषण का प्रसग आ सकता है। जैसे कि जो कभी राज्य करता था वह आज भी राजा है—यह प्रयोग असत्य माना जायेगा और भ्रामक भी। अतएव निक्षेप दृष्टि की अपेक्षाओ को विस्मृत नहीं किया जा सकता। यह विधि अपने में जितनी गम्भीरता लिये हुए है, उतनी ही व्यावहारिक भी। जैसे कि–

नाम–एक निर्धन व्यक्ति को लक्ष्मीनारायण कहते हैं।
स्थापना–एक पाषण प्रतिमा को भी लोग देव कहते हैं।

द्रव्य–जिसमे कभी घी रखा जाता था, उसे आज भी घी का घडा कहते हैं, अथवा भविष्य मे कभी घी रखा जाएगा या घी रखने का घडा बनने वाला है, वह भी घी का घडा कहलाता है। एक व्यक्ति वैद्य है, चिकित्सा करने मे निपुण है किन्तु वर्तमान मे व्यापार करता है, तो भी लोग उसे वैद्य कहते हैं।

भाव–भौतिक ऐश्वर्य का अधिपति ससार मे इद्र नाम से और आत्म ऐश्वर्य का अधिकारी लोकोत्तर जगत मे इद्र कहलाता है। इस तरह के सम्पूर्ण व्यवहार का कारण निक्षेप पद्धति है।

प्रमाण, नय व निक्षेप मे अन्तर .

पदार्थ के सम्यग् ज्ञान को प्रमाण और ज्ञाता के अभिप्राय विशेष को नय कहते हैं। प्रमाण के द्वारा सम्पूर्ण वस्तु जानी जाती है। किन्तु इन दोनो द्वारा निर्णीत, ज्ञात पदार्थ निक्षेप का विषय है। निक्षेप नामादिक द्वारा वस्तु के भेद करने का उपाय है। प्रमाण, नय और निक्षेप मे विषय-विषयीभाव और वाच्य-वाचक सम्बन्ध है। यानी प्रमाण, नय विषयी हैं और निक्षेप उनका विषयवाच्य है। प्रमाण व नयो के द्वारा पदार्थों मे नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूप से जो एक प्रकार का आरोप किया जाता है, वह निक्षेप है। शब्द और अर्थ मे जो वाच्य-वाचकता का सम्बन्ध है, उसमे पदार्थ को स्थापित करने की क्रिया का नाम निक्षेप है कि अमुक शब्द के द्वारा यही पदार्थ वाच्य है, ग्रहण करने योग्य है आदि की वृत्ति निक्षेप द्वारा ही होती है। प्रमाण, नय ज्ञानात्मक हैं और निक्षेप ज्ञेयात्मक। प्रमाण, नय के द्वारा जो जाना जाता है, उस पदार्थ के अस्तित्व की अभिव्यक्ति निक्षेप द्वारा होती है कि नामादि प्रकारो मे से वह किसी-न-किसी रूप मे अवश्य है।

निक्षेप का फल ·

अप्रस्तुत अर्थ को दूर कर प्रस्तुत अर्थ को प्रकट करना, उसका बोध कराना निक्षेप का फल होता है। इसीलिए अनुयोगद्वार की टीका मे कहा गया है–निक्षेप पूर्वक अर्थ का निरूपण करने से उसमे स्पष्टता आती है, अत अर्थ की स्पष्टता उसका प्रकट फल है।' अप्रस्तुत का निराकरण करके प्रस्तुत का बोध कराने से सशय आदि दोषो का निराकरण और तत्वार्थ का अवधारण होता है।' उपाध्याय श्रीयशोविजयजी ने निक्षेप के आशय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि शब्द की अप्रतिपत्यादिव्यवच्छेदक अर्थ रचना को निक्षेप कहते हैं।'' यानी निक्षेप का फल अप्रतिपत्तिसशय, विपर्यय, अनध्यवसाय, अज्ञान आदि का व्यवच्छेद-निराकरण होता है। दूसरे शब्दो मे कहें कि निक्षेप का आश्रय लेने से सशय का नाश, अज्ञान का क्षय होता है और विपर्यय अनध्यवसाय तो रहता ही नही है।

प्रमाण के द्वारा सम्पूर्ण वस्तु और नय के द्वारा वस्तु-अश जाना जाता है, तत्वार्थ का निश्चय होता है, लेकिन निक्षेप की आवश्यकता इसलिये है कि वह शब्द के नियत अर्थ को समझने-समझाने की एक पद्धति है। शब्द का उच्चारण होने पर उसके अप्रकृत (अनभिप्रेत, अनिच्छित, अवांछनीय) अर्थ के निराकरण और प्रकृत अर्थ के निरूपण मे निक्षेप की उपयोगिता है। प्रमाण और नय के द्वारा यदि अप्रकृत अर्थ को जान भी लिया जाये तो भी वह व्यवहार मे उपयोगी नहीं हो सकता। क्योंकि

मुख्य अर्थ और गौण अर्थ का विभाग होने पर भी व्यवहार की सिद्धि होती है। और मुख्य तथा गौण का भेद समझना नाम आदि निक्षेपों के बिना सम्भव नही है। इसलिये निक्षेप के बिना तत्त्वार्थ का ज्ञान नही हो सकता।"

भट्ट अकलक ने निक्षेप विधि की उपयोगिता और उसके फल के बारे में विचार करते हुए 'सिद्धि विनिश्चय' ग्रन्थ मे स्पष्ट कहा है–"किसी धर्मी मे नय के द्वारा जाने हुए धर्मों की योजना करने को निक्षेप कहते हैं।" निक्षेप के अनन्त भेद हैं, क्योकि पदार्थ अनन्त धर्मात्मक है, किन्तु सक्षेप मे कहा जाये तो उसके चार भेद हैं। अप्रस्तुत का निराकरण करके प्रस्तुत का निरूपण करना उसका उद्देश्य है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय के द्वारा जीव-अजीव आदि तत्वो को जानने का कारण निक्षेप है। निक्षेप के द्वारा सिर्फ तत्त्वार्थ का ज्ञान ही नही होता, अपितु सशय-विपर्यय आदि भी नष्ट हो जाते हैं। निक्षेपो को तत्त्वार्थ के ज्ञान का हेतु इसलिए कहा जाता है कि वह शब्दो मे, यथाशक्ति उनके वाच्यो में भेद की रचना करता है। इसीलिए ज्ञाता के श्रुत विषयक विकल्पो की उपलब्धि के उपयोग मे आने वाले निक्षेप प्रयोजनवान, फलप्रद हैं।"

निक्षेप के भेद·

पदार्थ की अनन्त अवस्थाएँ होने से यदि विस्तार मे जाये तो कहना होगा कि वस्तु-विन्यास के जितने भी क्रम हैं उतने ही निक्षेप हैं, लेकिन सक्षेप मे कम-से-कम चर भेद हैं–

१ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ४ भाव।"

इन चारो मे उन अनन्त निक्षेपो का अन्तर्भाव हो जाता है।" अर्थात् सक्षेप मे पूर्वोक्त नाम आदि चार भेद हैं और विस्तार से अनन्त। षट्खण्डागम के वर्गणा निक्षेप प्रकरण मे नाम-वर्गणा, स्थापना-वर्गणा, द्रव्यवर्गणा, क्षेत्रवर्गणा, कालवर्गणा, भाववर्गणा के भेद से निक्षेप के छह भेद बतलाये हैं।" लेकिन ये विशेष विवेचन के विस्तार की अपेक्षा से भेद किये गये हैं। सामान्यतया तो नाम, स्थापना द्रव्य, भाव ये चार भेद ही माने जाते हैं।

पहले यह बताया जा चुका है कि नय और निक्षेप का विषय-विषयी भाव सम्बन्ध है। नय ज्ञानात्मक है और निक्षेप ज्ञेयात्मक। अत नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीन निक्षेप द्रव्यार्थिक नय के विषय हैं और भाव निक्षेप पर्यायार्थिक नय का विषय है। क्योकि भाव निक्षेप पर्याय (विशेष) रूप है, जिससे उसे पर्यायार्तिक नय का विषय माना जाता है, जबकि शेष तीन द्रव्य (सामान्य) रूप होने से द्रव्यार्थिक नय के विषय हैं।

नैगम, सग्रह और व्यवहार इन तीन द्रव्यार्थिक नयो मे चारो निक्षेप तथा ऋजुसूत्र नय मे स्थापना के अतिरिक्त तीन निक्षेप सम्भव हैं। जबकि तीनो नयो (शब्द, समभिरूढ एवभूत) मे नाम और भाव ये दो ही निक्षेप होते हैं।

यद्यपि भावनिक्षेप पर्यायार्थिक नय का विषय है, लेकिन कथचित् वह द्रव्यार्थिक नय का भी विषय माना जा सकता है। यद्यपि शुद्ध द्रव्यार्थिक नयो मे तो भावनिक्षेप नही बन सकता है, क्योकि भाव निक्षेप मे वर्तमान काल को छोडकर अन्य काल प्राप्त नही है, परन्तु जब व्यजन पर्यायो की अपेक्षा भाव मे द्रव्य का सद्भाव स्वीकार कर लिया जाता है तब अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयो मे भाव निक्षेप बन जाता है। इसीलिए उपचार से भावनिक्षेप को द्रव्यार्थिक नय का विषय भी कह सकते हैं परन्तु मुख्य रूप से वह भी पर्यायार्थिक नय का विषय है।

इस प्रकार से निक्षेप पद्धति के सम्बन्ध मे विचार करने के बाद अब उसके नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, इन चारो भेदो के लक्षणो न उनके उत्तर भेदो को बतलाते हैं।

नाम निक्षेप:

सज्ञा के अनुसार जिसमे गुण नही हैं ऐसी वस्तु मे व्यवहार के लिए अपनी इच्छा से की गई सज्ञा को नाम-निक्षेप कहते हैं।" अर्थात् व्यवहार की सुविधा के लिए वस्तु का जो इच्छानुसार नामकरण किया जाता है, वह नाम निक्षेप है। नाम सार्थक और

निरर्थक दोनो प्रकार का हो सकता है। जैसे कि सार्थक नाम इन्द्र है और निरर्थक नाम डित्थ है। नाम मूल अर्थ से सापेक्ष भी व निरपेक्ष भी, दोनो प्रकार का हो सकता है, किन्तु जो नामकरण संकेत मात्र के लिए होता है, जिसमें जाति, गुण, द्रव्य, क्रिया आदि की अपेक्षा नही होती, यह नाम निक्षेप है। जैसे कि एक निरक्षर व्यक्ति का नाम विद्यासागर रख दिया। एक निर्धन व्यक्ति का नामकरण लक्ष्मीपति कर दिया। लेकिन विद्यासागर और लक्ष्मीपति का जो अर्थ होना चाहिए वह उनमें नही मिलता है। उन दोनो व्यक्तियो में इन दोनो शब्दो का आरोप किया गया है। विद्यासागर का अर्थ है--विद्या का समुद्र और लक्ष्मीपति का अर्थ है धन-सम्पत्ति का स्वामी। विद्या का सागर होने से किसी को विद्यासागर कहा जाये और जो लक्ष्मी ऐश्वर्य आदि का पति है उसे लक्ष्मीपति कहा जाये तो यह नाम निक्षेप नहीं है। किन्तु जो ऐसे नही हैं, उनका नामकरण करना नामनिक्षेप है। यदि नाम के साथ इसी प्रकार के गुण भी विद्यमान हो तो हम उनको 'भाव विद्यासागर' और 'भाव लक्ष्मीपति' ऐसी शब्द रचना हमे बताती है कि ये व्यक्ति नाम से विद्यासागर और लक्ष्मीपति हैं। यदि नाम निक्षेप नहीं होता तो हम विद्यासागर, लक्ष्मीपति आदि नाम सुनकर अगाध विद्वत्तासम्पन्न एव धनधान्य, ऐश्वर्य युक्त व्यक्ति को ही समझ लेने को बाध्य होते, परन्तु ऐसा होता नही है। क्योंकि सज्ञामूलक शब्द के पीछे नाम विशेषण लगते ही सही स्थिति सामने आ जाती है कि इन शब्दो का वाच्य जब गुण की विवक्षापूर्वक अर्थानुकूल नहीं होता, तब नाम विशेष ही विवक्षित समझना चाहिए।

नाम निक्षेप के बारे मे यह ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्ति का जो नामकरण किया जाता है, उसी से उसे सम्बोधित करते हैं, किन्तु उसके पर्यायवाची अन्य शब्दो से उसका कथन नही होता। जैसे किसी व्यक्ति का नाम यदि 'इन्द्र' रखा गया तो उसे सुरेन्द्र, देवेन्द्र आदि पर्यायवाची नामो से सम्बोधित नही करेगे और न वह व्यक्ति भी इन शब्दो को सुनकर अपने को सम्बोधित किया गया समझ सकेगा।

स्थापना निक्षेप

जो अर्थ तद्रूप नही हैं, उसे तद्रूप मान लेना स्थापना निक्षेप है। अर्थात् यह वही है इस प्रकार अन्य वस्तु मे बुद्धि के द्वारा अन्य का आरोपण करना स्थापना निक्षेप है।[18]

स्थापना दो प्रकार की होती है--तदाकार और अतदाकार। अत स्थापना निक्षेप के भी दो भेद हैं--तदाकार स्थापना निक्षेप, अतदाकार स्थापना निक्षेप। इन्हे सद्भाव-साकार स्थापना और असद्भाव-अनाकार स्थापना भी कहते है।[19] वास्तविक पर्याय से परिणत वस्तु के समान बनी हुई अन्य वस्तु मे उसकी स्थापना करना तदाकार स्थापना है। जैसे कि एक व्यक्ति अपने गुरु के चित्र को गुरु मानता है, देवदत्त के चित्र को देवदत्त मानता है तो यह तदाकार स्थापना है। असली आकार से शून्य वस्तु मे 'यह वही है' ऐसी स्थापना कर लेने को अतदाकार स्थापना कहते हैं जैसे कि शतरज के मोहरो में हाथी, घोडा आदि की कल्पना करना अतदाकार स्थापना है।

नाम और स्थापना निक्षेप दोनो यद्यपि वास्तविक अर्थ से शून्य होते है, लेकिन दोनो मे यह अन्तर है कि स्थापना मे नाम अवश्य होगा क्योकि बिना नामकरण के स्थापना नही हो सकती, परन्तु जिसका नाम रखा है, उसकी स्थापना हो भी और न भी हो। नाम और स्थापना दोनो निक्षेपो मे सज्ञा देखी जाती है, बिना नाम रखे स्थापना हो ही नहीं सकती है तो भी स्थापना मे स्थापित वस्तु के प्रति जो आदर, सम्मान, अनुग्रह आदि की प्रवृत्ति होती है, उस प्रकार की प्रवृत्ति केवल नाम मे नही होती।

द्रव्य निक्षेप·

अतीत, अनागत और अनुपयोग अवस्था, ये तीनो विवक्षित क्रिया मे परिणत नहीं होती हैं इसलिए इनको द्रव्य निक्षेप कहते हैं। लोक व्यवहार मे वाचनिक प्रयोग विचित्र और विविध प्रकार का होता है। अत वर्तमान पर्याय की शून्यता के उपरान्त भी जो वर्तमान पर्याय से पहचाना जाता है यही इसमें द्रव्यता का आरोप है, जिससे किसी समय भूतकालीन स्थिति का वर्तमान मे प्रयोग किया जाता है तो किसी समय भविष्यकालीन स्थिति का वर्तमान मे प्रयोग होता है। जैसे कि भविष्य मे राजा बनने वाले बालक को राजा कहना अथवा जो राजा दीक्षित होकर श्रमण अवस्था मे विद्यमान है, उसे भी राजा कहना, यह द्रव्य निक्षेप का

प्रयोग है। इस प्रकार के वचन प्रयोग हम दैनिक जीवन मे देखते हैं। वे प्रयोग असत्य नहीं माने जाते। उनकी सत्यता का नियामक द्रव्य निक्षेप है।

द्रव्य निक्षेप का क्षेत्र अत्यन्त विशाल, विस्तृत है। अत इसके मूल भेद, उनके अवान्तर भेद और उनके भी उत्तर भेदों की अपेक्षा से अनेक भेद हैं, लेकिन सामान्य रूप मे द्रव्य निक्षेप के आगम द्रव्य निक्षेप और नोआगम द्रव्य निक्षेप–यह दो मूल भेद हैं। जो जीवविषयक या मनुष्य जीव विषयक शास्त्र या अन्य किसी शास्त्र का ज्ञाता है, किन्तु वर्तमान मे उस उपयोग से रहित है उसे आगम द्रव्य निक्षेप कहते हैं, तथा पूर्वोक्त आगम द्रव्य की आत्मा का उसके शरीर मे आरोप करके उस जीव के शरीर को ही जो आगम द्रव्य कह दिया जाता है, यह नोआगम द्रव्य निक्षेप है। अर्थात् आगम द्रव्य निक्षेप मे उपयोग रूप आगम ज्ञान नहीं होता है, किन्तु लब्धिरूप (शक्तिरूप) होता है और नोआगम द्रव्य निक्षेप मे दोनो प्रकार का आगम ज्ञान-उपयोग और लब्धि रूप नही होता है सिर्फ आगम ज्ञान का कारणभूत शरीर होता है। आगम द्रव्य मे जीव द्रव्य का ग्रहण होता है और नोआगम मे उसके आधारभूत शरीर का। क्योकि जीव मे आगम सस्कार होना सम्भव है किन्तु शरीर मे वह सम्भव नही है। यही आगम और नोआगम द्रव्य निक्षेप मे अन्तर है।

नोआगम द्रव्य निक्षेप के तीन भेद हैं–१ ज्ञशरीर (ज्ञायक शरीर) २ भव्य शरीर ३ तद् व्यतिरिक्त।

नोआगम द्रव्य निक्षेप के भेद-प्रभेदो का कथन इस प्रकार किया है–मूल मे तीन भेद हैं–ज्ञायक शरीर, भावी, तद्व्यतिरिक्त। ज्ञायक शरीर के तीन भेद–भूत, वर्तमान, भावी। भूत ज्ञायक शरीर के तीन भेद–च्युत, च्यावित व त्यक्त। त्यक्त ज्ञायक शरीर तीन प्रकार का है–भक्त प्रत्याख्यान, इगिनी, पादपोपगमन।

आगम द्रव्य निक्षेप के नौ भेद–स्थित, जित, परिचित, वाचनोपगत, सूत्रसम, ग्रन्थसम, नामसम, दोषसम।

जिस शरीर मे रहकर आत्मा जानता–देखता, ज्ञान करता था वह 'ज्ञ शरीर' या ज्ञायक शरीर है। जैसे किसी विद्वान ज्ञानी पडित के मृत शरीर को देखकर उसे ज्ञानी कहा तो वह 'ज्ञ शरीर' नोआगम द्रव्य निक्षेप का प्रयोग है।

जिस शरीर मे रहकर आत्मा भविष्य मे जानने वाली है, वह भव्य शरीर या भावी शरीर है। जैसे किसी बालक के विलक्षण शारीरिक लक्षणो को देखकर उसे ज्ञानी या त्यागी कहना 'भव्य शरीर' नोआगम द्रव्य निक्षेप है।

तद्व्यक्तिरिक्त मे शरीर नही किन्तु शारीरिक क्रिया को ग्रहण किया जाता है, जबकि प्रथम दो भेदो मे शरीर का ग्रहण किया गया है। अत शारीरिक क्रिया को तद् व्यक्तिरिक्त कहते हैं। इसमे वस्तु की उपकारक सामग्री मे भी वस्तु वाची शब्द का व्यवहार किया जाता है। जैसे कि किसी मुनिराज का धर्मोपदेश के समय होने वाली हस्त आदि की चेष्टाये। नोआगम तद्व्यक्तिरिक्त को क्रिया की अपेक्षा द्रव्य कहते हैं। यह तीन प्रकार का है–

लौकिक, कुप्रावचनिक, लोकोत्तर।[२]

१ लौकिक मान्यतानुसार 'श्रीफल' (नारियल) मगल है।

२ कुप्रावचनिक मान्यतानुसार विनायक मगल है।

३ लोकोत्तर मान्यतानुसार ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप धर्म मगल है।

इस प्रकार भाव शून्यता, वर्तमान पर्याय की शून्यता होने पर भी वर्तमान पर्याय से पहिचानने के लिए जो द्रव्यता का आरोप किया जाता है, यही द्रव्य निक्षेप का हार्द है।

भाव निक्षेप

वर्तमान पर्याय से युक्त वस्तु को भाव कहते हैं[१] और शब्द के द्वारा उस पर्याय या क्रिया मे प्रवृत्त वस्तु का ग्रहण होना भाव निक्षेप है। इस निक्षेप में पूर्वापर पर्याय को छोडकर वर्तमान पर्याय से उपलक्षित द्रव्य का ही ग्रहण किया जाता है।

भाव निक्षेप के भी द्रव्य निक्षेप के समान मूल मे दो भेद हैं–१ आगम भाव, २ नोआगम भाव।

जो आत्मा जीव विषयक शास्त्र को जानता है और उसके उपयोग से युक्त है, वह आगम भाव निक्षेप है। अर्थात् अध्यापक, अध्यापक शब्द के अर्थ मे उपयुक्त हो, कार्यशील हो तब वह आगम भाव निक्षेप से अध्यापक कहलाता है।

क्रिया-प्रवृत्त ज्ञाता की क्रियाए नोआगम से भाव निक्षेप हैं। जैसे कि अध्यापक अपने अध्यापन कार्य मे लगा हुआ है तो उस समय उसके द्वारा होने वाली हस्त आदि की चेष्टाएं–क्रियाए नोआगम से भाव निक्षेप हैं।

आगम भाव निक्षेप और नोआगम भाव निक्षेप मे यह अन्तर है कि जीवादि विषयो के उपयोग से सहित आत्मा तो उस जीवादि आगम भाव रूप कहा जाता है और उससे भिन्न नोआगम भावरूप है जो कि जीव आदि पर्यायो से आविष्ट सहकारी पदार्थ आदि स्वरूप से व्यवस्थित हो रहा है।

नोआगम भाव निक्षेप मे 'नो' शब्द देशवाची है। क्योकि यहाँ अध्यापक की क्रिया रूप अश नोआगम है। इसके भी तीन रूप हैं–लौकिक, कुप्रावचनिक और लोकोत्तर।

नोआगम तद् व्यतिरिक्त द्रव्य निक्षेप के लौकिक आदि तीन भेद बताये हैं और नोआगम भाव निक्षेप के भी उक्त लौकिक आदि तीन रूप कहे हैं। परन्तु इन दोनो मे यह अन्तर है कि द्रव्य निक्षेप मे 'नो' शब्द सर्वथा आगम का निषेध प्रदर्शित करता है जबकि भाव निक्षेप मे 'नो' शब्द का एक देश से निषेध का सकेत है। ' द्रव्य तद्व्यतिरिक्त का क्षेत्र तो केवल क्रिया है। और भावतद्व्यतिरिक्त काक्षेत्र ज्ञान और क्रिया दोनो है। अध्यापक हाथ का सकेत करता है, पुस्तक का पृष्ठ पलटता है आदि, यह क्रियात्मक अश ज्ञान नही है। इसलिए भाव मे 'नो' शब्द से देश-निषेधवाची है। भाव निक्षेप का सम्बन्ध केवल वर्तमान पर्याय से ही है–अत इसके द्रव्य निक्षेप के समान ज्ञायक शरीर आदि भेद नहीं होते हैं।

द्रव्य निक्षेप और भाव निक्षेप मे यह अन्तर है कि दोनो के सज्ञा लक्षण आदि पृथक्-पृथक् हैं। दूसरी बात यह है कि द्रव्य तो भाव रूप परिणत होगा क्योकि उस योग्यता का विकास जरूर होगा परन्तु भाव, द्रव्य हो भी और न भी हो, क्योकि उस पर्याय मे आगे अमुक योग्यता रहे भी और न भी रहे। भाव निक्षेप वर्तमान की विशेष पर्याय रूप ही है जिससे वह निर्बाध रूप से भेद ज्ञान को विषय कर रहा है जबकि अन्वय ज्ञान का विषय द्रव्य निक्षेप है। उसमे भूत-भविष्यत् पर्यायो का सकलन होता है और भाव निक्षेप मे केवल वर्तमान पर्याय का ही आकलन। यही द्रव्य और भाव निक्षेप मे अन्तर है।

विश्व मे विद्यमान सभी पदार्थ कम-से-कम नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव से चतुष्पर्यायात्मक होते हैं ऐसी कोई भी वस्तु नही जो केवल नाममय हो, अथवा द्रव्यताश्लिष्ट हो अथवा भावात्मक हो। अतएव ये चारो एक ही वस्तु के अश माने जाते है। यद्यपि वस्तु विन्यास के जितने क्रम हैं, उतने ही निक्षेप हैं और ये निक्षेप प्रत्येक वस्तु पर घटित किये जा सकते हैं। ऐसा नहीं कि किसी पर घटित हो और किसी पर नही। यह बात जुदी है कि इनकी सख्या कही अधिक और कही न्यून हो सकती है, तो भी नाम आदि चार निक्षेप सर्वत्र घटित होते हैं। क्योकि किसी वस्तु की सज्ञा नाम निक्षेप है। उसकी आकृति स्थापना निक्षेप, उस वस्तु का मूल द्रव्य या भूत-भविष्यात् पर्याय द्रव्य निक्षेप और उसकी वर्तमान पर्याय भाव निक्षेप है।

निक्षेप विवेचन के कथन का साराश यह है कि हमारा व्यवहार पर्यायाश्रित है और पदार्थ की अभिव्यक्ति का साधन भाषा है। अत भाषा को नियतार्थक और पदार्थ को नियत शाब्दिक बनाने के लिए निक्षेप पद्धति का सहारा लिया जाता है। पदार्थ और शब्द को साक्षेप बनाने के लिए ही निक्षेप पद्धति का विकास हुआ है। निक्षेप पद्धति का सर्वांगीण विश्लेषण सम्भव हुआ तो यथासमय करने का प्रयास किया जायेगा।

सन्दर्भ-स्थल

१ जुत्ती सुजुत्तमग्गे ज चउभेयेण होइ खलु ठवण।
वज्जे सदि णामादिसु त णिक्खेव हवे समये।।–बृहद् नयचक्र २६९

२ वस्तु नामादिषु क्षिपतीति निक्षेप। नयचक्र ४८
३ संशयविपर्यये अनध्यवसाये वा स्थित स्तेभ्योऽपसार्य निश्चये क्षिपतीति निक्षेप धवला ४।१, ३, ,१।२।६
४ णिच्छए णिण्णए खिवदि त्ति णिक्खेओ। धवला पु.१, पृ १०
५ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यास।–तत्वार्थ सूत्र १।५
६ तत्वार्थ राजवार्तिक १।५ की व्याख्या
७ धवला १।१,१,१।गा. ११।१७
८. अप्रस्तुतार्थापाकरणात् प्रस्तुतार्थव्याकरणाच्च नि फलवान्। –लघीयस्त्रय स्वो पृ ७२
९ आवश्यकादिशब्दानामर्थो निरूपणीय, स च निक्षेपपूर्वक एव स्पष्टतया निरूपितोभवति। –अनुयोगद्वार वृत्ति
१० अवगयणिवारणट्ठ पयदस्स परूवणा णिमित्त च।
संसयविणासणट्ट तच्चत्थवधारणट्ठ च।।–धवला टीका (सत्प्ररूपणा)
११ प्रकरणादिवशेनाप्रतिपत्त्यादि व्यवच्छेदक, यथास्थान विनियोगात् शब्दार्थरचनाविशेष निक्षेप।
–जैन तर्क भाषा, तृतीय परिच्छेद
१२ लघीयस्त्रय, पृ. ९९
१३ निक्षेपोऽनतकल्पश्च चतुर्विध प्रस्तुत-व्याक्रियार्थ। –सिद्धिविनिश्चय निक्षेपपद्धति
१४ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यास।–तत्वार्थसूत्र १।५
१५ नत्वनन्ता पदार्थाना वाच्य इत्यसत्। नामादिष्वेव तस्यान्तर्भावात्संक्षेपरूप। –श्लोकवार्तिक २।१।५ श्लो ७१।२८२
१६ वग्गणणिक्खेवेत्ति छव्विहे वग्गण-णिक्खेवे-णामवग्गणा।
ठवणवग्गणा, दव्ववग्गणा, खेत्तवग्गणा कालवग्गणा, भाववग्गणा।। –ष १४।५, ६। सूत्र ७१।५१
१७ सज्ञाकर्म नाम। –सर्वार्थसिद्धि १।५।१७।४
१८ सोऽयमित्यभिसम्बन्धत्वेन अन्यस्य व्यवस्थापनामात्रे स्थापना। –राजवार्तिक १।५ सूत्र की व्याख्या
१९ (क) सद्भावेतरभदेन द्विधा तत्वाधिरोपत। –श्लोकवार्तिक २।१।५ श्लोक ५४।२६३
(ख) सायार इयर ठवणा। –बृ. नयचक्र २६३
२० षट्खडागम आदि दिगम्बर ग्रथो मे तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य निक्षेप के इस प्रकार भेद-प्रभेद बतलाये हैं–नोआगम द्रव्य निक्षेप के दो भेद–कर्म, नौकर्म। नोकर्म तद्व्यतिरिक्त के दो भेद–लौकिक लोकोत्तर।
२१ वर्तमान तत्पर्यायोपलक्षित द्रव्य भाव। –सर्वार्थसिद्धि १।५
२२ आगम सव्व निसेहे नो सद्दो अहव देस-पडिसेहे।
–'नो' शब्द के दो अर्थ होते हैं–सर्वनिषेध और देशनिषेध।
२३ कथंचित् सज्ञा स्वालक्षण्यादि भेदात् तद् भेद सिद्धे। –राजवार्तिक १।५।टीका

——○○○——

यह शरीर नौका रूप है, जीवात्मा उसका नाविक है और ससार समुद्र है। महर्षि इस देह रूप नौका के द्वारा ससार-सागर को तैर जाते है।

-भगवान महावीर

जैनदर्शन में अजीव तत्व

उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी म.

जैनदर्शन मे षट्द्रव्य, सात तत्व और नौ पदार्थ माने गए हैं। (१) जीव, (२) अजीव, (धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल) (३) आश्रव, (४) सवर, (५) निर्जरा, (६) बंध और (७) मोक्ष ये सात तत्व माने है। इन सात तत्वो मे पुण्य और पाप मिलाने से नौ पदार्थ हो जाते हैं। नौ पदार्थ को सक्षेप मे दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं जीव और अजीव। जीव का प्रतिपक्षी अजीव है। जीव चेतनायुक्त है, वह ज्ञान, दर्शन आदि उपयोग लक्षणवाला है तो अजीव अचेतन है। शरीर मे जो ज्ञानवान पदार्थ है, जो सभी को जानता है, देखता है और उपयोग करता है, वह जीव है। जिसमे चेतना गुण का पूर्ण रूप से अभाव हो, जिसे सुख-दुःख की अनुभूति नही होती है, वह अजीव द्रव्य है।

अजीव द्रव्य के दो भेद हैं—रूपी और अरूपी। पुद्गल रूपी है, शेष धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार अरूपी है। आगम साहित्य मे रूपी के लिए मूर्त और अरूपी के लिए अमूर्त शब्द का प्रयोग हुआ है। पुद्गल द्रव्य मूर्त है और शेष चार अमूर्त है।

आकाश द्रव्य मे पाँचो अजीव द्रव्य और एक जीव द्रव्य ये छहो एक ही क्षेत्र को अवगाह कर परस्पर एक दूसरे से मिले हुए रहते है, किन्तु छहो द्रव्यो का अपना-अपना अस्तित्व है। सभी द्रव्य अपने आप मे अवस्थित है। तीन काल मे जीव कभी अजीव नही होता और अजीव जीव नही होता। पट्द्रव्य एक दूसरे मे प्रवेश करते हैं, परस्पर अवकाश देते है, सदा काल मिलते रहते हैं तथापि अपने स्वभाव को नही छोडते। अजीव द्रव्य का विवेचन अन्य दार्शनिको ने उतना नही किया जितना जैन दर्शन ने किया है। अजीव द्रव्य, प्रकृति, पुद्गल, जड, असत्, अचेतन, मैटर नाम से जाना-पहचाना जाता है।

अस्तिकाय

पट्द्रव्यो मे से जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश इन पाँच को अस्तिकाय कहते हैं। काल-द्रव्य अस्तिकाय नही है।

अस्तिकाय यह एक यौगिक शब्द है। अस्ति का अर्थ प्रदेश है और काय का अर्थ समूह है। जो अनेक प्रदेशो का समूह है वह अस्तिकाय है। दूसरी परिभाषा इस प्रकार है 'अस्ति अर्थात जिसका अस्तित्व है और काय के समान जिसके प्रदेश हैं और जिसके प्रदेश बहुत हैं वह अस्तिकाय है। जीव, धर्म, अधर्म, असख्यात प्रदेशी है। आकाश के प्रदेश अनन्त है। काल द्रव्य का अस्तित्व तो है पर बहुप्रदेशी न होने से उसे अस्तिकाय मे नही लिया है। एक अविभागी पुद्गल परमाणु जितने आकाश को स्पर्श करता है, उतने को प्रदेश कहते हैं।

पुद्गल द्रव्य

न्याय-वैशेषिक जिसे भौतिक तत्व कहते हैं, विज्ञान जिसे मेटर कहता है, उसे ही जैन दर्शन ने पुद्गल कहा है। बौद्ध साहित्य मे 'पुद्गल' शब्द 'आलयविज्ञान', 'चेतनासतति' के अर्थ मे व्यवहृत हुआ है। भगवती मे अभेदोपचार से पुद्गलयुक्त आत्मा को पुद्गल कहा है। पर मुख्य रूप से जैन साहित्य मे पुद्गल का अर्थ 'मूर्तिक द्रव्य' है, जो अजीव है। अजीव द्रव्यो मे पुद्गल द्रव्य विलक्षण है। वह रूपी, मूर्त है उसमे स्पर्श, रस, गध, वर्ण पाये जाते हैं। पुद्गल के सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु से लेकर बडे से बडे पृथ्वी स्कध तक मे मूर्त गुण पाये जाते हैं। इन चारो गुणो मे से किसी मे एक, किसी मे दो और किसी मे तीन गुण हो ऐसा नही हो सकता। चारो ही गुण एक साथ रहते हैं। यह सत्य है कि किसी मे एक गुण की प्रमुखता होती है जिससे वह इन्द्रियगोचर हो जाता है और दूसरे गुण गौण होते हैं जो इन्द्रियगोचर नहीं हो पाते हैं। इन्द्रिय अगोचर होने से हम किसी गुण का अभाव नही

मान सकते। आज का वैज्ञानिक 'हायड्रोजन और नायट्रोजन को वर्ण, गंध और रसहीन मानते है, यह कथन गौणता को लेकर है। दूसरी दृष्टि से इन गुणो को सिद्ध कर सकते है। जैसे 'अमोनिया' मे एकांश हायड्रोजन और तीन अश नायट्रोजन रहता है। आमोनिया मे गध और रस ये दो गुण है। इन दोनो गुणो की नवीन उत्पत्ति नही मानते चूँकि यह सिद्ध है कि असत् की कभी भी उत्पत्ति नहीं हो सकती और सत् का कभी नाश नही हो सकता, इसलिए जो गुण अणु मे होता है वही स्कध मे आता है। हायड्रोजन और नायट्रोजन के अश से आमोनिया निर्मित हुआ है इसलिए रस और गध जो आमोनिया के गुण है वे गुण उस अश मे अवश्य ही होने चाहिए, जो प्रच्छन्न गुण थे वे उनमे प्रकट हुए हैं। पुद्गल मे चारो गुण रहते है चाहे वे प्रकट हो या अप्रकट हो। पुद्गल तीनो कालो मे रहता है, इसलिए सत् है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त है। जो अपने सत् स्वभाव का परित्याग नही करता, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से युक्त है और गुण पर्याय सहित है वह द्रव्य है। व्यय के बिना उत्पाद नही होता, उत्पाद के बिना व्यय नही होता। उत्पाद और व्यय के बिना ध्रौव्य हो नही सकता। द्रव्य का एक पर्याय उत्पन्न होता है, दूसरा नष्ट होता है पर द्रव्य न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है किन्तु सदा ध्रौव्य रहता है।

आज का विज्ञान भी मानता है कि किसी भौतिक पदार्थ के परिवर्तन मे जड पदार्थ कभी भी नष्ट नही होता और न उत्पन्न होता है। केवल उसका रूप बदलता है। मोमबत्ती के उदाहरण से इस बात को स्पष्ट रूप से समझ सकते है।

सभी पुद्गल परमाणुओ से निर्मित है। यह परमाणु सूक्ष्म और अविभाज्य है। तत्वार्थ-राजवार्तिक मे परमाणु का लक्षण और उसके विशिष्ट गुण इस प्रकार बताए हैं—

(१) सभी पुद्गल स्कध परमाणुओ से निर्मित है और परमाणु पुद्गल के सूक्ष्मतम अश है।
(२) परमाणु नित्य, अविनाशी, सूक्ष्म है।
(३) परमाणुओ मे रस, गध, वर्ण और दो स्पर्श- स्निग्ध या रूक्ष, शीत या उष्ण होते है।
(४) परमाणु का अनुमान उससे निर्मित स्कन्ध से लगा सकते हैं।

जैन दृष्टि से कितने ही पुद्गल-स्कध सख्यात प्रदेशो के कितने ही असख्यात प्रदेशो के और कितने ही अनत प्रदेशो के होते है। सब से बडा स्कध अनन्त प्रदेशी होता है और सब से लघु स्कन्ध द्विप्रदेशी होता है। अनन्त प्रदेशी स्कध एक प्रदेश मे भी समा सकता है, वही स्कध सम्पूर्ण लोक मे भी व्याप्त हो सकता है। पुद्गल परमाणु लोक मे सभी जगह है। पुद्गल परमाणु की गति का वर्णन करते हुए कहा है कि वह एक समय मे लोक के पूर्व अन्त से पश्चिम अन्त पश्चिम अन्त से पूर्व अन्त दक्षिण अन्त से उत्तर अन्त और उत्तर अन्त से दक्षिण अन्त मे जा सकता है। पुद्गल स्कधो की स्थिति न्यून से-न्यून एक समय और अधिक से अधिक असख्यात काल तक है। स्कन्ध और परमाणु सतति की दृष्टि से अनादि-अनन्त है और स्थिति की दृष्टि से सादि-सान्त है।

पुद्गल के दो भेद है— अणु और स्कन्ध। स्कन्ध के (१) स्थूल-स्थूल (२) स्थूल, (३) सूक्ष्म-स्थूल, (४) स्थूल-सूक्ष्म, (५) सूक्ष्म, (६) सूक्ष्म-सूक्ष्म, ये छह भेद है।

अणुओ के सघात को स्कन्ध कहते है। स्कध के जो छह भेद बताए है उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

(१) स्थूल-स्थूल—ठोस पदार्थो को इस वर्ग मे रखा गया। जैसे लकडी, पत्थर, धातुएँ आदि।
(२) स्थूल—इसमे द्रवणशील पदार्थ आते हैं। जैसे जल, केरोसिन, दूध आदि।
(३) सूक्ष्म-स्थूल—इसमे वायु आती है।
(४) स्थूल-सूक्ष्म—इसमे प्रकाश, ऊर्जा शक्ति का समावेश किया है। जैसे प्रकाश, छाया, तम।
(५) सूक्ष्म—हमारे विचारो और भावो का प्रभाव इन पर पडता है। इनका प्रभाव अन्य पुद्गलो तथा हमारी आत्मा पर पडता है। जैसे कर्मवर्गणा।
(६) सूक्ष्म-सूक्ष्म—अतिसूक्ष्म अणु का समावेश होता है। विद्युताणु, विद्युत्कण आदि।

जैन दार्शनिको ने प्रकृति और ऊर्जा को पुद्गल पर्याय माना है। विज्ञान भी यही मानता है। छाया, तम, शब्द आदि पुद्गल के पर्याय हैं। अन्धकार और प्रकाश का लक्षण अभावात्मक न मानकर दृष्टि-प्रतिबंधकारक व विरोधी माना है। आधुनिक विज्ञान भी प्रकाश के अभाव रूप को अन्धकार नही मानता। अन्धकार पुद्गल का पर्याय है। प्रकाश पुद्गल से पृथक उसका अस्तित्व है।

छाया पुद्गल की ही एक पर्याय है। प्रकाश का निमित्त पाकर छाया होती है। प्रकाश को आतप और उद्योत के रूप मे दो भागो मे विभक्त किया है। सूर्य का चमचमाता उष्ण प्रकाश 'आतप' है और चन्द्रमा, जुगुनू आदि का शीत प्रकाश 'उद्योत' है। शब्द भी पौद्गलिक है।

इस विराट विश्व मे जितने भी पुद्गल है वे सभी स्निग्ध और रुक्ष गुणो से युक्त परमाणुओ के बध से पैदा होते हैं। सभी पुद्गल का रचनातत्व एक ही प्रकार का होता है। रचना तत्व की दृष्टि से सभी पुद्गल एक ही प्रकार के है।

पुद्गलद्रव्य, स्कन्ध मे अणु चालित क्रियाशील होते है। इस क्रिया का प्ररूपण दो विभागो मे विभक्त किया जा सकता है (१) विस्रसा क्रिया और (२) प्रायोगिक क्रिया। विस्रसा क्रिया प्राकृतिक होती है और प्रयोगनिमित्ता क्रिया बाह्य निमित्त से पैदा होती है।

परमाणु और स्कध के बध तीन प्रक्रियाओ मे उत्पन्न होते हैं (१) भेद, (२) सघात, (३) भेद-सघात। भेद का अर्थ है स्कध मे से कुछ परमाणु विघटित हो और दूसरे मे मिल जाये। सघात का अर्थ है एक स्कन्ध के कुछ अणु दूसरे स्कन्ध के कुछ अणुओ के साथ सघटित हो। भेद सघात का अर्थ है भेद और सघात प्रक्रिया का एक साथ होना। एक स्कन्ध के कुछ अणु दूसरे से मिलकर दोनो स्कधो से समान रूप मे सम्बद्ध रहे। सघात मे सघटित होकर समान रूप से दोनो स्कधो से सम्बद्ध रहने वाले अणु किसी भी स्कन्ध मे विच्छिन्न नही होते। भेद-सघात मे विघटित होकर सघटित रूप मे रहते है।

भेद का एक और अन्य प्रकार है। वह है पुद्गल गलन की प्रक्रिया। बाह्य और आभ्यन्तर कारणो से स्कन्ध का गलन या विदारण होना भेद है। पुद्गल वह है जिसमे पूरण और गलन ये दोनो सभव हो। इसलिए एक स्कन्ध दूसरे स्निग्ध-रुक्ष गुण युक्त स्कन्ध से मिलना है वह पूरण है। एक स्कन्ध से कुछ स्निग्ध, रुक्ष गुणो से युक्त परमाणु विच्छिन्न होते हैं वह गलन है।

पुद्गल अनन्त है और आकाश प्रदेश असख्यात है। असख्यात प्रदेशो मे अनन्त प्रदेशो को किस प्रकार स्थान मिल सकता है? इसका समाधान पूज्यपाद ने इस प्रकार किया है कि सूक्ष्म परिणमन और अवगाहन शक्ति के योग से परमाणु और स्कन्ध सूक्ष्म रूप मे परिणत हो जाते है। सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने लिखा 'पुद्गल एक अविभाग परिच्छेद परमाणु आकाश के एक प्रदेश को घेरता है। उसी प्रदेश मे अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु भी स्थित हो सकते है। परमाणु के विभाग नही होते पर उसमे सूक्ष्म परिणमन और अवगाहन शक्ति है। इन्ही शक्तियो से असभव भी सभव हो जाता है।

पुद्गल परमाणु बहुत ही सूक्ष्म है, उसकी अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग है। वह तलवार के नोक पर आ सकता है, पर तलवार की तीक्ष्ण धार उसे छेद नही सकती, यदि छेद दे तो वह परमाणु ही नही है। परमाणु के हिस्से नहीं होते। परमाणु परस्पर जुड सकते हैं और पृथक हो सकते है किन्तु उसका अन्तिम अश अखण्ड है। वह शाश्वत, परिणामी, नित्य, सावकाश, स्कन्धकर्ता, भेत्ता भी है। परमाणु कारण रूप है, कार्य रूप नही, वह अन्तिम द्रव्य है।

तत्व-सख्या मे परमाणु की पृथक परिगणना नही की गई है। वह पुद्गल का एक विभाग है।
पुद्गल के परमाणु पुद्गल और नौ परमाणु-पुद्गल, द्वयणुक आदि स्कन्ध, ये दो प्रकार हैं।
जैन दार्शनिको ने जो पुद्गल की सूक्ष्म विवेचना और विश्लेषणा की है वह अपूर्व है।

कितने ही पाश्चात्य विचारको का यह अभिमत है कि भारत मे परमाणुवाद यूनान से आया है, पर यह कथन सत्य तथ्य से परे हैं। यूनान मे परमाणुवाद का जन्मदाता डियोक्रिट्स (ईस्वी पूर्व ४६०-४७०) था किन्तु उसके परमाणुवाद से जैनदर्शन का

परमाणुवाद बहुत ही पृथक है। मौलिकता की दृष्टि से वह सर्वथा भिन्न है। जैन दृष्टि से परमाणु चेतन का प्रतिपक्षी है, जबकि डियोक्रिट्स के अभिमतानुसार आत्मा सूक्ष्म परमाणुओ का ही विकार है।

कितने ही भारतीय विचारक परमाणुवाद को कणाद ऋषि की उपज मानते हैं किन्तु गहराई से व तटस्थ दृष्टि से चिन्तन करने पर सहज ज्ञात होता है कि वैशेषिक दर्शन का परमाणुवाद जैन-परमाणुवाद से पहले का नही है। जैन दार्शनिको ने परमाणु के विभिन्न पहलुओ पर जैसा वैज्ञानिक प्रकाश डाला है वैसा वैशेषिको ने नही। दर्शनशास्त्र के इतिहास मे स्पष्ट रूप से लिखा है कि परमाणुवाद के सिद्धान्त को जन्म देने का श्रेय जैनदर्शन को ही मिलना चाहिए। उपनिषद् साहित्य मे अणु शब्द का प्रयोग हुआ है किन्तु परमाणुवाद का कही भी नाम नही है। वैशेषिको का परमाणुवाद सभव है उतना पुराना नहीं है।

जैन साहित्य मे परमाणु के स्वरूप और कार्य का सूक्ष्मतम विवेचन किया है, वह आज के शोधकर्ता विद्यार्थी के लिए अतीव उपयोगी है।

परमाणु का जैसा हमने पूर्व लक्षण बताया कि वह अछेद्य है, अग्राह्य है, किन्तु आज के वैज्ञानिक विद्यार्थी को परमाणु के उपलक्षणो मे सहज सन्देह हो सकता है, क्योकि विज्ञान के सूक्ष्म यत्रो मे परमाणु की अविभाज्यता सुरक्षित नही है।

परमाणु यदि अविभाज्य न हो तो उसे परम-अणु नही कह सकते। विज्ञान-सम्मत परमाणु टूटता है, इससे हम इन्कार नही होते। जैन आगम अनुयोगद्वार मे परमाणु के दो प्रकार बताए है—

१ सूक्ष्म परमाणु
२ व्यावहारिक परमाणु

सूक्ष्म परमाणु का स्वरूप वही है जो हमने पूर्व मे बताया है किन्तु व्यावहारिक परमाणु अनन्त सूक्ष्म परमाणुओ के समुदाय से बनता है। वस्तुवृत्या वह स्वय परमाणु-पिंड है तथापि साधारण दृष्टि से ग्राह्य नही होता और साधारण अस्त्र-शस्त्र से तोडा नही जा सकता। उसकी परिणति सूक्ष्म होती है एतदर्थ ही उसे व्यवहार रूप से परमाणु कहा है। विज्ञान के परमाणु की तुलना इस व्यावहारिक परमाणु से होती है। इसलिए परमाणु के टूटने की बात एक सीमा तक जैनदृष्टि को भी स्वीकार है।

पुद्गल के बीस गुण हैं—
स्पर्श—शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध, लघु, गुरु, मृदु और कर्कश।
रस—अम्ल, मधुर, कटु, कषाय और तिक्त।
गन्ध—सुगन्ध और दुर्गन्ध।
वर्ण—कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत। यद्यपि सस्थान परिमडल, वृत्त त्र्यश, चतुरस्र आदि पुद्गल मे ही होता है तथापि वह उसका गुण नही है।

सूक्ष्म परमाणु द्रव्य-रूप मे निरवयव और अविभाज्य होते हुए भी पर्यायदृष्टि से उस प्रकार नही है। उसमे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श ये चार गुण और अनन्त पर्याय होते है। एक परमाणु मे एक वर्ण, एक गध एक रस और दो स्पर्श (शीत, उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष, इन युगलो मे से एक-एक) होते है। पर्याय की दृष्टि से एक गुण वाला परमाणु अनन्त गुण वाला हो जाता है और अनन्त गुण वाला परमाणु एक गुण वाला है। एक परमाणु मे वर्ण मे वर्णान्तर, गन्ध मे गन्धान्तर, रस मे रसान्तर और स्पर्श मे स्पर्शान्तर होना जैन-दृष्टि-सम्मत है।

जैन साहित्य मे धर्म और अधर्म शब्द का प्रयोग शुभाशुभ प्रवृत्ति के अर्थ मे भी होता है और पृथक अर्थ मे भी। यहाँ पर दूसरा अर्थ विवक्षित है। धर्म द्रव्य गतितत्व और अधर्म द्रव्य स्थितितत्व के अर्थ मे व्यवहृत हुआ है। भारत के अन्य दार्शनिको ने इसी पर चिन्तन नही किया है। विज्ञान मे न्यूटन ने गतितत्व (Medium of Motion) को माना है। अलबर्ट आईंस्टीन ने गतितत्व को

बताते हुए कहा—'लोक परिमित है, लोक के परे अलोक अपरिमित है, लोक का परिमित होने का कारण गतितत्त्व यहाँ पर है और वह द्रव्य शक्ति है, लोक के बाहर नही जा सकती।' लोक के बाहर उस शक्ति का अभाव है जो गति में सहायक है। ईथर (Ether) को भी गतितत्त्व माना है। जैनदर्शन मे धर्म और अधर्म शब्द पारिभाषिक रहा है।

धर्म और अधर्म द्रव्य दोनो द्रव्य से एक है और व्यापक हैं। क्षेत्र से लोक प्रमाण है। काल से अनादि-अनन्त हैं। भाव से अमूर्त हैं। गुण से धर्म गति-सहायक हैं और अधर्म स्थिति सहायक है।

धर्म और अधर्म ये दोनो द्रव्य तीनो कालो मे अपने गुण और पर्यायो से विद्यमान रहते हैं, एक क्षेत्रावगाही होते हुए भी उनकी पृथक उपलब्धि है। दोनो का स्वभाव और कार्य भिन्न है, सत्ता मे विद्यमान हैं, लोक व्यापक है। धर्म-अर्धम तो अनादि काल से अपने स्वभाव से लोक मे विस्तृत हैं। जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य परद्रव्य की निमित्तभूत सहायता से क्रियावत होते हैं। शेष चार द्रव्य क्रियावत नहीं है। धर्म, अधर्म द्रव्य निष्क्रिय हैं, धर्म और अधर्म द्रव्य जीव, पुद्गल के लिए सिर्फ सहायक बनते हैं। हलन-चलन या स्थितिकरण क्रिया इन दो द्रव्य के अभाव मे नही हो सकती। ये गति और स्थिति के उदासीन कारण है। ये स्वय क्रियाशील नही है। तैरने मे जल मछलियो के लिए माध्यम है वैसे ही गति में धर्म द्रव्य सहायक है। अधर्म द्रव्य भी वृक्ष की छाया की भांति पथिक को विश्राम मे सहायक है। गतितत्व के लिए रेल की पटरी का उदाहरण दे सकते हैं। रेल की पटरी गाडी चलाने मे सहायक है। वह गाडी को यह नही कहती कि तू चल, वैसे ही धर्म द्रव्य है। जहाँ तक पटरी है, वहाँ तक ही रेलगाडी जा सकती है, आग नही। लोक मे धर्म के आधार से हम गमन कर सकते हैं, लोक से बाहर नही।

आकाश

आकाश लोक और अलोक देनो मे है। अन्य द्रव्यो के समान आकाश भी तीनो काल मे अपने गुण और पर्यायो सहित विद्यमान है। उसका स्वभाव है जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल को अवकाश देना। पाँच द्रव्य लोकाकाश मे ही रहते हैं। आकाश के प्रदेश मे वे मिलजुलकर रह सकते है। बिना आकाश के वे नही रह सकते। आकाश मे अनन्त पुद्गलो को स्थान देने की शक्ति है। महासागर मे जैसे नमक रहता है वैसे ही अन्य द्रव्य आकाश मे रहते हैं।

आकाश के दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। अलोकाकाश मे आकाश द्रव्य के अतिरिक्त कोई भी द्रव्य नही है। धर्म और अधर्म द्रव्य का कार्य आकाश नही करता किन्तु वह केवल अवकाश देता है।

लोक और अलोक

जैन साहित्य मे इसकी अनेक परिभाषाएँ मिलती है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय लोक है। पचास्तिकायमय लोक है। जीवाजीव लोक है। षट्द्रव्यात्मक लोक है। अपनी-अपनी दृष्टि से ये परिभाषाएँ हैं। लोक इन्द्रिय गोचर है और अलोग इन्द्रियातीत है। अलोकाकाश मे गति और स्थिति नही है। आकाश द्रव्य अपने ही आधार से अपने ही अवकाश मे है।

कालद्रव्य

द्रव्यो की वर्तना, परिणाम-क्रिया या नवीनत्व काल के कारण ही सभव है। काल तो दिखलाई नही देता, इसलिए उसका अनुमान आकाश की तरह सिद्ध होता है। कितने ही आचार्य काल को स्वतत्र द्रव्य न मानकर जीवाजीव को पर्याय मानते हैं। उपचार से उसे द्रव्य कहते हैं। भगवती मे काल को स्वतत्र द्रव्य माना है। कुन्दकुन्द लिखते हैं। 'काल द्रव्य परिवर्तन-लिंग से सयुक्त है। कालाणु सख्या मे लोकाकाश के प्रदेशो की तरह असख्यात है। श्वेताम्बर परम्परा मे कालद्रव्य को अनन्त माना है। रहट-घटिका के समान वह निरन्तर घूमता रहता है। इसलिए अनादि अनन्त है।

काल-द्रव्य अस्तिकाय नही, अखण्ड है। समस्त विश्व मे एक काल युगपत् है। निश्चय और व्यवहार के रूप मे उसके दो भेद है। व्यवहार काल को 'समय' कहते हैं, वर्तना निश्चय काल से होती है। सामान्य परिवर्तन व्यावहारिक काल से है। समय का प्रारम्भ और अन्त दोनो होते है। निश्चय काल का कोई भी भेद नहीं है।

कालाणु की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश की दृष्टि से उसको शाश्वत और अशाश्वत कहा है। काल का सूक्ष्म अंश समय है। दो समय साथ नही रहते। काल के स्कन्ध आदि भेद-प्रभेद नही होते। एक-एक कालाणु लोकाकाश के एक-एक प्रदेश मे रत्नराशि के समान स्थित है।

इस प्रकार जैन दर्शन मे अजीव तत्व का अत्यन्त विस्तार से निरूपण है। किन्तु अभिनन्दन ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या की मर्यादा को लक्ष्य मे रखकर अत्यन्त संक्षेप मे लिखने का प्रयास किया है।

———○○○———

साहित्य एक चिराग

साहित्य महापुरुषो के विचारो का अक्षय-कोष है। ससार रूपी रोग को नष्ट करने के लिए अद्भुत औषध है। सत्य और सौन्दर्य से भरा हुआ स्टीमर है। वह युवावस्था मे मार्गदर्शक और वृद्धावस्था मे आनन्ददायक है। वह एक अद्भुत शिक्षक है। शिक्षक चाबुक मारता है, वह कठोर शब्दो मे फटकारता है और पैसे भी लेता है पर यह न चाबुक मारता है, न कठोर शब्दो मे फटकारता है और न पैसे ही लेता है। किन्तु शिक्षक की तरह उपदेश देता है। यह युवावस्था मे भी वृद्ध जैसा अनुभवी बना देता है। आस्टिन फिलिप्स ने कहा था "कपडे भले ही पुराने पहनो पर पुस्तके नई-नई खरीदो।'

लॉर्ड मैकॉले ने तो यहाँ तक कहा- यदि मुझे कोई सम्राट बनने के लिए कहे और साथ ही यह शर्त रखे कि तुम पुस्तके नही पढ सकोगे तो राज्य को तिलाजली दे दूँगा और गरीब रहकर भी पुस्तके पढूँगा।" एक अरबी कहावत है कि 'पुस्तके जेब मे रखा हुआ एक बगीचा है, जिन घरो मे सद् साहित्य का अभाव है वह घर आत्मा-रहित शरीर के सदृश है। साहित्य समाज की आँख है, एक चिराग है जो अन्धकार मे भी अलोक प्रदान करता है।

-उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी

शून्यवाद और स्याद्वाद

प्रा. श्री दलसुख भाई मालवणिया

भारतीय दार्शनिको मे यदि किसी वाद के विषय मे भ्रान्ति हुई है तो सर्वप्रथम शून्यवाद के विषय मे और बाद मे स्याद्वाद के विषय मे। शून्यवाद के लिए भ्रमजनक उस वाद का 'शून्य' शब्द ही हुआ है और स्याद्वाद के लिए 'स्यात्' शब्द। केवल इन शब्दो को ही पकडकर दार्शनिको ने इन दोनो वादो का खडन किया है। शून्यवादी का खंडन परम नास्तिक मानकर और स्याद्वादी का खडन सशयवादी मानकर किया गया है। इसमें दोनो के प्रति अन्याय हुआ है। दार्शनिकों ने दोनो वादो का गहराई से अध्ययन नही किया। परिणामत जो कुछ खडन हुआ उसमे दम नहीं है, तर्क नहीं है, केवल अटकलबाजी है। शून्यवादी उच्छेदवादी तो है नही, फिर नास्तिक कैसे है?' नास्तिक के लिए तो परमार्थ नहीं है जबकि शून्यवाद में परमार्थ है।' स्याद्वाद के प्रति आक्षेप है कि यह सशयवाद है किन्तु वस्तुत वैसा नही है। यह तो स्याद्वाद के किसी भी ग्रन्थ को देखकर निर्णय किया जा सकता है। शकर जैसे विद्वान ने जब से इन दोनो वादो का खडन साम्प्रदायिक दृष्टि अथवा स्थूल से किया है तब से प्राय सभी दार्शनिको ने उनका ही अनुसरण किया है, मूलग्रन्थो को देखने की किसी ने तकलीफ नही की। परिणाम यह है कि भारतीय दर्शन की दोनो विशिष्ट धारा का विशेष परिचय विद्वानो को हुआ नही है।

भगवान बुद्ध ने अपने समय के उपनिषद्-सम्मत शाश्वतवाद और नास्तिक-सम्मत उच्छेदवाद दोनो को अस्वीकृत करके अपने प्रतीत्यसमुत्पादवाद की स्थापना की। स्पष्ट है कि यह वाद एक नया वाद है—उसमें कार्यकारण के सबध के विषय में एक नई विचारणा अपनाई गई है। भगवान बुद्ध अपने को विभज्यवादी कहते हैं, एकांशवादी नहीं।' भगवान महावीर ने भी भिक्षुओ के लिए विभज्यवाद अपनाने का आदेश दिया है।' उसी विभज्यवाद का रूपान्तर अनेकान्तवाद या स्याद्वाद है। विभज्यवाद अपेक्षा पर आधारित है और स्याद्वाद भी अपेक्षावाद पर आधारित है। ये दोनो वाद सापेक्षवाद हैं और प्रतीत्यसमुत्पादवाद का तात्पर्य भी सापेक्षवाद मे है। इस प्रकार एक हद तक दोनो वादो का साम्य स्पष्ट है। फिर भी इन दोनो वादो का जो विकास हुआ है उसमे दो दिशाये स्पष्ट हैं। बौद्धो मे प्रतीत्यसमुत्पादवाद के सिद्धान्त की निष्पत्ति शून्यवाद तक हुई है जो निषेधप्रधान है' और जैनो मे नयवाद का विकास हुआ जो विधिप्रधान है। निषेधप्रधान कहने का तात्पर्य नास्तिकवाद से नही है—यह तो स्पष्ट कर दिया गया है। तो उसका तात्पर्य इतना है कि भगवान् बुद्ध ने शाश्वत और उच्छेद इन दोनों का निषेध किया और मार्ग को—मध्यममार्ग कहा। जबकि भ महावीर ने शाश्वत और उच्छेद इन दोनों को अपेक्षा भेद से स्वीकृत करके विधिमार्ग अपनाया। स्याद्वाद और शून्यवाद में एकान्त उच्छेद और एकान्त शाश्वत समान रूप से असम्मत है। एक की भाषा मे निषेध प्रधान प्रयोग है जबकि दूसरे की भाषा मे विधि प्रधान प्रयोग देखा जाता है।'

भगवाद बुद्ध ने तो माध्यममार्ग कहकर छोड दिया था। किन्तु नागार्जुन ने प्रतीत्यसमुत्पादवाद और शून्य का समीकरण' किया जो प्रयोग की दृष्टि से भ्रामक सिद्ध हुआ है। भगवान महावीर ने अपेक्षाभेद से विरोधी मन्तव्यो को स्वीकार किया था और अपेक्षासूचक शब्द 'स्यात' रखा था और यहीं शब्द दार्शनिकों मे भ्रम पैदा करने में कारण हुआ। परिणाम स्पष्ट है कि भाषा की अपनी मर्यादा है जिसके कारण शून्यवाद नास्तिक समझा गया और स्याद्वाद संशयवाद।'

भाषा की इस मर्यादा को लक्ष्य करके ही तो कहा गया है कि 'परमार्थो हि आर्याणां तूष्णीभावः' (मध्य वृ पृ)। फिर भी यदि शून्यवाद अपना मतव्य भाषा के द्वारा ही व्यक्त करता है तो उसके पीछे दृष्टि यह है कि—

> नान्यया भाषया म्लेच्छः शक्यो ग्राहयितुं यथा। ६
> न लौकिकमृते लोकः शक्यो ग्राहयितुं तथा॥ चतु शतक ८।१९

यही बात जैन आचार्य कुन्दकुन्द ने भी कही है—

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभास विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं।। —समयसार ८

शून्यवाद की स्थापना मे युक्ति और आगम दोनो का अवलम्बन है, यह स्पष्टीकरण चन्द्रकीर्ति ने किया है—"**आचार्यो युक्त्यागमाभ्यां सहायमिथ्याज्ञानापाकरणार्थं शास्त्रमिदमारब्धवान**"—(माध्यम क पृ १३) यही बात आचार्य समन्तभद्र ने भी अनेकान्तवाद के समर्थन मे लिखी गई आप्तमीमासा मे कही है—

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्।
अविरोधो यदिष्ट ते प्रसिद्धेन न बाध्यते।। —आप्तमी ६

स्याद्वादी और शून्यवादी दोनो ने यह स्वीकार किया है कि यदि एक ही भाव का परमार्थ स्वरूप समझ लिया जाये तो सभी भावो का परमार्थ स्वरूप समझ लिया गया ऐसा मानना चाहिए।

आचाराग मे कहा है——

"जे एग जाणइ से सव्व जाणइ, जे सव्व जाणइ से एग जाणइ" —३, ४, १

अन्यत्र यह भी कहा है——

"एको भाव सर्वथा येन दृष्ट सर्वे भावा सर्वथा तेन दृष्टा:।
सर्वे भावा. सर्वथा येन दृष्टा, एको भाव सर्वथा तेन दृष्ट"।। ——स्याद्वाद म पृ ११५

ऐसा ही निरूपण चन्द्रकीर्ति ने भी अनेक उद्धरण देकर किया है। उदाहरणार्थ

भावस्यैकस्य यो द्रष्टा द्रष्टा सर्वस्य स स्मृत:।
एकस्य शून्यतायैव सैव सर्वस्य शून्यता।।इत्यादि —मध्य वृ पृ ५०

दोनो ने व्यवहार और परमार्थ सत्यो को स्वीकार किया है। शून्यवादी सवृति और परमार्थ सत्य से वही बात कहता है जो—जैन ने व्यवहार और निश्चयनय बतला कर की है।

नाना प्रकार के एकान्तवादो को लेकर शून्यवादी चर्चा करता है और इस नतीजे पर आता है कि वस्तु शाश्वत नही, उच्छिन्न नही, एक नही, अनेक नही, भाव नहीं, अभाव नही।—इत्यादि यहाँ नही पक्ष का स्वीकार है। जबकि स्याद्वादी के मन मे उन एकान्तो के विषय मे अभिप्राय है कि वस्तु शाश्वत भी है, अशाश्वत भी है, एक भी है, अनेक भी है, भाव भी है, अभाव भी है—इस शून्यवाद और स्याद्वाद मे **नहीं** और **भी** को लेकर विवाद है, जबकि एकान्तवादी **ही** को स्वीकार करते हैं।

मध्यान्त विभाग ग्रन्थ(५-२३-२६) मे पन्द्रह प्रकार के अन्त युगलो की चर्चा करके उन सभी का अस्वीकार करके मध्यमप्रतिपत् निर्विकल्पक ज्ञान को स्वीकार किया गया है उनमे से कुछ ये हैं——

(१) शरीर ही आत्मा है यह एक अन्त और शरीर से भिन्न आत्मा है यह दूसरा अन्त,

(२) रूप नित्य है यह एक अन्त और अनित्य है—यह दूसरा। भूतों को नित्य मानने वाले तीर्थिक हैं और अनित्य मानने वाले श्रावकयानवाले हैं।

(३) आत्मा है यह एक अन्त और नैरात्म्य है—यह दूसरा अन्त।

(४) धर्म—चित्त भूत-सत् है यह एक अन्त और अभूत है यह दूसरा अन्त।

(५) अकुशल धर्म को सक्लेश कहना यह विपक्षान्त है और कुशल धर्मों को व्यवदान कहना यह प्रतिपक्षान्त है।

(६) पुद्गल—आत्मा और धर्म को अस्ति कहना यह शाश्वतान्त है, और उन्हें नास्ति कहना यह उच्छेदान्त है।

(७) अविद्यादि ग्राह्य है यह एक अन्त और उसका प्रतिपक्ष विद्यादि ग्राह्य-ग्राहक हैं यह दूसरा अन्त। इत्यादि।

तात्पर्य यह है कि शून्यवाद में अन्तो की अस्वीकृति और निर्विकल्प भाव का स्वीकारी है' जबकि स्याद्वाद मे इससे उलटा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्याद्वादी को तत्तद्विकल्पो के दोष का ज्ञान नही है। एकान्त मे रहा हुआ दोष समान रूप से शून्यवादी और स्याद्वादी देखते हैं। किन्तु दोष को देखकर अन्त का केवल अस्वीकार करना यह स्याद्वादी को मजूर नही। वह उस अन्त के गुणो को भी देखता है और उसी दृष्टि से उसका स्वीकार भी करता है। निरपेक्ष अन्त को निरस्त करके यह सापेक्ष अन्त का स्वीकार करता है। इस प्रक्रिया को विशद रूप से नयचक्र मे रखा गया है।

तर्क दुधारी तलवार है, यह खडन भी करता है और मडन भी। आचार्य नागार्जुन ने उसका उपयोग केवल खडन मे ही किया है। दार्शनिक विचारणा के अपने समय तक के प्रमेय और प्रमाण सम्बन्धी मान्यताओ का तर्क के बल से जमकर खडन ही खडन किया और शून्यवाद की स्थापना की। जबकि नयचक्र मे ऐसी योजना की कि खंडन भी हो और मडन भी। उसने अपने समय तक के प्रसिद्ध सभी वादो की क्रम से स्थापना की और खडन भी किया। पूर्व-पूर्ववाद अपने मत का समर्थन करता है और उत्तर-उत्तर प्रसिद्ध सभी वादो की क्रम से स्थापना की और खडन भी किया। पूर्व-पूर्ववाद अपने मत का समर्थन करता है और उत्तर-उत्तर वाद पूर्व-पूर्व का खडन और अतिम वाद का खडन प्रथम वाद करता है। इस प्रकार मडन-खडन का यह चक्र चलता रहता है। कोई भी वाद अपने आप मे पूर्ण नही, फिर भी उसमे सत्यांश अवश्य है। यह तथ्य उस ग्रन्थ से फलित किया गया।

नयचक्र मे क्रमश इन वादो की चर्चा है—अज्ञानवाद—उस प्रसग मे प्रत्यक्ष प्रमाण, सत्कार्यवाद, असत्कार्यवाद, अपौरुषेयवाद, विधिवाद आदि की चर्चा की गई है, पुरुषाद्वैतवाद—इस प्रसग मे सत्कार्यवाद आदि की चर्चा है, नियतिवाद, कालवाद, स्वभाववाद, अद्वैतवाद, पुरुषप्रकृतिवाद, ईश्वरवाद, कर्मवाद, द्रव्य और क्रिया का तादात्म्य, द्रव्य और क्रिया का भेद, सत्ता, समवाय, अपोह, शब्दाद्वैत, ज्ञानवाद, जातिवाद, अवक्तव्यवाद, गुणवाद, निर्हेतुक विकासवाद और स्थितिवाद। स्पष्ट है कि इसमे जैन का अपना विशिष्ट कोई मत नहीं है किन्तु तत्काल के सभी वादो का—मन्तव्यो का सापेक्ष स्वीकार एक न्यायाधीश की तटस्थता से किया गया है। स्याद्वाद की यही विशेषता है जिसे आचार्य जिनभद्र के शब्दो मे कहा जाए तो यह है—"**सर्वनयमतान्यप्यमूनि पृथक परीतविषयत्वाद् अप्रमाणम्, एतान्येव सहितानि जिनमतम्, अन्तर्बाह्यानिमित्तसामग्रीमयत्वात्, प्रमाण चेति।**"।

—विशेषा भा १५२८।

अर्थात् सभी नयों—मतो का समुदाय ही जिनमत है।

आचार्य सिद्धसेन ने तो कहा था कि जितने भी वचन के मार्ग हैं उतने ही नय हैं—और वे परसमय हैं—(सन्मति ३-४७) किन्तु जैनदर्शन तो उन परसमय रूप मिथ्यादर्शनो का समूह ही है (वही ३-६९)। उनकी इसी बात को आचार्य जिनभद्र ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

जावंतो वयणपहा तावन्तो वा नया वि सद्दाता।
ते चेव य परसमया सम्मत्त समुदिता सव्वे॥ —विशेषा २७३६

जब यही नय—नाना मतवाद एक समूह-रूप हो जाते हैं, वे सम्यक् हैं—यही जैनमत है।

भारतीय दर्शन के अखाड़े मे जैनदर्शन का प्रवेश देरी से हुआ। इसका फायदा यह हुआ कि जैनाचार्य नाना मतो की निर्बलता और सबलता को देख सके और सभी वादो का समन्वय करने का मार्ग उन्होने अपनाया। यह उनकी कमजोरी थी या भारतीय प्रजा की भेद और अभेद कर लेने की मूलभूत शक्ति का प्रदर्शन था—यह आप सब महानुभावो के विचार का विषय है। अभी तो इतना सकेत देकर ही मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।"

सदर्भ स्थल

१ यद्यभावात्मिका शून्यता कथ परमार्थ उच्यते? परमज्ञानविशषयत्वात्। अनित्यता वत् न तु वस्तुत्वात्।

—मध्यान्त विभाग टी पृ ३९

तथता भूतकोटिश्चानिमित्त परमार्थता।
धर्मधातुश्च पर्याया शून्यताया समासत ॥   मध्यान्त वि १ १४

टीकाकार स्थिरमति ने—अद्वतया, अविकल्पक धातु, धर्मता, अनभिलाप्यता, निरोध, असस्कृत, निर्वाण को भी पर्याय बताया है—टी पृ ४१

२ देखे—प्रमाणमीमासा, प्रस्तावना, पृ ६ (सिंधी)

३ मज्झिम सु ९९

४ सूत्रकृताग १-१४-२२। और भी चर्चा के लिए देखे न्याया प्रस्तावना, पृ १२ (सिंधी)

५ प्रतीत्यसमुत्पादवाद के नागार्जुन ने जो विशेषण दिए हैं—वे हैं—अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम्। अनेकार्थमनानार्थमनागमननिर्गमम्। य प्रतीत्यसमुत्पाद —माध्य क १

६ विस्तृत चर्चा के लिए देखे—न्याया प्रस्तावना, पृ १४

७ य प्रतीत्यसमुत्पाद शून्यता ता प्रचक्ष्महे। —माध्य २४-१८।

८ स्याद्वाद को सशयवाद कहने वाले केवल शकर ही नही। दशवै अगस्त्यचूर्णि मे भी ऐसा ही कहा है।

९ तत्परिवर्जनार्थं मध्यमाप्रतिपद् यदात्मनैरात्म्ययोर्मध्ये निर्विकल्प ज्ञानम्। —मध्यान्त विभाग भाष्य—पृ १७४

१० अखिल भारतीय दर्शन परिषद् (१८ वाँ अधिवेशन अहमदाबाद मे ता २७-१२-७३ को हुआ) का उद्घाटन भाषण।

'क्रोध प्रीति को नाश करता है, मान विनय को नाश करता है माया मित्रता को नाश करती है और लोभ सभी सद्गुणो का नाश कर देता है।'

'शाति से क्रोध को मारे, नम्रता से अभिमान को जीते सरलता से माया का नाश करे और सन्तोष से लोभ को वश मे करे।'

-भगवान महावीर

प्रयोगात्मक अनेकान्त

श्री सौभाग्यमल जैन

अनेकान्त की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भगवान महावीर के पूर्व भारत भूमि पर वैचारिक सघर्ष एव दार्शनिक विवाद अपनी चरम सीमा पर था। जैनागमो[1] के अनुसार उस समय उस समय ३६३ और बौद्धागमो[2] के अनुसार ६२ दार्शनिक मत प्रचलित थे। वैचारिक आग्रह और मतान्धता के इस युग मे दो महापुरुष आये, वे थे १ भगवान बुद्ध और २ महावीर। भगवान बुद्ध ने इस आग्रह एव मतान्धता से ऊपर उठने के लिये विवाद पराङ्मुखता को अपनाया, वे कहते है—मैं विवाद के दो फल बताता हूँ, एक यह अपूर्ण एव एकागी होता है, दूसरे यह कलह या अशाति का कारक होता है। निर्वाण को निर्विवाद भूमि समझने वाले यह देखकर विवाद मे न पडे।[3] भगवान बुद्ध ने न तो अपने युग मे प्रचलित उच्छेदवाद एव शाश्वतवाद-नित्यवाद एव अनित्यवाद, देहात्मवाद एव देह-भिन्न-आत्मवाद के दार्शनिक विवादो मे पडना उचित ही समझा और न उन्होने इनमे से किसी दार्शनिक मान्यता के साथ अपन आप को बाँधा। उन्होने इन परस्पर विरोधी दृष्टिकोणो (दोनो अन्तो) को सदोष बताया और साधक को इन दृष्टिकोणो या मतवादो मे न पडते हुये साधना पथ पर चलते रहने की सलाह दी। वे कहते हैं कि पण्डित किसी दृष्टिवाद या मत मे नही पडता। दृष्टि और श्रुति को न ग्रहण करने वाला, आसक्तिरहित वह क्या ग्रहण करे? लोग अपने धर्म को परिपूर्ण बताते है और दूसरे के धर्म को हीन बताते है। दूसरो की निंदा से हीन हो जाने पर वह धर्मों मे भी श्रेष्ठ नही होता।[4] बुद्ध की दृष्टि मे वाद-विवाद निर्वाण मार्ग के पथिक का कार्य नही। वे कहते है यह तो मल्ल विद्या है—राजभोजन से पुष्ट पहलवान की तरह प्रतिवादी को ललकारने वाले वादी को उस जैसे वादी के पास भेजना चाहिये क्योकि मुक्त पुरुषो के पास विवाद रूपी युद्ध के लिये कोई कारण ही शेष नही रह जाता।[5] यद्यपि बुद्ध आग्रह या मतान्धता को उचित नहीं मानते थे फिर भी उन्होने इस दिशा मे समन्वय का कोई विधायक प्रयास नहीं कया। उनका योगदान मात्र निषेधात्मक था। इसके विपरीत भगवान महावीर विरोध समन्वय की एक विधायक दृष्टि लेकर आये। इस विचार सकुलता के युग मे उन्होने स्पष्ट रूप से कहा कि 'आग्रह, मतान्धता या एकात ही मिथ्यात्व है, जो अपने मत की प्रशसा और दूसरे के मत की निंदा करने मे ही अपना पाण्डित्य दिखाते हैं वे एकान्तवादी ससार चक्र मे भटकते रहते है।

अनेकान्त का आधार त्रिपदी

महावीर मे न केवल दार्शनिक विवाद को अनुचित माना वरन् उन दार्शनिक विवादो से लिये समन्वय का सूत्र भी प्रस्तुत किया। महावीर के युग की दार्शनिक विचारधाराओ को मोटे रूप से दो वर्गो मे वर्गीकृत किया जा सकता है—एक वे जो सत् (Reality) को विनाशी (उत्पाद-व्यय लक्षण युक्त) विकारी, परिणामी और अनेक मानते थे और दूसरे वे जो सत् को अविनाशी, अव्यय, निर्विकार और अद्य मानते थे। महावीर ने इन दोनो विरोधी विचारधाराओ के बीच समन्वय करते हुये "सत्" की एक व्यापक परिभाषा प्रस्तुत की। उन्होंने अपने प्रवचन मे सत् को उत्पाद, व्ययध्रौव्यात्मककह कर, उसेसमन्वयात्मक दृष्टि से परिभाषित किया।[6] जिनोपदिष्ट यह "त्रिपदी" ही अनेकान्तवादी विचार-पद्धति का सार तत्व है। इसमे सत् सम्बन्धी दो विरोधी दृष्टिकोणो के बीच समन्वय कर दिया गया। अनेकान्त, स्याद्वाद और नयवाद सम्बन्धी विपुल साहित्य मात्र इसका विस्तार है। "त्रिपदी" ही जिन द्वारा वपित "बीज" है और अनेकान्त उसी बीज से विकसित वट-वृक्ष है। वैचारिक सघर्ष से श्रात मानव इसके नीचे आश्रय पा सकते हैं। वस्तुत "त्रिपदी" ही वह आधारभूमि है जिस पर अनेकान्त और स्याद्वाद के भव्य प्रासादो का निर्माण जैन आचार्यों ने किया है।

अनेकान्त की दार्शनिक पृष्ठभूमि

परमार्थ सत् (Reality) या वस्तुतत्व के यथार्थ स्वरूप का पूर्ण ज्ञान सीमित क्षमताओ से युक्त मानव-प्राणी के लिये सदैव

ही एक जटिल प्रश्न रहा है। अपूर्ण के द्वारा पूर्ण को जानने के समस्त प्रयास आंशिक सत्य के ज्ञान से अधिक आगे नहीं जा पाये हैं और जब इसी आंशिक सत्य को पूर्ण सत्य मान लिया जाता है तो मिथ्या हो जाता है एव विवाद एव वैचारिक सघर्षों का जन्म हो जाता है। "सत्य" न केवल उतना है जितना कि हम जानते हैं अपितु वह एक व्यापक पूर्णता है। उसे तर्क, विचार, बुद्धि और वाणी का विषय नहीं बनाया जा सकता। वह तो इनसे परे है। मानव बुद्धि उसके एकांश का ग्रहण कर सकती है। तत्व अज्ञेय तो नहीं है किन्तु बिना पूर्णता को प्राप्त किये उसे पूर्णरूपेण नहीं माना जा सकता है। अब तक अपूर्ण (Finite) है हमारा ज्ञान भी अपूर्ण या आंशिक सत्य ही होगा और आंशिक सत्य का ज्ञान दूसरो के द्वारा प्राप्त ज्ञान का निषेध नहीं कर सकता है और ऐसी स्थिति मे यह दावा मिथ्या ही होगा कि मेरी दृष्टि ही सत्य है, सत्य मेरे पास ही है।

दूसरे सत् या वस्तुतत्व केवल सीमित लक्षणो का पुन्ज नही है वह अनन्त गुणो का पुन्ज है। जैनाचार्यों ने कहा है कि वस्तुतत्व अनन्त-धर्मात्मक है 'और यदि वस्तुतत्व अनन्त धर्मात्मक है तो फिर सीमित मानव प्रज्ञा उसे पूर्णरूपेण कैसे जान पायेगी? मात्र इतना ही नही वस्तुतत्व मे परस्पर विरोधी गुण भी एक साथ रहते हैं और ऐसी स्थिति मे दो भिन्न दृष्टियो में परस्पर विरोधी तथ्य भी एक साथ सत्य हो सकते हैं।

आधुनिक विज्ञान और अनेकान्त

वस्तुत आधुनिक विज्ञान ने अपनी खोजो के माध्यम से अनेकान्त की पुष्टि की है। विज्ञान ने इस बात को भली प्रकार सिद्ध कर दिया है कि जिस पदार्थ को हम स्थित, नित्य और ठोस समझते हैं वह पदार्थ बडे वेग से गतिशील है वरन् परिवर्तनशील और खोखला भी है। जो सूर्य हमे छोटा-सा और निकट दिखाई देता है वह पृथ्वी मण्डल से नौ करोड तीस लाख मील दूर और आकार मे पृथ्वी से साढ़े बारह लाख गुणा बडा है। इतनी वैज्ञानिक प्रगति के बाद भी विश्व का अन्तिम घटक आज भी अज्ञेय बना हुआ है। आज का प्रबुद्ध वैज्ञानिक भी ऐसा दावा नही करता है कि उसने सृष्टि का रहस्य और वस्तुतत्व का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है। वास्तविकता तो यह है कि वैज्ञानिक प्रगति से सृष्टि की रहस्यात्मकता और अधिक बढी है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन ने कहा था कि हम तो केवल सापेक्षिक सत्यो (Relatve truth) को जान सकते हैं पूर्ण या निरपेक्ष सत्य (Absolute Truth) तो कोई पूर्ण दृष्टा ही जान सकेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक और दार्शनिक दोनो ही दृष्टियो से सामान्य मानव बुद्धि निरपेक्ष पूर्ण सत्य को जान पाने मे असमर्थ है। यदि हमारा ज्ञान सापेक्षिक सत्यो तक सीमित है तो हमे दूसरो के द्वारा ज्ञात सत्यो को असत्य मानने का क्या अधिकार? अनेकान्त विचार दृष्टि हमे यही बताती है कि परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले दो सापेक्षिक सत्य अपेक्षा भेद से सत्य हो सकते है। इसी तथ्य को स्वीकार करते ही वैचारिक सघर्ष और विवाद के लिये शेष कुछ रह ही नही जाता है।

अनेकान्त का व्यावहारिक फलित

अनेकान्त विचार पद्धति के व्यावहारिक क्षेत्र मे तीन प्रमुख योगदान हो सकते हैं।

१ विवाद पराङ्मुखता या वैचारिक सघर्ष का निराकरण।

२ वैचारिक सहिष्णुता या वैचारिक अनाग्रह।

३ वैचारिक समन्वय और सत्य के सम्बन्ध मे एक व्यापक दृष्टि का निर्माण।

अनेकान्त धार्मिक जीवन के क्षेत्र में

सभी धर्म साधना पद्धतियो का मुख्य लक्ष्य राग, आसक्ति अह या तृष्णा की समाप्ति रहा है। जहाँ जैन धर्म की साधना का लक्ष्य वीतरागता है तो बौद्ध धर्म की साधना लक्ष्य वीततृष्ण होना माना गया है वही वेदात मे अह और आसक्ति से ऊपर उठना ही मानव का साध्य बताया गया है। लेकिन क्या एकान्त या आग्रह वैचारिक राग, वैचारिक आसक्ति, वैचारिक तृष्णा अथवा वैचारिक अह के ही रूप नहीं हैं? और जब तक यह उपस्थित है धार्मिक साधना के क्षेत्र लक्ष्य की सिद्धि कैसे होगी? जिन साधना पद्धतियो मे अहिंसा के आदर्श को स्वीकार किया गया, उनके लिये आग्रह या एकान्त वैचारिक हिंसा का प्रतीक भी बन जाता है। एक ओर साधना के वैयक्तिक पहलू की दृष्टि से मताग्रह वैचारिक आसक्ति या राग का ही रूप है तो दूसरी ओर साधना के सामाजिक पहलू की दृष्टि से वह वैचारिक हिंसा है। वैचारिक आसक्ति और वैचारिक हिंसा से मुक्ति के लिये धार्मिक क्षेत्र मे अनाग्रह और अनेकान्त की साधना अपेक्षित है।

अनेकान्त धार्मिक सहिष्णुता और सर्व-धर्म समभाव का सूचक

विश्व के विभिन्न धर्माचार्यों ने अपने युग की तात्कालिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने सिद्धान्तो एव साधना के बाह्य नियमो का प्रतिपादन किया। देशकालगत परिस्थितियों और साधक की साधना की क्षमता की विभिन्नता के कारण धर्म साधना के बाह्य रूपो में विभिन्नताओ का आ जाना स्वाभाविक ही था और ऐसा हुआ भी, किन्तु मनुष्य की अपने धर्माचार्य के प्रति ममता (रागात्मक) और उसके अपने मन मे व्याप्त आग्रह और अहकार ने उसे अपने धर्म या साधना-पद्धति को ही एक मात्र एवं अंतिम सत्य मानने को बाध्य किया। फलस्वरूप विभिन्न सम्प्रदायो और उनके बीच साम्प्रदायिक वैमनस्य का प्रारम्भ हुआ। मुनि श्री नेमीचन्द्र ने धर्म सम्प्रदायो के उद्भव की एक सजीव व्याख्या प्रस्तुत की है, वे लिखते है कि "मनुष्य स्वभाव बड़ा विचित्र है, उसके अह को जरा-सी चोट लगते ही वह अखाड़ा अलग बनाने को तैयार हो जाता है" यद्यपि वैयक्तिक अह धर्म सम्प्रदायो के निर्माण का एक कारण अवश्य है लेकिन वही एकमात्र कारण नही है। बौद्धिक भिन्नता और देशकाल गत तथ्य भी इसके कारण रहे हैं और इसके अतिरिक्त पूर्व प्रचलित परम्पराओ मे आयी हुयी विकृतियो के सशोधन के लिये भी सम्प्रदाय बने। उनके अनुसार सम्प्रदाय बनने के निम्न कारण हो सकते हैं ----

(१) ईर्ष्या के कारण (२) किसी व्यक्ति की प्रसिद्धि की लिप्सा के कारण (३) किसी वैचारिक मतभेद (मताग्रह) (४) किसी आचार सम्बन्धी नियमोपनियम मे अंत के कारण (५) किसी व्यक्ति या पूर्व सम्प्रदाय के द्वारा अपमान या खीचातान होने के कारण (६) किसी विशेष सत्य को प्राप्त करने की दृष्टि से (७) किसी साम्प्रदायिक परम्परा या क्रिया मे द्रव्य, क्षेत्र काल और भावानुसार सशोधन या परिवर्द्धन करने की दृष्टि से। उपरोक्त कारणो मे अंतिम दो को छोडकर शेष सभी कारणो मे उत्पन्न सम्प्रदाय आग्रह , धार्मिक असहिष्णुता और साम्प्रदायिक विद्वेष को जन्म देते हैं।

विश्व इतिहास का अध्येता इसे भली-भाँति जानता है कि धार्मिक असहिष्णुता ने विश्व मे जघन्य दुष्कृत्य कराये हैं। आश्चर्य तो यह है कि इस दमन, अत्याचार, नृशसता और रक्त प्लावन को धर्म का जामा पहनाया गया। शान्ति प्रदाता धर्म ही अशान्ति का कारण बनाया। आज वैज्ञानिक युग मे धार्मिक अनास्था का मुख्य कारण यह भी है। यद्यपि विभिन्न मतो, पथो और वादो मे बाह्य भिन्नता परिलक्षित होती है किन्तु यदि हमारी दृष्टि व्यापक और अनाग्रही हो तो उसमे भी एकता और समन्वय के सूत्र परिलक्षित हो सकते है।

अनेकात विचार दृष्टि विभिन्न धर्म सप्रदायो की समाप्ति के द्वारा एकता का प्रयास नही करती है क्योकि वैयक्तिक रुचि भेद एव क्षमता भेद तथा देश काल गत भिन्नताओ के होते हुए, विभिन्न धर्म एव विचार सप्रदायो की उपस्थिति अपरिहार्य है। एक धर्म या एक सप्रदाय का नारा असगत एव अव्यावहारिक ही नही अशाति और सघर्ष का कारण ही होगा। अनेकात विभिन्न धर्म सप्रदायो की समाप्ति का प्रयास नही होकर उन्हे एक व्यापक पूर्णता मे सुसगत रूप से सयोजित करने का प्रयास हो सकता है। लेकिन इसके लिए प्राथमिक आवश्यकता है। धार्मिक सहिष्णुता और सर्व धर्म समभाव की।

अनेकात के समर्थक जैनाचार्यों ने इसी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया है। आचार्य हरिभद्र की धार्मिक सहिष्णुता तो सर्वविदित ही है अपने ग्रथ शास्त्रवार्ता समुच्चय मे उन्होंने बुद्ध के अनात्मवाद और न्याय दर्शन के ईश्वर कर्तृत्व, वेदात के सर्वात्मवाद (ब्रह्मवाद) मे भी सगति दिखाने का प्रयास किया। उन्ही के ग्रथ षड्दर्शन समुच्चय की टीका मे आचार्य मणिभद्र लिखते हैं।

न मे पक्षपातो वीरे न द्वेष कपिलादिषु।
युक्ति मद्वचन यस्य तस्य कार्य परिग्रह ।।"

मुझे न तो महावीर के प्रति पक्षपात है और न कपिलादि मुनिगणो के प्रति द्वेष है। जो भी वचन तर्क संगत हो उसे ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार आचार्य हेमचंद्र ने शिव-प्रतिमा को प्रणाम करते समय सर्वदेव समभाव का परिचय देते हुए कहा---

भव बीजांकुर जनना, रागद्या क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा व विष्णोवा हरो जिनो व नमस्तस्मै।।

ससार परिभ्रमण के कारण रागादि जिसके क्षय हो चुके हैं उसे मैं प्रणाम करता हूँ चाहे वे ब्रह्मा हो, विष्णु हो, शिव हो या जिन हो।

उपाध्याय यशोविजय इसी धर्म सहिष्णुता और सर्वधर्म समभाव का परिचय देते हुए लिखते है कि —

यस्य सर्वत्र समता नयेषु, तनयेष्वित,
तस्यानेकान्तवादस्य क्व न्यूनाधिक शेमुतो।।
तेन स्याद्वादमालव्य सर्व दर्शन तुल्यता।
मोक्षाद्देश विशेषेण य पश्यति स शास्त्रवित् ।
माध्यस्थमेव शास्त्रार्थो ये तच्चारू सिद्धयति।
स एव धर्मवाद स्यादन्यद्बलिश वल्गनम् ।।
माध्यस्थ सहित श्लोक पद ज्ञान मपि प्रभा।
शास्त्र कोटि वृथैवान्या तथा चौक्त महात्मना।।
—अध्यात्मसार ६०-७३।

सच्चा अनेकातवादी किसी दर्शन से द्वेष नही करता। वह सपूर्ण दृष्टिकोण (दर्शनो) को इस प्रकार वात्सल्य दृष्टि से देखता है जैसे कोई

पिता अपने पुत्र को। क्योकि अनेकातवादी की न्यूनाधिक बुद्धि नही हो सकती वास्तव मे सच्चा शास्त्रज्ञ कहे जाने का अधिकारी वही है जो स्याद्वाद का आलम्बन लेकर सपूर्ण दर्शनो मे समान भाव रखता है। वास्तव मे माध्यस्थ भाव ही शास्त्रो का गूढ रहस्य है, यही धर्मवाद है। माध्यस्थ भाव रहने पर शास्त्र के एक पद का ज्ञान भी सफल है अन्यथा करोडो शास्त्रो का ज्ञान भी वृथा है।

प दलसुख भाई मालवणिया लिखते है कि निस्सन्देह सच्चा स्याद्वादी सहिष्णुता होता है व राग द्वेष, रूप, आत्मा के विकारो पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करता है। दूसरो के सिद्धांतो को आदर दृष्टि से देखता हैं और माध्यस्थ भाव से सपूर्ण विरोधो का समन्वय करता है।

अनेकात और जैन सप्रदायो की एकता का प्रश्न

यह दुर्भाग्य प्रत्येक महापुरुष के साथ रहा है कि उसके ही अनुयायियो ने उसके सिद्धात के ठीक विपरीत आचरण किया। ईसा ने प्रेम और मानवता का जो सदेश दिया था। ईसाइयो ने उसके विपरीत खून की होली खेली और वह भी धर्म के नाम पर। महावीर के साथ भी ऐसा ही हुआ। अनेकात और अपरिग्रह का राग अलापने वाला जैन समाज स्वय ही अनेक सप्रदायो मे विभक्त हो गया। जिस अनेकात के माध्यम से जैन आचार्यो ने परस्पर विरोधी दर्शनो मे समन्वय करने का प्रयास किया था। और षड्दर्शनो की समुचित अराधना का पक्ष उपस्थित करते हुए कहा था —

षड्दर्शन जिन अग मणीचे,
न्याय षडग जे साधे रे।
नमि जिनवर ना चरण उपासका,
षट् दर्शन आराधे रे।।

वही पारस्परिक मत वैभिन्य और कलह देखकर उन्हे दो आँसू भी बहाना पडे। आध्यात्मिक सत आनन्दघन जी इस स्थिति पर अपनी सारी पीडा उडेलते हुए कहते हैं —

गच्छता बहुभेद नयने निहालता।
तत्व नी करता तपे लाज नी आवे।।

आज जैन समाज को इस उपहास से बचने के लिए सक्रिय होकर कुछ करना है। हमे अनेकात के माध्यम से व्यापारिक रूप से समन्वय की आधार भूमि बनानी होगी।

प्रथमत जैन समाज मोटे रूप से दो सप्रदायो मे विभाजित है। (१) श्वेताम्बर और (२) दिगम्बर। दोनो मे मुख्य विवाद निम्न तीन प्रश्नो पर हैं—

(१)स्त्री मुक्ति (२) केवली मुक्ति और (३) मुनि का निर्वस्त्र होना।

प्रथम दो प्रश्न व्यावहारिक दृष्टि से आधुनिक सदर्भ मे अधिक महत्वपूर्ण नही रह जाते हैं। क्योंति वर्तमान मे भरत क्षेत्र मे न तो कोई केवली हो सकता है। और न कोई मुक्त हो सकता है। अत इस विवाद को वर्तमान मे अप्रासगिक होने से चर्चा के क्षेत्र मे ही अलग कर दिया जावे। जहाँ तक मुनि के निर्वस्त्र या सवस्त्र होने का प्रश्न है मुनि की दो कोटियाँ मान ली जावे। (१) निर्वस्त्र और (२)सवस्त्र वैसे भी यह कोटियाँ दिगम्बर समाज मे मुनि और ऐलक तथा क्षुल्लक के रूप मे पूर्व स्वीकृत हैं। वैसे व्यावहारिक रूप मे जो मुनि सवस्त्र रहते है वह भी वस्त्रो के प्रति ममत्व भाव नही रखते हैं जिस प्रकार दिगम्बर मुनि वस्त्रो के अतिरिक्त अन्य वस्तुओ पर ममत्व भाव रखे बिना उन्हे अपने पास रखकर उनका उपयोग करते है ठीक उसी प्रकार श्वेताम्बर मुनि जी वस्त्र के प्रति ममत्व भाव रखे बिना उनका उपयोग करते हैं। मौरपिच्छ या रजोहरण मे से किसी को भी सर्वसम्मत रूप से अपनाया जा सकता है। अन्य आचार नियमो को युग के अनुरूप तथा सयम की निर्विघ्न साधना की दृष्टि से निश्चित कर लिया जावे। श्वेताम्बर परम्परा के यति वर्ग और दिगम्बर परम्परा के ब्रह्मचारी वर्ग को समन्वित कर गृहस्थ और मुनि के बीच एक वर्ग बना लिया जावे जो समाजिक जीवन हेतु भी कार्य करे।

जैन परम्परा मे दूसरा विवाद मूर्ति पूजा के प्रश्न को लेकर है। इस आधार पर श्वेताम्बर परम्परा मे मूर्ति पूजक और स्थानकवासी तथा दिगम्बर परम्परा मे बीस पथी, तेरा पथी और तारण पथ मे विवाद है। अमूर्ति पूजक सप्रदाय अर्थात स्थानकवासी, तेरा पथी (श्वे) तथा तारण पन्थी यह आग्रह छोड देवे कि साधना के क्षेत्र मे निमित्त के रूप मे मूर्ति का कोई उपयोग ही नही हो सकता। दूसरी ओर मूर्ति पूजक सप्रदाय इस आग्रह को छोड दे कि मूर्ति के अभाव मे या बिना निमित्त के साधना सभव ही नही है। निराकार उपासना भी साधना की पद्धति हो सकती है। साथ ही मूर्ति पूजक सप्रदायो को मूर्ति का अलकरण, सचित्त द्रव्यो से पूजा और अन्य आडम्बरो का परित्याग कर देना चाहिए। पूजा की पद्धति को दिगम्बर आम्नाय और तेरापथ के आधार पर बनाया जा सकता है जिसमे भाव शुद्धि मुख्य लक्ष्य रहे। इसी प्रकार मुख वस्त्रिका प्रश्न के सबध मे भी कोई मध्यम मार्ग निकाला जा सकता है। श्वेताम्बर मूर्ति पूजक तथा स्थानकवासी दोनो की मान्यता के अनुसार वायु काया के जीवो की रक्षा के हेतु मुख वस्त्रिका आवश्यक मानी जाती है प्रश्न केवल यह है कि उसमे डोरा लगाकर सदैव मुख पर बाधना आवश्यक है क्या? वास्तव मे डोरा लगा कर बाधना एक सुविधा का प्रश्न Rule of Convenience ताकि बातचीत करते समय अथवा पठन आदि के समय भाषा वर्गणा के पुद्गल से वायु-काया के जीवो की हिंसा न हो जावे। इन अवसरो पर मुख पर बधी रहने के कारण बिना प्रयत्न के रक्षा हो जाती है। यदि हाथ मे रखी जावे तो सावधानी रख कर बातचीत या पठन के समय मुँह पर लगाना जरूरी होगा।

राजनैतिक क्षेत्र मे अनेकांत दृष्टिकोण का उपयोग

आज का राजनैतिक जगत भी वैचारिक सकुलता से परिपूर्ण है। पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, फासीवाद, नाजीवाद आदि अनेक राजनैतिक विचारधाराएँ तथा राजतन्त्र, प्रजातन्त्र, कुलतन्त्र, अधिनायक तत्र आदि अनेक शासन प्रणालियाँ वर्तमान मे प्रचलित हैं। मात्र इतना ही नही उनमे से प्रत्येक एक दूसरे को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील है। विश्व के राष्ट्र खेमो मे बटे हुए हैं और प्रत्येक खेमे का अग्रणी राष्ट्र अपना प्रभाव क्षेत्र बढाने हेतु दूसरे के विनाश को तत्पर है। मुख्य बात यह है कि आज

का युग राजनैतिक संघर्ष का युग है। आज अमेरिका और रूस अपनी वैचारिक प्रभुसत्ता के प्रभाव को बढ़ाने के लिए ही प्रतिस्पर्धा में लगे हुए हैं। एक दूसरे को नाम-शेष करने की उनकी यह महत्वकांक्षा कहीं मानव जाति को ही नाम शेष न कर दे।

आज के राजनैतिक जीवन मे अनेकात के दो व्यावहारिक फलित वैचारिक सहिष्णुता और समन्वय अत्यन्त उपादेय हैं। मानव जाति के राजनैतिक जगत मे प्रजातन्त्र तक की जो लंबी यात्रा तय की है उसकी सार्थकता अनेकांत दृष्टि को अपनाने मे ही है। विरोधी पक्ष के द्वारा की जाने वाली आलोचना के प्रति सहिष्णु होकर उसके द्वारा अपने दोषो को समझाना और उन्हे दूर करने का प्रयास करना, आज के राजनैतिक जीवन की सबसे बडी आवश्यकता है। विपक्ष की धारणा मे भी सत्यता हो सकती है और सबल विरोधी दल की उपस्थिति मे हमे अपने दोषो के निराकरण का अच्छा अवसर मिलता है। इस विचार दृष्टि और सहिष्णुता की भावना मे ही प्रजातन्त्र का भविष्य उज्ज्वल रह सकता है।

राजनैतिक क्षेत्र मे ससदीय प्रजातन्त्र (पार्लियामेंट डेमोक्रेसी) वस्तुत राजनैतिक अनेकांतवाद है। इस परम्परा मे बहुमत दल द्वारा गठित सरकार अल्प मत दल को अपने विचार प्रस्तुत करने का अधिकार मान्य करती है और यथासम्भव उससे लाभ भी उठाती है। दार्शनिक क्षेत्र में जहाँ भारत अनेकांतवाद का सर्जक है वहीं वह राजनैतिक क्षेत्र मे ससदीय प्रजातन्त्र का समर्थक है। अत आज अनेकात का व्यवहारिक क्षेत्र मे उपयोग करने का दायित्व भारतीय राजनीतिज्ञो पर है।

पारिवारिक जीवन मे अनेकांत दृष्टि का उपयोग

कौटुम्बिक क्षेत्र मे इस पद्धति का उपयोग परस्पर कुटुम्बो मे और कुटुम्ब के सदस्यो मे सघर्ष को टाल कर शाति पूर्ण वातावरण का निर्माण करेगा। सामान्यतया पारिवारिक जीवन मे सघर्ष के दो केंद्र होते हैं। पिता-पुत्र तथा सास-बहू। इन दोनो विवादों मे मूल कारण दोनो का दृष्टि भेद है। पिता जिस परिवेश मे बडा हुआ, उन्ही सस्कारो के आधार पर पुत्र का जीवन ढालना चाहता है। जिस मान्यता को स्वय मान कर बैठा है उन्हीं मान्यताओ को दूसरे से मनवाना चाहता है। पिता की दृष्टि अनुभव प्रधान होती है जब कि पुत्र की दृष्टि तर्क प्रधान। एक प्राचीन सस्कारो से ग्रसित होता है तो दूसरा उन्हे समाप्त कर देना चाहता है। यही स्थिति सास बहू मे होती है। सास यह अपेक्षा करती है कि बहू ऐसा जीवन जीये जैसा उसने स्वय बहू के रूप मे जिया था, जबकि बहू अपने युग के अनुरूप और अपने मातृ पक्ष के सस्कारो से प्रभावित जीवन जीना चाहती है। मात्र इतना ही नही, उनकी अपेक्षा यह भी होती है कि वह उतना ही स्वतंत्र जीवन जीये जैसा वह अपने माता-पिता के पास जीती थी। इसके विपरीत स्वसुर पक्ष उससे एक अनुशासित जीवन की अपेक्षा करती है। यही सब विवाद के कारण बनते है। इसमे जब तक सहिष्णु दृष्टि और दूसरे की स्थिति को समझने का प्रयास नहीं किया जाता, तब तक सर्घष समाप्त नही हो सकता। वस्तुत इनके मूल मे जो दृष्टि भेद है उसे अनेकात पद्धति से सम्यक प्रकार जाना जा सकता है।

वास्तविकता यह है कि हम जब दूसरे के सबध मे कोई विचार करे, कोई निर्णय ले तो हमे स्वय अपने को उस स्थिति मे खडा कर सोचना चाहिए। दूसरे की भूमिका मे स्वय को खडा करके ही उसे सम्यक् प्रकार से जाना जा सकता है। पिता-पुत्र से जिस बात की अपेक्षा करता है, उसके पहले अपने को पुत्र की भूमिका मे खडा कर ले। अधिकारी कर्मचारी से जिस ढग से काम लेना चाहता है उसके पहले स्वय को उस स्थिति मे खडा कर फिर निर्णय ले।

यही एक ऐसी दृष्टि है जिसके अभाव मे लोक व्यवहार असम्भव है और जिसके आधार पर अनेकातवाद् जगत् गुरु होने का दावा करता है।

जैण विणा कि लोगस्स, व्यवहारो सव्वहन निव्वडई।
तस्स भुवणेक, गुरुणो, णमो अणोगत-वायस्स।।

यह देख कर बडा दुख अनुभव होता है कि अनेकात का हामी जैन समाज स्वय परस्पर वैचारिक भिन्नता तथा आचार भिन्नता के कारण विभाजित है। वस्तुस्थिति यह है कि अनेकात का सिद्धात गत शताब्दियो से पुस्तक-ग्रन्थो मे सुरक्षित है। आवश्यकता यह है कि अनेकांत का हमारे धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक क्षेत्र में प्रयोग करके परस्पर प्रेम, स्नेह

का वातावरण निर्माण किया जावे कि जिससे न केवल जैन समाज मे अपितु समस्त धर्मों से संबंधित अन्य समाजों में भी अनेकांत का प्रयोग करके सहिष्णुता की गंगा बहाई जा सके।

संदर्भ स्थल :

१ सूत्र कृतांग टीका १।१२।१-१२
२ "गौतम बुद्ध"—धर्मानन्द कोसम्बी, पृष्ठ ६७
३ सुत्त निपात ५९।२,
४ सुत्त निपात ५१।३, १०, ११
५ सुत्त निपात ४६, ८-९ ६
६ सय सय पससता गरहता परवय।
जे उतत्थ विउस्सति ससारते विउस्सिया।।
सूत्रकृतांग १।१।२।२३
७ उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक सत्-तत्वार्थ ५।२९
(विशेष विवेचना के लिये देखिये श्री कापडिया का "सार्व-सिद्धातनी जड" नामक लेख—प्रकाशित जैन सत्यप्रकाश कार्तिक १९९३)
८ (अ) नेषा तर्केण मतिरापनेया—कठोपनिषद्।
(ब) नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेनमुण्डकोपनिषद्।
(स) सव्वे सरा निय—तवक तत्थ न विज्जई—आचारांग।
९ अनन्त धर्मात्मक वस्तु।
10 We can Know the relative truth, the absolute is known only to the universal observer—Quoted in—Consemology old and newp 20
११ षड्दर्शन समुच्चय टीका ४४ पृष्ठ ३९
स्याद्वाद मजरी के हिन्दी अनुवाद मे सम्मिलित एक लेख से साभार।

———○○○———

—: आनंद-वचनामृत :—

सुख-प्राप्ति का मुख्य रहस्य यह है कि मनुष्य चाह और चिंता से दूर रहे। जहाँ किसी वस्तु की इच्छा होती है, वहाँ तृष्णा जागती है और तृष्णा के आते ही मनुष्य उस चीज को पाने के लिए दौड लगाता है, इससे उसका सारा सुख पलायमान हो जाता है। उसके पल्ले तो केवल दुःख ही दुःख पडता है। पदार्थ को पाने के लिए दौड-धूप का दुःख, फिर उसकी रक्षा करने का दुःख, तत्पश्चात् उसका वियोग हो जाने पर दुःख, फिर उसके सरीखा दूसरा पदार्थ पाने और उसे सुरक्षित रखने का दुःख। इस प्रकार दुःख का विषचक्र चलता है।

परमाणु का स्वरूप

महासती डॉ. ललिता प्रभाजी

जिस भौतिक एव बाह्य जगत का हम अनुभव करते हैं, उसका निर्माण किस प्रकार हुआ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हम अपनी खोज गहराई तक ले जाएँ तो सृष्टि के जड अथवा अजीव अश का मूलकण हमे भौतिक ही मानना होगा, क्योकि भौतिक पदार्थों का विकास भौतिक पदार्थों के द्वारा ही सम्भव है। चेतन तत्व कभी अचेतन तत्व के रूप मे परिवर्तित या विकसित नही हो सकता। यद्यपि परमाणुवादी दार्शनिको ने अपने इस अनुभव मूलक निष्कर्ष के आधार पर पदार्थ-निर्माण की प्रक्रिया मे जिन सूक्ष्म भौतिक घटको की परिकल्पना की है, वे अतीन्द्रिय हैं और इसलिए अनुभव का विषय न हो कर अनुमान का विषय है। सूक्ष्म परमाणु अनुभव द्वारा नही, अनुमान द्वारा ही जाने जा सकते है। यद्यपि केवली परमाणु का भी प्रत्यक्षीकरण करते है। पर सामान्य व्यक्ति इन्द्रियो के माध्य से परमाणु को नही देख पाता।

बाह्य जगत मे पाई जाने वाली सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, इन अनित्य वस्तुओ की पृष्ठभूमि मे कोई नित्य द्रव्य अवश्य होना चाहिए। वस्तुएँ सावयव हैं और वस्तु का विनाश होने पर उसके सभी अवयव बिखर जाते हैं। वे अवयव ही वस्तु के अन्तिम घटक हैं, वस्तु के इन अन्तिम एव अविभाज्य घटको को ही वस्तुत परमाणु कहा गया है।

मूर्त पदार्थ का विश्लेषण करने पर उसे कई भागो मे विभक्त किया जा सकता है। यदि हम किसी पदार्थ का विभाजन करते चले जाएँ तो विभाजन की यह प्रक्रिया एक बिन्दु पर जाकर समाप्त हो जाएगी। विभाजन का वह चरम-बिन्दु, जहाँ और अधिक विभाजन सभव नही हो पाता, परमाणु कहा जाता है।

परमाणु के अस्तित्व के विषय मे एक तर्क यह भी प्रस्तुत किया गया है कि विश्व मे सामान्यत हम आकाश को परम महत् अर्थात् सबसे बडे परिणाम वाला द्रव्य स्वीकार करते है तो सबसे छोटा अर्थात् परम लघु द्रव्य भी अवश्य होना चाहिए। विस्तार की अन्तिम सीमा पर यदि आकाश की उपलब्धि होती है तो विभाजन की अन्तिम सीमा पर परमाणु की उपलब्धि सर्वथा तर्कसगत है।

विश्व के समस्त परमाणुवादी दार्शनिको ने परमाणु के कुछ प्राथमिक या मूलगुण स्वीकार किए है, इन गुणो के माध्यम से ही परमाणु के स्वरूप का विवेचन एव उसकी व्याख्या की जा सकती है। इनके बिना परमाणु को परिभाषित नही किया जा सकता, क्योकि ये परमाणु के अवियोज्य गुण है। सभी परमाणुओ मे एक निश्चित अनुपात मे गुण होते है। प्रत्येक परमाणु मे रूप, रस, गन्ध एव स्पर्श गुण अवश्य होता है। ये चारो सवेदनात्मक गुण परमाणु की प्रत्येक अवस्था मे निहित रहते है। चाहे परमाणु स्वतत्र हो अथवा स्कन्ध- रूप हो। इन सवेदनात्मक गुणो से परमाणु को पृथक नही किया जा सकता।

जैन दार्शनिको ने रूप, रस, गन्ध एव स्पर्श गुण के भी विभिन्न प्रकार स्वीकार किए हैं। परमाणुवाद के सन्दर्भ मे रूपादि गुणो के प्रकार-भेद का जितना स्पष्ट विवेचन जैन दार्शनिको ने किया है, उतना किस अन्य परमाणुवादी विचारधारा मे उपलब्ध नही होता। इसी प्रकार जैन दार्शनिको ने स्पर्श-गुण के विभिन्न प्रकारो के आधार पर ही परमाणु-बन्ध या स्कन्ध-निर्माण की परिकल्पना की है, तो अन्यत्र उपलब्ध नही होती।

अधिकतर दार्शनिक जैन दर्शन सम्मत परमाणु मे सवेदनात्मक गुणो को अस्थायी स्वीकार करते है, क्योकि परमाणु मे एक निश्चित रूप, रस, गन्ध या स्पर्श गुण नही पाया जाता, पर क्या इन गुणो को निश्चित रूप से अस्थायी कहा जा सकता है? यदि हम उदाहरण के तौर पर परमाणु के रूप-गुण की विवेचना करे तो यह रूप-गुण परमाणु मे सदैव विद्यमान रहता है, पर रूप के

प्रकार-पर्याय बदलते रहते हैं। आज का नीला परमाणु एक अवधि के बाद श्वेत-परमाणु बन सकता है, किन्तु दोनो ही स्थिति मे उसमें रूप-गुण तो अवश्य विद्यमान रहेगा। इस अर्थ मे परमाणु के रूपादि गुण को स्थायी कहा जा सकता है पर रूपादि के विभिन्न प्रकार परमाणु मे स्थायी रूप से नहीं रहते।

जैन दार्शनिक अन्य दार्शनिको की भाँति परमाणुओ मे प्रकार-भेद नही मानते। सभी परमाणु एक से हैं। आज जो परमाणु पृथ्वी के रूप मे है, वही परमाणु समयान्तर मे पानी का परमाणु बन सकता है। आज का अग्नि-परमाणु कल वायु-परमाणु के रूप मे परिवर्तित हो सकता है। यद्यपि जैन दार्शनिको मे धातु चतुष्क के रूप मे पृथ्वी आदि तत्वो को स्वीकार अवश्य किया है, किंतु वे केवल परमाणुओ के स्कध-मात्र हैं, वैशेषिको की भाँति उन तत्वो के आधार पर परमाणुओ के विभिन्न वर्गों की परिकल्पना नहीं की गई है। इन तत्वो की सरचना परमाणुओ के सयोजन से ही होती है। किंतु ये चारो तत्व परमाणुओ के बीच कोई भेद रेखा नही खीच पाते। इसी प्रकार गुणो के आधार पर भी परमाणुओ मे प्रकार-भेद या असमानता सम्भव नही है, क्योकि प्रत्येक परमाणु मे रूप, रस, गन्ध एव स्पर्श के गुण समान रूप से पाए जाते हैं, ये गुण परमाणुओ मे सदैव विद्यमान रहते है। यद्यपि विशिष्ट वर्ण, गन्ध, रस तथा स्पर्शादि की अपेक्षा से उनके भिन्न-भिन्न प्रकार बनते हैं, किन्तु वे प्रकार स्थायी नही रह पाते, क्योकि उनमे गुणो के परिवर्तन का क्रम बदलता रहता है। इस प्रकार हम पाते है कि जैन-दर्शन सम्मत परमाणुओ मे किसी भी प्रकार का स्थायी प्रकार भेद उपलब्ध नही होता।

सभी परमाणुवादी दार्शनिक परमाणु की अनेकता के विषय मे एकमत हैं। परमाणु की अनेकता को जैन दार्शनिको ने भिन्न-भिन्न गुणो मे सम्भव बनाया है। प्रत्येक परमाणु मे कोई भी एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध और दो स्पर्श, शीत-उष्ण मे से कोई एक तथा रूक्ष-स्निग्ध मे मे कोई एक होता है, गुणो की इस स्वतत्र व्यवस्था से प्रत्येक परमाणु भी अपना स्वतत्र अस्तित्व ग्रहण करता है। वर्णादि के तरतम भाव के आधार पर परमाणुओ के अनन्त प्रकार सम्भव हैं। इस प्रकार जैन दार्शनिको ने परमाणुओ मे उनके पर्याय-भेद के आधार पर अनेकता सिद्ध करने का जितना स्पष्य प्रयास किया है, उतना यूनानी, वैशेषिक या अन्य दर्शन नही कर पाए।

जैन दार्शनिको ने परमाणु की गतिशीलता को भी स्वीकार किया है और धर्म-द्रव्य को परमाणु की गति मे सहायक अथवा निमित्त कारण माना है। लोक मे सर्वत्र परमाणु भरे हुए हैं और धर्म-द्रव्य भी समस्त लोक मे व्याप्त है, अत धर्म-द्रव्य की सहायता से परमाणु लोक मे ही गति कर सकता है, अलोक मे उसकी गति या पहुँच सम्भव नही है। परमाणु अपनी गति का उपादान कारण तो स्वय है, धर्म द्रव्य उसकी गति को व्यवस्था प्रदान करता है। तथा निमित्त बनता है। जैन दार्शनिको के अनुसार परमाणु सतत गतिशील नही रहता। गतिशील परमाणु एक अवधि के बाद गतिविहिन बन जाता है और समयान्तर मे पुन गति करने लगता है। एक सक्रिय या गतिमान परमाणु कब निष्क्रिय एव गतिहीन बनेगा, यह अनियत है, पर इतना अवश्य निश्चित है कि कम से कम एक समय और अधिक से अधिक असख्यात काल तक वह निष्क्रिय रह सकता है। और एक बार जब वह अपनी गति प्रारम्भ कर देता है तो एक समय से लेकर असख्यात काल तक की अवधि के बीच कभी भी अपनी गति का परित्याग कर सकता है। गति एव स्थिति का यह क्रम परमाणु मे निरन्तर चलता रहता है।

वस्तुएँ सावयव होने के कारण अनित्य है। परमाणु विभाजन की अन्तिम सीमा है, अत निरवयव है। जो निरवयव है वह अवश्य ही नित्य है। परमाणु के अवयव नही होते, अत वह शाश्वत एव अविनाशी है। अतीत, अनागत, वर्तमान तीनो कालो मे उसका अस्तित्व बना रहता है, ससार कभी परमाणु-विहीन नही हो सकता। सृष्टिगत प्रलय को स्वीकार करने वाले दर्शन भी प्रलय की अवस्था मे परमाणु की नित्य अवस्थिति को स्वीकार करते है। बौद्ध दर्शन को छोडकर सभी परमाणुवादी विचारधाराओ ने परमाणु को नित्य माना है।

यदि हम परमाणु की अनित्यता को स्वीकार कर लेते हैं तो एक बार वस्तु का विनाश होने पर उसका पुन नवनिर्माण ही असम्भव हो जाएगा, अत अनित्य की पृष्ठभूमि मे किसी नित्य तत्व की अवस्थिति अवश्य होनी ही चाहिए, इसीलिए परमाणु को उत्पत्ति एव विनाश की प्रक्रिया से परे माना गया। और उन्हे अनादि- अनन्त कहा गया।

इस प्रकार परमाणु का स्वरूप अतीन्द्रिय शाश्वत, अविनाशी, अविभाज्य अनेक आदि विभिन्न व्याख्याओ के द्वारा विवेचित करने का प्रयत्न किया गया है।

———O O O———
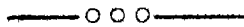
जैन-साहित्य : एक परिचय

धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य का परस्पर बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस देश और समाज का धर्म, दर्शन और संस्कृति मे जितना गहन और शुद्ध विश्वास होता है, उसका साहित्य उतना ही अधिक ठोस और गम्भीर होता है। धर्म साहित्य को विश्वास देता है, दर्शन साहित्य को तर्क देता है और संस्कृति साहित्य को विशालता प्रदान करती है। साहित्य किसी भी वंश और समाज का प्रतिबिम्ब होता है। समाज की भावना और देश के विचार उसके साहित्य मे सहज में ही उपलब्ध हो जाते है। साहित्य का अर्थ है—जो हित सहित हो। साहित्य मानव के सामाजिक सम्बन्धो को सुदृढ बनाता है। क्योकि उसमे सम्पूर्ण मानव-जाति का हित निहित रहता है। साहित्य, साहित्यकार के भावो को समाज मे एव राष्ट्र मे प्रसारित करता है, जिससे उसमे सामाजिक जीवन स्वय मुखरित हो उठता है। साहित्य समाज की चेतना मे सॉस लेता है। वह जनता के जीवन की व्याख्या करता है, इसी से उसमे जीवन देने की शक्ति आती है। वह मानव को लेकर ही जीवित है इसलिए वह पूर्ण रूप मे मानव-केंद्रित है। साहित्य उसी मानव की अनुभूति, भावना और कला का साकार रूप है जो भावनाशील, विचारशील और कला-प्रेमी होता है। इसी आधार पर यह कहा जाता है कि कला-प्रेमी ललित भाषा के माध्यम मे अपने निजी विचारो का अकन करता है, वस्तुत वही श्रेष्ठ साहित्य है। साहित्य मे "सत्य शिव और सुन्दर" का समन्वय होता है। मनुष्य का हृदय साहित्य को भावना देता है, उसकी बुद्धि उसे विचार देती है और उसका आचार उसे शक्ति देता है। साहित्य के अध्ययन मे मनुष्य का मन परिष्कृत और हृदय उदार हो जाता है। साहित्य-सेवन से मनुष्य की मनुष्यता का विकास होता है उसके जीवन मे शिष्टता और सभ्यता आती है, और दूसरो के साथ व्यवहार करने मे कुशलता प्राप्त होती है। अत मनुष्य के सामाजिक जीवन मे साहित्य का बहुत बडा महत्व है।

जैन-धर्म ने विश्व-साहित्य की समृद्धि मे असाधारण योगदान किया है। साहित्य के क्षेत्र मे जैन-संस्कृति के ज्योतिर्धर आचार्यो ने अपनी प्रखर प्रतिभा का और अद्भुत परिकल्पना का परिचय दिया है। जब हम श्रमण-साहित्य की विस्तीर्णता समृद्धता और उर्वरता की ओर दृष्टिपात करते है, तब हमारा मस्तक उन प्रकाण्ड पण्डित आचार्यो के पाद-पद्मो मे सहसा झुक जाता है। उन आचार्यों ने अपने-अपने युग मे बहुविधि तथा बहुभाषा-निबद्ध उर्वर साहित्य का सृजन करके भारती के भण्डार को भरने का सफल प्रयत्न किया है। भारतीय संस्कृति व इतिहास के गम्भीर अध्ययन के लिए जैन-साहित्य का परिशीलन करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना भारतीय संस्कृति, धर्म दर्शन और इतिहास का वास्तविक परिज्ञान नही हो सकता क्योंकि जैन-साहित्य, संस्कृति इतिहास और पुरातत्व के सम्बन्ध मे विपुल मात्रा मे सामग्री प्रदान करता है।

आगम-साहित्य

श्रमण-साहित्य का मूल स्रोत है— आगम। जैन-संस्कृति और जैन-दर्शन का मूल आधार है—आगम वाड्मय। मूल आगमो मे भी स्थान-स्थान पर अनेक विषयो की सुन्दर चर्चा की गई है। जैन-संस्कृति का ऐसा कोई दृष्टिकोण नही है जिसका मूल बीज आगमो मे न आ गया हो। जो विषय मूल आगमो मे सक्षिप्त रह गया है चूर्णि, भाष्य और टीका उसी का विस्तार करते है। जैनो का आगमेतर साहित्य भी बहुत विस्तृत है जिसका सक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

श्रमण-साहित्य के विविध रूप

जैन-साहित्य-सरिता का प्रवाह सर्वतोमुखी रहा है। इस सर्वतोमुखी प्रवाह ने भारतीय साहित्य के प्रत्येक प्रदेश को सिंचित और पल्लवित किया है। जैन लेखको ने केवल अपने धार्मिक-तत्त्वो का निरूपण और समर्थन करने वाला साहित्य ही नही लिखा है, अपितु भारतीय वाड्मय के अग-व्याकरण, कोष, छन्द, अलकार आदि पर भी अधिकारपूर्ण लेखनी चलाई है। तत्त्व-निरूपण, न्याय, व्याकरण, काव्य कोष, नाटक, छन्द, अलकार, कथा, इतिहास नीति, राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, भूगोल, खगोल, मत्र-तत्र, स्तोत्र-योग अध्यात्म आदि सकल विषयो पर जैन-विद्वानो ने अधिकारपूर्ण साहित्य प्रस्तुत किया है।

प्राचीन जैन-साहित्य इतना समृद्ध है कि उसका वर्णन इस ग्रन्थ के इन कतिपय पृष्ठो मे नही किया जा सकता है तदपि उल्लिखित विषयो पर अगले पृष्ठो मे नमूने के तौर पर मुख्य-मुख्य प्रसिद्ध लेखको और ग्रन्थो का दिग्दर्शन और नाम-निर्देश

किया गया है। इतने उल्लेख मात्र से भी जैन साहित्य की सर्वांगीणता और सर्वव्यापकता का स्थूल परिचय सहज ही मे प्राप्त किया जा सकता है।

तत्व-निरूपण—इस विषय पर तो जैनाचार्य और जैन विद्वान लिखे, यह कोई आश्चर्य की बात नही है। जैनाचार्यों ने जैन-धर्म के तत्वो को निरूपण करने वाली विपुल ग्रन्थ-राशि का निर्माण किया है। गणधर रचित मूल जैनागम और अन्य श्रुत केवलियो के रचे हुए आगमो के अतिरिक्त इनके गूढ मर्म को स्पष्ट करने वाले सैकडो नही, हजारो ग्रन्थो का निर्माण हुआ है। व्यवस्थित शैली मे तत्व-निरूपण करने वाला प्राचीन ग्रन्थराज उमास्वाति रचित 'तत्वार्थाधिगम सूत्र' है। बाद के आचार्यों ने इस ग्रन्थ पर बडी-बडी टीकाएँ लिखकर जैन-धर्म के मर्म को प्रकट किया है।

न्याय—जैन-न्याय के प्रथम प्रवर्तक श्री सिद्धसेन दिवाकर और आचार्य समन्तभद्र है। सिद्धसेन दिवाकर ने 'न्यायावतार' और समन्तभद्र ने 'आप्त-मीमासा' लिखकर जैन-न्याय और तर्क-शास्त्र की मूल प्रतिष्ठा की। जैनाचार्यो ने इस विषय मे इतना अधिक और इतना सुन्दर साहित्य रचा है कि वह विश्व के दार्शनिक इतिहास की मूल्यवान निधि बन गया है।। जैन-दर्शन का स्याद्वाद सिद्धान्त दार्शनिक ससार के लिए महत्वपूर्ण अन्वेषण है। न्याय विषय पर लिखे गए साहित्य पर भी पिछले पृष्ठो मे विस्तृत वर्णन किया जा चुका है। जैन-दर्शन और दार्शनिको के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए विद्याभूषण डॉ सतीशचन्द्र द्वारा लिखित 'Mediaeval School of Indian Logic' नामक ग्रथ अवश्य देखना चाहिए।

व्याकरण—शाकटायन, देवनन्दि पूज्यपाद, हेमचन्द्र रामचन्द्र सूरि आदि प्रसिद्ध वैयाकरण हुए है। महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण मे शाकटायन का उल्लेख किया है। पूज्यपाद देवनन्दि न जैनेन्द्र व्याकरण लिखा है। इस पर नौवी-बारहवी शताब्दी के बीच मे हुए आचार्य अभयनन्दि ने बारह हजार श्लोक-प्रमाण महावृत्ति लिखी। श्रुतिकीर्ति ने तेतीस हजार श्लोक प्रमाण शब्दाम्भोज भास्कर न्यास लिखा। हेमचन्द्राचार्य ने सिद्धहेम व्याकरण की रचना की। इनके अतिरिक्त रामचन्द्र सूरि, शाकटायन, द्वितीय, मलयागिरि आदि जैनाचार्यो न व्याकरणशास्त्र पर बडे-बडे ग्रन्थो की रचना की है। आचार्य हेमचन्द्र तो अपभ्रश के पाणिनि के रूप मे विश्व-विख्यात है।

काव्य—जैनाचार्यो ने विपुल परिणाम मे काव्य और महाकाव्यो की रचना करके संस्कृत साहित्य को चार चाँद लगा दिये है। जैनाचार्यों के द्वारा रचे गये महाकाव्य, कालिदास, हर्ष, माघ और बाण के ग्रन्थो से किसी तरह कम नही है। श्री हर्ष के नैषध चरित' महाकाव्य के साथ स्पर्धा करने वाले देवविमल गणि का 'हरि-सौभाग्य' महाकाव्य, कालिदास के रघुवश की समानता करने वाला हेमविजय गणी का "विजय-प्रशस्ति काव्य", जैनेतर पचकाव्यो से टक्कर लेने वाले जैन-काव्य, जैसे कि—जयशेखर का जैन कुमारसभव', वस्तुपाल का नर-नारायणानन्दकाव्य', बालचन्द्र सूरि का 'वसन्त विलास', मेरुतुग सूरि का 'जैन मेघदूत' कवि हरिश्चन्द्र का 'धर्मशर्माभ्युदय, कवि नागभट्ट का 'नेमि-निर्वाण', मुनिभद्र का 'शान्तिनाथ चरित्र', अभयदेव का 'जयन्त विजय' आदि-आदि मुख्य हैं। अठारहवी शताब्दी के मेघविजय उपाध्याय ने सप्त-सधान महाकाव्य लिखा, जो प्रत्येक सात महापुरुष पर समान रूप से लागू होता है।

कोष—हेमचन्द्राचार्य का 'अभिधान चिन्तामणि' कोष इस विषय मे सर्वश्रेष्ठ रचना है। हेमचन्द्र ने 'अनेकार्थ-सग्रह सटीक', 'देशी नाम माला' 'निघण्टु-शेष' आदि कोष-ग्रन्थ भी लिखे है। इनके शिष्य महेन्द्र सूरि ने 'अनेकार्थ-सग्रह' पर अनेकार्थ कैरवाकर कौमुदी टीका लिखी है। धनजय ने 'धनजय-नाममाला' नाम कोष, सुधा कलश ने एकाक्षर नाममाला' लिखी है। इसके अतिरिक्त 'शिलोच्छ कोष आदि अनेक कोष है। बीसवी शताब्दी मे राजेन्द्र सूरी ने 'अभिधान राजेन्द्र के नाम से विस्तृत कोष (जिन्हे विश्व-कोष कहा जा सकता है) ग्रन्थ की रचना की है। प हरगोविन्ददासकृत पाइअसद्दमहण्णवो' और शतावधानी प रत्नचन्द्रजी म कृत 'अर्ध मागधी' कोष इस शताब्दी के महत्वपूर्ण कोष-ग्रन्थ है।

नाटक—इस क्षेत्र मे भी जैनाचार्यो ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। हेमचन्द्राचार्य के शिष्य रामचन्द्र सूरि न 'रघु-विलास' नामक नाटक लिखा। हस्तिमल्ल ने 'मैथिली-कल्याण, विक्रात कौरव, सुभद्राहरण, अजना-पवनजय' नामक नाटक लिखे। हरिश्चन्द्र ने 'जीवधर' नाटक लिखा। जयसिह सूरि ने 'हमीर-मद-मर्दन नामक ऐतिहासिक नाटक लिखा। यश पाल का 'मोहराज पराजय', रामचन्द्र का प्रबुद्ध रोहिणेय', विजयपाल का 'द्रौपदी स्वयवर', बालचन्द्र के 'करुणा', 'वज्रायुध आदि कई नाटक-ग्रन्थ जैन साहित्यकारो द्वारा रचित हैं।

छन्द-अलकार—इस विषय मे भी आचार्य हेमचन्द्र, वाग्भट्ट, जयकीर्ति तथा यशोविजयजी ने कई ग्रन्थ लिखे है।

कथा—जैन कथा-साहित्य बहुत विस्तृत और अगाध है। इस विषय मे जैनाचार्यों की देन बडी अद्भुत है। प्राचीन काल की

कथाओ को आज तक टिकाए रखने का अधिकाश श्रेय जैन मुनियो और साहित्यकारो को है, यह प्राय सब पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वान स्वीकार करते हैं। प्रोफेसर विन्टरनीट्स ने 'जैन कथा-साहित्य और उसकी भारतीय साहित्य को देन'—इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। विस्तार भय मे यहाँ हम उसे नही दे रहे है। जैनागमो, नियुक्तियो, भाष्यो तथा चूर्णियो मे अनेक प्रसगोपात कथाएँ उल्लिखित हैं। इनके अतिरिक्त जीवन-चरित्र और प्रबन्धो के रूप मे भी विशाल साहित्य है। 'त्रिषष्ठि-शलाका पुरुष-चरित्र, आदि पुराण, उत्तर पुराण (प्राकृत मे) पद्म-चरित्र आदि उत्तम पुरुषो के चरित्र-ग्रन्थ जैन धर्माचार्यों के जीवन-चरित्र है। प्रबन्ध-चिन्तामणि (मेरुतुग आचार्य निर्मित) और प्रद्युम्न सूरि का 'प्रभावक चरित्र-ग्रन्थ' जैन धर्माचार्यों के जीवन-चरित्र पर खूब प्रकाश डालता है। जैन सिद्धान्तो और गम्भीर तत्वो को समझाने के लिए जैनाचार्यों ने कई कथाएँ, आख्यायिकाएँ और दृष्टान्त आदि लिखे हैं। राम, कथा, जीवन-चरित आदि से जैन-साहित्य भरा पडा है। सस्कृत, प्राकृत, कन्नड तमिल तेलगु, गुजराती, हिन्दी आदि भाषाओ मे विधि प्रकार के कथा ग्रन्थो की रचना जैनाचार्यों ने की है।

इतिहास—जैनाचार्यों के ग्रन्थो, उनके अन्त मे दी गई प्रशस्तियो और पट्टावलियो से भारतवर्ष के इतिहास पर बहुत प्रकाश पडता है। डॉ सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने कहा है कि—ऐतिहासिक ससार मे तो जैन-साहित्य विश्व के लिए सबसे अधिक उपयोगी है। जैनो के बहुत-से प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। ऐसे ग्रन्थ और उपाख्यान, जिन्हे भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के जैनो ने अनेक तीर्थकर, धर्मगुरु और तत्कालीन घटनाओ के उल्लेख के साथ सुरक्षित रखे है। वे पुरातत्व-सम्बन्धी निर्णय करने के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए है।''

हेमचन्द्राचार्य का 'त्रिषष्ठि-शलाका पुरुष-चरित्र' का परिशिष्ट पर्व, जिनसेन और गुणभद्र के आदि पुराण' एव 'उत्तर-पुराण', प्रभाचन्द्र और प्रद्युम्न सूरि का 'प्रभावक चरित्र', मेरुतुग का प्रबन्ध-चिन्तामणि' और राजशेखर का 'प्रबन्ध-कोष आदि-आदि ग्रन्थ ऐतिहासिक तथ्यो पर अच्छा प्रकाश डालने वाले है।

नीति और उपदेश—जैनाचार्यों ने केवल जैन-धर्म का प्रचार ही नही किया, अपितु उन्होने सर्व सामान्य के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए बहुत प्रयत्न किये है। उन्होने मानव-समाज को विविध प्रकार से नीति की शिक्षा दी है और नीति-विषयक साहित्य सर्वसाधारण लोक-भोग्य भाषा मे लिखकर प्रचारित किया है। धर्मदास गणि की उपदेश माला' अमितगति का 'सुभाषित-सन्दोह पुरुषार्थ 'सिद्धि-उपाय' हेमचन्द्र सूरि (मलधारी) की 'उपदेश माला सटीक उपदेश-कन्दली' तथा विवक मजरी' आदि मुख्य है। दक्षिण भारत मे वेद के जैसा माने जाने वाले कुरल और 'नालदियर' नामक नीति-ग्रन्थ जैनाचार्यों की अपूर्व रचनाएँ है।

राजनीति और अर्थशास्त्र—इस विषय मे भी जैनाचार्यो ने सुन्दर निरूपण किया है। मुख्य रूप से सोमदेव का नीति-वाक्यामृत' राजनीति और अर्थशास्त्र का प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ है। यह कौटिल्य के अर्थशास्त्र के समकक्ष है। जैन-परम्परा के अनुसार तो चाणक्य, जो कि 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' के रचयिता माने जाते है, एक जैन गृहस्थ थे। वे चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमत्री थे। परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान इस विषय मे शकाशील है कि कौटिल्य अर्थशास्त्र के प्रणेता चन्द्रगुप्त मौर्य के मन्त्री चाणक्य है या यह बाद की शताब्दियो का ग्रन्थ है। यह जैन की रचना है, इस विषय मे भी सन्देह ही है। सोमदेव का 'नीति-वाक्यामृत' कौटिल्य-अर्थशास्त्र के समकक्ष होता हुआ भी अपनी कतिपय विशेषताएँ रखता है। प्रो. विन्टरनिट्स ने इस विषय मे इस सम्बन्ध मे बहुत कुछ लिखा है।

इस विषय का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ आचार्य हेमचन्द्र का 'लघुनीतिशास्त्र' है। यह आचार्य हेमचन्द्र के बृहदर्हन्नीति-शास्त्र' का सार है।

गणित—इस विषय पर भी जैनाचार्यों ने पर्याप्त लिखा है। केशवदेव के पौत्र और पुष्पदन्त के भतीज श्रीपति भट्ट जो विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी मे हुए हैं, उन्होने गणित-तिलक और 'बीजगणित' नामक ग्रन्थ लिखे। चौदहवी सदी मे सिह तिलक ने लीलावती वृत्तियुक्त' और गणित-तिलक वृत्ति' लिखी। गणित और सख्या के विषय मे जैनागमो मे भी पर्याप्त वर्णन है। ई स की नौवी शताब्दी मे महावीर नामक गणितज्ञ ने गणित सार-सग्रह लिखा, जिसका अग्रेजी मे अनुवाद भी हुआ है।

ज्योतिष—इस विषय पर विपुल जैन-साहित्य है। बीस पयन्नो मे 'ज्योतिष-करण्डक' नामक पयन्ना है, इस पर पादलिप्त सूरि ने टीका लिखी। भद्रबाहु ने सहिता लिखी। श्रीपति भट्ट ने—'सिद्धान्त शेखर', ज्योतिष रत्नमाला, देवज्ञ वल्लभ, जातक-पद्धति, श्रीपति निबन्ध श्रीपति समुच्चय श्री कोटिदकरण और ध्रुवमानस-करण' ग्रन्थ लिखे। पद्मप्रभु सूरि ने 'भुवन-दीपक ग्रह-प्रकाश', नरचन्द्र सूरि ने 'ज्योतिष सार' लिखा। नरचन्द्र (कासद्रह गच्छ) प्रश्नशतक, 'जन्म-समुद्र सटीक' और ठक्कर फेरू

ज्योतिषाचार्य ने 'ज्योतिष-सार सटीक' लिखा। **उदयप्रभ सूरि ने 'आरम्भ-सिद्धि'** और हेमहस गणि ने उस पर टीका लिखी। सुमति हर्ष ने 'जातक-कर्म पद्धति' पर टीका, बृहत्पर्व माला (ताजिक सार टीका) 'गणक कुमुद कौमुदी' (भास्कर कृत कर्ण कुचुहल पर टीका) लिखी। यशस्वत् सागर ने अठारहवी सदी मे 'ग्रह-लाघव-वार्तिक' और 'यशोराजिराज पद्धति' (जन्म-कुण्डली विषयक ग्रन्थ) लिखा। हर्षकीर्ति ने 'ज्योति सारोद्धार' ग्रन्थ लिखा।

आयुर्वेद—पूज्यपाद देवनन्दि का 'वैद्यक शास्त्र', गुणाकर सूरि का 'योग रत्नमाला' (नागार्जुन) पर वृत्ति, पण्डित आशाधर का 'अष्टाग-हृदय सटीक', 'अष्टाग-हृदय', 'द्योतिनी टीका', हरिल रुचि का 'वैद्य वल्लभ' आदि इस विषय के जैन ग्रन्थ हैं। हर्षकीर्ति सूरि (१५३५ से १६६८ ई सन् के बीच) ने 'योग चिन्तामणि' (नुस्खो का सग्रह) और 'वैद्यक-सार सग्रह' ग्रन्थ लिखे। सन् १३८६ ई मेरुतुग सूरि ने काकायन के 'रसाध्याय' पर बहुत सुन्दर टीका लिखी।

भूगोल-खगोल—इस विषय मे जम्बू-द्वीप-प्रज्ञप्ति सूत्र और सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र नामक दो आगम-ग्रथ है। उमास्वाति ने 'जम्बू द्वीप समास' लिखा। हरिभद्र सूरि ने 'लोकबिन्दु क्षेत्र समाज वृत्ति' नामक ग्रथ लिखा। नेमिचन्द्र ने 'त्रिलोक-सार' और उनके शिष्य माधवचन्द्र त्रैविद्य ने उसकी टीका लिखी। नादिराज सूरि ने 'त्रैलोक्य दीपिका' लिखी। विनय विजय का 'लोक-प्रकाश' इस विषय पर अच्छा प्रकाश डालने वाला ग्रथ है। क्षेत्र-समास पर मलयगिरि प्रमुख आचार्यो की टीकाएँ इस विषय पर सुन्दर निरूपण करती है।

मत्र-तत्र-यत्र—जब जनता चमत्कार की ओर विशेष रूप से झुकने लगी, तब जैनाचार्यों ने युग के अनुकूल प्रवृत्ति करते हुए इस विषय मे भी खूब कीर्ति प्राप्त की।

मत्र-तत्रादि के प्रभाव से भी जैनाचार्यों ने अपने शासन की रक्षा और प्रभावना की है। पूज्यवाद देवनन्दि ने 'मत्र तत्र शास्त्र' विक्रम की पाचवी-छठी शताब्दी मे लिखा है। सिह तिलक ने 'मत्रराज रहस्य' वि सवत् १३२२ मे लिखा। मेघ-विजय उपाध्याय ने 'वीसा यत्र-विधि' नामक ग्रन्थ लिखा। इस विषय मे प्रकीर्ण रूप से बहुत-सा साहित्य लिखा गया है।

स्तोत्र—जैन-साहित्य मे स्तोत्रो का प्राचुर्य है। सस्कृत और प्राकृत भाषा मे अनेक चमत्कार-पूर्ण स्तोत्रो की रचना जैनाचार्यों ने की है। भद्रबाहु स्वामी का 'उवसग्गहर स्तोत्र', धर्मघोष का 'ऋषि-मण्डल स्तोत्र', मानतुग का 'भक्तामर स्तोत्र' सिद्धसेन का 'कल्याण-मन्दिर स्तोत्र', धनपाल का 'ऋषभ-पचशिका स्तोत्र', शोभन की शोभन-स्तुति' हेमचन्द्र का 'वीतराग स्तोत्र' आदि बहुत प्रसिद्ध है। समन्तभद्र का 'स्वयभू स्तोत्र' भी बडा अनुपम है। इस स्तोत्रो की रचना के पीछे चमत्कारो की अद्भुत कहानियाँ जुडी हुई है। मयूर और बाण आदि कवियो ने अपने स्तोत्रो से जो चमत्कार बताये, वैसे ही और इससे भी बढकर अनेक चमत्कार जैनाचार्यो ने इस स्तोत्रो की रचना से प्रदर्शित किये है। जैन स्तोत्र-साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। इन स्तोत्रो मे मत्र सिद्धियाँ भी गर्भित है।

योग और अध्यात्म—इस विषय पर प्राचीन काल मे जैनाचार्यों ने अधिकार पूर्ण ग्रन्थो की रचना की है। हरिभद्र सूरि ने 'योगदृष्टि समुच्चय', योग बिन्दु, योगशतक, योग-विशति आदि लिखकर व्यवस्थित रूप मे योग का निरूपण किया। आचार्य हमचन्द्र ने 'योगशास्त्र सटीक' लिखा। प्रभाचन्द्र ने 'समाधि तत्र' टीका लिखी। यशोविजय उपाध्याय ने योग-दीपिका, योग-दर्शन विवरण और योग-विंशिका आदि योग ग्रन्थ लिखे। जैनाचार्यो ने योग और अध्यात्म को अभिन्न माना है। जैन-धर्म मे योग का अर्थ हठयोग आदि से नही है, अपितु ध्यान आदि आध्यात्मिक तत्वो से है। यशोविजयजी ने 'आध्यात्म सार' 'अध्यात्मोपनिषद्'- आदि ग्रन्थ लिखे। न्यायविजय जी ने 'अध्यात्म तत्वालोक' नामक सुन्दर ग्रन्थ लिखा है। आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार आदि ग्रन्थ उच्चकोटि के अध्यात्म के प्ररूपक है। सगीत, शिल्प, अष्टाग निमित्त आदि के विषय मे भी जैनाचार्यों ने खूब लिखा है। मलधारी राजशेखर के शिष्य सुधाकलश ने सगीतोपनिषद् और सगीतसार क्रमश १३८० और १४०६ वि स मे लिखे। मण्डन मत्री ने 'सगीत मण्डन' ग्रन्थ लिखा। विज्ञान के सम्बन्ध मे जैनाचार्यों मे और द्रव्य निरूपक ग्रन्थो मे विपुल सामग्री भरी पडी है। जैन पदार्थ विज्ञान आधुनिक विज्ञान स अधिकाश मिलता हुआ है। उक्त विवरण से वह भली-भाँति सिद्ध हो जाता है कि जैन साहित्य केवल धार्मिक साहित्य ही नही, अपितु सर्वांग-सम्पन्न साहित्य है।

इस प्रकार जैन साहित्य बहुविध एव अनेक भाषा मे निबद्ध है। धर्म, दर्शन, सस्कृति—काव्य, नाटक, गद्य-काव्य और अलकार शास्त्र आदि अनेक विषयो पर जैन आचार्यों ने अपने-अपने युग मे साहित्य के भण्डार की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है। अत उन ज्योतिर्धर आचार्यो के श्रम से हमारे पास विपुल साहित्य विद्यमान है, जिसका दिग्दर्शन ऊपर कराया गया है।

भाषा और साहित्य—साहित्य को अभिव्यक्त करने के लिए तथा उसका प्रचार और प्रसार करने के लिये, भाषा की नितान्त आवश्यकता है। जैनाचार्यों नेअपनी साहित्य-साधना मे अनेक भाषाओ का उपयोग किया है। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश, कन्नड,

तेलगु, गुजराती, मराठी, बगला, उर्दू और राष्ट्र-भाषा हिन्दी मे जैन आचार्यों ने समय-समय पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। परन्तु मुख्य रूप में जैन साहित्य की भाषाएँ तीन रही है—प्राकृत, सस्कृत और अपभ्रश। विदेशी भाषाओ मे भी जैन-साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध होता है। जर्मन, रूसी तथा इगलिश भाषा मे हजारो जैन-ग्रन्थो का भाषान्तर तथा आलेखन हो चुका है। अत भाषा की दृष्टि से भी जैन-साहित्य बहुत समृद्ध है।

प्रान्तीय भाषाओ को भी जैनधर्म की महत्वपूर्ण देन है। अपभ्रश भाषा ही सब प्रान्तीय भाषाओ की जननी है। अपभ्रश भाषा मे सबसे अधिक लिखने वाले और उसे साहित्य का रूप देने वाले जैनाचार्य ही है। दक्षिण भारत की कन्नड, तामिल और तेलगु भाषाओ को साहित्य का रूप जैनाचार्यों ने ही दिया है। दिगम्बर जैनाचार्यों ने कन्नड भाषा मे खूब साहित्य लिखा है। तुम्बूलुर आचार्य ने कन्नड भाषा मे तत्वार्थाधिगम सूत्र पर छयानवे हजार श्लोक-प्रमाण टीका लिखी है। हिन्दी और गुजराती साहित्य के आद्य-प्रणेता जैनाचार्य ही है। राजस्थानी में भी जैनाचार्यो ने कई ग्रन्थो का निर्माण किया है। इस तरह भारतीय विभिन्न भाषाओ मे नैतिक, धार्मिक और औपदेशिक साहित्य का निर्माण करने का श्रेय जैन साधको को विशेष रूप से प्राप्त है।

हिन्दी भाव और भाषा की दृष्टि से अपभ्रश की पुत्री है। अपभ्रश साहित्य मे जो कुछ भी उपलब्ध है, वह जैनो की बहुल देन है। राहुल जी ने लिखा है—"अपभ्रश के कवियो का विस्मरण करना हमारे लिए हानि की वस्तु है। ये ही कवि हिन्दी काव्यधारा के प्रथम सृष्टा थे। हमारे विद्यापति कबीर, सूर, जायसी और तुलसी के यही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे है। जैनो ने अपभ्रश साहित्य की रचना और उसकी सुरक्षा मे सबसे अधिक काम किया है।"

जब से भगवान् महावीर के द्वारा लोकभाषा को आदर दिया गया तब से ही लोक भाषाओ की प्रतिष्ठा कायम हो सकी। हमारे देश की भाषा का प्रश्न भी इसी आधार-बिन्दु पर हल किया गया है और हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का रूप मिल सका है।

प्राचीन भारतीय साहित्य को जैनो के द्वारा दिये गये महत्वपूर्ण योगदान के सम्बन्ध मे प्रोफेसर बुलहर का यह कथन नितान्त यथार्थ है।

'व्याकरण खगोल साहित्य की सब शाखाओ मे जैनो के कार्य इतने विशाल है कि उनके प्रतिद्वन्द्वियो ने भी उनकी प्रशसा की है। इनके साहित्य का कतिपय भाग आज भी पाश्चात्य विज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। दक्षिण भारत की भाषाओ को साहित्य का रूप देने का और इन्हे विकसित करने का कार्य जैन मुनियो ने किया है। यद्यपि ऐसा करने से उनके उद्देश्यो मे कुछ क्षति हुई तदपि इससे भारतीय साहित्य और सस्कृति मे उनका महत्वपूर्ण स्थान सुरक्षित हो गया है।'

भाषा, विचारो का माध्यम है। बिना भाषा के विचारो की अभिव्यक्ति सभव नही है। जब लेखक अपने विचार कलम की नोक पर उतारता है तब किसी-न-किसी भाषा का उसे आश्रय लेना ही पडता है। जैन आचार्यों ने अपने विचारो की अभिव्यक्ति के लिए मुख्य रूप मे सस्कृत और प्राकृत को पकडा तथा गौण रूप मे भारत की प्रान्तीय भाषाओ को भी। यही कारण है कि जैन साहित्य अनेक भाषाओ मे आज भी उपलब्ध है। इस प्रकार भारतीय साहित्य-समृद्धि की श्रीवृद्धि करने मे जैन-साहित्य का योगदान काफी रहा है। जैन-साहित्य-रत्नो से भारतीय भारती-भण्डार आज भी समृद्ध है और रहेगा।

—— ○ ○ ○ ——

विद्यादान : महादान

दान कई प्रकार के है किंतु उनमे से सर्वश्रेष्ठ विद्या दान है। जैसे आपने किसी को वस्त्र दान किया तो वह वस्त्र छ महीने या दो वर्ष मे तो फट ही जाएगा। उससे अधिक नही चलेगा। इसी प्रकार अन्न दान दिया। अर्थात् भूखे को भोजन कराया तो सुबह भोजन कराने पर शाम को पुन उसका पेट खाली हो जाएगा। विद्यादान एक ऐसा दान है इसे आपने दिया और ग्रहण करने वाले ने सम्यक रूप से ग्रहण किया तो उसकी आत्मा की भूख केवल इसी जन्म के लिए नही अपितु जन्म-जन्मातरो के लिए मिट जाएगी। **—आचार्यश्री आनन्दऋषिजी म**

भारतीय साहित्य को जैन साहित्य की विशिष्ट देन

श्री अगरचन्द नाहटा

जैनधर्म भारत का प्राचीनतम धर्म है। उसके प्रवर्तक और प्रचारक २४ तीर्थंकर इसी भारत भूमि मे ही जनमे, साधना करके विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया और जनता को धर्मोपदेश देकर भारत मे ही निर्वाण को प्राप्त हुए। जैन परपरा के अनुसार भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर थे। उन्होंने ही युगलिक धर्म (पुत्र एव पुत्री युगल का साथ ही जन्म एव बडे होने पर उनमे पति-पत्नी सम्बन्ध) का निवारण करके असि (शास्त्र), मसि (लेखनी) कृषि तथा विद्याओ और कलाओ की शिक्षा देकर भारतीय सस्कृति को एक नया रूप दिया। वे महान् आविष्कर्ता थे। उन्होने अपनी बडी पुत्री ब्राह्मी को जो लिपि सिखाई, वह भारत की प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी के नाम से प्रसिद्ध हुई और छोटी पुत्री सुन्दरी को अक आदि सिखाये जिससे गणित का विकास हुआ। पुरुषो को ७२ तथा स्त्रियो की ६४ कलाएँ या विद्याएँ भगवान ऋषभदेव की ही विशिष्ट देन हैं। भगवान ऋषभदेव के बडे पुत्र भरत ६ खडो को विजय कर चक्रवर्ती सम्राट् बने और उन्ही के नाम से इस देश का नाम 'भारत' प्रसिद्ध हुआ।

व्यावहारिक शिक्षा देने के बाद भगवान ऋषभदेव ने पिछली आयु मे सन्यास ग्रहण किया और तपस्या तथा ध्यान आदि की साधना से आत्मिक ज्ञान प्राप्त किया। उस परिपूर्ण और विशिष्ट ज्ञान का नाम "केवलज्ञान" जैनधर्म मे प्रसिद्ध है। इसके बाद उन्होने आध्यात्मिक साधना का मार्ग प्रवर्तित किया, आत्मिक उन्नति और मोक्ष का मार्ग सबको बतलाया। इसलिए भगवान ऋषभदेव का जैन साहित्य मे सर्वाधिक महत्व है। यद्यपि उनको हुए असख्यात वर्ष हो गये, इसलिए उनकी वाणी या उपदेश तो हमे प्राप्त नही है, पर उनकी परपरा मे २३ तीर्थंकर और हुए, उन्होने भी साधना द्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया। सभी केवलियो का ज्ञान एक जैसा ही होता है। इसलिए ऋषभदेव की ज्ञान की परपरा अतिम भगवान महावीर की वाणी और उपदेश के रूप मे आज भी हमे प्राप्त है। समस्त जैन साहित्य का मूल आधार वही केवलज्ञानी तीर्थंकरो की वाणी ही है।

प्राचीनतम जैन साहित्य

भगवान महावीर के पहले के तीर्थंकरो के मुनियो का जो विवरण आगमो मे प्राप्त है, उससे मालूम होता है कि पूर्वो का ज्ञान उस परपरा मे चालू था। आगे चलकर उनको १४ पूर्वो मे विभाजित कर दिया। भगवान महावीर के समय और उसके कई शताब्दियो तक १४ पूर्वो का ज्ञान प्रचलित रहा, उसके पश्चात् क्रमश उसमे क्षीणता आती गई, करीब-करीब हजार वर्षो से १४ पूर्वो के ज्ञान की वह विशिष्ट परपरा लुप्त-सी हो गई।

भगवान महावीर ने जो ३० वर्ष तक अनेक स्थानो मे विचरते हुए धर्मोपदेश दिया उसे उनके प्रधान शिष्य गौतम आदि ११ गणधरो ने सूत्ररूप मे निबद्ध कर दिया। वह उपदेश १२ अगसूत्रो मे विभक्त कर दिया गया जिसे "द्वादशागणि-पिटक" कहा जाता है। इनमे से १२ वाँ दृष्टिवाद अग जो बहुत बडा और विशिष्ट ज्ञान का स्रोत था, पर वह तो लुप्त हो चुका है। बाकी ११ अग सूत्र करीब हजार वर्ष तक मौखिक रूप से प्रचलित रहे, इसलिए उनका भी बहुत-सा अश विस्मृत हो गया। वीरनिर्वाण सवत् ९८० मे देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने सौराष्ट्र की वल्लभी नगरी मे उस समय तक जो आगम मौखिक रूप से प्राप्त थे, उनको लिपिबद्ध कर दिया। अत प्राचीनतम जैन साहित्य के रूप मे वे ११ अग और उनके उपांग तथा उनके आधार से बने हुए जो भी आगम आज प्राप्त हैं, उन्हे प्राचीनतम जैन साहित्य माना जाता है।

दिगम्बर सम्प्रदाय मे तो ये अग सूत्रादि लुप्त हो गये ऐसा माना जाता है, पर श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे वे ही आगम-ग्रन्थ प्राप्त और मान्य है।

जैन साहित्य का विकास

भगवान महावीर के बाद कई जैनाचार्यों ने बहुत से सूत्र ग्रन्थ बनाये, पर उन सूत्रो मे से २-४ को छोडकर बाकी मे रचयिता का नाम नही मिलता। उन रचयिता के नामवाले ग्रन्थो मे सबसे पहला सूत्र है "दशवैकालिक" जिसमे जैन मुनियो का आचार सक्षेप मे वर्णित है। इस सूत्र के रचयिता शयभवसूरी महावीर निर्वाण के ९८वे वर्ष मे स्वर्गस्थ पूर्व पट्टधर हुए हैं। इसके बाद आचार्य भद्रबाहु श्रुतकेवली ने बृहद्कल्प, व्यवहार और दशाश्रुत स्कन्ध नामक ३ छेदसूत्रो की रचना की। १० आगमो की निर्युक्तियाँरूप प्राचीन आगमिक टीकाएँ भी भद्रबाहु रचित हैं। पर आधुनिक विद्वानो की राय मे इनके कर्ता द्वितीय भद्रबाहु पीछे हुए है। इसके बाद श्यामाचार्य ने पन्नवणासूत्र बनाया। इस तरह समय-समय पर अन्य कई आचार्यों और विद्वानो ने ग्रन्थ बनाकर जैन साहित्य की अभिवृद्धि की।

सस्कृत मे जैन साहित्य

भगवान महावीर ने तत्कालीन लोकभाषा अर्द्धमागधी मे उपदेश दिया था और उसर परपरा को जैनाचार्यों ने भी ५०० वर्षों तक बराबर निभाया। अत उस समय तक का समस्त जैन साहित्य प्राकृत भाषा मे ही रचित है। इसके बाद सस्कृत के बढते हुए प्रचार से जैन विद्वान भी प्रभावित हुए और उन्होने प्राकृत के साथ-साथ सस्कृत मे भी रचना करना प्रारम्भ कर दिया। उपलब्ध जैन साहित्य मे सबसे पहला सस्कृत ग्रन्थ आचार्य उमास्वाति रचित "तत्वार्थसूत्र" माना जाता है, जो विक्रम की दूसरी-शताब्दी की रचना है। इसमे छोटे-छोटे सूत्रो के रूप मे जैन सिद्धातो का बहुत खूबी से सकलन किया गया है। यह १० अध्यायो मे विभक्त है। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार तो तत्वार्थसूत्र का भाष्य स्वय उमास्वाति ने ही रचा है। सूत्रग्रन्थो की परपरा का यह महत्वपूर्ण सस्कृत जैन ग्रन्थ है।

इसके बाद तो समन्तभद्र, सिद्धसेन, पूज्यपाद, अकलक, हरिभद्र आदि श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनो सप्रदायो के विद्वानो द्वारा दार्शनिक न्यायग्रन्थ और टीकाएँ आदि सस्कृत मे बराबर रची जाती रही। और आगे चलकर काव्य, चरित्र और सभी विषयो के जैन ग्रन्थ सस्कृत मे खूब लिखे गये।

अपभ्रश एव लोक-भाषाओं मे जैन साहित्य—

जनभाषा मे निरन्तर परिवर्तन होता ही रहता है, अत प्राकृत भाषा अपभ्रश के रूप मे परिणित हो गई। अपभ्रश मे भी जैनो ने ही सर्वाधिक साहित्य का निर्माण किया है। वैसे तो प्राचीन सस्कृत नाटको मे भी निम्न जाति के एव साधारण पुरुषो और स्त्रियो की भाषा अपभ्रश व्यवहरित हुई है पर स्वतन्त्र अपभ्रश भाषा की रचनाएँ ८वी ९वी शताब्दी से मिलने लगी हैं और १७वी शताब्दी तक छोटी-बडी सैकडो रचनाएँ जैन कवियो की रचित आज भी प्राप्त हैं। कवि स्वयभू, पुष्पदत, धनपाल आदि अपभ्रश के जैन महाकवि हैं। जैनेतर रचित अपभ्रश साहित्य विशेष नही मिलता। क्योकि उन्होने प्रारम्भ मे ही सस्कृत को प्रधानता दे रखी थी, अत उनका सर्वाधिक साहित्य सस्कृत मे है।

अपभ्रश से उत्तर भारत की प्रान्तीय भाषाओ का निकास और विकास हुआ। १३वी शताब्दी से राजस्थानी, गुजराती और हिंदी मे साहित्य मिलने लगता है। यद्यपि १५वी शताब्दी तक अपभ्रश का प्रभाव उन रचनाओ मे पाया जाता है। उस समय तक राजस्थान और गुजरात मे तो एक ही भाषा बोली जाती थी जिसे राजस्थान वाले पुरानी राजस्थानी एव गुजरात वाले जूनी गुजराती कहते है। अत कई विद्वानो ने उसे 'मरु-गुर्जर' भाषा कहना अधिक उचित माना है। आगे चलकर राजस्थानी, गुजराती और हिन्दी मे प्रान्तीय भेद अधिक स्पष्ट होते गए। इन तीनो भाषाओ मे भी जैन विद्वानो ने प्रचुर रचनाएँ बनायी हैं। वैसे कुछ रचनाएँ सिन्धी, मराठी, बगला आदि अन्य प्रान्तीय भाषाओ मे भी जैनो की रचित प्राप्त है। हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती मे तो लाखो श्लोक परिमित गद्य और पद्य की जैन रचनाएँ प्राप्त हैं, एव प्राचीनतम रचनाएँ जैनो की ही प्राप्त हैं।

कथाओ का भण्डार-जैन साहित्य

लोकभाषा की तरह लोक-कथाओ और देशी सगीत को भी जैनो ने विशेषरूप से अपनाया। इसलिए लोककथाओ का भी बहुत बडा भण्डार जैन साहित्य मे पाया जाता है। लोकगीतो की चाल या तर्ज पर हजारो स्तवन, सज्झाय, ढाल आदि छोटे-बडे

काव्य रचे गये हैं। उन ढाल आदि के प्रारम्भ मे किस लोकगीत की तर्ज पर इस गेय रचना को गाना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए उस लोकगीत की कुछ प्रारम्भिक पक्तियाँ भी उद्धरित कर दी गई हैं, जिससे हजारो विस्मृत और लुप्त लोकगीतो की जानकारी मिलने के साथ-साथ कौनसा गीत कितना पुराना है इसके निर्णय करने मे भी सुविधाएँ हो गयी हैं।

एक-एक लोक-कथा को लेकर अनेको जैन रचनाएँ प्राकृत, सस्कृत, राजस्थानी आदि भाषाओ मे जैन विद्वानों ने लिखी हैं। इससे वे लोक-कथाएँ कौनसी कितनी पुरानी हैं, उनका मूल रूप क्या था? और कब-कब कैसा और कितना परिवर्तन उनमे होता रहा, इन सब बातो की जानकारी जैन कथा साहित्य से ही अधिक मिल सकती है। उन लोक-कथाओ को धर्म-प्रचार का माध्यम बनाने के लिए उनमे जैन-सिद्धातो और आचार-विचारो का पुट दे दिया गया है, जिससे जनता उन कथाओ को सुनकर पापो से बचे और कुछ अच्छे कार्यों की प्रेरणा प्राप्त करे। क्योकि कथाएँ बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी को समान रूप से प्रभावित कर सकती हैं, इसलिए जैन लेखको ने कथा सम्बन्धी साहित्य बहुत बडे परिणाम मे रचा है। और इससे जन-साधारण के जीवन मे सदाचार और नैतिकता का खूब प्रचार हुआ।

विशेषताएँ

जैन साहित्य की एक सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमे विकारवर्द्धक और वासनाओ को उभारने वाले साहित्य को स्थान नही मिला। इससे लोक-जीवन का नैतिक स्तर ऊँचा उठा, और भारत का गौरव बढा।

साहित्य सरक्षण मे जैनो का विशेष योगदान

जैन साहित्य की एक दूसरी विशेषता यह है कि वह निरन्तर लिखा जाता रहा और उसकी सुरक्षा का भी बहुत अच्छा प्रयत्न किया जाता रहा। इसलिए हस्तलिखित प्रतियो के 'ज्ञान भण्डार' जैनो के पास बहुत बडी व अच्छी सख्या मे सुरक्षित है। प्राचीन और शुद्ध प्रतियो की उपलब्धि उन ज्ञान भण्डारो की उल्लेखनीय विशेषता है।

जैसलमेर के ज्ञान भण्डार मे एक ताडपत्रीय प्रति १०वी शताब्दी की है। वैसे १२वी शताब्दी से १५वी शताब्दी तक की ताडपत्रीय प्रतियाँ जैसलमेर, पाटण, खभात, बडौदा आदि मे करीब एक हजार सुरक्षित हैं। १३वी शताब्दी से कागज पर ग्रन्थ लिखे जाने लगे, तब से अब तक की लाखो प्रतियाँ कागज की, प्राप्त हैं। इनमे केवल जैन साहित्य ही नही, अपितु बहुत-सा जैनेतर साहित्य भी है जो अन्यत्र कही नही मिलता और यदि मिलता है तो भी उन जैनेतर ग्रन्थो की प्राचीन व शुद्ध प्रतियाँ जैन भण्डारो मे जितनी व जैसी मिलती हैं, उतनी और वैसी जैनेतर सग्रहालयो मे नही मिलती। अर्थात् साहित्य के निर्माण मे ही नही, सरक्षण मे भी जैनो का उल्लेखनीय योगदान रहा है। सचित्र, स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी , पचपाठ, त्रिपाठ आदि अनेक शैलियो की विशिष्ट प्रतियाँ बहुत ही उल्लेखनीय है। लेखनकला और चित्रकला का जैनो ने खूब विकास किया। इस सम्बन्ध मे सौजन्य मूर्ति महान साहित्य सेवी स्वर्गीय पुण्यविजयजी लिखित 'भारतीय श्रमण सस्कृति अने लेखनकला' नामक गुजराती ग्रन्थ पठनीय है जो साराभाई नबाब, अहमदाबाद से प्रकाशित है।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन मे जैन साहित्य की उपयोगिता

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से जैन साहित्य का महत्व सबसे अधिक है क्योकि जैन मुनि निरन्तर घूमते रहते हैं और सब प्रान्तो मे धर्म-प्रचारार्थ और तीर्थ-यात्रा आदि के लिए उनका यातायात होता रहा है। उनका जीवन बहुत सयमित होने से उन्होने साहित्य निर्माण और लेखन मे बहुत समय लगाया। इसी का परिणाम है कि अलग-अलग प्रान्तो की भाषाओ मे जैन विद्वान बराबर लिखते रहे। इससे उन भाषाओ का विकास किस तरह होता गया, शब्दो के रूपो मे किस तरह का परिवर्तन हुआ, इसकी जानकारी जैन रचनाओ से जितनी अधिक मिलती है, उतनी जैनेतर रचनाओ से नही मिलती है, क्योकि एक तो वे इतनी सुरक्षित नही रही और प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की जैन रचनाएँ जिस तरह की मिलती हैं, वैसी जैनतरो की नही मिलती।

प्राकृत भाषा के दो प्रधान भेद हैं—शौरसेनी और महाराष्ट्री। शौरसेनी मे दिगम्बर और महाराष्ट्री मे श्वेताम्बर साहित्य रचा गया। इनमे अपभ्रंश और अपभ्रंश से उत्तर भारत की प्रान्तीय भाषाओ की शृंखला जुडती है।

उत्तर भारत की प्रान्तीय भाषाओ की तरह दक्षिण भारत की प्रमुख भाषा कन्नड और तमिल है। इन दोनो मे भी जैन साहित्य बहुत अधिक मिलता है। आचार्य भद्रबाहु दक्षिण भारत मे अपने सघ को लेकर पधारे क्योकि उत्तर भारत मे उन दिनो बहुत बडा दुष्काल पडा था। उनके दक्षिण भारत मे पधारने से उनके ज्ञान और त्याग तप से प्रभावित होकर दक्षिण भारत के अनेक लोगो ने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और उनकी सख्या क्रमश बढती ही गई। आस-पास के क्षेत्रो मे जैनधर्म का खूब प्रचार हुआ। जैन मुनि चातुर्मास के अतिरिक्त एक जगह रहते नही हैं, इसलिए उन्होने घूम-फिर कर जैनधर्म का सन्देश जन-जन मे फैलाया। लोक-सम्पर्क के लिए वहाँ जो कन्नड और तमिल भाषाएँ अलग-अलग प्रदेशो मे बोली जाती थीं, उनमे अत्यधिक साहित्य निर्माण किया। अत उन दोनो भाषाओ का प्राचीन और महत्वपूर्ण साहित्य जैनो का ही प्राप्त है। इस तरह उत्तर प्रदेश और दक्षिण भारत की प्रधान भाषाओ मे जैन साहित्य का प्रचुर परिमाण मे पाया जाना बहुत ही उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण है। भारतीय साहित्य को जैनो की यह विशिष्ट देन ही समझना चाहिये।

विषय वैविध्य

विषय वैविध्य की दृष्टि मे भी जैन साहित्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। क्योकि जीवनोपयोगी प्राय प्रत्येक विषय के जैन ग्रन्थ रचे गये हैं इसलिए जैन साहित्य केवल जैनो के लिए ही उपयोगी नही उसकी सार्वजनिक उपयोगिता है। व्याकरण, कोश, छन्द, अलकार, काव्य-शास्त्र, वैद्यक, ज्योतिष, मन्त्र-तन्त्र, गणित, रत्न-परीक्षा आदि अनेक विषयो के जैन ग्रन्थ प्राकृत, सस्कृत, कन्नड, तमिल और राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती मे प्राप्त हैं। इनमे से कई ग्रन्थ तो इतने महत्वपूर्ण हैं कि जैनेतरो ने भी उनकी मुक्तकठ से प्रशसा की है और उन्हे अपनाया है। जैन विद्वानो ने साहित्यक क्षेत्र मे बहुत उदारता रखी। किसी भी विषय का कोई अच्छा ग्रन्थ कही भी उन्हे प्राप्त हो गया तो जैनविद्वानो ने उसकी प्रति मिल सकी तो ले ली या खरीद ली, नही तो नकल करवाकर अपने भण्डार मे रख ली। जैनेतर ग्रन्थो का पठन-पाठन भी वे बराबर करते ही थे। अत आवश्यकता अनुभव करके उन्होने बहुत से जैनेतर ग्रन्थो पर महत्वपूर्ण टीकाएँ लिखी हैं। इससे उन ग्रन्थो का अर्थ या भाव समझना सबके लिए सुलभ हो गया और उन ग्रन्थो के प्रचार मे अभिवृद्धि हुई। जैनेतर ग्रन्थो पर जैन टीकाओ सम्बन्धी मेरा खोजपूर्ण लेख "भारतीय विद्या" के दो अको मे प्रकाशित हो चुका है। जैन ग्रन्थ मे बौद्ध और वैदिक अनेक ग्रन्थो के उद्धरण पाये जाते हैं। उनमे से कई जैनेतर ग्रन्थ तो अब उपलब्ध भी नही होते। बहुत से जैनेतर ग्रन्थो को अब तक बचाये रखने का श्रेय जैनो को प्राप्त है।

ऐतिहासिक दृष्टि से जैन साहित्य का महत्व—

ऐतिहासिक दृष्टि से जैन साहित्य बहुत महत्वपूर्ण है। भारतीय इतिहास, सस्कृति और लोक-जीवन सम्बन्धी बहुत ही महत्वपूर्ण सामग्री जैन ग्रन्थो व प्रशस्तियो एव लेखो आदि मे पायी जाती हैं। जैन आगम साहित्य मे दो-अढाई हजार वर्ष पहले का जो सास्कृतिक विवरण मिलता है, उसके सम्बन्ध में डा जगदीशचन्द्र जैन लिखित "जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज" नामक शोध-प्रबन्ध चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी से प्रकाशित हुआ है, उससे बहुत सी महत्वपूर्ण बातो का पता चलता है। जैन प्रबन्ध सग्रह, पट्टावलियाँ, तीर्थमालाएँ और ऐतिहासिक गीत, काव्य आदि मे अनेक छोटे-बडे ग्राम-नगरो, वहाँ के शासको, प्रधान व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है, जिनसे छोटे-छोटे गाँवो की प्राचीनता, उनके पुराने नाम और वहाँ की स्थिति का परिचय मिलता है। बहुत से शासको के नाम जिनका इतिहास मे कही भी नाम नही मिलते, उनका ग्रन्थो मे उल्लेख मिल जाता है। बहुत से राजाओ आदि के काल-निर्णय मे भी जैन सामग्री काफी सूचनाएँ देती है व सहायक होती है। इस दृष्टि से गुर्वावली तो बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

जैन साहित्य की गुणवत्ता

अब यहाँ कुछ ऐसे जैन ग्रन्थो का संक्षिप्त परिचय कराया जाएगा, जो अपने ढग के एक ही हैं। इनमे कई ग्रन्थ तो ऐसे भी हैं जो भारतीय साहित्य मे ही नही, विश्व साहित्य मे भी अजोड हैं। प्राचीन भारत मे ज्ञान-विज्ञान का कितना अधिक विकास हुआ था और आगे चलकर इसमे कितना ह्रास हो गया—इसकी कुछ झाँकी आगे दिये जाने वाले विवरणो से पाठको को मिल

जायेगी। ऐसे कई ग्रन्थो का तो प्रकाशन भी हो चुका है, पर उनकी जानकारी विरले ही व्यक्तियो को होगी। वास्तव में जैन साहित्य अब तक बहुत ही उपेक्षित रहा है और बहुत से विद्वानो ने तो यह गलत धारणा बना ली है कि जैन साहित्य, जैनधर्म आदि के सम्बन्ध में ही होगा, सर्वजनोपयोगी साहित्य उसमे नहीं-वत् है। पर वास्तव मे सर्वजनोपयोगी जैन साहित्य बहुत बडे परिमाण में प्राप्त है, जिससे लाभ उठाने पर भारतीय समाज का बहुत बडा उपकार होगा। बहुत-सी नयी और महत्वपूर्ण जानकारी जैन साहित्य के अध्ययन से प्रकाश मे आ सकेगी। सख्या की दृष्टि से ही नहीं, गुणवत्ता की दृष्टि से भी जैन साहित्य बहुत महत्वपूर्ण है।

जैन साहित्य के विशिष्ट ग्रन्थ

प्राकृत भाषा का एक प्राचीन ग्रन्थ "अगविज्जा" मुनि श्री पुण्यविजयजी सपादित प्राकृत ग्रन्थ परिषद् से प्रथम ग्रन्थाङ्क के रूप मे सन् १९५७ मे प्रकाशित हुआ है। ९ हजार श्लोक परिमित यह ग्रन्थ अपने विषय का सारे भारतीय समाज मे एक ही ग्रन्थ है। इसमे इतनी विपुल और विविध सास्कृतिक सामग्री सुरक्षित है कि उस समय के जैनाचार्यों का किन-किन विषयो का कैसा विशद ज्ञान था, यह जानकर आश्चर्य होता है। डा वासुदेवशरण अग्रवाल ने हिंदी मे और डा मोतीचन्द्र ने अँग्रेजी मे इस ग्रन्थ का जो विवरण दिया है, उससे इसका महत्व स्पष्ट हो जाता है। निमित्त शास्त्र के ८ प्रकारो मे पहली 'अगविद्या' है। अग्रवालजी ने लिखा है कि "अगविद्या" क्या थी? इसको बताने वाला एकमात्र प्राचीन ग्रन्थ यही जैन साहित्य मे 'अगविज्जा' के नाम से बच गया है। यह अगविज्जा नामक प्राचीन शास्त्र सास्कृतिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण सामग्री से परिपूर्ण है। अगविज्जा के आधार पर वर्तमान प्राकृत कोशो मे अनेक नये शब्दो को जोडने की आवश्यकता है।"

मुनि पुण्यविजयजी ने जो ग्रन्थ के अन्त मे शब्दकोश दिया है, उसमे हजारो नाम व शब्द आये हैं, जिनमे से बहुतो का सही अर्थ बतलाना भी आज कठिन हो गया है। मुनिश्री ने लिखा है कि "सामान्यतया प्राकृत वाडमय मे जिन क्रियापदो का उल्लेख सग्रह नही हुआ है, उनका सग्रह इस ग्रन्थ मे विपुलता से हुआ है जो प्राकृत समृद्धि की दृष्टि से बडे महत्व का है। फलादेश विषयक यह ग्रन्थ एक पारिभाषिक ग्रन्थ है।"

डा अग्रवालजी ने इसे कुषाण-गुप्त युग की सन्धि काल का बतलाया है। अर्थात् यह ग्रन्थ बहुत पुराना है। इस तरह के न मालूम कितने महत्वपूर्ण ग्रन्थ काल के गाल मे समा गये हैं।

प्राकृत भाषा का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, सघदासगणि रचित 'वसुदेव हिन्डी।' यह भी तीसरी और पाँचवीं शताब्दी के बीच की रचना है। इसमे मुख्यत तो श्रीकृष्णजी के पिता वसुदेव के भ्रमण और कई विवाहो का वर्णन है, पर इसमे प्रासगिक रूप मे अनेक पौराणिक और लौकिक कथाओ का समावेश भी पाया जाता है। पाश्चात् विद्वानो और डा जगदीशचन्द्र जैन तथा डा साडसेरा आदि के अनुसार यह अप्राप्त बृहतकथा नामक लुप्त ग्रन्थ की बहुत अशो मे पूर्ति करता है। सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से इसका बहुत ही महत्व है। इस सम्बन्ध मे दो बडे-बडे शोध प्रबन्धात्मक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। 'वसुदेव हिन्डी' का मध्यम खण्ड उत्तरकालीन है।

प्राकृत भाषा का तीसरा उल्लेखनीय ग्रन्थ है "ऋषिभाषित।" इसमे कई ऋषियो के वचनो का सग्रह है। ये ऋषि जैन, बौद्ध और वैदिक तीनो धर्मों के हैं। अपने ढग का यह एक ही ग्रन्थ है। इसी तरह हरिभद्रसूरि का "धूर्ताख्यान" भी प्राकृत भाषा का अनूठा ग्रन्थ है। ये दोनो ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

भारतीय मुद्राशास्त्र सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है "द्रव्यपरीक्षा।" इसकी रचना अलाउद्दीन खिलजी के कोषाध्यक्ष या भण्डारी खरतरगच्छीय जैन श्रावक 'ठक्कुर फेरु' ने की है। उस समय की प्रचलित सभी मुद्राओ के तौल, माप, मूल्य आदि की जो जानकारी इस ग्रन्थ मे दी गयी है, वैसी और किसी भी ग्रन्थ मे नही मिलती। ठक्कुर फेरु ने इसी तरह धातोत्पत्ति, वास्तुसार गणितसार, ज्योतिषसार, रत्नपरीक्षा आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थ बनाये हैं। इन सबकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति की खोज मैंने ही की

और मुनि जिनविजयजी द्वारा सभी ग्रन्थो के एक सग्रह-ग्रन्थ मे प्रकाशित करवा दिया है। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से यह प्राप्य है।

सस्कृत भाषा मे एक विलक्षण ग्रन्थ है "पार्श्वाभ्युदय काव्य", जिसकी रचना आचार्य जिनसेन ने की है। इसमे मेघदूत के समग्र चरणो की पादपूर्ति रूप मे भगवान पार्श्वनाथ का चरित्र दिया गया है। कालिदास के पद्यो के भावो को आत्मसात् करके ऐसा काव्य सबसे पहले समग्रपादपूर्ति के रूप मे बनाकर ग्रन्थकार ने अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है।

विश्व साहित्य मे अजोड अन्य जैन सस्कृत ग्रन्थ है "अष्टलक्षी"। इसे सम्राट अकबर के समय मे महोपाध्याय समयसुन्दरजी ने सवत् १६४९ मे प्रस्तुत किया था। इस आश्चर्यकारी प्रयत्न से सम्राट बहुत ही प्रसन्न हुआ। इस ग्रन्थ मे **"राजानो ददते सौख्यम्"** इन आठ अक्षरो वाले वाक्य के १० लाख से भी अधिक अर्थ किये हैं। रचयिता ने लिखा है कि कई अर्थ सगति मे ठीक नही बैठे तो भी दो लाख शब्दो को बाद देकर ८ लाख अर्थ तो इसमे व्याकरणसिद्ध हैं ही। इसीलिए इसका नाम "अष्टलक्षी" रखा है। यह ग्रन्थ देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, से प्रकाशित 'अनेकार्थ रत्न मजूषा' मे प्रकाशित हो चुका है।

सस्कृत का तीसरा अपूर्व ग्रन्थ है—'सप्त-सन्धान' महाकाव्य। यह १८वी शताब्दी मे महान् विद्वान उपाध्याय मेघविजय रचित है। इसमे ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर इन पाँच तीर्थंकरो और लोकप्रसिद्ध महापुरुष द्वय—राम और कृष्ण इन सातो महापुरुषो की जीवनी एक साथ मे चलती है। यह रचना विलक्षण तो है ही। कठिन भी इतनी है कि बिना टीका के सातो महापुरुषो से सम्बन्धित प्रत्येक श्लोक की सगति बैठाना विद्वानो के लिए भी सम्भव नही होता। यह महाकाव्य टीका के साथ पत्राकार रूप मे प्रकाशित हो चुका है। वैसे द्विसधान, पचसधान आदि तो कई काव्य मिलते हैं, पर 'सप्तसधान' ग्रन्थ विश्वभर मे एक ही है। ग्रन्थकार ने ऐसा उल्लेख किया है, कि ऐसा काव्य पहले आचार्य हेमचन्द्र ने बनाया था, पर आज वह प्राप्त नही है।

दक्षिण के दिगम्बर जैन विद्वान हसदेव रचित 'मृगपक्षी शास्त्र' भी अपने ढग का एक ही ग्रन्थ है। इसमे पशु-पक्षियो की जाति एव स्वरूप का निरूपण है। इस ग्रन्थ का विशेष निरूपण मेरी प्रेरणा से श्री जयत ठाकुर ने गुजराती मे लिखकर "स्वाध्याय' पत्रिका मे प्रकाशित कर दिया है। इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि बडौदा के प्राच्य विद्या मदिर मे है। पशु-पक्षियो सम्बन्धी ऐसी जानकारी अन्य किसी प्राचीन ग्रन्थ मे नही मिलती।

कन्नड साहित्य का एक विलक्षण ग्रन्थ है "सिरि भूवलय"। यह अको मे लिखा गया है। कहा जाता है कि इसमे अनेक ग्रन्थ सकलित हैं एव अनेक भाषाएँ प्रयुक्त हैं। इसका एक भाग जैन मित्र मडल, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी के समय तो इस ग्रन्थ के महत्व मे सम्बन्ध मे काफी चर्चा हुई है पर उसके बाद उसका पूरा रहस्य सामने नही आ सका।

हिन्दी भाषा मे एक बहुत ही उल्लेखनीय रचना है "अर्द्धकथानक"। १७वी शताब्दी के जैन कवि बनारसीदास जी ने अपने जीवन की आत्मकथा बहुत ही रोचक रूप मे इस ग्रन्थ मे दी है। इस आत्मकथा की प्रशसा श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने मुक्त कठ से की है।

इस तरह के और भी अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ जैन साहित्य-सागर मे प्राप्त हैं जिनसे भारतीय साहित्य अवश्य ही गौरवान्वित हुआ है। वास्तव मे इस विषय पर तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही लिखा जाना अपेक्षित है। यहाँ तो केवल सक्षिप्त झाँकी ही दी जा सकी है।
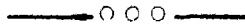
बीसवीं शताब्दी में स्था. जैन साहित्य के महत्वपूर्ण प्रकाशन

उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी महाराज

भारतीय साहित्य रूपी सुमनवाटिका को सजाने सवारने का जितना कार्य जैन मनीषियो ने किया है, सभव है, उतना अन्य किसी सप्रदाय विशेष के विज्ञो ने नही किया। उन्होने ज्ञान-विज्ञान, धर्म और दर्शन, साहित्य और कला के क्षेत्र मे जो रग-बिरगे चटकीले फूल खिलाए है, वे अपने असीम सौंदर्य और सौरभ मे जन-जन के मन को आकर्षित करते रहे है। जैन साहित्य जितना प्रचुर है, उतना ही प्राचीन भी जितना परिमार्जित है उतना ही विषय-वैविध्यपूर्ण भी, जितना प्रौढ है, उतना ही विविध शैली सपन्न भी। इसमे तनिक भी सशय नही कि जब कभी भी निष्पक्ष दृष्टि से सपूर्ण भारतीय साहित्य का इतिहास लिखा जाएगा, उसका मूल आधार जैन साहित्य ही होगा। आचार्य रामचद्र शुक्ल जैसे आलोचक साधन-सामग्री के अभाव मे यदि प्रस्तुत साहित्य को 'धार्मिक नोट्स' मात्र कहकर उपेक्षित करते हैं तो वह साहित्य की कमी नही, पर अन्वेषण की ही कमी कही जाएगी, किंतु वर्तमान अन्वेषण के तथ्यो के आधार से यह मानना ही पडेगा कि भारतीय चिन्तन के क्षेत्र मे जैन साहित्य का स्थान विशिष्ट है। जितना गौरव शुद्ध साहित्य का है, उतना ही महत्व धर्म सप्रदाय के पास सुरक्षित चरित्र-साहित्य राशि का भी है।

जैन साहित्यकार आध्यात्मिक परपरा के सृजक रहे है। आत्म लक्ष्यी सस्कृति मे गहरी आस्था रखने के बावजूद भी वे देश काल एव तज्जन्य परिस्थितियो के प्रति अनपेक्ष नही रहे है उनकी ऐतिहासिक दृष्टि हमेशा खुली रही है। उनका अध्यात्मवाद वैयक्तिक होकर भी जन-जन के कल्याण की मगलमय भावना से ओतप्रोत रहा है। यही कारण है कि उनके द्वारा सप्रदाय मूलक साहित्य का निर्माण करने पर भी उसमे सास्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथ्य इतने अधिक है कि वैज्ञानिक पद्धति से उनका सर्वेक्षण किया जाए तो भारतीय इतिहास मे कई तिमिराच्छन्न पक्ष आलोकित हो उठेगे।

जैन लेखको ने मौलिक साहित्य के निर्माण के साथ ही विभिन्न ग्रथो पर सारगर्भित एव पाडित्यपूर्ण टीकाएँ लिखकर साहित्य की अविस्मरणीय सेवा व सुरक्षा की है, वह कभी भी विस्मृत नही की जा सकती। समीक्षको ने जैन साहित्य को पिष्टपेषण से पूर्ण माना है। यह सत्य है कि औपदेशिक वृत्ति के कारण जैन साहित्य मे विषयान्तर से परम्परागत बातो का विवेचन-विश्लेषण हुआ है, किंतु सपूर्ण जैन साहित्य मे पिष्टपेषण नही है और जो पिष्टपेषण हुआ है, वह केवल लोकपक्ष की दृष्टि से ही नही, अपितु भाषा-शास्त्र की दृष्टि से भी बडा महत्वपूर्ण है। जैन लेखको ने भारतीय चिन्तन मे नैतिक, धार्मिक, दार्शनिक मान्यताओ को जनभाषा की समुचित शैली मे ढालकर, पिरोकर, सँवारकर राष्ट्र के आध्यात्मिक स्तर को उन्नत, समुन्नत किया। उन्होने साहित्य परपरा को सस्कृत भाषा के कूप-जल के निकालकर भाषा के बहते प्रवाह मे अवगाहन कराया, अभिव्यक्ति के नए-नए उन्मेष घोषित किए।

आगम साहित्य

जैन धर्म, दर्शन, साहित्य और सस्कृति का मूल आगम है। आगम साहित्य की सुदृढ नींव पर ही जैन दर्शन व सस्कृति का सुनहरा प्रसाद खडा है। जैन आगम तीर्थंकर भगवान महावीर की विमल वाणी का अपूर्व खजाना है। समय-समय पर आगम के गुरु गभीर रहस्यो को स्पष्ट करने के लिए महामनीषी जैनाचार्यों द्वारा आगम पर व्याख्याएँ लिखी गई। नियुक्तियाँ, भाष्य, चूर्णियाँ, टीकाएँ और टब्बाएँ-यह सारा व्यवस्था साहित्य प्राचीन युग की देन है।

इस शताब्दी मे स्थानकवासी मुनियो के द्वारा समय-समय पर आगम साहित्य पर जो कार्य हुआ है, उस सबंध मे संक्षेप में चिन्तन कर रहे हैं। स्थानकवासी आचार्य धर्मसिंह मुनि ने १८ वी शताब्दी मे २७ आगमों पर बालावबोध, टब्बे लिखे थे। वे टब्बे मूल स्पर्शी अर्थ को स्पष्ट करने वाले थे, पर अभी तक उन टब्बो मे से एक भी टब्बा प्रकाशित नहीं हुआ है। आचार्य अमोलक ऋषिजी म , स्थानकवासी परपरा के एक लब्ध प्रतिष्ठित आचार्य थे। आपने ३२ आगमों का मूल पाठ के साथ हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया। तीन वर्ष के स्वल्प समय में ही ३२ आगमो के अनुवाद का भगीरथ कार्य आपने किया और वे सारे अनुवाद हैदराबाद से प्रकाशित हुए। इसके पश्चात आचार्य आत्मारामजी म जो श्रमण सघ के प्रथम आचार्य थे, उन्होने अनुवाद के साथ ही हिन्दी मे विस्तृत विवेचन लिखा। आपके द्वारा आचाराग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, अनुत्तरोपपातिक, उपासक दशाग अनुयोगद्वार, अतकृत दशाग स्थानाग आदि पर विवेचन किया गया है, जो आगम के मर्म को समझने मे बहुत ही उपयोगी है। आचार्य श्री जवाहरलालजी म के तत्वावधान मेसूत्रकृताग के प्रथम श्रुतस्कन्ध की टीका का अनुवाद हुआ और द्वितीय श्रुत स्कन्ध के मूल का अनुवाद के साथ चार भाग प्राकशित हुए। आचार्य श्री हस्तीमलजी म ने दशवैकालिक, नन्दी, प्रश्न व्याकरण आदि आगमो के अनुवाद किए हैं। प्रसिद्ध वक्ता श्री सौभाग्यमलजी म ने आचाराग का ज्ञान मुनिजी ने विपाक सूत्र और प्रज्ञापना का अनुवाद और विवेचन लिखा है। प कन्हैयालालजी 'कमल' ने ठाणांग चार छेद तथा चारो अनुयोगो का वर्गीकरण कर प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया है। शोधार्थियो के लिए विविध परिशिष्ट और टिप्पण दिए हैं, वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। अनेक आगमो के शुद्ध मूलपाठ सहित सस्करण भी आपने निकाले है। प विजयमुनिजी शास्त्री ने अनुत्तरोपपातिक का, प मुनि हेमचन्द्रजी ने प्रश्न व्याकरण सूत्र का, श्री अमरमुनिजी ने व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र का, श्री रतनमुनिजी ने राजप्रश्नीय सूत्र का, मुनि श्री प्रवीण ऋषिजी ने प्रश्न व्याकरण सूत्र का, राजेन्द्र मुनिजी ने उत्तराध्ययन सूत्र और जीवाभिगम का तथा महासति डॉ दिव्यप्रभाजी ने अन्तकृदशाग सूत्र का, डॉ मुक्तिप्रभाजी ने अनुत्तरौपपातिक दशाग सूत्र का, साध्वी उमरावकुँवरजी 'अर्चना' ने नन्दी सूत्र का, साध्वी सुप्रभाजी ने आवश्यक सूत्र का, साध्वी पुष्पवतीजी ने दशवैकालिक का अनुवाद और विवेचन किया है। ये अनुवाद और विवेचन आधुनिक भाव, भाषा और शैली मे किये गये है। कविरत्न श्री अमरमुनिजी ने श्रमण सूत्र व सामयिक सूत्र पर सुन्दर भाष्य लिखे हैं। उन्होंने सभाष्य निशीथ सूत्र का भी सुन्दर सम्पादन किया है। लेखक ने भी दशाश्रुत स्कन्ध के आठवे अध्ययन कल्पसूत्र पर सम्पादन कर शोध प्रधान विवेचन लिखा है। युवाचार्य मधुकर मुनिजी के सम्पादकत्व मे अनेक आगमो का प्रकाशन हुआ है तथा पू घासीलालजी म ने ३२ आगमो का अनुवाद तथा सस्कृत भाषा मे टीकाएँ निर्माण कीं। ३२ आगमो पर एक साथ टीका लिखने वाले ये सर्वप्रथम आचार्य हैं। मुनि सन्तबालजी ने आचाराङ्ग, दशवैकालिक और उत्तराध्ययन के अनुवाद प्रकाशित किये हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक स्थानो से आगम प्रकाशित हैं।

स्थानकवासी समाज के पडित वर्ग ने भी आगम साहित्य पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। प दलसुखभाई मालवणिया ने स्थानाङ्ग का सयुक्त अनुवाद प्रकाशित किया है। अनेक स्थलो पर महत्वपूर्ण तुलनात्मक दृष्टि से टिप्पण भी दिये हैं जो उनके पांडित्य को स्पष्ट करते हैं। श्रीचन्दजी सुराणा ने आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, प शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने ज्ञाता धर्मकथा, प्रश्न व्याकरण सूत्र, डॉ छगनलालजी शास्त्री ने उवासगदसाओ, ओपपातिक सूत्र, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, घेवरचन्दजी बाठिया ने भगवती सूत्र, प हीरालालजी शास्त्री ने स्थानाग सूत्र, समवायाग सूत्र आदि पर सविस्तृत विवेचन लिखे है। मुनिश्री पुप्फभिक्खुजी ने सुत्तागमे के नाम से दो भागो मे मूल बत्तीस आगम प्रकाशित किये और अत्थागमे के तीन भागो मे ११ अगो का अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। श्री प्रेम जिनागम प्रकाशन समिति घाटकोपर बम्बई से, सेठिया जैन लाइब्रेरी बीकानेर से, सस्कृति रक्षक सघ सैलाना से भी अनेक आगमो के अनुवाद व मूल प्रकाशित हुए।

जैन आगम साहित्य का परिचय देने हेतु जैन साहित्य का बृहद इतिहास भाग १,२,३ वाराणसी से प्रकाशित हुआ है तथा लेखक ने ही जैन आगम साहित्य-मनन और मीमांसा ग्रन्थ और ३२ आगमो पर व धर्म कथानुयोग पर सविस्तृत प्रस्तावनाए भी लिखी हैं।

दार्शनिक साहित्य

दर्शन मानव का दिव्य चक्षु है। मानव अपने चरम चक्षु से जिसे देख नहीं सकता, उसे वह दर्शन चक्षु से देखता है। दर्शन की

धारा अत्यधिक प्राचीन है। प्राचीन जैन दार्शनिकों के चाहे वे श्वेताम्बर रहे हो या दिगम्बर,शताधिकग्रन्थो का निर्माण किया है। जैनियों का दार्शनिक साहित्य इतना विस्तृत और इतना समृद्ध है कि एक व्यक्ति अपने जीवन मे सभी ग्रन्थों का पारायण नहीं कर सकता। इस शताब्दी में स्थानकवासी मुनियों के द्वारा और विज्ञो के द्वारा जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार है —आचार्य अमोलक ऋषिजी ने बहुत ही सरल भाषा में जैन तत्व प्रकाश ग्रन्थ मे जैन धर्म और दर्शन का परिचय दिया है। आचार्य आत्मारामजी म. ने जैन तत्व कलिका ग्रन्थ मे जैन दर्शन पर विवेचन किया है। आचार्य आनन्द ऋषिजी म ने स्याद्वाद सिद्धान्त, एक परिशीलन ग्रन्थ में स्याद्वाद पर विस्तार से विश्लेषण किया है। उपाध्याय फूलचन्दजी श्रमण ने आत्मवाद, नयवाद आदि ग्रन्थ लिखे हैं। मरुधर केशरी मिश्रीलालजी म ने कर्मग्रन्थ पच सग्रह का सम्पादन कर उस पर विवेचन लिखा है। उपाध्याय अमर मुनिजी ने जैनत्व की झांकी चिन्तन की मनोभूमि अहिंसा तत्त्व दर्शन, पचशील आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। लेखक ने 'जैन दर्शन—स्वरूप और विश्लेषण' धर्म, दर्शन, मनन और मूल्याकन, जैन धर्म दर्शन एक परिचय, चिन्तन के विविध आयाम, जैन नीति शास्त्र एक परिशीलन, प्रभृति अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उपाध्याय केवल मुनि ने तत्वार्थ सूत्र पर हिन्दी विवेचन लिखा है। आचार्य नानालालजी ने जिनधम्मो ग्रन्थ लिखा है।

प सुखलालजी जो जैन दर्शन के मूर्धन्य मनीषी रहे, उन्होने दर्शन और चिन्तन, कर्मग्रन्थ, तत्वार्थसूत्र, सन्मति तर्क पर विवेचन आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। प दलसुख मालवणिया का आगम युग का जैन दर्शन, गणधरवाद आदि, प शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने निर्ग्रन्थ—प्रवचन भाष्य, प्रमाण नय तत्वालोक, प्रमाण मीमांसा, जैन तर्क भाषा आदि ग्रन्थो पर विवेचन लिखा है। डॉ मोहनलाल मेहता ने जैन दर्शन ग्रन्थ लिखा है और भी अनेक छुटपुट ग्रन्थ विभिन्न लेखको के द्वारा प्रकाशित हुए हैं। अनेक पुस्तके भी प्रकाशित हुई हैं।

प्रवचन साहित्य

विशेष वचन प्रवचन हैं। स्थानकवासी श्रमण और श्रमणियों का प्रवचन साहित्य बहुत ही विस्तृत है। आचार्य श्री जवाहरलालजी म के प्रवचनो का सग्रह जवाहर किरणावली भाग १-३३ भगवती सूत्र के व्याख्यान भाग ५ प्रकाशित हुए हैं। जैन दिवाकरजी चौथमलजी म के प्रवचनो का सकलन दिवाकर दिव्य ज्योति भाग १ से २०, पजाब केशरी प्रेमचन्दजी म के कथनो का सकलन प्रेमसुधा भाग ११२, आचार्य आनन्द ऋषिजी म—आनन्द प्रवचन भाग १ से १२, आचार्य हस्तीमलजी म—गजेन्द्र व्याख्यानमाला और गजेन्द्र प्रवचन माला, उपाध्याय पुष्कर मुनिजी म—धर्म का कल्पवृक्ष जीवन के आगन मे, श्रावक धर्म दर्शन, ब्रह्मचर्य विज्ञान, जैन धर्म मे दान, सस्कृति रा सुर मिनख पणा री मोल, राम राज, आदि अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। मरुधर केशरी मिश्रीमलजी म के प्रवचन प्रभा जैन धर्म मे तत्व, मिश्री की डलियाँ आदि ८-१० पुस्तके प्रकाशित हुई हैं। युवाचार्य मधुकर मुनिजी के साधना सूत्र, अन्तर की ओर भाग २ प्रकाशित हुए हैं। कवि नानचन्दजी म के मानवतानु मीठू जगत भाग ३, शतावधानी रत्नचन्द्रजी म का रत्न प्रवचन माला, केशवलालजी म का अध्यात्म प्रवचन, गिरीश मुनिजी के गिरीश गर्जना, गिरी गुजार, उपाध्याय लालचन्दजी का प्रवचन कलश, आचार्य नानालालजी म का पावस प्रवचन, उपाचार्य गणेशीलालजी म का प्रवचन साहित्य भी प्रकाशित हुआ है।

सन्तो की तरह साध्वीवृन्द का प्रवचन साहित्य भी पर्याप्त मात्रा मे प्रकाशित हुआ है। महासती उज्ज्वल कुमारीजी की उज्ज्वलवाणी भाग २, उज्ज्वल प्रवचन, श्रावक धर्म, जीवन धर्म आदि पुस्तके प्रकाशित हुई हैं। महासती उमरावकुवरजी 'अर्चना' के आम्र मजरी, अर्चना के आलोक, और अर्चना के फूल। महासती पुष्पवतीजी का पुष्प पराग, महासती प्रभावतीजी का प्रवचन प्रभा, महासती लीलावतीबाई स्वामी की तो तेतली पुत्र, मृगापुत्र आदि अनेक पुस्तके निकली हैं। महासती वसुमती बाई स्वामी की वसुवाणी, महासती ताराबाई स्वामी की तारावाणी है। महासती शारदाबाई स्वामी की शारदा शिखर, शारदा शिरोमणि, शारदा सिद्धि आदि अनेक पुस्तके प्रकाशित हैं। प्रवचन-साहित्य मे पुनरावृत्ति भी पर्याप्त मात्रा मे हुई है तथापि यह साहित्य अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है।

सौभाग्यमलजी म का सौभाग्य सुधा, विनयचन्द्रजी म का जीवन का दिव्य आनन्द, प्रवर्तक उमेश मुनिजी का उठो! बढ़ो!, युवाचार्य शिवमुनिजी का शिववाणी, महेन्द्र मुनिजी म का अन्तर दृष्टि, उपाध्याय अमर मुनि की उपासक आनन्द, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह-दर्शन आदि अनेक पुस्तके प्रकाशित हुईं।

काव्य साहित्य

पद्य साहित्य, साहित्य की वह विधा है जो सहज ही स्मृति पटल पर अंकित हो जाती है। जैन श्रमणो ने अतीत काल मे भी काव्य, रासो, भजन आदि के रूप मे पद्य साहित्य लिखा है और वह पद्य लिखने की धारा अविच्छिन्न रूप से आज भी प्रवहमान है। स्थानक वासी परपरा के प्राचीन कवियो मे आचार्य जयमलजी , आचार्य रामचन्द्रजी, आचार्य जीतमलजी, मुनि नेमीचन्द्रजी, मुनि रामचद्रजी आदि अनेक मुनियो का पद्य साहित्य मिलता है। अमोलक-ऋषिजी म ने धर्मवीर जिनदास चरित्र व अनेक चौपाइयो का निर्माण किया। कविरत्न तिलोक ऋषिजी म के द्वारा रचित काव्य सग्रह श्री तिलोक काव्य कल्पतरु भाग १ से ४, आचार्य माधव मुनिजी द्वारा बहुत ही भावपूर्ण कविताएँ लिखी गई हैं, वे विभिन्न पुस्तको मे प्रकाशित हैं। पूज्य खूबचन्दजी म की कविताओ का सकलन 'खून की कविता' के रूप मे प्रकाशित है। मारवाडी चौथमलजी म ने तूर्पस्तवनावली, नवरत्न किरणावली, मारवाडी चैन मुनि ने सती अजना, चन्दन, मलयगिरि, जैन गीता और मेवाडीचौथमलजी म ने भीमसेन-हरिसेन, लीलावत झकारा, खटपटिया सेठ, आदि कई चरित्र लिखे हैं। जैन दिवाकर चौथमलजी म ने आदर्श रामायण, भगवान नेमीनाथ और श्रीकृष्ण आदि तीस-चालीस चरित्र ग्रन्थ लिखे हैं और शताधिक भजनो का भी निर्माण किया है। उनके भजन सरल होने के कारण अत्यधिक लोकप्रिय भी हुए। उपाध्याय केवल मुनिजी ने शताधिक भजनो का निर्माण किया, जो गीत गुजार के नाम से प्रसिद्ध है और कुछ चरित्र ग्रन्थ भी लिखे हैं। कवि-रत्न अमर मुनिजी ने सेठ सुदर्शन और सत्य हरिश्चन्द्र पर खण्ड काव्य लिखे हैं और सगीतिका अमर, पुष्पान्जलि, चिन्तन के कण आदि मे उनके भजन और पुस्तके है। उपाध्याय पुष्कर मुनिजी ने वैराग्य मूर्ति जम्बूकुमार, ज्योतिर्धर जैनाचार्य, महाभारत के प्रेरणा प्रदीप, विमल, विभूतियाँ, श्रीमद् और अमर सूरि काव्यम् आदि आपके खण्ड काव्य हैं। पुष्कर पीयूष, भक्ति के स्वर, पुष्कर प्रभा आदि आपके भजनो के सकलन है। चन्दनमुनिजी सफल कवि हैं। उन्होने अनेक विशालकाय चरित्र ग्रथ लिखे हैं।

दोहावली

कवि नानचन्दजी म , शतावधानी रतनचन्दजी म , सन्तबालजी, आदि अनेक मेधावी सन्तो ने भी काव्य और भजन लिखे हैं।

श्री गणेशमुनि शास्त्री के द्वारा सरल भावना बोध, वाणी वीणा, विश्व ज्योति महावीर, सुबह के भूले, अनगूजे स्वर, प्रकृति के चौराहे पर, महक उठा कवि सम्मेलन, आदि काव्य ग्रन्थ हैं। श्री राजेन्द्र मुनि के सत्यशील की गौरव-गाथा, भक्ति भारती, राजेन्द्र ज्योति, आदि काव्य ग्रन्थ हैं। दिनेश मुनिजी के राग एक भजन अनेक, श्री अमर गुरु चालीसा, श्री पुष्कर गुरु चालीसा, आदि भजन व काव्य सग्रह हैं। महासती प्रभावतीजी के जीवन की चमकती प्रभा, प्रभा पीयूष घट, सुधा सिन्धु, साहस का सम्बल, पुरुषार्थ का फल, कल्पतरु, प्रभा पुन्ज, आदि काव्य ग्रथ हैं।

इस प्रकार विपुल मात्रा मे काव्य और भजनो के सकलन प्रकाशित हुए है।

शोध प्रबन्ध और निबन्ध-साहित्य

निबन्ध गद्य की कसौटी है। आधुनिक युग मे अनेक स्थलो से अनेक शोध प्रबन्ध और निबन्ध साहित्य प्रकाशित हुआ है। कवि अमर मुनिजी की पण्णा समिक्खए धम्म भाग १-२, सागर, नौका और नाविक आदि अनेक पुस्तके, निबन्धो की प्रकाशित हुई हैं। विजय मुनि शास्त्री की गुलाब और काटे, पतझर और बसन्त, आदि कई पुस्तके प्रकाशित हैं। लेखक ने भी भगवान महावीर एक अनुशीलन, ऋषभदेव एक परिशीलन, श्रीकृष्ण एक अनुशीलन, भगवान पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन, जैन आधार सिद्धान्त और स्वरूप, साहित्य और सस्कृति, धर्म और दर्शन, सस्कृति के अचल मे, जैन नीत शास्त्र एक परिशीलन आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। गणेशमुनि ने आधुनिक विज्ञान और अहिंसा, अहिंसा की बोलती मीनारे, इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन आदि ग्रन्थ लिखे हैं। राजेन्द्र मुनिजी ने भावना भवनाशिनी, जैन धर्म, भगवान महावीर जीवन और दर्शन, चौबीस तीर्थंकर एक पर्यवेक्षण आदि ग्रन्थ लिखे हैं। जैन मनीषियो द्वारा अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। डॉ सागरमलजी का जैन बौद्ध और गीता के आचार दर्शनो की तुलनात्मक अध्ययन भाग १-२ बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

कथा-साहित्य

कथा साहित्य की सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है। इस विधा में सबसे अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी म ने जैन कथाए नाम से एक सौ ग्यारह भाग लिखे हैं, जिनमे हजारो कथाए हैं। प्राचीन कथाओ को नवीन रूप से चित्ताकर्षक शैली मे प्रस्तुत किया गया है। ये कथा सग्रह २० हजार पृष्ठों में मुद्रित हैं। युवाचार्य मधुकर मुनिजी ने जैन कथा माला के नाम से ५० भाग प्रकाशित किये हैं। उपाध्याय केवल मुनिजी ने और कवि अशोक मुनिजी ने प्राचीन कथाओ को आधार बनाकर उपन्यास शैली मे ३०-४० पुस्तके लिखी हैं। प्रवर्तक रमेश मुनिजी ने प्रताप कथा कौमुदी के नाम से अनेक भाग प्रकाशित किये हैं। लेखक ने भी कथा-साहित्य की ४०-५० पुस्तके लिखी हैं। भगवान महावीर युग की प्रतिनिधि कथाए, बूद मे समाया सागर, प्रेरणा प्रदीप, सत्य-शिव, जलते दीप, खिलती कलिया मुस्काते फूल, कीचड और कमल, धरती का देवता, सूली और सिंहासन, धर्मचक्र, पुण्य पुरुष आदि प्रमुख कृतिया हैं। उनमे हजारो विश्व की विभूतियो के पावन प्रसग भी हैं। गणेशमुनि शास्त्री ने चरित्र का चमत्कार, विजय, शीशमहल, भटकते कदम, आशीर्वाद आदि अनेक उपन्यास लिखे हैं। महासती पुष्पवतीजी ने फूल और भवरा, सती का शाप, किनारे-किनारे, कचन और कसौटी आदि अनेक उपन्यास लिखे हैं।

अभिनन्दन ग्रन्थ एव स्मृति ग्रन्थ

गुणियो का अभिनन्दन करना मानव के गुणानुराग का प्रतीक है। इस शताब्दी मे अनेक सन्त प्रवरो के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। अभिनन्दन ग्रन्थो के माध्यम से जैन धर्म और दर्शन, समाज और सस्कृति, इतिहास और परपरा, ध्यान और योग, कला और साहित्य पर विपुल और उत्कृष्ट सामग्री का सकलन और आकलन हुआ है। उक्त प्रमुख अभिनन्दन ग्रन्थो के नाम इस प्रकार है —मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, मरुधर केशरी मिश्रीमल अभिनन्दन ग्रन्थ, आचार्य आनन्द ऋषि अभिनन्दन ग्रन्थ, जैन दिवाकर चौथमल स्मृति ग्रन्थ, श्री तिलोक रत्न अभिनन्दन ग्रन्थ, कवि नानचन्द स्मृति ग्रन्थ, रत्न गुरु स्मृति ग्रन्थ, मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ, मुनि प्रताप अभिनन्दन ग्रन्थ, साध्वी रत्न पुष्पवती अभिनन्दन ग्रन्थ, महासती जसकुवर अभिनन्दन ग्रन्थ, महासती उमराव कुवर अर्चना अभिनन्दन ग्रन्थ, युवाचार्य मधुकर स्मृति ग्रन्थ, उपाध्याय पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ, आचार्य रूपचन्द स्मृति ग्रन्थ आदि।

इतिहास और जीवन-चरित्र

इतिहास के द्वारा हमे अपने महापुरुषो के पवित्र चरित्र का परिज्ञान होता है। अनेक स्थानो से अपने-अपने पूर्वाचार्यों के जीवन चरित्र प्रकाशित हैं तथा जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग ४ प्रकाशित हुए हैं। चारो भागो मे ऋषभदेव से लेकर लोकाशाह तक प्रामाणिक सामग्री देने का प्रयास किया है। इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आचार्य हस्तीमलजी म , का अपूर्व योगदान रहा है।

इस प्रकार स्थानकवासी साहित्य का महत्वपूर्ण प्रकाशन इस शताब्दी मे हुआ है। यहा पर बहुत ही सक्षेप मे जानकारी दी गई है।

—————○○○—————
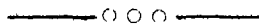
जीवनोत्थान का मूल : 'ध्यान'

युवाचार्य डॉ शिवमुनिजी महाराज

विश्व का अधिकाश मानव समाज शाति एव सह अस्तित्व के अन्वेषण मे लगा हुआ है। ब्रह्माण्ड के चरम बिन्दु परमाणु तक को वैज्ञानिको ने अपनी खोज एव अनुसधान का केद्र बना दिया है। सृष्टि, ब्रह्माण्ड, पृथ्वी, ग्रह-उपग्रह, आकाश गगाएँ, वायुमडल, जैविक सरचना, भौतिकी एव रसायन शास्त्र आदि के ज्ञान को वैज्ञानिको ने प्राप्त कर लिया है। स्वचालित यन्त्रो, कम्प्यूटर एव अन्य यत्रो की सहायता से मानव अपने जीवन को जटिलता विहीन एव आरामतलब बना रहा है। परन्तु इन सबको भी अगर विकास की चरम परिणति न कह कर अर्द्ध-विकास का सोपान कहे तो शायद कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। विज्ञान मे भी दो प्रकार का विभेद स्थापित किया जाता है—एक भौतिक-यन्त्र या मशीनी विज्ञान और दूसरा विशुद्ध अध्यात्म विज्ञान। प्रयोगशालाओ मे यत्रो के माध्यम से वैज्ञानिक भौतिक विज्ञान के क्षेत्र मे प्रगति करते गए और हमारे ऋषि महर्षि अध्यात्म विज्ञान मे प्रगतिशील रहे। भौतिक विज्ञान मे शोध की गति आज भी तीव्र है, पर अध्यात्म विज्ञान मे अन्वेषण की गति आज मद हो चुकी है। जीवन का वैशिष्ठ्म, आत्मा-परमात्मा, मुक्ति, जन्म-मरण, कर्म, साधना आदि अध्यात्म के महत्वपूर्ण विषयो की आज का सभ्यता परक मानव समाज उपेक्षा करता प्रतीत होता है।

भारत अपने प्रागैतिहासिक काल से ही विश्व के दार्शनिको, चितको एव विद्वानो के लिए आशा एव प्रेरणा का पुज रहा है। क्योकि भारत प्राचीन काल से ही अध्यात्मवाद का प्रबल समर्थक रहा है और अध्यात्म ज्ञान का प्रतिष्ठित ज्ञाता भी रहा है। भारतीय ऋषिमुनि, मनस्वी, योगी, स्वामी एव सन्यासियो ने अध्यात्म जगत के गूढतम रहस्यो का हल निकाला है, निष्कर्ष, मान्यताओ का सिद्धातो का सृजन भी किया है। 'साधना' के राजमार्ग द्वारा 'साध्य' तक पहुँचने के लिए उन्होने अपने जीवन को 'साधन' के रूप मे समर्पित किया है। प्रश्न है जीवन का मूल ध्येय क्या है? जीवन के उत्थान का आधार क्या है? सासारिक क्रिया-कलापो मे सलग्न रहते हुए भी हम परम् शांति की अनुमति कैसे कर सकते हैं? जीवन का कायिक एव आत्मिक विकास कैसे किया जा सकता है? मन के सकल्प-विकल्प को शून्यात्मकता की स्थिति पर पहुँचाने का साधन कौनसा है? इन सब क्लिष्टतम प्रश्नो का समीचीन एव सहज समाधान भगवान महावीर ने दिया है। अध्यात्म जगत मे आत्म-चिंतन, आत्म-ज्ञान और आत्म-दर्शन पर जितना गहरा ज्ञान भगवान महावीर ने दिया उतना शायद ही किसी और ने दिया होगा। भगवान महावीर की साधना का मूल था 'ध्यान साधना'। वे स्वय उच्चकोटि के ध्यान साधक थे, उनकी साढे बारह वर्ष की साधना ध्यान एव कायोत्सर्ग पर अवलम्बित रही है। इसी साधना के बल पर उन्होने 'वीतरागता' की परिलब्धि की ओर 'केवल ज्ञान' प्राप्त किया।

जैन धर्म मूलत व्यक्तिनिष्ठ धर्म है, यहाँ 'भगवद् प्राप्ति' उतनी महत्वपूर्ण नही है जितनी 'भगवत्ता' की प्राप्ति। और 'भगवत्ता' प्राप्ति हेतु कर्मक्षय अपरिहार्य है। सवर तथा निर्जरा से कर्मों का क्षय होता है और यही कर्मक्षय मुक्ति का मूल कारण है। जीवन निर्माण/विकास/उत्थान एव निर्वाण का मूल है 'ध्यान'।

ध्यान शब्द 'ध्यै' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है चिंतन करना, आत्म स्वरूप का चिन्तन करना। **"ध्यायते चिन्त्यते वस्तवनेन ध्यानिर्याध्यानम्"** जिसके द्वारा वस्तुस्थिति का ध्यान किया जाए, उसका यथार्थ ज्ञान हो, उसे ध्यान कहते हैं। **'परिणाम स्थिर तयिम'** ध्यान से परिणामो मे स्थिरता आती है।

"एकाग्रालम्बनस्यस्य सहजपृत्ययस्य च प्रत्ययान्तर्नि युक्त प्रवाहे' अर्थात एकाग्रचित्त से यथार्थ से आत्मा से सबधित होकर बाह्य विषयो से मन को हटाकर अन्तर्मुखी होना ही ध्यान है। **'योगश्चित्तवृत्ति निरोध'** चित्त की वृत्तियो को आत्मा से दूर करना

ही ध्यान है। सारांशत विभिन्न परिभाषाओ के होते हुए भी ध्यान का यही सार अर्थ है।— "एकाग्रचित्त से किसी विषय वस्तु पर चित्त को संकेन्द्रित करना ही ध्यान है।"

ध्यान के मूल बीज सूत्र और उनकी उपयोगिता जैनागमो मे सर्वत्र सूत्ररूप से वर्णित है। भगवती (२५-७) व औपपातिक (२०) सूत्रो में लगभग एक ही शब्दावली मे ध्यान का चार प्रकार से वर्णन किया गया है— चत्तारिझाणा पणत्ता, त जहाँ-अट्टे झाणे, रूद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे।

अर्थात आर्त ध्यान, रौद्रध्यान, धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान ये ध्यान के चार प्रकार कहे गए हैं। परन्तु इनमें प्रथम दो ध्यान अकरणीय है और अंतिम दो करणीय है। आगमो मे इन ध्यानो के अनेक भेद-प्रभेद किए गए हैं।

भ महावीर का पावन सूत्र 'जे एग जाणइ ते सव्व जाणइ' जिसने आत्मा को जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया। जो व्यक्ति अपने आपसे अपरिचित है, जो स्वय को नही जानता कि मैं कौन हूँ? मेरा स्वरूप क्या है? वह भले ही बाहर की सम्पूर्ण सृष्टि को भी जान ले, उसके रहस्यो का पता लगाले फिर भी वह अनजान है, अज्ञात है और अपरिचित है। यदि वह स्वयं को स्वय द्वारा अपनी साधना से जानना चाहे तो इसके लिए एक ही मार्ग है, वह है 'ध्यान'। ध्यान के द्वारा ही आत्मा की अनुभूति हो सकती है, यही कारण है कि भगवान महावीर ने जीवन उत्थान के लिए ध्यान को प्रमुख स्तम्भ माना है। **"बाह्य जगत को विस्मृत कर अन्तर्मुखी होना ही ध्यान साधना है"**

साधना की दृष्टि से आत्मा के तीन प्रकार किए गए हैं— बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।

(१) इन्द्रिय समूह— बहिरात्मा

आत्मा का अनुभवात्मक सकल्प— शरीर और इन्द्रिय से भिन्न हो जाता है, वह 'मैं हूँ'—इस प्रकार का सवेदात्मक सकल्प अन्तरात्मा है।

(३) कर्ममुक्त आत्मा— परमात्मा है।

इन तीनो मे परमात्मा ध्येय है। अतरआत्मा के द्वारा बहिरात्मा को छोडना है। परमात्मा का ध्यान करने से आत्मा स्वय परमात्मा रूप बनती है। इसलिए शुद्ध आत्मा का ध्यान करना चाहिए। इतना ही नही वरन् प्रत्येक आत्मा-महात्मा और परमात्मा स्वरूप को प्राप्त कर सकती हैं। क्योकि जीव ही शिव है, नर ही नारायण है यह हमारी सस्कृति का महान उद्घोष रहा है। इसके लिए जैन ध्यान साधना पद्धति मे स्पष्ट रूप से कहा है— मोक्ष के दो मार्ग हैं— सवर और निर्जरा। सवर और निर्जरा का मुख्य रूप तप है, और तप का मुख्य विभाग है— 'ध्यान' मूलार्थ यह है कि 'ध्यान' ही अतिम रूप से मोक्ष का साधन है।

आगम युगीन ध्यान पद्धति का अवलोकन करने पर हमे ध्यान के चार तत्व प्राप्त होते हैं—(१) कायोत्सर्ग (२) भावना (३) विपश्यना और (४) विचय

(१) **कायोत्सर्ग**—इसमे तन, मन और आत्मा का भेद स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। कायोत्सर्ग साधना से शरीर के प्रति आसक्ति विलीन होती दिखाई देती है, विकृतियाँ पृथक होने लगती हैं। तनाव छूट जाते हैं, और शरीर तथा आत्मा का भेद स्पष्ट होता है।

(२) **भावना**-भावना के चार प्रकार हैं-(१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चारित्र (४) वैराग्य इनके द्वारा ध्यान पुष्ट होता है, और ध्यान की योग्यता प्राप्त होती है, इसका उल्लेख ध्यान शतक मे मिलता है।

(३) **विपश्यना** —का अर्थ है देखना, केवल द्रष्टा बनना, शारीरिक सवेदनाओ को देखना, तन से भी आगे मन है और मन को, मानसिक ग्रन्थियो और वासनाओ को तटस्थ रूप से निहारना ही विपश्यना है। जैसे भी विचार हो—अच्छे या बुरे उन्हे केवल देखते रहना और देखते-देखते शुद्धात्मा की अवस्था तक पहुँचने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को विपश्यना कहते हैं। स्थूल से सूक्ष्म की ओर

बाह्य से अन्तर की ओर देखने, प्रक्षालन करने और शमन करने की पद्धति विपश्यना है, इस पद्धति मे एकाग्रता और जागरूकता का प्रयास सतत् बना रहता है। विपश्यना से सम्बन्धित आचाराग सूत्र का निम्न अश दृष्टव्य है— यह आयु सीमित है, यह सप्रेक्षा करता हुआ साधक अकम्पित रहकर क्रोध का शमन करे।

(४)**विचय**—विभिन्न पदार्थों मे से किसी एक पर ध्यान केन्द्रित करके उसके स्वरूप को जानने की प्रक्रिया विचय कहलाती है। इस पद्धति से भी एकाग्रता और जागृति बनी रहती है, और ध्यान की गहराई तक पहुँचा जा सकता है।

भगवान महावीर के तीर्थसघ मे हजारो श्रमण-साधक एकान्त शून्यागारो मे ध्यान साधना मे तल्लीन रहते थे। आचार्य भद्रबाहु चतुर्दश पूर्व ज्ञान के धारक थे। उन्होने १२ वर्ष तक महाप्राण ध्यान साधना की थी। शरीर, मन, वचन और श्वास की प्रक्रिया को सूक्ष्म करते जाना ही महाप्राण की साधना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्यान जीवन उत्थान का मूल है, ध्यान जैसी श्रेष्ठ पद्धति और कोई नही हो सकती। इससे ससार के सारे सघर्ष दूर हो सकते हैं। वस्तुत अपने आपको देखना ही ध्यान है। आत्मा से आत्मा को देखना ही ध्यान है।

"संपिक्खिए अप्पगमप्पएण" साधक क्षण मात्र का भी प्रमाद नही करता, वह वर्तमान मे जीता है, एक-एक क्षण कीमती है, इसलिए जैन ध्यान साधना का स्वर है—

"खण जाणाहि पंडिए" (आचा २,२१) ध्यान-साधना मे सम्पूर्ण तनाव और विकृतियाँ विलीन होने लगती हैं, मनुष्य ससार मे रहते हुए भी शात हो जाता है, उसे किसी मे भेदभाव नजर नही आता और भेदभाव ही सघर्ष की जड है। अत ध्यान विश्व शाति का राजमार्ग है, जीवन के विकास एव उत्थान का मूल है और अमृतमय साधना है। सत्यम-शिवम्-सुन्दरम् की रचनात्मक प्रयोगशाला ध्यान है।

—○○○—

दृष्टि को उज्ज्वल करें

कुछ लोग निराशावादी है। वे सदा निराशा फैलाने मे अपनी बुद्धिमानी समझते है, आलोचना करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते है, वे सदा सघ की आलोचना करते रहते है और जन-मानस को गुमराह करते है। वे बुराइयो की एक लबी सूची प्रस्तुत करते है पर सघ की गरिमा के सबध मे उनकी लेखनी मौन है वाणी मूक है।

इतना विशाल सघ होने के कारण भूले होती है तो साथ ही उन भूलो का परिष्कार भी किया जाता है। अच्छा यही है कि हर कोई समर्पण भाव मे सघ के समुत्कर्ष के लिए प्रयास करे।

-आचार्यश्री आनन्दऋषिजी म

जैन परम्परा: ऐतिहासिक सर्वेक्षण

उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी महाराज

जैन धर्म विश्व का एक मानवतावादी धर्म है, वैज्ञानिक दर्शन है। यह आत्मा के चरम विकास मे आस्था रखने वाला धर्म है, जो साध्य और साधन दोनो की समीचीनता, पवित्रता और निर्मलता मे विश्वास रखता है। इसने जातिवाद, वर्ण और वर्ग की भेद-भावना को समाप्त कर प्राणिमात्र की आध्यात्मिक शक्ति को विकसित होने का अवसर देने की घोषणा की है। इसी कारण वह अन्य धर्म और दर्शनो से विशिष्ट है। इसमे विचार व आचार की समान शुद्धि पर बल दिया गया है।

जैन धर्म का ऐतिहासिक स्वरूप—ऐतिहासिक दृष्टि से जैन धर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म है। इसे अनादि और अनन्त कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी। यह धर्म न वैदिक धर्म की शाखा है और न बौद्ध धर्म की, अपितु यह एक सर्वतन्त्र स्वतन्त्र धर्म है। पुरातत्व, भाषा-विज्ञान, साहित्य और नृतत्व-विज्ञान मे यह स्पष्ट हो गया है कि "वैदिककाल से पूर्व भी भारत मे एक बहुत ही समृद्ध सस्कृति थी,जिसे तथाकथित समागत आर्यों ने अनार्य संस्कृति कहा। विद्वानो का अभिमत है कि वह अनार्य सस्कृति अर्थात् जगत की मूल सस्कृति श्रमण सस्कृति या जैन सस्कृति थी। वेद और अवेस्ता मे जिन घटनाओ का उल्लेख हुआ है उनके आधार मे ऐसा माना जाता है कि आर्य भारत मे बाहर से आये थे। भारत मे आने पर उन्हे व्रात्य, असुर, दास और दस्यु जैसी उच्च सस्कृति-सम्पन्न जातियो मे सघर्ष करना पडा। वेदो मे उनके बिराट् नगरो का और उनके विशाल व्यापार का उल्लेख मिलता है। उनके साथ आर्यो के अनेक युद्ध हुए थे। ऋग्वेद मे आर्य दिवोदास और पुरूकुत्स के युद्ध का वर्णन है जिसमे उसने आर्येतर जातियो को पराजित किया था। उत्तरकालीन अन्य वैदिक साहित्य मे भी इस प्रकार के अवतरण प्राप्त होते है।"[१]

मोहन-जो-दडो और हडप्पा के ध्वसावशेषो ने पुरातत्व के क्षेत्र मे एक अभिनव क्राति पैदा की है। इसके पूर्व सभी प्राचीन धर्म और दर्शनो का सम्बन्ध आर्यों से माना जाता था, पर खुदाई मे प्राप्त सामग्री ने यह प्रमाणित कर दिया है कि आर्यो के भारत आगमन से पूर्व यहाँ की सस्कृति, सभ्यता व धर्म और दर्शन अत्यधिक उन्नत था। वे लोग सुसभ्य, सुसस्कृत, कलाओ मे पारगत ही नही, अपितु आत्मविद्या के गहन अभ्यासी थे। पुरातत्वविदो का यह मानना है कि जो ध्वसावशेष मिले हैं उनका सम्बन्ध श्रमण सस्कृति (जैन सस्कृति) से है। डॉ हेराम तथा प्रो श्रीकण्ठ शास्त्री आदि का भी यही अभिमत है।

ऋग्वेद से यह ज्ञात होता है कि भारत मे दो सस्कृतियाँ थी, पहले उनमे सघर्ष हुआ, बाद मे सघर्ष मिटकर स्नेह का वातावरण निर्मित हुआ। ये दोनो सस्कृतियाँ आर्य और आर्येतर नाम से विश्रुत हुईं। आर्य सस्कृति वैदिक सस्कृति है और आर्येतर सस्कृति श्रमण सस्कृति है।

ऋग्वेद मे 'बार्हत" और "आर्हत" शब्द प्रयुक्त हुए है। "बार्हत" सम्प्रदाय के अनुयायी वेदो को मानते थे और यज्ञ-यागादि मे उनकी निष्ठा थी। "आर्हत" वेद और यज्ञादि को नही मानने वाले थे। उनकी अहिंसा और दया मे निष्ठा थी, वे अर्हत के उपासक थे। विष्णुपुराण के अनुसार आर्हत कर्मकाण्ड के विरोधी थे और अहिंसा के प्रतिष्ठापक थे।[२] पद्मपुराण,[३] भागवतपुराण प्रभृति ग्रन्थो मे भी आर्हत सम्बन्धी अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। आर्हत सम्प्रदाय जैन सम्प्रदाय ही था। आर्हत सम्प्रदाय को वैदिक काल से आरण्यक काल तक "वातरशना मुनि" या "व्रात्य" के रूप मे कहा गया है। "व्रात्य" का वास्तविक अर्थ "व्रतो का पालन करने वाला" है। अथर्ववेद मे ब्रह्मचारी, ब्राह्मण, विशिष्ट पुण्यशील, विद्वान, विश्व सम्मान्य व्यक्ति व्रात्य कहलाता था।[४] ऋग्वेद मे जिन वातरशना मुनियो का उल्लेख है अर्हत होने चाहिए। आचार्य सायण ने इन्ही वातरशना मुनियो को "अतीन्द्रियार्थदर्शी" बताया है ।[५] 'केशी' और 'मुनि' भी व्रात्य ही थे[६] श्रीमद्भागवत मे इन मुनियो के प्रमुख धर्मनेता ऋषभदेव बताये गये हैं, जो नाभिपुत्र थे।[७] अनेक पुरातात्विक प्रमाण भी जैन धर्म और तीर्थंकरो की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।

जैन साहित्य मे भी जैन तीर्थंकरो के लिए "अर्हत" शब्द का प्रयोग हुआ है[८] उस अर्हत शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से भगवान पार्श्वनाथ तक चलता रहा। भगवान महावीर के समय "निगन्थ" शब्द मुख्य रूप से प्रयुक्त हुआ [९] बौद्ध साहित्य मे भी भगवान महावीर को "निर्ग्रन्थ नाथपुत्र—निग्गठ णातपुत्त" कहा गया है।[१०] अशोक के शिलालेखो मे भी "निग्गठ" शब्द का प्रयोग हुआ है।[११] भगवान महावीर के पश्चात् आठ गणधरो एव आचार्यों तक "निर्ग्रन्थ" शब्द का मुख्य रूप से प्रचलन रहा। वैदिक ग्रन्थो में भी "निर्ग्रन्थ" शब्द का प्रयुक्त हुआ है। सातवी शताब्दी मे बंगाल मे निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय बहुत ही प्रभावशाली था।

दशवैकालिक, उत्तराध्ययन और सूत्रकृतांग प्रभृति आगम साहित्य मे जिनशासन, जिनमार्ग, जिनप्रवचन आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है। पर "जैन धर्म" शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम विशेषावश्यकभाष्य मे हुआ है[१२] जिसका रचनाकाल विक्रम स ८४५ है। उसके पश्चात्वर्ती साहित्य मे 'जैन धर्म' शब्द का प्रयोग विशेष रूप से हुआ। मत्स्य पुराण[१३] मे 'जिनधर्म' और देवी भागवत[१४] में जैनधर्म का उल्लेख है। सारांश यह है कि देश, काल की स्थिति के अनुसार शब्दो मे परिवर्तन होता रहा है पर शब्दो के परिवर्तन होते रहने पर भी जैनधर्म का आन्तरिक स्वरूप नही बदला है। परम्परा की दृष्टि से उसका सम्बन्ध भगवान ऋषभदेव से रहा है। जैसे शिव के नाम पर शैवधर्म, विष्णु के नाम पर वैष्णवधर्म और बुद्ध के नाम पर "बौद्ध धर्म" प्रचलित हुए हैं वैसे ही जैनधर्म किसी व्यक्ति विशेष के नाम पर प्रचलित नही है और न किसी व्यक्ति का पूजक ही है। इसे ऋषभदेव, पार्श्वनाथ और महावीर का धर्म नही कहा गया है, यह अर्हतो का धर्म है, आत्मविजय करने वालो का धर्म है, अत यह जिनधर्म है। जैन धर्म का स्पष्ट अभिमत है कि कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिक उत्कर्ष करके मानव से महामानव, आत्मा से परमात्मा और जन से जिन बन सकता है, तीर्थंकर बन सकता है, जिन और केवली बन सकता है।

तीर्थंकर

यह जैन धर्म का प्राचीनतम पारिभाषिक शब्द है। आदितीर्थंकर ऋषभदेव के लिए भी 'तित्थयर' शब्द प्रयुक्त हुआ है। जैन परम्परा मे इस शब्द का प्राधान्य रहने से इसका प्रयोग बौद्ध साहित्य मे भी अनेक स्थलो पर हुआ है। तीर्थंकर का अर्थ है जो तीर्थ का कर्ता या निर्माता है। जो ससार-समुद्र से पार करने वाले धर्म-तीर्थ की सस्थापना करते हैं, वे विशिष्ट व्यक्ति तीर्थंकर कहलाते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये धर्म हैं, इन धर्मों को धारण करने वाले श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका के इस चतुर्विध सघ को "धर्म तीर्थ" कहा गया है।[१५]

---

१ भारतीय इतिहास, एक दृष्टि डॉ ज्योतिप्रसाद जैन पृ, २८
२ आर्हत सर्वमेतच्च मुक्तिद्वारमेयवृतम्।
धर्माद् विमुक्तेरर्होऽय नैतस्मादपर पर।। —विष्णुपुराण ३/१८/१२
३ पद्मपुराण १३/३५०
४ अथर्ववेद (सायणभाष्य) १५/१/१/१
५ सायणभाष्य १०, १३६, २
६ ऋग्वेद १०-१-१, ३६ १
७ श्रीमद्भागवत ५-६-२०
८ कल्पसूत्र श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय उदयपुर, पृष्ठ १६१-१६२
९ (अ) आचारांग १-३-१-१०८ (आ) भगवती १-६-३८६
१० (क) दीघनिकाय सामञ्जफल सुत्त १८-२१
(ख) विनयपिटक महावग्ग, पृ २४२
११ इमे वियापरा हो हृति त्ति पि मे कटे। —प्राचीन भारतीय अभिलेखो का अध्ययन द्वि खण्ड, पृ १५
१२ (क) जेण तित्थ—विशेषावश्यकभाष्य, गा १०४३
(ख) तित्थ जइण—वही, गाथा १०४५—१०४६
१३ मत्स्यपुराण ४/१३/५४
१४ गत्वाथ मोहयामास रजिपुत्रान् बृहस्पति।
जैनधर्म कृत स्वेन यज्ञ निन्दा पर तथा।। —देवी भागवत ४/१३/५८
१५ (क) भगवती २ ८-६८२ (ख) स्थानाग ४/३ (ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—उसहचरिय।

—— ○ ○ ○ ——
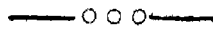
जैन धर्म परम्परा

उपाध्याय श्री देवेन्द्र मुनिजी महाराज

ऋषभदेव–प्रस्तुत अवसर्पिणीकाल मे इस धर्म के आद्य सस्थापक भगवान ऋषभदेव हैं। जैन, बौद्ध और वैदिक तीनो ही परपराओ मे वे उपास्य के रूप मे रहे हैं। उनका तेजस्वी व्यक्तित्व और कृतित्व जन-जन के आकर्षण का केन्द्र रहा है। आधुनिक इतिहास से उनकी ऐतिहासिकता सिद्ध नहीं हो सकती क्योकि वे प्रागैतिहासिक युग मे हुए। उनके पिता का नाम नाभि और माता का नाम मरुदेवा था। उनका पाणिग्रहण सुमगला और सुनन्दा के साथ हुआ था। सुमगला ने भरत और ब्राह्मी तथा अन्य अठानवे पुत्रो को जन्म दिया और सुनन्दा ने बाहुबली और सुन्दरी को। कुलकर व्यवस्था का अन्त होने पर वे राजा बने, राजनीति का प्रचलन किया, खेती आदि की कला सिखाकर खाद्य-समस्या का समाधान किया, अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को बहत्तर कलाएँ, और कनिष्ठ पुत्र बाहुबली को प्राणी-लक्षणो का ज्ञान कराया, और ब्राह्मी को अठारह लिपियो का तथा सुन्दरी को गणित विद्या का परिज्ञान कराया। असि-मसि और कृषि की व्यवस्था की। वर्ण-व्यवस्था की सस्थापना की। अन्त मे भरत को राज्य देकर चार हजार व्यक्तियो के साथ दीक्षा ग्रहण की। जनता श्रमणचर्या के अनुसार भिक्षा देने की विधि से अपरिचित थी, अत एक सवत्सर तक भिक्षा नही मिली। उसके पश्चात् उनके पौत्र श्रेयस ने इक्षुरस की भिक्षा दी जिससे इक्षु तृतीया या अक्षय तृतीया पर्व का प्रारभ हुआ। एक हजार वर्ष के पश्चात् उनको केवलज्ञान हुआ। सघ की सस्थापना की। उनके पुत्र भरत के नाम से भारतवर्ष का नामकरण हुआ। भरत को आदर्श महल मे केवलज्ञान हुआ। उनके अन्य सभी पुत्र और पुत्रियाँ भी साधना कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुई और माघ कृष्णा त्रयोदशी के दिन ऋषभदेव ने भी अष्टापद पर्वत पर शिवगति प्राप्त की जिससे शिवरात्रि विश्रुत हुई।[1]

बाईस तीर्थंकर–भगवान ऋषभदेव के पश्चात् अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि, पुष्पदन्त , शीतल, श्रेयास, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्वनाथ–ये बाईस तीर्थंकर हुए।

अरिष्टनेमि–भगवान अरिष्टनेमि और भगवान पार्श्व—इन दोनो को आधुनिक विद्वान ऐतिहासिक महापुरुष मानते हैं। अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। ऋग्वेद आदि मे उनके नाम का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद, सामवेद, छान्दोग्योपनिषद्, महाभारत, स्कदपुराण, प्रभासपुराण आदि मे भी उनके अस्तित्व का सकेत मिलता है। मास के लिए मारे जाने वाले प्राणियो की रक्षा हेतु उन्होंने उग्रसेन नरेश की पुत्री राजीमती के साथ विवाह करने से इनकार किया और स्वय गृह त्यागकर श्रमण बने, केवलज्ञान प्राप्त कर रैवताचल (गिरिनार) पर मुक्त हुए। मासाहार के विरोध मे जो उन्होने अभियान प्रारम्भ किया वह इतिहास के पृष्ठो मे आज भी चमक रहा है। वासुदेव श्रीकृष्ण उनके परम भक्तो मे से थे।[2]

पार्श्वनाथ–भगवान पार्श्वनाथ वाराणसी के राजकुमार थे। उनके पिता का नाम अश्वसेन और माता का नाम वामादेवी था। आपका जन्म ई पू ८५० मे पौषकृष्णा दशमी को हुआ था। आपके युग मे तापस परम्परा मे विविध प्रकार की विवेकशून्य क्रियाएँ प्रचलित थी। गृहस्थावस्था मे ही पचाग्नि तप तपते हुए कमठ को अहिंसा का पावन उपदेश दिया और धूनी के लक्कड में से जलते हुए सर्प का उद्धार किया। श्रमण बनने के पश्चात् उग्र साधना कर सर्वज्ञ बने और विवेकमूलक धर्म-साधना का प्रचार किया और अन्त मे सम्मेदशिखर (बिहार प्रान्त) पर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। पाश्चात्य और पौर्वात्य सभी विद्वानो ने भगवान पार्श्व की ऐतिहासिकता को स्वीकार किया है। अगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार तथागत बुद्ध के चाचा बप्प निर्ग्रंथ श्रावक थे। धर्मानन्द कोशाबी का अभिमत है कि बुद्ध ने अपने साधक जीवन के प्रारम्भिक काल मे भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा को अपनाया था। आगम साहित्य मे पार्श्वनाथ के लिए पुरुषादानीय, लोकपूजित, सबुद्धात्मा, सर्वज्ञ एव लोकप्रदीप जैसे

विशिष्ट विशेषण देकर उनके तेजस्वी व्यक्तित्व को उजागर किया गया है।[3]

महावीर–भगवान महावीर विश्व-इतिहास गगन के तेजस्वी सूर्य थे। ई पू छठी शताब्दी मे वैशाली के उपनगर क्षत्रियकुण्ड मे चैत्र सुदि त्रयोदशी को आपका जन्म हुआ। आपके पिता का नाम राजा सिद्धार्थ और माता का नाम रानी त्रिशला था। धन-धान्य की अभिवृद्धि के कारण उनका नाम वर्द्धमान रखा गया। उनके बडे भाई का नाम नन्दिवर्द्धन, बहन का नाम सुदर्शना और विदेह गणराज्य के मनोनीत अध्यक्ष चेटक उनके मामा थे। वसन्तपुर के महासामन्त समरवीर की पुत्री यशोदा के साथ उनका पाणिग्रहण हुआ और प्रियदर्शना नामक एक पुत्री हुई जिसका पाणिग्रहण जमाली के साथ हुआ।

अट्ठाईस वर्ष की आयु मे माता-पिता के स्वर्गस्थ होने पर सयम ग्रहण करना चाहा, किन्तु ज्येष्ठ भ्राता नन्दीवर्द्धन के अत्याग्रह से वे दो वर्ष गृहस्थाश्रम मे और रहे। तीस वर्ष की अवस्था मे गृहवास त्याग कर एकाकी निर्ग्रंथ मुनि बने। उग्र तप की साधना की। देव-दानव-मानव पशुओ के द्वारा भीषण कष्ट देने पर भी प्रसन्न मन से उसे सहन किया। अन्य तीर्थंकरो की अपेक्षा महावीर का तप कर्म अधिक उग्र था। साधना करते हुए बारह वर्ष बीते। तेरहवाँ वर्ष आया, वैशाख महीना था, शुक्लपक्ष की दशमी के दिन अन्तिम प्रहर मे साल वृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन से आतापना ले रहे थे, तब केवलज्ञान-केवलदर्शन प्रकट हुआ। वहाँ से विहार कर पावापुरी पधारे। वहाँ सोमिल ब्राह्मण ने विराट यज्ञ का आयोजन कर रखा था, जिसमे इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डितपुत्र, मौर्यपुत्र, अकपित, अचलभ्रात, मैतार्य, प्रभास से ग्यारह वेदविद् ब्राह्मण आये हुए थे। उनके तर्कों का निरसन कर उन्हे अप शिष्य बनाया, साथ ही चार हजार चार सौ उनके विद्वान शिष्यो ने भी दीक्षा ग्रहण की। भगवान ने उन्ही ग्यारह विज्ञो को गणधर के महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त किया। श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका इस चतुर्विध तीर्थ की स्थापना कर तीर्थंकर बने। भगवान के सघ मे चौदह हजार श्रमण, छत्तीस हजार श्रमणियाँ थी। एक लाख उनसठ हजार श्रावक और तीन लाख अठारह हजार श्राविकाएँ थी भगवान के त्यागमय उपदेश को श्रवण कर वीरागक, वीरयश, सजय, एणेयक, सेय, शिव, उदयन और शख–काशीवर्धन आदि आठ राजाओ ने श्रमण धर्मग्रहण किया था। सम्राट श्रेणिक के तेईस पुत्रो और तेरह रानियो ने दीक्षा ग्रहण की। धन्ना और शालिभद्र जैसे धन-कुबेरो ने भी सयम स्वीकार किया। आर्द्रकुमार जैसे आर्येतर जाति के युवको ने, हरिकेशी जैसे चाण्डाल जातीय मुमुक्षुओ ने और अर्जुन मालाकार जैसे क्रूर नरहत्यारो ने भी दीक्षा ग्रहण की।

गणराज्य के प्रमुख चेटक महावीर के मुख्य श्रावक थे। उनके छह जामाता उदायन, दधिवाहन, शतानीक, चण्डप्रद्योत, नन्दीवर्द्धन श्रेणिक तथा नौ मल्लवी और नौ लिच्छवी के अठारह गणनरेश भी भगवान के परमभक्त थे। केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् तीस वर्ष तक काशी, कोशल, पाचाल, कलिगग, कम्बोज, कुरुजागल, बाह्लीक, गान्धार, सिन्धुसौवीर प्रभृति प्रान्तो मे परिभ्रमण करते हुए भव्य जीवो को प्रतिबोध देते हुए अन्तिम वर्षावास मध्यम-पावा मे सम्राट हस्तिपाल की रज्जक सभा मे किया। कार्तिक कृष्णा अमावास्या की रात्रि मे स्वाती नक्षत्र के समय बहत्तर वर्ष की आयु पूर्ण कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। निर्वाण के समय नौ मल्लवी नौ लिच्छवी गणो के अठारह राजा उपस्थित थे। जिन्होने भावउद्योत के चले जाने पर द्रव्यउद्योत किया, तभी से भगवान महावीर की स्मृति मे दीपावली महापर्व मनाया जाता है।[4]

इन्द्रभूति गौतम–भगवान महावीर के प्रधान शिष्य थे इन्द्रभूति गौतम। वे राजगृह के सन्निकट गोबर ग्राम के निवासी थे।[5] उनके पिता का नाम वसुभूति और माता का नाम पृथ्वी था। उनका गोत्र गौतम था[6] वे घोर तपस्वी, चौदह पूर्व के ज्ञाता, चतुर्ज्ञानी, सर्वाक्षर सन्निपाती, तेजस्लब्धि के धर्ता और अनेक लब्धियो के भण्डार थे।[7] जैन आगम साहित्य का मुख्य भाग महावीर और गौतम के सवाद के रूप मे है। गौतम प्रश्न करने वाले हैं और महावीर उत्तर देने वाले हैं। जो स्थान उपनिषद् मे उद्दालक के सामने श्वेतकेतु का है, त्रिपिटक मे बुद्ध के सामने आनन्द का है और गीता मे कृष्ण के सामने अर्जुन का है वही स्थान आगम मे महावीर के सामने गौतम का है। गौतम के अन्तर्मानस मे भगवान महावीर के प्रति अनन्य आस्था थी। नम्रता की वे साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। सत्य को स्वीकार करने मे उन्हे किंचित्मात्र भी सकोच नही था। उनमे उपदेश देने की शक्ति भी विलक्षण थी। भगवान महावीर ने पृष्ठचम्पा के गागील नरेश को प्रतिबोध देने हेतु उन्हे प्रेषित किया था। उन्होने १५०३ तापसो को प्रतिबोध देकर श्रमणधर्म मे दीक्षित किया था।[8] भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी केशीश्रमण तथा उदकपेढ़ाल आदि सैकडो शिष्यो को महावीर के सघ मे सम्मिलित करने का श्रेय भी उन्हे था।

श्रमण भगवान महावीर के सघ के सचालन का सम्पूर्ण भार गौतम के कधों पर था।[9] भगवान महावीर के परिनिर्वाण होने पर उन्हे केवलज्ञान हुआ और उन्होने सघ संचालन का कार्य गणधर सुधर्मा को सौंप दिया और वे बारह वर्ष तक जीवनमुक्त केवली अवस्था मे रहे। उन्होंने पचास वर्ष की आयु मे दीक्षा ली, तीस वर्ष छद्मस्थ अवस्था मे रहे और बारह वर्ष केवली रहे। बयानवे वर्ष की उम्र मे गुणशील चैत्य में मासिक अनशन व्रत करके परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।[10]

(१) **गणधर सुधर्मा**—ये कोल्लागसन्निवेश के निवासी अग्निवेश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम धम्मिल और माता का नाम भद्दिला था। आपके पास पाँच सौ छात्र अध्ययन करते थे। पचास वर्ष की अवस्था मे शिष्यो के साथ प्रव्रज्या ली, बयालीस वर्ष छद्मस्थ अवस्था मे रहे। महावीर के निर्वाण के बाद बारह वर्ष होने पर केवली हुए और आठ वर्ष तक केवली अवस्था मे रहे।भगवान महावीर के सभी गणधरो मे सुधर्मा दीर्घजीवी थे। अत अन्य सभी गणधरो ने निर्वाण के समय अपने-अपने गण सुधर्मा को समर्पित किये थे।[11] सौ वर्ष की अवस्था मे मासिक अनशनपूर्वक राजगृह के गुणशील चैत्य मे निर्वाण प्राप्त किया[12]दिगबर परम्परा सुधर्मा स्वामी का निर्वाण विपुलाचल पर होना मानती है।

(२) **आर्य जम्बू**—श्रमण भगवान महावीर के परिनिर्वाण के सोलह वर्ष पूर्व मगध की राजधानी राजगृह मे जम्बू का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था। ये अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। सोलह वर्ष की उम्र मे आठ कन्याओ के साथ उनका पाणिग्रहण हुआ। दहेज मे निन्यानवे करोड का धन मिला। किन्तु सुधर्मा स्वामी के उपदेश को श्रवण कर बिना सुहागरात मनाये ही अपार वैभव का परित्याग कर सुधर्मा के चरणो मे दीक्षा ग्रहण की। जम्बू के साथ उनके माता-पिता आठो पत्नियाँ, उनके भी माता-पिता तस्करराज प्रभव, और उसके पाँच सौ साथी चोर इस प्रकार पाँच सौ सत्ताइस व्यक्तियो ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की। बारह वर्ष तक सुधर्मा स्वामी से आगम की वाचना प्राप्त करते रहे। वीर निर्वाण स १ मे दीक्षा ग्रहण की, वीर स १३ मे सुधर्मा स्वामी के केवलज्ञानी होने के पश्चात् उनके पट्ट पर आसीन हुए। आठ वर्ष तक सघ का नेतृत्व कर वीर स २० मे केवलज्ञान प्राप्त किया और वीर स ६४ मे अस्सी वर्ष की आयु पूर्ण कर मथुरा मे निर्वाण हुआ। आज जो आगम उपलब्ध है उसका सम्पूर्ण श्रेय जम्बू को है। जम्बू के मोक्ष पधारने के पश्चात् निम्न दस बाते विच्छिन्न हो गई—

१ मन पर्ययज्ञान
२ परमावधिज्ञान।
३ पुलाक लब्धि।
४ आहारक शरीर।
५ क्षपक श्रेणी।
६ उपशम श्रेणी।
७ जिनकल्प।
८ सयमत्रिक् (परिहारविशुद्धचारित्र, सूक्ष्मसम्परायचारित्र, यथाख्यातचारित्र)।
९ केवलज्ञान।
१० सिद्धपद।[13]

(३) **आर्य प्रभवस्वामी**—आर्य प्रभव विन्ध्याचल के समीपवर्ती जयपुर के निवासी थे। पिता का नाम विन्ध्य राजा था। पिता से अनबन हो जाने के कारण अपने पाँच सौ साथियो के साथ राज्य का परित्याग कर जगल मे निकल पडे और तस्करराज बन गए। जिस दिन जम्बूकुमार का विवाह था, उसी दिन वे डाका डालने के लिए उनके घर पहुँचे। प्रभव के पास दो विद्याएँ थी—तालोद्घाटिनी (ताला तोडने की) एव अवस्वापिनी (नीद दिलवाने की)। उन विद्याओ के प्रभाव से सभी सदस्यगण सो गये किन्तु जम्बू अपनी नव-परिणीता पत्नियो के साथ सयम की चर्चा कर रहे थे जिसे सुन प्रभव विरक्त हो गये और तीस वर्ष की अवस्था मे प्रव्रज्या ग्रहण की। पचास वर्ष की अवस्था मे जम्बू के केवलज्ञानी होने पर आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और एक सौ पाँच वर्ष की उम्र मे अनशन कर स्वर्गवासी हुए।

(४) **आर्य शय्यंभव**—आर्य प्रभव के स्वर्गस्थ होने पर शय्यभव उनके पट्ट पर आसीन हुए। वे राजगृह के निवासी वत्स गोत्रीय ब्राह्मण थे। एक समय वे यज्ञ कर रहे थे। आर्य प्रभव के आदेशानुसार कुछ शिष्य उनके समीप आये और कहा—**अहो कष्टमहो कष्टं पुनस्तत्त्वं न ज्ञायते** (अत्यन्त परिताप है, तत्व को कोई नही जानता।) इस वाक्य से वे जागृत हुए। उन्होंने मुनियो से पूछा तत्व क्या है? शिष्यो ने कहा—यदि तत्व जानना है तो हमारे गुरु के पास चलो। वे प्रभवस्वामी के पास पहुँचे और उनके प्रवचन से प्रबुद्ध होकर प्रव्रज्या ग्रहण की। चतुर्दश पूर्वों का अध्ययन किया। जब उन्होने प्रव्रज्या ग्रहण की थी तब उनकी पत्नी सगर्भा थी। पश्चात् पुत्र हुआ। मनक नाम रखा। मनक ने चम्पानगरी मे आपके दर्शन किए। मुनि बना। छह माह का अल्पजीवी समझकर पुत्र कोश्रमणाचार का सम्यक् परिज्ञान कराने हेतु दशवैकालिक का निर्माण किया। इन्होंने अट्ठाइस वर्ष की उम्र में प्रव्रज्या ग्रहण की। चौतीस वर्ष सामान्य मुनि-अवस्था मे रहे और तेईस वर्ष युगप्रधान आचार्य पद पर। वीर निर्वाण सवत् ९८ मे पचासी वर्ष आयु पूर्ण कर स्वर्गस्थ हुए।

(५) **आर्य यशोभद्र**—ये आर्य शय्यभव के प्रधान शिष्य थे। तुगियायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। बाइस वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की, चौदह वर्ष मुनि-अवस्था में रहे और पचास वर्ष युगप्रधान आचार्य पद पर। ये वीर स १४८ मे छियासी वर्ष पूर्ण कर स्वर्गस्थ हुए।

(६) **आर्य सभूतिविजय**—यशोभद्र के दो उत्तराधिकारी हुए—आर्य सभूतिविजय और आर्य भद्रबाहु। आर्य सभूतिविजय माठर गोत्रीय थे। वे बयालीस वर्ष गृहस्थाश्रम मे रहे, चालीस वर्ष साधु अवस्था मे, आठ वर्ष युगप्रधान आचार्य के पद पर। कुल नब्बे वर्ष की उम्र मे वीर निर्वाण सवत् १५६ मे स्वर्गस्थ हुए।

(७) **आर्य भद्रबाहु**—ये जैन सस्कृति के ज्योतिर्धर आचार्य थे। जैन साहित्य सर्जना के आदि पुरुष हैं। आगम व्याख्याता, इतिहासकार और साहित्य के सर्जक के रूप मे इनका नाम प्रथम है। आपका जन्म प्रतिष्ठानपुर मे हुआ। पैतालीस वर्ष की वय मे आचार्य यशोभद्र के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। चौदह वर्ष तक युगप्रधान आचार्य पद पर रहे। वीर स १७० मे छिहत्तर वर्ष की आयु मे स्वर्गस्थ हुए।

आर्य प्रभव से प्रारभ होने वाली श्रुतकेवली परम्परा मे भद्रबाहु पचम श्रुतकेवली है। चतुर्दश पूर्वधर हैं। उनके पश्चात् कोई भी श्रमण चतुर्दशपूर्वी नही हुआ। दशाश्रुतस्कध, बृहत्कल्प, व्यवहार, कल्पसूत्र, आवश्यकनिर्युक्ति,आदि दस नियुक्तियाँ आपकी रचित मानी जाती हैं। किन्तु कितने ही विद्वान निर्युक्तियो की रचना द्वितीय भद्रबाहु की मानते हैं। उवसग्गहर स्तोत्र[15] आपकी रचना है। आगमो की प्रथम वाचना पाटलिपुत्र मे आपके द्वारा ही सम्पन्न हुई।[16] उस समय आप नेपाल मे महाप्राणध्यान की साधना कर रहे थे। सघ के आग्रह को सम्मान देकर स्थूलभद्र को बारहवे अग की वाचना देना स्वीकार किया। दस पूर्व अर्थ सहित सिखाये। ग्यारहवे पूर्व की वाचन के समय आर्य स्थूलभद्र ने बहनो को चमत्कार दिखाया, अत वाचना बद की। किन्तु सघ के आग्रह से अतिम चार पूर्वो की वाचना दी, किन्तु अर्थ नही बताया और दूसरो को उसकी वाचना देने की स्पष्ट मनाई की।[17] अर्थ की दृष्टि से अतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु है। स्थूलभद्र शाब्दिक दृष्टि से चौदहपूर्वी थे, पर अर्थ की दृष्टि से दसपूर्वी थे। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त आपके अनन्य भक्त थे। उनके द्वारा देखे गये सोलह स्वप्नो का फल आपने बताया जिसमे पचम काल की भविष्य-कालीन स्थिति का रेखा चित्रण था। श्वेताम्बर और दिगबर दोनो ही परम्परा आपके प्रति पूर्ण श्रद्धाभाव रखती हैं। वीर निर्वाण सवत् १७० मे आपका स्वर्गवास हुआ।

वीर निर्वाण १७० के पश्चात् आर्य भद्रबाहुस्वामी के शिष्य काश्यप गोत्रीय स्थविर गोदास से गोदासगण प्रारम्भ हुआ जो ताम्रलिप्तिया (ताम्रलिप्तिका), कोडीवरिसिया (कोटिवर्षीया), पोडवद्धणिया (पौण्ड्रवर्धनिका) और दासी खब्बडिया (दासी-कर्पटिका) इन चार शाखाओ मे विभाजित हो गया।

(८) **आर्य स्थूलभद्र**—ये जैन जगत् के उज्ज्वल नक्षत्र है। मगलाचरण के रूप मे उनका स्मरण किया जाता है। ये पाटलीपुत्र के निवासी थे। इनके पिता का नाम शकडाल था जो नन्द महाराजा के महामत्री थे। स्थूलभद्र के लघु भ्राता का नाम श्रेयक था। यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, सेणा, वेणा और रेणा ये सातो ही आर्य स्थूलभद्र की सगी बहने थी। स्थूलभद्र जब यौवन की

चौखट पर पहुँचे तब कोशा गणिका के रूपजाल मे फँस गये। महापण्डित वररुचि के षडयन्त्र से विवश होकर पिता की इच्छानुसार श्रेयक ने पिता को मार दिया। पिता के अमात्य पद को ग्रहण करने के लिये स्थूलभद्र से कहा गया, किन्तु पिता की मृत्यु से उन्हे वैराग्य हो गया, उन्होने आचार्य सम्भूतिविजय के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रथम वर्षावास के समय एक मुनि ने सिंह गुफा पर चातुर्मास की अनुमति माँगी। दूसरे ने दृष्टिविष सर्प की बांबी पर। तीसरे ने कुँए के कोठे पर और स्थूलभद्र ने कोशा की चित्रशाला मे। स्थूलभद्र कोशा के यहाँ पहुँचे। वासना का वातावरण था। कोशा वेश्या ने हाव-भाव और विलास से स्थूलभद्र को चलित करने का प्रयास किया किन्तु वे चलित न हुए। अन्त मे वेश्या स्थूलभद्र के उपदेश से श्राविका बन गयी।

वर्षावास पूर्ण होने पर सभी शिष्य गुरु के चरणो मे पहुँचे। तीनो का दुष्करकारक तपस्वी के रूप मे स्वागत किया। स्थूलभद्र के आने पर गुरु, सात-आठ कदम उनके सामने गये और दुष्कर-दुष्कर-कारक तपस्वी के रूप मे उनका स्वागत किया। सिंह गुफावासी मुनि यह देखकर क्षुब्ध हुआ। आचार्य ने ब्रह्मचर्य की दुष्करता पर प्रकाश डाला किन्तु उसका क्षोभ शान्त न हुआ। द्वितीय वर्ष सिंह गुफावासी मुनि कोशा के यहाँ पहुँचा, किन्तु वेश्या का रूप देखते ही वह विचलित हो गया। वेश्या के कहने से वह रत्न-कबल लेने हेतु नेपाल पहुँचा। वेश्या ने उस कबल को गन्दी नाली मे डालकर उसे प्रतिबोध दिया कि रत्नकबल से भी सयम अधिक मूल्यवान है। सिंह गुफावासी मुनि को अपनी भूल मालूम हुई तथा गुरु के कथन का रहस्य भी ज्ञात हो गया। स्थूलभद्र का महत्व काम-विजेता के कारण ही नही, किन्तु पूर्वधर होने के कारण भी है। वीर स ११६ मे इनका जन्म हुआ। तीस वर्ष की वय मे दीक्षा ग्रहण की। चौबीस वर्ष तक साधारण मुनि पर्याय में रहे और पैंतालीस वर्ष युगप्रधान आचार्य पद पर। निन्यानवे वर्ष की उम्र मे वैभारगिरि पर्वत पर पन्द्रह दिन का अनशन कर वीर स २१५ मे स्वर्गस्थ हुए।

(९-१०) **आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती**—आर्य स्थूलभद्र के पट्ट पर उनके शिष्यरत्न आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती आसीन हुए। आर्य महागिरि उग्र तपस्वी थे। दस पूर्व तक अध्ययन करने के पश्चात् सघ सचालन का उत्तरदायित्व अपने लघु गुरुभ्राता सुहस्ती को समर्पित कर स्वय साधना के लिए एकान्त मे चले गये। आर्य महागिरि का जन्म वीर स १४५ मे हुआ और दीक्षा १७५ मे, २११ मे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और २४५ मे सौ वर्ष की आयु को पूर्ण कर दशार्णप्रदेशस्थ गजेन्द्रपुर तीर्थ मे स्वर्गस्थ हुए।[१९] आर्य सुहस्ती का जन्म वीर स १९१ मे हुआ, दीक्षा २१५ मे हुई, आचार्य पद २४५ मे और २९१ मे सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर स्वर्गस्थ हुए। आर्य सुहस्ती के समय अवन्ती निवासिनी भद्रा का पुत्र अवन्तीसुकुमाल, नलिनीगुल्म विमान का वर्णन सुनकर श्रमण बना और कथार वन मे शृगालिनी के उपसर्ग से मृत्यु को प्राप्त कर नलिनीगुल्म विमान मे देव बना। आर्य सुहस्ती ने दुष्काल से ग्रसित द्रमक नामक भिखारी को प्रव्रज्या दी और समाधिपूर्वक आयु पूर्ण कर वह कुणाल पुत्र सप्रति हुआ। आर्य सुहस्ती के दर्शन कर उसे जातिस्मरण हुआ और वह जैनधर्मावलम्बी बना। उसका हृदय दयालु था। उसने सात सौ दानशालाएँ खुलवायी। जैनधर्म के प्रचार के लिए अपने विशिष्ट अधिकारियो को श्रमण वेष मे आन्ध्रादि प्रदेशो मे भेजा।[२०]

(११-१२) **आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिबुद्ध**—आर्य सुहस्ती के बारह शिष्य थे। उनमे से आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिबुद्ध ये दोनो आचार्य बने। ये दोनो काकन्दी नगरी के निवासी थे। राजकुलोत्पन्न व्याघ्रापत्य गोत्रीय सहोदर थे। कुमारगिरि पर्वत पर दोनो ने उग्रतप की साधना की। सघ सचालन का कार्य सुस्थित के अधीन था और वाचना का सुप्रतिबुद्ध के। हिमवन्त स्थविरावली के अनुसार इनके युग मे कुमारगिरि पर एक लघु श्रमण सम्मेलन हुआ था। और द्वितीय आगम वाचना भी हुई। इकतीस वर्ष की अवस्था मे आर्य सुस्थित ने प्रव्रज्या ग्रहण की, सत्रह वर्ष तक सामान्य श्रमण रहे और अडतालीस वर्ष तक आचार्य पद पर रहे और छियानवे वर्ष की अवस्था मे वीर स ३३९ मे कुमारगिरि पर्वत पर स्वर्गस्थ हुए। इसी तरह आर्य सुप्रतिबुद्ध का भी उसी वर्ष देहान्त हुआ।

आचार्य सुहस्ती तक के आचार्य गण के अधिपति और वाचनाचार्य दोनो ही होते थे। वे गण को सभालते भी थे और साथ ही गण की शैक्षणिक व्यवस्था भी करते थे। किन्तु आचार्य सुहस्ती के पश्चात् गण की रक्षा करने वाले को गणाचार्य और श्रुत की रक्षा करने वाले को वाचनाचार्य कहा गया। गणाचार्यों की परम्परा गणधरवश अपने-अपने गण के गुरु-शिष्य क्रम से चलती रही। वाचनाचार्यों और युगप्रधान आचार्यों की परम्परा एक गण से सम्बन्धित नही है। जिस किसी भी गण मे या शाखा मे एक

के पश्चात् दूसरे प्रभावशाली वाचनाचार्य या युगप्रधान हुए उनमे उनका क्रम सलग्न किया गया है।

आर्य सुहस्ती के पश्चात् भी कुछ आचार्य गणाचार्य और वाचनाचार्य दोनो हुए है। जो आचार्य प्रबल प्रतिभा के धनी थे उन्हे युगप्रधान माना गया है, वे गणाचार्य और वाचनाचार्य दोनो मे से हुए है।

हिमवन्त स्थविरावलि की दृष्टि से वाचकवश या **विद्याधरवश की परम्परा** इस प्रकार है—

१ आचार्य सुहस्ती।
२ आचार्य बहुल और बलिस्सह।
३ आचार्य उमास्वाति।
४ आचार्य अमम।
५ आचार्य साडिल्य या स्कदिल (वि स ३७६ से ४१४ तक युग-प्रधान)
६ आचार्य समुद्र।
७ आचार्य मगूसूरि।
८ आचार्य नन्दिलसूरि।
९ आचार्य नागहस्तीसूरि।
१० आचार्य रेवति नक्षत्र।
११ आचार्य सिहसूरि
१२ आचार्य स्कदिल (वि स ८२६ वाचनाचार्य)।
१३ आचार्य हिमवन्त क्षमाश्रमण।
१४ आचार्य नागार्जुनसूरि।
१५ आचार्य भूतदिन्न।
१६ आचार्य लौहित्यसूरि।
१७ आचार्य दुष्यगणी।
१८ आचार्य देववाचक (देवर्धिगणी क्षमाश्रमण)।
१९ आचार्य कालिकाचार्य (चतुर्थ)।
२० आचार्य सत्यमित्र (अन्तिम पूर्वविद्)।

दुस्सम-काल-समण-सघत्थव और विचार-श्रेणी के अनुसार '**युग-प्रधान-पट्टावलि**' और समय—

आचार्यों के नाम	**समय** (वीर निर्वाण मे)
१ गणधर सुधर्मास्वामी	१-२०
२ आचार्य जम्बूस्वामी	२०-६४
३ आचार्य प्रभवस्वामी	६४-७५
४ आचार्य शय्यभवसूरि	७५-९८
५ आचार्य यशोभद्रसूरि	९८-१४८
६ आचार्य सभूतिविजय	१४८-१५६
७ आचार्य भद्रबाहुस्वामी	१५६-१७०
८ आचार्य स्थूलभद्र	१७०-२१५
९ आचार्य महागिरि	२१५-२४५
१० आचार्य सुहस्तीगिरि	२४५-२९१
११ आचार्य गुणसुन्दरसूरि	२९१-३३५

१२ आचार्य श्यामाचार्य	३३५-३७६
१३ आचार्य स्कंदिल	३७६-४१४
१४ आचार्य रेवतिमित्र	४१४-४५०
१५ आचार्य धर्मसूरि	४५०-४९५
१६ आचार्य भद्रगुप्तसूरि	४९५-५३३
१७ आचार्य श्रीगुप्तगिरि	५३३-५४८
१८ आचार्य वज्रस्वामी	५४८५८४
१९ आचार्य आर्यरक्षित	५८४-५९७
२० आचार्य दुर्बलिकापुष्यमित्र	५९७-६१७
२१ आचार्य वज्रसेनसूरि	६१७-६२०
२२ आचार्य नागहस्ती	६२०-६८९
२३ आचार्य रेवतीमित्र	६८९-७४८
२४ आचार्य सिंहसूरि	७४८-८२६
२५ आचार्य नागार्जुनसूरि	८२६-९०४
२६ आचार्य भूतदिन्नसूरि	९०४-९८३
२७ आचार्य कालिकसूरि (चतुर्थ)	९८३-९९४
२८ आचार्य सत्यमित्र	९९४-१०००
२९ आचार्य हरिल्ल	१०००-१०५५
३० आचार्य जिनभद्रगणी-क्षमाश्रमण	१०५५-१११५
३१ आचार्य उमास्वातिसूरि	१११५-११९०
३२ आचार्य पुष्यमित्र	११९०-१२५०
३३ आचार्य सभूति	१२५०-१३००
३४ आचार्य माठरमभूति	१३००-१३६०
३५ आचार्य धर्मऋषि	१३६०-१४००
३६ आचार्य ज्येष्ठागगणी	१४००-१४७१
३७ आचार्य फल्गुमित्र	१४७१-१५२०
३८ आचार्य धर्मघोष	१५२०-१५९८

वल्लभी युगप्रधान पट्टावलि

१ आचार्य सुधर्मास्वामी	(शासन-समय) ६० वर्ष
२ आचार्य जम्बूस्वामी	४४"
३ आचार्य प्रभवस्वामी	११'
४ आचार्य शय्यभव	२३"
५ आचार्य यशोभद्र	५०"
६ आचार्य सभूतिविजय	८"
७ आचार्य भद्रबाहु	१४"
८ आचार्य स्थूलभद्र	४६"
९ आचार्य महागिरि	३०"
१० आचार्य सुहस्ती	४५"

११ आचार्य गुणसुन्दर	४४"
१२ आचार्य कालकाचार्य	४१"
१३ आचार्य स्कन्दिलाचार्य	३८"
१४ आचार्य रेवतिमित्र	३६"
१५ आचार्य मगु	२०"
१६ आचार्य धर्म	२४"
१७ आचार्य भद्रगुप्त	४१"
१८ आचार्य वज्रसेन	३६"
१९ आचार्य रक्षित	१३"
२० आचार्य पुष्यमित्र	२०"
२१ आचार्य वज्रसेन	३"
२२ आचार्य नागहस्ती	६९"
२३ आचार्य रेवतिमित्र	५९"
२४ आचार्य सिंहसूरि	७८"
२५ आचार्य नागार्जुन	७८"
२६ आचार्य भूतदिन्न	७९"
२७ आचार्य कालक	११"

माथुरी युगप्रधान पट्टावलि

१ आचार्य सुधर्मास्वामी	२ आचार्य जम्बूस्वामी
३ आचार्य प्रभवस्वामी	४ आचार्य शय्यभव
५ आचार्य यशोभद्र	६ आचार्य सम्भूतिविजय
७ आचार्य भद्रबाहु	८ आचार्य स्थूलभद्र
९ आचार्य महागिरि	१० आचार्य सुहस्ती
११ आचार्य बलिस्सह	१२ आचार्य स्वाति
१३ आचार्य श्यामाचार्य	१४ आचार्य साडिल्य
१५ आचार्य समुद्र	१६ आचार्य मगु
१७ आचार्य आर्यधर्म	१८ आचार्य भद्रगुप्त
१९ आचार्य वज्र	२० आचार्य रक्षित
२१ आचार्य आनन्दिल	२२ आचार्य नागहस्ती
२३ आचार्य रेवतिनक्षत्र	२४ आचार्य ब्रह्मदीपकसिंह
२५ आचार्य स्कन्दिलाचार्य	२६ आचार्य हिमवन्त
२७ आचार्य नागार्जुन	२८ आचार्य गोविन्द
२९ आचार्य भूतदिन्न	३० आचार्य लौहित्य
३१ आचार्य दृष्यगणी	३२ आचार्य देवर्द्धिगणी

(१३) **आर्य इन्द्रदिन्न**—प्रस्तुत परम्परा मे आचार्य इन्द्रदिन्न (इन्द्रदत्त) युगप्रभावक आचार्य थे। आपके लघु गुरुभ्राता प्रियग्रथ भी युगप्रभावक व्यक्ति थे। आपने हर्षपुर मे होने वाले अजमेध यज्ञ का निवारण किया था और हिंसाधर्मी ब्राह्मण विज्ञो को अहिंसा धर्म का पाठ पढाया था। आपने कर्नाटक मे धर्म का प्रचार किया।

आर्य शान्तिश्रेणिक से उच्चानागर शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। प्रस्तुत शाखा मे प्रतिभा मूर्ति आचार्य उमास्वाति हुए, जिन्होंने सर्वप्रथम दर्शन-शैली से तत्वार्थसूत्र का निर्माण किया। आपके ही समय मे कुछ आगे-पीछे आर्य कालक, आर्य खपुटाचार्य, इन्द्रदेव, श्रमणसिंह, वृद्धिवादी, सिद्धसेन आदि आचार्य हुए।

(१४) **आर्य कालक**— आर्य कालक के नाम से चार आचार्य हुए हैं। प्रथम कालक जिनका अपर नाम श्यामाचार्य भी है और जिन्होंने प्रज्ञापना सूत्र का निर्माण किया, वे द्रव्यानुयोग के महान ज्ञाता थे। अनुश्रुति है कि शक्रेन्द्र ने एक बार भगवान सीमन्धर स्वामी से निगोद पर गभीर विवेचन सुना। उन्होंने यह जिज्ञासा व्यक्त की कि क्या भरत क्षेत्र में कोई इस प्रकार की व्याख्या कर सकता है। भगवान ने आर्य कालक का नाम बताया। वे आचार्य कालक के पास आए। जैसा भगवान ने कहा था वैसा ही वर्णन सुनकर अत्यन्त प्रमुदित हुए। आपका जन्म वीर स २८० मे हुआ। वीर स ३०० मे दीक्षा ली। ३२५ मे युगप्रधानाचार्य पद पर आसीन हुए और ३७६ मे उनका स्वर्गवास हुआ।

द्वितीय आचार्य कालक भी इन्ही के सन्निकटवर्ती है। ये धारानगरी के निवासी थे। इनके पिता का नाम राजा वीरसिंह और माता का नाम सुरसुन्दरी था। इनकी लघु बहन का नाम सरस्वती था जो अत्यन्त रूपवती थी। दोनो ने ही गुणाकरसूरि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। साध्वी सरस्वती के रूप पर मुग्ध होकर उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल ने उसका अपहरण किया। आचार्य कालक को जब यह ज्ञात हुआ तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होने शक राजाओ से मिलकर गर्दभिल्ल का साम्राज्य नष्ट कर दिया। आचार्य कालक सिन्धु सरिता को पार कर ईरान तथा बर्मा, सुमात्रा भी गए थे। एक बार आचार्य का वर्षावास दक्षिण के प्रतिष्ठानपुर मे था। वहाँ का राजा सातवाहन जैनधर्मावलम्बी था। उस राज्य मे भाद्रपद शुक्ला पचमी को इद्रपर्व मनाया जाता था, जिसमे राजा से लेकर रक तक सभी अनिवार्य रूप से सम्मिलित होते थे। राजा ने आचार्य कालक को निवेदन किया कि मुझे तो महापर्व सवत्सरी की आराधना करनी है। अत सवत्सरी महापर्व छठ को मनाया जाए तो अधिक श्रेयस्कर है। आचार्य ने कहा—उस दिन का उल्लघन कदापि नही किया जा सकता। राजा के आग्रह से आचार्य ने कारणवशात् चतुर्थी को सम्वत्सरी महापर्व मनाया।[२१] आचार्य ने अपवादरूप मे चतुर्थी को सम्वत्सरी पर्व की आराधना की थी न कि उत्सर्ग-सामान्य स्थिति के रूप मे।

(१५) **आर्य सिंहगिरि**—आर्य सिंहगिरि कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण थे। जातिस्मरणज्ञान सपन्न थे। उनके मुख्य चार शिष्य थे—आर्य समित, आर्य धनगिरि, आर्य वज्रस्वामी और आर्य अर्हद्दत्त।

आर्य समित का जन्म अवन्ती देश क तुम्बवन ग्राम मे हुआ था। इनके पिता का नाम धनपाल था। ये जाति से वैश्य थे। उनकी बहन का नाम सुनन्दा था। उसका पाणिग्रहण तुम्बवन क धनगिरि के साथ सपन्न हुआ था। आर्य समित योगनिष्ठ और महान तपस्वी थे। कहा जाता है कि आभीर देश के अचलपुर ग्राम मे इन्होने कृष्णा और पूर्णा सरिताओ को योगबल से पार किया और ब्रह्मद्वीप पहुँचे। वहाँ पाँच सौ तापसो को अपने चमत्कार से चमत्कृत कर अपना शिष्य बनाया।

(१६) **आर्य वज्रस्वामी**—आर्य समित की बहिन का विवाह इभ्यपुत्र धनगिरि के साथ हुआ था। धनगिरि धर्मपरायण व्यक्ति थे। जब उनके सामने धनपाल की ओर से विवाह का प्रस्ताव आया तब उन्होने उसे अस्वीकार करते हुए कहा—मै विवाह नही करूँगा, सयम लूँगा। किंतु धनपाल ने उनका विवाह कर दिया। विवाह हो जाने पर भी उनका मन ससार मे न रमा। अपनी पत्नी को गर्भवती छोडकर ही उन्होने आर्य सिंहगिरि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। जब बच्चे का जन्म हुआ तब उसने पिता की दीक्षा की बात सुनी, सुनते ही उसे जातिस्मरण हुआ। माता के मोह को कम करने के लिए वह रात-दिन रोने लगा। एक दिन मुनि धनगिरि और समित भिक्षा के लिए जा रहे थे जब आचार्य सिंहगिरि ने शुभ लक्षण देखकर शिष्यो को कहा जो भी भिक्षा मे सचित और अचित मिल जाए उसे ले लेना। दोनो मुनि भिक्षा के लिए सुनन्दा के यहाँ पहुँचे। सुनन्दा बच्चे से ऊब गई थी। ज्यो ही आर्य धनगिरि ने भिक्षा के लिए पात्र रखा उसने आवेश मे आकर बालक को पात्र मे डाल दिया और बोली—आप तो चले गए और पीछे इसे छोड दिया। रो-रो कर इसने परेशान कर दिया है। इसे भी अपने साथ ले जाइये। धनगिरि ने उसे समझाने का प्रयास किया, किंतु वह न समझी। धनगिरि ने छह मास के बालक को ले लिया, गुरु को सौपा, अतिभार होने से गुरु ने बच्चे का नाम वज्र रखा।[२३] पालन-पोषण हेतु गृहस्थ को दे दिया गया। श्राविका के साथ वह साध्वियो के उपाश्रय मे जाता और

निरन्तर स्वाध्याय सुनने से उसे ग्यारह अक कठस्थ हो गए। जब बच्चा तीन वर्ष का हुआ उसकी माता ने बच्चे को लेने के लिए राजसभा मे विवाद किया। माता ने बालक को अत्याधिक प्रलोभन दिखाए, किंतु बालक उधर आकृष्ट नही हुआ और धनगिरि के पास जाकर रजोहरण उठा लिया।

जब बालक आठ वर्ष का हुआ तब धनगिरि ने उसे दीक्षा दी, वह वज्रमुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए। जृभक देवो ने अवन्ती मे उनकी अहार-शुद्धि की परीक्षा ली। उस परीक्षा मे वे पूर्ण रूप मे खरे उतरे। देवताओ ने लघुवय मे ही आपको वैक्रिय-लब्धि और आकाशगामिनी विद्या दी।[४] एक बार उत्तर भारत मे भयकर दुर्भिक्ष पडा। उस समय विद्या के बल से आप श्रमणसघ को कलिंग प्रदेश मे ले गए। पाटलीपुत्र के इभ्यश्रेष्ठि धनदेव की पुत्री रुक्मिणी, आपके रूप पर मुग्ध हो गई। धनश्रेष्ठी ने पुत्री के साथ करोडो की सपत्ति दहेज मे देने का प्रस्ताव किया। पर आप कनक और कान्ता के मोह मे उलझे नही, किंतु रुक्मिणी को प्रतिबोध देकर प्रव्रज्या प्रदान की।

कहा जाता है एक बार वज्रस्वामी को कफ की व्यधि हो गई। उन्होने एक सोठ का टुकडा भोजन के पश्चात ग्रहण करने हेतु, कान मे डाल रखा था। पर उसे लेना भूल गए। सान्ध्य प्रतिक्रमण के समय वन्दन करते हुए वे नीचे झुके तो वह सोठ का टुकडा गिर पडा। अपना अतिम समय सन्निकट समझकर आपने वज्रसेन से कहा— द्वादशवर्षीय भयकर दुष्काल पडेगा अत साधु सतो के साथ तुम सौराष्ट्र-कोकण प्रदेश मे जाओ और मैं रथावर्त पर्वत पर अनशन करने जाता हूँ। जिस दिन तुम्हे लक्ष मूल्य वाले चावल मे से भिक्षा प्राप्त हो उसके दूसरे दिन सकाल होगा। ऐसा कहकर आचार्य सथारा करने हेतु चले गए।

वज्रस्वामी का जन्म वीर निर्वाण स निर्वाण ४९६ मे, दीक्षा ५०४ मे आचार्य पद ५३६ मे तथा ५८४ मे आप स्वर्गस्थ हुए।

वज्रसेन—आर्य वज्रसेन के समय भयकर दुर्भिक्ष पडा। निर्दोष भिक्षा मिलना असभव हो गया जिसके कारण सात सौ चौरासी श्रमण अनशन कर परलोकवासी हुए। सभी क्षुधा से छटपटाने लगे। जिनदास श्रेष्ठि ने एक लाख दीनार से एक अजलि अन्न मोल लिया और दलिया मे विष मिलाकर समस्त परिवार के साथ खाने की तैयारी मे था। उस समय एक मुनि उसके यहाँ गोचरी के लिए पधारे। सभी स्थिति समझकर गुरुदव ने निवेदन किया तब आर्य वज्रसेन ने वज्रस्वामी के कहने से सुभिक्ष की घोषणा की और सबके प्राणो की रक्षा की। दूसरे दिन अन्न से परिपूर्ण जहाज आ गए। जिनदास से वह अन्न लेकर गरीबो को वितरण कर दिया। कुछ समय के पश्चात् वर्षा होने से सर्वत्र आनन्द की उर्मियाँ उछलने लगी। जिनदास ने अपनी विराट सपत्ति को जन-कल्याण के लिए न्यौछावर कर अपने नागेन्द्र, चद्र, निवृत्ति और विद्याधर आदि पुत्रो के साथ दीक्षा ग्रहण की। (देखिए कल्पसूत्र) दुष्काल के समाप्त होने पर आर्य वज्रसेन ने श्रमणसघ को पुन एकता के सूत्र मे पिरोया। इस दुष्काल मे अनेक श्रमणो का स्वर्गवास हो जाने से कई वश, कुल और गण विच्छेद हो गए।

आर्यरक्षित—आर्य वज्रसेन के ही समय मे आगमवेत्ता आर्यरक्षित हुए। उनकी जन्मभूमि दशपुर थी। पिता का नाम रुद्रसोम था। जब आप काशी से गभीर अध्ययन कर लौटे तब माता बहुत प्रसन्न हुई। माता की प्रबल प्रेरणा से दृष्टिवाद का अध्ययन करने के लिए दशपुर के इक्षुवन मे विराजित आचार्य तोसलीपुत्र के पास गए और श्रमण बने। तोसलीपुत्र से आगमो का अध्ययन किया। उसके पश्चात् दृष्टिवाद का अध्ययन करने हेतु आचार्य वज्रस्वामी के पास पहुँचे। साढे नौ पूर्व तक अध्ययन किया। आपने अनुयोगद्वार सूत्र की रचना की और आगमो का द्रव्यानुयोग, चरण-करणानुयोग, गणितानुयोग और धर्मकथानुयोग के रूप मे विभक्त किया। आपके समय तक प्रत्येक आगम पाठ की द्रव्यानुयोग आदि के रूप मे चार-चार व्याख्याएँ की जाती थी। आपने श्रुतधरो की स्मरणशक्ति के दौर्बल्य को देखकर जिन पाठो से जो अनुयोग स्पष्ट रूप मे प्रतिभासित होता था उस प्रधान अनुयोग को रखकर शेष अन्य गौण अर्थो का प्रचलन बद कर दिया। जैसे—ग्यारह अगो—महाकल्पसूत्र और छेदसूत्रो का समावेश चरणकरणानुयोग मे किया गया, ऋषिभाषितो का धर्मकथानुयोग मे, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि का गणितानुयोग मे और दृष्टिवाद का समावेश द्रव्यानुयोग मे किया गया। इस प्रकार जब अनुयोगो का पार्थक्य किया गया तब से नयावतार भी अनावश्यक हो गया। प्रस्तुत कार्य द्वादशवर्षीय दुष्काल के पश्चात् दशपुर मे किया गया। इतिहासकारो का मत है कि यह आगम-वाचन वीर स ५९२ के लगभग हुई। इस आगम वाचना मे वाचनाचार्य आर्यो नदिल, युग-प्रधानाचार्य आर्यरक्षित और गणाचार्य वज्रसेन आदि उपस्थित थे। विद्वानो का यह भी मानना है कि आगम साहित्य मे उत्तरकालीन घटनाओ का जो चित्रण हुआ है उसका श्रेय भी

आर्यरक्षित को है। वीर स ५९७ में आर्यरक्षित स्वर्गस्थ हुए। उनके उत्तराधिकारी दुर्बलिकापुष्यमित्र हुए।

आर्यरथस्वामी—ये वज्रस्वामी के द्वितीय पट्टधर थे। आप वसिष्ठ गोत्रीय थे और बडे ही प्रभावशाली थे। आपका अपर नाम जयत्त भी था जिससे जयन्तिशाखा का प्रादुर्भाव हुआ।

आर्यधर्म के आर्यस्कंदिल और आर्यजम्बू ये दो शिष्यरत्न थे। स्कंदिलकी जन्मभूमि मथुरा थी। गृहस्थाश्रम मे आपका नाम सोमरथ था। आर्यसिंह के उपदेश को सुनकर आर्य धर्म के सन्निकट प्रव्रज्या ग्रहण की। ब्रह्मद्वीपिका शाखा के वाचनाचार्य आर्य सिंहसूरि से पूर्वों का अध्ययन किया। वाचक पद प्राप्त कर युगप्रधानाचार्य बने।

इतिहास की दृष्टि से उस समय भारत की स्थिति विषम थी। हूणो और गुप्तो मे युद्ध हुआ था। बारह वर्ष के दुष्काल से मानव समाज जर्जरित हो चुका था। जैन, बौद्ध और वैदिक धर्म के अनुयायी परस्पर खडन-मडन मे लगे हुए थे, आदि अनेक कारणो से श्रुतधरो की सख्या कम होती जा रही थी। उस विकट वेला मे आर्य स्कंदिल ने श्रुत की सुरक्षा के लिए मथुरा मे उत्तरापथ के मुनियो का एक सम्मेलन बुलवाया और आगमो का पुस्तको के रूप मे लेखन किया। यह सम्मेलन वीर स ८२७ से ८४० के आसपास हुआ था। उधर आचार्य नागार्जुन ने भी वल्लभी (सौराष्ट्र) मे दक्षिणापथ के मुनियो का सम्मेलन बुलाया। आगमो का लेखन व संकलन किया। ये सम्मेलन दूर-दूर होने से स्थविर एक-दूसरे के विचारो से अवगत न हो सके, अत पाठो मे कुछ स्थलो पर भेद हो गए।

आचार्य देवर्द्धिगणी—ये जैन आगम साहित्य के प्रकाशमान नक्षत्र हैं। वर्तमान मे जो आम साहित्य उपलब्ध है उसका सपूर्ण श्रेय देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण को है। आपका जन्म वेरावल (सौराष्ट्र) मे हुआ था। आपके पिता का नाम कामर्द्धि और माता का नाम कलावती था। कहा जाता है भगवान महावीर के समय शक्रेन्द्र का सेनापति हरिणैगमेषी देव था। वही आयु पूर्ण कर देवर्द्धिगणी बना।

आपने उपकेश गच्छीय आर्य देवगुप्त के पास एक पूर्व तक अर्थ सहित और दूसरे पूर्व का मूल पढा था। आप अतिम पूर्वधर थे। आपके बाद कोई भी पूर्वधर नही हुआ। आपने वीर स ९९० के आस-पास वल्लभी (सौराष्ट्र) मे एक विराट् श्रमण सम्मेलन बुलवाया जिसका नेतृत्व आपने किया। उस सम्मेलन में आगम पुस्तकारूढ किए गए इस आगम वाचना मे नागार्जुन की वाचना के गभीर अभ्यासी चतुर्थ कालकाचार्य विद्यमान थे। जिन्होने वी स ९९३ में आनन्दपुर में राजा ध्रुवसेन के सामने श्रीसघ को कल्पसूत्र सुनाया था। पूर्व माथुरी वाचना और नागार्जुन वाचना मे जिन-जिन विषयो में मतभेद हो गया था उन भेदो का देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने समन्वय किया। जिन पाठो मे समन्वय न हो सका उन स्थलो पर स्कंदिलाचार्य के पाठो को प्रमुखता देकर नागार्जुन के पाठो को पाठान्तर के रूप मे स्थान दिया। टीकाकारो ने **'नागर्जुनीयास्तु पठन्ति'** के रूप मे उनका उल्लेख किया है।

देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के पश्चात् पूर्व ज्ञान परम्परा विच्छिन्न हो गई।[२९] पुराने गच्छ लुप्त हो रहे थे नित्य नए गच्छ अस्तित्व मे आ रहे थे। अत आचार्यो के नामो की विभिन्न परम्पराएँ उपलब्ध होती है। उनमे से कई विशृखलित हो गई है।

यह एक ऐतिहासिक सत्य-तथ्य है कि आर्य सुहस्ती के समय कुछ शिथिलाचार प्रारम्भ हुआ था। वे स्वय सम्राट सप्रति के आचार्य बनकर कुछ सुविधाएँ अपनाने लगे थे, किंतु आर्य महागिरि के सकेत से वे पुन सँभल गए। लेकिन उनके सम्भलने पर भी एक शिथिल परम्परा का प्रारम्भ हो गया

वीर निर्वाण की नवी शताब्दी (८५०) मे चैत्यवास की सस्थापना हुई। कुछ शिथिलाचारी श्रमण उग्र विहार यात्रा को छोडकर मदिरो के परिपार्श्व मे रहने लगे। वीर निर्वाण की दसवी शताब्दी तक इनका प्रभुत्व बढ नही सका। देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्वर्गवास होने पर इनका समुदाय शक्तिशाली हो गया। विद्याबल और राज्य बल मिलने से उन्होंने शुद्धाचार्यों का उपहास किया। 'सबोध प्रकरण' नामकक ग्रथ मे आचार्य हरिभद्र ने उन चैत्यवासियो के आचार-विचारो का सजीव वर्णन किया है। आगम अष्टोत्तरी मे अभयदेवसूरि ने लिखा है कि देवर्द्धिगणी के पश्चात जैन शासन की वास्तविक परम्परा का लोप हो गया।[३०] चैत्यवास के पहले गण, कुल और शाखाओ का प्राचुर्य होने पर भी उनमें किसी भी प्रकार का विग्रह या अपने गण का अहकार

नही था। जो अनेक गण थे वे व्यवस्था की दृष्टि से थे। विभिन्न कारणो से गणो के नाम बदलते रहे। भगवान महावीर के प्रधान शिष्य सुधर्मा के नाम से भी सौधर्म गण हुआ। चैत्यवासी शाखा के उद्भव के साथ एक पक्ष संविग्नविधिमार्ग या सुविहित मार्ग कहलाया और दूसरा पक्ष चैत्यवासी।

आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के पश्चात् की पट्ट-परम्परा मे एकरूपता न होने के कारण हम यहाँ पर कुछ विशिष्ट प्रभावशाली मुनियो का ही परिचय दे रहे है।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर—आचार्य सिद्धसेन दिवाकर जैन परम्परा मे तर्कविद्या और तर्कप्रधान संस्कृत वाङ्मय के आद्य निर्माता है। वे प्रतिभा मूर्ति है। जिन्होने उनका प्राकृत ग्रन्थ सन्मतितर्क और संस्कृत द्वात्रिंशिकाएँ देखी हैं वे उनकी प्रतिभा की तेजस्विता से प्रभावित हुए बिना नही रह सकते। उन्होने चर्वित चर्वण नही किया। किंतु सन्मतितर्क जैसे मौलिक ग्रंथो का सृजन किया। सन्मतितर्क जैन दृष्टि से और जैन मन्तव्यो को तर्क शैली से स्पष्ट करने तथा स्थापित करने वाला जैन साहित्य का सर्वप्रथम ग्रन्थ है। इसमे तीन काड है। प्रथम काड मे द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दृष्टि का सामान्य विचार है। द्वितीय काड मे ज्ञान और दर्शन पर सुन्दर विश्लेषण है। तृतीय काड मे गुण और पर्याय, अनेकात दृष्टि और तर्क के विषय मे अच्छा प्रकाश डाला गया है।

आचार्य सिद्धसेन ने बत्तीस बत्तीसियाँ भी रची थी। उनमे से इक्कीस बत्तीसियाँ वर्तमान मे उपलब्ध हैं जो संस्कृत भाषा मे है। प्रथम की पाँच बत्तीसियो मे श्रमण भगवान महावीर की स्तुति की गई है और ग्यारहवी बत्तीसी मे पराक्रमी राजा की स्तुति की गई है। वे आद्य स्तुतिकार हैं। उन स्तुतियो को पढकर अश्वघोष के समकालीन बौद्ध स्तुतिकार मातृचेटरचित अध्यर्ध शतक और आर्यदेवरचित चतुश्शतक की स्मृति हो आती है। आचार्य हेमचन्द्र की दोनो बत्तीसियाँ तथा आचार्य समन्तभद्र का स्वयभू स्तोत्र और युक्त्यनुशासन नामक दार्शनिक स्तुतियाँ भी आचार्य सिद्धसेन दिवाकर की स्तुतियो का अनुकरण है। सिद्धसेन वाद-विद्या के पारगत पडित थे। उन्होने सातवी वादोपनिषद् बत्तीसी मे वाद के सभी नियम-उपनियमो का वर्णन कर विजय पाने का उपाय भी बताया है। आठवी बत्तीसी मे वादविद्या को कल्याणमार्ग न बताने का प्रयास भी किया है। उन्होने स्पष्ट लिखा है कल्याण का मार्ग अन्य है, वादी का मार्ग अन्य है। क्योकि किसी भी मुनि ने वाग्युद्ध को शिव का उपाय नही बताया है। उनकी बत्तीसियो मे न्याय, वैशेषिक, साख्य, बौद्ध आजीवक और जैनदर्शन का वर्णन है, किंतु चार्वाक एव मीमासक दर्शन का वर्णन नही है। संभव है कि जो बत्तीसियाँ उपलब्ध नही है उनमे यह वर्णन होगा। जैन दर्शन का वर्णन अनेक बत्तीसियो मे किया है। वे उपनिषद, गीता, वेदान्त के प्रकाड पडित थे।

जैसे दिङ्नाग ने बौद्धदर्शनमान्य विज्ञानवाद को सिद्ध करने के लिए पूर्व परम्परा मे किंचित् परिवर्तन करके बौद्धप्रमाणशास्त्र को व्यवस्थित रूप दिया उसी प्रकार सिद्धसेन दिवाकर ने भी पूर्व परम्परा का सर्वथा अनुकरण न करके अपनी स्वतंत्र बुद्धि से न्यायावतार की रचना की। इस लघु कृति मे प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय और प्रमिति इन चार तत्वो की जैनदर्शन सम्मत व्याख्या करने का अनूठा प्रयास किया है। उन्होने प्रमाण और उनके भेद-प्रभेदो का लक्षण किया है। अनुमान के सबध मे उनके हेत्वादि सभी अग-प्रत्यगो की सक्षेप मे मार्मिक व्याख्या की है। प्रमाण के साथ नयो का लक्षण और विषय बताकर मनीषियो का ध्यान उस ओर आकर्षित किया। स्वमत के निरूपण के साथ ही परमत का निराकरण भी किया। इनके गुरु का नाम वृद्धवादी था। इनका अपर नाम कुमुदचद्र भी था। उज्जयिनी के महाकाल के मंदिर मे चमत्कार दिखाकर राजा को प्रतिबोध दिया। ये महान तेजस्वी आचार्य थे। वीर निर्वाण स ४०० के आसपास इनका अस्तित्व माना जाता है और ४८० मे प्रतिष्ठानपुर मे इनका स्वर्गवास माना जाता है।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण—इनकी जन्मस्थली माता-पिता आदि के सबध मे कुछ भी सामग्री प्राप्त नही होती। १५ वी १६ वी शताब्दी मे निर्मित पट्टावलियो मे इन्हे आचार्य हरिभद्र का पट्टधर लिखा है, जबकि आचार्य हरिभद्र जिनभद्र से सौ वर्ष के पश्चात् हुए है। ये निवृत्तिकुल के थे। वल्लभी के जैन भडार मे शक स ५३१ की लिखी हुई विशेषावश्यकभाष्य की एक प्रति मिली है। जिससे स्पष्ट है कि उनका सबध वल्लभी के साथ अवश्य रहा होगा। विविधतीर्थकल्प से ज्ञात होता है उन्होने मथुरा मे महानिशीथसूत्र का उद्धार किया था। वाचक, वाचनाचार्य, क्षमाश्रमण आदि शब्द एक ही अर्थ के द्योतक है। आचार्य जिनभद्र की

नौ रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

१ विशेषावश्यकभाष्य—प्राकृत पद्य मे
२ विशेषावश्यकभाष्य स्वोपज्ञवृत्ति—अपूर्ण, सस्कृत गद्य
३ बृहत्सग्रहणी—प्राकृत पद्य
४ बृहत्क्षेत्रसमास—प्राकृत पद्य
५ विशेषणवर्ती प्राकृत पद्य
६ जीतकल्प—प्राकृत पद्य
७ जीतकल्पभाष्य—प्राकृत पद्य
८ अनुयोगद्वारचूर्णि—प्राकृत पद्य
९ ध्यानशतक—प्राकृत पद्य (इस सबध मे एकमत नही है)।

विशेषावश्यकभाष्य आचार्य जिनभद्र की अतिम रचना है। इन्होने इस पर सोपज्ञवृत्ति लिखना भी प्रारभ किया था, किंतु पूर्ण होने से पहले ही उनका आयुष्य पूर्ण हो गया जिससे वह अपूर्ण रह गई। विज्ञजन जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण का उत्तर काल विक्रम सवत् ६५० से ६६० के आसपास मानते है।

जिनदासगणी महत्तर—चूर्णि साहित्य के निर्माताओ मे इनका मूर्धन्य स्थान है। इनके जीवनवृत्त के सबध मे विशेष सामग्री उपलब्ध नही है। नन्दीविशेषचूर्णि मे इनके विद्यागुरु का नाम प्रद्युम्न क्षमाश्रमण आया है। उत्तराध्ययनचूर्णि मे इनके सद्गुरुदेव का नाम वाणिज्य कुलीन कोटीकगणीय वज्रशाखीय गोपालगणी महत्तर आया है। विज्ञो का मानना है कि जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण के बाद और आचार्य हरिभद्र से पहले हुए हैं, क्योकि भाष्य की अनेक गाथाओ का उपयोग चूर्णि मे हुआ है और आचार्य हरिभद्र ने अपनी वृत्तियो मे चूर्णियो का उपयोग किया है। इनका समय वि सं ६५० से ७५० के मध्य होना चाहिए। इनकी निम्न चूर्णियाँ मानी जाती है—

१ निशीथविशेषचूर्णि
२ नन्दीचूर्णि
३ अनुयोगद्वारचूर्णि
४ दशवैकालिचूर्णि
५ उत्तराध्ययनचूर्णि
६ आवश्यकचूर्णि
७ सूत्रकृतागचूर्णि

भाषा की दृष्टि से इनकी चूर्णियाँ सस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा मे हैं। किंतु सस्कृत कम और प्राकृत अधिक है। आवश्यकचूर्णि की भाषा प्राकृत है। भाषा सरल और सुबोध है। इन चूर्णियो मे सास्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक सामग्री भरी पडी है।''

आचार्य हरिभद्र—हरिभद्र नाम के कई आचार्य हुए है। पुरातत्ववेत्ता जिनविजयजी, डॉ हर्मन जेकोबी ने याकिनी महत्तरासूनु हरिभद्र को प्रथम हरिभद्र माना है। वे उनका समय सन् ७०० से ७७० (वि स ७५७ से ८२७) मानते है। उनका जन्म चित्तौड मे हुआ, वे जाति के ब्राह्मण थे। जितारि राजा के राज पुरोहित थे। उनकी प्रतिज्ञा थी कि जो मुझे शास्त्रार्थ मे पराजित करेगा मै उसका शिष्य बन जाऊँगा। याकिनीमहत्तरा स्वाध्याय कर रही थी। उनके कानो मे यह गाथा गिरी—

"चक्कीदुग हरिपणग पणग चक्कीण केसवो चक्की।
केसव चक्की केसव दु चक्की केसव चक्की य।।

उन्होंने चिन्तन किया किंतु अर्थ समझ मे नही आया। अत प्रतिज्ञा के अनुसार वे शिष्य बनने के लिए तत्पर हो गए और साध्वी महत्तरा की आज्ञा से वे आचार्य जिनभट्ट के शिष्य हुए। प्रभावकचरित्र के अनुसार जिनभट्ट उनके गच्छपति गुरु थे, जिनदत्त दीक्षागुरु थे याकिनी महत्तरा धर्मजननी थी, उनका कुल विद्याधर था, गच्छ एव सप्रदाय श्वेताम्बर था। कहा जाता है

उन्होने चौदह सौ चव्वालीस ग्रथ लिखे किंतु अभी तक तिहत्तर ग्रथ मिले है। आपने सर्वप्रथम आगम ग्रथो पर संस्कृत भाषा मे टीकाएँ लिखी। उसके पूर्व निर्युक्तियाँ, भाष्य और चूर्णियाँ विद्यमान थे। आपने आवश्यक, दशवैकालिक जीवाभिगम, प्रज्ञापना, नन्दी अनुयोगद्वार और पिण्डनिर्युक्ति पर टीकाएँ लिखी। पिण्डनिर्युक्ति की अपूर्ण टीका वीराचार्य ने पूर्ण की।

आचार्य हरिभद्र की महान विशेषता यह है कि जितनी सफलता के साथ उन्होने जैनदर्शन पर लिखा उतनी ही सफलता से उन्होने वैदिक और बौद्ध दर्शन पर भी लिखा। साम्प्रदायिक अभिनिवेश का उनमे अभाव था। खडन-मडन के समय मे भी वे मधुर भाषा का ही प्रयोग करते है। उमास्वाति, सिद्धसेन दिवाकर, जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने जिस प्रकरणात्मक पद्धति का प्रचलन किया था उन प्रकरणो की रचनाओं को आचार्य हरिभद्र ने व्यवस्थित रूप दिया।

बप्पभट्टसूरि—इनकी माता का नाम भट्टी और पिता का नाम ब्रह्मा था। ये भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनकी स्मरणशक्ति बहुत ही तीक्ष्ण थी। एक साथ एक हजार श्लोक एक दिन मे वे कठस्थ कर लेते थे। उनके दीक्षा गुरु का नाम सिद्धसेन था। आठवी शताब्दी के प्रारभ मे इनका जन्म हुआ। कहा जाता है कि ग्यारह वर्ष की लघु वय मे गुरु ने इन्हे आचार्य पद प्रदान किया। ग्वालियर के राजा को इन्होने जैन धर्म मे दीक्षित किया। कन्नौज के राजा तथा गौडा (बगाल) के अतर्गत लक्षणावति के राजो को भी आपने प्रतिबोध दिया था। पचानवे वर्ष की आयु मे आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य शीलांक—इनका विशेष परिचय अनुपलब्ध है। इनका अपर नाम शीलाचार्य व तत्वादित्य भी था। प्रभावकचरित्र के अनुसार उन्होने नौ अगो पर टीकाएँ लिखी थी, किंतु इस समय आचाराग और सूत्रकृताग की ही टीका मिलती है। ये दोनो टीकाएँ महत्वपूर्ण है। इसमे दार्शनिक चिन्तन भी है। विषय को स्पष्ट करने के लिए अन्य श्लोक व गाथाओ का उपयोग भी किया है किंतु उनके रचियता का नाम-निर्देश नही है। इनका कुल निर्वृत्ति था।

श्रीसिद्धर्षिसूरि—ये श्रीमाल के राज्यमत्री श्री सुप्रभदेव के पुत्र थे। इनके गुरु का नाम दुर्गस्वामी था। इनकी अनेक रचनाएँ है उसमे उपमितिभवप्रपच नामक श्रेष्ठ रचना है।

आचार्य अभयदेव—नवागी टीकाकार आचार्य अभयदेव महान प्रतिभासपन्न थे। प्रभावकचरित्र के अनुसार इनकी जन्मस्थली धारानगरी थी। वर्ण की दृष्टि से वैश्य थे। पिता का नाम महीधर और माता का नाम धनदवी था। ये जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। इन्होने स्थानाग समवायाग व्याख्याप्रज्ञप्ति ज्ञाताधर्मकथा उपासकदशा अन्तकृतदशा अनुत्तरोपपातिकदशा प्रश्नव्याकरण विपाक, औपपातिक इन आगमो पर टीकाएँ लिखी, जिनमे पाण्डित्यपूर्ण विवेचनाशक्ति सचमुच ही प्रेक्षणीय है। आगम रहस्यो को बहुत ही सरलता और सुगमता से व्यक्त किया है। इन वृत्तियो के अतिरिक्त प्रज्ञापना, पचाशकसूत्रवृत्ति जयतिहुअण स्तोत्र, पचनिर्ग्रंथी, षट्कर्म ग्रथ-सप्तति पर भी इन्होने भाष्य लिखा। लगभग साठ हजार श्लोको का निर्माण किया।

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचद्र—प्रभावकचरित्र के अनुसार आपका जन्म वि स ११४५ कार्तिक पूर्णिमा को अहमदाबाद के सन्निकट धन्धुका ग्राम मे हुआ। आपके पिता का नाम चाचदेव और माता का नाम पाहिनी था। गृहस्थाश्रम मे उनका नाम चगदेव था और गुरु का नाम देवचद्र था। देवचद्र ने जब चगदेव को देखा तो बडे प्रभावित हुए और माँ से उसे प्राप्त किया। दीक्षा के पश्चात् उसका नाम सोमचद्र रखा गया। गभीर विद्वत्ता को देखकर २१ वर्ष की आयु मे आचार्य पद प्रदान किया गया और सोमचद्र के स्थान पर हेमचद्र नाम रखा गया। आपने गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह जैसे विद्यारसिक नरेश को अपनी प्रतिभा से चमत्कृत किया और उस शैव नरेश को परमार्हत बनाया। आपने शब्दानुशासन, सस्कृतद्वयाश्रय, प्राकृतद्वयाश्रय, अभिधान चिन्तामणि, अनेकार्थसग्रह, निघण्टु, निघण्टुशेष, देशीनाममाला, काव्यानुशासन, योगशास्त्र, प्रमाणमीमासा आदि शताधिक ग्रथो की रचना की। आपने आगमिक, दार्शनिक, साहित्य, सामाजिक और राजनीतिक सभी विषयो पर महत्वपूर्ण ग्रथ लिखे। वस्तुत आप जैन जगत के व्यास है।

आचार्य मलयगिरि—ये उत्कृष्ट प्रतिभा के धनी थे। इनकी टीकाओ मे प्रकाड पाण्डित्य स्पष्ट रूप से झलकता है। विषय की गहनता के साथ भाषा की प्राजलता, शैली की लालित्यता के दर्शन होते हैं। आगम साहित्य के साथ ही गणित, दर्शन और कर्मसिद्धान्त के भी ये निष्णात थे। वर्तमान मे उनके बीस ग्रथ उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त भी उनके ग्रथ थे। आगम के गभीर रहस्यो को तर्कपूर्ण शैली मे उपस्थित करने की अद्भुत कला इनमे थी। मुनिश्री पुण्यविजयजी के शब्दो मे कहे तो

व्याख्याकारो मे उनका स्थान सर्वोत्कृष्ट है।

इस तरह प्रबल प्रतिभा के धनी अनेक मूर्धन्य आचार्य हुए हैं, जिन्होने विपुल साहित्य का सृजन कर सरस्वती के भण्डार को भरा है, किन्तु विस्तारभय से हम उन सभी का यहाँ परिचय नही दे रहे हैं।

सदर्भ एव संदर्भ-स्थल

१ विशेष परिचय के लिए देखिए लेखक का ऋषभदेव एक परिशीलन ग्रन्थ।

२ विशेष परिचय के लिए देखिए लेखक का "भगवान अरिष्टनेमि और कर्म योगी श्रीकृष्ण" ग्रन्थ।

३ विशेष परिचय के लिए देखिए लेखक का ग्रन्थ भगवान पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन"।

४ विशेष परिचय के लिए देखिए लेखक का ग्रन्थ "भगवान महावीर एक अनुशीलन"।

५ अनावश्यक निर्युक्ति ६४३।

६ वही गाथा ६४७-४८।

७ भगवती १-१-८।

८ (क) कल्प सूत्रार्थ प्रबेधिनी (ख) गणधरवाद की भूमिका दलसुख मालवणिया पृ ६६।

९ भगवान महावीर एक अनुशीलन।

१० (क) आवश्यक निर्युक्ति ६५५। (ख) आवश्यक मलयगिरी ३३९।

११ (क) कल्प सूत्र चूर्णि २०१। (ख) आवश्यक निर्युक्ति गाथा ६५८।

१२ आवश्यक निर्युक्ति ६५५।

१३ मण परमोहि पुलाए आहार खवग उवसमेकप्पे।
सजमतिग केवल सिज्झणाय जबुम्मि वुच्छिण्णा।।

१४ दशाश्रुत स्कध चूर्णि।

१५ (क) गुर्वावली मुनिरत्न सूरि। (ख) कल्पसूत्र कल्पार्थ बोधिनी टीका पृ २०८।

१६ आवश्यक चूर्णि भाग २,पृ १८७।

१७ तित्थोगालिय ८०/१/२/

१८ पट्टावली पराग मुनि कल्याणविजय पृ ५१।

१९ जैन परम्परा नो इतिहास भाग १ पृ १७५-७६।

२० बृहत्कल्प भाष्य १/५० ३२७५ से ३२८९।

२१ पज्जोसमणाकप्पणिज्जुत्ती पृ ८९।
(क) श्री निशीथ चूर्णि उ १०।
(ख) भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति।

२२ (क) आवश्यक चूर्णि प्रथम भाग—पत्रा ३९०।
(ख) आवश्यक हरिभद्रयावृत्ति टीका प्रथम भाग-पत्रा २८९।

२३ (क) ऋषिमडल प्रकरणवृत्ती २४ पृ १९३। (ख) उपदशमाला सटीक पत्र २०८।
(ग) परिशिष्ट पर्व १२/५२/, २७४।

२४ भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति पृ ७३।

२५ आवश्यक निर्युक्ति ३६५ से ३७७ (ख) विशेषावश्यक भाष्य २२८ से २२९५ तक।

२६ आवश्यक निर्युक्ति ७६२ (ख)विशेषावश्यक भाष्य २२७९।

२७ नदि चूर्णि पृ ८।

२८ वीर निर्वाण सवत् और काल गणना—कल्याणविजय पृ १०४।

२९ भगवती सूत्र १०/९/६६७।

३० आगम अष्टोत्तरी ७१ देवड्ढिखमासमणजा, पर पर भावओ वियाणेमि।
सिलिलायार ठविया, दव्वेण परम्परा बहुहा।।

३१ देखिए जैन आगम साहित्य मनन और मीमासा ग्रथ लेखक—देवेद्र मुनि।

———○ ○ ○———
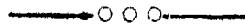
चारित्र धर्मःएक चिन्तन

श्री रमेश मुनि शास्त्री

जो मानव अपनी आत्म-शक्ति पर पूर्ण रूप से विश्वास करती है। वह अपने प्रगाढ-बधनो को सदा के लिए तोड देता है। और अपनी अनन्त-असीम-नैसर्गिक शक्तियो का परिपूर्ण-विकास कर के शाश्वत सिद्धि का लाभ लेता है। सत्य-तथ्य है कि जो जानता है, वही बधनो को तोडता है। ज्ञान की सार्थकता- अधकार को दूर करके अभिनव-आलोक को सम्प्राप्त करना है और चरित्र धर्म की आवश्यकता उस दिव्य प्रकाश मे दृष्टिगोचर होने वाले दोषो को दूर कर आलोकित स्थान को स्वच्छ एव पावन बनाता है।

वास्तविकता यह है कि जिससे तत्व का यथार्थ बोध मिलता है, वह सम्यग्ज्ञान है। जिससे तत्वार्थ पर अविचल-विश्वास प्राप्त होता है। उस दृढ प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहा जाता है। और जिस आचार प्रणालिका के द्वारा अत करण की वत्तियो को नियन्त्रित किया जाता है। जीवन के अतरग और बहिरग को स्वस्थ और शुद्ध रखा जाता है, ऐसी दोषनिर्नाशिनी पद्धति और गुण विकासिनी पद्धति सम्यक चारित्र कहलाती है। यही परम पावन त्रिवेणी है। जिस मे स्नान करने वाला साधक निर्मल, निर्विकार और निष्कलुष बन जाता है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र इन तीन की आराधना करना ही मुक्ति मार्ग है। मोक्ष प्राप्ति मे उसका अपने आप मे महत्व है। चारित्र अध्यात्म-साधना-मार्ग मे गति प्रदान करता है। इसलिए भी चरित्र का जो महत्व है, वह वास्तव मे अपूर्व और अनूठा है। सक्षेप मे चारित्र के सदर्भ मे आलेखन करना, हमारा अभीप्सित विषय है।

आत्मिक-विशुद्ध अवस्था मे स्थिर रहने का अनुष्ठान-विशेष 'चारित्र' हैं। मोहनीय कर्म की प्रमुख प्रकृति दो है—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय के क्षय, उपशम या क्षयोपक्षम से होने वाले विरति परिणाम को चारित्र कहते है। भव्य आत्मा पूर्व सचित कर्मों को दूर करने के लिए सर्व-सावद्य योग की निवृत्ति करते है वही चरित्र कहलाता है। चारित्र का निरुक्त इस प्रकार है—पूर्वबद्ध कर्मों का जो सचय है, उसे बारह प्रकार के तप से रिक्त करना "चारित्र" है। यह निर्जरा रूप चारित्र है। चारित्र सवर रूप भी है। नवीन कर्मो के आश्रव को रोकना सवर रूप चारित्र है। इन दोनो कथनो मे कोई विरोध नही है, बल्कि कर्मो से आत्मा को पृथक करने के दोनो मार्ग है। ये दोनो चारित्र रूप हैं। चारित्र का निरुक्तिलभ्य अर्थ एक और भी है—जो आचरण करता है, अथवा जिसके द्वारा आचरण किया जाता है या आचरण करना मात्र चारित्र है। वास्तव मे जिससे हित को प्राप्त करते हैं और अहित का निवारण करते हैं, उसको चारित्र कहते है। चारित्र वास्वत मे धर्म है और वह मोक्ष-प्राप्ति का साक्षात् कारण है, अमोघ साधन है। परिणाम-शुद्धि के तरतम भाव की अपेक्षा से चारित्र के पाँच भेद हैं, वे इस प्रकार हैं, उसका सक्षेपत स्वरूप भी इस रूप मे है।

१—सामयिक चारित्र। २—छेदोपस्थापन चारित्र। ३—परिहार विशुद्धि चारित्र। ४—सूक्ष्म सपराय चारित्र। ५—यथाख्यात चारित्र।

१ **सामयिक चारित्र**—समभाव मे स्थित रहने के लिए समस्त सावद्य प्रवृत्तियो का त्याग करना सामयिक चारित्र है। राग-द्वेष रहित आत्मा मे प्रतिपल-प्रतिक्षण अपूर्व-अपूर्व निर्जरा से होने वाली आत्म-विशुद्धि का प्राप्त होना सामयिक है। वास्तव मे आत्मा की विरति परिणति को सामयिक चारित्र कहा जाता है।

इस के दो प्रकार हैं—इत्वरिक और यावत्कथित। इत्वरिक सामयिक का भगवान आदिनाथ और भगवान महावीर के शिष्यो के लिए विधान है। जिसकी स्थिति सात दिन चार मास अथवा छह मास की होती है। उसके बाद इसके स्थान पर छेदोपस्थापनीय चारित्र अगीकार किया जाता है। शेष बावीस तीर्थकारो के शासन मे सामयिक चारित्र-यावत् कथित (यावज्जीवन के लिए) होता है। उक्त चारित्र मे महाव्रतो का आरोपण नही किया जाता है। तात्पर्य यह है कि सर्व सावद्य व्यापार का त्याग करना एव निरवद्य व्यापार का सेवन करना सामयिक चारित्र है।

२ **छेदोपस्थापनीय चारित्र**— जिस चारित्र मे पूर्व पर्याय का छेद एव महाव्रतो मे उपस्थापन—आरोपण होता है, उसे छेदोपस्थापनिक चारित्र कहते है। उक्त चारित्र के दो तात्पर्य हैं-(१)—सर्व सावद्य त्याग का छेदश विभागश पच महाव्रतो के रूप

मे उपस्थापित (आरोपित) करना। २—दोष-सेवन करने वाले मुनि के दीक्षा पर्याय का छेद (काट) करके महाव्रतो का पुन आरोपण करना। इसी दृष्टि से छेदोपस्थापनीय चारित्र के दो प्रकार है—निरतिचार और सतिचार। छेद का अर्थ जहाँ विभाग किया जाता है, वहाँ निरतिचार तथा जहाँ छेद का अर्थ-दीक्षा पर्याय का छेदन (घटाना) होता है, वहाँ सातिचार समझना चाहिए, तात्पर्य यह है कि—सावद्य पर्याय रूप पुरानी पर्याय को छोडकर अहिंसा, सत्य अस्तेय आदि पाँच प्रकार के महाव्रत रूपधर्म मे अपनी आत्मा को स्थापित करना छेदोपस्थापनिक चारित्र कहलाता है।

३. परिहार विशुद्धि चारित्र—परिहार का अर्थ है—प्राणिवध से निवृत्ति। परिहार से जिस चारित्र मे कर्म कलक की विशुद्धि (प्रक्षालन) की जाती है। वह परिहार विशुद्धि चारित्र है। इसकी विधि इस प्रकार है—इसकी आराधना नौ साधु मिलकर करते हैं। इसी अवधि अठारह महीने की होती है। प्रथम छह मास में चार श्रमण तपस्या (ऋतु के अनुसार उपवाससे लेकर पंचौला तक की तपश्चर्या) करते हैं। चार श्रमण उनकी सेवा करते हैं। और एक वाचनार्य (गुरुस्थानीय) रहता है। दूसरे छह महीनो मे तपस्या करने वाले सेवा और सेवा करने वाले तप करते हैं। वाचनाचार्य वही रहता है। इसके पश्चात् तीसरी छमाही मे वाचनाचार्य तप साधना करते हैं। शेष साधु उनकी सेवा करते हैं। तप की पारणा सभी साधक आयम्बिल से करते हैं। उनमे से एक साधु वाचनाचार्य हो जाता है। इस दृष्टि से परिहार का तात्पर्यार्थ-तप होता है। उसीसे विशेष आत्म-शुद्धि होती है। जब साधक तप करता है तो प्राणि वध के आरभ- समारंभ के दोष से सर्वथा निवृत्त हो ही जाता है। उक्त चारित्र के दो प्रकार हैं—निर्विश्यमानक और निर्विष्टकायिक। तप करने वाले पारिहारिक साधु निर्विश्यमानक कहलाते हैं। उनका चारित्र निर्विश्य मानक परिहार विशुद्धि चारित्र कहलाता है। तप कर के वैयावृत्य करने वाले अनुपहारिक साधु तथा तप करने बाद गुरु पद पर रहा हुआ साधु निर्विष्टकायिक कहलाता है। उस चारित्र मे विशिष्ट प्रकार का तप प्रधान आचार का पालन किया जाता है, वह परिहार विशुद्धि चारित्र है। इस चारित्र मे कर्मों का और दोषो का विशेष रूप से परिहार होता है।

४. सूक्ष्म संपराय चारित्र—जिस चारित्र में कषाय अति सूक्ष्म सपराय चारित्र कहलाता है। या मोहकर्म का उपशमन या क्षपण करते हुए सूक्ष्म लोभ का वेदन करना सूक्ष्म सपराय चारित्र है। यह चारित्र यथाख्यात चारित्र से कुछ ही कम होता है। सूक्ष्म-स्थूल प्राणियों के वध के परिहार मे जो पूरी तरह अप्रमत्त है, अत्यत निर्बाध उत्साहशील, अखड चारित्र, जिसने कषाय के विषांकुरो को खोट दिया है, सूक्ष्म मोहनीय कर्मके बीज को भी, जिसने नाश के मुख मे ढकेल दिया है, उस परम सूक्ष्म लोभ वाले साधु के सूक्ष्म सपराय चारित्र होता है। यह चारित्र दशम गुणस्थानवर्ती साधुओ को होता है, इसमे केवल लोभ कषाय सूक्ष्म रूप से रह जाता है। यह कथन सिद्धात सम्मत है।

५ यथाख्यात चारित्र—जब चारो कषाय सर्वथा उपशात या क्षीण हो जाता हैं, उस समय की चारित्रिक स्थिति को यथाख्यात चारित्र है। *जैसा निष्कम्प सहज शुद्ध स्वभाव से कषाय-रहित आत्मा का स्वरूप है, वैसा ही आख्यात कहा गया है,* वह यथाख्यात चारित्र है। यह चारित्र गुणस्थान की अपेक्षा से दो विभागो से विभक्त है—उपशमात्मक चारित्र और क्षयात्मक यथाख्यात चारित्र। प्रथम चारित्र ग्यारहवे गुणस्थान वाले साधक को और द्वितीय चारित्र बारहवे आदि ऊपर के गुणस्थानो के अधिकारी महापुरुषो को होती है। यह कथन वस्तुत यथार्थ है।

सारपूर्ण भाषा मे यही कहा जा सकता है कि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान मोक्ष-प्राप्ति के हेतु है, किंतु साक्षात् कारण चारित्र ही है। सयोगी केवल अवस्था में दर्शन और ज्ञान से परिपूर्णता आ जाती है, किंतु चारित्र की पूर्णता के अभाव मे मुक्ति प्राप्त नही होती। ज्यो ही चारित्र पूर्ण हुआ, कि मुक्ति तत्काल हो जाती है, इससे चारित्र की महत्ता प्रकट हो जाती है।

——○○○——

धर्म: क्या, क्यों, किसके लिए?

उप प्रवर्तक श्री राजेन्द्र मुनिजी

'धर्म' शब्द धृञ् धातु से नि सृत है, जिसका अर्थ है—'धारण करना'। धर्म की धारणा शक्ति के आधार पर ही सृष्टि का सतत् सचालन हो रहा है, वह टिकी हुई है। मनुष्य का धर्म है सासारिक बधनो से मुक्त होकर उत्तरोत्तर उत्कर्ष की ओर उन्मुख होना। यह सत्य है कि धर्म की धारणा-शक्ति आत्मा मे निहित है। अत मनुष्य के प्रत्येक कर्म का मूल आत्म-केंद्रित होना चाहिए। महाभारत मे देही के चार पुरुषार्थ प्रकट किए गए है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। भागवत मे भी उन्ही चार 'स्वादो' (रसो) का उल्लेख मिलता है। वेद काल मे प्रवर्तित हमारा ज्ञात सस्कृति काल लगभग ५० शताब्दियो का रहा है, जिससे भारतीय जीवन को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मे ही जाना जाता है। इन चार पुरुषार्थो मे धर्म को आदि स्थान प्राप्त है—इससे इसकी सर्वोपरि महत्ता स्वत सिद्ध हो जाती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिए पतजलि ने कलेवर (शरीर) की अनिवार्यता का जहाँ उल्लेख किया है वहाँ भी कलेवर मे उनका अभिप्राय मानव-देह अथवा मनुष्य-जीवन से ही है। मनुष्य-जीवन धर्म के लिए और धर्म मनुष्य जीवन के लिए है।

मोक्ष जीवन का लक्ष्य है। अर्थ और काम जीवन के दो तट है, जिनके मध्य होकर धर्म की सरिता प्रवाहित रहती है। मानव-जीवन की सफलता उसके धर्ममय होने मे ही है। प्रबुद्ध और चिन्तक साहित्यकार जैनेन्द्र के अनुसार 'सच्चा धर्म वही है, जिसमे अन्तश्चेतना और आंतरिक आह्लादित बढता हुआ मालूम हो। जिसमे चित्त सिकुडता, सिमटता हो—वह अधर्म है।" इस प्रकार धर्म आत्मा के सुख, शाति और विकास मे सहायक होता है।

मनुष्य और धर्म: धर्म और मनुष्य

मनुष्य सचेतन है। अन्य प्राणियो के साथ अनेक समानताएँ होते हुए भी अनेक प्रकार की विशिष्टताओ के आधार पर मनुष्य शेष प्राणि-जगत से श्रेष्ठ और क्षमतावान माना जाता है। उसे कदाचित् उसी आधार पर 'अशरफुल मखलुकात' कहा जाता है। आहार, विहार, भय, मैथुन, निद्रा आदि मे मनुष्य और अन्य प्राणियो मे साम्य है। यह तो सजीव होने का निम्नतम अनिवार्य आधार है। इस कसौटी पर खरा उतरने वाला नि सदेह सजीव है, किंतु सजीवता मात्र मे मानव के समग्र स्वरूप का सगठन नही हो जाता। मानव को मानव बनाने वाले, उसे अन्य प्राणियो मे भिन्न और श्रेष्ठ स्तर पर अवस्थित करने वाले अन्य लक्षणो से सपन्न होना उसके लिए अनिवार्य है। वह भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति और शारीरिक भूख की शाति मात्र से तृप्त हो जाने वाला प्राणी नही है। उसके लिए विज्ञान एक मानसिक जगत् भी है। उसकी इस जगत् से सबद्ध मानसिक आवश्यकताएँ भी होती है। यह सचेतनता का मूल है। वह इष्ट- अनिष्ट का विवेक रखता है, तद्नुरूप लक्ष्य-निर्धारण की क्षमता रखता है और उन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए मार्गों का अन्वेषण करते रहने की स्वभाविक प्रवृत्ति भी उसमे रहती है। एक घोर अतृप्ति उसमे बस खाती रहती है, जो उसे उच्च से उच्चतर आदर्शो की ओर अग्रसर रहने की प्रेरणा देती है। वह अधिकाधिक रूप से मानवोचित जीवन जीने का अभिलाषी होता है। यह वह अतर रखा है, जो मनुष्य को शेष प्राणी-वर्ग से पृथक करती है। सोचने-समझने और निर्णय करने की शक्ति अन्य प्राणियो मे नही होती। न ही वे विवेक का प्रयोग कर अपने जीवन का कोई आदर्श कल्पित कर पाते है और न लक्ष्य ही निर्धारित कर पाते हैं। मनुष्य तो ज्ञान अर्जित कर इस रहस्य से अवगत हो जाता है कि मानव-देह धारण करने का जो अवसर मिला है, उसका अधिकतम सदुपयोग किस रूप मे किया जा सकता है। उसके समक्ष इतिहास की व्यापक पटी है, जिस पर महापुरुषो के जीवन चरित्र हैं। वह इन चरित्रो से प्रेरणा लेता है, वैसे ही आचरण का अभ्यास करता है, मौलिक रूप से भी जीवन की श्रेष्ठताओ का अनुभव कर उनका लाभ लेते हुए अनेकोनेक उपलब्धियो के योग्य स्वय को बनाता चलता है। यह सब कुछ अन्य प्राणियो द्वारा कहाँ सभव हैं।

मनुष्य के लिए सर्वाधिक प्रिय विषय उसका जीवन ही है। अन्य प्रिय विषयो का आधार भी यही जीवन है। मनुष्य का जीवन चाहे कितना ह दु खमय क्यो न हो, वह फिर भी जीना चाहता है और मृत्यु को यथासभव रूप से टालने की ओर ही उसकी प्रवृत्ति रहती है। यही नही वह अपने जीवन की उन्नति के लिए भी सदा सचेष्ट रहता है। काका कालेलकर ने तो मनुष्य की इसी प्रवृत्ति को

धर्म का आधार बताया है। उनका कथन है कि —"**अपना जीवन कैसे सुधरे, अर्थपूर्ण बने, उन्नति की ओर जाय—इसकी चिंता में मनुष्य ने अपने लिए धर्म बनाया और धर्म का अनेक प्रकार से विस्तार किया।**"

इस प्रकार धर्म मानव-जाति का कल्याणकारी साधन है, उसके उत्कर्ष का सहायक है, उसके आदर्श स्वरूप का रक्षक और उसकी लक्ष्य-प्राप्ति मे उपयोगी सिद्ध होने वाला उपकरण है। घोर अनास्था और भौतिकता के युग मे भी धर्म सदा अस्तित्व मे रहता है। हाँ, इतना अवश्य है कि कभी धर्म पुष्ट रूप मे रहता है, तो परिस्थिति-वश कभी वह विरल रूप मे रह जाता है।कभी वह परम सशक्त हो जाता है, तो कभी क्षीण, किन्तु धर्म अपने अस्तित्व को कभी खोता नही है। घोर अनिच्छा भी मनुष्य को धर्म के समग्रत त्याग के योग्य नही बना पाती। धर्म और मनुष्य का अटूट नाता है। प्राचीन काल की एक कथा है एक गुरुजी और उनका शिष्य गगा-स्नान के लिए गए थे। शीत ऋतु की पिछली रात्रि का समय था। विशेष रूप से शिष्य शीत से अधिक पीडित था। गगा-तट पर खडे होकर उसने देखा कि नदी मे दूर से कोई काला कम्बल बहता हुआ चला आ रहा है। शिष्य के पास कम्बल का अभाव था और इस अभाव ने उसमे स्फूर्ति भर दी। वह जल की शीतलता का भय माने बिना ही पानी मे छलाँग लगा गया। कम्बल तक तो वह पहुँच गया, किंतु अब वह कम्बल के साथ-साथ आगे बहने लगा। चाहते हुए भी वह तट की ओर नही बढ पा रहा था। गगुरुजी चिन्तित हो उठे। उन्होने शिष्य को पुकारकर कहा कि वह कम्बल को छोड दे और स्वय तट पर आजाय। शिष्य ने उत्तर मे कहा कि —गुरुजी! मैं तो कम्बल को छोडने कौ तैयार हूँ, किंतु कम्बल मुझे नही छोड रहा है। वास्तव मे एक भालू गगा मे बहता चला आ रहा था, जिसे शिष्य ने कम्बल समझ लिया था। वह कम्बल उसे छोडता न था।

मनुष्य ने भी इसी प्रकार आत्म-हितार्थ धर्म को ग्रहण किया है। आज वह उस कम्बल को छोड देना चाहता है, किंतु कम्बल उसे नही छोड रहा है। आज का मनुष्य धर्म के प्रति चाहे कितना ही उदासीन क्यो न रहे, उसके मन मे किसी-न-किसी रूप मे धर्म का अवश्य ही निवास है। आत्मोत्थान, स्वजीवन-सुधार की ओर जब वह उन्मुख होता है, तभी उसमे वह प्रच्छन्न धर्म-प्रवृत्ति जागरूक हो उठती है। वह धर्म के महत्व को स्वीकारते हुए उनके आश्रय मे आ जाता है। आज मनुष्य का एकाकी जीवन सभव नही है। उसे समाज के अग के रूप मे जीवन यापन करना होता है। वह एक समुद्र की नन्ही सी बूद है। उस समुद्र के बिना उसका अस्तित्व नगण्य रह जाता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे सबके साथ सब के लिए और सब के अनुरूप जीवन जीना होता है। वह चाहते हुए भी इस प्रकार का जीवन कठिन अनुभव करता है, जो सभी के हित मे हो। ऐसी परिस्थिति मे धर्म ही उसका मार्ग-दर्शक होता है, प्रेरक और शक्तिदाता होता है।

धर्म शब्द का विश्लेषणात्मक विवेचन भी इस स्थल पर अप्रासगिक नही होगा। धर्म का शब्दार्थ इसके पर्याय 'स्वभाव' शब्द स भी किसी सीमा तक स्पष्ट होता है। ससार के समस्त दृश्यमान पदार्थ दो कोटियो मे विभक्त किए जाते हैं—(१) जड (निर्जीव) और (२) चेतन (सजीव)। वस्तुमात्र की जो प्रकृति है, जो स्वभाव है, उसे उस वस्तु का धर्म कहा जाता है। इसे गुण-धर्म भी कह दिया जाता है। जैसे हवा का धर्म है—सचरणशील रहना, पानी का धर्म है—प्रवाहित रहना, अग्नि का धर्म है—ताप प्रसारित करना आदि। और इसी प्रकार आत्मा का धर्म होता है—चैतन्य। यही सचेतना वह मूल अतर है, जो प्राणी और निर्जीव मे पार्थक्य स्थिर करती है। सजीव ही भावना-सकुल होता है, विभिन्न विकारो से ग्रस्त होता है, सोचने-समझने की शक्ति रखता है, विवेक-बुद्धि का वह स्वामी होता है। जड वस्तुएँ यह विशेषता नही रखती। अत इस विशेषता से सपन्न सजीवो को 'चेतन' कहकर उन्हे शेष 'जड' से पृथक देखा जाता है। यह चेतनता का तत्व मनुष्य मे सर्वाधिक पाया जाता है। अन्य प्राणियो की अपेक्षा मनुष्य अधिक स्पष्टता और गहनता के साथ चिन्तन कर पाता है, निर्णय कर पाता है, उचित और अनुचित का भेद कर पाता है और उचित का स्वागत तथा अनुचित का त्याग कर सकता है। मनुष्य होकर उसको क्या करना चाहिए। औरकिससे बचना चाहिये? क्या नीति और क्या अनीति है? इसका निर्धारण वह अपने चैतन्यधर्म के आधार पर ही कर पाता है। वह कर्तव्य-मार्ग—जिसके अनुसरण से मनुष्य का उत्थान सभव है, जिससे मोक्ष सुलभ है, जिससे मानव-जीवन के इस अवसर का उचित और अधिकतम सदुपयोग सम्भव है—धर्म कहलाने लगा। मानव-जीवन का श्रेष्ठतम रूप—ऐसा रूप, जिसके कारण मनुष्य समाज मे रहकर सभी के लिए जी भी सकें और अपने कल्याण का साधन भी जुटा सके—धार्मिकता है।

दर्शन और धर्म

उचित और अनुचित का निर्धारण करना धर्म का सिद्धात-पक्ष है, नीति है, उपदेश है। धर्म-प्रवर्तको ने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार धर्म के इस मार्ग की व्याख्या की है, अमुक कार्य करने अथवा नही करने का उपदेश दिया है। यही सिद्धात-

पक्ष धर्म के स्वरूप-सगठन का कार्य करता है। इसे दर्शन कहा जाता है। धर्म का यह दर्शन-पक्ष केवल विचार है, मनन है, एक मार्ग है, जो औचित्य द्वारा समर्थित और शुभ की प्राप्ति के लिए सशक्त साधन है। किंतु मात्र यही दर्शन धर्म का सर्वस्व नही है। लक्ष्य को पहचान लेने से ही यात्रा की सफलता नही आँकी जा सकती। सफलता के लिए आवश्यक है—गतिशीलता और लक्ष्य-प्राप्ति। इसी प्रकार मात्र नीतियो और कर्तव्यो का निर्धारण भी अपर्याप्त रहता है। जीवन के उत्कर्ष के लिए, मोक्ष-प्राप्ति के लिए उस मार्ग का, उन नीतियो और कर्तव्यो का अनुसरण भी अतीव आवश्यक है। यह धर्म का आचार-पक्ष है। इस पक्ष के अभाव मे धर्म का स्वरूप पूर्णत गठित नही हो पाता, उसमे सफलता का तत्व नही जुड पाता। अत आचार ही धर्म का सर्वस्व है।

दर्शन और आचार दोनो परस्पर पूरक होते है। एक के अभाव मे दूसरे का महत्व नही रहता। दर्शन इस विषय का विवेचन करता है कि आत्मा क्या है, लोक क्या है, परलोक क्या है, परमात्मा क्या है मुक्ति क्या है आदि, तो आचार उन व्यवहार समूहो को स्पष्ट करता है, जिनसे मुक्ति सम्भव है। मुक्ति के बिना केवल इन विषयो का ज्ञान हो जाना व्यर्थ रहेगा और इन विषयो के ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव ही नही होगा। जब तक हम यह नही जान लेगे कि आत्मा और परमात्मा क्या है, उनमे क्या अन्तर और क्या सम्बन्ध है, इन दोनो की किस स्थिति को मुक्ति कहा जाता है तब तक हम मुक्ति की दिशा मे प्रयत्न करने (आचार) की क्षमता ही नही रख पायेगे। आत्मा व परमात्मा के स्वरूप से अपरिचित मनुष्य स्वय को परमात्मा बनाने की साधना भला कैसे कर पाएगा। दर्शन से मनुष्य के विचारो का सगठन होता है। विचारो का जैसा स्वरूप होगा—यह निश्चित ही है कि वैसा ही उसका आचार भी होगा। इस जगत् को ही सत्य मानने वाला व्यक्ति परलोक के अस्तित्व को नकारेगा। परिणामत वह भौतिकता मे विश्वास करने लगेगा और भोगवादी बन जाएगा। इसके विपरीत जीवात्मा, परमात्मा, परलोक आदि मे विश्वास रखने वाला व्यक्ति भिन्न ही आचार वाला होगा।

इस प्रकार दर्शन तत्वज्ञान को स्पष्ट करता है और यह भी धर्म का ही एक रूप है। इसे धर्म का साध्य रूप कहा जा सकता है और आचार या चारित्र साधन रूप है। एक से यह स्पष्ट होता है कि आत्मा के परमात्मा होने की स्थिति क्या है? और दूसरे मे उस स्थिति (साध्य) को प्राप्त करने के लिए उचित प्रयत्न या साधन सन्निहित होते है। वस्तुत दर्शन और चारित्र अथवा और विचार और आचार अन्योन्याश्रित रहते है। इनके स्वतत्र अस्तित्व की कल्पना भी नही की जा सकती। ये दोनो पक्ष अपने योग द्वारा ही धर्म के समग्र स्वरूप को सगठित करते हैं। हाँ, यह भी सत्य है कि यद्यपि विचारात्मक और आचारात्मक दोनो ही रूपो मे धर्म विद्यमान रहता है, तथापि प्रचलन मे अब रूढि ऐसी हो गयी है, जिसके अधीन विचारात्मक पक्ष को दर्शन कहा जाने लगा है और धर्म के नाम मे केवल आचारात्मक पक्ष को ही ग्रहण किया जाता है। साथ ही इस आचार को (जो धर्म का अब व्यक्त रूप रह गया है) आधार देने वाला अब भी दर्शन या विचार ही है और इस प्रकार धर्म को दर्शन-हीन नही कहा जा सकता है।

जो भी हो, धर्म का ऐसा रूप भी अनिवार्य है, जो व्यवहार हो। यदि ऐसा न हुआ तो उसका अस्तित्व मात्र पुस्तकीय रह जायगा। वर्तमान युग के सदर्भ मे धर्म के उचित रूप को समझना भी आवश्यक है। वस्तु-स्थिति यह है कि धर्म मानव-जीवन की वस्तु है। आज मानव मे तर्क प्रवृत्ति सुविकसित है और वह परलोक के सुधार के लिए इहलोक के जीवन की सर्वथा उपेक्षा नही कर सकता। ऐसी स्थिति मे जब तक धर्म-साधना का साध्य इस जीवन के उत्थान और सुधार को नही बताया जाता तब तक आज के युग मे 'धर्म' के प्रति आस्था व श्रद्धा और तर्क दोनो का सामजस्यपूर्ण आधार सभव नही। **"श्रद्धा और तर्क मानव-जीवन के विशेष गुण हैं। केवल श्रद्धा अन्धश्रद्धा न बन जाये, इसलिए तर्क की आवश्यकता है और केवल तर्क कल्पना मात्र न रह जाए इसलिए श्रद्धा की आवश्यकता है।"** धर्म के साथ इन दो अनिवार्य तत्वो को जोडा जाना आज की परिस्थिति मे अनिवार्य हो उठा है। तभी धर्म का अपने सार्थक और उपयोगी रूप मे रहना सभव है। श्रद्धा व तर्क का समन्वय जिस धर्म से होता है, वह जीवन को ऊर्ध्वमुखी अवश्य ही बनाता है। इस जीवन की चिंता करने वाला धर्म मनुष्य के जीवन को ऐसा रूप भी अवश्य देगा, जो व्यक्ति के लिए तो आदर्श हो ही, साथ ही इस माध्यम से समाज के आदर्श रूप से सचालन मे भी सहयोगी हो। धर्म समाज मे शान्ति, सुख, व्यवस्था, उत्कर्ष, न्याय और सद्‌गुणो का पोषक भी होता है। इस प्रकार धर्म तो व्यापक, मानव-जीवन को अपना

लीला क्षेत्र मानता है। धर्म का संबंध मानव-जीवन से है, उसी प्रकार मानव-जीवन के लिए धर्म की सृष्टि हुई है। स्वर्गवासी देवताओ को उत्कर्ष की कामना नही, वे तो सुख मे सतत निमग्न रहने वाले है—वे चारित्रपालन की आवश्यकता ही अनुभव नही करते। नारकीय जन भी इस चारित्रनिर्वाह मे अक्षम है। ऐसी स्थिति मे मानव ही चारित्रधर्म के निर्वाह की योग्यता और पात्रता रखता है, उसी के हित के लिए उसी की श्रेष्ठ विभूतियो ने धर्म की रचना की है। जीवनोत्थान का सबल साधन धर्म ही रहा है, और रहेगा। आत्मा का उत्कर्षकारी साधन ही धर्म के रूप मे साकार होता है। ऐसी विराट भूमिका वाले साधन धर्म को देश और काल की सीमाओ मे आबद्ध नहीं किया जा सकता। वह सर्वग है, उसके पालन के लिए किसी वर्ग-विशेष को ही अधिकार प्राप्त हो और शेष को इससे वंचित रखा जाये—वास्तविक धर्म के साथ ऐसा कभी नही होता। धर्म मानव मात्र के लिए ग्राह्य है और मानव मात्र के कल्याण के लिए धर्म है। इसमे किसी सकोच के लिए अवकाश नही।

एक भ्रान्ति की ओर भी हमारा ध्यान केन्द्रित होना चाहिये। आचार ही धर्म का मूल रूप है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि धर्म का संबंध मन और वचन से नही होता। जब-जब मन और वचन से पृथक होकर धर्म केवल कायिक आचरण से सम्बद्ध हो गया है तब-तब वह विकार-ग्रस्त होकर अपने मौलिक स्वरूप से च्युत हुआ है। धर्म का वह विकृत रूप मात्र सप्रदाय रह जाता है और बाह्याचारो के आडम्बर के अतिरिक्त कुछ भी सार उसमे अवशिष्ट नही रह पाता। ऐसा धर्म मानव-जीवन के लिए एक प्रवंचना बन जाता है, उससे हित के स्थान पर घोर अहित होने लगता है, उत्थान के स्थान पर वह पतन का स्थान बन जाता है।

धर्म की सार्वदेशिक व सार्वकालिक एकरूपता

धर्म अपने मौलिक स्वरूप मे सदा एक-सा रहा है। न तो काल की परते उस स्वरूप को परिवर्तित कर पाती हैं और न देशान्तर से उसमे कोई स्वरूप परिवर्तन आता है। जो धर्म का वास्तविक रूप यहाँ है, वही सर्वत्र है और जो आज है, वही दूर अतीत मे भी रहा है और भविष्य मे भी रहेगा। धर्मतत्व के चिन्तको का अपना-अपना दृष्टिकोण अवश्य रहा है और तदनुरूप धर्म की बाह्य आकृतियो मे नगण्य सा अन्तर दिखायी देता है। वास्तविकता यह है कि बाहरी भेद दिखायी देते हुए भी धर्म के विभिन्न रूपो की केन्द्रस्थ आत्मा एक ही है। धर्म सत्य है और सत्य सदा एक ही होता है। अन्तर उस सत्य की शोध-विधि मे हो सकता है, अन्तर उस सत्य के प्रतिपादन मे हो सकता है। इसी के आधार पर विभिन्न धर्म अस्तित्व मे आ जाते हैं। चिन्तको के इस दृष्टिवैभिन्य के कारण धर्म के नाना रूप विश्वपटी पर चित्रण पा सके है। एक सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि आज विश्व मे २२०० सम्प्रदायो के रूप मे धर्म प्रचलित है और अब भी नव-नवीन सम्प्रदाय अस्तित्व ग्रहण करते चले जा रहे है। इनमे से ७०० अकेले भारत मे ही हैं। इनमे से कुछ स्वय को सर्वथा मौलिक स्वीकार करते है, कुछ कतिपय प्रचलित सम्प्रदायो की श्रेष्ठताओ के ग्रहण से अस्तित्व मे आये है। किन्तु ध्रुव सत्य यही है कि धर्म एक है और केवल एक ही है। वही धर्म का मौलिक व शाश्वत रूप है। वेदो मे भी इस मत का समर्थक उल्लेख मिलता है—**"सत् एक है, विद्वान अनेक प्रकार से उसका प्रतिपादन करते हैं।"** 'तथागत बुद्ध ने भी कभी इस आशय का दम्भ नही किया कि मैंने नवीन धर्म का प्रवर्तन किया है। उनका विनय तो इस स्पष्टोक्ति मे भाषित हुआ है कि मैंने अरिहन्तो द्वारा अपनाये गये पथ पर यात्रा की है, जो अत्यन्त प्राचीन है। इस मार्ग पर गतिशील रहकर ही मुझे कई तत्वो के रहस्य ज्ञात हुए हैं।

धर्म के स्वरूप की यह सार्वकालिक एकता और शाश्वतता भगवान महावीर स्वामी के शब्दो से और अधिक स्पष्ट हो जाती है। उन्होने घोषित किया था कि **जो जिन, अरिहन्त, भगवन्त भूतकाल में हुए, वर्तमान काल मे हैं, भविष्य मे होंगे-उन सबका एक ही शाश्वत धर्म होगा—एक ही ध्रुव प्ररूपणा होगी कि किसी भी जीव की हिंसा मत करो** ।' अपने उपदेश मे भगवान ने शिक्षा दी है कि किसी को मत सताओ, किसी के पराधीन मत बनो और न किसी को अधीन बनाओ। भला इन मानवीय आदर्शों को किसी भी देश या काल का कोई धर्म कभी नकार सकता है? क्या कोई धर्म ऐसा है जो इस प्रकार के आदर्शों का विरोधी हो अथवा जो घोषित करता हो कि ऐसे सिद्धान्त उसके लिए आधारभूत स्थान नही रखते? यही कारण है कि एक ही सत्य को उजागर करने का प्रयत्न सभी धर्मों मे किया गया है—यह मान्यता दृढ़ता के साथ स्थापित हो गयी है और

धर्म के विभिन्न रूपो मे होते हुए भी अन्तत धर्म को एक ही माना गया है। इस ध्रुव सत्य को जब मानव-जाति स्वीकार कर लेगी तो धर्म के नाम पर उत्पन्न होने वाले उपद्रव और जघन्य काण्ड स्वत ही दमित और शमित हो जाएँगे और मानवीय सौहार्द का ऐसा सरल वातावरण बन जायेगा, जिसमें बन्धुत्व, साहचर्य, स्नेह और करुणा का साम्राज्य होगा। धर्म भी तब अपनी भूमिका की सफलता अर्जित कर लेगा और विश्व की मानवता अपने यथार्थ स्वरूप को ग्रहण कर धन्य हो उठेगी। धर्म के इस सार्वभौमिक स्वरूप को जब सभी स्वीकार कर लेगे तो धर्म मानवता के लिए व मानवता धर्म के लिए सक्रिय हो जायेगी। आवश्यकता दृष्टिकोण को व्यापक बनाने की ही है।

१ 'एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' —ऋग्वेद
२ "सव्वे जीवा न हन्तव्वा" —स्वामी महावीर

———○ ○ ○———

आत्म-सरोवर

मानव को सरोवर के उदाहरण से शिक्षा लेनी है। उसकी बनावट के समान ही अपनी आत्मा को बनाना है। आत्मा रूपी तालाब मे शुभ कर्मरूपी जल इकट्ठा करना चाहिए और तालाम के बाँध के समान ही आत्मारूपी तालाब मे बाँध बाँधना चाहिए। कैसे बधेगा वह बाँध? और उसके पश्चात निर्जरा करेगे। जब तक व्रत प्रत्याख्यान तथा तप रूपी बाँध इस आत्मारूपी तालाब मे नही बाँधा जाएगा तब तक अशुभ कर्म रूप गन्दा व दुर्गन्ध युक्त जल अदर आने से नही रुकेगा।

-आचार्यश्री आनन्दऋषिजी म

संत-सम्मेलन : एक चिन्तन

उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी महाराज

किसी भी धर्म, समाज और राष्ट्र को चिरकाल तक अवस्थित रहना है तो उसका एक ही मार्ग है स्नेह, सद्भावना और संगठन। जीवित रहने का अर्थ है– मान मर्यादा के साथ, इज्जत और प्रतिष्ठा के साथ शानदार रूप में जीना। जीने के लिए पहले विचार शुद्धि आवश्यक है। विचार एक शक्ति है, तो आचार जीवनोत्थान का प्रशस्त पथ है। यदि विचार प्रकाश है तो आचार उस प्रकाश कीअभिव्यक्ति है। साधना के महामार्ग पर बढ़ने के लिए विमल विचार और विशुद्ध आचार की आवश्यकता है। यदि विचार में विवेक का अभाव है तो वह विचार विपथ की ओर ले जाएगा, और यदि आचार में विचारों के निर्मल आलोक का अभाव है तो वह आचार अनाचार बन जाएगा। इसीलिए जैन धर्म ने ज्ञान और क्रिया दोनों के सुमेल पर बल दिया। जब विचारों का आलोक मंद पड़ने लगा तब विचारों को सुव्यवस्थित बनाने हेतु पाँच बार संत सम्मेलन हुए और जब आचार में शैथिल्य आया तब भी सम्मेलन हुए। इस प्रकार जैन परंपरा में दोनों प्रकार के सम्मेलन समय-समय पर हुए हैं।

विचार सम्मेलन आगम वाचना के रूप में विश्रुत है। ये वाचनाएँ श्रमण भगवान महावीर के परिनिर्वाण के पश्चात् हुईं। प्रथम वाचना वीर निर्वाण के १६० वर्ष के बाद पाटलीपुत्र में हुई थी। उस समय द्वादश वर्षीय भीषण दुष्काल के कारण श्रमण संघ छिन्न-भिन्न हो गया। अनेक बहुश्रुत वीरश्रमण क्रूर-काल के गाल में समा गए। अनेक विघ्न बाधाओं के कारण व्यवस्थित रूप से श्रुत साहित्य का परावर्तन नहीं हो सका, जिस कारण से आगम की अनेक कड़ियाँ विशृंखलित हो गईं। आचार्य हरिभद्र कृत उपदेश पद के अनुसार जितने आचार्य विद्यमान थे, वे सभी पाटलीपुत्र में एकत्रित हुए, उन्होंने ११ अंगों का संकलन किया। बारहवें दृष्टिवाद के ज्ञाता भद्रबाहु स्वामी नेपाल में महाप्राण ध्यान की साधना कर रहे थे संघ की प्रार्थना को सम्मान देकर नेपाल में रहकर उन्होंने बारहवें अंग की वाचना देने की स्वीकृति प्रदान की। मुनि स्थूलिभद्र ने सिंह का रूप बनाकर बहिनों को चमत्कार दिखलाया[1] जिसके कारण भद्रबाहु स्वामी ने आगे वाचना देने का कार्य बंद किया। संघ के अनुनय-विनय करने के पश्चात उन्होंने मूल रूप से अंतिम चार वर्षों की वाचना दी, पर अर्थ की दृष्टि से नहीं। शाब्दिक दृष्टि से स्थूलभद्र चौदह पूर्वी थे, किंतु अर्थ की दृष्टि से दस पूर्वी ही रहे।[2] यह सम्मेलन सर्वप्रथम सम्मेलन था और वह सम्मेलन पूर्ण रूप से यशस्वी रहा।

द्वितीय सम्मेलन पुनः आगम संकलन की दृष्टि से ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दी के मध्य में हुआ। सम्राट खारवेल जैन धर्म के परम उपासक थे। हाथी, गुफा अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने उड़िसा के उमारी पर्वत पर जैन मुनियों का एक संघ बुलाया था, और मौर्य काल में जो अंग विस्मृत हो गए थे उनका पुनः प्रस्तुत सम्मेलन में उद्धार कराया गया था।[3] हिमवन्त थेरावली[4] ग्रन्थ में भी महाराजा खारवेल के द्वारा प्रवचन का उद्धार करवाने का स्पष्ट उल्लेख है।

तृतीय सम्मेलन आगम संकलन की दृष्टि से वीर निर्वाण ८२७ से ८४० के मध्य में मथुरा में हुआ। द्वादशवर्षीय भीषण दुष्काल के कारण श्रमण संघ की स्थिति बहुत ही गंभीर हो गई थी। आहार के अभाव में अनेक वृद्ध और बहुश्रुत मुनि आयु पूर्ण कर गए थे। और युवक मुनि आहार की अन्वेषणा हेतु बिहार प्रान्त को छोड़कर अन्य दूर प्रदेशों में चले गए थे। क्षुधा परिषह से संत्रस्त मुनि अध्ययन-अध्यापन धारण और प्रत्यावर्तन नहीं कर सके जिससे अंग और उपांग साहित्य का भी अर्थ की दृष्टि से बहुत सारा भाग नष्ट हो गया। दुर्भिक्ष समाप्त होने पर स्कन्दिलाचार्य के नेतृत्व में यह सम्मेलन हुआ। जिन-जिन श्रमणों को जितना-जितना स्मरण था, उनका संकलन किया गया। यह सम्मेलन मथुरा में होने से इस आगम वाचना को माथुरी वाचना कहते हैं। और आचार्य स्कन्दिल के नेतृत्व में होने से यह स्कन्दिली वाचना भी कही जाती है।[5]

नन्दीसूत्र की चूर्णि और वृत्ति के अनुसार ऐसा भी माना जाता है कि श्रुत ज्ञान किञ्चित मात्र भी नष्ट नहीं हुआ था। दुर्भिक्ष में आचार्य स्कन्दिल को छोड़कर शेष जितने भी अनुयोग धर श्रमण थे वे सभी स्वर्गवासी हो चुके थे। इसलिए आचार्य स्कन्दिल ने पुनः अनुयोग का प्रवर्तन किया।'

चतुर्थ सम्मेलन वल्लभी सौराष्ट्र मे हुआ। यह सम्मेलन जिस समय पूर्व और मध्यभारत में विचरण करने वाले श्रमणों का सम्मेलन मथुरा में हुआ था। उसी समय अर्थात वीर निर्वाण ८२७ से ८४० के बीच दक्षिण और पश्चिम में विचरण करने वाले श्रमणो का सम्मेलन वल्लभी मे हुआ। इस सम्मेन का नेतृत्व आचार्य नागार्जुन ने किया। वहाँ पर जो संत एकत्रित हुए थे, उन्हें बहुत कुछ विस्मृत हो चुका था, जो कुछ उन्हे स्मरण था, उसे इस सम्मेलन मे संकलित किया गया। यह वाचना वल्लभी वाचना और नागार्जुनीय वाचना के रूप मे जानी और पहचानी जाती है।'

आगम वाचना की दृष्टि से पाँचवाँ सम्मेलन वीर निर्वाण की दसवी शताब्दी ९८० वर्ष या ९९३ (ईस्वी सन् ४५४-४६६) मे वल्लभी मे हुआ। इस सम्मेलन के अध्यक्ष देवर्धिगणि क्षमाश्रमण थे। देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ११ अंग और एक पूर्व से भी अधिक श्रुत के ज्ञाता थे। स्मृति की दुर्बलता, परावर्तन की शून्यता धृति का ह्रास और परपरा की आदि अनेक कारणो से श्रुत साहित्य का अधिकाश भाग नष्ट हो गया था। इस सम्मेलन मे विस्मृत श्रुत को सकलित व सग्रहित करने का प्रयास किया गया। देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने अपनी प्रखर प्रतिभा से उस सकलित श्रुत को पुस्तकारूढ किया, उसके पूर्व जो मथुरा और वल्लभी मे सम्मेलनो के अवसर पर वाचनाएँ हुई, उन दोनो वाचनाओ का समन्वय कर उसमे एकरूपता लाने का प्रबल प्रयास किया गया। 'जिन स्थानो पर मतभेद की अधिकता रही, वहाँ माथुरी वाचना को मूल मे स्थान देकर वल्लभी वाचना के पाठो को पाठान्तर मे स्थान दिया। यही कारण है कि आगमो के व्याख्या ग्रन्थो मे यत्र-तत्र 'नागार्जुनीयास्तु पठन्ति' इस प्रकार का निर्देश मिलता है। यह आगम वाचना की दृष्टि से अतिम सम्मेलन था। इसके पश्चात आगमो के सकलन की दृष्टि से कोई सर्वमान्य वाचना नहीं हुई। देवर्धिगणि के पूर्व जो आगम वाचनाएँ हुई उनमे आगमो का लेखन हुआ हो ऐसा स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नही है। वे आगम श्रुति रूप मे ही चलते रहे। योग्य शिष्य के अभाव मे गुरु ने वह ज्ञान शिष्य को प्रदान नही किया जिसमे वह श्रुत साहित्य धीरे-धीरे विस्मृत होता चला गया।

यह एक ज्वलत सत्य है कि दुष्काल के कारण जिस प्रकार श्रुत साहित्य विच्छिन्न हुआ उसी तरह आचार मे भी शिथिलताएँ आई जिसके फलस्वरूप समय-समय पर क्रियोद्धार हुए थे। वे क्रियोद्धार आचार क्रान्ति के प्रतीक हैं।

मानव समाज बिना सगठन के कोरे कपाट के सदृश है। शारीरिक सुरक्षा की दृष्टि से उस कपाट का विशेष उपयोग नही, सगठन रहित मानव समाज की भी यही स्थिति है। बिना सगठन के न सस्कार शुद्ध होते हैं और न ही सहभागी ही बन पाते हैं। सगठन रहित जीवन नीरस, स्वार्थी जीवन है। एकाकी जीवन पर किसी का विश्वास नहीं होता। सगठित जीवन ही सुसस्कृत-परिष्कृत तथा सधा हुआ जीवन है। एतदर्थ 'सघे शक्ति कलौयुगे' कहा गया है। बिना सगठन के कोई भी धर्म, सम्प्रदाय और राष्ट्र विकास के पथ पर नही बढ सकता। स्थानकवासी समाज सदा ही क्रान्तिकारी समाज रहा है, उसका जन्म ही सत्य की अन्वेषणा और धर्म के विशुद्ध निराडम्बर आचरण को लेकर हुआ है। उस सम्प्रदाय के मूल मे तप-त्याग-सयम और विशुद्ध आचरण प्रमुख रहा है। धर्मप्राण वीर लोकाशाह के क्रान्तिकारी उद्घोषणा के पश्चात् पूज्य श्री जीवराजजी म , आचार्य श्री लवजी ऋषिजी म , आचार्य श्री धर्मसिहजी म , आचार्य श्री धर्मदासजी म और आचार्य श्री हरजी म आदि पाँच महापुरुषो ने क्रियोद्धार कर विशुद्ध धर्म का रूप जन-मानस के सामने प्रस्तुत किया। उसके पश्चात् विकसित होकर पाँच आचार्यों की परंपरा २२ सप्रदाय के रूप मे विश्रुत हुई।

सवत् १८१० वैशाख शुक्ला ५ मगलवार को पचेवर गाँव मे आचार्य प्रवर श्री अमरसिहजी के नेतृत्व मे एक सत सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन मे कानजी ऋषि सप्रदाय के आचार्य श्री ताराचंदजी म , श्री जीवराजजी म , श्री त्रिलोकचंदजी म ., एवं आचार्य श्री हरिदासजी म के अनुयायी श्री मलूकचदजी म , आर्याजी फूलाजी म , आचार्य श्री परशरामजी म के आज्ञानुवर्ती खेतसिहजी म ।, खीवसिहजी म तथा आर्या श्री केशरजी म आदि सत-सती वृन्द पचेवर ग्राम मे एकत्रित हुए और परस्पर प्रेमभाव के वर्णो मे मिले और एक दूसरे से साम्भोगिक सबध प्रारंभ किया तथा श्रमण सघ की उन्नति के लिए अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी पारित

किए गए। इस समय आचार्य श्री अमरसिंहजी म. के गुरु भ्राता दीपचदजी म. एवं प्रवर्तिनी महासती भागाजी भी उपस्थित थी। स्थानकवासी परपरा की दृष्टि से यह सर्वप्रथम सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन मे अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी पारित हुए। जो प्रस्ताव हुए उसका प्राचीन पत्र उदयपुर श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय और प्रतापगढ के प्राचीन भडार मे उपलब्ध है।

स्थानकवासी सप्रदाय जब धीरे-धीरे अनेक उप सप्रदायो मे विभक्त हो गया, परस्पर एक दूसरे की आलोचना प्रारभ हुई, तब परस्पर सद्भाव का अभाव होकर संघर्ष की स्थिति समुत्पन्न होने लगी। यातायात के साधन बढ जाने मे सडके और पुल हो जाने मे साधु-साध्वियो का विचरण क्षेत्र विस्तृत होने लगा। आचार और विचार के तनिक भेद पर 'हम श्रेष्ठ हैं, और ये कनिष्ठ है' इस प्रकार की विचारधारा के कारण श्रमण एक स्थान पर ठहरने से कतराने लगे, प्रवचन आदि भी पृथक करने लगे। जब समाज की यह स्थिति मूर्धन्य मनीषी सतो ने तथा कर्मठ कार्यकर्ता सुश्रावको ने देखी तो उनका हृदय द्रवित हुआ। उन्होने यह प्रार्थना की कि यह स्थिति स्थानकवासी सघ के लिए हितावह नही है। आप सभी मताग्रह और साम्प्रदायिक भावना छोडकर एक बने। पारस्परिक द्वेष, मनोमालिन्य, कटुता ये तत्व क्षोभ बढाने वाले हैं। साम्प्रदायिकता के नाम पर जो विषम स्थिति समुत्पन्न हुई है, उस स्थिति को हमे मिटानी होगी। स्थानकवासी समाज मे बढती हुई विघटनकारी प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए महान तत्व चिन्तक स्व. वाडीलाल मोतीलाल शाह ने अपने ओजस्वी व तेजस्वी भाषणो से और लेखो से जनमानस मे एक लहर पैदा की। पर कुछ सप्रदायवाद के रग मे रगे हुए व्यक्तियो ने उधर ध्यान नही दिया। स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के प्रमुख व्यक्ति अहर्निश इस प्रयास मे सलग्न थे, उनके प्रयत्नो के फलस्वरूप समाज मे एक अभिनव चेतना की लहर व्याप्त हुई।

सन् १९३० मे भारतवर्ष मे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के नेतृत्व मे स्वतत्रता सग्राम का आदोलन तीव्र गति से बढ रहा था, चारो ओर जागृति, सगठन और क्रान्ति की स्वर-लहरियाँ झनझना रही थी। धर्मवीर सुश्रावक दुर्लभजी भाई जौहरी ने मन मे यह निश्चय किया कि हमे पुरजोर यह प्रयास करना है और बृहत् साधु-सम्मेलन कर सभी मतो को एक मच पर एकत्रित कर स्थानकवासी समाज का कायाकल्प करना है। वे शिष्टमडल लेकर स्थानकवासी समाज के प्रमुख सत और आचार्यों की सेवा मे पहुँचे और प्रभावशाली सतो की एक समिति साधु-सम्मेलन समिति के नाम से गठित की गई।

यह निश्चय किया गया कि बृहत् साधु-सम्मेलन के पूर्व प्रान्तीय सम्मेलन किए जाएँ जिससे कि बृहत् साधु-सम्मेलन पूर्ण सफल हो सके। मरुधर प्रान्तीय सम्मेलन १० मार्च १९६२ वि स. १९८८ फाल्गुन सुदी ३ को पाली मे प्रारभ हुआ। सघ ऐक्य की भावना से इस प्रान्तीय सम्मेलन मे मरुधर प्रान्त मे विचरने वाले ६ सप्रदायो के प्रमुख सत इस सम्मेलन मे पधारे। पूज्य अमरसिंहजी म. की सप्रदाय के प्रवर्तक मुनि श्री दयालचदजी म., मत्री मुनि श्री ताराचदजी म. आदि। पूज्य जयमलजी म. की सप्रदाय के प्रवर्तक श्री हजारीमलजी म., मत्री श्री चौथमलजी म. आदि, पूज्य श्री स्वामीदासजी म. की सप्रदाय के प्रवर्तक मुनि श्री फतहचदजी म. आदि, पूज्य रेखचदजी म. की सप्रदाय के प्रवर्तक श्री छगनलालजी म., पूज्य चौथमलजी म. की सप्रदाय के प्रवर्तक मुनि श्री शार्दुलसिंहजी म., पूज्य रघुनाथमलजी म. की सप्रदाय के प्रवर्तक मुनि श्री धीरजमलजी म., तपस्वी चतुर्भुजजी म., मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म., पूज्य नानकलालजी म. की सप्रदाय के प्रवर्तक मुनि श्री पन्नालालजी म. आदि पधारे और सभी ने यह अनुभव किया कि सघ को एक किए बिना उन्नति नहीं हो सकेगी। हमे अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग बद करना होगा। संगठन को सुदृढ करने के लिए समान विचार और समान आचार अपेक्षित है। बिना आचार और विचार के सगठन पत्र रहित लिफाफे के समान है। हमे सगठन को ऐसा सुदृढ बनाना है कि युग-युग तक आने वाली पीढी प्रेरणा प्राप्त कर सके।

मरुधर-प्रान्तीय यह सत सम्मेलन की कार्रवाई चार दिन तक चलती रही। चारो दिन सघ ऐक्य मे सबधित विविध पहलुओ पर बारीकी से चर्चा हुई। इस सम्मेलन मे ६ संप्रदाय के ३२ मुनिराज एकत्रित हुए। इस सम्मेलन मे यह नियम भी बनाया गया कि जो साध्वियाँ प्रवर्तक मुनि श्री की आज्ञा का उल्लघन करेगी अथवा समाचारी के नियमो का उल्लघन करेगी, उनका असहयोग किया जायेगा। इस प्रान्तीय सम्मेलन को सफल करने मे मंत्री श्री ताराचंदजी म., प्रवर्तक मुनि श्री पन्नालालजी म., मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीमलजी म. आदि का अपूर्व सहयोग रहा।

इसी तरह पजाब मे भी प्रान्तीय सम्मेलन हुए और मध्यभारत आदि में भी प्रान्तीय सम्मेलन होकर यह निर्णय लिया गया कि बृहत् साधु-सम्मेलन होना बहुत ही आवश्यक है। बृहत् साधु-सम्मेलन के लिए अजमेर का स्थान सभी ने पसन्द किया। मरुधरीय मुनिगण विविध प्रान्तो से पधारने वाले सतो के स्वागत हेतु पहुँचे और उन्होंने सभी मुनियो का हृदय से स्वागत किया।

५ अप्रेल १९३३ चैत्र शुक्ला १०वी गुरुवार वि स १९९० मे अजमेर मे बृहत् साधु-सम्मेलन की कार्रवाई प्रारभ हुई। अनेक तेजस्वी ओजस्वी प्रवर्तक, गणी, उपाध्याय आदि विशिष्ट मुनियो का शुभागमन हुआ। १ हजार के करीब साधु-साध्वियो की और १ लाख से अधिक श्रावक-श्राविकाओ की व्यवस्था अजमेर श्री सघ ने की। उल्लास के क्षणो मे सम्मेलन का कार्य आरभ हुआ। तिथि-पर्व-सबधी एव समाचारी सबधी विवादास्पद विषयो पर सर्वानुमति से निर्णय करने के लिए मूर्धन्य मुनिवर्यों ने दो समितियो का गठन किया और विषय विचारिणी समिति भी बनाई।

प्रस्तुत सम्मेलन मे श्रमण किन मकानो मे ठहरे, इस सबध मे यह प्रस्ताव पास हुआ– जो मकान श्रावको के धर्म ध्यान के लिए बना हो, उसका नाम व्यवहार मे चाहे जो हो, इस प्रकार के निर्दोष मकान का निर्णय करने के पश्चात मुनि वहाँ उतर (ठहर) सकते है। ऐसे मकान मे उतरने वालो और नही उतरने वालो को, परस्पर एक-दूसरे की टीका नही करना चाहिए।

अजमेर बृहत् साधु-सम्मेलन अत्यत उल्लास के क्षणो मे सपन्न हुआ। इस सम्मेलन की सबसे बडी उपलब्धि यह रही कि एक दूसरे के सन्निकट सत आए। इस सम्मेलन मे पजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात आदि सभी सप्रदाय के सत-सती गण पहुँचे थे।

अजमेर सत-सम्मेलन के पश्चात् कुछ समय तक पुन शिथिलता का सचार हुआ, जिसके कारण समय तक सम्मेलन न हो सका। दिनाक २७-४-१९५२ वि स २००९ वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन सादडी मे बृहत् साधु-सम्मेलन प्रारभ हुआ। यह सम्मेलन १९ वर्षो के पश्चात हुआ। इस सम्मेलन मे अनेक गुत्थियाँ सुलझाई गई। अनेक पेचीदे प्रश्नो का हल हुआ। साप्रदायिकता का विलीनीकरण कर एक श्रमण सघ का निर्माण हुआ। इस सम्मेलन मे पूज्य श्री गणेशीलालजी म तथा व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म को शाति रक्षक के रूप मे नियुक्त किए। इस सम्मेलन मे प्रतिनिधि मुनियो के अतिरिक्त दर्शक मुनि भी सम्मेलन मे बैठे और श्रावक समाज की ओर से कुन्दनमलजी फिरोदिया भी इस सम्मेलन की कार्रवाई मे उपस्थित रहे। इस सम्मेलन मे एक शिष्य परपरा के सबध मे विस्तार से चर्चा हुई। प्राय सभी ने इस योजना की प्रशसा की। पर एक शिष्य परपरा का प्रस्ताव पारित नही हो सका। लेकिन एक आचार्य की योजना का प्रस्ताव पारित हुआ। इस सम्मेलन मे सवत्सरी महापर्व के सबध मे भी बहुत ही विस्तार से चर्चा हुई और अत मे सगठन की दृष्टि से एक प्रस्ताव पारित हुआ। इस सम्मेलन मे जो-जो प्रस्ताव पास हुए, वे अन्यत्र दिए गए हैं अत हम यहाँ उनकी पुनरावृत्ति न कर यह कहना कि यह सम्मेलन पूर्ण सफल रहा। प्राय सभी प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकृत किए गए। इस सम्मेलन मे श्रमण सघ के आचार्य आत्मारामजी म बने तथा १६ मुनियो का मत्रिमडल बना और जितने भी सत वहाँ पधारे, उन सबने भूतपूर्व सप्रदायो का त्याग कर श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ का निर्माण किया। इस प्रकार २५०० वर्ष के इतिहास मे यह पहली बार धर्म क्रान्ति हुई। सपूर्ण जैन समाज ने इस क्राति की मुक्त कठ से प्रशसा की। किसी को भी यह उम्मीद नही थी कि इस प्रकार बिखरी हुई सभी सप्रदाये एक धागे मे पिरो कर गले का हार बन जावेगी।

इस सम्मेलन को सफल बनाने मे आचार्य गणेशीलालजी म , आचार्य हस्तीमलजी म , आचार्य आनद ऋषिजी म , उपाध्याय अमर मुनिजी म , मालव केशरी सौभाग्यमलजी म , उपाध्याय प्यारचदजी म मरुधर केशरी मिश्रीमलजी म , व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म , पजाब केशरी प्रेमचदजी म , प प्रवर श्री पुष्कर मुनिजी म आदि महापुरुषो ने प्रबल प्रयास किया। इन महान पुरुषो के सप्रदाय त्याग के कारण ही श्रमण सघ का निर्माण हो सका। स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स और सादडी के श्रावक सघ ने जो कठिन श्रम किया, वह भी भुलाया नही जा सकता। सभी के श्रम की फलश्रुति के रूप मे श्रमण सघ का निर्माण हुआ। यह सत सम्मेलन २७ अप्रेल १९५२ से प्रारभ होकर दिनाक ४ मई १९५२ तक चला। वर्षावास का समय

सन्निकट होने से और वर्षावास हेतु श्रमण भगवतो को दूर-दूर क्षेत्रो मे पधारना था, इसलिए सम्मेलन का कार्य उल्लास के क्षणो म सपन्न किया गया।

सादडी सम्मेलन के पश्चात पुन मत्रिमडल की बैठक का आयोजन सोजत शहर मे किया गया। यह बैठक रविवार दिनाक १८ जून १९५३ को प्रारभ हुई। इस बैठक मे अनेक गभीर प्रश्नो पर चिन्तन किया गया। जो विषय सादडी सम्मेलन मे विचार करने से रहे थे, उन सभी विषयो पर प्रस्तुत मत्रिमडल की बैठक मे चर्चा की गई। प श्री समर्थमलजी म जो श्रमण सघ मे नही थे, उन्हे भी चर्चा हेतु आमत्रित किया गया था और उन्होने आगम की दृष्टि से अनेक प्रश्न समुपस्थित किए और उन प्रश्नो का उत्तर श्रमण सघ के अधिकारी श्रमणो द्वारा दिया गया। कवि श्री अमरचदजी म ने विशेष रूप मे चर्चा मे भाग लेकर उलझी हुई गुत्थियो को सुलझाने म अपूर्व सहयोग दिया। चर्चा मे मुख्य रूप से लोगस्स के कायोत्सर्ग के सबध मे विचार-विमर्श हुआ। उसके पश्चात्, सचित्त, अचित्त के प्रश्न पर चर्चा करते हुए केले के सबध मे विस्तार से चर्चा हुई। कविश्री ने आगमो के प्रमाण देकर यह सिद्ध किया कि केला उचित है। तिथि निर्णय के सबध मे भी विस्तार मे चर्चाएँ हुई। सादडी मे जो मत्रिमडल निर्मित हुआ था, उसमे प्रायश्चित मत्री, दीक्षा मत्री, चातुर्मास मत्री, सेवा मत्री, विहार मत्री, आक्षेप निवारक मत्री, साहित्य शिक्षण मत्री और प्रचार मत्री के रूप मे कार्य विभाग किया गया था, पर प्रस्तुत मत्रिमडल की बैठक मे प्रान्तीय मत्रिमडल की व्यवस्था की गई। यह नि सकोच कहा जा सकता है कि प्रस्तुत मत्रिमडल की बैठक, सादडी सत-सम्मेलन को अधिक सुदृढ बनाने के लिए वरदान रूप मे रही। यह सम्मेलन दिनाक १७-१-५३ से ३०-१- ५३ तक चला।

कुछ आगमिक ऐसे प्रश्न थे जिन पर बहुत लबी चर्चाएँ अपेक्षित थी, इसलिए इस मत्रिमडल की बैठक मे यह निर्णय भी किया गया कि विशिष्ट सतो का वर्षावास एक साथ हो तो उन सभी प्रश्नो पर विचार-विनिमय हो सके और सदा-सदा के लिए उन प्रश्नो का समाधान भी हो सके इस दृष्टि से मरुधरा की राजधानी जोधपुर मे उपाचार्य श्री गणेशीलाल म , प्रधानमत्री श्री आनद ऋषिजी म , सहमत्री श्री हस्तीमलजी म , कविरत्न श्री अमरमुनिजी म , व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म और प श्री समर्थलालजी म , इन छ बडो का सन् १९५३ मे वर्षावास हुआ। प्रस्तुत वर्षावास मे प्राय प्रतिदिन छहो महारथियो ने विविध विषयो पर गहराई से चिन्तन कर समस्याओ को सुलझाने का प्रयास किया। यह वर्षावास समाज के लिए प्रेरणा स्रोत रहा।

भीनासर के पवित्र प्रागण मे सन् १९५६ मे सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के पूर्व श्रमण सघीय परामर्श परिषद् की कार्यवाही नोखामडी मे दिनाक १७-२-५६ को मध्याह्न मे उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म के नेतृत्व मे प्रारम्भ हुई। उसमे प्रायश्चित विधि के सबध मे चिन्तन कर प्रायश्चित विधि तैयार की गई है और पूर्व सम्मेलनो मे उपाध्यक्ष पद की व्यवस्था नही थी, उस पर भी चिन्तन हुआ। नोखामडी के पश्चात् देशनोक मे भी विचार, चर्चाएँ हुई उन सभी पर भीनासर सम्मेलन मे निर्णय लिए गए। इस सम्मेलन मे ध्वनि विस्तारक यत्र मे अपवाद मे बोलना पडे तो एक उपवास का प्रायश्चित का निर्णय लिया गया और स्वच्छद रूप मे बोलने पर एक दिन का दीक्षा-छेद का भी निर्णय हुआ। इस सम्मेलन मे प्रधानमत्री श्री आनद ऋषिजी म , सह मत्री श्री हस्तीमलजी म , मत्री श्री प्यारचदजी म और कविरत्न श्री अमरचदजी म इन चारो को उपाध्याय पद प्रदान किया गया और व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म को प्रधानमत्री का पद दिया गया। भीनासर सम्मेलन के पश्चात् ऐसी स्थितियाँ आई, जिसमे सघ मे प्रगति के स्थान पर विचार भेद उपस्थित हुए और आचार्य तथा उपाचार्य के मतभेद को लेकर प्रधानमत्री श्री मदनलालजी म ने प्रधानमत्री पद से त्यागपत्र दिया। उसके पश्चात् पारस्परिक मतभेद की स्थिति सुधर न सकी और उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म , श्रमण सघ से पृथक होकर अपनी भूतपूर्व सप्रदाय मे चले गए, जिससे सघ मे एक अवरोधक स्थिति उत्पन्न हो गई। पर सघ के मूर्धन्य सतगणो ने अपनी प्रतापपूर्ण सभा से सघ को अक्षुण्ण रखा।

आचार्य प्रवर श्री आत्मारामजी म अत्यत वृद्ध और अशक्त थे। श्रमण सघ का कार्य सुचारु रूप से चलता रहे, इसलिए आचार्य प्रवर ने ५ सतो की श्रमण सघीय कार्यवाहक समिति का गठन किया, जिन्होने जी-जान से श्रमण सघ को अखड और तेजस्वी बनाने का प्रयास किया। जब श्रमण सघ के मुख्य कर्णधार आचार्य श्री आत्मारामजी म का स्वर्गवास हो गया तब श्रमण पर एक भयकर वज्राघात हुआ। कुछ विघटनकारी तत्व श्रमण सघ को छिन्न-भिन्न करने हेतु तुले हुए थे। आचार्य के अभाव मे श्रमण सघ की

डगमगाती नैया को स्थिर रखना अत्यत कठिन था, अत सभी श्रमण सघ के प्रमुख मुनियो ने विचार-विमर्श कर आचार्य पद प्रदान करने के सबध मे निर्णय लिया।

उसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त उपाध्याय श्री आनद ऋषिजी म को सभी ने पसद किया। उस समय श्री आनद ऋषिजी म बम्बई विराज रहे थे। सभी सतो ने प्रार्थना की कि, आप वहाँ से विहार कर राजस्थान पधारे जिससे सम्मेलन भी हो सकेगा व आचार्य पद समारोह भी हो सकेगा। सन् १९६४ वि स २०२० फाल्गुन शुक्ला ३ के दिन अजमेर मे श्रमण सघीय शिखर सम्मेलन प्रारभ हुआ। शिखर सम्मेलन मे प्राय सभी प्रमुख अधिकारी पधारे। उन्होने सघीय स्थिति पर गहराई से चिन्तन कर उसको सुदृढ बनाने हेतु प्रयास किया। इस सम्मेलन मे यह निर्णय लिया गया कि मत्रिमडल के स्थान पर प्रवर्तक पद की व्यवस्था की जाए, क्योकि मत्री पद मे राजनीतिक गध होती है। इसलिए शास्त्रीय पद प्रवर्तक अधिक उपयुक्त है, उसमे केवल सेवा की पवित्र भावना अठखेलियाँ करती है। सर्वानुमति से इस निर्णय ने मूर्त रूप लिया और आचार्य आत्मारामजी म के पद पर आचार्य श्री आनद ऋषिजी म का चादर महोत्सव वहाँ उल्लासपूर्वक मनाया गया। सघ मे पुन अभिनव चेतना का सचार हुआ। प्रस्तुत सम्मेलन मे बडा प्रायश्चित और दीक्षा का अधिकार आचार्यश्री को दिया गया। साथ ही प्रवर्तक परिवार को यह अधिकार दिया गया कि वे व्यवस्था कर सकते हैं। एक परामर्श-समिति भी निर्मित हुई जो सामाजिक समस्याओ के समाधान हेतु आचार्य प्रवर को परामर्श दे सके।

सन् १९७१ मे सादडी राजस्थान प्रान्तीय सत-सम्मेलन आचार्य सम्राट आनन्द ऋषिजी म के नेतृत्व मे हुआ। उस सम्मेलन मे राजस्थान मे विचरने वाले सभी सत-सतीगण पधारे और उन्होने विविध प्रश्नो पर चिन्तन कर सगठन को सुदृढ बनाने का प्रयास किया।

सन् १९६४ के पश्चात् वृहत् साधु-सम्मेलन नही हुआ था अत महामहीम राष्ट्र सत आचार्य आनद ऋषिजी म के मन मे भावना उद्‌बुद्ध हुई कि मेरी वृद्धावस्था है, मै स्वय लबे विहार करने की स्थिति मे नही हूँ, भारत के विभिन्न अचलो म श्रमण सघीय सत-सतीगण विचर रहे है। यदि वे एक स्थान पर एकत्रित हो तो इन वर्षो मे जो अनेक समस्याएँ समुत्पन्न हुई है, उनका समाधान भी हो सकेगा, अत आचार्य प्रवर ने सन् १९८७ मे पूना मे सत-सम्मेलन करने की घोषणा की। आचार्य प्रवर के आदेश को मूर्त रूप देने हेतु स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स तथा श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ सम्मेलन समिति पूना का भी अपूर्व योगदान रहा। यह सम्मेलन दिनाक २-५-८७ शनिवार के दिन प्रारभ हुआ और दिनाक १३-५-८७ बुधवार तक हुआ। इस सम्मेलन मे भारत के विभिन्न अचलो से १०७ सत और १५३ महासतियाँ पधारी थी।

आचार्य सम्राट ने अपनी वृद्धावस्था के कारण सभा सचालन हेतु प श्री सुमन मुनिजी को शान्तिरक्षक के रूप मे नियुक्त किया। पूर्व सम्मेलनो मे महासती वृन्द को सम्मेलन मे बैठने का अधिकार नही था, पर इस सम्मेलन मे सर्वानुमति से महासतियो को सम्मेलन मे बैठने का अधिकार दिया और कुछ महासतियाँ प्रतिनिधि के रूप मे बैठी।

दिनाक १२ मई ८७ को एक लाख से भी अधिक जनमेदिनी के बीच निम्न घोषणा आचार्य सम्राट ने की-"आज कितना उल्लासमय मगल वातावरण है। चारो ओर हर्ष की तरगे तरगायित हैं। मेरी आज्ञा को शिरोधार्य कर हमारे सघ के मूर्धन्य गण और परम विदुषी महासती वृन्द यहाँ पर पधारे। मधुर वातावरण मे सम्मेलन का कार्य सम्पन्न हुआ।

हमारे मुनि प्रवरो ने बहुत ही दीर्घ दृष्टि से निर्णय लिए है, जो हमारी गौरव-गरिमा मे चार चाँद लगाने वाले हैं। इस मगलमय अवसर पर भारत के विविध अचलो से हजारो श्रावक-श्राविकाएँ भी उपस्थित हुए है। सभी के अतर्मानस मे यह जिज्ञासा समुत्पन्न हो रही है कि मैं श्रमण सघ का उत्तराधिकारी घोषित करूँ।

श्रमण सघ एक जयवन्त सघ है। इस सघ की उन्नति हेतु श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री को उपाचार्य पद से सुशोभित करता हूँ और श्री शिवमुनिजी को युवाचार्य पद देता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि दोनो मुनि श्रमण सघ के प्रति पूर्ण समर्पित होकर निष्ठा के साथ अपना उत्तरदायित्व निभाएँगे।"

उपाचार्य और युवाचार्य का चादर महोत्सव दिनांक १३ मई, १९८७ को आचार्यजी के कर-कमलो द्वारा सपन्न हुआ। प्रस्तुत सम्मेलन में विस्तार से समाचारी के सबध मे चिंतन हुआ और एक महत्वपूर्ण आदर्श यह उपस्थित किया गया है कि जिन सत और सतियो के नाम के आगे जो विविध उपाधियाँ लगती थीं वे सारी उपाधियाँ उन्होंने आचार्य श्री के चरणो मे समर्पित कर दी। श्रमण सघ द्वारा प्रदत्त उपाधि का ही श्रमण और श्रमणियाँ उपयोग कर सकेगी। इस सम्मेलन में बाह्याडम्बर जैसे तपोत्सव, क्षमापना, जयंतियाँ आदि पर प्रकाशित होने वाली बडी-बडी पत्रिकाएँ और पोस्टर बद कर दिए गए तथा एक प्रार्थना भी निश्चित की गई।

इस प्रकार अजमेर, सादडी, सोजत, जोधपुर, वर्णावास, भीनासर, अजमेर, सांडेराव और पूना मे सम्मेलन हुए। उन सभी सम्मेलनो मे ज्ञान के साथ क्रिया पर अधिक बल दिया गया, क्योंकि क्रिया ही मोक्ष का साक्षात कारण है। सम्यग्दर्शन की पूर्णता चतुर्थ गुणस्थान मे हो जाती है। सम्यक्ज्ञान की पूर्णता तेरहवे गुणस्थान मे हो जाती है, और सम्यक चारित्र की पूर्णता १४ वे गुणस्थान मे होती है और उसी क्षण आत्मा पूर्ण मुक्त बन जाता है। ज्ञान और क्रिया का समन्वय ही साधक की साधना का लक्ष्य है और उसी दृष्टि से समय-समय पर सम्मेलन हुए और जहाँ कही भी परिस्थिति के कारण शिथिलता समुत्पन्न हुई, उसे नष्ट करने का प्रयास किया गया। सम्मेलन सत जीवन की प्रगति के लिए आवश्यक ही नही, अनिवार्य भी है। क्योंकि मिलने से अनेक समस्याओ का समाधान होता है, अनेक भ्रांतियो का निरसन होता है।

प्रस्तुत पक्तियो मे हमने बहुत ही सक्षेप मे सत-सम्मेलन के सबध मे चिन्तन प्रस्तुत किया है। इन सत सम्मेलनो की बहुत बडी उपलब्धि है आचार शुद्धि और विचार क्राति।

आवश्यक वृत्ति पृ ६९८
(क) तित्थोगालीय पइन्नय—७४२।
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ १०७।
(ग) परिशिष्ट पर्व सर्ग ९ आचार्य हेमचद।
जनरल ऑफ दी बिहार एंड उडीसा रिसर्च सोसायटी भा १३ पृ ३३६१।
जैन साहित्य का बृहद इतिहास भाग १, पृ ८२।
आवश्यक चूर्णि
(क) नन्दी चूर्णि, पृ ८
(ख) नन्दी गाथा ३३, मलयगिरी वृत्ति, पृ ५१
(क) कहावली।
(ख) जिनवचन च दुष्माकालवशात उच्छिन्नप्रायमितिमत्वा भगवद्भिर्नागार्जुन स्कन्दिलाचार्य प्रभृतिभि पुस्तकेषु न्यस्तम्।
—योगशास्त्र, प्र ३ पृ २०७

वलहिपुरम्मि नयरे देवड्ढिपमुहेण समणसघेण।
पुत्थई आगमु लिहिओ नवसय असिआओ वीराओ।।